जिनागम-ग्रन्थमाला : ग्रन्याङ्क - ७

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्यस्मृति में आयोजित]

पंचम गणधर भगवत्सुधर्म-स्वामि-प्रणीत तृतीय अंग

स्थानांगसूत्र

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, परिशिष्ट युक्त]

सन्निधि ☐

उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्वामी श्रीव्रजलालजी महाराज

संयोजक तथा प्रधान सम्पादक ☐

युवाचार्य श्रीमिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

अनुवादक—विवेचक ☐

पं. हीरालाल शास्त्री

प्रकाशक ☐

श्री आगमप्रकाशन-समिति, ब्यावर, राजस्थान

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्रीदेवेन्द्र मुनि शास्त्री
श्रीरतन मुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्रीविनयकुमार 'भीम'
श्रीमहेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ अर्थसौजन्य
श्रीमान् सेठ सुगनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाणसंवत् २५०८
वि. सं. २०३८
ई. सन् १९८१

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय, अजमेर

☐ मूल्य : ५०) रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

Fifth Ganadhara Sudharma Swami Compiled
Third Anga

THĀNĀNGA

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc.]

Proximity
Up-pravartaka Shasansevi Rev. Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Pt. Hiralal Shastri

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachandra Bharill

☐ **Managing Editor**
Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**
Munisri Vinaykumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinkar'

☐ **Financial Assistance**
Seth Sri Suganchandji Choradia, Madras.

☐ **Date of Publication**
Vir-nirvana Samvat 2508
Vikram Samvat 2038, Dec. 1981

☐ **Publishers**
Sri Agam Prakashana Samiti
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)
Beawar 305901

☐ **Printer**
Satishchandra Shukla
Vedic Yantralaya, Ajmer

☐ **Price : Rs. 50/-**

समर्पण

जिनका पावन स्मरण आज भी जिनशासन की सेवा की प्रशस्त प्रेरणा का स्रोत है,

जिन्होंने जिनागम के अध्ययन-अध्यापन के और प्रचार-प्रसार के लिए प्रबल पुरुषार्थ किया,

स्वाध्याय-तप की विस्मृतप्राय प्रथा को सजीव स्वरूप प्रदान करने के लिए 'स्वाध्यायि-संघ' की संस्थापना करके जैन समाज को चिर-ऋणी बनाया,

जो वात्सल्य के वारिधि, करुणा की मूर्ति और विद्वत्ता की विभूति से विभूषित थे,

अनेक क्रियाशील स्मारक आज भी जिनके विराट व्यक्तित्व को उजागर कर रहे हैं, उन

स्वर्गासीन महास्थविर प्रवर्त्तक
मुनि श्री पन्नालालजी म० के
कर-कमलों में सादर समर्पित

□ मधुकर मुनि

स्थानाङ्ग के प्रकाशन में विशिष्ट अर्थसहयोगी—

श्री सुगनचन्दजी चोरड़िया : संक्षिप्त परिचय

श्री "बालाराम पृथ्वीराज की पेढ़ी" अहमदनगर महाराष्ट्र में बड़ी शानदार और प्रसिद्ध थी। दूर-दूर पेढ़ी की महिमा फैली हुई थी। साख व धाक थी।

इस पेढ़ी के मालिक सेठ श्री बालारामजी मूलत: राजस्थान के अन्तर्गत मरुधरा के सुप्रसिद्ध गांव नोखा चान्दावतां के निवासी थे।

श्री बालारामजी के भाई का नाम छोटमलजी था। छोटमलजी के चार पुत्र हुए—

१. लिखमीचन्दजी
२. हस्तीमलजी
३. चान्दमलजी
४. सूरजमलजी

श्रीयुत सेठ सुगनचन्दजी श्री लिखमीचन्दजी के सुपुत्र हैं। आपकी दो शादियां हुई थीं। पहली पत्नी से आपके तीन पुत्र हुए:—

१. दीपचन्दजी २. मांगीलालजी ३. पारसमलजी

दूसरी पत्नी से आप तीन पुत्र एवम् सात पुत्रियों के पिता बने। आपके ये तीन पुत्र हैं:—

१. किशनचन्दजी २. रणजीतमलजी ३. महेन्द्रकुमारजी

श्री सुगनचन्दजी पहले अपनी पुरानी पेढ़ी पर अहमदनगर में ही अपना व्यवसाय करते थे। बाद में आप व्यवसाय के लिये रायचूर (कर्नाटक) चले गए और वहाँ से समय पाकर आप उलुन्दर पेठ पहुँच गए। उलुन्दर पेठ पहुँच कर आपने अपना अच्छा कारोबार जमाया।

आपके व्यवसाय के दो प्रमुख कार्यक्षेत्र हैं—फाइनेन्स और बैंकिंग। आपने अपने व्यवसाय में अच्छी प्रगति की। आज आपके पास अपनी अच्छी सम्पन्नता है। अभी-अभी आपने मद्रास को भी अपना व्यावसायिक क्षेत्र बनाया है। मद्रास के कारोबार का संचालन आपके सुपुत्र श्री किशनचन्दजी कर रहे हैं।

श्री सुगनचन्दजी एक धार्मिक प्रकृति के सज्जन पुरुष हैं। संत मुनिराज-महासतियों की सेवा करने की आपको अच्छी अभिरुचि है।

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन के आप संरक्षक सदस्य हैं। प्रस्तुत प्रकाशन में आपने एक अच्छी अर्थ-राशि का सहयोग दिया है। एतदर्थ संस्था आपकी आभारी है।

आशा है, समय समय पर इसी प्रकार अर्थ-सहयोग देकर आप संस्था को प्रगतिशील बनाते रहेंगे।

□□

श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

१. श्रीमान् सेठ मोहनमलजी चोरड़िया	अध्यक्ष	मद्रास
२. श्रीमान् सेठ रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष	ब्यावर
३. श्रीमान् कँवरलालजी बैताला	उपाध्यक्ष	गोहाटी
४. श्रीमान् दौलतराजजी पारख	उपाध्यक्ष	जोधपुर
५. श्रीमान् रतनचन्दजी चोरड़िया	उपाध्यक्ष	मद्रास
६. श्रीमान् खूबचन्दजी गादिया	उपाध्यक्ष	ब्यावर
७. श्रीमान् जतनराजजी मेहता	महामन्त्री	मेड़ता सिटी
८. श्रीमान् चाँदमलजी विनायकिया	मन्त्री	ब्यावर
९. श्रीमान् ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री	पाली
१०. श्रीमान् चाँदमलजी चौपड़ा	सहमन्त्री	ब्यावर
११. श्रीमान् जौहरीलालजी शीशोदिया	कोषाध्यक्ष	ब्यावर
१२. श्रीमान् गुमानमलजी चोरड़िया	कोषाध्यक्ष	मद्रास
१३. श्रीमान् मूलचन्दजी सुराणा	सदस्य	नागौर
१४. श्रीमान् जी. सायरमलजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
१५. श्रीमान् जेठमलजी चोरड़िया	सदस्य	बैंगलौर
१६. श्रीमान् मोहनसिंहजी लोढा	सदस्य	ब्यावर
१७. श्रीमान् बादलचन्दजी मेहता	सदस्य	इन्दौर
१८. श्रीमान् मांगीलालजी सुराणा	सदस्य	सिकन्दराबाद
१९. श्रीमान् माणकचन्दजी बैताला	सदस्य	बागलकोट
२०. श्रीमान् भंवरलालजी गोठी	सदस्य	मद्रास
२१. श्रीमान् भंवरलालजी श्रीश्रीमाल	सदस्य	दुर्ग
२२. श्रीमान् सुगनचन्दजी चौरड़िया	सदस्य	मद्रास
२३. श्रीमान् दुलीचन्दजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२४. श्रीमान् खींवराजजी चोरड़िया	सदस्य	मद्रास
२५. श्रीमान् प्रकाशचन्दजी जैन	सदस्य	भरतपुर
२६. श्रीमान् भंवरलालजी मूथा	सदस्य	जयपुर
२७. श्रीमान् जालमसिंहजी मेड़तवाल	(परामर्शदाता)	ब्यावर

प्रकाशकीय

आचाराङ्ग, उपासकदशांग, ज्ञाताधर्मकथांग, अन्तकृद्दशांग और अनुत्तरौपपातिकदशांग के प्रकाशन के पश्चात् स्थानांगसूत्र पाठकों के कर-कमलों में समर्पित किया जा रहा है। आगम-प्रकाशन का यह कार्य जिस वेग से अग्रसर हो रहा है, आशा है उससे पाठक अवश्य सन्तुष्ट होंगे। हमारी हार्दिक अभिलाषा तो यह है कि प्रस्तुत प्रकाशन को और अधिक त्वरा प्रदान की जाए, किन्तु आगमों के प्रकाशन का कार्य जोखिम का कार्य है। अनूदित आगमों को सावधानी के साथ निरीक्षण-परीक्षण करने के पश्चात् ही प्रेस मे दिया जाता है। इस कारण प्रायः कुछ अधिक समय लग जाना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त विद्युत्संकट के कारण भी मुद्रण-कार्य में बाधा पड़ जाती है। तथापि प्रयास यही है कि यथासंभव शीघ्र इस महान् और महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न किया जा सके।

प्रस्तुत आगम का अनुवाद पण्डित हीरालालजी शास्त्री ने किया है। अत्यन्त दुःख है कि शास्त्रीजी इसके आदि-अन्त के भाग को तैयार करने से पूर्व ही स्वर्गवासी हो गए। उनके निधन से समाज के एक उच्चकोटि के सिद्धान्तवेत्ता की महती क्षति तो हुई ही, समिति का एक प्रमुख सहयोगी भी कम हो गया। इस प्रकार समिति दीर्घदृष्टि और लगनशील कार्यवाहक अध्यक्ष सेठ पुखराजजी शीशोदिया एवं शास्त्रीजी इन दो सहयोगियों से वंचित हो गई है।

शास्त्रीजी द्वारा अनूदित समवायांग प्रेस में दिया जा रहा है। आगरा में सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का मुद्रण चालू है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध अजमेर में मुद्रित कराने की योजना है। भगवतीसूत्र का प्रथम भाग मुद्रण की स्थिति में आ रहा है। अन्य अनेक आगमों का कार्य भी चल रहा है।

स्थानांग के मूल पाठ एवं अनुवादादि में आगमोदय समिति की प्रति आचार्य श्री अमोलकऋषिजी म. तथा युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ (मुनि श्रीनथमलजी म.) द्वारा सम्पादित 'ठाणं' की सहायता ली गई है। अतएव अनुवादक की ओर से और हम अपनी ओर से भी इन सब के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

युवाचार्य पण्डितप्रवर श्रीमधुकर मुनिजी तथा पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल ने अनुवाद का निरीक्षण-संशोधन किया है। समिति के अर्थदाताओं तथा अन्य पदाधिकारियों से प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग प्राप्त हुआ है। प्रस्तावनालेखक विद्वद्वर्य श्रीदेवेन्द्र मुनि जी म. सा. का सहयोग अमूल्य है। किन शब्दों में उनका आभार व्यक्त किया जाय! श्री सुजानमलजी सेठिया तथा वैदिक यंत्रालय के प्रबन्धक श्री सतीशचन्द्रजी शुक्ल से भी मुद्रण-कार्य में स्नेहपूर्ण सहयोग मिला है। इन सब के हम आभारी हैं।

समिति के सभी प्रकार के सदस्यों से तथा आगमप्रेमी पाठकों से नम्र निवेदन है कि समिति द्वारा प्रकाशित आगमों का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार करने में हमें सहयोग प्रदान करें, जिससे समिति के उद्देश्य की अधिक पूर्ति हो सके।

समिति प्रकाशित आगमों से तनिक भी आर्थिक लाभ नहीं उठाना चाहती, बल्कि लागत मूल्य से भी कम ही मूल्य रखती है। किन्तु कागज तथा मुद्रण व्यय अत्यधिक बढ़ गया है और बढ़ता ही जा रहा है। उसे देखते हुए आशा है जो मूल्य रक्खा जा रहा है, वह अधिक प्रतीत नहीं होगा।

रतनचन्द्र मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष

जतनराज महता
महामंत्री

चांदमल विनायकिया
मंत्री

आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

आगम-सम्पादन का यह ऐतिहासिक कार्य पूज्य गुरुदेव की पुण्यस्मृति में आयोजित किया गया है। आज उनका पुण्यस्मरण मेरे मन को उल्लसित कर रहा है। साथ ही मेरे वन्दनीय गुरु-भ्राता पूज्य स्वामी श्रीहजारीमलजी महाराज की प्रेरणाएं—उनकी आगमभक्ति तथा आगम-सम्बन्धी तलस्पर्शी ज्ञान, प्राचीन धारणाएं मेरा सम्बल बनी हैं अतः मैं उन दोनों स्वर्गीय आत्माओं की पुण्यस्मृति में विभोर हूँ।

शासनसेवी स्वामीजी श्री ब्रजलालजी महाराज का मार्गदर्शन, उत्साह-संवर्द्धन, सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार व महेन्द्रमुनि का साहचर्य-बल, सेवा-सहयोग तथा महासती श्री कानकुँवरजी, महासती श्री झणकार कुँवरजी, परमविदुषी साध्वी श्री उमराव कुँवरजी 'अर्चना'—की विनम्र प्रेरणाएं मुझे सदा प्रोत्साहित तथा कार्यनिष्ठ बनाये रखने में सहायक रही हैं।

मुझे दृढविश्वास है कि आगम-वाणी के सम्पादन का यह सुदीर्घ प्रयत्न-साध्य कार्य सम्पादन करने में मुझे सभी सहयोगियों, श्रावकों व विद्वानों का पूर्ण सहकार मिलता रहेगा और मैं अपने लक्ष्य तक पहुंचने में गतिशील बना रहूँगा।

इसी आशा के साथ,

☐ मुनि मिश्रीमल 'मधुकर'

पुनश्च:—

मेरा जैसा विश्वास था उसी रूप में आगमसम्पादन का कार्य सम्पन्न हुआ है और होता जा रहा है।

१. श्रीयुत श्रीचन्दजी सुराणा 'सरस' ने आचारांग सूत्र का सम्पादन किया।

२. श्रीयुत डा० छगनलाल जी शास्त्री ने उपासकदशा सूत्र का सम्पादन किया।

३. श्रीयुत पं० शोभाचन्द्र जी सा. भारिल्ल ने ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र का सम्पादन किया।

४. विदुषी साध्वीजी श्री दिव्यप्रभाजी ने अंतकृद्दशासूत्र का सम्पादन किया।

५. विदुषी साध्वीजी मुक्तिप्रभाजी ने अनुत्तरौपपातिकसूत्र का सम्पादन किया।

६. स्व० पं० श्री हीरालालजी शास्त्री ने स्थानांगसूत्र का सम्पादन किया।

सम्पादन के साथ इन सभी आगमग्रन्थों का प्रकाशन भी हो गया है। उक्त सभी विद्वानों का मैं आभार मानता हूँ।

इन सभी विद्वानों के सतत सहयोग से ही यह आगमसम्पादन-कार्य सुचारु रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है।

श्रीयुत पं० र० श्री देवेन्द्रमुनिजी म. ने आगमसूत्रों पर प्रस्तावना लिखने का जो महत्त्वपूर्ण बीड़ा उठाया है, इसके लिए उन्हें शत शत साधुवाद।

यद्यपि इस आगममाला के प्रधान सम्पादक के रूप में मेरा नाम रखा गया है परन्तु मैं तो केवल इसका संयोजक मात्र हूँ। श्रीयुत श्रद्धेय भारिल्लजी ही सही रूप में इस आगममाला के प्रधान सम्पादक हैं।

भारिल्लजी का आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्दावली नहीं है।

इस आगमसम्पादन में जैसी सफलता प्रारम्भ में मिली है वैसी ही भविष्य में भी मिलती रहेगी, इसी आशा के साथ।

दिनांक १३ अक्टूबर १९८१
नोखा चान्दावतां (राजस्थान)

☐ (युवाचार्य) मधुकरमुनि

प्रस्तावना

स्थानांग सूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

भारतीय धर्म, दर्शन साहित्य और संस्कृति रूपी भव्य भवन के वेद, त्रिपिटक और आगम ये तीन मूल आधार-स्तम्भ हैं, जिन पर भारतीय-चिन्तन आधृत है। भारतीय धर्म दर्शन साहित्य और संस्कृति की अन्तरात्मा को समझने के लिये इन तीनों का परिज्ञान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

वेद—

वेद भारतीय तत्त्वद्रष्टा ऋषियों की वाणी का अपूर्व व अनूठा संग्रह है। समय-समय पर प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा को निहार कर या अद्भुत, अलौकिक रहस्यों को देखकर जिज्ञासु ऋषियों की हृत्तन्त्री के सुकुमार, तार झनझना उठे, और वह अन्तर्हृदय की वाणी वेद के रूप में विश्रुत हुई। ब्राह्मण दार्शनिक मीमांसक वेदों को सनातन और अपौरुषेय मानते हैं। नैयायिक और वैशेषिक प्रभृति दार्शनिक उसे ईश्वरप्रणीत मानते हैं। उनका यह आघोष है कि वेद ईश्वर की वाणी है। किन्तु आधुनिक इतिहासकार वेदों की रचना का समय अन्तिम रूप से निश्चित नहीं कर सके हैं। विभिन्न विज्ञों के विविध मत हैं, पर यह निश्चित है कि वेद भारत की प्राचीन साहित्य-सम्पदा है। प्रारम्भ में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद ये तीन ही वेद थे। अतः उन्हें वेदत्रयी कहा गया है। उस के पश्चात् अथर्ववेद को मिलाकर चार वेद बन गये! ब्राह्मण ग्रन्थ व आरण्यक ग्रन्थों में वेद की विशेष व्याख्या की गयी है। उस व्याख्या में कर्मकाण्ड की प्रमुखता है। उपनिषद् वेदों का अन्तिम भाग होने से वह वेदान्त कहलाता है। उसमें ज्ञानकाण्ड की प्रधानता है। वेदों को प्रमाणभूत मानकर ही स्मृतिशास्त्र और सूत्र-साहित्य का निर्माण किया गया। ब्राह्मण-परम्परा का जितना भी साहित्य निर्मित हुआ है, उस का मूल स्रोत वेद हैं। भाषा की दृष्टि से वैदिक-विज्ञों ने अपने-विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत को बनाया है और उस भाषा को अधिक से अधिक समृद्ध करने का प्रयास किया है।

त्रिपिटक

त्रिपिटक तथागत बुद्ध के प्रवचनों का सुव्यवस्थित संकलन-आकलन है, जिस में आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक और नैतिक उपदेश भरे पड़े हैं। बौद्धपरम्परा का सम्पूर्ण आचार-विचार और विश्वास का केन्द्र त्रिपिटक साहित्य है। पिटक तीन हैं, सुत्तपिटक, विनयपिटक, अभिधम्म पिटक। सुत्तपिटक में बौद्धसिद्धान्तों का विश्लेषण है, विनयपिटक में भिक्षुओं की परिचर्या और अनुशासन-सम्बन्धी चिन्तन है, और अभिधम्मपिटक में तत्त्वों का दार्शनिक-विवेचन है। आधुनिक इतिहास-वेत्ताओं ने त्रिपिटक का रचनाकाल भी निर्धारित किया है। बौद्ध-साहित्य अत्यधिक-विशाल है। उस साहित्य ने भारत को ही नहीं, अपितु चीन, जापान, लंका, बर्मा, कम्बोडिया, थाईदेश, आदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज को भी प्रभावित किया है। वैदिक-विज्ञों ने विज्ञों की भाषा संस्कृत अपनाई, तो बुद्ध ने उस युग की जनभाषा पाली अपनाई। पाली भाषा को अपनाने से बुद्ध जनसाधारण के अत्यधिक लोकप्रिय हुये।

जैन आगम

"जिन" की वाणी में जिसकी पूर्ण निष्ठा है, वह जैन है। जो राग द्वेष आदि आध्यात्मिक शत्रुओं के विजेता हैं, वे जिन हैं। श्रमण भगवान् महावीर जिन भी थे, तीर्थंकर भी थे। वे यथार्थज्ञाता, वीतराग, आप्त

पुरुष थे। वे अलौकिक एवं अनुपम दयालु थे। उनके हृदय के कण-कण में, मन के अणु-अणु में करुणा का सागर कुलाचें मार रहा था। उन्होंने संसार के सभी जीवों की रक्षा रूप दया के लिये पावन प्रवचन किये। उन प्रवचनों को तीर्थंकरों के साक्षात् शिष्य श्रुतकेवली गणधरों ने सूत्ररूप में आबद्ध किया। वह—गणिपिटक आगम है।[1] आचार्य भद्रबाहु के शब्दों में यों कह सकते हैं, तप, नियम ज्ञान रूप वृक्ष पर आरूढ़ होकर अनन्त ज्ञानी केवली भगवान् भव्य जनों के विबोध के लिये ज्ञान-कुसुम की वृष्टि करते हैं। गणधर अपने बुद्धि-पट में उन कुसुमों को झेल कर प्रवचनमाला गूँथते हैं। वह आगम है।[2] जैन धर्म का सम्पूर्ण विश्वास, विचार और आचार का केन्द्र आगम है। आगम ज्ञान-विज्ञान का, धर्म और दर्शन का, नीति और अध्यात्मचिन्तन का अपूर्व खजाना है। वह अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य के रूप में विभक्त है। नन्दीसूत्र आदि में उसके सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा है।

अपेक्षा दृष्टि से जैन आगम पौरुषेय भी है और अपौरुषेय भी। तीर्थंकर व गणधर आदि व्यक्तिविशेष के द्वारा रचित होने से वे पौरुषेय हैं। और पारमार्थिक-दृष्टि से चिन्तन किया जाय तो सत्यतथ्य एक है। विभिन्न देश काल व व्यक्ति की दृष्टि से उस सत्य तथ्य का आविर्भाव विभिन्न रूपों में होता है। उन सभी आविर्भावों में एक ही चिरन्तन सत्य अनुस्यूत है। जितने भी अतीत काल में तीर्थंकर हुये हैं, उन्होंने आचार की दृष्टि से अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, सामायिक, समभाव, विश्ववात्सल्य और विश्वमैत्री का पावन संदेश दिया है। विचार की दृष्टि से स्याद्वाद, अनेकान्तवाद या विभज्यवाद का उपदेश दिया। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से जैन आगम अनादि अनन्त हैं। समवायाङ्ग में यह स्पष्ट कहा है—द्वादशांग गणिपिटक कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, यह भी नहीं है कि कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, यह भी नहीं है। वह था, है, और होगा। वह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।[3] आचार्य संघदास गणि ने बृहत्कल्पभाष्य में लिखा है कि तीर्थंकरों के केवलज्ञान में किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता। जैसा केवलज्ञान भगवान् ऋषभदेव को था, वैसा ही केवलज्ञान श्रमण-भगवान् महावीर को भी था। इसलिये उनके उपदेशों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं होता।[4] आचारांग में भी कहा गया है कि जो अरिहंत हो गये हैं, जो अभी वर्तमान में हैं और जो भविष्य में होंगे, उन सभी का एक ही उपदेश है कि किसी भी प्राण भूत, जीव और सत्त्व की हत्या मत करो। उनके ऊपर अपनी सत्ता मत जमाओ। उन्हें गुलाम मत बनाओ, उन्हें कष्ट मत दो। यही धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, और विवेकी पुरुषों ने बताया है।[5] इस प्रकार जैन आगमों में पौरुषेयता और अपौरुषेयता का सुन्दर समन्वय हुआ है।[6]

---

१. यद् भगवद्भिः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः परमर्षिभिरर्हद्भिस्तत्स्वाभाव्यात् परमशुभस्य च प्रवचनप्रतिष्ठापनफलस्य तीर्थंकरनामकर्मणोऽनुभावादुक्तं, भगवच्छिष्यैरतिशयवद्भिस्तदतिशयवाग्बुद्धिसम्पन्नैर्गणधरैर्दृब्धं तदङ्गप्रविष्टम्।
—तत्त्वार्थ स्वोपज्ञ भाष्य १।२०

२. तवनियमनाणरुक्खं आरुढो केवली अमियनाणी।
तो मुयइ नाणवुट्ठिं भवियजणविवोहट्ठाए॥
तं बुद्धिमएण पडेण गणहरा गिण्हिउं निरवसेसं। —आवश्यक निर्युक्ति, गा. ८९-९०

३. क—समवायांग-द्वादशांग परिचय
ख—नन्दीसूत्र, सूत्र ५७

४. बृहत्कल्पभाष्य २०२—२०३

५. (क) आचारांग अ. ४ सूत्र १३६
(ख) सूत्रकृतांग २।१।१५, २।२।४१

६. अन्ययोगव्यच्छेदिका ५ आ. हेमचन्द्र

यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि तीर्थंकर अर्थ रूप मे उपदेश प्रदान करते है, वे अर्थ के प्रणेता हैं। उस अर्थ को सूत्रबद्ध करने वाले गणधर[7] या स्थविर है। नन्दीसूत्र आदि मे आगमों के प्रणेता तीर्थंकर कहे हैं।[8] जैन आगमों का प्रामाण्य गणधरकृत होने से ही नही, अपितु अर्थ के प्रणेता तीर्थंकर की वीतरागता और सर्वार्थसाक्षात्कारित्व के कारण है। गणधर केवल द्वादशांगी की रचना करते है। अंगबाह्य आगम की रचना करने वाले स्थविर हैं।[9] अंगबाह्य आगम का प्रामाण्य स्वतन्त्र भाव से नही, अपितु गणधरप्रणीत आगम के साथ अविसंवाद होने से है।

आगम की सुरक्षा में बाधाएं

वैदिक विज्ञों ने वेदों को सुरक्षित रखने का प्रबल प्रयास किया है, वह अपूर्व है, अनूठा है। जिसके फलस्वरूप ही आज वेद पूर्ण रूप से प्राप्त हो रहे हैं। आज भी शताधिक ऐसे ब्राह्मण वेदपाठी हैं, जो प्रारम्भ से प्रान्त तक वेदों का शुद्ध-पाठ कर सकते है। उन्हें वेद पुस्तक की भी आवश्यकता नही होती ! जिस प्रकार ब्राह्मण पण्डितों ने वेदों की सुरक्षा की, उस तरह आगम और त्रिपिटकों की सुरक्षा जैन और बौद्ध विज्ञ नहीं कर सके। जिसके अनेक कारण हैं। उसमें मुख्य कारण यह है कि पिता की ओर से पुत्र को वेद विरासत के रूप में मिलते रहे हैं। पिता अपने पुत्र को बाल्यकाल से ही वेदों को पढ़ाता था। उसके शुद्ध उच्चारण का ध्यान रखता था। शब्दों में कहीं भी परिवर्तन न हो, इस का पूर्ण लक्ष्य था। जिससे शब्द-परम्परा की दृष्टि से वेद पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे। किन्तु अर्थ की उपेक्षा होने से वेदों की अर्थ-परम्परा में एकरूपता नही रह पाई, वेदों की परम्परा वंशपरम्परा की दृष्टि से अबाध गति से चल रही थी। वेदों के अध्ययन के लिये ऐसे अनेक विद्याकेन्द्र थे जहाँ पर केवल वेद ही सिखाये जाते थे। वेदों के अध्ययन और अध्यापन का अधिकारी केवल ब्राह्मण वर्ग था। ब्राह्मण के लिये यह आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य था कि वह जीवन के प्रारम्भ में वेदों का गहराई से अध्ययन करे। वेदों का बिना अध्ययन किये ब्राह्मण वर्ग का समाज में कोई भी स्थान नहीं था। वेदाध्ययन ही उस के लिये सर्वस्व था। अनेक प्रकार के क्रियाकाण्डों में वैदिक सूक्तों का उपयोग होता था। वेदों को लिखने और लिखाने में भी किसी भी प्रकार की बाधा नहीं थी। ऐसे अनेक कारण थे, जिनसे वेद सुरक्षित रह सके, किन्तु जैन आगम पिता की धरोहर के रूप में पुत्र को कभी नहीं मिले। दीक्षा ग्रहण करने के बाद गुरु अपने शिष्यों को आगम पढ़ाता था। ब्राह्मण पण्डितों को अपना सुशिक्षित पुत्र मिलना कठिन नहीं था। जबकि जैन श्रमणों को सुयोग्य शिष्य मिलना उतना सरल नहीं था। श्रुतज्ञान की दृष्टि से शिष्य का मेधावी और जिज्ञासु होना आवश्यक था। उसके अभाव में मन्दबुद्धि व आलसी शिष्य यदि श्रमण होता तो वह भी श्रुत का अधिकारी था। ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये चारों ही वर्ण वाले बिना किसी संकोच के जैन श्रमण बन सकते थे। जैन श्रमणों की आचार-संहिता का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट है कि दिन और रात्रि के आठ प्रहरों के चार प्रहर स्वाध्याय के लिये आवश्यक माने गये, पर प्रत्येक श्रमण के लिये यह अनिवार्य नहीं था कि वह इतने समय तक आगमों का अध्ययन करे ही ! यह भी अनिवार्य नहीं था, कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये सभी आगमों का गहराई से अध्ययन आवश्यक ही है। मोक्ष प्राप्त करने के लिये जीवाजीव का परिज्ञान आवश्यक था। सामायिक आदि आवश्यक क्रियाओं से मोक्ष सुलभ था। इसलिये सभी श्रमण और

---

७. आवश्यक निर्युक्ति १९२

८. नन्दीसूत्र ४०

९. (क) विशेषावश्यक भाष्य गा. ५५०
   (ख) बृहत्कल्पभाष्य गा. १४४
   (ग) तत्त्वार्थभाष्य १-२०
   (घ) सर्वार्थसिद्धि ११२०

श्रमणियाँ आगमों के अध्ययन की ओर इतने उत्सुक नहीं थे। जो विशिष्ट मेधावी व जिज्ञासु श्रमण-श्रमणियाँ थीं, जिनके अन्तर्मन में ज्ञान और विज्ञान के प्रति रस था, जो आगमसाहित्य के तलछट तक पहुँचना चाहते थे, वे ही आगमों का गहराई से अध्ययन, चिन्तन, मनन और अनुशीलन करते थे। यही कारण है कि आगमसाहित्य में श्रमण और श्रमणियों के अध्ययन के तीन स्तर मिलते है। कितने ही श्रमण सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन करते थे।[10] कितने ही पूर्वों का अध्ययन करते थे।[11] और कितने ही द्वादश अंगों को पढ़ते थे।[12] इस प्रकार अध्ययन के क्रम में अन्तर था। शेष श्रमण-श्रमणियाँ आध्यात्मिक साधना में ही अपने आप को लगाये रखते थे। जैन श्रमणों के लिये जैनाचार का पालन करना सर्वस्व था। जब कि ब्राह्मणों के लिये वेदाध्ययन करना सर्वस्व था। वेदों का अध्ययन गृहस्थ जीवन के लिए भी उपयोगी था। जब कि जैन आगमों का अध्ययन केवल जैन श्रमणों के लिये उपयोगी था, और वह भी पूर्ण रूप से साधना के लिए नहीं! साधना की दृष्टि से चार अनुयोगों में चरण-करणानुयोग ही विशेष रूप से आवश्यक था। शेष तीन अनुयोग उतने आवश्यक नहीं थे। इसलिये साधना करने वाले श्रमण-श्रमणियों की उधर उपेक्षा होना स्वाभाविक था। द्रव्यानुयोग आदि कठिन भी थे। मेधावी सन्त-सतियाँ ही उनका गहराई से अध्ययन करती थीं, शेष नहीं।

हम पूर्व ही बता चुके हैं कि तीर्थंकर भगवान् अर्थ की प्ररूपणा करते हैं,। सूत्र रूप में संकलन गणधर करते हैं। एतदर्थ ही आगमों में यत्र-तत्र 'तस्स णं अयमट्ठे पण्णत्ते' वाक्य का प्रयोग हुआ है। जिस तीर्थंकर के जितने गणधर होते हैं, वे सभी एक ही अर्थ को आधार बनाकर सूत्र की रचना करते हैं। कल्पसूत्र की स्थविरावली में श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर बताये हैं।[13] उपाध्याय विनयविजय जी ने गण का अर्थ एक वाचना ग्रहण करने वाला 'श्रमणसमुदाय' किया है।[14] और गण का दूसरा अर्थ स्वयं का शिष्य समुदाय भी है। कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने[15] यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक गण की सूत्रवाचना पृथक्-पृथक् थी। भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर और नौ गण थे। नौ गणधर श्रमण भगवान् महावीर के सामने ही मोक्ष पधार चुके थे और भगवान् महावीर के परिनिर्वाण होते ही गणधर-इन्द्रभूति गौतम केवली बन चुके थे। सभी

---

१०. (क) सामाइयमाइयाइं एकारस अंगाइं अहिज्जइ—अंतगड ६, वर्ग अ. १५.
(ख) अन्तगड ८ वर्ग अ- १
(ग) भगवतीसूत्र २।१।९
(घ) ज्ञाताधर्म अ. १२। ज्ञाता २।१

११. (क) चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जइ—अन्तगड ३ वर्ग. अ. ९
(ख) अन्तगड ३ वर्ग, अ. १
(ग) भगवतीसूत्र ११-११-४३२। १७-२-६१७

१२. अन्तगड वर्ग-४, अ. १

१३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा इक्कारस गणहरा हुत्था। —कल्पसूत्र

१४. एक वाचनिको यतिसमुदायो गण:कल्पसूत्र —सुबोधिका वृत्ति

१५. एवं रचयतां तेषां सप्तानां गणधारिणाम्।
परस्मरमजायन्त विभिन्ना: सूत्रवाचना:॥
अकम्पिता:ऽचल भ्रात्रो: श्रीमेतार्यप्रभासयो:।
परस्परमजायन्त सदृक्षा एव वाचना:॥
श्रीवीरनाथस्य गणधरेष्वेकादशस्वपि।
द्वयोर्द्वयोर्वाचनयो: साम्यादासन् गणा नव॥
—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र-पर्व १०, सर्ग ५, श्लोक १७३ से १७५

ने अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित किये थे क्योंकि वे सभी गणधरों में दीर्घजीवी थे।[१६] आज जो द्वादशांगी विद्यमान है वह गणधर सुधर्मा की रचना है।

कितने ही तार्किक आचार्यों का यह अभिमत है कि प्रत्येक गणधर की भाषा पृथक् थी। इसलिए द्वादशांगी भी पृथक् होनी चाहिये। सेनप्रश्न ग्रन्थ में तो आचार्य ने[१७] यह प्रश्न उठाया है कि भिन्न-भिन्न वाचना होने से गणधरों में साम्भोगिक सम्बन्ध था या नहीं? और उन की समाचारी में एकरूपता थी या नहीं? आचार्य ने स्वयं ही उत्तर दिया है कि वाचना-भेद होने से संभव है समाचारी में भेद हो! और कथंचित् साम्भोगिक सम्बन्ध हो। बहुत से आधुनिक चिन्तक भी इस बात को स्वीकार करते हैं। आगमतत्त्ववेत्ता मुनि जम्बूविजय जी ने[१८] आवश्यकचूर्णि को आधार बनाकर इस तर्क का खण्डन किया है। उन्होंने तर्क दिया है कि यदि पृथक्-पृथक् वाचनाओं के आधार पर द्वादशांगी पृथक्-पृथक् थी तो श्वेताम्बर और दिगम्बर के प्राचीन ग्रन्थों में इस का उल्लेख होना चाहिये था। पर वह नहीं है। उदाहरण के रूप में एक कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के एक ही प्रकार के पाठ्यग्रन्थ होते हैं। पढ़ाने की सुविधा की दृष्टि से एक ही विषय को पृथक्-पृथक् अध्यापक पढ़ाते हैं। पृथक्-पृथक् अध्यापकों के पढ़ाने से विषय कोई पृथक् नहीं हो जाता। वैसे ही पृथक्-पृथक् गणधरों के पढ़ाने से सूत्ररचना भी पृथक् नहीं होती। आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने[१९] भी यह स्पष्ट लिखा है कि दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् सभी गणधर एकान्त स्थान में जाकर सूत्र की रचना करते हैं। उन सभी के अक्षर, पद और व्यञ्जन समान होते हैं। इस से भी यह स्पष्ट है कि सभी गणधरों की भाषा एक सदृश थी। उसमें पृथकता नहीं थी। पर जिस प्राकृत भाषा में सूत्र रचे गये थे, वह लोकभाषा थी। इसलिए उस में एकरूपता निरन्तर सुरक्षित नहीं रह सकती थी। प्राकृतभाषा की प्रकृति के अनुसार शब्दों के रूपों में संस्कृत के समान एकरूपता नहीं है। समवायांग[२०] आदि में यह स्पष्ट कहा गया है कि भगवान् महावीर ने अर्धमागधी भाषा में उपदेश दिया। पर अर्धमागधी भाषा भी उसी रूप में सुरक्षित नहीं रह सकी। आज जो जैन आगम हमारे सामने हैं, उनकी भाषा महाराष्ट्रीय प्राकृत है। दिगम्बर परम्परा के आगम भी अर्धमागधी में न होकर शौरसेनी प्रधान हैं, आगमों के अनेक पाठान्तर भी प्राप्त होते हैं।[२१]

जैन श्रमणों की आचारसंहिता प्रारम्भ से ही अत्यन्त कठिन रही है। अपरिग्रह उनका जीवनव्रत है। अपरिग्रह महाव्रत की सुरक्षा के लिये आगमों को लिपिवद्ध करना, उन्होंने उचित नहीं समझा। लिपि का परिज्ञान भगवान् ऋषभदेव के समय से ही चल रहा था।[२२] प्रज्ञापना सूत्र में अठारह लिपियों का उल्लेख मिलता है।[२३]

---

१६. सामिस्स जीवंते णव कालगता, जो य कालं करेति सो सुधम्मसामिस्स गणं देति, इंदभूती सुधम्मो य सामिम्मि परिनिव्वुए परिनिव्वुता। —आवश्यकचूर्णि, पृ-३३९

१७. तीर्थकरगणभृतां मिथो भिन्नवाचनत्वेऽपि साम्भोगिकत्वं भवति न वा? तथा सामाचार्यादिकृतो भेदो भवति न वा? इति प्रश्ने उत्तरम्—गणभृतां परस्परं वाचनाभेदेन सामाचार्या अपि कियान् भेदः सम्भाव्यते, तद्भेदे च कथञ्चिद् साम्भोगिकत्वमपि सम्भाव्यते। —सेनप्रश्न, उल्लास २, प्रश्न ८१

१८. सूयगडंगसुत्त-प्रस्तावना, पृष्ठ-२८-३०

१९. जदा य गणहरा सव्वे पव्वजिता ताहे किर एगनिसज्जाए एगारस अंगाणि चोद्दसहिं चोद्दस पुव्वाणि, एवं ता भगवता अत्थो कहितो, ताहे भगवंतो एगपासे सुत्तं करे (रें) ति तं अक्खरेहिं पदेहिं वंजणेहि समं, पच्छा सामी जस्स जत्तियो गणो तस्स तत्तियं अणुजाणति। आतीय सुहम्मं करेति, तस्स महल्लमाउयं, एत्तो तित्थं होहिति त्ति"। —आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ-३३७

२०. समवायांगसूत्र, पृष्ठ-७

२१. देखिये—पुण्यविजयजी व जम्बूविजयजी द्वारा सम्पादित जैन आगम ग्रन्थमाला के टिप्पण।

२२. (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिवृत्ति (ख) कल्पसूत्र १९५

२३. प्रज्ञापनासूत्र, पद-१ ख—त्रिषष्टि—१-२-९६३

उस में "पोत्थार" शब्द व्यवहृत हुआ है। जिसका अर्थ "लिपिकार" है।[२४] पुस्तक लेखन को आर्य शिल्प कहा है। अर्धमागधी भाषा एवं ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करने वाले लेखक को भाषाआर्य कहा है।[२५] स्थानाङ्ग में गण्डी[२६] कच्छवी, मुष्टि, संपुटफलक, सुपाटिका इन पाँच प्रकार की पुस्तकों का उल्लेख है। दशवैकालिक हारिभद्रीया वृत्ति में[२७] प्राचीन आचार्यों के मन्तव्यों का उल्लेख करते हुये इन पुस्तकों का विवरण प्रस्तुत किया है। निशीथचूर्णि में इन का वर्णन है।[२८] टीकाकार ने पुस्तक का अर्थ ताडपत्र, सम्पुट का संचय और कर्म का अर्थ मषि और लेखनी किया है। जैन साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध-साहित्य में भी लेखनकला का विवरण मिलता है।[२९] वैदिक वाङ्मय में भी लेखनकला-सम्बन्धी अनेक उद्धरण हैं। सम्राट् सिकन्दर के सेनापति निआर्क्स ने भारत यात्रा के अपने संस्मरणों में लिखा है कि भारतवासी लोग कागज-निर्माण करते थे।[३०] सारांश यह है—अतीत काल से ही भारत में लिखने की परम्परा थी। किन्तु जैन आगम लिखे नहीं जाते थे। आत्मार्थी श्रमणों ने देखा—यदि हम लिखेंगे तो हमारा अपरिग्रह महाव्रत पूर्णरूप से सुरक्षित नहीं रह सकेगा, हम पुस्तकों को कहाँ पर रखेंगे, आदि विविध दृष्टियों से चिन्तन कर उसे असंयम का कारण माना।[३१] पर जब यह देखा गया कि काल की काली-छाया से विक्षुब्ध अनेक श्रुतधर श्रमण स्वर्गवासी बन गये। श्रुत की धारा छिन्न-भिन्न होने लगी। तब मूर्धन्य मनीषियों ने चिन्तन किया। यदि श्रुतसाहित्य नहीं लिखा गया तो एक दिन वह भी आ सकता है कि जब सम्पूर्ण श्रुत-साहित्य नष्ट हो जाए। अतः उन्होंने श्रुत-साहित्य को लिखने का निर्णय लिया। जब श्रुत साहित्य को लिखने का निर्णय लिया गया, तब तक बहुत सारा श्रुत विस्मृत हो चुका था। पहले आचार्यों ने जिस श्रुत-लेखन को असंयम का कारण माना था, उसे ही संयम का कारण मानकर पुस्तक को भी संयम का कारण माना।[३२] यदि ऐसा नहीं मानते, तो रहा-सहा श्रुत भी नष्ट हो जाता। श्रुत-रक्षा के लिये अनेक अपवाद भी निर्मित किये गये। जैन श्रमणों की संख्या ब्राह्मण-विज्ञ और बौद्ध-भिक्षुओं की अपेक्षा कम थी। इस कारण से भी श्रुत-साहित्य की सुरक्षा में बाधा उपस्थित हुयी। इस तरह जैन आगम साहित्य के विच्छिन्न होने के अनेक कारण रहे हैं।

बौद्धसाहित्य के इतिहास का पर्यवेक्षण करने पर यह स्पष्ट होता है कि तथागत बुद्ध के उपदेश को व्यवस्थित करने के लिये अनेक बार संगीतियाँ हुईं। उसी तरह भगवान् महावीर के पावन उपदेशों को पुनः सुव्यवस्थित करने के लिये आगमों की वाचनाएँ हुईं। आर्य जम्बू के बाद दस बातों का विच्छेद हो गया था।[३३]

---

२४. प्रज्ञापनासूत्र पद—१

२५. प्रज्ञापनासूत्र पद—१

२६. (क) स्थानांगसूत्र, स्थान—५ (ख) वृहत्कल्पभाष्य ३। ३, ८, २२
(ग) आउटलाइन्स आफ पैलियोग्राफी, जर्नल आफ यूनिवर्सिटी आफ बोम्बे, जिल्द ६, भा. ६ पृ. ८७, एच. आर. कापडिया तथा ओझा, वही पृ. ४—५६

२७. दशवैकालिक हारिभद्रीयावृत्ति पत्र—२५

२८. निशीथ चूर्णि उ. १२

२९. राइस डैविड्स : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ. १०८

३०. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ. २

३१. क—दशवैकालिक चूर्णि, पृ. २१
ख—वृहत्कल्पनिर्युक्ति, १४७ उ. ७३
ग—विशेषशतक—४९

३२. कालं पुण पडुच्च चरणकरणट्ठा अवोच्छित्ति निवित्तं च गेण्हमाणस्स पोतथए संजमो भवइ !
—दशवैकालिक चूर्णि, पृ. २१

३३. गणपरमोहि-पुलाए, आहारग-खवग-उवसमे कप्पे।
संजय-तिय केवलि-सिज्झणाण जंबुम्मि वुच्छिन्ना॥
—विशेषावश्यकभाष्य, २५९३

श्रुत की अविरल धारा आर्य भद्रबाहु तक चलती रही। वे अन्तिम श्रुतकेवली थे। जैन शासन को वीर निर्वाण की द्वितीय शताब्दी के मध्य दुष्काल के भयंकर वात्याचक्र से जूझना पड़ा था। अनुकूल-भिक्षा के अभाव में अनेक श्रुतसम्पन्न मुनि कालकवलित हो गये थे। दुष्काल समाप्त होने पर विच्छिन्न श्रुत को संकलित करने के लिये वीर-निर्वाण १६० (वि. पू. ३१०) के लगभग श्रमण-संघ पाटलिपुत्र (मगध) में एकत्रित हुआ। आचार्य स्थूलिभद्र इस महासम्मेलन के व्यवस्थापक थे। इस सम्मेलन का सर्वप्रथम उल्लेख "तित्थोगाली"[३४] में प्राप्त होता है। उसके बाद के बने हुये अनेक ग्रन्थों में भी इस वाचना का उल्लेख है।[३५] मगध जैन श्रमणों की प्रचारभूमि थी, किन्तु द्वादशवर्षीय दुष्काल के कारण श्रमणों को मगध छोड़ कर समुद्र-किनारे जाना पड़ा।[३६] श्रमण किस समुद्र तट पर पहुँचे इस का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। कितने ही विज्ञों ने दक्षिणी समुद्र तट पर जाने की कल्पना की है। पर मगध के सन्निकट बंगोपसागर (बंगाल की खाड़ी) भी है। जिस के किनारे उड़ीसा, अवस्थित है। वह स्थान भी हो सकता है। दुष्काल के कारण सन्निकट होने से श्रमण संघ का वहाँ जाना संभव लगता है। पाटलिपुत्र में सभी श्रमणों ने मिलकर एक-दूसरे से पूछकर प्रामाणिक रूप से ग्यारह अंगों का पूर्णत: संकलन उस समय किया।[३७] पाटलिपुत्र में जितने भी श्रमण एकत्रित हुए थे, उनमे दृष्टिवाद का परिज्ञान किसी श्रमण को नहीं था। दृष्टिवाद जैन आगमों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग था, जिसका संकलन किये विना अंगों की वाचना अपूर्ण थी। दृष्टिवाद के एकमात्र ज्ञाता भद्रबाहु थे। आवश्यक-चूर्णि के अनुसार वे उस समय नेपाल की पहाड़ियों में महाप्राण ध्यान की साधना कर रहे थे।[३८] संघ ने आगम-निधि की सुरक्षा के लिये श्रमणसंघाटक को नेपाल प्रेषित किया। श्रमणों ने भद्रबाहु से प्रार्थना की—'आप वहाँ पधार कर श्रमणों को दृष्टिवाद की ज्ञान-राशि से लाभान्वित करें।' भद्रबाहु ने साधना में विक्षेप समझते हुए प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया।

"तित्थोगालिय" के अनुसार भद्रबाहु ने आचार्य होते हुये भी संघ के दायित्व से उदासीन होकर कहा—'श्रमणो! मेरा आयुष्यकाल कम रह गया है! इतने स्वल्प समय में मैं दृष्टिवाद की वाचना देने में असमर्थ हूँ। आत्महितार्थ मैं अपने आपको समर्पित कर चुका हूँ। अतः संघ को वाचना देकर क्या करना है?'[३९] इस निराशाजनक उत्तर से श्रमण उत्तप्त हुए। उन्होंने पुनः निवेदन किया—'संघ की प्रार्थना को अस्वीकार करने पर आपको क्या प्रायश्चित्त लेना होगा।'[४०]

---

३४. तित्थोगाली गाथा—७१४—श्वेताम्बर जैन संघ, जालोर

३५. क—आवश्यकचूर्णि भाग—२, पृ. १८७,
ख—परिशिष्ट पर्व—सर्ग-९, श्लो. ५५—६९।

३६. आवश्यकचूर्णि, भाग दो, पत्र १८७।

३७. अह बारस वारिसिओ, जाओ कूरो कयाइ दुक्कालो।
सव्वो साहुसमूहो, तओ गओ कत्थई कोई॥ २२॥
तदुवरमे सो पुणरवि, पाडिले पुत्ते समागओ विहिया।
संघेणं सुयविसया चिंता किं कस्स अत्थिति॥ २३॥
जं जस्स आसि पासे उद्देसज्झयणगाइ तं सव्वं।
संघडियं एक्कारसंगाइं तहेव ठवियाइं॥ २४॥
—उपदेशमाला, विशेषवृत्ति पत्रांक २४१

३८. नेपालवत्तणीए य भद्दबाहुसामी अच्छंति चौद्दसपुव्वी।
—आवश्यक चूर्णि भाग-२, पृ. १८७

३९. सो भणिए एव भाणिए, असिट्ठ किलिट्ठएणं वयणेणं।
न हु ता अहं समत्थो, इण्हिं मे वायणं दाउं॥
अप्पट्ठे आउत्तस्स मज्झ किं वायणाए कायव्वं।
एवं च भणियमेत्ता रोसस्स वसं गया साहू॥
—तित्थोगाली—गाथा २८, २९

४०. भवं भणंतस्स तुहं को दंडो होई तं मुणसु।
—तित्थोगाली

आवश्यकचूर्णि[४१] के अनुसार आये हुये श्रमण-संघाटक ने कोई नया प्रश्न उपस्थित नहीं किया, वह पुन: लौट गया। उसने सारा संवाद संघ को कहा। संघ अत्यधिक विक्षुब्ध हुआ। क्योंकि भद्रबाहु के अतिरिक्त दृष्टिवाद की वाचना देने में कोई भी समर्थ नहीं था। पुन: संघ ने श्रमण-संघाटक को नेपाल भेजा। उन्होंने निवेदन किया—भगवन्! संघ की आज्ञा की अवज्ञा करने वाले को क्या प्रायश्चित्त आता है?[४२] प्रश्न सुनकर भद्रबाहु गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा—जो संघ का अपमान करता है, वह श्रुतनिह्नव है। संघ से बहिष्कृत करने योग्य है। श्रमण-संघाटक ने पुन: निवेदन किया—आपने भी संघ की बात को अस्वीकृत किया है, आप भी इस दण्ड के योग्य हैं? "तित्थोगालिय" में प्रस्तुत प्रसंग पर श्रमण-संघ के द्वारा बारह प्रकार के संभोग विच्छेद का भी वर्णन है।

आचार्य भाद्रबाहु को अपनी भूल का परिज्ञान हो गया। उन्होंने मधुर शब्दों में कहा—मैं संघ की आज्ञा का सम्मान करता हूँ। इस समय मैं महाप्राण की ध्यान-साधना में संलग्न हूँ। प्रस्तुत ध्यान साधना से चौदह पूर्व की ज्ञान राशि का मुहूर्त मात्र में परावर्तन कर लेने की क्षमता आ जाती है। अभी इसकी सम्पन्नता में कुछ समय अवशेष है। अत: मैं आने में असमर्थ हूँ। संघ प्रतिभासम्पन्न श्रमणों को यहाँ प्रेषित करे। मैं उन्हें साधना के साथ ही वाचना देने का प्रयास करूंगा।

"तित्थोगालिय"[४३] के अनुसार भद्रबाहु ने कहा—मैं एक अपवाद के साथ वाचना देने को तैय्यार हूँ। आत्महितार्थ, वाचना ग्रहणार्थ आने वाले श्रमण-संघ में बाधा उत्पन्न नहीं करूंगा। और वे भी मेरे कार्य में बाधक न बनें! कायोत्सर्ग सम्पन्न कर भिक्षार्थ आते-जाते समय और रात्रि में शयन-काल के पूर्व उन्हें वाचना प्रदान करता रहूँगा। "तथास्तु" कह वन्दन कर वहाँ से वे प्रस्थित हुये। संघ को संवाद सुनाया।

संघ ने महान् मेधावी उद्यमी स्थूलभद्र आदि को दृष्टिवाद के अध्ययन के लिये प्रेषित किया। परिशिष्ट पर्व[४४] के अनुसार पांच सौ शिक्षार्थी नेपाल पहुंचे थे। तित्थोगालिय"[४५] के अनुसार श्रमणों की संख्या पंन्द्रह सौ थी। इनमें पांच सौ श्रमण शिक्षार्थी थे और हजार श्रमण परिचर्या करने वाले थे। आचार्य भद्रबाहु प्रतिदिन उन्हें सात वाचना प्रदान करते थे। एक वाचना भिक्षाचर्या से आते समय, तीन वाचना विकाल वेला में और तीन वाचना प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि में प्रदान करते थे।

दृष्टिवाद अत्यन्त कठिन था। वाचना प्रदान करने की गति मन्द थी। मेधावी मुनियों का धैर्य ध्वस्त हो गया। चार सौ निन्यानवे शिक्षार्थी मुनि वाचना-क्रम को छोड़कर चले गये। स्थूलभद्र मुनि निष्ठा से अध्ययन

---

४१. तं ते भणंति दुक्कालनिमित्तं महापाणं पविट्ठोमि तो न जाति वायणं दातुं।

—आवश्यकचूर्णि, भाग-२, पत्रांक १८७

४२. तेहिं अण्णोवि संघाडओ विसज्जितो, जो संघस्स आणं—अतिक्कमति तस्स को दंडो? तो अक्खाई उग्घाडिज्जई। ते भणंति मा उग्घाडेह, पेसेह मेहावी, सत्त पडिपुच्छगाणि देमि।

—आवश्यकचूर्णि, भाग-२, पत्रांक १८७

४३. एक्केण कारणेणं, इच्छं भे वायणं दाउं
अप्पट्ठे आउत्तो, परमट्ठे सुट्ठु दाइं उज्जुत्तो।
न वि अहं वायरियव्वो, अहंपि नवि वायरिस्सामि॥
पारियकाउस्सग्गो, भत्तट्ठित्तो व अहव सेज्जाए।
नितो व अइंतो वा एवं भे वायणं दाहं॥ —तित्थोगाली गाथा—३५, ३६।

४४. परिशिष्ट पर्व, सर्ग ९ गाथा-७०

४५. तित्थोगाली—

में लगे रहे। आठ वर्ष में उन्होंने आठ पूर्वों का अध्ययन किया।[४६] आठ वर्ष के लम्बे समय में भद्रबाहु और स्थूलभद्र के बीच किसी भी प्रकार की वार्ता का उल्लेख नहीं मिलता। एक दिन स्थूलभद्र ने भद्रबाहु से पूछा—'तुम्हें भिक्षा एवं स्वाध्याय योग में किसी भी प्रकार का कोई कष्ट तो नहीं है?' स्थूलभद्र ने निवेदन किया—'मुझे कोई कष्ट नहीं है। पर जिज्ञासा है कि मैंने आठ वर्षों में कितना अध्ययन किया है? और कितना अवशिष्ट है?' भद्रबाहु ने कहा—'वत्स! सर्सों जितना ग्रहण किया है, और मेरु जितना बाकी है। दृष्टिवाद के अगाध ज्ञान सागर से अभी तक तुम बिन्दुमात्र पाये हो।' स्थूलभद्र ने पुनः निवेदन किया 'भगवन्! मैं हतोत्साह नहीं हूं, किन्तु मुझे वाचना का लाभ स्वल्प मिल रहा है। आपके जीवन का सन्ध्याकाल है, इतने कम समय में वह विराट् ज्ञान-राशि कैसे प्राप्त कर सकूँगा!' भद्रबाहु ने आश्वासन देते हुये कहा—'वत्स! चिन्ता मत करो। मेरा साधना-काल सम्पन्न हो रहा है। अब मैं तुम्हें यथेष्ट वाचना दूंगा।' उन्होंने दो वस्तु कम दशपूर्वों की वाचना ग्रहण कर ली। तित्थोगालिय के अनुसार दशपूर्व पूर्ण कर लिये थे। और ग्यारहवें पूर्व का अध्ययन चल रहा था। साधनाकाल सम्पन्न होने पर आर्यभद्रबाहु स्थूलभद्र के साथ पाटलिपुत्र आये यक्षा आदि साध्वियां वन्दनार्थ गई। स्थूलभद्र ने चमत्कार प्रदर्शित किया।[४७] जब वाचना ग्रहण करने के लिये स्थूलभद्र भद्रबाहु के पास पहुंचे तो उन्होंने कहा—'वत्स! ज्ञान का अहं विकास में बाधक है। तुम ने शक्ति का प्रदर्शन कर अपने आप को अपात्र सिद्ध कर दिया है। अब तुम आगे की वाचना के लिये योग्य नहीं हो।' स्थूलभद्र को अपनी प्रमादवृत्ति पर अत्यधिक अनुताप हुआ। चरणों में गिर कर क्षमायाचना की और कहा—पुनः अपराध का आवर्त्तन नहीं होगा। आप मुझे वाचना प्रदान करें। प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। स्थूलभद्र ने निवेदन किया—मैं पर-रूप का निर्माण नहीं करूंगा, अवशिष्ट चार पूर्व ज्ञान देकर मेरी इच्छा पूर्ण करें।[४८] स्थूलभद्र के अत्यन्त आग्रह पर चार पूर्वों का ज्ञान इस अपवाद के साथ देना स्वीकार किया कि अवशिष्ट चार पूर्वों का ज्ञान आगे किसी को भी नही दे सकेगा। दशपूर्व तक उन्होंने अर्थ से ग्रहण किया था और शेष चार पूर्वो का ज्ञान शब्दशः प्राप्त किया था। उपदेशमाला विशेष वृत्ति, आवश्यक-चूर्णि, तित्थोगालिय, परिशिष्टपर्व, प्रभृति ग्रन्थों में कही संक्षेप में और कहीं विस्तार से यह वर्णन है।

दिगम्बर साहित्य के उल्लेखानुसार दुष्काल के समय बारह सहस्र श्रमणों से परिवृत होकर भद्रबाहु उज्जैन होते हुये दक्षिण की ओर बढ़े और सम्राट् चन्द्रगुप्त को दीक्षा दी। कितने ही दिगम्बर विज्ञों का यह मानना है कि दुष्काल के कारण श्रमणसंघ में मतभेद उत्पन्न हुआ। दिगम्बर श्रमण को निहार कर एक श्राविका का गर्भपात हो गया। जिससे आगे चलकर अर्ध फालग सम्प्रदाय प्रचलित हुआ।[४९] अकाल के कारण वस्त्र-प्रथा का प्रारम्भ हुआ। यह कथन साम्प्रदायिक मान्यता को लिये हुये है। पर ऐतिहासिक सत्य-तथ्य को लिये हुये नहीं है। कितने दिगम्बर मूर्धन्य मनीषियों का यह मानना है कि श्वेताम्बर आगमों की संरचना शिथिलाचार के संपोषण हेतु की गयी है। यह भी सर्वथा निराधार कल्पना है। क्योंकि श्वेताम्बर आगमों के नाम दिगम्बर मान्य ग्रन्थों में भी प्राप्त हैं।[५०]

---

४६. श्रीभद्रबाहुपादान्ते स्थूलभद्रो महामतिः।
पूर्वाणामष्टकं वर्षैरपाठीदष्टभिर्भृशम्॥ —परिशिष्ट पर्व, सर्ग—९

४७. दृष्ट्वा सिंहं तु भीतास्ताः सूरिमेत्य व्यजिज्ञपन्।
ज्येष्ठार्यं जग्रसे सिंहस्तत्र सोऽद्यापि तिष्ठति॥ —परिशिष्ट पर्व सर्ग-९, श्लोक-८१

४८. अह भणइ थूलभद्दो अण्णं रूवं न किंचि काहामो।
इच्छामि जाणिउं जे, अहं चत्तारि पुव्वाइं॥ —तित्थोगाली पइन्ना-८००

४९. जैन साहत्य का इतिहास पूर्व पीठिका संघभेद प्रकरण पृ. ३७५ —पण्डित कैलाशचन्दजी शास्त्री, वाराणसी

५०. (क) षट्खण्डागम, भाग-१, पृ. ९६
(ख) सर्वार्थसिद्धि, पूज्यपाद १-२०
(ग) तत्त्वार्थराजवार्त्तिक, अकलंक १-२०
(घ) गोम्मटसार, जीवकाण्ड, नेमिचन्द्र, पृ. १३४

आवश्यकचूर्णि[४१] के अनुसार आये हुये श्रमण-संघाटक ने कोई नया प्रश्न उपस्थित नहीं किया, वह पुनः लौट गया। उसने सारा संवाद संघ को कहा। संघ अत्यधिक विक्षुब्ध हुआ। क्योंकि भद्रबाहु के अतिरिक्त दृष्टिवाद की वाचना देने में कोई भी समर्थ नहीं था। पुनः संघ ने श्रमण-संघाटक को नेपाल भेजा। उन्होंने निवेदन किया—भगवन्! संघ की आज्ञा की अवज्ञा करने वाले को क्या प्रायश्चित्त आता है?[४२] प्रश्न सुनकर भद्रबाहु गम्भीर हो गये। उन्होंने कहा—जो संघ का अपमान करता है, वह श्रुतनिह्नव है। संघ से बहिष्कृत करने योग्य है। श्रमण-संघाटक ने पुनः निवेदन किया—आपने भी संघ की बात को अस्वीकृत किया है, आप भी इस दण्ड के योग्य हैं? "तित्थोगालिय" में प्रस्तुत प्रसंग पर श्रमण-संघ के द्वारा बारह प्रकार के संभोग विच्छेद का भी वर्णन है।

आचार्य भाद्रबाहु को अपनी भूल का परिज्ञान हो गया। उन्होंने मधुर शब्दों में कहा—मैं संघ की आज्ञा का सम्मान करता हूँ। इस समय मैं महाप्राण की ध्यान-साधना में संलग्न हूँ। प्रस्तुत ध्यान साधना से चौदह पूर्व की ज्ञान राशि का मुहूर्त मात्र में परावर्तन कर लेने की क्षमता आ जाती है। अभी इसकी सम्पन्नता में कुछ समय अवशेष है। अतः मैं आने में असमर्थ हूँ। संघ प्रतिभासम्पन्न श्रमणों को यहाँ प्रेषित करे। मैं उन्हें साधना के साथ ही वाचना देने का प्रयास करूंगा।

"तित्थोगालिय"[४३] के अनुसार भद्रबाहु ने कहा—मैं एक अपवाद के साथ वाचना देने को तैय्यार हूँ। आत्महितार्थ, वाचना ग्रहणार्थ आने वाले श्रमण-संघ में बाधा उत्पन्न नहीं करूंगा। और वे भी मेरे कार्य में बाधक न बनें! कायोत्सर्ग सम्पन्न कर भिक्षार्थ आते-जाते समय और रात्रि में शयन-काल के पूर्व उन्हें वाचना प्रदान करता रहूँगा। "तथास्तु" कह वन्दन कर वहाँ से वे प्रस्थित हुये। संघ को संवाद सुनाया।

संघ ने महान् मेधावी उद्यमी स्थूलभद्र आदि को दृष्टिवाद के अध्ययन के लिये प्रेषित किया। परिशिष्ट पर्व[४४] के अनुसार पांच सौ शिक्षार्थी नेपाल पहुंचे थे। तित्थोगालिय"[४५] के अनुसार श्रमणों की संख्या पंन्द्रह सौ थी। इनमें पांच सौ श्रमण शिक्षार्थी थे और हजार श्रमण परिचर्या करने वाले थे। आचार्य भद्रबाहु प्रतिदिन उन्हें सात वाचना प्रदान करते थे। एक वाचना भिक्षाचर्या से आते समय, तीन वाचना विकाल वेला में और तीन वाचना प्रतिक्रमण के पश्चात् रात्रि में प्रदान करते थे।

दृष्टिवाद अत्यन्त कठिन था। वाचना प्रदान करने की गति मन्द थी। मेधावी मुनियों का धैर्य ध्वस्त हो गया। चार सौ निन्यानवे शिक्षार्थी मुनि वाचना-क्रम को छोड़कर चले गये। स्थूलभद्र मुनि निष्ठा से अध्ययन

में लगे रहे। आठ वर्ष में उन्होंने आठ पूर्वो का अध्ययन किया।[४६] आठ वर्ष के लम्बे समय में भद्रबाहु और स्थूलभद्र के बीच किसी भी प्रकार की वार्ता का उल्लेख नहीं मिलता। एक दिन स्थूलभद्र से भद्रबाहु ने पूछा—'तुम्हें भिक्षा एवं स्वाध्याय योग में किसी भी प्रकार का कोई कष्ट तो नहीं है?' स्थूलभद्र ने निवेदन किया—'मुझे कोई कष्ट नहीं है। पर जिज्ञासा है कि मैंने आठ वर्षों में कितना अध्ययन किया है? और कितना अवशिष्ट है?' भद्रबाहु ने कहा—'वत्स! सरसों जितना ग्रहण किया है, और मेरु जितना बाकी है। दृष्टिवाद के अगाध ज्ञान सागर से अभी तक तुम बिन्दुमात्र पाये हो।' स्थूलभद्र ने पुनः निवेदन किया 'भगवन्! मैं हतोत्साह नहीं हूं, किन्तु मुझे वाचना का लाभ स्वल्प मिल रहा है। आपके जीवन का सन्ध्याकाल है, इतने कम समय में वह विराट् ज्ञान-राशि कैसे प्राप्त कर सकूंगा!' भद्रबाहु ने आश्वासन देते हुये कहा—'वत्स! चिन्ता मत करो। मेरा साधना-काल सम्पन्न हो रहा है। अब मैं तुम्हें यथेष्ट वाचना दूंगा।' उन्होंने दो वस्तु कम दशपूर्वो की वाचना ग्रहण कर ली। तित्थोगालिय के अनुसार दशपूर्व पूर्ण कर लिये थे। और ग्यारहवें पूर्व का अध्ययन चल रहा था। साधनाकाल सम्पन्न होने पर आर्यभद्रबाहु स्थूलभद्र के साथ पाटलिपुत्र आये यक्षा आदि साध्वियाँ वन्दनार्थ गई। स्थूलभद्र ने चमत्कार प्रदर्शित किया।[४७] जब वाचना ग्रहण करने के लिये स्थूलभद्र भद्रबाहु के पास पहुंचे तो उन्होंने कहा—'वत्स! ज्ञान का अहं विकास में बाधक है। तुम ने शक्ति का प्रदर्शन कर अपने आप को अपात्र सिद्ध कर दिया है। अब तुम आगे की वाचना के लिये योग्य नहीं हो।' स्थूलभद्र को अपनी प्रमादवृत्ति पर अत्यधिक अनुताप हुआ। चरणों में गिर कर क्षमायाचना की और कहा—पुनः अपराध का आवर्तन नहीं होगा। आप मुझे वाचना प्रदान करें। प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। स्थूलभद्र ने निवेदन किया—मैं पर-रूप का निर्माण नहीं करूंगा, अवशिष्ट चार पूर्व ज्ञान देकर मेरी इच्छा पूर्ण करें।[४८] स्थूलभद्र के अत्यन्त आग्रह पर चार पूर्वो का ज्ञान इस अपवाद के साथ देना स्वीकार किया कि अवशिष्ट चार पूर्वो का ज्ञान आगे किसी को भी नहीं दे सकेगा। दशपूर्व तक उन्होंने अर्थ से ग्रहण किया था और शेष चार पूर्वो का ज्ञान शब्दशः प्राप्त किया था। उपदेशमाला विशेष वृत्ति, आवश्यक-चूर्णि, तित्थोगालिय, परिशिष्टपर्व, प्रभृति ग्रन्थों में कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार से यह वर्णन है।

दिगम्बर साहित्य के उल्लेखानुसार दुष्काल के समय बारह सहस्र श्रमणों से परिवृत होकर भद्रबाहु उज्जैन होते हुये दक्षिण की ओर बढ़े और सम्राट् चन्द्रगुप्त को दीक्षा दी। कितने ही दिगम्बर विज्ञों का यह मानना है कि दुष्काल के कारण श्रमणसंघ में मतभेद उत्पन्न हुआ। दिगम्बर श्रमण को निहार कर एक श्राविका का गर्भपात हो गया। जिससे आगे चलकर अर्ध फालग सम्प्रदाय प्रचलित हुआ।[४९] अकाल के कारण वस्त्र-प्रथा का प्रारम्भ हुआ। यह कथन साम्प्रदायिक मान्यता को लिये हुये है। पर ऐतिहासिक सत्य-तथ्य को लिये हुये नहीं है। कितने दिगम्बर मूर्धन्य मनीषियों का यह मानना है कि श्वेताम्बर आगमों की संरचना शिथिलाचार के संपोषण हेतु की गयी है। यह भी सर्वथा निराधार कल्पना है। क्योंकि श्वेताम्बर आगमों के नाम दिगम्बर मान्य ग्रन्थों में भी प्राप्त हैं।[५०]

---

४६. श्रीभद्रबाहुपादान्ते स्थूलभद्रो महामतिः।
पूर्वाणामष्टकं वर्षैरपाठीदष्टभिर्भृशम्॥ —परिशिष्ट पर्व, सर्ग—९

४७. दृष्ट्वा सिंहं तु भीतास्ताः सूरिमेत्य व्यजिज्ञपन्।
ज्येष्ठार्यं जग्रसे सिंहस्तत्र सोऽद्यापि तिष्ठति॥ —परिशिष्ट पर्व सर्ग-९, श्लोक-८१

४८. अह भणइ थूलभद्दो अण्णं रूवं न किंचि काहामो।
इच्छामि जाणिउं जे, अहं चत्तारि पुव्वाइं॥ —तित्थोगाली पइन्ना-८००

४९. जैन साहत्य का इतिहास पूर्व पीठिका संघभेद प्रकरण पृ. ३७५ —पण्डित कैलाशचन्दजी शास्त्री, वाराणसी

५०. (क) षट्खण्डागम, भाग-१, पृ. ९६
(ख) सर्वार्थसिद्धि, पूज्यपाद १-२०
(ग) तत्त्वार्थराजवार्तिक, अकलंक १-२०
(घ) गोम्मटसार, जीवकाण्ड, नेमिचन्द्र, पृ. १३४

यहाँ पर यह भी स्मरण रखना होगा कि नेपाल जाकर योग की साधना करने वाले भद्रबाहु और उज्जैन होकर दक्षिण की ओर बढ़ने वाले भद्रबाहु, एक व्यक्ति नहीं हो सकते। दोनों के लिये चतुर्दशपूर्वी लिखा गया है। यह उचित नहीं है। इतिहास के लम्बे अन्तराल में इस तथ्य को दोनों परम्पराएं स्वीकार करती हैं। प्रथम भद्रबाहु का समय वीर-निर्वाण की द्वितीय शताब्दी है तो द्वितीय भद्रबाहु का समय वीर-निर्वाण की पाँचवीं शताब्दी के पश्चात् है। प्रथम भद्रबाहु चतुर्दश पूर्वी और छेद सूत्रों के रचनाकार थे।[५१] द्वितीय भद्रबाहु वराहमिहिर के भ्राता थे। राजा चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध प्रथम भद्रबाहु के साथ न होकर द्वितीय भद्रबाहु के साथ है। क्योंकि प्रथम भद्रबाहु का स्वर्गवासकाल वीरनिर्वाण एक सौ सत्तर (१७०) के लगभग है। एक सौ पचास वर्षीय नन्द साम्राज्य का उच्छेद और मौर्य शासन का प्रारम्भ वीर-निर्वाण दो सौ दस के आस-पास है। द्वितीय भद्रबाहु के साथ चन्द्रगुप्त अवन्ती का था, पाटलिपुत्र का नहीं। आचार्य देवसेन ने चन्द्रगुप्त को दीक्षा देने वाले भद्रबाहु के लिये श्रुतकेवली विशेषण नहीं दिया है किन्तु निमित्तज्ञानी विशेषण दिया है।[५२] श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार भी वे निमित्तवेत्ता थे। सम्राट चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्नों का फलादेश बताने वाले द्वितीय भद्रबाहु ही होने चाहिये। मौर्यशासक चन्द्र-गुप्त और अवन्ती के शासक चन्द्रगुप्त और दोनों भद्रबाहु की जीवन घटनाओं में एक सदृश नाम होने से संक्रमण हो गया है।

दिगम्बर परम्परा का अभिमत है कि दोनों भद्रबाहु समकालीन थे। एक भद्रबाहु ने नेपाल में महाप्राण नामक ध्यान-साधना की तो दूसरे भद्रबाहु ने राजा चन्द्रगुप्त के साथ दक्षिण भारत की यात्रा की। पर इस कथन के पीछे परिपुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। हम पूर्व बता चुके हैं कि दुष्काल की विकट-वेला में भद्रबाहु विशाल श्रमण संघ के साथ बंगाल में समुद्र के किनारे रहे।[५३] संभव है उसी प्रदेश में उन्होंने छेदसूत्रों की रचना की हो। उसके पश्चात् महाप्राणायाम की ध्यान साधना के लिये वे नेपाल पहुँचे हों! और दुष्काल के पूर्ण होने पर भी वे नेपाल में ही रहे हों। डाक्टर हर्मन जेकॉबी ने भी भद्रबाहु के नेपाल जाने की घटना का समर्थन किया है।

तित्थोगालिय के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि पाटलिपुत्र में अंग-साहित्य की वाचना हुई थी। वहाँ अंगबाह्य आगमों की वाचना के सम्बन्ध में कुछ भी निर्देश नहीं है। इस का अर्थ यह नहीं है कि अंगबाह्य आगम उस समय नहीं थे। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार अंगबाह्य आगमों की रचनाएं पाटलिपुत्र की वाचना के पहले हो चुकी थीं। क्यों कि वीर-निर्वाण (६४) चौसठ में शय्यम्भव जैन श्रमण बने थे। और वीर-निर्वाण ७५ में वे आचार्य पद से अलंकृत हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र अल्पायुष्य मुनि मणक के लिए आत्मप्रवाद से दशवैकालिक सूत्र का निर्यूहण किया।[५४] वीर-निर्वाण के ८० वर्ष बाद इस महत्त्वपूर्ण सूत्र की रचना हुई थी। स्वयं भद्रबाहु ने भी छेदसूत्रों की रचनाएँ की थीं, जो उस समय विद्यमान थे। पर इन ग्रन्थों की वाचना के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं है। पण्डित श्री दलसुख मालवणिया का अभिमत है कि आगम या श्रुत उस युग में अंग-ग्रन्थों तक ही सीमित था। बाद में चलकर श्रुतसाहित्य का विस्तार हुआ। और आचार्यकृत क्रमशः आगम की कोटि में रखा गया।[५५]

---

५१. वंदामि भद्दबाहुं पाईणं चरियं सगलसुयनाणिं।
सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारे॥ —दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्ति—गाथा-१

५२. आसि उज्जेणीणयरे, आयरियो भद्दबाहुणामेण।
जाणियं सुणिमित्तधरो भणियो संघो णियो तेण—भावसंग्रह

५३ इतश्च तस्मिन् दुष्काले-कराले कालरात्रिवत्।
निर्वाहार्थं साधुसंघस्तीरं नीरनिधेर्ययौ॥ —परिशिष्ट पर्व-सर्ग ९ श्लोक-५५

५४. सिद्धान्तसारमुद्धृत्याचार्यः शय्यम्भवस्तदा।
दशवैकालिकं नाम, श्रुतस्कन्धमुदाहरत्॥ —परिशिष्ट पर्व-सर्ग-५ श्लोक ८५

५५. (क) जैन दर्शन का आदिकाल पृष्ठ ६-पं. दलसुख मालवणिया (ख) आगम युग का जैन दर्शन-पृष्ठ २७

पाटलिपुत्र की वाचना के सम्बन्ध में दिगम्बर प्राचीन साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं है। यद्यपि दोनों ही परम्पराएं भद्रबाहु को अपना आराध्य मानती हैं। आचार्य भद्रबाहु के शासनकाल में दो विभिन्न दिशाओं में बढ़ती हुई श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा के आचार्यों की नामशृङ्खला एक केन्द्र पर आ पहुँची थी। अब पुनः वह शृङ्खला विशृङ्खलित हो गयी थी।

द्वितीय वाचना

आगमसंकलन का द्वितीय प्रयास वीर-निर्वाण ३०० से ३३० के बीच हुआ। सम्राट् खारवेल उड़ीसा प्रान्त के महाप्रतापी शासक थे। उन का अपर नाम "महामेघवाहन" था। इन्होंने अपने समय में एक वृहद् जैन सम्मेलन का आयोजन किया था, जिसमें अनेक जैन भिक्षु, आचार्य, विद्वान्, तथा विशिष्ट उपासक सम्मिलित हुए थे। सम्राट खारवेल को उनके कार्यों की प्रशस्ति के रूप में "धम्मराज" "भिक्खुराज" "खेमराज" जैसे विशिष्ट शब्दों से सम्बोधित किया गया है। हाथी गुफा (उड़ीसा) के शिलालेख में इस सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन है। हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार महामेघवाहन, भिक्षुराज खारवेल सम्राट् ने कुमारी पर्वत पर एक श्रमण सम्मेलन का आयोजन किया था। प्रस्तुत सम्मेलन मे महागिरि-परम्परा के वलिस्सह, बौद्धिलिङ्ग, देवाचार्य, धर्मसेनाचार्य, नक्षत्राचार्य, प्रभृति दो सौ जिनकल्पतुल्य उत्कृष्ट साधना करने वाले श्रमण तथा आर्य सुस्थित, आर्य सुप्रतिवुद्ध, उमास्वाति, श्यामाचार्य, प्रभृति तीन सौ स्थविरकल्पी श्रमण थे। आर्या पोइणी प्रभृति ३०० साध्वियाँ, भिखुराय, चूर्णक, सेलक, प्रभृति ७०० श्रमणोपासक और पूर्णमित्रा प्रभृति ७०० उपासिकाएँ विद्यमान थीं।

वलिस्सह, उमास्वाति, श्यामाचार्य प्रभृति स्थविर श्रमणों ने सम्राट् खारवेल की प्रार्थना को सन्मान देकर सुधर्मा-रचित द्वादशांगी का संकलन किया। उसे भोजपत्र, ताडपत्र, और वल्कल पर लिपिवद्ध कराकर आगम वाचना के ऐतिहासिक-पृष्ठों में एक नवीन अध्याय जोड़ा। प्रस्तुत-वाचना भुवनेश्वर के निकट कुमारगिरि-पर्वत पर जो वर्तमान में खण्डगिरि, उदयगिरि पर्वत के नाम से विश्रुत है, वहां हुई थी, जहाँ पर अनेक जैन गुफाएं हैं। जो कलिंग नरेश खारवेल महामेघवाहन के धार्मिक-जीवन की परिचायिका है। इस सम्मेलन में आर्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध दोनों सहोदर भी उपस्थित थे। कलिंगाधिप भिक्षुराज ने इन दोनों का विशेष सम्मान किया था।[५४] हिमवन्त थेरावली के अतिरिक्त अन्य किसी जैन ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में उल्लेख नहीं है। खण्डगिरि और उदयगिरि में इस सम्बन्ध में जो विस्तृत लेख उत्कीर्ण है, उससे स्पष्ट परिज्ञात होता है कि उन्होंने आगम-वाचना के लिये सम्मेलन किया था।[५५]

तृतीय वाचना

आगमों को संकलित करने का तृतीय प्रयास वीर-निर्वाण ८२७ से ८४० के मध्य हुआ। वीर-निर्वाण की नवमी शताब्दी में पुनः द्वादश वर्षीय दुष्काल से श्रुत-विनाश का भीषण आघात जैन शासन को लगा। श्रमण-जीवन की मर्यादा के अनुकूल आहार की प्राप्ति अत्यन्त कठिन हो गयी। बहुत-से श्रुतसम्पन्न श्रमण काल

---

५८. सुट्ठियसुपडिबुद्धे, अज्जे दुन्ने वि ते नमंसामि।
भिक्खुराय कलिगाहिवेण सम्माणिए जिट्ठे॥
—हिमवंत स्थविरावली, गा. १०

५५. क—जर्नल आफ दी विहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी,
भाग १३, पृ. ३३६
ख—जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग १, पृ. ८२
ग—जैनधर्म के प्रभावक आचार्य, पृ. १०-११-साध्वी संघमित्रा

के अंक में समागये। सूत्रार्थग्रहण, परावर्त्तन के अभाव में श्रुत-सरिता सूखने लगी। अति विषम स्थिति थी। बहुत सारे मुनि सुदूर प्रदेशों में विहरण करने के लिये प्रस्थित हो चुके थे।

दुष्काल की परिसमाप्ति के पश्चात् मथुरा में श्रमण सम्मेलन हुआ। प्रस्तुत सम्मेलन का नेतृत्व आचार्य स्कन्दिल ने संभाला।[५६] श्रुतसम्पन्न श्रमणों की उपस्थिति से सम्मेलन में चार चाँद लग गये। प्रस्तुत सम्मेलन में मधुमित्र, गन्धहस्ति, प्रभृति १५० श्रमण उपस्थित थे। मधुमित्र और स्कन्दिल ये दोनों आचार्य आचार्यसिंह के शिष्य थे। आचार्य गन्धहस्ती मधुमित्र के शिष्य थे। इनका वैदुष्य उत्कृष्ट था। अनेक विद्वान् श्रमणों के स्मृतपाठों के आधार पर आगम-श्रुत का संकलन हुआ था। आचार्य स्कन्दिल की प्रेरणा से गन्धहस्ती ने ग्यारह अंगों का विवरण लिखा। मथुरा के ओसवाल वंशज सुश्रावक ओसालक ने गन्धहस्ती-विवरण सहित सूत्रों को ताडपत्र पर उट्टङ्कित करवा कर निर्ग्रन्थों को समर्पित किये। आचार्य गन्धहस्ती को ब्रह्मदीपिक शाखा में मुकुटमणि माना गया है।

प्रभावकचरित के अनुसार आचार्य स्कन्दिल जैन शासन रूपी नन्दनवन में कल्पवृक्ष के समान हैं। समग्र श्रुतानुयोग को अंकुरित करने में महामेघ के समान थे। चिन्तामणि के समान वे इष्टवस्तु के प्रदाता थे।[५७]

यह आगमवाचना मथुरा में होने से माथुरी वाचना कहलायी। आचार्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में होने से स्कन्दिली वाचना के नाम से इसे अभिहित किया गया। जिनदास गणि महत्तर ने[५८] यह भी लिखा है कि दुष्काल के क्रूर आघात से अनुयोगधर मुनियों में केवल एक स्कन्दिल ही बच पाये थे। उन्होंने मथुरा में अनुयोग का प्रवर्तन किया था। अतः यह वाचना स्कन्दिली नाम से विश्रुत हुई।

प्रस्तुत वाचना में भी पाटलिपुत्र की वाचना की तरह केवल अंग सूत्रों की ही वाचना हुई। क्योंकि नन्दीसूत्र की चूर्णि[५९] में अंगसूत्रों के लिये कालिक शब्द व्यवहृत हुआ है। अंगबाह्य आगमों की वाचना या संकलना का इस समय भी प्रयास हुआ हो, ऐसा पुष्ट प्रमाण नहीं है। पाटलिपुत्र में जो अंगों की वाचना हुई थी उसे ही पुनः व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया था। नन्दीसूत्र के[६०] अनुसार जो वर्तमान में आगम-विद्यमान हैं वे माथुरी वाचना के अनुसार हैं। पहले जो वाचना हुई थी, वह पाटलिपुत्र में हुई थी, जो विहार में था। उस समय विहार जैनों का केन्द्र रहा था। किन्तु माथुरी वाचना के समय विहार से हटकर उत्तर प्रदेश केन्द्र हो गया था। मथुरा से ही कुछ श्रमण दक्षिण की ओर आगे बढ़े थे। जिसका सूचन हमें दक्षिण में विश्रुत माथुरी संघ के अस्तित्व से प्राप्त होता है।[६१]

---

५६. इत्थ दूसहदुब्भिक्खे दुवालसवारिसिए नियत्ते सयलसंघं मेलिअ. आगमाणुओगो पवत्तिओ खंदिलायरियेण
—विविध तीर्थकल्प—पृ. १९

५७. पारिजातोऽपारिजातो जैनशासननन्दने।
सर्वश्रुतानुयोगद्रु-कन्दकन्दलनाम्बुदः॥
विद्याधरवराम्नाये चिन्तामणिरिवेष्टदः।
आसीच्छ्रीस्कन्दिलाचार्यः पादलिप्तप्रभोः कुले॥
—प्रभावकचरित, पृ. ५४

५८. अण्णे भणंति जहा-सुत्तं ण णट्ठं, तम्मि दुब्भिक्खकाले जे अण्णे पहाणा अणुओगधरा ते विणट्ठा, एगे खंदिलायरिए संथरे, तेण मधुराए अणुओगो पुणो साधूणं पवत्तितो त्ति मधुरा वायणा भण्णति।
—नन्दीचूर्णि, गा-३२, पृ. ९

५९. अहवा कालियं आयारादि सुत्तं तदुवदेसेणं सण्णी भण्णति।
—नन्दीचूर्णि पृ. ४६

६०. जेसि इमो अणुओगो, पयरइ अज्जावि अड्ढभरहम्मि।
बहुनगरनिग्गयजसो ते वंदे खंदिलायरिए—नन्दीसूत्र॥ गा. ३२

६१. क—नन्दीचूर्णि पृ. ९
ख—नन्दीसूत्र, गाथा-३३, मलयगिरि वृत्ति-पृ. ५१

नन्दीसूत्र की चूर्णि और मलयगिरि वृत्ति के अनुसार यह माना जाता है कि दुर्भिक्ष के समय श्रुतज्ञान कुछ भी नष्ट नहीं हुआ था। केवल आचार्य स्कन्दिल के अतिरिक्त शेष अनुयोगधर श्रमण स्वर्गस्थ हो गये थे। एतदर्थ आचार्य स्कन्दिल ने पुनः अनुयोग का प्रवर्तन किया, जिससे सम्पूर्ण अनुयोग स्कन्दिल-सम्बन्धी माना गया।

चतुर्थ वाचना

जिस समय उत्तर-पूर्व और मध्य भारत में विचरण करनेवाले श्रमणों का सम्मेलन मथुरा मे हुआ था, उसी समय दक्षिण और पश्चिम में विचरण करने वाले श्रमणों की एक वाचना वीरनिर्वाण संवत् ८२७ से ८४० के आस-पास वल्लभी में आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुई। इसे 'वल्लभीवाचना' या 'नागार्जुनीय-वाचना' की संज्ञा मिली। इस वाचना का उल्लेख भद्रेश्वर रचित कहावली ग्रन्थ में मिलता है, जो आचार्य हरिभद्र के बाद हुये हैं।[६२] स्मृति के आधार पर सूत्र-संकलना होने के कारण वाचनाभेद रह जाना स्वाभाविक था।[६३] पण्डित दलसुख मालवणिया ने[६४] प्रस्तुत वाचना के सम्बन्ध मे लिखा है—"कुछ चूर्णियों में नागार्जुन के नाम से पाठान्तर मिलते हैं। पण्णवणा जैसे अंगबाह्य सूत्र में भी पाठान्तर का निर्देश है। अतएव अनुमान किया गया कि नागार्जुन ने भी वाचना की होगी।..........किन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मौजूदा अंग आगम माथुरीवाचनानुसारी हैं, यह तथ्य है। अन्यथा पाठान्तरों में स्कन्दिल के पाठान्तरों का भी निर्देश मिलता।[६५] अंग और अन्य अंगबाह्य ग्रन्थों की व्यक्तिगत रूप से कई वाचनाएँ होनी चाहिये थीं। क्योंकि आचारांग आदि आगम साहित्य की चूर्णियों में जो पाठ मिलते हैं उनसे भिन्न पाठ टीकाओं में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। जिससे यह तो सिद्ध है कि पाटलिपुत्र की वाचना के पश्चात् समय-समय पर मूर्धन्य मनीषी आचार्यों के द्वारा वाचनाएँ होती रही हैं।[६६] उदाहरण के रूप में हम प्रश्नव्याकरण को ले सकते हैं। समवायाङ्ग में प्रश्नव्याकरण का जो परिचय दिया गया है, वर्त्तमान में उसका वह स्वरूप नही है। आचार्य श्री अभयदेव ने प्रश्नव्याकरण की टीका में लिखा है कि अतीत काल में वे सारी विद्याएँ इसमें थीं।[६७] इसी तरह अन्तकृत्दशा, में भी दश अध्ययन नहीं हैं। टीकाकार ने स्पष्टीकरण में यह सूचित किया है कि प्रथम वर्ग में दश अध्ययन हैं।[६८] पर यह निश्चित है कि क्षत-विक्षत आगम-निधि का ठीक समय पर संकलन कर आचार्य नागार्जुन ने जैन शासन पर महान् उपकार किया है। इसीलिये आचार्य देववाचक ने बहुत ही भावपूर्ण शब्दों में नागार्जुन की स्तुति करते हुये लिखा है—मृदुता

---

६२. जैन दर्शन का आदिकाल, पृ. ७—पं. दलसुख मालवणिया

६३. इह हि स्कन्दिलाचार्यप्रवृत्तौ दुष्षमानुभावतो दुर्भिक्षप्रवृत्या साधूनां पठनगुणनादिकं सर्वमप्यनेशत्। ततो दुर्भिक्षातिक्रमे सुभिक्षप्रवृत्तौ द्वयोः संघयोर्मेलापकोऽभवत्। तद्यथा एको वल्लभ्यामेको मथुरायाम्। तत्र च सूत्रार्थसंघटने परस्परवाचनाभेदो जातः। विस्मृतयोर्हि सूत्रार्थयोः स्मृत्वा संघटने भवत्यवश्यवाचनाभेदो न काचिदनुपपत्तिः। —ज्योतिष्करण्डक टीका

६४. जैन दर्शन का आदिकाल—पृ. ७

६५. वीरनिर्वाण संवत् और जैन कालगणना, पृ. ११४ —गणिकल्याणविजय

६६. जैन दर्शन का आदिकाल, पृ. ७

६७. जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, पृ. १७० से १८५ —देवेन्द्रमुनि प्र. श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय-उदयपुर

६८. अन्तकृद्दशा, प्रस्तावना पृ. २१ से २४ तक —श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री

आदि गुणों से सम्पन्न, सामायिक श्रुतादि के ग्रहण से अथवा परम्परा से विकास की भूमिका पर क्रमशः आरोहणपूर्वक वाचकपद को प्राप्त ओघश्रुतसमाचारी में कुशल आचार्य नागार्जुन को मैं प्रणाम करता हूँ।[६९]

दोनों वाचनाओं का समय लगभग समान है। इसलिये सहज ही यह प्रश्न उद्‌बुद्ध होता है कि एक ही समय में दो-भिन्न-भिन्न स्थलों पर वाचनाएं क्यों आयोजित की गईं ? जो श्रमण वल्लभी में—एकत्र हुए थे वे मथुरा भी जा सकते थे। फिर क्यों नहीं गये ? उत्तर में कहा जा सकता है—उत्तर भारत और पश्चिम भारत के श्रमण संघ में किन्हीं कारणों से मतभेद रहा हो, उनका मथुरा की वाचना को समर्थन न रहा हो। उस वाचना की गति-विधि और कार्यक्रम की पद्धति व नेतृत्व में पश्चिम का श्रमणसंघ सहमत न हो ! यह भी संभव है कि माथुरी वाचना पूर्ण होने के बाद इस वाचना का प्रारम्भ हुआ हो। उनके अन्तर्मानस में यह विचार-लहरियाँ तरंगित हो रही हों कि मथुरा में आगम-संकलन का जो कार्य हुआ है, उस से हम अधिक श्रेष्ठतम कार्य करेंगे। संभव है इसी भावना से उत्प्रेरित होकर कालिक श्रुत के अतिरिक्त भी अंग-बाह्य व प्रकरणग्रन्थों का संकलन और आकलन किया गया हो। या सविस्तृत पाठ वाले स्थल अर्थ की दृष्टि से सुव्यवस्थित किये गये हों।

इस प्रकार अन्य भी अनेक संभावनाएं की जा सकती हैं। पर उन का निश्चित आधार नहीं है। यही कारण है कि माथुरी और वल्लभी वाचनाओं में कई स्थानों पर मतभेद हो गये। यदि दोनों श्रुतधर आचार्य परस्पर मिल कर विचार-विमर्श करते तो संभवतः वाचनाभेद मिटता। किन्तु परिताप है कि न वे वाचना के पूर्व मिले और न बाद में ही मिले। वाचनाभेद उनके स्वर्गस्थ होने बाद भी बना रहा, जिससे वृत्तिकारों को **'नागार्जुनीया पुनः एवं पठन्ति'** आदि वाक्यों का निर्देश करना पड़ा।

पञ्चम वाचना

वीर-निर्माण की दशवीं शताब्दी (९८० या ९९३ ई., सन् ४५४-४६६) में देवर्द्धि गणि क्षमा-श्रमण की अध्यक्षता में पुनः श्रमण-संघ एकत्रित हुआ। स्कन्दिल और नागार्जुन के पश्चात् दुष्काल ने हृदय को कम्पा देने वाले नाखूनी पंजे फैलाये ! अनेक श्रुतधर श्रमण काल-कवलित हो गये। श्रुत की महान् क्षति हुयी। दुष्काल परिसमाप्ति के बाद वल्लभी में पुनः जैन संघ सम्मिलित हुआ। देवर्द्धि गणि ग्यारह अंग और एक पूर्व से भी अधिक श्रुत के ज्ञाता थे। श्रमण-सम्मेलन में त्रुटित और अत्रुटित सभी आगमपाठों का स्मृति-सहयोग से संकलन हुआ। श्रुत को स्थायी रूप प्रदान करने के लिए उसे पुस्तकारूढ किया गया। आगम-लेखन का कार्य आर्यरक्षित के युग में अंश रूप से प्रारम्भ हो गया था। अनुयोगद्वार में द्रव्यश्रुत और भावश्रुत का उल्लेख है। पुस्तक लिखित श्रुत को द्रव्यश्रुत माना गया है।[७०]

आर्य स्कन्दिल और नागार्जुन के समय में भी आगमों को लिपिबद्ध किया गया था। ऐसा उल्लेख मिलता है।[७१] किन्तु देवर्द्धिगणि के कुशल नेतृत्व में आगमों का व्यवस्थित संकलन और लिपिकरण हुआ है, इसलिये

---

६९. (क) मिउमद्दवसंपण्णे अणुपुव्विं वायगत्तणं पत्ते।
ओहसुयसमायारे णागज्जुणवायए वंदे ॥
—नन्दीसूत्र-गाथा ३५

(ख) लाइफ इन ऐन्श्येंट इंडिया एज डेपिक्टेड इन दी जैन कैनन्स ! पृष्ठ—३२-३३
—(ला० इन ए० इ०) डा० जगदीशचन्द्र जैन बम्बई, १९४७

(ग) योगशास्त्र प्र. ३, पृ. २०७

७०. से किं तं······दव्वसुअं ? पत्तयपोत्थयलिहिअं
—अनुयोगद्वार सूत्र

७१. जिनवचनं च दुष्पमाकालवशादुच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भिर्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्य्यप्रभृतिभिः पुस्तकेपु न्यस्तम्।
—योगशास्त्र, प्रकाश ३, पत्र २०७

आगम-लेखन का श्रेय देवर्द्धिगणि को प्राप्त है। इस सन्दर्भ में एक प्रसिद्ध गाथा है कि वल्लभी नगरी में देवर्द्धिगणि प्रमुख श्रमण संघ ने वीर-निर्वाण ९८० में आगामों को पुस्तकारूढ किया था।

देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के समक्ष स्कन्दिली और नागार्जुनीय ये दोनों वाचनाएं थीं, नागार्जुनीय वाचना के प्रतिनिधि आचार्यकालक (चतुर्थ) थे। स्कन्दिली वाचना के प्रतिनिधि स्वयं देवर्द्धि गणि थे। हम पूर्व लिख चुके हैं आर्य स्कन्दिल और आर्य नागार्जुन दोनों का मिलन न होने से दोनों वाचनाओं में कुछ भेद था।[७३] देवर्द्धि गणि ने श्रुतसंकलन का कार्य बहुत ही तटस्थ नीति से किया। आचार्य स्कन्दिल की वाचना को प्रमुखता देकर नागार्जुनीय वाचना को पाठान्तर के रूप में स्वीकार कर अपने उदात्त मानस का परिचय दिया, जिससे जैनशासन विभक्त होने से बच गया। उनके भव्य प्रयत्न के कारण ही श्रुतनिधि आज तक सुरक्षित रह सकी।

आचार्य देवर्द्धि गणि ने आगमों को पुस्तकारूढ किया। यह बात बहुत ही स्पष्ट है। किन्तु उन्होंने किन-किन आगामों को पुस्तकारूढ किया? इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता। नन्दीसूत्र में श्रुतसाहित्य की लम्बी सूची है। किन्तु नन्दीसूत्र देवर्द्धि गणी की रचना नही है। उसके रचनाकार आचार्य देव वाचक हैं। यह बात नन्दीचूर्णि और टीका से स्पष्ट है।[७४] इस दृष्टि से नन्दी सूची में जो नाम आये हैं, वे सभी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के द्वारा लिपिबद्ध किये गये हों, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। पण्डित दलसुख मालवणिया[७५] का यह अभिमत है कि अंगसूत्रों को तो पुस्तकारूढ किया ही गया था और जितने अंगबाह्य ग्रन्थ, जो नन्दी से पूर्व हैं, वे पहले से ही पुस्तकारूढ होंगे। नन्दी की आगमसूची में ऐसे कुछ प्रकीर्णक ग्रन्थ हैं, जिनके रचयिता देवर्द्धिगणि के बाद के आचार्य हैं। सम्भव है उन ग्रन्थों को बाद में आगम की कोटि में रखा गया हो।

कितने ही विज्ञों का यह अभिमत है कि वल्लभी में सारे आगमों को व्यवस्थित रूप दिया गया। भगवान् महावीर के पश्चात् एक सहस्र वर्ष में जितनी भी मुख्य-मुख्य घटनाएँ घटित हुईं, उन सभी प्रमुख घटनाओं का समावेश यत्र-तत्र आगामों में किया गया। जहाँ-जहाँ पर समान आलापकों का बार-बार पुनरावर्त्तन होता था, उन आलापकों को संक्षिप्त कर एक दूसरे का पूर्तिसंकेत एक-दूसरे आगम में किया गया। जो वर्तमान में आगम उपलब्ध हैं, वे देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की वाचना के हैं। उसके पश्चात् उसमें परिवर्तन और परिवर्धन नहीं हुआ।[७६]

यह सहज ही जिज्ञासा उद्बुद्ध हो सकती है कि आगम-संकलना यदि एक ही आचार्य की है तो अनेक स्थानों पर विसंवाद क्यों है? उत्तर में निवेदन है कि सम्भव है उसके दो कारण हों। जो श्रमण उस समय विद्यमान थे उन्हें जो-जो आगम कण्ठस्थ थे उन्हीं का संकलन किया गया था। संकलनकर्त्ता को देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने एक ही बात दो भिन्न आगामों में भिन्न प्रकार से कही है, यह जानकर के भी उसमें हस्तक्षेप करना अपनी अनधिकार चेष्टा समझी हो! वे समझते थे कि सर्वज्ञ की वाणी में परिवर्तन करने से अनन्त संसार बढ़ सकता है। दूसरी बात यह भी हो सकती है—नौवीं शताब्दी में सम्पन्न हुई माथुरी और वल्लभी वाचना की परम्परा

---

७२. वलहीपुरम्मि नयरे, देवड्ढिपमुहेण समणसंघेण।
पुत्थइ आगमु लिहियो नवसय असीआओ विराओ॥

७३. परोप्परमसंपण्णमेलावा य तस्समयाओ खंदिल्लनागज्जुणायरिया कालं काउं देवलोगं गया। तेण तुल्लयाए वि तद्धुरियसिद्धंताणं जो संजाओ कथम (कहमवि) वायणा भेओ सो य न चालिओ पच्छिमेहिं।
—कहावली-२९८

७४. नन्दीसूत्र चूर्णि पृ. १३।

७५. जैनदर्शन का आदिकाल, पृ. ७

७६. दसवेआलियं, भूमिका, पृ. २७, आचार्य तुलसी

के जो श्रमण बचे थे, उन्हें जितना स्मृति में था, उतना ही देवर्द्धिगणि ने संकलन किया था, सम्भव है वे श्रमण बहुत सारे आलापक भूल हो गये हों, जिससे भी विसंवाद हुये हैं।[७७]

ज्योतिषकरण्ड की वृत्ति[७८] में यह प्रतिपादित किया गया है कि इस समय जो अनुयोगद्वार सूत्र उपलब्ध है, वह माथुरी वाचना का है। ज्योतिपकरण्ड ग्रन्थ के लेखक आचार्य वल्लभी वाचना की परम्परा के थे। यही कारण है कि अनुयोगद्वार और ज्योतिषकरण्ड के संख्यास्थानों में अन्तर है। अनुयोगद्वार में शीर्षप्रहेलिका की संख्या एक सौ छानवे (१९६) अंकों की है और ज्योतिपकरण्ड में शीर्षप्रहेलिका की संख्या २५० अंकों की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आगमों को व्यवस्थित करने के लिये समय-समय पर प्रयास किया गया है। व्याख्याक्रम और विषयगत वर्गीकरण की दृष्टि से आर्य रक्षित ने आगमों को चार भागों में विभक्त किया है—(१) चरणकरणानुयोग—कालिकश्रुत, (२) धर्मकथानुयोग—ऋषिभाषित उत्तराध्ययन आदि, (३) गणितानुयोग—सूर्यप्रज्ञप्ति आदि। (४) द्रव्यानुयोग—दृष्टिवाद या सूत्रकृत् आदि। प्रस्तुत वर्गीकरण विषय-सादृश्य की दृष्टि से है। व्याख्याक्रम की दृष्टि से आगमों के दो रूप हैं—(१) अपृथक्त्वानुयोग, (२) पृथक्त्वानुयोग। आर्य रक्षित से पहले अपृथक्त्वानुयोग प्रचलित था। उसमें प्रत्येक सूत्र का चरण-करण, धर्मकथा, गणित और द्रव्य दृष्टि से विश्लेषण किया जाता था। यह व्याख्या अत्यन्त ही जटिल थी। इस व्याख्या के लिये प्रकृष्ट प्रतिभा की आवश्यकता होती थी। आर्य रक्षित ने देखा—महामेधावी दुर्बलिका पुष्यमित्र जैसे—प्रतिभासम्पन्न शिष्य भी उसे स्मरण नहीं रख पा रहे हैं, तो मन्दबुद्धि वाले श्रमण उसे कैसे स्मरण रख सकेंगे! उन्होंने पृथक्त्वानुयोग का प्रवर्तन किया जिससे चरण-करण प्रभृति विषयों की दृष्टि से आगमों का विभाजन हुआ।[७९] जिनदासगणि महत्तर ने लिखा है कि अपृथक्त्वानुयोग के काल में प्रत्येक सूत्र का विवेचन चरण-करण आदि चार अनुयोगों तथा ७०० नयों से किया जाता था। पृथक्त्वानुयोग के काल में चारों अनुयोगों की व्याख्या पृथक्-पृथक् की जाने लगी।[८०]

नन्दीसूत्र में आगम साहित्य को अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य, इन दो भागों में विभक्त किया है।[८१] अंगबाह्य के आवश्यक, आवश्यकव्यतिरिक्त, कालिक, उत्कालिक आदि अनेक भेद-प्रभेद किये हैं। दिगम्बर परम्परा के तत्त्वार्थसूत्र की श्रुतसागरीय वृत्ति में भी अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य ये दो आगम के भेद किये हैं।[८२] अंगबाह्य आगमों की सूची में श्वेताम्बर और दिगम्बर में मतभेद हैं। किन्तु दोनों ही परम्पराओं में अंगप्रविष्ट के नाम एक सदृश मिलते हैं, जो प्रचलित हैं।

श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी, तेरापंथी सभी अंगसाहित्य को मूलभूत आगमग्रन्थ मानते हैं, और सभी की दृष्टि से दृष्टिवाद का सर्वप्रथम विच्छेद हुआ है। यह पूर्ण सत्य है कि जैन आगम साहित्य चिन्तन की

७७. सामाचारीशतक, आगम स्थापनाधिकार-३८

७८. (क) सामाचारीशतक आगम स्थापनाधिकार-३८
(ख) गच्छाचार-पत्र—३ से ४।

७९. अपुहुत्ते अणुओगो चत्तारि दुवार भासई एगो।
पहुत्ताणुओगकरणे ते अत्था तओ उ वुच्छिन्ना॥
देविंदवंदिएहिं महाणुभावेहिं रक्खिअ अज्जेहि।
जुगमासज्ज विहत्तो अणुओगो ता कओ चउहा॥ —आवश्यकनिर्युक्ति गाथा ७७३-७७४

८०. जत्थ एते चत्तारि अणुयोगा पिहप्पिहं वक्खाणिज्जंति पहुत्ताणुयोगो, अपुहुत्ताणुजोगो पुण जं एक्केक्कं सुत्तं एतेहिं चउहिं वि अणुयोगेहिं सत्तहिं णयसतेहिं वक्खाणिज्जंति॥ —सूत्रकृताङ्गचूर्णि पत्र—४

८१. तं समासओ दुविहं पण्णत्तं तं जहा—अंगपविट्ठं अंगबाहिरं च। —नन्दीसूत्र सूत्र—७७।

८२. तत्त्वार्थसूत्र, श्रुतसागरीय वृत्ति १।२०

गम्भीरता को लिये हुये है। तत्त्वज्ञान का सूक्ष्म व गहन विश्लेषण उस में है। पाश्चात्य चिन्तक डॉ. हर्मन जेकोबी ने अंगशास्त्र की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है। वे अंगशास्त्र को वस्तुतः जैनश्रुत मानते हैं, इसी के आधार पर उन्होंने जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध करने का प्रयास किया है, और वे उस में सफल भी हुए हैं।[८३]

'जैन आगम साहित्य-मनन और मीमांसा' ग्रन्थ में मैंने बहुत विस्तार के साथ आगम-साहित्य के हर पहलू पर चिन्तन किया है। विस्तारभय से उन सभी विषयों पर चिन्तन न कर उस ग्रन्थ को देखने का सूचन करता हूं। यहाँ अब हम स्थानांगसूत्र के सम्बन्ध में चिन्तन करेंगे।

स्थानाङ्ग—स्वरूप और परिचय

द्वादशांगी में स्थानांग का तृतीय स्थान है। यह शब्द 'स्थान' और 'अंग' इन दो शब्दों के मेल से निर्मित हुआ है। 'स्थान' शब्द अनेकार्थी है। आचार्य देववाचक[८४] ने और गुणधर[८५] ने लिखा है कि प्रस्तुत आगम में एक स्थान से लेकर दश स्थान तक जीव और पुद्गल के विविध भाव वर्णित हैं, इसलिये इस का नाम 'स्थान' रखा गया है। जिनदास गणि महत्तर ने[८६] लिखा है—जिसका स्वरूप स्थापित किया जाय व ज्ञापित किया जाय वह स्थान है। आचार्य हरिभद्र ने[८७] कहा है—जिस में जीवादि का व्यवस्थित रूप से प्रतिपादन किया जाता है, वह स्थान है। 'उपदेशमाला' में स्थान का अर्थ "मान" अर्थात् परिमाण दिया है। प्रस्तुत आगम में तत्त्वों के एक से लेकर दश तक संख्या वाले पदार्थों का उल्लेख है, अतः इसे 'स्थान' कहा गया है। स्थान शब्द का दूसरा अर्थ "उपयुक्त" भी है। इस में तत्त्वों का क्रम से उपयुक्त चुनाव किया गया है। स्थान शब्द का तृतीय अर्थ "विश्रान्तिस्थल" भी है, और अंग का सामान्य अर्थ "विभाग" है। इस में संख्याक्रम से जीव, पुद्गल, आदि की स्थापना की गई है। अतः इस का नाम 'स्थान' या 'स्थानाङ्ग' है।

आचार्य गुणधर[८८] ने स्थानाङ्ग का परिचय प्रदान करते हुये लिखा है कि स्थानाङ्ग में संग्रहनय की दृष्टि से जीव की एकता का निरूपण है। तो व्यवहार नय की दृष्टि से उस की भिन्नता का भी प्रतिपादन किया गया है। संग्रहनय की अपेक्षा चैतन्य गुण की दृष्टि से जीव एक है। व्यवहार नय की दृष्टि से प्रत्येक जीव अलग-अलग है। ज्ञान और दर्शन की दृष्टि से वह दो भागों में विभक्त है। इस तरह स्थानाङ्ग सूत्र में संख्या की दृष्टि से जीव, अजीव, प्रभृति द्रव्यों की स्थापना की गयी है। पर्याय की दृष्टि से एक तत्त्व अनन्त भागों में विभक्त होता है। और द्रव्य की दृष्टि से वे अनन्त भाग एक तत्त्व में परिणत हो जाते हैं। इस प्रकार भेद और अभेद की दृष्टि से व्याख्या, स्थानाङ्ग में है।

---

८३. जैनसूत्राज्—भाग १ प्रस्तावना पृष्ठ—९

८४. ठाणेणं एगाइयाए एगुत्तरियाए वुड्ढीए दसट्ठाणगविवड्ढियाणं भावाणं परूवणा आघविज्जति

—नन्दीसूत्र, सूत्र ८२

८५. ठाणं णाम जीवपुद्गलादीणामेगादिएगुत्तरकमेण ठाणाणि वण्णेदि। —कसायपाहुड, भाग १, पृ. १२३

८६. 'ठाविज्जंति' त्ति स्वरूपतः स्थाप्यंते प्रज्ञाप्यंत इत्यर्थः। —नन्दीसूत्रचूर्णि, पृष्ठ ६४

८७. तिष्ठन्त्यस्मिन् प्रतिपाद्यतया जीवादय इति स्थानम्·······स्थानेन स्थाने वा जीवाः स्थाप्यन्ते, व्यवस्थित-स्वरूपप्रतिपादनयेति हृदयम्। —नन्दीसूत्र हरिभद्रीया वृत्ति पृ. ७९

८८. एक्को चेव महप्पा सो दुवियप्पो तिलक्खणो भणिओ।
चतुसंकमणाजुत्तो पंचगगुणप्पहाणो य॥
छक्कायक्कमजुत्तो उवजुत्तो सत्तभंगिसब्भावो।
अट्ठासवो णवट्ठो जीवो दसट्ठाणिओ भणिओ॥ —कसायपाहुड, भाग-१ पृ-११३। ६४, ६५

स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग और इन दोनों आगमों में विषय को प्रधानता न देकर संख्या को प्रधानता दी गई है। संख्या के आधार पर विषय का संकलन-आकलन किया गया है। एक विषय की दूसरे विषय के साथ इस में सम्बन्ध की अन्वेषणा नहीं की जा सकती। जीव, पुद्गल, इतिहास, गणित, भूगोल, खगोल, दर्शन, आचार, मनोविज्ञान, आदि शताधिक विषय बिना किसी क्रम के इस में संकलित किये गये हैं। प्रत्येक विषय पर विस्तार से चिन्तन न कर संख्या की दृष्टि से आकलन किया गया है। प्रस्तुत आगम में अनेक-ऐतिहासिक सत्य-कथ्य रहे हुए हैं। यह एक प्रकार से कोश की शैली में ग्रथित आगम है, जो स्मरण करने की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है। जिस युग में आगम-लेखन की परम्परा नहीं थी, संभवत: उस समय कण्ठस्थ रखने की सुविधा के लिये यह शैली अपनाई गयी हो। यह शैली जैन परम्परा के आगमों में ही नहीं, वैदिक और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थों में भी प्राप्त होती है। महाभारत के वनपर्व, अध्याय एक सौ चौतीस में भी इसी शैली में विचार प्रस्तुत किये गये हैं। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय, पुग्गल पञ्ञति, महाव्युत्पत्ति एवं धर्मसंग्रह में यही शैली दृष्टि-गोचर होती है।

जैन आगम साहित्य में तीन प्रकार के स्थविर बताये हैं। उन में श्रुतस्थविर के लिये 'ठाण-समवायधरे' यह विशेषण आया है। इस विशेषण से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत आगम का कितना अधिक महत्त्व रहा है।[८९] आचार्य अभयदेव ने स्थानाङ्ग की वाचना कब लेनी चाहिये, इस सम्बन्ध में लिखा है कि दीक्षा-पर्याय की दृष्टि से आठवें वर्ष में स्थानाङ्ग की वाचना देनी चाहिये। यदि आठवें वर्ष से पहले कोई वाचना देता है तो उसे आज्ञा भंग आदि दोष लगते हैं।[९०]

व्यवहारसूत्र के अनुसार स्थानाङ्ग और समवायांग के ज्ञाता को ही आचार्य, उपाध्याय और गणावच्छेदक पद देने का विधान है। इसलिये इस अंग का कितना गहरा महत्त्व रहा हुआ है, यह इस विधान से स्पष्ट है।[९१]

समवायाङ्ग और नन्दीसूत्र में स्थानाङ्ग का परिचय दिया गया है। नन्दीसूत्र में स्थानाङ्ग की जो विषय-सूची आई है, वह समवायाङ्ग की अपेक्षा संक्षिप्त है। समवायाङ्ग अङ्ग होने के कारण नन्दीसूत्र से बहुत प्राचीन है, समवायाङ्ग की अपेक्षा नन्दीसूत्र में विषय सूची संक्षिप्त क्यों हुई? यह आगम-मर्मज्ञों के लिये चिन्तनीय प्रश्न है।

समवायाङ्ग के अनुसार स्थानाङ्ग की विषयसूची इस प्रकार है।

(१) स्वसिद्धान्त, परसिद्धान्त और स्व-पर-सिद्धान्त का वर्णन है।

(२) जीव, अजीव और जीवाजीव का कथन।

(३) लोक, अलोक और लोकालोक का कथन।

(४) द्रव्य के गुण, और विभिन्न क्षेत्रकालवर्ती पर्यायों पर चिन्तन।

(५) पर्वत, पानी, समुद्र, देव, देवों के प्रकार, पुरुषों के विभिन्न प्रकार, स्वरूप गोत्र, नदियों, निधियों, और ज्योतिष्क देवों की विविध गतियों का वर्णन।

(६) एक प्रकार, दो प्रकार, यावत् दस प्रकार के लोक में रहने वाले जीवों और पुद्गलों का निरूपण किया गया है।

नन्दीसूत्र में स्थानाङ्ग की विषयसूची इस प्रकार है—प्रारम्भ में तीन नम्बर तक समवायाङ्ग की तरह ही विषय का निरूपण है किन्तु व्युत्क्रम से है। चतुर्थ और पाँचवें नम्बर की सूची बहुत ही संक्षेप में है। जैसे टङ्क,

---

८९. ववहारसुत्तं, सूत्र १८, पृ. १७५—मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

९०. ठाणं-समवाओऽवि य अंगे ते अट्ठवासस्स-अन्यथा दानेऽस्याज्ञाभङ्गादयो दोषा: —स्थानाङ्ग टीका

९१. ठाण-समवायधरे कप्पइ आयरित्ताए उवज्झायत्ताए गणावच्छेइयत्ताए उद्दिसित्तए।

—व्यवहारसूत्र—उ-३ सू-६८।

कूट, शैल, शिखरी, प्राग्भार, गुफा आकर, द्रह, और सरिताओं का कथन है। छट्ठे नम्बर में कही हुयी बात नन्दी में भी इसी प्रकार है।

समवायाङ्ग[92] व नन्दीसूत्र[93] के अनुसार स्थानाङ्ग की वाचनाएं संख्येय है, उसमें संख्यात श्लोक हैं, संख्यात संग्रहणियाँ हैं। अंगसाहित्य मे उस का तृतीय स्थान है। उस में एक श्रुतस्कन्ध है, दश अध्ययन हैं। इक्कीस उद्देशनकाल हैं। बहत्तर हजार पद है। संख्यात अक्षर हैं यावत् जिन प्रज्ञप्त पदार्थों का वर्णन है।

स्थानाङ्ग में दश अध्ययन है। दश अध्ययनों का एक ही श्रुतस्कन्ध है। द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्ययन के चार-चार उद्देशक हैं। पंचम अध्ययन के तीन उद्देशक है। शेष छह अध्ययनों में एक-एक उद्देशक हैं। इस प्रकार इक्कीस उद्देशक है। समवायांग और नन्दीसूत्र के अनुसार स्थानाङ्ग की पदसंख्या बहत्तर हजार कही गई है। आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित स्थानाङ्ग की सटीक प्रति में सात सौ ८३ (७८३) सूत्र हैं। यह निश्चित है कि वर्तमान में उपलब्ध स्थानाङ्ग में बहत्तर हजार पद नही है। वर्तमान में प्रस्तुत सूत्र का पाठ ३७७० श्लोक परिमाण है।

स्थानाङ्गसूत्र ऐसा विशिष्ट आगम है जिसमें चारों ही अनुयोगों का समावेश है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी "कमल" ने लिखा है कि "स्थानाङ्ग में द्रव्यानुयोग की दृष्टि से ४२६ सूत्र, चरणानुयोग की दृष्टि से २१४ सूत्र, गणितानुयोग की दृष्टि से १०९ सूत्र और धर्मकथानुयोग की दृष्टि से ५१ सूत्र हैं। कुल ८०० सूत्र हुये। जब कि मूल सूत्र ७८३ हैं। उन में कितने ही सूत्रों में एक-दूसरे अनुयोग से सम्बन्ध है। अतः अनुयोग-वर्गीकरण की दृष्टि से सूत्रों की संख्या में अभिवृद्धि हुई है।"

क्या स्थानाङ्ग अर्वाचीन है ?

स्थानाङ्ग में श्रमण भगवान् महावीर के पश्चात् दूसरी से छठी शताब्दी तक की अनेक घटनाएँ उल्लिखित हैं, जिससे विद्वानों को यह शंका हो गयी है कि प्रस्तुत आगम अर्वाचीन है। वे शंकाएँ इस प्रकार हैं—

(१) नववें स्थान में गोदासगण, उत्तरवलिस्सहगण, उद्देहगण, चारण गण, उडुवातितगण, विस्सवातितगण, कामड्ढिगण, माणवगण, और कोडितगण इन गणों की उत्पत्ति का विस्तृत उल्लेख कल्पसूत्र में है।[94] प्रत्येक गण की चार-चार शाखाएँ, उद्देह आदि गणों के अनेक कुल थे। ये सभी गण श्रमण भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् दो सौ से पाँच सौ वर्ष की अवधि तक उत्पन्न हुये थे।

(२) सातवें स्थान में जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ़, अश्वमित्र, गङ्ग, रोहगुप्त, गोष्ठामाहिल, इन सात निह्नवों का वर्णन है। इन सात निह्नवों में से दो निह्नव भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद हुए और शेष पाँच निर्वाण के बाद हुये।[95] इनका अस्तित्वकाल भगवान् महावीर के केवलज्ञान प्राप्ति के चौदहवर्ष बाद से निर्वाण के पाँच सौ चौरासी वर्ष पश्चात् तक का है।[96] अर्थात् वे तीसरी शताब्दी से लेकर छट्ठी शताब्दी के मध्य में हुये।

उत्तर में निवेदन है कि जैन दृष्टि से श्रमण भगवान् महावीर सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। अतः वे पश्चात् होने

९२. समवायांग—सूत्र १३९, पृष्ठ १२३, मुनि कन्हैयालाल जी म.

९३. नन्दी. ८७ पृष्ठ ३५, पुण्यविजयजी म.

९४. कल्पसूत्र सूत्र—२०६ से २१६ तक—देवेन्द्रमुनि

९५. णाणुप्पत्तीए दुवे उप्पण्णा णिव्वुए सेसा। —आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा—७८४

९६. चोद्दस सोलहसवासा, चोद्दस वीसुत्तरा य दोण्णि सया।
अट्ठावीसा य दुवे, पंचेव सया उ चोयाला॥ —आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा—७८३, ७८४

वाली घटनाओं का संकेत करें, इसमें किसी भी प्रकार का आश्चर्य नहीं है। जैसे—नवम स्थान में आगामी उत्सर्पिणी-काल के भावी तीर्थंकर महापद्म का चरित्र दिया है। और भी अनेक भविष्य में होने वाली घटनाओं का उल्लेख है।

दूसरी बात यह है कि पहले आगम श्रुतिपरम्परा के रूप में चले आ रहे थे। वे आचार्य स्कन्दिल और देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय लिपिवद्ध किये गये। उस समय वे घटनाएँ, जिनका प्रस्तुत आगम में उल्लेख है, घटित हो चुकी थीं। अतः जन-मानस में भ्रान्ति उत्पन्न न हो जाए, इस दृष्टि से आचार्य प्रवरों ने भविष्य-काल के स्थान पर भूतकाल की क्रिया देकर उस समय तक घटित घटनाएँ इसमें संकलित कर दी हों। इस प्रकार दो-चार घटनाएँ भूतकाल की क्रिया में लिखने मात्र से प्रस्तुत आगम गणधरकृत नहीं हैं, इस प्रकार प्रतिपादन करना उचित नहीं है।

यह संख्या-निवद्ध आगम है। इसमें सभी प्रतिपाद्य विषयों का समावेश एक से दस तक की संख्या में किया गया है। एतदर्थ ही इसके दश अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन में संग्रहनय की दृष्टि से चिन्तन किया गया है। संग्रहनय अभेद दृष्टिप्रधान है। स्वजाति के विरोध के बिना समस्त पदार्थों का एकत्व में संग्रह करना अर्थात् आस्तित्वधर्म को न छोड़कर सम्पूर्ण-पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में स्थित हैं। इसलिये सम्पूर्ण पदार्थों का सामान्य रूप से ज्ञान करना संग्रहनय है।

आत्मा एक है। यहाँ द्रव्यदृष्टि से एकत्व का प्रतिपादन किया गया है। जम्बूद्वीप एक है। क्षेत्र की दृष्टि से एकत्व विवक्षित है। एक समय में एक ही मन होता है। यह काल की दृष्टि से एकत्व निरूपित है। शब्द एक है। यह भाव की दृष्टि से एकत्व का प्रतिपादन है। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से वस्तुतत्त्व पर चिन्तन किया गया है।

प्रस्तुत स्थान में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों की सूचनाएँ भी हैं। जैसे—भगवान् महावीर अकेले ही परिनिर्वाण को प्राप्त हुये थे। मुख्य रूप से तो द्रव्यानुयोग और चरणकरणानुयोग से सम्बन्धित वर्णन है।

प्रत्येक अध्ययन की एक ही संख्या के लिये स्थान शब्द व्यवहृत हुआ है। आचार्य अभयदेव ने "स्थान" के साथ अध्ययन भी कहा है।[९७] अन्य अध्ययनों की अपेक्षा आकार की दृष्टि से यह अध्ययन छोटा है। बीज रूप से जिन विषयों का संकेत इस स्थान में किया गया है, उनका विस्तार अगले स्थानों में उपलब्ध है। आधार की दृष्टि से प्रथम स्थान का अपना महत्त्व है।

द्वितीय स्थान में दो की संख्या से सम्बद्ध विषयों का वर्गीकरण किया गया है। इस स्थान का प्रथम सूत्र है—"जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं"।

जैन दर्शन चेतन और अचेतन ये दो मूल तत्त्व मानता है। शेष सभी भेद-प्रभेद उसके अवान्तर प्रकार हैं। यों जैन दर्शन में अनेकान्तवाद को प्रमुख स्थान है। अपेक्षादृष्टि से वह द्वैतवादी भी है और अद्वैतवादी भी है। संग्रहनय की दृष्टि से अद्वैत सत्य है। चेतन में अचेतन का और अचेतन में चेतन का अत्यन्ताभाव होने से द्वैत भी सत्य है। प्रथम स्थान में अद्वैत का निरूपण है, तो द्वितीय स्थान में द्वैत का प्रतिपादन है। पहले स्थान में उद्देशक नहीं है, द्वितीय स्थान में चार उद्देशक हैं। पहले स्थान की अपेक्षा यह स्थान बड़ा है।

प्रस्तुत स्थान में जीव और अजीव, त्रस और स्थावर, सयोनिक और अयोनिक, आयुरहित और आयु सहित, धर्म और अधर्म, वन्ध और मोक्ष, आदि विषयों की संयोजना है। भगवान् महावीर के युग में मोक्ष के सम्बन्ध में दार्शनिकों की विविध-धारणाएं थीं। कितने ही विद्या से मोक्ष मानते थे और कितने ही आचरण से!

---

९७. तत्र च दशाध्ययनानि —स्थानाङ्ग वृत्ति, पत्र—३

जैन दर्शन अनेकान्तवादी दृष्टिकोण को लिये हुए है। उस का यह वज्र आघोष है कि न केवल विद्या से मोक्ष है और न केवल आचरण से। वह इन दोनों के समन्वित रूप को मोक्ष का साधन स्वीकार करता है। भगवान् महावीर की दृष्टि से विश्व की सम्पूर्ण समस्याओं का मूल हिंसा और परिग्रह है। इन का त्याग करने पर ही बोधि की प्राप्ति होती है। सत्य का अनुभव होता है। इस मे प्रमाण के दो भेद बताये हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष के दो प्रकार हैं—केवलज्ञान प्रत्यक्ष और नो-केवलज्ञान प्रत्यक्ष। इस प्रकार इस में तत्त्व, आचार, क्षेत्र, काल, प्रभृति अनेक विषयों का निरूपण है। विविध दृष्टियों से इस स्थान का महत्त्व है। कितनी ही ऐसी बातें इस स्थान में आयी हैं, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

तृतीय स्थान में तीन की संख्या से सम्बन्धित वर्णन है। यह चार उद्देशकों में विभक्त है। इस में तात्त्विक विषयों पर जहाँ अनेक त्रिभंगियाँ हैं, वहाँ मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विषयों पर भी त्रिभंगियाँ हैं। त्रिभंगियों के माध्यम से शाश्वत सत्य का मार्मिक ढंग से उद्घाटन किया गया है। मानव के तीन प्रकार हैं। कितने ही मानव बोलने के बाद मन में अत्यन्त आह्लाद का अनुभव करते हैं और कितने ही मानव भयंकर दुःख का अनुभव करते हैं तो कितने ही मानव न सुख का अनुभव करते हैं और न दुःख का अनुभव करते हैं। जो व्यक्ति सात्त्विक, हित, मित, आहार करते हैं, वे आहार के बाद सुख की अनुभूति करते हैं। जो लोग अहितकारी या मात्रा से अधिक भोजन करते हैं, वे भोजन करने के पश्चात् दुःख का अनुभव करते हैं। जो साधक आत्मस्थ होते हैं, वे आहार के बाद बिना सुख-दुःख अनुभव किये तटस्थ रहते हैं। त्रिभंगी के माध्यम से विभिन्न मनोवृत्तियों का सुन्दर विश्लेषण हुआ है।

श्रमण-आचार संहिता के सम्बन्ध में तीन बातों के माध्यम से ऐसे रहस्य भी बताये हैं जो अन्य आगम साहित्य में बिखरे पड़े हैं। श्रमण तीन प्रकार के पात्र रख सकता है—तूम्बा, काष्ठ, मिट्टी का पात्र। निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थियाँ तीन कारणों से वस्त्र धारण कर सकते हैं—लज्जानिवारण, जुगुप्सानिवारण और परीषह-निवारण। दशवैकालिक[९८] में वस्त्रधारण के संयम और लज्जा ये दो कारण बताये हैं। उत्तराध्ययन[९९] में तीन कारण हैं—लोकप्रतीति, संयमयात्रा का निर्वाह और मुनित्व की अनुभूति। प्रस्तुत आगम में जुगुप्सानिवारण यह नया कारण दिया है। स्वयं की अनुभूति लज्जा है और लोकानुभूति जुगुप्सा है। नग्न व्यक्ति को निहार कर जन-मानस में सहज घृणा होती है। आवश्यक चूर्णि, महावीरचरियं, आदि में यह स्पष्ट बताया गया है कि भगवान् महावीर को नग्नता के कारण अनेक बार कष्ट सहन करने पड़े थे। प्रस्तुत स्थान में अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख है। तीन कारणों से अल्पवृष्टि, अनावृष्टि होती है। माता-पिता और आचार्य आदि के उपकारों से उऋण नहीं बना जा सकता।

चतुर्थ स्थान में चार की संख्या से सम्बद्ध विषयों का आकलन किया गया है। यह स्थान भी चार उद्देशकों में विभक्त है। तत्त्व जैसे दार्शनिक विषय को चौ-भंगियों के माध्यम से सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। अनेक चतुर्भङ्गियाँ मानव-मन का सफल चित्रण करती हैं। वृक्ष, फल, वस्त्र आदि वस्तुओं के माध्यम से मानव की मनोदशा का गहराई से विश्लेषण किया गया है। जैसे कितने ही वृक्ष मूल में सीधे रहते हैं, पर ऊपर जाकर टेढ़े बन जाते हैं। कितने ही मूल में सीधे रहते हैं और सीधे ही ऊपर बढ़ जाते हैं। कितने ही वृक्ष मूल में भी टेढ़े होते हैं और ऊपर जाकर के भी टेढ़े ही होते हैं। और कितने ही वृक्ष मूल में टेढे होते हैं और ऊपर जाकर सीधे हो हाते हैं। इसी तरह मानवों का स्वभाव होता है। कितने ही व्यक्ति मन से सरल होते हैं और व्यवहार से भी। कितने ही व्यक्ति हृदय से सरल होते हुये भी व्यवहार से कुटिल होते हैं। कितने ही व्यक्ति

---

९८. दशवैकालिक सूत्र, अध्य. ६, गाथा—१९ !

९९. उत्तराध्ययन सूत्र, अ. २३, गाथा—३२।

मन से सरल नहीं होते और बाह्य परिस्थितिवश सरलता का प्रदर्शन करते हैं, तो कितने ही व्यक्ति अन्तर से भी कुटिल होते हैं।

विभिन्न मनोवृत्ति के लोग विभिन्न युग में होते हैं। देखिये कितनी मार्मिक चौभंगी—कितने ही मानव आम्रप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले का योग्य समय में योग्य उपकार करते हैं। कितने ही मानव तालप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं, जो दीर्घकाल तक सेवा करने वाले का अत्यन्त कठिनाई से योग्य उपकार करते हैं। कितने ही मानव वल्लीप्रलम्ब कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले का सरलता से शीघ्र ही उपकार कर देते हैं। कितने ही मानव मेष-विषाण कोरक के सदृश होते हैं, जो सेवा करने वाले को केवल मधुर-वाणी के द्वारा प्रसन्न रखना चाहते हैं किन्तु उसका उपकार कुछ भी नहीं करना चाहते !

प्रसंगवश कुछ कथाओं के भी निर्देश प्राप्त होते हैं, जैसे अन्तक्रिया करने वाले चार व्यक्तियों के नाम मिलते हैं। भरत चक्रवर्ती, गजसुकुमाल, सम्राट् सनत्कुमार और मरुदेवी। इस तरह विविध विषयों का संकलन है। यह स्थान एक तरह से अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक सरस और ज्ञानवर्धक है।

पाँचवें स्थान में पाँच की संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन हुआ है। यह स्थान तीन उद्देशकों में विभाजित है। तात्त्विक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, ज्योतिष, योग, प्रभृति अनेक विषय इस स्थान में आये हैं। कोई वस्तु अशुद्ध होने पर उसकी शुद्धि की जाती है। पर शुद्धि के साधन एक सदृश नहीं होते। जैसे मिट्टी शुद्धि का साधन है। उससे बर्तन आदि साफ किये जाते हैं। पानी शुद्धि का साधन है। उससे वस्त्र आदि स्वच्छ किये जाते हैं। अग्नि शुद्धि का साधन है। उससे स्वर्ण, रजत, आदि शुद्ध किये जाते हैं। मन्त्र भी शुद्धि का साधन है, जिससे वायुमण्डल शुद्ध होता है। ब्रह्मचर्य शुद्धि का साधन है। उससे आत्मा विशुद्ध बनता है।

प्रतिमा साधना की विशिष्ट पद्धति है। जिसमें उत्कृष्ट तप की साधना के साथ कायोत्सर्ग की निर्मल साधना चलती है। इसमें भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा, और भद्रोत्तरा प्रतिमाओं का उल्लेख है। जाति, कुल, कर्म, शिल्प और लिङ्ग के भेद से पाँच प्रकार की आजीविका का वर्णन है। गंगा, यमुना, सरयु, ऐरावती और माही नामक महानदियों को पार करने का निषेध किया गया है। चौवीस तीर्थंकरों में से वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि पार्श्व और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमारावस्था में प्रव्रजित हुये थे। आदि अनेक महत्त्वपूर्ण उल्लेख प्रस्तुत स्थान में हुये हैं।

छट्ठे स्थान में छह की संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन किया है। यह स्थान उद्देशकों में विभक्त नहीं है। इसमें तात्विक, दार्शनिक, ज्योतिष और संघ-सम्बन्धी अनेक विषय वर्णित हैं। जैन दर्शन में षट्द्रव्य का निरूपण है। इनमें पाँच अमूर्त्त हैं और एक—पुद्गल द्रव्य मूर्त्त हैं।

गण को वह अनगार धारण कर सकता है जो छह कसौटियों पर खरा उतरता हो। (१) श्रद्धाशीलपुरुष (२) सत्यवादीपुरुष (३) मेधावी पुरुष (४) बहुश्रुतपुरुष (५) शक्तिशाली पुरुष (६) कलहरहित पुरुष।

जाति से आर्य मानव छह प्रकार का होता है। अनेक अनछुए पहलुओं पर भी चिन्तन किया गया है। जाति और कुल से आर्य पर चिन्तन कर आर्य की एक नयी परिभाषा प्रस्तुत की है। इन्द्रियों से जो सुख प्राप्त होता है वह अस्थायी और क्षणिक है, यथार्थ नहीं। जिन इन्द्रियों से सुखानुभूति होती है, उन इन्द्रियों से परिस्थिति-परिवर्तन होने पर दुःखानुभूति भी होती है। इसलिये इस स्थान में सुख और दुःख के छह-छह प्रकार बताये हैं।

मानव को कैसा भोजन करना चाहिये ? जैन दर्शन ने इस प्रश्न का उत्तर अनेकान्तदृष्टि से दिया है। जो भोजन साधना की दृष्टि से विघ्न उत्पन्न करता हो, वह उपयोगी नहीं है। और जो भोजन साधना के लिये सहायक बनता है, वह भोजन उपयोगी है। इसलिये श्रमण छह कारणों से भोजन कर सकता है और छह

कारणों से भोजन का त्याग कर सकता है। भूगोल, इतिहास, लोकस्थिति कालचक्र, शरीर-रचना आदि विविध-विषयों का इसमे सकलन हुआ है।

सातवें स्थान में सात की संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन है। इस में उद्देशक नहीं है। जीव-विज्ञान, लोक स्थिति, संस्थान, नय, आसन, चक्रवर्ती रत्न, काल की पहचान, समुद्घात, प्रवचननिह्नव, नक्षत्र, विनय के प्रकार आदि अनेक विषय हैं। साधना के क्षेत्र में अभय आवश्यक है। जिस के अन्तर्मानस में भय का साम्राज्य हो, अहिंसक नही बन सकता। भय के मूल कारण सात बनाये है। मानव को मानव से जो भय होता है, वह इहलोक भय है। आधुनिक युग में यह भय अत्यधिक बढ़ गया है, आज सभी मानवों के हृदय धड़क रहे हैं इन में सात कुलकरों का भी वर्णन है, जो आदि युग में अनुशासन करते थे। अन्यान्य ग्रन्थों में कुलकरों के सम्बन्ध में विस्तार से निरूपण है। उनके मूलबीज यहाँ रहे हुये हैं। स्वर, स्वरस्थान, और स्वर-मण्डल का विशद वर्णन है। अन्य ग्रन्थों में आये हुए इन विषयों की सहज में तुलना की जा सकती है।

आठवें स्थान में आठ की संख्या से संबन्धित विषयों को संकलित किया गया है। इस स्थान में जीव-विज्ञान, कर्मशास्त्र, लोकस्थिति, ज्योतिष, आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल आदि के सम्बन्ध में विपुल सामग्री का संकलन हुआ है।

साधना के क्षेत्र में संघ का अत्यधिक महत्त्व रहा है। संघ में रहकर साधना सुगम रीति से संभव है। एकाकी साधना भी की जा सकती है। यह मार्ग कठिनता को लिये हुये है। एकाकी साधना करने वाले में विशिष्ट योग्यता अपेक्षित है। प्रस्तुत स्थान में सर्वप्रथम उसी का निरूपण है। एकाकी रहने के लिए वे योग्यताएँ अपेक्षित हैं। काश! आज एकाकी विचरण करने वाले श्रमण इस पर चिन्तन करें तो कितना अच्छा हो!

साधना के क्षेत्र में सावधानी रखने पर भी कभी-कभी दोष लग जाते हैं। किन्तु माया के कारण उन दोषों की वह विशुद्धि नहीं हो पाती। मायावी व्यक्ति के मन में पाप के प्रति ग्लानि नहीं होती और न धर्म के प्रति दृढ़ आस्था ही होती है। माया को शास्त्रकार ने "शल्य" कहा है। वह शल्य के समान सदा चुभती रहती है। माया से स्नेह-सम्बन्ध टूट जाते हैं। आलोचना करने के लिये शल्य-रहित होना आवश्यक है। प्रस्तुत स्थान में विस्तार से उस पर चिन्तन किया गया है। गणि-सम्पदा, प्रायश्चित्त के भेद, आयुर्वेद के प्रकार, कृष्णराजिपद, काकिणि रत्नपद, जम्बूद्वीप में पर्वत आदि विषयों पर चिन्तन है। जिनका ऐतिहासिक व भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व है।

नवमें स्थान में नौ संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन है। ऐतिहासिक, ज्योतिष, तथा अन्यान्य विषयों का सुन्दर निरूपण हुआ है। भगवान् महावीर युग के अनेक ऐतिहासिक प्रसंग इस में आये हैं। भगवान् महावीर के तीर्थ में नौ व्यक्तियों में तीर्थंकर नामकर्म का अनुबन्ध किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—श्रेणिक, सुपार्श्व, उदायी, पोट्टिल अनगार, दृढायु, शंख श्रावक, शतक श्रावक, सुलसा श्राविका, रेवती श्राविका। राजा बिम्बिसार श्रेणिक के सम्बन्ध में भी इस में प्रचुर-सामग्री हैं। तीर्थंकर नामकर्म का बंध करने वालों में पोट्टिल का उल्लेख है। अनुत्तरौपातिक सूत्र में भी पोट्टिल अनगार का वर्णन प्राप्त है। वहाँ पर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होने की बात लिखी है तो यहाँ पर भरतक्षेत्र से सिद्ध होने का उल्लेख है। इस से यह सिद्ध है कि पोट्टिल नाम के दो अनगार होने चाहिये। किन्तु ऐसा मानने पर नौ की संख्या का विरोध होगा। अतः यह चिन्तनीय है।

रोगोत्पत्ति के नौ कारणों का उल्लेख हुआ है। इन में आठ कारणों से शरीर के रोग उत्पन्न होते हैं और नवमें कारण से मानसिक-रोग समुत्पन्न होता है। आचार्य अभयदेव ने लिखा है कि—अधिक बैठने या कठोर आसन पर बैठने से बवासिर आदि उत्पन्न होते हैं। अधिक खाने या थोड़ा-थोड़ा बार-बार खाते रहने से अजीर्ण आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। मानसिक रोग का मूल कारण इन्द्रियार्थ-विगोपन अर्थात् काम-विकार है। काम-विकार से उन्माद आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यहाँ तक कि व्यक्ति को वह रोग मृत्यु के द्वार तक पहुंचा देता

है। वृत्तिकार ने काम-विकार के दश-दोषों का भी उल्लेख किया है। इन कारणों की तुलना सुश्रुत और चरक आदि रोगोत्पत्ति के कारणों से की जा सकती है। इन के अतिरिक्त उस युग की राज्य-व्यवस्था के सम्बन्ध में भी इस में अच्छी जानकारी है। पुरुषादानीय पार्श्व व भगवान् महावीर और श्रेणिक आदि के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण सामग्री भी मिलती है।

दशवें स्थान में दशविध संख्या को आधार बनाकर विविध-विषयों का संकलन हुआ है। इस स्थान में भी विषयों की विविधता है। पूर्वस्थानों की अपेक्षा कुछ अधिक विषय का विस्तार हुआ है। लोक-स्थिति, शब्द के दश प्रकार, क्रोधोत्पत्ति के कारण, समाधि के कारण, प्रव्रज्या ग्रहण करने के कारण, आदि विविध-विषयों पर विविध दृष्टियों से चिन्तन है। प्रव्रज्या ग्रहण करने के अनेक कारण हो सकते हैं। यद्यपि आगमकार ने कोई उदाहरण नहीं दिया है, वृत्तिकार ने उदाहरणों का संकेत किया है। बृहत्कल्प भाष्य,[१००] निशीथ भाष्य,[१०१] आवश्यक मलयगिरि वृत्ति[१०२] में विस्तार से उस विषय को स्पष्ट किया गया है। वैयावृत्य संगठन का अटूट सूत्र है। वह शारीरिक और चैतसिक दोनों प्रकार की होती है। शारीरिक-अस्वस्थता को सहज में विनष्ट किया जा सकता है। जब कि मानसिक अस्वस्थता के लिये विशेष धृति और उपाय की अपेक्षा होती है। तत्त्वार्थ[१०३] और उस के व्याख्या-साहित्य में भी कुछ प्रकारान्तर से नामों का निर्देश हुआ है।

भारतीय संस्कृति में दान की विशिष्ट परम्परा रही है। दान अनेक कारणों से दिया जाता है। किसी में भय की भावना रहती है, तो किसी में कीर्ति की लालसा होती है किसी में अनुकम्पा का सागर ठाठें मारता है। प्रस्तुत स्थान में दान के दश-भेद निरूपित हैं। भगवान् महावीर ने छद्मस्थ-अवस्था में दश स्वप्न देखे थे। **'छउमत्थकालियाए अन्तिमराइयंसि** इस पाठ से यह विचार बनते हैं। छद्मस्थ काल की अन्तिम रात्रि में भगवान् ने दश स्वप्न देखे। आवश्यकनिर्युक्ति[१०४] और आवश्यकचूर्णि[१०५] आदि में भी इन स्वप्नों का उल्लेख हुआ है। ये स्वप्न व्याख्या-साहित्य की दृष्टि से प्रथम वर्षावास में देखे गये थे। बौद्ध साहित्य में भी तथागत—बुद्ध के द्वारा देखे गये पांच स्वप्नों का वर्णन मिलता है।[१०६] जिस समय वे बोधिसत्त्व थे। बुद्धत्व की उपलब्धि नहीं हुई थी। उन्होंने पाँच स्वप्न देखे थे। वे इस प्रकार हैं—

(१) यह महान् पृथ्वी उन की विराट् शय्या बनी हुयी थी। हिमाच्छादित हिमालय उन का तकिया था। पूर्वी समुद्र बायें हाथ से और पश्चिमी समुद्र दायें हाथ से, दक्षिणी समुद्र दोनों पाँवों से ढंका था।

(२) उनकी नाभि से तिरिया नामक तृण उत्पन्न हुये और उन्होंने आकाश को स्पर्श किया।

(३) कितने ही काले सिर श्वेत रंग के जीव पाँव से ऊपर की ओर बढ़ते-बढ़ते घुटनों तक ढंक कर खड़े हो गये।

(४) चार वर्ण वाले चार पक्षी चारों विभिन्न दिशाओं से आये। और उनके चरणारविन्दों में गिर कर सभी श्वेत वर्ण वाले हो गये।

(५) तथागत बुद्ध गूथ पर्वत पर ऊपर चढ़ते हैं। और चलते समय वे पूर्ण रूप से निर्लिप्त रहते हैं।

---

१००. बृहत्कल्प भाष्य—गाथा—२८८०
१०१. निशीथ भाष्य गाथा ३६५६
१०२. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति—५३३
१०३. तत्त्वार्थ राजवार्तिक—द्वितीय भाग पृ. ६२४
१०४. आवश्यनिर्युक्ति—२७५।
१०५. आवश्यक चूर्णि—२७०।
१०६. अंगुत्तरनिकाय द्वितीय भाग—पृ. ४२५ से ४२७

इन पाँचों स्वप्नों की फलश्रुति इस प्रकार थी। (१) अनुपम सम्यक् सबोधि को प्राप्त करना। (२) आर्य आष्टांगिक मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर वह ज्ञान देवों और मानवों तक प्रकाशित करना। (३) अनेक श्वेत वस्त्रधारी प्राणांत होने तक तथागत के शरणागत होना। (४) चार वर्ण वाले मानवों द्वारा तथागत द्वारा दिये गये धर्म-विनय के अनुसार प्रव्रजित होकर मुक्ति का साक्षात्कार करना। (५) तथागत, चीवर, भिक्षा, आसन, औषध आदि प्राप्त करते है। तथापि वे उनमें अमूर्च्छित रहते हैं। और मुक्तप्रज्ञ होकर उसका उपभोग करते हैं।

गहराई से चिन्तन करने पर भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध दोनों के स्वप्न देखने में शब्द-साम्य तो नहीं है, किन्तु दोनों के स्वप्न की पृष्ठभूमि एक है। भविष्य में उन्हें विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि होगी और वे धर्म का प्रवर्तन करेंगे।

प्रस्तुत स्थान से आगम-ग्रन्थों की विशिष्ट जानकारी भी प्राप्त होती है। भगवान् महावीर और अन्य तीर्थंकरों के समय ऐसी विशिष्ट घटनाएँ घटीं, जो आश्चर्य के नाम से विश्रुत हैं। विश्व में अनेक आश्चर्य हैं। किन्तु प्रस्तुत आगम में आये हुए आश्चर्य उन आश्चर्यों से पृथक् है। इस प्रकार दशवें स्थान में ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन है जो ज्ञान-विज्ञान इतिहास आदि से सम्बन्धित हैं। जिज्ञासुओं को मूल आगम का स्वाध्याय करना चाहिये, जिससे उन्हें आगम के अनमोल रत्न प्राप्त हो सकेंगे।

दार्शनिक-विश्लेषण

हम पूर्व ही यह बता चुके है कि विविध-विषयों का वर्णन स्थानांग में है। क्या धर्म और क्या दर्शन, ऐसा कौनसा विषय है जिसका सूचन इस आगम में न हो। आगम में वे विचार भले ही बीज रूप में हों। उन्होंने बाद में चलकर व्याख्यासाहित्य में विराट् रूप धारण किया। हम यहाँ अधिक विस्तार में न जाकर संक्षेप में स्थानांग में आये हुये दार्शनिक विषयों पर चिन्तन प्रस्तुत कर रहे हैं।

मानव अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये भाषा का प्रयोग करता है। वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द का नियत अर्थ क्या है ? इसे ठीक रूप से समझना "निक्षेप" है। दूसरे शब्दों में शब्दों का अर्थों में और अर्थों का शब्दों में आरोप करना "निक्षेप" कहलाता है।[१०७] निक्षेप का पर्यायवाची शब्द "न्यास" भी है।[१०८] स्थानांग में निक्षेपों को "सर्व" पर घटित किया है।[१०९] सर्व के चार प्रकार हैं—नामसर्व, स्थापनासर्व, आदेशसर्व और निरवशेषसर्व। यहाँ पर द्रव्य आदेश सर्व कहा है। सर्व शब्द का तात्पर्य अर्थ 'निरवशेष" है। बिना शब्द के हमारा व्यवहार नहीं चलता। किन्तु वक्ता के विवक्षित अर्थ को न समझने से कभी बड़ा अनर्थ भी हो जाता है। इसी अनर्थ के निवारण हेतु निक्षेप-विद्याका प्रयोग हुआ है। निक्षेप का अर्थ निरूपणपद्धति है। जो वास्तविक अर्थ को समझने में परम उपयोगी है।

आगम साहित्य में ज्ञानवाद की चर्चा विस्तार के साथ आई है। स्थानांग में भी ज्ञान के पाँच भेद प्रतिपादित हैं।[११०] उन पाँच ज्ञानों को प्रत्यक्ष और परोक्ष[१११] इन दो भागों में विभक्त किया है। जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना और केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है, वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान ये तीन प्रत्यक्ष है। इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान "परोक्ष है। उसके दो प्रकार हैं—मति और श्रुत ! स्वरूप की दृष्टि से सभी ज्ञान प्रत्यक्ष हैं। बाहरी पदार्थों की अपेक्षा से प्रमाण के स्पष्ट और अस्पष्ट लक्षण किये गये हैं। बाह्य पदार्थों का निश्चय करने के लिये दूसरे ज्ञान की जिसे अपेक्षा नहीं होती है उसे—स्पष्ट ज्ञान कहते हैं। जिसे अपेक्षा रहती है, वह अस्पष्ट है। परोक्ष प्रमाण में दूसरे

१०७. णिच्छए णिण्णए खिवदि त्ति णिक्खेओ —धवला षट्खण्डागम पु. १ पृ. १०
१०८. नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः —तत्त्वार्थसूत्र १।५
१०९. चत्तारि सव्वा पन्नत्ता—नामसव्वए, ठवणसव्वए, आएससव्वए निरवसेससव्वए —स्थानांग—२९९
११०. स्थानांगसूत्र स्थान—५ सूत्र—
१११. स्थानांगसूत्र—स्थान—२ सूत्र—८६

है। वृत्तिकार ने काम-विकार के दश-दोषों का भी उल्लेख किया है। इन कारणों की तुलना सुश्रुत और चरक आदि रोगोत्पत्ति के कारणों से की जा सकती है। इन के अतिरिक्त उस युग की राज्य-व्यवस्था के सम्बन्ध में भी इस में अच्छी जानकारी है। पुरुषादानीय पार्श्व व भगवान् महावीर और श्रेणिक आदि के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण सामग्री भी मिलती है।

दशवें स्थान में दशविध संख्या को आधार बनाकर विविध-विषयों का संकलन हुआ है। इस स्थान में भी विषयों की विविधता है। पूर्वस्थानों की अपेक्षा कुछ अधिक विषय का विस्तार हुआ है। लोक-स्थिति, शब्द के दश प्रकार, क्रोधोत्पत्ति के कारण, समाधि के कारण, प्रव्रज्या ग्रहण करने के कारण, आदि विविध-विषयों पर विविध दृष्टियों से चिन्तन है। प्रव्रज्या ग्रहण करने के अनेक कारण हो सकते हैं। यद्यपि आगमकार ने कोई उदाहरण नहीं दिया है, वृत्तिकार ने उदाहरणों का संकेत किया है। बृहत्कल्प भाष्य,[100] निशीथ भाष्य,[101] आवश्यक मलयगिरि वृत्ति[102] में विस्तार से उस विषय को स्पष्ट किया गया है। वैयावृत्य संगठन का अटूट सूत्र है। वह शारीरिक और चैतसिक दोनों प्रकार की होती है। शारीरिक-अस्वस्थता को सहज में विनष्ट किया जा सकता है। जब कि मानसिक अस्वस्थता के लिये विशेष धृति और उपाय की अपेक्षा होती है। तत्त्वार्थ[103] और उस के व्याख्या-साहित्य में भी कुछ प्रकारान्तर से नामों का निर्देश हुआ है।

भारतीय संस्कृति में दान की विशिष्ट परम्परा रही है। दान अनेक कारणों से दिया जाता है। किसी में भय की भावना रहती है, तो किसी में कीर्ति की लालसा होती है किसी में अनुकम्पा का सागर ठाठें मारता है। प्रस्तुत स्थान में दान के दश-भेद निरूपित हैं। भगवान् महावीर ने छद्मस्थ-अवस्था में दश स्वप्न देखे थे। '**छउमत्थकालियाए अन्तिमराइयंसि** इस पाठ से यह विचार बनते हैं। छद्मस्थ काल की अन्तिम रात्रि में भगवान् ने दश स्वप्न देखे। आवश्यकनिर्युक्ति[104] और आवश्यकचूर्णि[105] आदि में भी इन स्वप्नों का उल्लेख हुआ है। ये स्वप्न व्याख्या-साहित्य की दृष्टि से प्रथम वर्षावास में देखे गये थे। बौद्ध साहित्य में भी तथागत—बुद्ध के द्वारा देखे गये पांच स्वप्नों का वर्णन मिलता है।[106] जिस समय वे बोधिसत्त्व थे। बुद्धत्व की उपलब्धि नहीं हुई थी। उन्होंने पाँच स्वप्न देखे थे। वे इस प्रकार हैं—

(१) यह महान् पृथ्वी उन की विराट् शय्या बनी हुयी थी। हिमाच्छादित हिमालय उन का तकिया था। पूर्वी समुद्र बायें हाथ से और पश्चिमी समुद्र दायें हाथ से, दक्षिणी समुद्र दोनों पाँवों से ढंका था।

(२) उनकी नाभि से तिरिया नामक तृण उत्पन्न हुये और उन्होंने आकाश को स्पर्श किया।

(३) कितने ही काले सिर श्वेत रंग के जीव पाँव से ऊपर की ओर बढ़ते-बढ़ते घुटनों तक ढंक कर खड़े हो गये।

(४) चार वर्ण वाले चार पक्षी चारों विभिन्न दिशाओं से आये। और उनके चरणारविन्दों में गिर कर सभी श्वेत वर्ण वाले हो गये।

(५) तथागत बुद्ध गूथ पर्वत पर ऊपर चढ़ते हैं। और चलते समय वे पूर्ण रूप से निर्लिप्त रहते हैं।

---

१००. बृहत्कल्प भाष्य—गाथा—२८८०
१०१. निशीथ भाष्य गाथा ३६५६
१०२. आवश्यक मलयगिरि वृत्ति—५३३
१०३. तत्त्वार्थ राजवार्तिक—द्वितीय भाग पृ. ६२४
१०४. आवश्यनिर्युक्ति—२७५।
१०५. आवश्यक चूर्णि—२७०।
१०६. अंगुत्तरनिकाय द्वितीय भाग—पृ. ४२५ से ४२७

स्थानांग में प्रमाण शब्द के स्थान पर "हेतु" शब्द का प्रयोग मिलता है।[११४] ज्ञप्ति के साधनभूत होने से प्रत्यक्ष आदि को हेतु शब्द से व्यवहृत करने में औचित्यभंग भी नहीं है। चरक में भी प्रमाणों का निर्देश "हेतु" शब्द से हुआ है।[११५] स्थानांग में ऐतिह्य के स्थान पर आगम शब्द व्यवहृत हुआ है। किन्तु चरक में ऐतिह्य को ही आगम कहा है।[११६]

स्थानांग में निक्षेप पद्धति से प्रमाण के चार भेद भी प्रतिपादित है—[११७]द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाण। यहाँ पर प्रमाण का व्यापक अर्थ लेकर उसके भेदों की परिकल्पना की है। अन्य दार्शनिकों की भाँति केवल प्रमेयसाधक तीन, चार, छह, आदि प्रमाणों का ही समावेश नहीं है। किन्तु व्याकरण और कोष आदि से सिद्ध प्रमाण शब्द के सभी-अर्थों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मूल-सूत्र में भेदों की गणना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा गया है। बाद के आचार्यों ने इन पर विस्तार से विश्लेषण किया है। स्थानाभाव में हम इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं कर रहे हैं।

स्थानांग में तीन प्रकार के व्यवसाय बताये हैं।[११८] प्रत्यक्ष "अवधि" आदि, प्रात्ययिक—"इन्द्रिय और मन के निमित्त से" होने वाला, आनुगामिक—"अनुसरण करने वाला। व्यवसाय का अर्थ है—निश्चय या निर्णय! यह वर्गीकरण ज्ञान के आधार पर किया गया है। आचार्य सिद्धसेन से लेकर सभी तार्किकों ने प्रमाण को स्व-पर व्यवसायी माना है। वार्तिककार शान्त्याचार्य ने न्यायावतारगत अवभास का अर्थ करते हुये कहा—अवभास व्यवसाय है, न कि ग्रहणमात्र।[११९] आचार्य अकलंक आदि ने भी प्रमाणलक्षण में "व्यवसाय" पद को स्थान दिया है। और प्रमाण को व्यवसायात्मक कहा है।[१२०] स्थानांग में व्यवसाय बताये गये हैं। प्रत्यक्ष, प्रात्यायिक-आगम और आनुगामिक-अनुमान। इन तीन की तुलना वैशेषिक दर्शन सम्मत प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणों से की जा सकती है।

भगवान् महावीर के शिष्यों में चार सौ शिष्य वाद-विद्या में निपुण थे।[१२१] नवमें स्थान में जिन नव प्रकार के विशिष्ट व्यक्तियों को बताया है उन में वाद-विद्या-विशारद व्यक्ति भी हैं। बृहत्कल्प भाष्य में वादविद्या-कुशल श्रमणों के लिये शारीरिक शुद्धि आदि करने के अपवाद भी बताये हैं।[१२२] वादी को जैन धर्म प्रभावक भी माना है। स्थानांग में विवाद के छह प्रकारों का भी निर्देश है।[१२३] अवष्वक्य, उत्ष्वक्य, अनुलोम्य, प्रतिलोम्य, भेदयित्वा, मेलयित्वा। वस्तुतः ये विवाद के प्रकार नहीं, किन्तु वादी और प्रतिवादी द्वारा अपनी विजयवैजयन्ती फहराने के लिये प्रयुक्त की जाने वाली युक्तियों के प्रयोग हैं। टीकाकार ने यहाँ विवाद का अर्थ "जल्प" किया है।

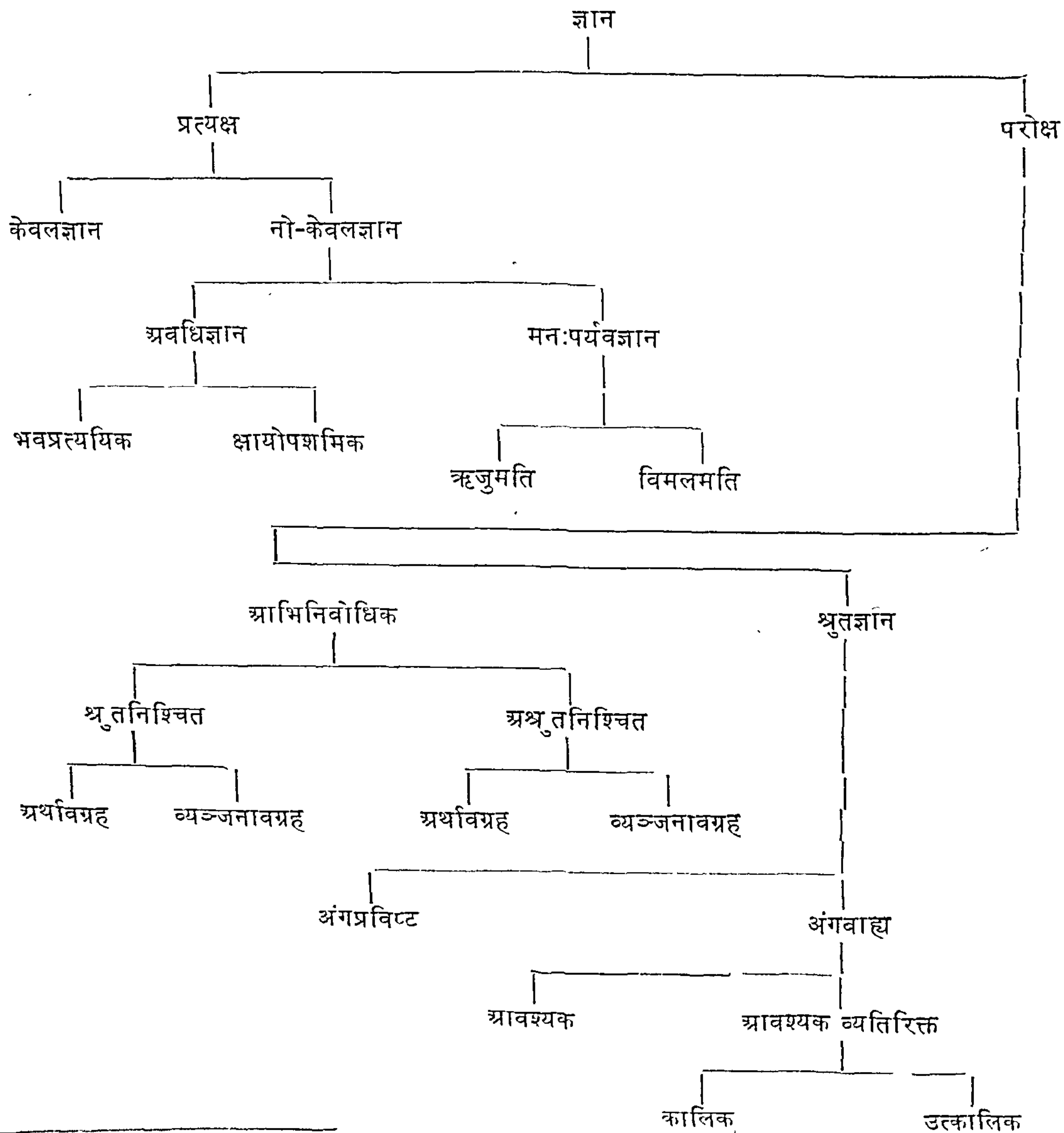
जैसे—(१) निश्चित समय पर यदि वादी की वाद करने की तैयारी नहीं हैं तो वह स्वयं बहाना बनाकर सभास्थान का त्याग कर देता है। या प्रतिवादी को वहाँ से हटा देता है। जिससे वाद में विलम्ब होने के कारण वह उस समय अपनी तैयारी कर लेता है।

---

११४. स्थानांग सूत्र—स्थान-४, सूत्र ३३८।
११५. चरक. विमान स्थान, अ. ८ सूत्र ३३।
११६. चरक विमानस्थान अ. ८ सूत्र ४१।
११७. स्थानांग सूत्र स्थान ४ सूत्र २५८।
११८. स्थानांग सूत्र स्थान ३ सूत्र १८५॥
११९. न्यायावतार वार्तिक वृत्ति-कारिका ३॥
१२०. न्यायावतार, वार्तिक वृत्ति के टिप्पण पृ. १४८ से १५१ तक
१२१. स्थानांग सूत्र स्थान—९ सूत्र ३८२
१२२. बृहत्कल्प भाष्य—६०३५
१२३. स्थानांग सूत्र—स्थान ६ सूत्र ५१२

ज्ञान की आवश्यकता होती है। उदाहरण के रूप में स्मृतिज्ञान में धारणा की अपेक्षा रहती है। प्रत्यभिज्ञान में अनुभव और स्मृति की—तर्क में व्याप्ति की। अनुमान में हेतु की, तथा आगम में शब्द और संकेत की अपेक्षा रहती है। इसलिये वे अस्पष्ट है। अपर शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिस का ज्ञेय पदार्थ निर्णय—काल में छिपा रहता है वह ज्ञान अस्पष्ट या परोक्ष है। स्मृति का विषय स्मृतिकर्ता के सामने नहीं होता। प्रत्यभिज्ञान में भी वह अस्पष्ट होता है। तर्क में भी त्रिकालीन सर्वधूम और अग्नि प्रत्यक्ष नहीं होते। अनुमान का विषय भी सामने नहीं होता और आगम का विषय भी। अवग्रह-आदि आत्म-सापेक्ष न होने से परोक्ष है। लोक व्यवहार से अवग्रह आदि को सांव्यहावरिक प्रत्यक्ष विभाग में रखा है।[११२]

स्थानाङ्ग में ज्ञान का वर्गीकरण इस प्रकार है—[११३]



११२. क—देखिये जैन दर्शन—स्वरूप और विश्लेषण पृ. ३२६ से ३७२ देवेन्द्र मुनि

११३. स्थानांग सूत्र—स्थान-२, सूत्र ८६ से १०६।

स्थानांग में प्रमाण शब्द के स्थान पर "हेतु" शब्द का प्रयोग मिलता है।[११४] ज्ञप्ति के साधनभूत होने से प्रत्यक्ष आदि को हेतु शब्द से व्यवहृत करने में अनौचित्यभय भी नहीं है। चरक में भी प्रमाणों का निर्देश "हेतु" शब्द से हुआ है।[११५] स्थानांग में ऐतिह्य के स्थान पर आगम शब्द व्यवहृत हुआ है। किन्तु चरक में ऐतिह्य को ही आगम कहा है।[११६]

स्थानांग में निक्षेप पद्धति से प्रमाण के चार भेद भी प्रतिपादित हैं–[११७]द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, काल-प्रमाण और भावप्रमाण। यहाँ पर प्रमाण का व्यापक अर्थ लेकर उसके भेदों की परिकल्पना की है। अन्य दार्शनिकों की भाँति केवल प्रमेयसाधक तीन, चार, छह, आदि प्रमाणों का ही समावेश नहीं है। किन्तु व्याकरण और कोष आदि से सिद्ध प्रमाण शब्द के सभी-अर्थों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मूल-सूत्र में भेदों की गणना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहा गया है। बाद के आचार्यों ने इन पर विस्तार से विश्लेषण किया है। स्थानाभाव में हम इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं कर रहे हैं।

स्थानांग में तीन प्रकार के व्यवसाय बताये हैं।[११८] प्रत्यक्ष "अवधि" आदि, प्रात्ययिक—"इन्द्रिय और मन के निमित्त से" होने वाला, आनुगामिक—"अनुसरण करने वाला। व्यवसाय का अर्थ है—निश्चय या निर्णय! यह वर्गीकरण ज्ञान के आधार पर किया गया है। आचार्य सिद्धसेन से लेकर सभी तार्किकों ने प्रमाण को स्व-पर व्यवसायी माना है। वार्तिककार शान्त्याचार्य ने न्यायावतारगत अवभास का अर्थ करते हुये कहा—अवभास व्यवसाय है, न कि ग्रहणमात्र।[११९] आचार्य अकलंक आदि ने भी प्रमाणलक्षण में "व्यवसाय" पद को स्थान दिया है। और प्रमाण को व्यवसायात्मक कहा है।[१२०] स्थानांग में व्यवसाय बताये गये हैं। प्रत्यक्ष, प्रात्यायिक-आगम और आनुगामिक-अनुमान। इन तीन की तुलना वैशेषिक दर्शन सम्मत प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणों से की जा सकती है।

भगवान् महावीर के शिष्यों में चार सौ शिष्य वाद-विद्या में निपुण थे।[१२१] नवमें स्थान में जिन नव प्रकार के विशिष्ट व्यक्तियों को बताया है उन में वाद-विद्या-विशारद व्यक्ति भी हैं। बृहत्कल्प भाष्य में वादविद्या-कुशल श्रमणों के लिये शारीरिक शुद्धि आदि करने के अपवाद भी बताये हैं।[१२२] वादी को जैन धर्म प्रभावक भी माना है। स्थानांग में विवाद के छह प्रकारों का भी निर्देश है।[१२३] अवष्वक्य, उत्ष्वक्य, अनुलोम्य, प्रतिलोम्य, भेदयित्वा, मेलयित्वा। वस्तुतः ये विवाद के प्रकार नहीं, किन्तु वादी और प्रतिवादी द्वारा अपनी विजयवैजयन्ती फहराने के लिये प्रयुक्त की जाने वाली युक्तियों के प्रयोग हैं। टीकाकार ने यहाँ विवाद का अर्थ "जल्प" किया है।

जैसे—(१) निश्चित समय पर यदि वादी की वाद करने की तैयारी नहीं हैं तो वह स्वयं बहाना बनाकर सभास्थान का त्याग कर देता है। या प्रतिवादी को वहाँ से हटा देता है। जिससे वाद में विलम्ब होने के कारण वह उस समय अपनी तैयारी कर लेता है।

---

११४. स्थानांग सूत्र—स्थान-४, सूत्र ३३८।
११५. चरक. विमान स्थान, अ. ८ सूत्र ३३।
११६. चरक विमानस्थान अ. ८ सूत्र ४१।
११७. स्थानांग सूत्र स्थान ४ सूत्र २५८।
११८. स्थानांग सूत्र स्थान ३ सूत्र १८५॥
११९. न्यायावतार वार्तिक वृत्ति-कारिका ३॥
१२०. न्यायावतार, वार्तिक वृत्ति के टिप्पण पृ. १४८ से १५१ तक
१२१. स्थानांग सूत्र स्थान—९ सूत्र ३८२
१२२. बृहत्कल्प भाष्य—६०३५
१२३. स्थानांग सूत्र—स्थान ६ सूत्र ५१२

(२) जब वादी को यह अनुभव होने लगता है कि मेरे विजय का अवसर आ चुका है, तब वह सोल्लास बोलने लगता है और प्रतिवादी को प्रेरणा देकर के वाद का शीघ्र प्रारम्भ कराता है।[१२४]

(३) वादी सामनीति से विवादाध्यक्ष को अपने अनुकूल बनाकर वाद का प्रारम्भ करता है। या प्रतिवादी को अनुकूल बनाकर वाद प्रारम्भ कर देता है। उसके पश्चात् उसे वह पराजित कर देता है।[१२५]

(४) यदि वादी को यह आत्म-विश्वास हो कि प्रतिवादी को हराने में वह पूर्ण समर्थ है तो वह सभापति और प्रतिवादी को अनुकूल न बनाकर प्रतिकूल ही बनाता है और प्रतिवादी को पराजित करता है।

(५) अध्यक्ष की सेवा करके वाद करना।

(६) जो अपने पक्ष में व्यक्ति हैं उन्हें अध्यक्ष से मेल कराता है। और प्रतिवादी के प्रति अध्यक्ष के मन में द्वेष पैदा करता है।

स्थानांग में वादकथा के दश दोष गिनाये हैं।[१२६] वे इस प्रकार हैं—

(१) **तज्जातदोष**—प्रतिवादी के कुल का निर्देश करके उसके पश्चात् दूषण देना अथवा प्रतिवादी की प्रकृष्ट प्रतिभा से विक्षुब्ध होने के कारण वादी का चुप होजाना।

(२) **मतिभंग** –वाद-प्रसंग में प्रतिवादी या वादी का स्मृतिभ्रंश होना।

(३) **प्रशास्तृदोष**—वाद-प्रसंग में सभ्य या सभापति-पक्षपाती होकर जय-दान करें या किसी को सहायता दें।

(४) **परिहरण**—सभा के नियम-विरुद्ध चलना या दूषण का परिहार जात्युत्तर से करना।

(५) **स्वलक्षण** –अतिव्याप्ति आदि दोष।

(६) **कारण**—युक्तिदोष।

(७) **हेतुदोष**—असिद्धादि हेत्वाभास।

(८) **संक्रमण**—प्रतिज्ञान्तर करना। या प्रतिवादी के पक्ष को मानना। टीकाकार ने टीका में लिखा है—प्रस्तुत प्रमेय की चर्चा का त्यागकर अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना।

(९) **निग्रह**—छलादि के द्वारा प्रतिवादी को निगृहीत करना।

(१०) **वस्तुदोष**—पक्ष-दोष अर्थात् प्रत्यक्षनिराकृत आदि।

न्यायशास्त्र में इन सभी दोषों के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन है। अतः इस सम्बन्ध में यहां विशेष विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है।

स्थानांग में विशेष प्रकार के दोष भी बताये हैं और टीकाकार ने उस पर विशेष-वर्णन भी किया है। छह प्रकार के वाद के लिये प्रश्नों का वर्णन है। नयवाद[१२७] का और निह्नववाद[१२८] का वर्णन है। जो उस युग के अपनी दृष्टि से चिन्तक रहे हैं। बहुत कुछ वर्णन जहाँ-तहाँ बिखरा पड़ा है। यदि विस्तार के साथ तुलनात्मक दृष्टि से चिन्तन किया जाये तो दर्शन-सम्बन्धी अनेक अज्ञात-रहस्य उद्घाटित हो सकते हैं।

---

१२४. तुलना कीजिये चरक विमान स्थान अ. ८ सूत्र २१
१२५. तुलना कीजिये चरक विमान स्थान अ. ८ सूत्र १६
१२६. स्थानांग सूत्र स्थान १० सूत्र ७४३
१२७. स्थानांग सूत्र स्थान ७
१२८. स्थानांग सूत्र स्थान ७

आचार-विश्लेषण

दर्शन की तरह आचार सम्बन्धी वर्णन भी स्थानांग मे वहुत ही विस्तार के साथ किया गया है। आचार-संहिता के सभी मूलभूत तत्त्वों का निरूपण इसमें किया गया है।

धर्म के दो भेद हैं—सागार-धर्म और अनगार-धर्म ! सागार-धर्म-सीमित मार्ग है। वह जीवन की सरल और लघु पगडण्डी है। गृहस्थ धर्म अणु अवश्य है किन्तु हीन और निन्दनीय नही है। इसलिये सागार धर्म का आचारण करने वाला व्यक्ति श्रमणोपासक या उपासक कहलाता है।[१२९] स्थानांग मे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चरित्र को मुक्ति का मार्ग कहा है।[१३०] उपासकजीवन में सर्वप्रथम सत्य के प्रति आस्था होती है। सम्यग्दर्शन के आलोक में ही वह जड़ और चेतन, संसार और मोक्ष, धर्म और अधर्म का परिज्ञान करता है। उस की यात्रा का लक्ष्य स्थिर हो जाता है। उस का सोचना समझना और बोलना, सभी कुछ विलक्षण होता है। उपासक के लिये **"अभिगयजीवाजीवे"** यह विशेषण आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर व्यवहृत हुआ है। स्थानांग के द्वितीय स्थान में इस सम्बन्ध में-अच्छा चिन्तन प्रस्तुत किया है।[१३१] मोक्ष की उपलब्धि के साधनों के विषय, में सभी दार्शनिक एकमत नहीं है। जैन दर्शन न एकान्त ज्ञानवादी है, न क्रियावादी है, न भक्तिवादी है। उनके अनुसार ज्ञान-क्रिया और भक्ति का समन्वय ही मोक्षमार्ग है। स्थानांग में[१३२] "विज्जाए चेव चरणेण चेव" के द्वारा इस सत्य को उद्घाटित किया है।

स्थानांग[१३३] में उपासक के लिये पाँच अणुव्रतों का भी उल्लेख है। उपासक को अपना जीवन, व्रत से युक्त बनाना चाहिये। श्रमणोपासक की श्रद्धा और वृत्ति की भिन्नता के आधार पर इस को चार भागों में विभक्त किया है। जिन के अन्तर्मानस में श्रमणों के प्रति प्रगाढ वात्सल्य होता है, उन की तुलना माता-पिता से की है।[१३४] वे तत्त्वचर्चा और जीवननिर्वाह इन दोनों प्रसंगों में वात्सल्य का परिचय देते हैं। कितने ही श्रमणोपासकों के अन्तर्मन में वात्सल्य भी होता है और कुछ उग्रता भी रही हुयी होती है। उनकी तुलना भाई से की गयी है। वैसे श्रावक तत्त्वचर्चा के प्रसंगों में निष्ठुरता का परिचय देते हैं। किन्तु जीवन-निर्वाह के प्रसंग में उनके हृदय में वत्सलता छलकती है। किनने ही श्रमणोपासकों में सापेक्ष वृत्ति होती है। यदि किसी कारणवश प्रीति नष्ट हो गयी तो वे उपेक्षा भी करते हैं। वे अनुकूलता के समय वात्सल्य का परिचय देते हैं और प्रतिकूलता के समय उपेक्षा भी कर देते हैं। कितने ही श्रमणोपासक ईर्ष्या के वशीभूत होकर श्रमणों में दोष ही निहारा करते हैं। वे किसी भी रूप में श्रमणों का उपकार नहीं करते हैं। उनके व्यवहार की तुलना सौत से की गई है।

प्रस्तुत आगम में[१३५] श्रमणोपासक की आन्तरिक योग्यता के आधार पर चार वर्ग किये हैं।

(१) कितने ही श्रमणोपासक दर्पण के समान निर्मल होते हैं। वे तत्त्वनिरूपण के यथार्थ प्रतिविम्ब को ग्रहण करते हैं।

(२) कितने ही श्रमणोपासक ध्वजा की तरह अनवस्थित होते हैं। ध्वजा जिधर भी हवा होती है, उधर ही मुड़ जाती है। उसी प्रकार उन श्रमणोपासकों का तत्त्वबोध अनवस्थित होता है। निश्चित-बिन्दु पर उन के विचार स्थिर नहीं होते।

---

१२९. स्थानांग सूत्र स्थान २ सूत्र ७२

१३०. स्थानांग सूत्र स्थान-३ सूत्र-४३ से-१३७।

१३१. स्थानांग सूत्र स्थान-२ सूत्र—

१३२. स्थानांग सूत्र स्थान-२ सूत्र ४०

१३३. स्थानांग सूत्र स्थान-५. सूत्र ३८९

१३४. स्थानांग सूत्र-स्थान ४ सूत्र ४३०

१३५. स्थानांग सूत्र स्थान-४ सूत्र ४३१

(३) कितने ही श्रमणोपासक स्थाणु की तरह प्राणहीन और शुष्क होते हैं। उनमें लचीलापन नहीं होता। वे आग्रही होते हैं।

(४) कितने ही श्रमणोपासक काँटे के सदृश होते हैं। काँटे की पकड़ बड़ी मजबूत होती है। वह हाथ को बींध देता है। वस्त्र भी फाड़ देता है। वैसे ही कितने ही श्रमणोपासक कदाग्रह से ग्रस्त होते हैं। श्रमण कदाग्रह छुड़वाने के लिये उसे तत्त्वबोध प्रदान करते हैं। किन्तु वे तत्त्वबोध को स्वीकार नहीं करते। अपितु तत्त्वबोध प्रदान करने वाले को दुर्वचनों के तीक्ष्ण काँटों से बेध देते हैं। इस तरह श्रमणोपासक के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री है।

श्रमणोपासक की तरह ही श्रमणजीवन के सम्बन्ध में भी स्थानांग में महत्त्वपूर्ण सामग्री का संकलन हुआ है। श्रमण का जीवन अत्यन्त उग्र साधना का है। जो धीर, वीर और साहसी होते हैं, वे इस महामार्ग को अपनाते हैं। श्रमणजीवन, हर साधक, जो मोक्षाभिलाषी है, स्वीकार कर सकता है। स्थानांग में प्रव्रज्याग्रहण करने के दश कारण बताये हैं।[१३६] यों अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु प्रमुख कारणों का निर्देश किया गया है। वृत्तिकार[१३७] ने दश प्रकार की प्रव्रज्या के उदाहरण भी दिये हैं। (१) छन्दा - अपनी इच्छा से विरक्त होकर प्रव्रज्या धारण करना (२) रोषा—क्रोध के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना (३) दारिद्रयच्यूना—गरीबी के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना। (४) स्वप्ना—स्वप्न से वैराग्य उत्पन्न होकर दीक्षा लेना। (५) प्रतिश्रुता—पहले की गयी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिये प्रव्रज्या ग्रहण करना! (६) स्मारणिका—पूर्व भव की स्मृति के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना! (७) रोगिनिका—रुग्णता के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना! (८) अनादृता—अपमान के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना (९) देवसंज्ञप्तता—देवताओं के द्वारा संबोधित किये जाने पर प्रव्रज्या ग्रहण करना (१०) वत्सानुबंधिका—दीक्षित पुत्र के स्नेह के कारण प्रव्रज्या ग्रहण करना।

श्रमण प्रव्रज्या के साथ ही स्थानांग में श्रमणधर्म की सम्पूर्ण आचारसंहिता दी गई है। उसमें पाँच महाव्रत, अष्ट प्रवचनमाता, नव ब्रह्मचर्य गुप्ति, परीषहविजय, प्रत्याख्यान, पाँच-परिज्ञा, बाह्य और आभ्यन्तर तप, प्रायश्चित्त, आलोचना करने का अधिकारी, आलोचना के दोष, प्रतिक्रमण के प्रकार, विनय के प्रकार, वैयावृत्य के प्रकार, स्वाध्याय-ध्यान, अनुप्रेक्षाएँ मरण के प्रकार, आचार के प्रकार, संयम के प्रकार, आहार के कारण, गोचरी के प्रकार, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, भिक्षु-प्रतिमाएँ, प्रतिलेखना के प्रकार, व्यवहार के प्रकार, संघ-व्यवस्था, आचार्य-उपाध्याय के अतिशय, गण-छोड़ने के कारण, शिष्य और स्थविर, कल्प, समाचारी सम्भोग-विसम्भोग, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के विशिष्ट नियम आदि श्रमणाचार-सम्बन्धी नियमोपनियमों का वर्णन है। जो नियम अन्य आगमों में बहुत विस्तार के साथ आये हैं। उनका संक्षेप में यहाँ सूचन किया है। जिससे श्रमण उन्हें स्मरण रखकर सम्यक् प्रकार से उनका पालन कर सके।

तुलनात्मक अध्ययन : आगम के आलोक में—

स्थानांग सूत्र में शताधिक विषयों का संकलन हुआ है। इसमें जो सत्य-तथ्य प्रकट हुए हैं उनकी प्रतिध्वनि अन्य आगमों में निहारी जा सकती है। कहीं-कहीं पर विषय-साम्य हैं तो कहीं-कहीं पर शब्द-साम्य है। स्थानांग के विषयों की अन्य आगमों के साथ तुलना करने से प्रस्तुत आगम का सहज ही महत्त्व परिज्ञात होता हैं। हम यहाँ बहुत ही संक्षेप में स्थानांगगत-विषयों की तुलना अन्य आगमों के आलोक में कर रहे हैं।

स्थानांग[१३८] में द्वितीय सूत्र है "एगे आया"। यही सूत्र समवायांग[१३९] में भी शब्दशः मिलता है। भगवती[१४०] में इसी का द्रव्य दृष्टि से निरूपण है।

१३६. स्थानांग सूत्र स्थान—१० सूत्र ७१२
१३७. स्थानांग सूत्र वृत्ति पत्र—पृ. ४४९
१३८. स्थानांग सूत्र-स्थान-१० सूत्र २ मुनि कन्हैयालालजी सम्पादित
१३९. समवायांग सूत्र-समवाय-१० सूत्र-१
१४०. भगवती सूत्र-शतक १२ उद्दे० १०

स्थानांग का चतुर्थ सूत्र "एगा किरिया" है।[१४१] समवायांग[१४२] मे भी इसका शब्दशः उल्लेख है। भगवती[१४३] और प्रज्ञापना[१४४] मे भी क्रिया के सम्बन्ध में वर्णन है।

स्थानांग[१४५] में पाँचवाँ सूत्र है—"एगे लोए"! समवायांग[१४६] में भी इसी तरह का पाठ है। भगवती[१४७] और औपपातिक[१४८] में भी यही स्वर मुखरित हुआ है।

स्थानांग[१४९] में सातवाँ सूत्र है—एगे धम्मे। समवायांग[१५०] में भी यह पाठ इसी रूप में मिलता है। सूत्रकृतांग[१५१] और भगवती[१५२] में भी इसका वर्णन है।

स्थानांग[१५३] का आठवाँ सूत्र है—"एगे अधम्मे"। समवायांग[१५४] में यह सूत्र इसी रूप में मिलता है। सूत्रकृतांग[१५५] और भगवती[१५६] में भी इस विषय को देखा जा सकता है।

स्थानांग[१५७] का ग्यारहवाँ सूत्र है—'एगे पुण्णे'। समवायांग[१५८] में भी इसी तरह का पाठ है, सूत्रकृतांग[१५९] और औपपातिक[१६०] में भी यह विषय इसी रूप में मिलता है।

स्थानांग[१६१] का बारहवाँ सूत्र है—'एगे पावे'! समवायांग[१६२] में यह सूत्र इसी रूप में आया है। सूत्रकृतांग[१६३] और औपपातिक[१६४] में भी इस का निरूपण हुआ है।

---

१४१. स्थानांग अ. १ सूत्र ४
१४२. समवायांग सम. १ सूत्र ५
१४३. भगवती शतक १ उद्दे. ६
१४४. प्रज्ञापना सूत्र पद १६
१४५. स्थानांग अ. १ सूत्र-५
१४६. समवायांग सम-१ सूत्र ७
१४७. भगवती शत. १२ उ. ७ सूत्र ७
१४८. औपपातिक सूत्र-५६
१४९. स्थानांग अ. १ सूत्र ७
१५०. समवायांग सम. १ सूत्र-९
१५१. सूत्रकृतांग श्रु. २ अ. ५
१५२. भगवती शत. २० उ. २
१५३. स्थानांग अ. १ सूत्र ८
१५४. समवायांग सम. १ सूत्र-१०
१५५. सूत्रकृतांग श्रु. २ अ. ५
१५६. भगवती शत. २० उ. २
१५७. स्थानांग अ. १ सू० ११
१५८. समवायांग सम. १ सू. ११
१५९. सूत्रकृतांग-श्रु. २ अ. ५
१६०. औपपातिक-सूत्र—३४
१६१. स्थानांग सूत्र अ. १ सूत्र-१२
१६२. समवायांग १ सूत्र १२
१६३. सूत्रकृतांग श्रु. २ अ. ५
१६४. औपपातिक सूत्र ३४

स्थानांग[१६५] का नवम सूत्र 'एगे बन्धे' है और दशवाँ सूत्र 'एगे मोक्खे' है। समवायांग[१६६] में ये दोनों सूत्र इसी रूप में मिलते हैं। सूत्रकृतांग[१६७] और औपपातिक[१६८] में भी इसका वर्णन हुआ है।

स्थानांग[१६९] का तेरहवाँ सूत्र 'एगे आसवे' चौदहवाँ सूत्र "एगे संवरे" पन्द्रहवाँ सूत्र 'एगा वेयणा' और सोलहवाँ सूत्र "एगा निर्जरा" हैं। यही पाठ समवायांग[१७०] में मिलता है और सूत्रकृतांग[१७१] और औपपातिक[१७२] में भी इन विषयों का इस रूप में निरूपण हुआ है।

स्थानांग[१७३] सूत्र के पचपनवें सूत्र में आर्द्रा नक्षत्र, चित्रा नक्षत्र, स्वाति नक्षत्र का वर्णन है। वही वर्णन समवायांग[१७४] और सूर्यप्रज्ञप्ति[१७५] में भी है।

स्थानांग[१७६] के सूत्र तीन सौ अट्ठावीस में अप्रतिष्ठान नरक, जम्बूद्वीप पालकयानविमान आदि का वर्णन है। उसकी तुलना समवायांग[१७७] के उन्नीस, बीस, इकवीस, और बावीसवें सूत्र से की जा सकती है, और साथ ही जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति[१७८] और प्रज्ञापना[१७९] पद से भी।

स्थानांग[१८०] के ९५वें सूत्र में जीव-अजीव आवलिका का वर्णन है। वही वर्णन समवायांग[१८१], प्रज्ञापना[१८२], जीवाभिगम[१८३], उत्तराध्ययन[१८४] में है।

स्थानांग[१८५] के सूत्र ९६ में बन्ध आदि का वर्णन है। वैसा ही वर्णन प्रश्नव्याकरण[१८६], प्रज्ञापना[१८७], और उत्तराध्ययन[१८८] सूत्र में भी है।

---

१६५. स्थानांग अ-१ सूत्र ९, १०
१६६. समवायांगसूत्र १ सम १ सूत्र १३, १४
१६७. सूत्रकृतांगसूत्र श्रु-२ अ. ५
१६८. औपपातिकसूत्र-३४
१६९. स्थानांगसूत्र अ-१ सूत्र १३, १४, १५, १६
१७०. समवायांगसूत्र सम १ सूत्र-१५, १६, १७, १८,
१७१. सूत्रकृतांगसूत्र श्रुत. २ अ. ५
१७२. औपपातिकसूत्र—३४
१७३. स्थानांगसूत्र सूत्र–५५
१७४. समवायांगसूत्र २३, २४, २५
१७५. सूर्यप्रज्ञप्ति, प्रा. १०, प्र. ९
१७६. स्थानांगसूत्र, सूत्र ३२८
१७७. समवायांगसूत्र, सम-१, सूत्र १९, २०, २१, २२
१७८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र-वक्ष-१ सूत्र ३
१७९. प्रज्ञापनासूत्र-पद-२
१८०. स्थानांगसूत्र, अ. ४ उ. ४ सूत्र ९५
१८१. समवायांगसूत्र १४९
१८२. प्रज्ञापना पद. १ सूत्र-१
१८३. जीवाभिगम प्रति. १ सूत्र-१
१८४. उत्तराध्ययन अ. ३६
१८५. स्थानांगसूत्र अ. २ उ. ४ सूत्र-९६
१८६. प्रश्नव्याकरण ५ वाँ
१८७. प्रज्ञापना पद २३
१८८. उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३१

स्थानांगसूत्र[१८९] ११० वें सूत्र में पूर्व भाद्रपद आदि के तारों का वर्णन है तो सूर्यप्रज्ञप्ति[१९०] और समवायांग[१९१] में भी वह वर्णन मिलता है।

स्थानांगसूत्र[१९२] १२६ वें सूत्र में तीन गुप्तियाँ एवं तीन दण्डकों का वर्णन है। समवायांग,[१९३] प्रश्नव्याकरण,[१९४] उत्तराध्ययन[१९५] और आवश्यक[१९६] में भी यह वर्णन है।

स्थानांगसूत्र[१९७] १८२ वें सूत्र में उपवास करनेवाले श्रमण को कितने प्रकार के धोवन पानी लेना कल्पता है, यह वर्णन समवायांग[१९८], प्रश्नव्याकरण[१९९], उत्तराध्ययन[२००] और आवश्यक सूत्र[२०१] में प्रकारान्तर से आया है।

स्थानांगसूत्र[२०२] २१४ में विविध दृष्टियों से ऋद्धि के तीन प्रकार बताये हैं। उसी प्रकार का वर्णन समवायांग[२०३], प्रश्नव्याकरण[२०४] में भी आया है।

स्थानांगसूत्र[२०५] २२७ वें सूत्र में अभिजित, श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगशिर, पुष्य, ज्येष्ठा के तीन-तीन तारे कहे हैं। वही वर्णन समवायांग[२०६] और सूर्यप्रज्ञप्ति[२०७] में भी प्राप्त है।

स्थानांगसूत्र[२०८] २४७ में चार ध्यान का और प्रत्येक ध्यान के लक्षण. आलम्बन बताये गये हैं, वैसा ही वर्णन समवायांग[२०९], भगवती[२१०], और औपपातिक[२११] में भी है।

---

१८९. स्थानांगसूत्र—अ. २, उ. ४, सूत्र ११०
१९०. सूर्यप्रज्ञप्ति—प्रा. १०, प्रा. ९, सूत्र ४२
१९१. समवायांगसूत्र—सम. २, सूत्र ५
१९२. स्थानांगसूत्र, अ. ३. उ. १, सूत्र १२६
१९३. समवायांग, सम. ३, सूत्र १
१९४. प्रश्नव्याकरणसूत्र, ५वाँ संवरद्वार
१९५. उत्तराध्ययनसूत्र, अ. ३१
१९६. आवश्यकसूत्र, अ. ४
१९७. स्थानांगसूत्र, अ. ३, उ. ३, सूत्र १८२
१९८. समवायांग, सम. ३, सूत्र ३
१९९. प्रश्नव्याकरण सूत्र, ५वाँ संवरद्वार
२००. उत्तराध्ययन, अ. ३१
२०१. आवश्यकसूत्र, अ. ४
२०२. स्थानांग, अ. ३, उ. ४, सूत्र २१४
२०३. समवायांग, सम. ३, सूत्र ४
२०४. प्रश्नव्याकरण, ५वाँ संवरद्वार
२०५. स्थानांग, अ. ३, उ. ४, सूत्र २२७
२०६. समवायांग, ३, सूत्र ७
२०७. सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, प्रा. १०, प्रा. ९, सूत्र ४२
२०८. स्थानांगसूत्र, अ. ४, उ. १, सूत्र २४७
२०९. समवायांग, सम. ४, सूत्र २
२१०. भगवती, शत. २५, उ. ७, सूत्र २८२
२११. औपपातिक सूत्र, ३०

स्थानांगसूत्र २४९[212] में चार कषाय, उनकी उत्पत्ति के कारण, आदि निरूपित है। वैसे ही समवायांग[213] और प्रज्ञापना[214] में भी वह वर्णन है।

स्थानांगसूत्र[215] के सूत्र २८२ में चार विकथाएं और विकथाओं के प्रकार का विस्तार से निरूपण है। वैसा वर्णन समवायांग[216] और प्रश्नव्याकरण[217] में भी मिलता है।

स्थानांगसूत्र[218] के ३५६वें सूत्र में चार संज्ञाओं और उनके विविध प्रकारों का वर्णन है। वैसा ही वर्णन समवायांग, प्रश्नव्याकरण[219] और प्रज्ञापना[220] में भी प्राप्त है।

स्थानांग सूत्र ३८६[221] में अनुराधा, पूर्वाषाढ़ा के चार-चार ताराओं का वर्णन है। वही वर्णन समवायांग[222] सूर्यप्रज्ञप्ति[223] आदि में भी है।

स्थानांगसूत्र[224] के ६३४ में मगध का योजन आठ हजार धनुष का बताया है। वही वर्णन समवायांग[225] में भी है।

तुलनात्मक अध्ययन : बौद्ध और वैदिक ग्रन्थ—

स्थानांग के अन्य अनेक सूत्रों में आये हुये विषयों की तुलना अन्य आगमों के साथ भी की जा सकती है। किन्तु विस्तारभय से हम ने संक्षेप में ही सूचन किया है। अब हम स्थानांग के विषयों की तुलना बौद्ध और वैदिक ग्रन्थों के साथ कर रहे हैं। जिससे यह परिज्ञात हो सके कि भारतीय संस्कृति कितनी मिली-जुली रही है। एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति पर कितना प्रभाव रहा है।

स्थनांग[226] में बताया है कि छह कारणों से आत्मा उन्मत्त होता है। अरिहंत का अवर्णवाद करने से, धर्म का अवर्णवाद करने से, चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करने से, यक्ष के आवेश से, मोहनीय कर्म के उदय से; तो तथागत बुद्ध ने भी अंगुत्तरनिकाय[227] में कहा है—चार अचिन्तनीय की चिन्ता करने से मानव उन्मादी हो जाता है—(१) तथागत बुद्ध भगवान् के ज्ञान का विषय, (२) ध्यानी के ध्यान का विषय, (३) कर्मविपाक, (४) लोकचिन्ता।

---

२१२. स्थानांग, अ. ४, उ. १, सूत्र २४९
२१३. समवायांग, सग. ४, सूत्र १
२१४. प्रज्ञापना, पद. १४, सूत्र १८६
२१५. स्थानांग, अ. ४, उ. २, सूत्र २८२
२१६. प्रश्नव्याकरण, ५वाँ संवरद्वार
२१७. समवायांग—सम. ४, सूत्र ४
२१८. स्थानांगसूत्र—अ. ४, उ. ४, सूत्र ३५६
२१९. समवायांग, सम. ४, सूत्र ४
२२०. प्रज्ञापना सूत्र, पद ८
२२१. स्थानांग सूत्र—अ. ४, सूत्र ४८६
२२२. समवायांग, सम. ४, सूत्र ७
२२३. सूर्यप्रज्ञप्ति, प्रा १०, प्रा ९, सूत्र ४२
२२४. स्थानांगसूत्र—अ. ८, उ. १, सूत्र ६३४
२२५. समवायांग सूत्र—सम. ४, सूत्र ६
२२६. स्थानांग—स्थान-६
२२७. अंगुत्तरनिकाय ४-७७

स्थानांग[२२८] में जिन कारणों से आत्मा के साथ कर्म का बन्ध होता है, उन्हें आश्रव कहा है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, ये आश्रव हैं। बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय[२२९] में आश्रव का मूल "अविद्या" बताया है। अविद्या के निरोध से आश्रव का अपने आप निरोध होता है। आश्रव के कामाश्रव, भवाश्रव, अविद्याश्रव, ये तीन भेद किये हैं। मज्झिमनिकाय[२३०] के अनुसार मन, वचन और काय की क्रिया को ठीक-ठीक करने से आश्रव रुकता है। आचार्य उमास्वाति[२३१] ने भी काय-वचन और मन की क्रिया को योग कहा है वही आश्रव है।

स्थानांग सूत्र में विकथा के स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, मृदुकारुणिककथा, दर्शनभेदिनीकथा और चारित्रभेदनीकथा, ये सात प्रकार बताये हैं।[२३२] बुद्ध ने विकथा के स्थान पर 'तिरच्छान' शब्द का प्रयोग किया है। उसके राजकथा, चोरकथा, महामात्यकथा, सेनाकथा, भयकथा, युद्धकथा, अन्नकथा, पानकथा, वस्त्रकथा, शयनकथा, मालाकथा, गन्धकथा, ज्ञातिकथा, यानकथा, ग्रामकथा, निगमकथा, नगरकथा, जनपदकथा, स्त्रीकथा, आदि अनेक भेद किये हैं।[२३३]

स्थानांग[२३४] में राग और द्वेष से पाप कर्म का बन्ध बताया है। अंगुत्तर निकाय[२३५] में तीन प्रकार से कर्मसमुदय माना है—लोभज, दोषज, और मोहज। इनमें भी सब से अधिक मोहज को दोषजनक माना है।[२३६]

स्थानांग[२३७] में जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद ये आठ मदस्थान बताये हैं तो अंगुत्तरनिकाय[२३८] में मद के तीन प्रकार बताये हैं—यौवन, आरोग्य और जीवितमद। इन मदों से मानव दुराचारी बनता है।

स्थानांग[२३९] में आश्रव के निरोध को संवर कहा है और उसके भेद-प्रभेदों की चर्चा भी की गयी है। तथागत बुद्ध ने अंगुत्तरनिकाय में कहा है[२४०] कि आश्रव का निरोध केवल संवर से ही नहीं होता प्रत्युत[२४१] (१) संवर से (२) प्रतिसेवना से (३) अधिवासना से (४) परिवर्जन से (५) विनोद से (६) भावना से होता है, इन सभी में भी अविद्यानिरोध को ही मुख्य आश्रवनिरोध माना है।

स्थानांग[२४२] में अरिहन्त, सिद्ध, साधु, धर्म, इन चार शरणों का उल्लेख है, तो बुद्ध ने 'बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि' इन तीन को महत्त्व दिया है।

---

२२८. स्थानांग—स्था. ५, सूत्र ४१८
२२९. अंगुत्तर निकाय—३-५८, ६-६३
२३०. मज्झिमनिकाय—१-१-२
२३१. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ६, सूत्र १,२
२३२. स्थानांगसूत्र स्थान—७, सूत्र ५६९
२३३. अंगुत्तरनिकाय १०, ६९
२३४. स्थानांग ९६
२३५. अंगुत्तरनिकाय ३।३
२३६. अंगुत्तरनिकाय ३।९७, ३।३९
२३७. स्थानांग ६०६
२३८. अंगुत्तरनिकाय ३।३९
२३९. स्थानांग ४२७
२४०. अंगुत्तरनिकाय ६।५८
२४१. अंगुत्तरनिकाय ६।६३
२४२. स्थानांगसूत्र-४,

स्थानांग[२४३] में श्रमणोपासकों के लिये पांच अणुव्रतों का उल्लेख है तो अंगुत्तरनिकाय[२४४] में बौद्ध उपासकों के लिये पाँच शील का उल्लेख है। प्राणातिपातविरमण, अदत्तादानविरमण, कामभोगमिथ्याचार से विरमण, मृषावाद से विरमण, सुरा-मेरिय मद्य-प्रमाद स्थान से विरमण।

स्थानांग[२४५] में प्रश्न के छह प्रकार बताये हैं—संशयप्रश्न, मिथ्याभिनिवेशप्रश्न, अनुयोगी प्रश्न, अनुलोम-प्रश्न, जानकर किया गया प्रश्न, न जानने से किया गया प्रश्न, अंगुत्तरनिकाय[२४६] में बुद्ध ने कहा—'कितने ही प्रश्न ऐसे होते हैं, जिनके एक अंश का उत्तर देना चाहिये। कितने ही प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका प्रश्नकर्ता से प्रतिप्रश्न कर उत्तर देना चाहिये। कितने ही प्रश्न ऐसे होते हैं, जिनका उत्तर नहीं देना चाहिये।'

स्थानाङ्ग में छह लेश्याओं का वर्णन है।[२४७] वैसे ही अंगुत्तरनिकाय[२४८] में पूरणकश्यप द्वारा छह अभिजातियों का उल्लेख है, जो रंगों के आधार पर निश्चित की गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) **कृष्णाभिजाति**—बकरी, सुअर, पक्षी, और पशु-पक्षी पर अपनी आजीविका चलानेवाला मानव कृष्णाभिजाति है।

(१) **नीलाभिजाति**—कंटकवृत्ति भिक्षुक नीलाभिजाति है—बौद्धभिक्षु और अन्य कर्म करने वाले भिक्षुओं का समूह।

(३) **लोहिताभिजाति**—एकशाटक निर्ग्रन्थों का समूह।

(४) **हरिद्राभिजाति**—श्वेतवस्त्रधारी या निर्वस्त्र।

(५) **शुक्लाभिजाति**—आजीवक श्रमण-श्रमणियों का ससूह।

(६) **परमशुक्लाभिजाति**—आजीवक आचार्य, नन्द, वत्स, कृश, सांकृत्य, मस्करी, गोशालक, आदि का समूह।

आनन्द ने गौतम बुद्ध से इन छह अभिजातियों के सम्बन्ध में पूछा-तो उन्होंने कहा कि मैं भी छह अभिजातियों की प्रज्ञापना करता हूं।

(१) कोई पुरुष कृष्णाभिजातिक (नीच कुल में उत्पन्न) होकर कृष्णकर्म तथा पापकर्म करता है।

(२) कोई पुरुष कृष्णाभिजातिक होकर धर्म करता है।

(३) कोई पुरुष कृष्णाभिजातिक हो, अकृष्ण, अशुक्ल निर्वाण को पैदा करता है।

(४) कोई पुरुष शुक्लाभिजातिक (ऊंचे कुल में समुत्पन्न होकर) शुक्ल कर्म करता है।

(५) कोई पुरुष शुक्लाभिजातिक हो कृष्ण कर्म करता है।

(६) कोई पुरुष शुक्लाभिजातिक हो, अकृष्ण-अशुक्ल निर्वाण को पैदा करता है।[२४९]

---

२४३. स्थानांग, स्थान-५
२४४. अंगुत्तरनिकाय ८-२५
२४५. स्थानांग, स्थान-६, सूत्र ५३४
२४६. अंगुत्तरनिकाय-४२
२४७. स्थानाङ्ग ५१
२४८. अंगुत्तरनिकाय ६।६।३, भाग तीसरा, पृ. ३५, ९३-९४
२४९. अंगुत्तरानिकाय ६।६।३, भाग तीसरा पृ, ९३, ९४

महाभारत[२५०] में प्राणियों के छह प्रकार के वर्ण बताये हैं। सनत्कुमार ने दानवेन्द्र वृत्रासुर से कहा—प्राणियों के वर्ण छह होते हैं—कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हारिद्र और शुक्ल। इनमें से कृष्ण, धूम्र और नील वर्ण का सुख मध्यम होता है। रक्त वर्ण अधिक सह्य होता है, हारिद्र वर्ण सुखकर और शुक्ल वर्ण अधिक सुखकर होता है।

गीता[२५१] में गति के कृष्ण और शुक्ल ये दो विभाग किये हैं। कृष्ण गतिवाला पुनः पुनः जन्म लेता है और शुक्ल गतिवाला जन्म-मरण से मुक्त होता है।

धम्मपद[२५२] में धर्म के दो विभाग किये हैं। वहाँ वर्णन है कि पण्डित मानव को कृष्ण धर्म को छोड़कर शुक्ल धर्म का आचरण करना चाहिए।

पतंजलि[२५३] ने पातंजलयोगसूत्र में कर्म की चार जातियाँ प्रतिपादित की हैं। कृष्ण, शुक्ल कृष्ण, शुक्ल अशुक्ल अकृष्ण, ये क्रमशः अशुद्धतर, अशुद्ध, शुद्ध और शुद्धतर हैं। इस तरह स्थानांग सूत्र में आये हुये लेश्यापद से आंशिक दृष्टि से तुलना हो सकती है।

स्थानांग[२५४] में सुगत के तीन प्रकार बताये हैं—(१) सिद्धिसुगत, (२) देवसुगत (३) मनुष्यसुगत।

अंगुत्तरनिकाय में भी राग-द्वेष और मोह को नष्ट करनेवाले को सुगत कहा है।[२५४]

स्थानांग के अनुसार[२५५] पाँच कारणों से जीव दुर्गति में जाता है। वे कारण हैं—(१) हिंसा, (२) असत्य (३) चोरी (४) मैथुन (५) परिग्रह। अंगुत्तरनिकाय[२५६] में नरक जाने के कारणों पर चिन्तन करते हुये लिखा है—अकुशल कायकर्म, अकुशल वाक्कर्म, अकुशल मनःकर्म, सावद्य आदि कर्म।

श्रमण के लिये स्थानांग[२५७] में छह कारणों से आहार करने का उल्लेख है—(२) क्षुधा की उपशान्ति (२) वैयावृत्य (३) ईर्याशोधन (४) संयमपालन (५) प्राणधारण (६) धर्मचिन्तन। अंकुत्तरनिकाय में आनन्द ने एक श्रमणी को इसी तरह का उपदेश दिया है।[२५८]

स्थानांग[२५९] में इहलोक भय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात् भय, वेदनाभय, मरणभय, अश्लोकभय, आदि भयस्थान बताये हैं तो अंगुत्तरनिकाय[२६०] में भी जाति, जन्म, जरा, व्याधि, मरण, अग्नि, उदक, राज, चोर, आत्मानुवाद—अपने दुश्चरित का विचार (दूसरे मुझे दुश्चरित्रवान् कहेंगे यह भय), दण्ड, दुर्गति, आदि अनेक भयस्थान बताये हैं।

---

२५०. महाभारत, शान्तिपर्व २८०।३३
२५१. गीता ८।२६
२५२. धम्मपद पण्डितवग्ग, श्लोक १९
२५३. पातंजलयोगसूत्र ४।७
२५४. स्थानांगसूत्र—१८४
२५४. अंगुत्तरनिकाय ३।७२
२५५. स्थानांग ३९१।
२५६. अंगुत्तरनिकाय ३।७२
२५७. स्थानांग ५००
२५८. अंगुत्तरनिकाय ४।१५९
२५९. स्थानांग ५४९
२६०. अंगुत्तरनिकाय ४।११९

स्थानांगसूत्र[२६१] में बताया है कि मध्यलोक में चन्द्र, सूर्य, मणि, ज्योति, अग्नि आदि से प्रकाश होता है। अंगुत्तरनिकाय[२६२] में आभा, प्रभा, आलोक, प्रज्योत, इन प्रत्येक के चार-चार प्रकार बताये हैं—चन्द्र, सूर्य, अग्नि और प्रज्ञा।

स्थानांग[२६३] में लोक को चौदह रज्जु कहकर उसमें जीव और अजीव द्रव्यों का सद्भाव बताया है। वैसे ही अंगुत्तरनिकाय[२६४] में भी लोक को अनन्त कहा है। तथागत बुद्ध ने कहा है—पांच कामगुण रूप रसादि यही लोक है। और जो मानव पांच कामगुणों का परित्याग करता है, वही लोक के अन्त में पहुँच कर वहाँ पर विचरण करता है।

स्थानांग[२६५] में भूकम्प के तीन कारण बताये हैं। (१) पृथ्वी के नीचे का घनवात व्याकुल होता है। उससे समुद्र में तूफान आता है। (२) कोई महेश महोरग देव अपने सामर्थ्य का प्रदर्शन करने के लिये पृथ्वी को चलित करता है। (३) देवासुर संग्राम जब होता है तब भूकम्प आता है। अंगुत्तरनिकाय[२६६] में भूकम्प के आठ कारण बताये हैं—पृथ्वी के नीचे की महावायु के प्रकम्पन से उस पर रही हुई पृथ्वी प्रकम्पित होती है। (२) कोई श्रमण ब्राह्मण अपनी ऋद्धि के बल से पृथ्वी-भावना को करता है। (३) जब बोधिसत्त्व माता के गर्भ में आते हैं। (४) जब बोधिसत्त्व माता के गर्भ से बाहर आते हैं। (५) जब तथागत अनुत्तर ज्ञान-लाभ प्राप्त करते हैं। (६) जब तथागत धर्म-चक्र का प्रवर्तन करते हैं। (७) जब तथागत आयु संस्कार को समाप्त करते हैं। (८) जब तथागत निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

स्थानांग[२६७] में चक्रवर्ती के चौदह रत्नों का उल्लेख है तो दीघनिकाय[२६८] में चक्रवर्ती के सात रत्नों का उल्लेख है।

स्थानांग[२६९] में बुद्ध के तीन प्रकार बताये हैं—ज्ञानबुद्ध, दर्शनबुद्ध और चारित्रबुद्ध तथा स्वयंसंबुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध और बुद्धबोधित। अंगुत्तरनिकाय[२७०] में बुद्ध के तथागतबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध ये दो प्रकार बताये हैं।

स्थानांग[२७१] में स्त्री के चरित्र का वर्णन करते हुए चतुर्भंगी बतायी है। वैसे ही अंगुत्तरनिकाय[२७२] में भार्या की सप्तभंगी बतायी है—(१) बधक के समान (२) चोर के समान (३) अय्य के समान (४) अकर्मकामा (५) आलसी (६) चण्डी (७) दुरुक्तवादिनी। माता के समान, भगिनी के समान, सखी के समान, दासी के समान स्त्री के ये अन्य प्रकार भी बताये हैं।

स्थानांग[२७३] में चार प्रकार के मेघ बताये हैं—(१) गर्जना करते हैं पर बरसते नहीं हैं (२) गर्जते नहीं

२६१. स्थानांग—स्थान ४
२६२. अंगुत्तरनिकाय ४।१४१, १४५
२६३. स्थानांगसूत्र ८
२६४. अंगुत्तरनिकाय ८।७०
२६५. स्थानांग—३
२६६. अंगुत्तरनिकाय ४।१४१, १४५
२६७. स्थानांग सूत्र—७
२६८. दीघनिकाय—१७
२६९. स्थानांग ३।१५६
२७०. अंगुत्तरनिकाय २।६।५
२७१. स्थानांग २७९
२७२. अंगुत्तरनिकाय ७।५९
२७३. स्थानांग ४।३४६

हैं, वरसते हैं (३) गर्जते है वरसते हैं (४) गर्जते भी नहीं, वरसते भी नहीं है। अंगुत्तरनिकाय[२७४] में प्रत्येक भंग में पुरुष को घटाया है—(१) बहुत बोलता है पर करता कुछ नहीं है (२) बोलता नहीं है पर करता है। (३) बोलता भी नहीं है करता भी नहीं (४) बोलता भी है और करता भी है। इस प्रकार गर्जना और वरसना रूप चतुर्भंगी अन्य रूप से घटित की गई है।

स्थानांग[२७५] में कुम्भ के चार प्रकार बताये हैं—(१) पूर्ण और अपूर्ण (२) पूर्ण और तुच्छ (३) तुच्छ और पूर्ण (४) तुच्छ और अतुच्छ। इसी तरह कुछ प्रकारान्तर से अंगुत्तरनिकाय[२७६] में भी कुम्भ की उपमा पुरुष चतुर्भंगी से घटित की है (१) तुच्छ—खाली होने पर ढक्कन होता है (२) भरा होने पर भी ढक्कन नहीं होता। (३) तुच्छ होता है पर ढक्कन नहीं होता। भरा हुआ होता है पर ढक्कन नहीं होता। (१) जिस की वेश-भूषा तो सुन्दर है किन्तु जिसे आर्यसत्य का परिज्ञान नहीं है, वह प्रथम कुम्भ के सदृश है। (२) आर्यसत्य का परिज्ञान होने पर भी वाह्य आकार सुन्दर नहीं है तो वह द्वितीय कुम्भ के समान है (३) वाह्य आकार भी सुन्दर नहीं और आर्यसत्य का परिज्ञान भी नहीं है।(४) आर्यसत्य का भी परिज्ञान है और वाह्य आकार भी सुन्दर है, वह तीसरे-चौथे कुंभ के समान है।

स्थानांग[२७७] में साधना के लिये शल्य-रहित होना आवश्यक माना है। मज्झिम निकाय[२७८] में तृष्णा के लिये शल्य शब्द का प्रयोग हुआ है और साधक को उस से मुक्त होने के लिये कहा गया है। स्थानांग[२७९] में नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव गति का वर्णन है। मज्झिमनिकाय[२८०] में पाँच गतियाँ बताई हैं। नरक, तिर्यक् प्रेत्यविषयक, मनुष्य और देवता। जैन आगमों में प्रेत्यविषय और देवता को एक कोटि में माना है। भले ही निवासस्थान की दृष्टि से दो भेद किये गये हों पर गति की दृष्टि से दोनों एक ही है। स्थानांग[२८१] में नरक और स्वर्ग में जाने के क्रमशः ये कारण बताये हैं—महारम्भ, महापरिग्रह, मद्यमांस का आहार, पंचेन्द्रियवध। तथा सराग संयम, संयमासंयम, बालतप और अकामनिर्जरा ये स्वर्ग के कारण हैं मज्झिमनिकाय[२८२] में भी नरक और स्वर्ग के कारण बताये गये हैं (कायिक, ३) हिंसक, अदिन्नादायी, (चोर) काम में मिथ्याचारी, (वाचिक ४) मिथ्यावादी चुगलखोर परुष-भाषी, प्रलापी (मानसिक, ३) अभिध्यालु व्यापन्नचित्त, मिथ्यादृष्टि। इन कर्मों को करने वाले नरक में जाते हैं, इसके विपरीत कार्य करने वाले स्वर्ग में जाते हैं।

स्थानांग[२८३] में बताया है कि तीर्थंकर, चक्रवर्ती, पुरुष ही होते हैं किन्तु मल्ली भगवती स्त्रीलिंग में तीर्थंकर हुई हैं। उन्हें दश आश्चर्यों में से एक आश्चर्य माना है। अंगुत्तरनिकाय[२८४] में बुद्ध ने भी कहा कि भिक्षु यह तनिक भी संभावना नहीं है कि स्त्री अर्हत्, चक्रवर्ती व शुक्र हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानांग विषय-सामग्री की दृष्टि से आगम-साहित्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण

---

२७४. अंगुत्तरनिकाय ४।११०
२७५. स्थानांग ४।३६०
२७६. अंगुत्तरनिकाय ४।१०३।
२७७. स्थानांग—सू. १८२
२७८. मज्झिमनिकाय—३-१-५
२७९. स्थानांग—स्थान ४
२८०. मज्झिमनिकाय १-२-२
२८१. स्थानांग—स्थान ४ उ. ४ सू. ३७३
२८२. मज्झिमनिकाय १-५-१
२८३. स्थानाङ्ग—स्थान १०
२८४. अंगुत्तरनिकाय

स्थान रखता है। यों सामान्य गणना के अनुसार इस में बारह सौ विषय हैं। भेद-प्रभेद की दृष्टि से विषयों की संख्या और भी अधिक है। यदि इस आगम का गहराई से परिशीलन किया जाए तो विविध विषयों का गम्भीर ज्ञान हो सकता है। भारतीय-ज्ञानगरिमा और सौष्ठव का इतना सुन्दर समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। इस में ऐसे अनेक सार्वभौम सिद्धान्तों का संकलन-आकलन हुआ है, जो जैन, बौद्ध और वैदिक-परम्पराओं के ही मूलभूत सिद्धान्त नहीं हैं अपितु आधुनिक विज्ञान-जगत् में वे मूलसिद्धान्त के रूप में वैज्ञानिकों के द्वारा स्वीकृत हैं। हर ज्ञानपिपासु और अभिसन्धित्सु को प्रस्तुत आगम अन्तस्तोष प्रदान करता है।

व्याख्या-साहित्य

स्थानांग सूत्र में विषय की बहुलता होने पर भी चिन्तन की इतनी जटिलता नहीं है, जिसे उद्घाटित करने के लिये उस पर व्याख्यासाहित्य का निर्माण अत्यावश्यक होता। यही कारण है कि प्रस्तुत आगम पर न किसी निर्युक्ति का निर्माण हुआ और न भाष्य ही लिखे गये, न चूर्णि ही लिखी गई। सर्वप्रथम इस पर संस्कृत भाषा में नवाङ्गीटीकाकार अभयदेव सूरि ने वृत्ति का निर्माण किया। आचार्य अभयदेव प्रकृष्ट प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने वि. सं. ग्यारह सौ बीस में स्थानांग सूत्र पर वृत्ति लिखी। प्रस्तुत वृत्ति मूल सूत्रों पर है जो केवल शब्दार्थ तक ही सीमित नहीं है, अपितु उसमें सूत्र से सम्बन्धित विषयों पर गहराई से विचार हुआ है। विवेचन में दार्शनिक दृष्टि यत्र-तत्र स्पष्ट हुई है। 'तथा हि' 'यदुक्तं' 'उक्तं च' 'आह च' तदुक्तं 'यदाह' प्रभृति शब्दों के साथ अनेक अवतरण दिये हैं। आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये विशेषावश्यकभाष्य की अनेक गाथाएँ उद्धृत की हैं। अनुमान से आत्मा की सिद्धि करते हुये लिखा है—इस शरीर का भोक्ता कोई न कोई अवश्य होना चाहिये, क्योंकि यह शरीर भोग्य है। जो भोग्य होता है उस का अवश्य ही कोई भोक्ता होता है। प्रस्तुत शरीर का कर्ता "आत्मा" है। यदि कोई यह तर्क करे कि कर्त्ता होने से रसोइया के समान आत्मा की भी मूर्त्तता सिद्ध होती है तो ऐसी स्थिति में प्रस्तुत हेतु साध्यविरुद्ध हो जाता है किन्तु यह तर्क बाधक नहीं है, क्योंकि संसारी आत्मा कथंचित् मूर्त्त भी है। अनेक स्थलों पर ऐसी दार्शनिक चर्चाएं हुई हैं। वृत्ति में यत्र-तत्र निक्षेपपद्धति का उपयोग किया है। जो निर्युक्तियों और भाष्यों का सहज स्मरण कराती है। वृत्ति में मुख्य रूप से संक्षेप में विषय को स्पष्ट करने के लिये दृष्टान्त भी दिये गये हैं।

वृत्तिकार अभयदेव ने उपसंहार में अपना परिचय देते हुये यह स्वीकार किया है कि यह वृत्ति मैंने यशोदेवगणी की सहायता से सम्पन्न की। वृत्ति लिखते समय अनेक कठिनाइयाँ आईं। प्रस्तुत वृत्ति को द्रोणाचार्य ने आदि से अन्त तक पढ़कर संशोधन किया। उसके लिये भी वृत्तिकार ने उनका हृदय से आभार व्यक्त किया। वृत्ति का ग्रन्थमान चौदह हजार दो सौ पचास श्लोक है। प्रस्तुत वृत्ति सन् १८८० में राय धनपतसिंह द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित हुई। सन् १९१८ और १९२० में आगमोदय समिति बम्बई से, सन् १९३७ में माणकलाल चुन्नीलाल अहमदाबाद से और गुजराती अनुवाद के साथ मुन्द्रा (कच्छ) से प्रकाशित हुई। केवल गुजराती अनुवाद के साथ सन् १९३१ में जीवराज धेलाभाई डोसी अहमदाबाद से, सन् १९५५ में पं.दलसुख भाई मालवणिया ने गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद से स्थानांग समवायांग के साथ में रूपान्तर प्रकाशित किया है। जहाँ-तहाँ तुलनात्मक टिप्पण देने से यह ग्रन्थ अतीव महत्त्वपूर्ण बन गया है।

संस्कृतभाषा में संवत् १६५७ में नगर्षिगणी तथा पार्श्वचन्द्र व सुमति कल्लोल और संवत् १७०५ में हर्षनन्दन ने भी स्थानांग पर वृत्ति लिखी है। तथा पूज्य घासीलाल जी म. ने अपने ढंग से उस पर वृत्ति लिखी है। वीर संवत् २४४६ में हैदराबाद से सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद के साथ आचार्य अमोलकऋषि जी. म. ने सरल संस्करण प्रकाशित करवाया। सन् १९७२ में मुनि श्री कन्हैयालाल जी "कमल" ने आगम अनुयोग प्रकाशन, माण्डेराव से स्थानांग का एक शानदार संस्करण प्रकाशित करवाया है, जिसमें अनेक परिशिष्ट भी हैं। आचार्यसम्राट् आत्मारामजी म. ने हिन्दी में विस्तृत व्याख्या लिखी। वह आत्माराम-प्रकाशन समिति लुधियाना से

विषयानुक्रम

चतुर्थ उद्देशक

तृतीय स्थान

प्रथम उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

द्वितीय उद्देशक

तृतीय उद्देशक

षष्ठस्थान

प्रथम उद्देशक

अष्टम स्थान

प्रथम उद्देशक

नवम स्थान

प्रथम उद्देशक

दशम स्थान

अष्टम स्थान

प्रथम उद्देशक

नवम स्थान

प्रथम उद्देशक

दशम स्थान



पंचमगणहर-सिरिसुहम्मसामिविरइयं तइयं अंगं

ठाणं

पञ्चमगणधर-श्रीसुधर्म-स्वामिविरचितं तृतीयम् अङ्गम्

स्थानांगसूत्रम्

□□

प्रथम स्थान

१—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवता एवमक्खायं—

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है—उन भगवान् ने ऐसा कहा है। (१)

विवेचन—भगवान् महावीर के पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूनामक अपने प्रधान शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे आयुष्मन्—चिरायुष्क ! मैंने अपने कानों से स्वयं ही सुना है कि उन अष्ट महाप्रातिहार्यादि ऐश्वर्य से विभूषित भगवान् महावीर ने तीसरे स्थानाङ्ग सूत्र के अर्थ का इस (वक्ष्यमाण) प्रकार से प्रतिपादन किया है।

अस्तित्व सूत्र

२—एगे आया।

आत्मा एक है (२)

विवेचन—जैन सिद्धान्त में वस्तु-स्वरूप का प्रतिपादन नय-दृष्टि की अपेक्षा से किया जाता है। वस्तु के विवक्षित किसी एक धर्म (स्वभाव / गुण) का प्रतिपादन करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। नय के मूल भेद दो हैं—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। भूत भविष्य और वर्तमान काल में स्थिर रहने वाले ध्रुव स्वभाव का प्रतिपादन द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से किया जाता है और प्रति समय नवीन-नवीन उत्पन्न होनेवाली पर्यायों—अवस्थाओं का प्रतिपादन पर्यायार्थिक नयकी दृष्टि से किया जाता है। प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है, अतः सामान्य धर्म की विवक्षा या मुख्यता से कथन करना द्रव्यार्थिकनय का कार्य है और विशेष धर्मों की मुख्यता से कथन करना पर्यायार्थिक नयका कार्य है। प्रत्येक आत्मा में ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग समानरूप से संसारी और सिद्ध सभी अवस्थाओं में पाया जाता है, अतः प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि आत्मा एक है, अर्थात् उपयोग स्वरूप से सभी आत्मा एक समान हैं। यह अभेद विवक्षा या संग्रह दृष्टि से कथन है। पर भेद-विवक्षा से आत्माएँ अनेक हैं, क्योंकि प्रत्येक प्राणी अपने-अपने सुख-दुःख का अनुभव पृथक्-पृथक् ही करता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक आत्मा भी असंख्यात प्रदेशात्मक होने से अनेक रूप है। आत्मा के विषय में एकत्व-प्रतिपादन जिस अभेद दृष्टि से किया गया है, उसी दृष्टि से वक्ष्यमाण एकस्थान-सम्बन्धी सभी सूत्रों का कथन भी जानना चाहिए।

३—एगे दंडे।

दण्ड एक है (३)।

विवेचन—आत्मा जिस क्रिया-विशेष से दण्डित अर्थात् ज्ञानादि गुणों से हीन या असार किया जाता है, उसे दण्ड कहते हैं। दण्ड दो प्रकार का होता है—द्रव्यदण्ड और भावदण्ड। लाठी-बेंत आदि से मारना द्रव्यदण्ड है। मन वचन काय की दुष्प्रवृत्ति को भावदण्ड कहते हैं। यहाँ पर दोनों

स्थानांग : प्रथम स्थान

सार : संक्षेप

☐ द्वादशाङ्गी जिनवाणी के तीसरे अंगभूत इस स्थानाङ्ग में वस्तु-तत्त्व का निरूपण एक से लेकर दश तक की संख्या (स्थान) के आधार पर किया गया है। जैन दर्शन में सर्वकथन नयों की मुख्यता और गौणता लिए हुए होता है। जब वस्तु की एकता या नित्यता आदि का कथन किया जाता है, उस समय अनेकता या अनित्यता रूप प्रतिपक्षी अंश की गौणता रहती है और जब अनेकता या अनित्यता का कथन किया जाता है, तब एकता या नित्यता रूप अंश की गौणता रहती है। एकता या नित्यता के प्रतिपादन के समय द्रव्यार्थिकनय से और अनेकता या अनित्यता-प्रतिपादन के समय पर्यायार्थिक नय से कथन किया जा रहा है, ऐसा जानना चाहिए।

☐ तीसरे अंग के इस प्रथम स्थान में द्रव्यार्थिक नय की मुख्यता से कथन किया गया है, क्योंकि यह नय वस्तु-गत धर्मों की विवक्षा न करके अभेद की प्रधानता से कथन करता है। दूसरे आदि शेष स्थानों में वस्तुतत्त्व का निरूपण पर्यायार्थिक नय की मुख्यता से भेद रूप में किया गया है।

☐ **'आत्मा एक है'** यह कथन द्रव्य की दृष्टि से है, क्योंकि सभी आत्माएँ एक सदृश ही अनन्त शक्ति-सम्पन्न होती हैं। 'जम्बूद्वीप एक है,' यह कथन क्षेत्र की दृष्टि से है। 'समय एक है' यह कथन काल की दृष्टि से है और 'शब्द एक है' यह कथन भाव की दृष्टि से है, क्योंकि भाव का अर्थ यहाँ पर्याय है और शब्द पुद्गलद्रव्य की एक पर्याय है। इन चारों सूत्रों के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में से एक-एक की मुख्यता से उनका प्रतिपादन किया गया है, शेष की गौणता रही है, क्योंकि जैन दर्शन में प्रत्येक वस्तु का निरूपण द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव के आधार पर किया जाता है।

द्रव्यार्थिक नय के दो प्रमुख भेद हैं—संग्रहनय और व्यवहारनय। संग्रहनय अभेदग्राही है और व्यवहारनय भेदग्राही है। इस प्रथम स्थान में संग्रह नय की मुख्यता से कथन है। आगे के स्थानों में व्यवहार नय की मुख्यता से कथन है। अतः जहाँ इस स्थान में आत्मा के एकत्व का कथन है वहीं दूसरे आदि स्थानों में उसके अनेकत्व का भी कथन किया गया है।

प्रथम स्थान के सूत्रों का वर्गीकरण अस्तिवादपद, प्रकीर्णक पद, पुद्गल पद, अष्टादश पाप पद, अष्टादश पाप-विरमण पद, अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीपद, चतुर्विंशति दण्डक पद, भव्य-अभव्यसिद्धिक पद, दृष्टिपद, कृष्ण-शुक्ल पाक्षिकपद, लेश्यापद, जम्बूद्वीपपद, महावीरनिर्वाणपद, देवपद और नक्षत्र पद के रूप में किया गया है।

इस प्रथम स्थान के सूत्रों की संख्या २५६ है।

प्रथम स्थान

१—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवता एवमक्खायं—

हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है—उन भगवान् ने ऐसा कहा है। (१)

विवेचन—भगवान् महावीर के पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूनामक अपने प्रधान शिष्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे आयुष्मन्—चिरायुष्क ! मैंने अपने कानों से स्वयं ही सुना है कि उन अष्ट महाप्रातिहार्यादि ऐश्वर्य से विभूषित भगवान् महावीर ने तीसरे स्थानाङ्ग सूत्र के अर्थ का इस (वक्ष्यमाण) प्रकार से प्रतिपादन किया है।

अस्तित्व सूत्र

२—एगे आया।

आत्मा एक है (२)

विवेचन—जैन सिद्धान्त में वस्तु-स्वरूप का प्रतिपादन नय-दृष्टि की अपेक्षा से किया जाता है। वस्तु के विवक्षित किसी एक धर्म (स्वभाव / गुण) का प्रतिपादन करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। नय के मूल भेद दो हैं—द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। भूत भविष्य और वर्तमान काल में स्थिर रहने वाले ध्रुव स्वभाव का प्रतिपादन द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से किया जाता है और प्रति समय नवीन-नवीन उत्पन्न होनेवाली पर्यायों—अवस्थाओं का प्रतिपादन पर्यायार्थिक नयकी दृष्टि से किया जाता है। प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है, अतः सामान्य धर्म की विवक्षा या मुख्यता से कथन करना द्रव्यार्थिकनय का कार्य है और विशेष धर्मों की मुख्यता से कथन करना पर्यायार्थिक नयका कार्य है। प्रत्येक आत्मा में ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग समानरूप से संसारी और सिद्ध सभी अवस्थाओं में पाया जाता है, अतः प्रस्तुत सूत्र में कहा गया है कि आत्मा एक है, अर्थात् उपयोग स्वरूप से सभी आत्मा एक समान हैं। यह अभेद विवक्षा या संग्रह दृष्टि से कथन है। पर भेद-विवक्षा से आत्माएँ अनेक हैं, क्योंकि प्रत्येक प्राणी अपने-अपने सुख-दुःख का अनुभव पृथक्-पृथक् ही करता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक आत्मा भी असंख्यात प्रदेशात्मक होने से अनेक रूप है। आत्मा के विषय में एकत्व-प्रतिपादन जिस अभेद दृष्टि से किया गया है, उसी दृष्टि से वक्ष्यमाण एकस्थान-सम्बन्धी सभी सूत्रों का कथन भी जानना चाहिए।

३—एगे दंडे।

दण्ड एक है (३)।

विवेचन—आत्मा जिस क्रिया-विशेष से दण्डित अर्थात् ज्ञानादि गुणों से हीन या असार किया जाता है, उसे दण्ड कहते हैं। दण्ड दो प्रकार का होता है—द्रव्यदण्ड और भावदण्ड। लाठी-बेंत आदि से मारना द्रव्यदण्ड है। मन वचन काय की दुष्प्रवृत्ति को भावदण्ड कहते हैं। यहाँ पर दोनों

दण्ड विवक्षित हैं, क्योंकि हिंसादि से तथा मन वचन काय की दुष्प्रवृत्ति से आत्मा के ज्ञानादि गुणों का ह्रास होता है। इस ज्ञानादि गुणों के ह्रास या हानि होने की अपेक्षा वधसामान्य से सभी प्रकार के दण्ड एक समान होने से 'एक दण्ड हैं' ऐसा कहा गया है। यहां दण्ड शब्द से पांच प्रकार के दण्ड ग्रहण किए गए हैं—(१) अर्थदण्ड, (२) अनर्थदण्ड, (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्माद् दण्ड और (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड।

४—एगा किरिया।

क्रिया एक है (४)।

विवेचन—मन वचन काय के व्यापार को क्रिया कहते हैं। आगम में क्रिया के आठ भेद कहे गये हैं—(१) मृषाप्रत्यया, (२) अदत्तादानप्रत्यया, (३) आध्यात्मिकी, (४) मानप्रत्यया, (५) मित्र-द्वेषप्रत्यया, (६) मायाप्रत्यया, (७) लोभप्रत्यया, और (८) ऐर्यापथिकी क्रिया। इन आठों ही भेदों में करण (करना) रूप व्यापार समान है, अतः क्रिया एक कही गयी है। प्रस्तुत दो सूत्रों में आगमोक्त १३ क्रियास्थानों का समावेश हो जाता है।

५—एगे लोए। ६—एगे अलोए। ७—एगे धम्मे। ८—एगे अहम्मे। ९—एगे बंधे। १०—एगे मोक्खे। ११—एगे पुण्णे। १२—एगे पावे। १३—एगे आसवे। १४—एगे संवरे। १५—एगा वेयणा। १६—एगा णिज्जरा।

लोक एक है (५)। अलोक एक है (६)। धर्मास्तिकाय एक है (७)। अधर्मास्तिकाय एक है (८)। बन्ध एक है (९)। मोक्ष एक है (१०)। पुण्य एक है (११)। पाप एक है (१२)। आस्रव एक है (१३)। संवर एक है (१४) वेदना एक है (१५)। निर्जरा एक है (१६)।

विवेचन—आकाश के दो भेद हैं—लोक और अलोक। जितने आकाश में जीवादि द्रव्य अवलोकन किये जाते हैं, अर्थात् पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और जहां पर आकाश के सिवाय अन्य कोई भी द्रव्य नहीं पाया जाता है, उसे अलोक कहते हैं। जीव और पुद्‌गलों के गमन में सहायक द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते हैं और उनकी स्थिति में सहायक द्रव्य को अधर्मास्तिकाय कहते हैं। योग और कषाय के निमित्त से कर्म-पुद्‌गलों का आत्मा के साथ बंधना बन्ध कहलाता है और उनका आत्मा से वियुक्त होना मोक्ष कहा जाता है। सुख का वेदन कराने वाले कर्म को पुण्य और दुःख का वेदन कराने वाले कर्म को पाप कहते हैं अथवा सातावेदनीय, उच्चगोत्र आदि शुभ अघातिकर्मों को पुण्य कहते हैं और असातावेदनीय, नीच गोत्र आदि अशुभकर्मों को पाप कहते हैं। आत्मा में कर्म-परमाणुओं के आगमन को अथवा वन्ध के कारण को आस्रव और उसके निरोध को संवर कहते हैं। आठों कर्मों के विपाक को अनुभव करना वेदना है और कर्मों का फल देकर झरने को—निर्गमन को—निर्जरा कहते हैं। प्रकृत में द्रव्यास्तिकाय की अपेक्षा लोक, अलोक, धर्मास्तिकाय, और अधर्मास्तिकाय एक-एक ही द्रव्य हैं। तथा वन्ध, मोक्षादि शेष तत्त्व बन्धन आदि की समानता से एक एक रूप ही हैं। अतः उन्हें एक-एक कहा गया है।

प्रकीर्णक सूत्र

१७—एगे जीवे पाडिक्कएण सरीरएणं।

प्रत्येक शरीर में जीव एक है (१७)।

विवेचन—संसारी जीवों को शरीर की प्राप्ति शरीर-नामकर्म के उदय से होती है। ये शरीर-धारी संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं—प्रत्येकशरीरी और साधारणशरीरी। जिस एक शरीर का स्वामी एक ही जीव होता है, उसे प्रत्येकशरीरी जीव कहते हैं। जैसे-देव-नारक आदि। जिस एक शरीर के स्वामी अनेक जीव होते हैं उन्हें साधारणशरीरी जीव कहते हैं। जैसे जमीकन्द, आलू, अदरक आदि। प्रकृत सूत्र में प्रत्येकशरीरी जीव विवक्षित है। यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि 'एगे आया' इस सूत्र में शरीर-मुक्त आत्मा विवक्षित है और प्रस्तुत सूत्र में कर्म-वद्ध एवं शरीर-धारक संसारी जीव विवक्षित है।

१८—एगा जीवाणं अपरिआइत्ता विगुव्वणा।

जीवों की अपर्यादाय विकुर्वणा एक है (१८)।

विवेचन—एक शरीर से नाना प्रकार की विक्रिया करने को विकुर्वणा कहते हैं। जैसे देव अपने-अपने वैक्रियिक शरीर से गज, अश्व, मनुष्य आदि नाना प्रकार की विक्रिया कर सकता है। इस प्रकार की विकुर्वणा को **'परितः समन्ताद् वैक्रियसमुद्घातेन बाह्यान् पुद्गलान् आदाय गृहीत्वा'** इस निरुक्ति के अनुसार बाहिरी पुद्गलों को ग्रहण करके की जाने वाली विक्रिया पर्यादाय-विकुर्वणा कहलाती है। जो विकुर्वणा बाहिरी पुद्गलों को ग्रहण किये विना ही भवधारणीय शरीर से अपने छोटे-बड़े आदि आकार रूप की जाती है, उसे अपर्यादाय-विकुर्वणा कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में इसी की विवक्षा की गयी है। यह सभी देव, नारक, मनुष्य और तिर्यंच के यथासंभव पायी जाती है।

१९—एगे मणे। २०—एगा वई। २१—एगे काय-वायामे।

मन एक है (१९)। वचन एक है (२०)। काय-व्यायाम एक है (२१)।

विवेचन—व्यायाम का अर्थ है व्यापार। सभी जीवों के मन वचन और काय का व्यापार यद्यपि विभिन्न प्रकार का होता है। यों मनोयोग और वचनयोग चार-चार प्रकार का तथा काययोग सात प्रकार का कहा गया है, किन्तु यहां व्यापार-सामान्य की विवक्षा से एकत्व कहा गया है।

२२—एगा उप्पा। २३—एगा वियती।

उत्पत्ति (उत्पाद) एक है (२२)। विगति (विनाश) एक है (२३)।

विवेचन—वस्तु का स्वरूप उत्पाद व्यय और ध्रौव्यरूप है। यहां दो सूत्रों के द्वारा आदि के परस्पर सापेक्ष दो रूपों का वर्णन किया गया है।

२४—एगा वियच्चा।

विगतार्चा एक है (२४)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार अभयदेवसूरिने **'वियच्चा'** इस पद का संस्कृतरूप **'विगतार्चा'** करके विगत अर्थात् मृत और अर्चा अर्थात् शरीर, ऐसी निरुक्ति करके 'मृतशरीर' अर्थ किया है। तथा 'विवच्चा' पाठान्तर के अनुसार 'विवर्चा' पद का अर्थ विशिष्ट उपपत्ति, पद्धति या विशिष्ट वेश-भूषा भी किया है। किन्तु मुनि नथमलजी ने उक्त अर्थों को स्वीकार न करके 'विगतार्चा' पद का अर्थ

विशिष्ट चित्तवृत्ति किया है। इन सभी अर्थों में प्रथम अर्थ अधिक संगत प्रतीत होता है, क्योंकि सभी मृत शरीर एक रूप से समान हैं।

२५—एगा गती। २६—एगा आगती। २७—एगे चयणे। २८—एगे उववाए।

गति एक है (२५)। आगति एक है (२६) च्यवन एक है (२७)। उपपात एक है (२८)

विवेचन—जीव के वर्तमान भव को छोड़ कर आगामी भव में जाने को गति कहते हैं। पूर्व भव को छोड़कर वर्तमान भव में आने को आगति कहते हैं। ऊपर से च्युत होकर नीचे आने को च्यवन कहते हैं। वैमानिक और ज्योतिष्क देव मरण कर यत: ऊपर से नीचे आकर उत्पन्न होते हैं अत: उनका मरण 'च्यवन' कहलाता है। देवों और नारकों का जन्म उपपात कहलाता है। ये गति-आगति और च्यवन-उपपात अर्थ की दृष्टि से सभी जीवों के समान होते हैं, अत: उन्हें एक कहा गया है।

२९—एगा तक्का। ३०—एगा सण्णा। ३१—एगा मण्णा। ३२—एगा विण्णू।

तर्क एक है (२९)। संज्ञा एक है (३०)। मनन एक है (३१)। विज्ञता या विज्ञान एक है (३२)।

विवेचन—इन चारों सूत्रों में मति ज्ञान के चार भेदों का निरूपण किया गया है। दार्शनिक दृष्टिकोण से सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के और आगमिक दृष्टि से आभिनिबोधिक या मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद किये गये हैं। वस्तु के सामान्य स्वरूप को ग्रहण करना अवग्रह कहलाता है। अवग्रह से गृहीत वस्तु के विशेष धर्म को जानने की इच्छा को ईहा कहते हैं। ईहित वस्तु के निर्णय को अवाय कहते हैं और कालान्तर में उसे नहीं भूलने को धारणा कहते हैं। ईहा से उत्तरवर्ती और अवाय से पूर्ववर्ती ऊहापोह या विचार-विमर्श को तर्क कहते हैं। न्यायशास्त्र में व्याप्ति या अविनाभाव-सम्बन्ध के ज्ञान को तर्क कहा गया है। संज्ञा के दो अर्थ होते हैं—प्रत्यभिज्ञान और अनुभूति। नन्दीसूत्र में मतिज्ञान का एक नाम संज्ञा भी दिया गया है। उमास्वातिने मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध को पर्यायवाचक या एकार्थक कहा है। मलयगिरि तथा अभयदेव सूरि ने संज्ञा का अर्थ व्यञ्जनावग्रह के पश्चात् उत्तरकाल में होने वाला मति विशेष किया है। तथा अभयदेवसूरि ने संज्ञा का दूसरा अर्थ अनुभूति भी किया है किन्तु प्रकृत में संज्ञा का अर्थ प्रत्यभिज्ञान उपयुक्त है। स्मृति के पश्चात् 'यह वही है' इस प्रकार से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। वस्तुगत धर्मों के पर्यालोचन को मनन कहते हैं। मलयगिरिने धारणा के तीव्रतर ज्ञान को विज्ञान कहा है और अभयदेव सूरि ने हेयोपादेय के निश्चय को विज्ञान कहा है। प्राकृत 'विन्नु' का संस्कृतरूपान्तर विज्ञता या विद्वत्ता भी किया गया है। उक्त मनन आदि सभी ज्ञान जानने की अपेक्षा सामान्य रूप से एक ही हैं।

३३—एगा वेयणा।

वेदना एक है (३३)।

विवेचन—'वेदना' का उल्लेख इसी एकस्थान के पन्द्रहवें सूत्र में किया गया है और यहाँ

पर भी इसका निर्देश किया गया है। वहाँ पर वेदना का प्रयोग सामान्य कर्म-फल का अनुभव करने के अर्थ में हुआ है और यहाँ उसका अर्थ पीड़ा विशेष का अनुभव करना है। यह वेदना सामान्य रूप से एक ही है।

३४—एगे छेयणे। ३५—एगे भेयणे।

छेदन एक है (३४)। भेदन एक है (३५)।

विवेचन—छेदन शब्द का सामान्य अर्थ है—छेदना या टुकड़े करना और भेदन शब्द का सामान्य अर्थ है विदारण करना। कर्मशास्त्र में छेदन का अर्थ है—कर्मों की स्थिति का घात करना। अर्थात् उदीरणा करण के द्वारा कर्मों की दीर्घ स्थिति को कम करना। इसी प्रकार भेदन का अर्थ है—कर्मों के रस का घात करना। अर्थात् उदीरणाकरण के द्वारा तीव्र अनुभाग को या फल देने की शक्ति को मन्द करना। ये छेदन और भेदन भी सभी जीवों के कर्मों की स्थिति और फल-प्रदान-शक्ति को कम या मन्द करने की समानता से एक ही हैं।

३६—एगे मरणे अंतिमसारीरियाणं। ३७—एगे संसुद्ध अहाभूए पत्ते।

अन्तिम शरीरी जीवों का मरण एक है (३६)। संशुद्ध यथाभूत पात्र एक है (३७)।

विवेचन—जिसके पश्चात् पुनः नवीन शरीर को धारण नहीं करना पड़ता है, ऐसे शरीर को अन्तिम या चरम शरीर कहते हैं। तद्-भव मोक्षगामी पुरुषों का शरीर अन्तिम होने की समानता से एक है। इस चरम शरीर से मुक्त होने के पश्चात् आत्मा का यथार्थ ज्ञाता द्रष्टारूप शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है, वह सभी मुक्तात्माओं का समान होने से एक कहा गया है।

३८—'एगे दुक्खे' जीवाणं एगभूए। ३९—एगा अहम्मपडिमा, 'जं से' आया परिकिलेसति। ४०—एगा धम्मपडिमा, जं से आया पज्जवजाए।

जीवों का दुःख एक और एकभूत है (३८)। अधर्मप्रतिमा एक है, जिससे आत्मा परिक्लेश को प्राप्त होता है (३९)। धर्मप्रतिमा एक है, जिससे आत्मा पर्यय-जात होता है (४०)।

विवेचन—स्वकृत कर्म-फल भोगने की अपेक्षा सभी जीवों का दुख एक सदृश है। वह एक भूत है अर्थात् लोहे के गोले में प्रविष्ट अग्नि के समान एकमेक है, आत्म-प्रदेशों में अन्तःप्रविष्ट—व्याप्त है। प्रतिमा शब्द के अनेक अर्थ होते हैं—तपस्या विशेष, साधना विशेष, कायोत्सर्ग, मूर्ति और मन पर होने वाला प्रतिबिम्ब या प्रभाव। प्रकृत में अधर्म और धर्म का प्रभाव सभी जीवों के मन पर समान रूप से पड़ता है, अतः उसे एक कहा गया है। अभयदेवसूरि ने पडिमा का अर्थ—प्रतिमा, प्रतिज्ञा या शरीर किया है। पर्यवजात का अर्थ आत्मा की यथार्थ शुद्ध पर्याय को प्राप्त होकर विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना है। इस अपेक्षा भी सभी शुद्धात्मा एकस्वरूप हैं।

४१—एगे मणे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि। ४२—एगा वई देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि। ४३—एगे काय-वायामे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि। ४४—एगे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसकार-परक्कमे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि।

देवों, असुरों और मनुष्यों का उस-उस चिन्तनकाल में एक मन होता है (४१)। देवों, असुरों और मनुष्यों का उस-उस वचन बोलने के समय एक वचन होता है (४२)। देवों, असुरों और मनुष्यों का उस-उस काय-व्यापार के समय एक कायव्यायाम होता है (४३)। देवों, असुरों और मनुष्यों का उस-उस पुरुषार्थ के समय उत्थान,कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम एक होता है (४४)।

विवेचन—समनस्क जीवों में देव और मनुष्य के सिवाय यद्यपि नारक और संज्ञी तिर्यंच भी सम्मिलित हैं, पर यहां विशिष्टतर लब्धि पाये जाने की अपेक्षा देवों और मनुष्यों का ही सूत्र में उल्लेख किया गया है। देव पदसे वैमानिक और ज्योतिष्क देवों का, तथा असुरपद से भवनपति और व्यन्तरों का ग्रहण अभीष्ट है। जीवों के एक समय में एक ही मनोयोग, एक ही वचनयोग और एक ही काययोग होता है। मनोयोग के आगम में चार भेद कहे गये हैं—सत्यमनोयोग, मृषा मनोयोग, सत्य-मृषामनोयोग और अनुभय मनोयोग। इसमें से एक जीवके एक समय में एक ही मनोयोग का होना संभव है, शेष तीन का नहीं।

इसी प्रकार वचनयोग के भी चार भेद होते हैं—सत्यवचनयोग, मृषा-वचनयोग, सत्यमृषा-वचनयोग और अनुभयवचनयोग। इन चारों में से एक समय में एक जीव के एक ही वचनयोग होना संभव है, शेष तीन वचनयोगों का होना संभव नहीं है।

काययोग के सात भेद बताये गये हैं—औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिक-काययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग। इनमें से एक समय में एक ही काययोग का होना संभव है, शेष छह का नहीं। अतः सूत्र में एक काल में एक काययोग का विधान किया गया है।

उत्थान, कर्म, बल आदि शब्द यद्यपि स्थूल दृष्टि से पर्याय-वाचक माने गये हैं, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से उनका अर्थ इस प्रकार है—उत्थान—उठने की चेष्टा करना। कर्म—भ्रमण आदि की क्रिया। बल—शारीरिक सामर्थ्य। वीर्य—आन्तरिक सामर्थ्य। पुरुषकार—आत्मिक पुरुषार्थ और पराक्रम—कार्य-सम्पादनार्थ प्रबल प्रयत्न। यह भी एक जीव के एक समय में एक ही होता है।

४५—एगे णाणे। ४६—एगे दंसणे। ४७—एगे चरित्ते। ४८—एगे समए। ४९—एगे पएसे। ५०—एगे परमाणू। ५१—एगा सिद्धी। ५२—एगे सिद्धे। ५३—एगे परिणिव्वाणे। ५४—एगे परिणिव्वुए।

ज्ञान एक है (४५)। दर्शन एक है (४६)। चारित्र एक है (४७)। समय एक है (४८)। प्रदेश एक है (४९)। परमाणु एक है (५०)। सिद्धि एक है (५१)। सिद्ध एक है (५२)। परिनिर्वाण एक है (५३) और परिनिर्वृत्त एक है (५४)।

विवेचन—वस्तुस्वरूप के जानने को ज्ञान, श्रद्धान को दर्शन और यथार्थ आचरण को चारित्र कहते हैं। इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग है अतः इनको एक एक ही कहा गया है। काल द्रव्य के सबसे छोटे अंश को समय, आकाश के सबसे छोटे अंशको प्रदेश और पुद्गल के अविभागी अंश को परमाणु कहते हैं। अतएव ये भी एक एक ही हैं। आत्मसिद्धि सबकी एक सदृश है अतः सिद्ध एक हैं। कर्म-जनित सर्व विकारी भावों के अभाव को परिनिर्वाण कहते हैं तथा शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता का अभाव होने पर स्वस्थिति के प्राप्त करने वाले को परिनिर्वृत अर्थात् मुक्त कहते हैं। ये सभी सिद्धात्माओं में समान होते हैं अतः उन्हें एक कहा गया है।

पुद्गल सूत्र

५५—एगे सद्दे। ५६—एगे रूवे। ५७—एगे गंधे। ५८—एगे रसे। ५९—एगे फासे। ६०—एगे सुब्भिसद्दे। ६१—एगे दुब्भिसद्दे। ६२—एगे सुरूवे। ६३—एगे दुरूवे। ६४—एगे दीहे। ६५—एगे हस्से। ६६—एगे वट्टे। ६७—एगे तंसे। ६८—एगे चउरंसे। ६९—एगे पिहुले। ७०—एगे परिमंडले। ७१—एगे किण्हे। ७२—एगे णीले। ७३—एगे लोहिए। ७४—एगे हालिद्दे। ७५—एगे सुक्किल्ले। ७६—एगे सुब्भिगंधे। ७७—एगे दुब्भिगंधे। ७८—एगे तित्ते। ७९—एगे कडुए। ८०—एगे कसाए। ८१—एगे अंबिले। ८२—एगे महुरे। ८३—एगे कक्खडे जाव। ८४—[एगे मउए। ८५—एगे गरुए। ८६—एगे लहुए। ८७—एगे सीते। ८८—एगे उसिणे। ८९—एगे णिद्धे। ९०—एगे] लुक्खे।

शब्द एक है (५५)। रूप एक है (५६)। गन्ध एक है (५७)। रस एक है (५८)। स्पर्श एक है (५९)। शुभ शब्द एक है (६०)। अशुभ शब्द एक है (६१)। शुभ रूप एक है (६२)। अशुभ रूप एक है (६३)।

दीर्घ संस्थान एक है (६४)। ह्रस्व संस्थान एक है (६५)। वृत्त (गोल) संस्थान एक है (६६)। त्रिकोण संस्थान एक है (६७)। चतुष्कोण संस्थान एक है (६८)। विस्तीर्ण संस्थान एक है (६९)। परिमण्डल संस्थान एक है (७०)।

कृष्ण वर्ण एक है (७१)। नीलवर्ण एक है (७२)। लोहित (रक्त) वर्ण एक है (७३)। हारिद्र वर्ण एक है (७४)। शुक्लवर्ण एक है (७५)। शुभगन्ध एक है (७६) अशुभ गन्ध एक है (७७)।

तिक्त रस एक है (७८)। कटुक रस एक है (७९)। कषायरस एक है (८०)। आम्ल रस एक है (८१)। मधुर रस एक है (८२)। कर्कश स्पर्श एक है (८३)। मृदुस्पर्श एक है (८४)। गुरु स्पर्श एक है (८५)। लघु स्पर्श एक है (८६)। शीतस्पर्श एक है (८७)। उष्ण स्पर्श एक है (८८)। स्निग्ध स्पर्श एक है (८९)। और रूक्ष स्पर्श एक है (९०)।

विवेचन—उक्त सूत्रों में पुद्गल के लक्षण, कार्य, संस्थान (आकार) और पर्यायों का निरूपण किया गया है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पुद्गल के लक्षण हैं। शब्द पुद्गल का कार्य है। दीर्घ, ह्रस्व वृत्त आदि पुद्गल के संस्थान हैं। कृष्ण, नील आदि वर्ण के पांच भेद हैं। शुभ और अशुभ रूप से गन्ध के दो भेद होते हैं। तिक्त, कटुक आदि रस के पांच भेद हैं और कर्कश, मृदु आदि स्पर्श के आठ भेद हैं। इस प्रकार पुद्गल-पद में पुद्गल द्रव्य का वर्णन किया गया है।

अष्टादश पाप-पद

९१—एगे पाणातिवाए जाव। ९२—[एगे मुसावाए। ९३—एगे अदिण्णादाणे। ९४—एगे मेहुणे]। ९५—एगे परिग्गहे। ९६—एगे कोहे। जाव ९७ [एगे माणे। ९८—एगा माया। ९९—एगे] लोभे। १००—एगे पेज्जे। १०१—एगे दोसे। जाव १०२—[एगे कलहे। १०३—एगे अब्भक्खाणे। १०४—एगे पेसुण्णे]। १०५—एगे परपरिवाए। १०६—एगा अरतिरती। १०७—एगे मायामोसे। १०८—एगे मिच्छादंसणसल्ले।

प्राणातिपात (हिंसा) एक है (९१)। मृषावाद (असत्यभाषण) एक है (९२)। अदत्तादान (चोरी) एक है (९३) मैथुन (कुशील) एक है (९४)। परिग्रह एक है (९५)। क्रोध कषाय एक है (९६)। मान कषाय एक है (९७)। माया कषाय एक है (९८) लोभ कषाय एक है (९९) प्रेयस् (राग) एक है (१००) द्वेष एक है (१०१) कलह एक है (१०२)। अभ्याख्यान एक है (१०३)। पैशुन्य एक है (१०४)। पर-परिवाद एक है (१०५)। अरति-रति एक है (१०६) मायामृषा एक है (१०७)। और मिथ्यादर्शनशल्य एक है (१०८)।

विवेचन—यद्यपि मृषा और माया को पृथक्-पृथक् पाप माना गया है, किन्तु सत्रहवें पाप का नाम माया-मृषा दिया गया है, उसका अभिप्राय माया-युक्त असत्य भाषण से है। किन्तु स्थानाङ्ग की टीका में इस का अर्थ वेष बदल कर दूसरों को ठगना कहा है। उद्वेग रूप मनोविकार को अरति और आनन्दरूप चित्तवृत्ति को रति कहते हैं। परन्तु इनको एक कहने का कारण यह है कि जहाँ किसी वस्तु में रति होती है, वहीं अन्य वस्तु में अरति अवश्यम्भावी है। अतः दोनों को एक कहा गया है।

अष्टादश पापविरमण-पद

१०९—एगे पाणाइवाय-वेरमणे जाव। ११०—[एगे मुसवाय-वेरमणे। १११—एगे अदिण्णादाण-वेरमणे। ११२—एगे मेहुण-वेरमणे। ११३—एगे परिग्गह-वेरमणे। ११४—एगे कोह-विवेगे। ११५—[एगे माण-विवेगे जाव; ११६—एगे] माया-विवेगे। ११७—एगे लोभ-विवेगे। ११८—एगे पेज्ज-विवेगे। ११९—एगे दोस-विवेगे। १२०—एगे कलह-विवेगे। १२१—एगे अब्भक्खाण-विवेगे। १२२—एगे पेसुण्ण-विवेगे। १२३—एगे परपरिवाय-विवेगे। १२४—एगे अरतिरति-विवेगे। १२५—एगे मायामोस-विवेगे। १२६—एगे] मिच्छादंसण-सल्ल-विवेगे।

प्राणातिपात-विरमण एक है (१०९)। मृषावाद-विरमण एक है (११०)। अदत्तादान-विरमण एक है (१११)। मैथुन-विरमण एक है (११२)। परिग्रह-विरमण एक है (११३)। क्रोध-विवेक एक है (११४)। मान-विवेक एक है (११५)। माया-विवेक एक है (११६)। लोभ-विवेक एक है (११७)। प्रेयस्-(राग-) विवेक एक है (११८)। द्वेष-विवेक एक है (११९)। कलह-विवेक एक है (१२०)। अभ्याख्यान-विवेक एक है (१२१)। पैशुन्य-विवेक एक है (१२२)। पर-परिवाद-विवेक एक है (१२३)। अरति-रति-विवेक एक है (१२४)। माया-मृषा-विवेक एक है (१२५)। और मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक एक है (१२६)।

विवेचन—जिस प्रकार प्राणातिपात आदि अठारह पाप स्थानों के तर-तम भाव की अपेक्षा अनेक भेद होते हैं, किन्तु पापरूप कार्य की समानता से उन्हें एक कहा गया है, उसी प्रकार उन पाप-स्थानों के विरमण (त्याग) रूप स्थान भी तर-तम भाव की अपेक्षा अनेक होते हैं, किन्तु उनके त्याग की समानता से उन्हें एक कहा गया है।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-पद

१२७—एगा ओसप्पिणी। १२८—एगा सुसम-सुसमा जाव। १२९—[एगा सुसमा। १३०—एगा सुसम-दूसमा। १३१—एगा दूसम-सुसमा। १३२—एगा दूसमा]। १३३—एगा दूसम-

दूसमा। १३४—एगा उस्सप्पिणी। १३५—एगा दुस्सम-दुस्समा जाव। १३६—एगा दुस्समा। १३७—एगा दुस्सम-सुसमा । १३८—एगा सुसम-दुस्समा। १३९—एगा सुसमा] । १४०—एगा सुसम-सुसमा।

अवसर्पिणी एक है (१२७)। सुषम-सुषमा एक है (१२७)। सुषमा एक है (१२९)। सुषम-दुषमा एक है (१३०)। दुषम-सुषमा एक है (१३१)। दुषमा एक है (१३२)। दुषम-दुषमा एक है (१३३)। उत्सर्पिणी एक है (१३४)। दुषम-दुषमा एक है (१३५)। दुषमा एक है (१३६)। दुषम-सुषमा एक है (१३७)। सुषमा-दुषमा एक है (१३८) सुषमा एक है (१३९)। और सुषम-सुषमा एक है (१४०)।

विवेचन—कालचक्र अनादि-अनन्त है, किन्तु उसके उतार-चढ़ाव की अपेक्षा से दो प्रधान भेद किये गये हैं—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी काल में मनुष्यों आदि की बल, बुद्धि, देह-मान आयु-प्रमाण आदि की तथा पुद्‌गलों में उत्तम वर्ण, गन्ध आदि की क्रमशः हानि होती है और उत्सर्पिणी काल में उनकी क्रमशः वृद्धि होती है। इनमें से प्रत्येक के छह-छह भेद होते हैं, जो छह आरों के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनका मूल सूत्रों में नामोल्लेख किया गया है। अवसर्पिणी काल का प्रथम आरा अतिसुखमय है, दूसरा सुखमय है, तीसरा सुख-दुःखमय है, चौथा दुःख-सुखमय है, पांचवां दुःखमय है और छठा अतिदुःखमय है। उत्सर्पिणी का प्रथम आरा अति दुःखमय, दूसरा दुःखमय, तीसरा दुःख-सुखमय, चौथा सुख-दुःखमय, पाँचवां सुखमय और छठा अति-सुखमय होता है। यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि इस कालचक्र के उक्त आरों का परिवर्तन भरत और ऐरवत क्षेत्र में ही होता है, अन्यत्र नहीं होता।

१४१—एगा णेरइयाणं वग्गणा। १४२—एगा असुरकुमाराणं वग्गणा जाव। १४३—[एगा णागकुमाराणं वग्गणा। १४४—एगा सुवण्णकुमाराणं वग्गणा। १४५—एगा विज्जुकुमाराणं वग्गणा। १४६—एगा अग्गिकुमाराणं वग्गणा। १४७—एगा दीवकुमाराणं वग्गणा। १४८—एगा उदहिकुमाराणं वग्गणा। १४९—एगा दिसाकुमाराणं वग्गणा। १५०—एगा वायुकुमाराणं वग्गणा। १५१—एगा थणियकुमाराणं वग्गणा। १५२—एगा पुढविकाइयाणं वग्गणा। १५३—एगा आउकाइयाणं वग्गणा। १५४—एगा तेउकाइयाणं वग्गणा। १५५—एगा वाउकाइयाणं वग्गणा। १५६—एगा वणस्सइकाइयाणं वग्गणा। १५७—एगा बेइंदियाणं वग्गणा। १५८—एगा तेइंदियाणं वग्गणा। १५९—एगा चउरिंदियाणं वग्गणा। १६०—एगा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वग्गणा। १६१—एगा मणुस्साणं वग्गणा। १६२—एगा वाणमंतराणं वग्गणा। १६३—एगा जोइसियाणं वग्गणा] । १६४—एगा वेमाणियाणं वग्गणा।

नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१४१)। असुरकुमारों की वर्गणा एक है (१४२)। नागकुमारों की वर्गणा एक है (१४३)। सुपर्णकुमारों की वर्गणा एक है (१४४)। विद्युत्‌कुमारों की वर्गणा एक है (१४५)। अग्निकुमारों की वर्गणा एक है (१४६)। द्वीपकुमारों की वर्गणा एक है (११७)। उदधिकुमारों की वर्गणा एक है (१४८)। दिक्कुमारों की वर्गणा एक है (१४९)। वायुकुमारों की वर्गणा एक है (१५०)। स्तनित (मेघ) कुमारों की वर्गणा एक है (१५१)। पृथ्वी-कायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५२)। अप्कायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५३)। तेजस्कायिक

जीवों की वर्गणा एक है (१५४)। वायुकायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५५)। वनस्पतिकायिक जीवों की वर्गणा एक है (१५६)। द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१५७)। त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१५८)। चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१५९)। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की वर्गणा एक है (१६०)। मनुष्यों की वर्गणा एक है (१६१)। वान-व्यन्तर देवों की वर्गणा एक है (१६२)। ज्योतिष्क देवों की वर्गणा एक है (१६३)। और वैमानिक देवों की वर्गणा एक है (१६४)।

विवेचन—दण्डक का अर्थ यहाँ वाक्यपद्धति अथवा समानजातीय जीवों का वर्गीकरण करना है और वर्गणा समुदाय को कहते हैं। उक्त चौवीस दण्डकों में नारकी जीवों का एकदण्डक, भवनवासी देवों के दश दण्डक, स्थावरकायिक एकेन्द्रिय जीवों के पाँच दण्डक, द्वीन्द्रियादि तिर्यंचों के चार दण्डक, मनुष्यों का एक दण्डक, व्यन्तरदेवों का एक दण्डक, ज्योतिष्क देवों का एक दण्डक और वैमानिक देवों का एक दण्डक। इस प्रकार सब चौवीस दण्डक होते हैं। प्रत्येक दण्डक की एक-एक वर्गणा होती है। आगमों में संसारी जीवों का वर्णन इन चौवीस दण्डकों (वर्गों) के आश्रय से किया गया है।

भव्य-अभव्यसिद्धिक-पद

१६५—एगा भवसिद्धियाणं वग्गणा। १६६—एगा अभवसिद्धियाणं वग्गणा। १६७—एगा भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १६८—एगा अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १६९—एवं जाव एगा भवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाणं वेमाणियाणं वग्गणा।

भव्यसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है (१६५)। अभव्यसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है (१६६)। भव्यसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१६७)। अभव्यसिद्धिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१६८)। इसी प्रकार भव्यसिद्धिक अभव्यसिद्धिक (असुरकुमारों से लेकर) वैमानिक देवों तक के सभी दण्डकों की वर्गणा एक-एक है (१६९)।

विवेचन—संसारी जीव दो प्रकार के होते हैं—भव्यसिद्धिक या भवसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक या अभवसिद्धिक। जिन जीवों में सिद्ध पद पाने की योग्यता होती है, वे भव्यसिद्धिक कहलाते हैं और जिनमें यह योग्यता नहीं होती है वे अभव्यसिद्धिक कहलाते हैं। यह भव्यपन और अभव्यपन किसी कर्म के निमित्त से नहीं, किन्तु स्वभाव से ही होता है, अतएव इसमें कभी परिवर्त्तन नहीं हो सकता। भव्यजीव कभी अभव्य नहीं बनता और अभव्य कभी भव्य नहीं हो सकता।

दृष्टि-पद

१७०—एगा सम्मद्दिट्ठियाणं वग्गणा। १७१—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा। १७२—एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा। १७३—एगा सम्मद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १७४—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १७५—एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १७६—एवं जाव थणियकुमाराणं वग्गणा। १७७—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं पुढविक्काइयाणं वग्गणा। १७८—एवं जाव वणस्सइकाइयाणं। १७९—एगा सम्मद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं वग्गणा। १८०—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं बेइंदियाणं वग्गणा। १८१—[1][एगा सम्मद्दिट्ठियाणं तेइंदियाणं वग्गणा। १८२—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं

१. पाठान्तर—सं. पा.—एवं तेइंदियाणं वि चउरिंदियाणं वि।

तेइंदियाणं वग्गणा। १८३—एगा सम्मद्दिट्ठियाणं चउरिंदियाणं वग्गणा। १८४—एगा मिच्छद्दिट्ठियाणं चउरिंदियाणं वग्गणा]। १८५--सेसा जहा णेरइया जाव एगा सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं वेमाणियाणं वग्गणा।

सम्यग्दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है (१७०)। मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है (१७१)। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है (१७२)। सम्यग्दृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है। (१७३)। मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१७४)। सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१७५)। इस प्रकार असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों की वर्गणा एक-एक है (१७६)। पृथ्वीकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है (१७७)। इसी प्रकार अप्कायिक जीवों से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीवों की वर्गणा एक-एक है (१७८)।

सम्यग्दृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१७९)। मिथ्यादृष्टि द्वीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१८०)। सम्यग्दृष्टि त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१८१)। मिथ्यादृष्टि त्रीन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१८२)। सम्यग्दृष्टि चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१८३)। मिथ्यादृष्टि चतुरिन्द्रिय जीवों की वर्गणा एक है (१८४)। सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि शेष दण्डकों (पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक, मनुष्य, वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों) की वर्गणा एक-एक है (१८५)।

विवेचन—सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन जिन जीवों के पाया जाता है, उन्हें सम्यग्दृष्टि कहते हैं। मिथ्यात्वकर्म का उदय जिनके होता है, वे मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) प्रकृतिका उदय जिनके होता है, वे सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं। यद्यपि सभी दण्डकों में इनका तर-तमभावगत भेद होता है, पर सामान्य की विवक्षा से उनकी एक वर्गणा कही गयी है।

कृष्ण-शुक्लपाक्षिक-पद

१८६—एगा कण्हपक्खियाणं वग्गणा। १८७—एगा सुक्कपक्खियाणं वग्गणा। १८८—एगा कण्हपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १८९—एगा सुक्कपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा। १९०—एवं—चउवीसदंडओ भाणियव्वो।

कृष्णपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है (१८५)। शुक्लपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है (१८७)। कृष्णपाक्षिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१८८)। शुक्लपाक्षिक नारकीय जीवों की वर्गणा एक है (१८९)। इसी प्रकार शेष सभी कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक-एक है, ऐसा कहना (जानना) चाहिए (१९०)।

विवेचन—जिन जीवों का अपार्ध (देशोन या कुछ कम अर्ध) पुद्गल परावर्तन काल संसार में परिभ्रमण का शेष रहता है, उन्हें शुक्लपाक्षिक कहा जाता है और जिनका संसार-परिभ्रमण काल इससे अधिक होता है वे कृष्णपाक्षिक कहे जाते हैं। यद्यपि अपार्ध पुद्गल परावर्तन का काल भी बहुत लम्बा होता है, तथापि मुक्ति प्राप्त करने की काल-सीमा निश्चित हो जाने के कारण उस जीव को शुक्लपाक्षिक कहा जाता है, क्योंकि उसका भविष्य प्रकाशमय है। किन्तु जिनका समय अपार्ध पुद्गल

परावर्तन से अधिक रहता है उनके अन्धकारमय भविष्य की कोई सीमा निश्चित नहीं होने के कारण उन्हें कृष्णपाक्षिक कहा जाता है।

लेश्या-पद

१९१—एगा कण्हलेस्साणं वग्गणा। १९२—एगा णीललेसाणं वग्गणा। एवं जाव १९३—[एगा काउलेसाणं वग्गणा। १९४—एगा तेउलेसाणं वग्गणा। १९५—एगा पम्हलेसाणं वग्गणा। १९६—एगा] सुक्कलेसाणं वग्गणा। १९७—एगा कण्हलेसाणं णेरइयाणं वग्गणा। १९८—[एगा णीललेसाणं णेरइयाणं वग्गणा जाव। १९९—एगा] काउलेसाणं णेरइयाणं वग्गणा। २००—एवं—जस्स जइ लेसाओ—भवणवइ-वाणमंतर-पुढवि-आउ-वणस्सइकाइयाणं च चत्तारि लेसाओ, तेउ-वाउ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तिण्णि लेसाओ, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं छल्लेस्साओ, जोतिसियाणं एगा तेउलेसा वेमाणियाणं तिण्णि उवरिमलेसाओ।

कृष्णलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९१)। नीललेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९०)। [कापोतलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९३)। तेजोलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९४)। पद्मलेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९५)।] शुक्ललेश्यावाले जीवों की वर्गणा एक है (१९६)। कृष्णलेश्यावाले नारक जीवों की वर्गणा एक है (१९७)। [नीललेश्यावाले नारक जीवों की वर्गणा एक है (१९८)।] कापोतलेश्यावाले नारक जीवों की वर्गणा एक है (१९९)।

इसी प्रकार जिन दण्डकों में जितनी लेश्याएं होती हैं (उनके अनुसार उनकी एक-एक वर्गणा है (२००)। भवनपति, वाण-व्यन्तर, पृथ्वी, अप् (जल) और वनस्पतिकायिक जीवों में प्रारम्भ की चार लेश्याएं होती हैं। अग्नि, वायु, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में आदि की तीन लेश्याएं होती हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक और मनुष्यों के छहों लेश्याएं होती है। ज्योतिष्क देवों के एक तेजोलेश्या होती है। वैमानिक देवों के अन्तिम तीन लेश्याएं होती है (२००)।

२०१—एगा कण्हलेसाणं भवसिद्धियाणं वग्गणा। २०२—एगा कण्हलेसाणं अभवसिद्धियाणं वग्गणा। २०३—एवं छसुवि लेसासु दो दो पयाणि भाणियव्वाणि। २०४—एगा कण्हलेसाणं भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा। २०५—एगा कण्हलेसाणं अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा। २०६—एवं—जस्स जति लेसाओ तस्स ततियाओ भाणियव्वाओ जाव वेमाणियाणं।

कृष्णलेश्यावाले भवसिद्धिक जीवों की एक वर्गणा है (२०१)। कृष्णलेश्यावाले अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक है (२०२)। इसी प्रकार छहों (कृष्ण, नील, कापोत, तैजस, पद्म और शुक्ल) लेश्यावाले भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीवों को वर्गणा एक-एक है (२०३)। कृष्ण लेश्यावाले भवसिद्धिक नारक जीवों की वर्गणा एक है (२०४)। कृष्णलेश्यावाले अभवसिद्धिक नारक जीवों की वर्गणा एक है (२०५)। इसी प्रकार जिसके जितनी लेश्याएं होती हैं, उसके अनुसार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों की वर्गणा एक-एक है (२०६)।

२०७—एगा कण्हलेसाणं सम्मद्दिट्ठियाणं वग्गणा। २०८—एगा कण्हलेसाणं मिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा। २०९—एगा कण्हलेसाणं सम्मामिच्छद्दिट्ठियाणं वग्गणा। २१०—एवं—छसुवि लेसासु जाव वेमाणियाणं 'जेसिं जइ दिट्ठीओ'।

कृष्णलेश्यावाले सम्यग्दृष्टि जीवों की वर्गणा एक है (२०७)। कृष्णलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है (२०८)। कृष्णलेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की वर्गणा एक है (२०९)। इसी प्रकार कृष्ण आदि छहों लेश्यावाले वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में जिसके जितनी दृष्टियाँ होती हैं, उसके अनुसार उसकी वर्गणा एक-एक है (२१०)।

२११—एगा कण्हलेसाणं कण्हपक्खियाणं वग्गणा। २१२—एगा कण्हलेसाणं सुक्कपक्खियाणं वग्गणा। २१३—जाव वेमाणियाणं। जस्स जति लेसाओ एए अट्ठ, चउवीसदंडया।

कृष्णलेश्यावाले कृष्णपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है (२११)। कृष्णालेश्यावाले शुक्ल पाक्षिक जीवों की वर्गणा एक है (२१२) इसी प्रकार जिनमें जितनी लेश्याएं होती हैं, उसके अनुसार कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक जीवों की वर्गणा एक-एक है। ये ऊपर वतलाये गये चौबीस दण्डकों की वर्गणा के आठ प्रकरण हैं (२१३)।

विवेचन—लेश्या का आगम-सूत्रों और शास्त्रों में विस्तृत वर्णन पाया जाता है। उसमें से संस्कृत टीकाकार अभयदेव सूरिने **'लिश्यते प्राणी यया सा लेश्या'** यह निरुक्ति-परक अर्थ प्राचीन दो श्लोकों को उद्धृत करते हुए किया है। अर्थात् जिस योग परिणति के द्वारा जीव कर्म से लिप्त होता है उसे लेश्या कहते हैं। अपने कथन की पुष्टि में प्रज्ञापना वृत्तिकार का उद्धरण भी उन्होंने दिया है। आगे चलकर उन्होंने लिखा है कि कुछ अन्य आचार्य कर्मों के निष्यन्द या रस को लेश्या कहते हैं। किन्तु आठों कर्मों का और उनकी उत्तर प्रकृतियों का फलरूप रस तो भिन्न-भिन्न प्रकार होता है, अतः सभी कर्मों के रस को लेश्या इस पद से नहीं कहा जा सकता है।

आगम में जम्बू वृक्ष के फल को खाने के लिए उद्यत छह पुरुषों की विभिन्न मनोवृत्तियों के अनुसार कृष्णादि लेश्याओं का उदाहरण दिया गया है, उससे ज्ञात होता है कि कषाय-जनित तीव्र-मन्द आदि भावों की प्रवृत्ति का नाम भावलेश्या है और वर्ण नाम कर्मोदय-जनित शरीर के कृष्ण, नील आदि वर्णों का नाम द्रव्यलेश्या है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में लेश्याओं का सोलह अधिकारों-द्वारा विस्तृत विवेचन किया गया है। वहां बताया गया है कि जो आत्मा को पुण्य-पाप कर्मों से लिप्त करे ऐसी कषायके उदय से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। उसके मूल में दो भेद हैं—द्रव्यलेश्या और भावलेश्या। दोनों ही लेश्याओं के छह भेद कहे गये हैं। उनके नाम और लक्षण इस प्रकार हैं—

१ कृष्णलेश्या—कृष्ण वर्णनाम कर्म के उदय से जीव के शरीर का भौंरे के समान काला होना द्रव्य-कृष्णलेश्या है। क्रोधादिकषायों के तीव्र उदय से अति प्रचण्ड स्वभाव होना, दया-धर्म से रहित हिंसक कार्यों में प्रवृत्ति होना, उपकारी के साथ भी दुष्ट व्यवहार करना और किसी के वश में नहीं आना भावकृष्ण लेश्या है। इस लेश्या वाले के भाव फल के वृक्ष को देख कर उसे जड़ से उखाड़ कर फल खाने के होते हैं।

२. नील लेश्या—नीलवर्ण नामकर्म के उदय से जीव के शरीर का मयूर-कण्ठ के समान नीला होना द्रव्य नीललेश्या है। इन्द्रियों में विषयों की तीव्र लोलुपता होना, हेय-उपादेय के विवेक से

रहित होना, मानी, मायाचारी, आलसी होना, धन-धान्य में तीव्र गृद्धता होना, दूसरों को ठगने की प्रवृत्ति होना, ये सब भाव नील लेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव फले वृक्ष की बड़ी बड़ी शाखाएँ काट कर फल खाने के होते हैं।

३. **कापोतलेश्या**—मन्द अनुभाग वाले कृष्ण और नील वर्ण के उदय से सम्मिश्रणरूप कबूतर के वर्ण-समान शरीर का वर्ण होना द्रव्यकापोत लेश्या है। जरा-जरा सी बातों पर रुष्ट होना, दूसरों की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरों का अपमान कर अपने को बड़ा बताना, दूसरों का विश्वास नहीं करना और भले-बुरे का विचार नहीं करना, ये सब भाव कापोत लेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव फलवान् वृक्ष की छोटी छोटी शाखाएँ काट कर फल खाने के होते हैं।

४. **तेजोलेश्या**—रक्तवर्ण नामकर्म के उदय से शरीर का लाल वर्ण होना द्रव्य तेजोलेश्या है। कर्तव्य-अकर्त्तव्य और भले-बुरे को जानना, दया, दान करना और मन्द कषाय रखते हुए सबको समान दृष्टि से देखना, ये सब भाव तेजोलेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव फलों से लदी टहनियां तोड़कर फल खाने के होते हैं। यहां यह ज्ञातव्य है कि शास्त्रों में जिस शाप और अनुग्रह करने वाली तेजोलेश्या का उल्लेख आता है, वह वस्तुतः तेजोलब्धि है, जो कि तपस्या की साधनाविशेष से किसी-किसी तपस्वी साधु को प्राप्त होती है।

५. **पद्मलेश्या**—पीत और रक्तनाम कर्म के उदय से दोनों वर्णों के मिश्रित मन्द उदय से गुलाबी कमल जैसा शरीर का वर्ण होना द्रव्य पद्मलेश्या है। भद्र परिणामी होना, साधुजनों को दान देना, उत्तम धार्मिक कार्य करना, अपराधी के अपराध क्षमा करना, व्रत-शीलादि का पालन करना, ये सब भाव पद्मलेश्या के लक्षण हैं।' इस लेश्या वाले के भाव फलों के गुच्छे तोड़कर फल खाने के होते हैं।

६. **शुक्ललेश्या**—श्वेत नामकर्म के उदय से शरीर का धवल वर्ण या गौर वर्ण होना द्रव्य शुक्ललेश्या है। किसी से राग-द्वेष नहीं करना, पक्षपात नहीं करना, सबमें समभाव रखना, व्रत, शील, संयमादि को पालना और निदान नहीं करना ये भाव शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं। इस लेश्या वाले के भाव नीचे स्वयं गिरे हुए फलों को खाने के होते हैं।

देवों और नारकों में तो भाव लेश्या एक अवस्थित और जीवन-पर्यन्त स्थायिनी होती है। किन्तु मनुष्यों और तिर्यंचों में छहों लेश्याएं अनवस्थित होती हैं और वे कषायों की तीव्रता-मन्दता के अनुसार अन्तर्मुहूर्त में बदलती रहती हैं।

प्रत्येक भावलेश्या के जघन्य अंश से लेकर उत्कृष्ट अंश तक असंख्यात भेद होते हैं। अतः स्थायी लेश्या वाले जीवों की वह लेश्या भी काषायिक भावों के अनुसार जघन्य से लेकर उत्कृष्ट अंश तक यथासम्भव बदलती रहती है।

'जल्लेस्से मरइ. तल्लेस्से उप्पज्जइ' इस नियम के अनुसार जो जीव जैसी लेश्या वाले परिणामों में मरता है, वैसी ही लेश्या वाले जीवों में उत्पन्न होता है।

उपर्युक्त छह लेश्याओं में से कृष्ण, नील और कापोत ये तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं तथा तेज, पद्म और शुक्ल ये शुभ लेश्याएं मानी गई हैं।

प्रकृत लेश्यापद में जिन-जिन जीवों की जो-जो लेश्या समान होती है, उन-उन जीवों की समानता की दृष्टि से एक वर्गणा कही गई है।

सिद्ध-पद

२१४—एगा तित्थसिद्धाणं वग्गणा एवं जाव। २१५—[एगा अतित्थसिद्धाणं वग्गणा। २१६—एगा तित्थगरसिद्धाणं वग्गणा। २१७—एगा अतित्थगरसिद्धाणं वग्गणा। २१८—एगा सयंबुद्धसिद्धाणं वग्गणा। २१९—एगा पत्तेयबुद्धसिद्धाणं वग्गणा। २२०—एगा बुद्धबोहियसिद्धाणं वग्गणा। २२१—एगा इत्थीलिंगसिद्धाणं वग्गणा। २२२—एगा पुरिसलिंगसिद्धाणं वग्गणा। २२३—एगा णपुंसकलिंगसिद्धाणं वग्गणा। २२४—एगा सलिंगसिद्धाणं वग्गणा। २२५—एगा अण्णलिंगसिद्धाणं वग्गणा। २२६—एगा गिहिलिंगसिद्धाणं वग्गणा]। २२७—एगा एक्कसिद्धाणं वग्गणा। २२८—एगा अणिक्कसिद्धाणं वग्गणा। २२९—एगा अपढमसमयसिद्धाणं वग्गणा, एवं जाव अणंतसमयसिद्धाणं वग्गणा।

तीर्थसिद्धों की वर्गणा एक है (२१४)। अतीर्थसिद्धों की वर्गणा एक है (२१५)। तीर्थंकर-सिद्धों की वर्गणा एक है (२१६)। अतीर्थंकरसिद्धों की वर्गणा एक है (२१७)। स्वयंबुद्धसिद्धों की वर्गणा एक है (२१८)। प्रत्येकबुद्धसिद्धों की वर्गणा एक है (२१९)। बुद्धबोधितसिद्धों की वर्गणा एक है (२२०)। स्त्रीलिंगसिद्धों की वर्गणा एक है (२२१)। पुरुषलिंगसिद्धों की वर्गणा एक है (२२१)। नपुसंकलिंगसिद्धों की वर्गणा एक है (२२३)। स्वलिंगसिद्धों की वर्गणा एक है (२२४)। अन्यलिंगसिद्धों की वर्गणा एक है (२२५)। गृहिलिंगसिद्धों की वर्गणा एक है (२२५)। एक (एक) सिद्धों की वर्गणा एक है (२२७) अनेकसिद्धों की वर्गणा एक है (२२८)। अप्रथमसमय सिद्धों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार यावत् अनन्तसमयसिद्धों की वर्गणा एक है (२२९)।

विवेचन—इसी एक स्थानक के ५२ वें सूत्र में स्वरूप की समानता की अपेक्षा 'सिद्ध एक है' ऐसा कहा गया है और उक्त सूत्रों में उनके पन्द्रह प्रकार कहे गये हैं, सो इसे परस्पर विरोधी कथन नहीं समझना चाहिए। क्योंकि यहाँ पर भूतपूर्वप्रज्ञापन नय की अर्थात् सिद्ध होने के मनुष्यभव की अपेक्षा तीर्थसिद्ध आदि की वर्गणा का प्रतिपादन किया गया है। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. तीर्थसिद्ध—जो तीर्थ की स्थापना के पश्चात् तीर्थ में दीक्षित होकर सिद्ध होते हैं, जैसे ऋषभदेव के गणधर ऋषभसेन आदि।

२. अतीर्थसिद्ध—जो तीर्थ की स्थापना से पूर्व सिद्ध होते हैं, जैसे मरुदेवी माता।

३. तीर्थंकर सिद्ध—जो तीर्थंकर होकर के सिद्ध होते हैं, जैसे ऋषभ आदि।

४. अतीर्थंकर सिद्ध—जो सामान्यकेवली होकर सिद्ध होते हैं, जैसे—गौतम आदि।

५, स्वयंबुद्धसिद्ध—जो स्वयं बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते हैं जैसे—महावीर स्वामी।

६. प्रत्येकबुद्धसिद्ध—जो किसी बाह्य निमित्त से प्रबुद्ध होकर सिद्ध होते हैं, जैसे—नमिराज आदि।

७. बुद्धबोधितसिद्ध—जो आचार्य आदि के द्वारा बोधि प्राप्त कर सिद्ध होते हैं, जैसे—जम्बूस्वामी आदि।

८. स्त्रीलिंगसिद्ध—जो स्त्रीलिंग से सिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी आदि।

९. पुरुषलिंग सिद्ध—जो पुरुष लिंग से सिद्ध होते हैं, जैसे—महावीर।

१०. नपुंसकलिंगसिद्ध—जो कृत्रिम नपुंसकलिंग से सिद्ध होते है, जैसे—गांगेय ।

११. स्वलिंगसिद्ध—जो निर्ग्रन्थ वेष से सिद्ध होते हैं, जैसे—सुधर्मा ।

१२. अन्यलिंगसिद्ध—जो निर्ग्रन्थ वेष के अतिरिक्त अन्य वेष से सिद्ध होते हैं; जैसे—वल्कलचीरी

१३. गृहिलिंगसिद्ध—जो गृहस्थ के वेष से सिद्ध होते हैं, जैसे—मरुदेवी

१४. एकसिद्ध—जो एक समय में एक ही सिद्ध होते हैं, जैसे—महावीर ।

१५. अनेकसिद्ध—जो एक समय में दो से लेकर उत्कृष्टतः एक सौ आठ तक एक साथ सिद्ध होते हैं। जैसे—ऋषभदेव ।

इस प्रकार पन्द्रह द्वारों से मनुष्य पर्याय की अपेक्षा सिद्धों की विभिन्न वर्गणाओं का वर्णन किया गया है। परमार्थदृष्टि से सिद्धलोक में विराजमान सव-सिद्ध समान रूप से अनन्त गुणों के धारक हैं, अतः उनकी एक ही वर्गणा है ।

पुद्गल-पद

२३०—एगा परमाणुपोग्गलाणं वग्गणा, एवं जाव एगा अणंतपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३१—एगा एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा। २३२—एगा एगसमयठितियाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जसमयठितियाणं पोग्गलाणं वग्गणा। २३३—एगा एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा, एगा अणंतगुणकालगाणं पोग्गलाणं वग्गणा। २३४—एवं वण्णा गंधा रसा फासा भाणियव्वा जाव एगा अणंतगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

(एक प्रदेशी) परमाणु पुद्गलों की वर्गणा एक है, इसी प्रकार द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक-एक है (२३०)। एक प्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो, तीन यावत् असंख्यप्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक एक है (२३१)। एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो, तीन यावत् असंख्य समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक एक है (२३२)। एक गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है। इसी प्रकार दो तीन यावत् असंख्य गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक एक है। अनन्त गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है (२३३)। इसी प्रकार सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुणवाले यावत् अनन्त गुण रूक्ष स्पर्शवाले पुद्गलों की वर्गणा एक एक है (२३४)।

२३५—एगा जहण्णपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३६—एगा उक्कस्सपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३७—एगा अजहण्णुक्कस्सपएसियाणं खंधाणं वग्गणा। २३८—एवं एगा जहण्णोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा। २३९—एगा उक्कोसोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा। २४०—एगा अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं खंधाणं वग्गणा। २४१—एगा जहण्णठितियाणं खंधाणं वग्गणा। २४२—एगा उक्कस्सठितियाणं खंधाणं वग्गणा। २४३—एगा अजहण्णुक्कोसठितियाणं खंधाणं वग्गणा। २४४—एगा जहण्णगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा। २४५—एगा उक्कस्सगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा। २४६—एगा अजहण्णुक्कस्सगुणकालगाणं खंधाणं वग्गणा। २४७—एवं—वण्ण-गंध-रस-फासाणं वग्गणा भाणियव्वा जाव एगा अजहण्णुक्कस्सगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं [खंधाणं] वग्गणा।

जघन्य प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है (२३५)। उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है (२३६) अजघन्योत्कृष्ट, (न जघन्य, न उत्कृष्ट, किन्तु दोनों के मध्यवर्ती) प्रदेशवाले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२३७)। जघन्य अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२३८)। उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२३९)। अजघन्योत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२४०)। जघन्य स्थिति वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२४१)। उत्कृष्ट स्थितिवाले पुद्गलों की वर्गणा एक है (२४२)। अजघन्योत्कृष्ट स्थिति वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२४३) जघन्य गुण काले स्कन्धों को वर्गणा एक है (२४४)। उत्कृष्ट गुण काले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२४५) अजघन्योत्कृष्ट गुण काले स्कन्धों की वर्गणा एक है (२४६)। इसी प्रकार शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के जघन्य गुण, उत्कृष्ट गुण और अजघन्योत्कृष्ट गुणवाले पुद्गलों (स्कन्धों) की वर्गणा एक एक है।

विवेचन—पुद्गलपद में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से पुद्गल वर्गणाओं की एकता का विचार किया गया है। सूत्राङ्क २३० में द्रव्य की अपेक्षा से, सूत्राङ्क २३१ में क्षेत्र की अपेक्षा से, सूत्राङ्क २३२ में काल की अपेक्षा से और सूत्राङ्क २३३ में भाव की अपेक्षा कृष्ण रूप गुण की एकता का वर्णन है। शेष रूपों एवं रस आदि की अपेक्षा एकत्व की सूचना सूत्राङ्क २३४ में की गई है। इसी प्रकार सूत्राङ्क २३५ से २४७ तक के सूत्रों में उक्त वर्गणाओं का निरूपण जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यगत स्कंध-भेदों की अपेक्षा से किया गया है।

जम्बूद्वीप-पद

२४८—एगे जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं जाव [सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए, वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए, वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए, वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए, एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं०] अद्धंगुलगं च किंचिविसेसाहिए परिक्खेवेणं।

सर्व द्वीपों और सर्व समुद्रों में सबसे आभ्यन्तर (मध्य में) जम्बूद्वीप नाम का एक द्वीप है, जो सबसे छोटा है। वह तेल-(में तले हुए) पूवे के संस्थान (आकार) से संस्थित वृत्त (गोलाकार) है, रथ के चक्र-संस्थान से संस्थित वृत्त है, कमल-कर्णिका के संस्थान से संस्थित वृत्त है, तथा परिपूर्ण चन्द्र के संस्थान से संस्थित वृत्त है। वह एक लाख योजन आयाम (लम्बाई) और विष्कम्भ (चौड़ाई) वाला है। उसकी परिधि (घेरा) तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोश, अट्ठाईस धनुष, तेरह अंगुल और आधे अंगुल से कुछ अधिक है (२४८)।

महावीर-निर्वाण-पद

२४९—एगे समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थगराणं चरमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते जाव [अंतगडे परिणिव्वुडे०] सव्वदुक्खप्पहीणे।

इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों में चरम (अन्तिम) तीर्थंकर श्रमण भगवान्

महावीर अकेले ही सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत (संसार का अन्त करने वाले) परिनिवृत्त (कर्मकृत विकारों से विहीन) एवं सर्व दुःखों से रहित हुए (२४९)।

देव-पद

२५०—अणुत्तरोववाइया णं देवा 'एगं रयणिं' उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

अनुत्तरोपपातिक देवों की ऊंचाई एक हाथ की कही गई है (२५०)।

नक्षत्र-पद

२५१—अद्दाणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

२५२—चित्ताणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

२५३—सातिणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

आर्द्रा नक्षत्र एक तारा वाला है (२५१)। चित्रा नक्षत्र एक तारा वाला है (२५२)। स्वाति नक्षत्र एक तारा वाला है (२५३)।

पुद्गल-पद

२५४—एगपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। २५५—एवं एगसमयठितिया पोग्गला अणंता पण्णत्ता। २५६—एगगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव[1] एगगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

एक प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं (२५४)। एक समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं (२५५)। एक गुण काले पुद्गल अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुण वाले पुद्गल अनन्त-अनन्त कहे गये हैं। (२५६)।

॥ प्रथम स्थान समाप्त ॥

द्वितीय स्थान

सार : संक्षेप

प्रथम स्थान में चेतन—अचेतन सभी पदार्थों का संग्रह नय की अपेक्षा से एकत्व का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु प्रस्तुत द्वितीय स्थान में व्यवहार नय की अपेक्षा भेद अभेद विवक्षा से प्रत्येक द्रव्य, वस्तु या पदार्थ के दो-दो भेद करके प्रतिपादन किया गया है। इस स्थान का प्रथम सूत्र है—'जदत्थि णं लोगे तं सव्वं दुपओआरं'।

अर्थात्—इस लोक में जो कुछ है, वह सब दो-दो पदों में अवतरित होता है अर्थात् उनका समावेश दो विकल्पों में हो जाता है। इसी प्रतिज्ञावाक्य के अनुसार इस स्थान के चारों उद्देशों में त्रिलोक-गत सभी वस्तुओं का दो-दो पदों में वर्णन किया गया है।

इस स्थान के प्रथम उद्देश में द्रव्य के दो भेद किये गये हैं—जीव और अजीव। पुनः जीव तत्त्व के त्रस-स्थावर, सयोनिक-अयोनिक, सायुष्य-निरायुष्य, सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय सवेदक-अवेदक, सरूपी-अरूपी, सपुद्गल अपुद्गल, संसारी-सिद्ध और शाश्वत-अशाश्वत भेदों का निरूपण है।

तत्पश्चात् अजीव तत्त्व के आकाशास्तिकाय-नोआकाशास्ति काय, धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय का वर्णन है तदनन्तर अन्य तत्वों के बन्ध-मोक्ष, पुण्य-पाप, संवर-निर्जरा, और वेदना-निर्जरा का वर्णन है। पुनः जीव और अजीव के निमित्त से होने वाली २५ क्रियाओं का विस्तृत निरूपण है।

पुनः गर्हा और प्रत्याख्यान के दो-दो भेदों का कथन कर मोक्ष के दो साधन बताये गये हैं। तत्पश्चात् बताया गया है कि केवलि-प्ररूपित धर्म का श्रवण, बोधि की प्राप्ति, अनगारदशा ब्रह्मचर्य-पालन, शुद्धसंयम-पालन, आत्म-संवरण और मतिज्ञानादि पांचों सम्यग्ज्ञानों की प्राप्ति जाने और त्यागे विना नहीं हो सकती, किन्तु दो स्थानों को जान कर उनके त्यागने पर ही होती है। तथा उत्तम धर्मश्रवण आदि की प्राप्ति दो स्थानों के आराधन से ही होती है।

तदनन्तर समय, उन्माद, दण्ड, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय के दो-दो भेद कहकर दो-दो प्रकार के द्रव्यों का वर्णन किया गया है।

अन्त में काल और आकाश के दो दो भेद बताकर चौवीस दण्डकों में दो दो शरीरों की प्ररूपणा कर शरीर की उत्पत्ति और निवृत्ति के दो दो कारणों का वर्णन कर पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके करने योग्य कार्यों का निरूपण किया गया है।

द्वितीय उद्देश का सार

चौवीस दण्डकवर्ती जीवों के वर्तमान भव में एवं अन्य भवों में कर्मों के बन्धन और उनके फल का वेदन बताकर सभी दण्डकवाले जीवों की गति-आगति का वर्णन किया गया है। तदनन्तर चौवीस दण्डकवर्ती जीवों की भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक, अनन्तरोपपन्नक, परम्परोपपन्नक, गति-

महावीर अकेले ही सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत (संसार का अन्त करने वाले) परिनिवृत्त (कर्मकृत विकारों से विहीन) एवं सर्व दुःखों से रहित हुए (२४९)।

देव-पद

२५०—अणुत्तरोववाइया णं देवा 'एगं रयणिं' उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

अनुत्तरोपपातिक देवों की ऊंचाई एक हाथ की कही गई है (२५०)।

नक्षत्र-पद

२५१—अद्दाणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

२५२—चित्ताणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

२५३—सातिणक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।

आर्द्रा नक्षत्र एक तारा वाला है (२५१)। चित्रा नक्षत्र एक तारा वाला है (२५२)। स्वाति नक्षत्र एक तारा वाला है (२५३)।

पुद्गल-पद

२५४—एगपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। २५५—एवं एगसमयठितिया पोग्गला अणंता पण्णत्ता। २५६—एगगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव[1] एगगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

एक प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त हैं (२५४)। एक समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं (२५५)। एक गुण काले पुद्गल अनन्त हैं। इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुण वाले पुद्गल अनन्त-अनन्त कहे गये हैं। (२५६)।

॥ प्रथम स्थान समाप्त ॥

तत्पश्चात् कर्मपद के द्वारा दो प्रकार के बंध, दो स्थानों से पापकर्म का बंध, दो प्रकार की वेदना से पापकर्म की उदीरणा, दो प्रकार से वेदना का वेदन, और दो प्रकार से कर्म-निर्जरा का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर आत्म-निर्याणपद के द्वारा दो प्रकार से आत्म-प्रदेशों का शरीर को स्पर्शकर, स्फुरणकर, स्फोटकर संवर्तनकर, और निर्वर्तनकर बाहिर निकलने का वर्णन किया गया है।

पुन: क्षयोपशम पद के द्वारा केवलिप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण, बोधि का अनुभव, अनगारिता, ब्रह्मचर्यावास, संयम से संयतता, संवर से संवृतता और मतिज्ञानादि की प्राप्ति कर्मों के क्षय और उपशम से होने का वर्णन किया गया है।

पुन: औपमिक काल पद के द्वारा पल्योपम, सागरोपमकाल का, पाप पद के द्वारा क्रोध, मानादि पापों के आत्मप्रतिष्ठित और परप्रतिष्ठित होने का वर्णन कर जीवपद के द्वारा जीवों के त्रस-स्थावर आदि दो दो भेदों का निरूपण किया गया है।

तत्पश्चात् मरणपद के द्वारा भ. महावीर से अनुज्ञात और अननुज्ञात दो दो प्रकार के मरणों का वर्णन किया गया है। पुन: लोकपद के द्वारा भगवान् से पूछे गये लोक-सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर, बोधिपद के द्वारा बोधि और बुद्ध, मोहपद के द्वारा मोह और मूढ़ जनों का वर्णन कर कर्मपद के द्वारा ज्ञानावरणादि आठों कर्मों की द्विरूपता का निरूपण किया गया है।

तदनन्तर मूर्च्छापद के द्वारा दो प्रकार की मूर्च्छाओं का, आराधनापद के द्वारा दो दो प्रकार की आराधनाओं का और तीर्थंकर-वर्णपद के द्वारा दो दो तीर्थंकरों के नामों का निर्देश किया गया है।

पुन: सत्यप्रवादपूर्व की दो वस्तु नामक अधिकारों का निर्देश कर दो दो तारा वाले नक्षत्रों का, मनुष्यक्षेत्र-गत दो समुद्रों का और नरक गये दो चक्रवर्त्तियों के नामों का निर्देश किया गया है।

तत्पश्चात् देवपद के द्वारा देवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का, दो कल्पों में देवियों की उत्पत्ति का, दो कल्पों में तेजोलेश्या का और दो दो कल्पों में क्रमश: कायप्रवीचार, स्पर्श, रूप, शब्द और मन:प्रवीचार का वर्णन किया गया है।

अन्त में पापकर्मपद के द्वारा त्रस और स्थावर-कायरूप से कर्मों का संचय निरूपण कर पुद्गलपद के द्विप्रदेशी, द्विप्रदेशावगाढ, द्विसमयस्थितिक तथा दो-दो रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुणयुक्त पुद्गलों का वर्णन किया गया है।

समापन्नक-अगति-समापन्नक, आहारक-अनाहारक, उच्छ्वासक-नोउच्छ्वासक, संज्ञी-असंज्ञी आदि दो-दो अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर अधोलोक आदि तीनों लोकों में जानने के दो दो स्थानों का, शब्दादि को ग्रहण करने के दो स्थानों का वर्णन कर प्रकाश, विक्रिया, परिवार, विषय-सेवन, भाषा, आहार, परिणमन, वेदन और निर्जरा करने के दो दो स्थानों का वर्णन किया गया है। अन्त में मरुत आदि देवों के दो प्रकार के शरीरों का निरूपण किया गया है।

तृतीय उद्देश का सार

दो प्रकार के शब्द और उनकी उत्पत्ति, पुद्गलों का सम्मिलन, भेदन, परिशाटन, पतन, विध्वंस, स्वयंकृत और परकृत कहकर पुद्गल के दो दो प्रकार बताये गये हैं।

तत्पश्चात् आचार और उसके भेद-प्रभेद, बारह प्रतिमाओं का दो दो के रूप में निर्देश, सामायिक के प्रकार, जन्म-मरण के लिए विविध शब्दों का प्रयोग, मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के गर्भ-सम्बन्धी जानकारी, कायस्थिति और भवस्थिति का वर्णन कर दो प्रकार की आयु, दो प्रकार के कर्म, निरुपक्रम और सोपक्रम आयु भोगने वाले जीवों का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर क्षेत्रपद, पर्वतपद, गुहापद, कूटपद, महाद्रहपद, महानदीपद, प्रपातद्रहपद, कालचक्र-पद, शलाकापुरुष-वंशपद, शलाकापुरुषपद, चन्द्रसूरपद, नक्षत्रपद, नक्षत्रदेवपद, महाग्रहपद, और जम्बूद्वीप-वेदिकापद के द्वारा जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्र-पर्वत आदि का तथा नक्षत्र आदि का दो-दो के रूप में विस्तृत वर्णन किया गया है।

पुनः लवण समुद्रपद के द्वारा उसके विष्कम्भ और वेदिका के प्रमाण को बताकर धातकीषण्ड-पद के द्वारा तद्-गत क्षेत्र, पर्वत, कूट, महाद्रह, महानदी, बत्तीस विजयक्षेत्र, बत्तीस नगरियां, दो मन्दर आदि का विस्तृत वर्णन, अन्त में धातकीषण्ड की वेदिका और कालोद समुद्र की वेदिका का प्रमाण बताया गया है।

तत्पश्चात् पुष्करवर पद के द्वारा वहां के क्षेत्र, पर्वत, नदी, कूट, आदि धातकीषण्ड के समान दो दो जानने की सूचना दी गई है। पुनः पुष्करवर द्वीप की वेदिका की ऊंचाई और सभी द्वीपों और समुद्रों की वेदिकाओं की ऊंचाई दो दो कोश बतायी गयी है।

अन्त में इन्द्रपद के द्वारा भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवों के दो दो इन्द्रों का निरूपण कर विमानपद में विमानों के दो दो वर्णों का वर्णन कर ग्रैवेयकवासी देवों के शरीर की ऊंचाई दो रत्नि प्रमाण कही गयी है।

चतुर्थ उद्देश का सार

इस उद्देश में जीवाजीवपद के द्वारा समय, आवलिका से लेकर उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी पर्यन्त काल के सभी भेदों को, तथा ग्राम, नगर से लेकर राजधानी तक के सभी जन-निवासों को, सभी प्रकार के उद्यान-वनादि को, सभी प्रकार के कूप-नदी आदि जलाशयों को, तोरण, वेदिका, नरक, नारकावास, विमान-विमानावास, कल्प, कल्पावास और छाया-आतप आदि सभी लोकस्थित पदार्थों को जीव और अजीव रूप बताया गया है।

क्रिया-पद

२—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जीवकिरिया चेव, अजीवकिरिया चेव। ३—जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मत्तकिरिया चेव, मिच्छत्तकिरिया चेव। ४—अजीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—इरियावहिया चेव, संपराइगा चेव। ५—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—काइया चेव, आहिगरणिया चेव। ६—काइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणुवरयकायकिरिया चेव, दुपउत्तकायकिरिया चेव। ७—आहिगरणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संजोयणाधिकरणिया चेव, णिव्वत्तणाधिकरणिया चेव। ८—दो किरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा—पाओसिया चेव, पारियावणिया चेव। ९—पाओसिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवपाओसिया चेव, अजीवपाओसिया चेव। १०—पारियावणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सहत्थपारियावणिया चेव, परहत्थपारियावणिया चेव।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवक्रिया (जीव की प्रवृत्ति) और अजीवक्रिया (पुद्गल वर्गणाओं की कर्मरूप में परिणति) (२)। जीवक्रिया दो प्रकार की कही गई है।—सम्यक्त्वक्रिया (सम्यग्दर्शन बढ़ाने वाली क्रिया) और मिथ्यात्वक्रिया (मिथ्यादर्शन बढ़ाने वाली क्रिया) (३)। अजीव क्रिया दो प्रकार की होती है—ऐर्यापथिकी (वीतराग को होने वाली कर्मास्रवरूप क्रिया) और साम्परायिकी (सकषाय जीव को होने वाली कर्मास्रवरूप क्रिया) (४)।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है---कायिकी (शारीरिक क्रिया) और आधिकरणिकी (अधिकरण-शस्त्र आदि की प्रवृत्तिरूप क्रिया) (५)। कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है। ---अनुपरतकायक्रिया (विरति-रहित व्यक्ति की शारीरिक प्रवृत्ति) और दुष्प्रयुक्त कायक्रिया (इंद्रिय और मन के विषयों में आसक्त प्रमत्तसंयत की शारीरिक प्रवृत्तिरूप क्रिया) (६)। आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—संयोजनाधिकरणिकी क्रिया (पूर्वनिर्मित भागों को जोड़कर शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया) और निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया (नये सिरे से शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया) (७)।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्रादोषिकी (मात्सर्यभावरूप क्रिया) और पारितापनिकी (दूसरों को सन्ताप देने वाली क्रिया) (८)। प्रादोषिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवप्रादोषिकी (जीव के प्रति मात्सर्यभावरूप क्रिया) और अजीवप्रादोषिकी (अजीव के प्रति मात्सर्य भावरूप क्रिया) ९। पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वहस्तपारितापनिकी (अपने हाथ से स्वयं को या दूसरे को परिताप देने रूप क्रिया) और परहस्तपारितापनिकी (दूसरे व्यक्ति के हाथ से स्वयं को या अन्य को परिताप दिलानेवाली क्रिया) (१०)।

११—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पाणातिवायकिरिया चेव, अपच्चक्खाणकिरिया चेव। १२—पाणातिवायकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सहत्थपाणातिवायकिरिया चेव, परहत्थपाणातिवायकिरिया चेव। १३—अपच्चक्खाणकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव, अजीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्राणातिपात क्रिया (जीव-घात से होने वाला कर्म-बन्ध)। और अप्रत्याख्यान क्रिया (अविरति से होनेवाला कर्म-बन्ध) (११)। प्राणातिपात क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया (अपने हाथ से अपने या दूसरे के प्राणों का घात

द्वितीय स्थान

प्रथम उद्देश

द्विपदावतार-पद

१—'जदत्थि णं' लोगे तं सव्वं दुपओआरं, तं जहा—जीवच्चेव, अजीवच्चेव। 'तसच्चेव, थावरच्चेव'। सजोणियच्चेव, अजोणियच्चेव। साउयच्चेव, अणाउयच्चेव। सइंदियच्चेव, अणिंदियच्चेव। सवेयगा चेव, अवेयगा चेव। सरूवी चेव, अरूवी चेव। सपोग्गला चेव। अपोग्गला चेव। संसारसमावण्णगा चेव, असंसारसमावण्णगा चेव। सासया चेव, असासया चेव। आगासे चेव, णोआगासे चेव। धम्मे चेव, अधम्मे चेव। बंधे चेव, मोक्खे चेव। पुण्णे चेव, पावे चेव। आसवे चेव, संवरे चेव। वेयणा चेव, णिज्जरा चेव।

लोक में जो कुछ है, वह सब दो दो पदों में अवतरित होता है। यथा-जीव और अजीव। त्रस और स्थावर। सयोनिक और अयोनिक। आयु-सहित और आयु-रहित। इन्द्रिय-सहित और इन्द्रिय-रहित। वेद-सहित और वेद-रहित। रूप-सहित और रूप-रहित। पुद्‌गल-सहित और पुद्‌गल-रहित। संसार-समापन्न (संसारी) और असंसार-समापन्न (सिद्ध)। शाश्वत (नित्य) और अशाश्वत (अनित्य)। आकाश और नोआकाश। धर्म और अधर्म। बन्ध और मोक्ष। पुण्य और पाप। आस्रव और संवर। वेदना और निर्जरा (१)।

विवेचन—इस लोक में दो प्रकार के द्रव्य हैं—सचेतन-जीव और अचेतन-अजीव। जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। जिनके त्रस नामकर्म का उदय होता है, ऐसे द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं और जिनके स्थावर नामकर्म का उदय होता है ऐसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक जीव स्थावर कहलाते हैं। योनि-सहित संसारी जीवों को सयोनिक और योनि-रहित सिद्ध जीवों को अयोनिक कहते हैं। इसी प्रकार आयु और इन्द्रिय सहित जीवों को सेन्द्रिय संसारी और उनसे रहित जीव अनिन्द्रिय मुक्त कहलाते हैं। वेदयुक्त जीव सवेदी और वेदातीत दशम आदि गुणस्थानवर्ती तथा सिद्ध अवेदी कहलाते हैं। पुद्‌गलद्रव्य रूप-सहित है और शेष पांच द्रव्य रूप-रहित हैं। संसारी जीव पुद्‌गलसहित हैं और मुक्त जीव पुद्‌गल-रहित हैं। जन्म-मरणादि से रहित होने के कारण सिद्ध शाश्वत हैं क्योंकि वे सदा एक शुद्ध अवस्था में रहते हैं और संसारी जीव अशाश्वत हैं क्योंकि वे जन्म, जरा, मरणादि रूप से विभिन्न दशाओं में परिवर्तित होते रहते हैं।

जिसमें सर्वद्रव्य अपने-अपने स्वरूप से विद्यमान हैं, उसे आकाश कहते हैं। नो शब्द के दो अर्थ होते हैं—निषेध और भिन्नार्थ। यहां पर नो शब्द का भिन्नार्थ अभीष्ट है, अत: आकाश के सिवाय शेष पांच द्रव्यों को नो-आकाश जानना चाहिए। धर्म आदि शेष पदों का अर्थ प्रथम स्थान में 'अस्तिवाद पद' के विवेचन में किया गया है। उक्त सूत्र-संदर्भ में प्रतिपक्षी दो दो पदों का निरूपण किया गया है। यही बात आगे के सूत्रों में भी जानना चाहिए, क्योंकि यह स्थानाङ्ग का द्विस्थानक है।

क्रिया-पद

२—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जीवकिरिया चेव, अजीवकिरिया चेव। ३—जीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मत्तकिरिया चेव, मिच्छत्तकिरिया चेव। ४—अजीवकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—इरियावहिया चेव, संपराइगा चेव। ५—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—काइया चेव, आहिगरणिया चेव। ६—काइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणुवरयकायकिरिया चेव, दुपउत्तकायकिरिया चेव। ७—आहिगरणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संजोयणाधिकरणिया चेव, णिव्वत्तणाधिकरणिया चेव। ८—दो किरियाओ पण्णत्ताओ तं जहा—पाओसिया चेव, पारियावणिया चेव। ९—पाओसिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवपाओसिया चेव, अजीवपाओसिया चेव। १०—पारियावणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सहत्थपारियावणिया चेव, परहत्थपारियावणिया चेव।

क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवक्रिया (जीव की प्रवृत्ति) और अजीवक्रिया (पुद्गल वर्गणाओं की कर्मरूप में परिणति) (२)। जीवक्रिया दो प्रकार की कही गई है।—सम्यक्त्वक्रिया (सम्यग्दर्शन बढ़ाने वाली क्रिया) और मिथ्यात्वक्रिया (मिथ्यादर्शन बढ़ाने वाली क्रिया) (३)। अजीव क्रिया दो प्रकार की होती है—ऐर्यापथिकी (वीतराग को होने वाली कर्मास्रवरूप क्रिया) और साम्परायिकी (सकषाय जीव को होने वाली कर्मास्रवरूप क्रिया) (४)।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है---कायिकी (शारीरिक क्रिया) और आधिकरणिकी (अधिकरण-शस्त्र आदि की प्रवृत्तिरूप क्रिया) (५)। कायिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है। ---अनुपरतकायक्रिया (विरति-रहित व्यक्ति की शारीरिक प्रवृत्ति) और दुष्प्रयुक्त कायक्रिया (इंद्रिय और मन के विषयों में आसक्त प्रमत्तसंयत की शारीरिक प्रवृत्तिरूप क्रिया) (६)। आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—संयोजनाधिकरणिकी क्रिया (पूर्वनिर्मित भागों को जोड़कर शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया) और निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया (नये सिरे से शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया) (७)।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्रादोषिकी (मात्सर्यभावरूप क्रिया) और पारितापनिकी (दूसरों को सन्ताप देने वाली क्रिया) (८)। प्रादोषिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवप्रादोषिकी (जीव के प्रति मात्सर्यभावरूप क्रिया) और अजीवप्रादोषिकी (अजीव के प्रति मात्सर्य भावरूप क्रिया) ९। पारितापनिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वहस्तपारितापनिकी (अपने हाथ से स्वयं को या दूसरे को परिताप देने रूप क्रिया) और परहस्तपारितापनिकी (दूसरे व्यक्ति के हाथ से स्वयं को या अन्य को परिताप दिलानेवाली क्रिया) (१०)।

११—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पाणातिवायकिरिया चेव, अपच्चक्खाणकिरिया चेव। १२—पाणातिवायकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सहत्थपाणातिवायकिरिया चेव, परहत्थपाणातिवायकिरिया चेव। १३—अपच्चक्खाणकिरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव, अजीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्राणातिपात क्रिया (जीव-घात से होने वाला कर्म-बन्ध)। और अप्रत्याख्यान क्रिया (अविरति से होनेवाला कर्म-बन्ध) (११)। प्राणातिपात क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वहस्तप्राणातिपात क्रिया (अपने हाथ से अपने या दूसरे के प्राणों का घात

करना) और परहस्तप्राणातिपात क्रिया (दूसरे के हाथ से अपने या दूसरे के प्राणों का घात कराना) (१२)। अप्रत्याख्यानक्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव-अप्रत्याख्यान क्रिया (जीव-विषयक अविरति से होने वाला कर्मबन्ध) और अजीव-अप्रत्याख्यान क्रिया (मद्य आदि अजीव-विषयक अविरति से अर्थात् प्रत्याख्यान न करने से होने वाला कर्मबन्ध) (१३)।

१४—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आरंभिया चेव, पारिग्गहिया चेव। १५—आरंभिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवआरंभिया चेव, अजीवआरंभिया चेव। १६—पारिग्गहिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवपारिग्गहिया चेव, अजीवपारिग्गहिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आरम्भिकी क्रिया (जीव उपमर्दनकी प्रवृत्ति) और पारिग्रहिकी क्रिया (परिग्रह में प्रवृत्ति) (१४)। आरम्भिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव-आरम्भिकी क्रिया (जीवों के उपमर्दन की प्रवृत्ति) और अजीव-आरम्भिकी क्रिया (जीव-कलेवर, जीवाकृति आदि के उपमर्दन की तथा अन्य अचेतन वस्तुओं के आरम्भ-समारम्भ की प्रवृत्ति) (१५)। पारिग्रहिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव-पारिग्रहिकी क्रिया (सचेतन दासी-दास आदि परिग्रह में प्रवृत्ति) और अजीव-पारिग्रहिकी क्रिया (अचेतन हिरण्य-सुवर्णादि के परिग्रह में प्रवृत्ति) (१६)।

१७—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मायावत्तिया चेव, मिच्छादंसणवत्तिया चेव। १८—मायावत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—आयभाववंकणता चेव, परभाववंकणता चेव। १९—मिच्छादंसणवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—ऊणाइरियमिच्छादंसणवत्तिया चेव, तव्वइरित्तमिच्छादंसणवत्तिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—मायाप्रत्यया क्रिया (माया से होने वाली प्रवृत्ति) और मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (मिथ्यादर्शन से होनेवाली प्रवृत्ति) (१७)। मायाप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आत्मभाव-वंचना क्रिया (अप्रशस्त आत्मभाव को प्रशस्त प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति) और परभाव-वंचना क्रिया (कूट लेख आदि के द्वारा दूसरों को ठगने की प्रवृत्ति) (१८)। मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—ऊनातिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (वस्तु का जो यथार्थ स्वरूप है उससे हीन या अधिक कहना। जैसे शरीर-व्यापी आत्मा को अंगुष्ठ-प्रमाण कहना। अथवा सर्व लोक-व्यापक कहना)। और तद्-व्यतिरिक्त मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (सद्-भूत वस्तु के अस्तित्व को स्वीकार न करना, जैसे-आत्मा है ही नहीं) (१९)।

२०—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दिट्ठिया चेव, पुट्ठिया चेव। २१—दिट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवदिट्ठिया चेव, अजीवदिट्ठिया चेव। २२—पुट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवपुट्ठिया चेव, अजीवपुट्ठिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—दृष्टिजा क्रिया (देखने के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) और स्पृष्टिजा क्रिया (स्पर्शन के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) (२०)। दृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवदृष्टिजा क्रिया (सजीव वस्तुओं को देखने के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का

होना) और अजीवदृष्टिजा क्रिया (अजीव वस्तुओं को देखने के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) (२१)। स्पृष्टिजा क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवस्पृष्टिजा क्रिया (जीव के स्पर्श के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) और अजीवस्पृष्टिजा क्रिया (अजीव के स्पर्श के लिए रागात्मक प्रवृत्ति का होना) (२२)।

२३—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पाडुच्चिया चेव, सामंतोवणिवाइया चेव। २४—पाडुच्चिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवपाडुच्चिया चेव, अजीवपाडुच्चिया चेव। २५—सामंतोवणिवाइया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवसामंतोवणिवाइया चेव, अजीवसामंतोवणिवाइया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्रातीत्यिकी क्रिया (बाहिरी वस्तु के निमित्त से होने वाली क्रिया) और सामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपनी वस्तुओं के विषय में लोगों के द्वारा की गई प्रशंसा के सुनने पर होने वाली क्रिया) (२३)। प्रातीत्यिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवप्रातीत्यिकी क्रिया (जीव के निमित्त से होने वाली क्रिया) और अजीवप्रातीत्यिकी क्रिया (अजीव-के निमित्ति से होने वाली क्रिया) (२४)। सामन्तोपनिपातिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपने पास के गज, अश्व आदि सजीव वस्तुओं के विषय में लोगों के द्वारा की गई प्रशंसादि के सुनने पर होने वाली क्रिया) और अजीवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया (अपने रथ, पालकी आदि अजीव वस्तुओं के विषय में लोगों के द्वारा की गई प्रशंसादि के सुनने पर होने वाली क्रिया) (२५)।

२६—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—साहत्थिया चेव, णेसत्थिया चेव। २७—साहत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवसाहत्थिया चेव, अजीवसाहत्थिया चेव। २८—णेसत्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवणेसत्थिया चेव, अजीवणेसत्थिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—स्वाहस्तिकी क्रिया (अपने हाथ से होने वाली क्रिया) और नैसृष्टिकी क्रिया (किसी वस्तु के निक्षेपण से होनेवाली क्रिया) (२६)। स्वाहस्तिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीवस्वाहस्तिकी क्रिया (स्व-हस्त-गृहीत जीव के द्वारा किसी दूसरे जीव को मारने की क्रिया) और अजीवस्वाहस्तिकी क्रिया (स्व-हस्त-गृहीत अजीव शस्त्रादि के द्वारा किसी दूसरे जीवको मारने की क्रिया) (२७)। नैसृष्टिकी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीव-नैसृष्टिकी क्रिया (जीव को फेंकने से होनेवाली क्रिया) और अजीवनैसृष्टिकी क्रिया (अजीव को फेंकने से होने वाली क्रिया) (२८)।

२९—दो किरियाओ, पण्णत्ताओ, तं जहा—आणवणिया चेव, वेयारणिया चेव। ३०—आणवणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीवआणवणिया चेव, अजीवआणवणिया चेव। ३१—वेयारणिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जीववेयारणिया चेव, अजीववेयारणिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आज्ञापनी क्रिया (आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया) और वैदारिणी क्रिया (किसी वस्तु के विदारण से होनेवाली क्रिया) (२९)। आज्ञापनी क्रिया दो प्रकार

की कही गई है—जीव-आज्ञापनी क्रिया (जीव के विषय में आज्ञा देने से होनेवाली क्रिया) और अजीव-आज्ञापनी क्रिया (अजीव के विषय में आज्ञा देने से होने वाली क्रिया) (३०)। वैदारिणी क्रिया दो प्रकार की कही गई है—जीववैदारिणी क्रिया (जीव के विदारण से होने वाली क्रिया) और अजीववैदारिणी क्रिया (अजीव के विदारण से होनेवाली क्रिया) (३१)।

३२—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—अणाभोगवत्तिया चेव, अणवकंखवत्तिया चेव। ३३—अणाभोगवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणाउत्तआइयणता चेव, अणाउत्तपमज्जणता चेव। ३४—अणवकंखवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—आयसरीरअणवकंखवत्तिया चेव, परसरीरअणवकंखवत्तिया चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—अनाभोगप्रत्यया क्रिया (असावधानी से होने वाली क्रिया) और अनवकांक्षाप्रत्यया क्रिया (आकांक्षा या अपेक्षा न रखकर की जाने वाली क्रिया) (३२)। अनाभोगप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—अनायुक्त-आदानता क्रिया (असावधानी से वस्त्र आदि का ग्रहण करना) और अनायुक्त प्रमार्जनता क्रिया (असावधानी से पात्र आदि का प्रमार्जन करना) (३३)। अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—आत्मशरीर-अनवकांक्षाप्रत्यया क्रिया (अपने शरीर की अपेक्षा न रख कर की जाने वाली क्रिया) और पर-शरीर-अनवकांक्षाप्रत्यया क्रिया (दूसरे के शरीर की अपेक्षा न रख कर की जाने वाली क्रिया) (३४)।

३५—दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव। ३६—पेज्जवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—मायावत्तिया चेव, लोभवत्तिया चेव। ३७—दोसवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कोहे चेव, माणे चेव।

पुनः क्रिया दो प्रकार की कही गई है—प्रेयःप्रत्यया क्रिया (राग के निमित्त से होने वाली क्रिया) और द्वेषप्रत्यया क्रिया (द्वेष के निमित्त से होने वाली क्रिया) (३५)। प्रेयःप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—मायाप्रत्यया क्रिया (माया के निमित्त से होने वाली राग क्रिया) और लोभ-प्रत्यया क्रिया (लोभ के निमित्त से होने वाली राग क्रिया) (३६)। द्वेषप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की कही गई है—क्रोधप्रत्यया क्रिया (क्रोध के निमित्त से होने वाली द्वेषक्रिया) और मानप्रत्यया क्रिया (मान के निमित्त से होने वाली द्वेषक्रिया) (३७)।

विवेचन—हलन-चलन रूप परिस्पन्द को क्रिया कहते हैं। यह सचेतन और अचेतन दोनों प्रकार के द्रव्यों में होती है, अतः सूत्रकार ने मूल में क्रिया के दो भेद बतलाये हैं। किन्तु जब हम आगम सूत्रों में एवं तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं में वर्णित २५ क्रियाओं की ओर दृष्टिपात करते हैं, तब जीव के द्वारा होनेवाली या जीव में कर्मबन्ध कराने वाली क्रियाएं ही यहाँ अभीष्ट प्रतीत होती हैं, अतः द्वि-स्थानक के अनुरोध से अजीवक्रिया का प्रतिपादन युक्ति-संगत होते हुए भी इस द्वितीय स्थानक में वर्णित शेष क्रियाओं में पच्चीस की संख्या पूरी नहीं होती है। क्रियाओं की पच्चीस संख्या की पूर्ति के लिए तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं में वर्णित क्रियाओं को लेना पड़ेगा।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि साम्परायिक आस्रव के ३९ भेद मूल तत्त्वार्थसूत्र में कहे गये हैं, किन्तु उनकी गणना तत्त्वार्थभाष्य और सर्वार्थसिद्धि टीका में ही स्पष्टरूप से सर्वप्रथम प्राप्त होती

है। तत्त्वार्थभाष्य में २५ क्रियाओं के नामों का ही निर्देश है, किन्तु सर्वार्थसिद्धि में उनका स्वरूप भी दिया गया है। इस द्विस्थानक में वर्णित क्रियाओं के साथ जब हम तत्त्वार्थसूत्र-वर्णित क्रियाओं का मिलान करते हैं, तब द्विस्थानक में वर्णित प्रेयःप्रत्यया क्रिया और द्वेषप्रत्यय क्रिया, इन दो को तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं में नहीं पाते है। इसी प्रकार तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं में वर्णित समादान क्रिया और प्रयोग क्रिया, इन दो को इस द्वितीय स्थानक में नहीं पाते हैं।

जैन विश्वभारती से प्रकाशित 'ठाणं' के पृ. ११९ पर जो उक्त क्रियाओं की सूची दी है, उसमें २४ क्रियाओं का नामोल्लेख है। यदि अजीवक्रिया का नामोल्लेख न करके जीवक्रिया के दो भेद रूप से प्रतिपादित सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया का उस तालिका में समावेश किया जाता तो तत्त्वार्थसूत्रटीका-गत दोनों क्रियाओं के साथ संख्या समान हो जाती और क्रियाओं की २५ संख्या भी पूरी हो जाती। फिर भी यह विचारणीय रह जाता है कि तत्वार्थ-वर्णित समादान क्रिया और प्रयोग क्रिया का समावेश स्थानाङ्ग-वर्णित क्रियाओं में कहाँ पर किया जाय? इसी प्रकार स्थानाङ्ग-वर्णित प्रेयःप्रत्यय क्रिया और द्वेषप्रत्यय क्रिया का समावेश तत्त्वार्थ-वर्णित क्रियाओं में कहाँ पर किया जाय? विद्वानों को इसका विचार करना चाहिए।

जीव-क्रियाओं की प्रमुखता होने से अजीवक्रिया को छोड़कर जीवक्रिया के सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया इन दो भेदों को परिगणित करने से दोनों स्थानाङ्ग और तत्त्वार्थ-गत २५ क्रियायों की तालिका इस प्रकार होती है—

स्थानाङ्गसूत्र-गत	**तत्त्वार्थसूत्र-गत**
१ सम्यक्त्व क्रिया	१ सम्यक्त्व क्रिया
२ मिथ्यात्व क्रिया	२ मिथ्यात्व क्रिया
३ कायिकी क्रिया	७ कायिकी क्रिया
४ आधिकरणिकी क्रिया	८ आधिकरणिकी क्रिया
५ प्रादोषिकी क्रिया	६ प्रादोषिकी क्रिया
६ पारितापनिकी क्रिया	९ पारितापिकी क्रिया
७ प्राणातिपात क्रिया	१० प्राणातिपातिकी क्रिया
८ अप्रत्याख्यान क्रिया	१५ अप्रत्याख्यान क्रिया
९ आरम्भिकी क्रिया	२१ आरम्भ क्रिया
१० पारिग्रहिकी क्रिया	२२ पारिग्रहिकी क्रिया
११ मायाप्रत्यया क्रिया	२३ माया क्रिया
१२ मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया	१४ मिथ्यादर्शन क्रिया
१३ दृष्टिजा क्रिया	११ दर्शन क्रिया
१४ स्पृष्टिजा क्रिया	१२ स्पर्शन क्रिया
१५ प्रातीत्यिकी क्रिया	१३ प्रात्यायिकी क्रिया
१६ सामन्तोपनिपातिकी क्रिया	१४ समन्तानुपात क्रिया
१७ स्वाहस्तिकी क्रिया	१६ स्वहस्त क्रिया
१८ नैसृष्टिकी क्रिया	१७ निसर्ग क्रिया

१९ आज्ञापनिका क्रिया	१९ आज्ञाव्यापादिका क्रिया
२० वैदारिणी क्रिया	१८ विदारण क्रिया
२१ अनवकांक्षाप्रत्यया क्रिया	२० अनाकांक्षा क्रिया
२२ अनाभोगप्रत्यया क्रिया	१५ अनाभोग क्रिया
२३ प्रेयःप्रत्यया क्रिया	४ समादान क्रिया
२४ द्वेषप्रत्यया क्रिया	३ प्रयोग क्रिया
२५ × × ×	५ ईर्यापथ क्रिया

तत्वार्थसूत्रगत क्रियाओं के आगे जो अंक दिये गये हैं वे उसके भाष्य और सर्वार्थसिद्धि के पाठ के अनुसार जानना चाहिए।

तत्वार्थसूत्रगत पाठ के अन्त में दी गई ईर्यापथ' क्रिया का नाम जैन विश्वभारती के उक्त संस्करण की तालिका में नहीं है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि यतः अजीव क्रिया के दो भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे गये हैं—साम्परायिक क्रिया और ईर्यापथ क्रिया। अतः उन्हें जीव क्रियाओं में गिनाना उचित न समझा गया हो और इसी कारण साम्परायिक क्रिया को भी उसमें नहीं गिनाया गया हो? पर तत्वार्थसूत्र के भाष्य और अन्य सर्वार्थसिद्धि आदि टीकाओं में उसे क्यों नहीं गिनाया गया है? यह प्रश्न फिर भी उपस्थित होता है। किन्तु तत्त्वार्थ-सूत्र के अध्येताओं से यह अविदित नहीं है कि वहाँ पर आस्रव के मूल में उक्त दो भेद किये गये हैं। उनमें से साम्परायिक के ३९ भेदों में २५ क्रियाएँ परिगणित हैं। सम्पराय नाम कषाय का है। तथा कषाय के ४ भेद भी उक्त ३९ क्रियाओं में परिगणित हैं। ऐसी स्थिति में 'साम्परायिक आस्रव' की क्या विशेषता रह जाती है? इसका उत्तर यह है कि कषायों के ४ भेदों में क्रोध, मान, माया और लोभ ही गिने गये हैं और प्रत्येक कषाय के उदय में तदनुसार कर्मों का आस्रव होता है। किन्तु साम्परायिक आस्रव का क्षेत्र विस्तृत है। उसमें कषायों के सिवाय हास्यादि नोकषाय, पाँचों इन्द्रियों की विषयप्रवृत्ति और हिंसादि पांचों पापों की परिणतियाँ भी अन्तर्गत हैं। यही कारण है कि साम्परायिक आस्रव के भेदों में साम्परायिक क्रिया को नहीं गिनाया गया है।

ईर्यापथ क्रिया के विषय में कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है।

प्रश्न—तत्त्वार्थसूत्र में सकषाय जीवों की साम्परायिक आस्रव और अकषाय जीवों को ईर्यापथ आस्रव बताया गया है फिर भी ईर्यापथ क्रिया को साम्परायिक-आस्रव के भेदों में क्यों परिगणित किया गया?

उत्तर—ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में अकषाय जीवों को होने वाला आस्रव ईर्यापथ क्रिया से विवक्षित नहीं है। किन्तु गमनागमन रूप क्रिया से होने वाला आस्रव ईर्यापथ क्रिया से अभीष्ट है। गमनागमन रूप चर्या में सावधानी रखने को ईर्यासमिति कहते हैं। यह चलने रूप क्रिया है ही। अतः इसे साम्परायिक आस्रव के भेदों में गिना गया है।

कषाय-रहित वीतरागी ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीवों के योग का सद्भाव पाये जाने से होने वाले क्षणिक सातावेदनीय के आस्रव को ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। उसकी साम्परायिक आस्रव में परिगणना नहीं की गई है।

ऊपर दिये गये स्थानाङ्ग और तत्त्वार्थसूत्र सम्बन्धी क्रियाओं के नामों में अधिकांशतः समानता होने पर भी किसी-किसी क्रिया के अर्थ में भेद पाया जाता है। किसी-किसी क्रिया के प्राकृत नामका संस्कृत रूपान्तर भी भिन्न पाया जाता है। जैसे—'दिट्ठिया' क्रिया के अभयदेव सूरि ने 'दृष्टिजा' और 'दृष्टिका' ये संस्कृत रूप बता कर उनके अर्थ में कुछ अन्तर किया है। इसी प्रकार 'पुट्ठिया' इस प्राकृत नामका 'पृष्टिजा, पृष्टिका, स्पृष्टिजा और स्पृष्टिका' ये चार संस्कृत रूप बताकर उनके अर्थ में कुछ विभिन्नता बतायी है। पर हमने तत्त्वार्थसूत्रगत पाठ को सामने रख कर उनका अर्थ किया है जो स्थानाङ्गटीका से भी असंगत नहीं है। वहाँ पर 'दिट्ठिया' के स्थान पर 'दर्शन क्रिया' और 'पुट्ठिया' के स्थान पर 'स्पर्शन क्रिया' का नामोल्लेख है।

सामन्तोपनिपातिकी क्रिया का अर्थ स्थानाङ्ग की टीका में, तथा तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं में बिलकुल भिन्न-भिन्न पाया जाता है। स्थानाङ्गटीका के अनुसार इसका अर्थ—जन-समुदाय के मिलन से होने वाली क्रिया है और तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं के अनुसार इसका अर्थ—पुरुष, स्त्री और पशु आदि से व्याप्त स्थान में मल-मूलादि का त्याग करना है। हरिभद्रसूरि ने इसका अर्थ—स्थण्डिल आदि में भक्त आदि का विसर्जन करना किया है।

स्थानाङ्गसूत्र का 'णेसत्थिया' प्राकृत पाठ मान कर संस्कृत रूप 'नैसृष्टिकी' दिया और तत्त्वार्थसूत्र के टीकाकारों ने 'णेसग्गिया' पाठ मानकर 'निसर्ग क्रिया' यह संस्कृत रूप दिया है। पर वस्तुतः दोनों के अर्थ में कोई भेद नहीं है।

प्राकृत 'आणवणिया' का संस्कृत रूप 'आज्ञापनिका' मानकर आज्ञा देना और 'आनयनिका' मानकर 'मंगवाना' ऐसे दो अर्थ किये हैं। किन्तु तत्त्वार्थसूत्र के टीकाकारों ने 'आज्ञाव्यापादिका' संस्कृत रूप मान कर उसका अर्थ—'शास्त्रीय आज्ञा का अन्यथा निरूपण करना' किया है।

इसी प्रकार कुछ और भी क्रियाओं के अर्थों में कुछ न कुछ भेद दृष्टिगोचर होता है, जिससे ज्ञात होता है कि क्रियाओं के मूल प्राकृत नामों के दो पाठ रहे हैं और तदनुसार उनके अर्थ भी भिन्न-भिन्न किये गये हैं। जिनमें से एक परम्परा स्थानाङ्ग सूत्र के व्याख्याकारों की और दूसरी परम्परा तत्त्वार्थसूत्र से टीकाकारों की ज्ञात होती है। विशेष जिज्ञासुओं को दोनों की टीकाओं का अवलोकन करना चाहिए।

गर्हा-पद

३८—दुविहा गरिहा पण्णत्ता, तं जहा—मणसा वेगे गरहति, वयसा वेगे गरहति। अहवा—गरहा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—दीहं वेगे अद्धं गरहति, रहस्सं वेगे अद्धं गरहति।

गर्हा दो प्रकार की कही गई है—कुछ लोग मन से गर्हा (अपने पाप की निन्दा) करते हैं (वचन से नहीं) और कुछ लोग वचन से गर्हा करते हैं (मन से नहीं)। अथवा इस सूत्र का यह आशय भी निकलता है कि कोई न केवल मन से अपितु वचन से भी गर्हा करते हैं और कोई न केवल वचन से किन्तु मन से भी गर्हा करते हैं। गर्हा दो प्रकार की कही गई है—कुछ लोग दीर्घकाल तक गर्हा करते हैं और कुछ लोग अल्प काल तक गर्हा करते हैं (३८)।

प्रत्याख्यान-पद

३९—दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसा वेगे पच्चक्खाति, वयसा वेगे पच्चक्खाति।

अहवा—पच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दीहं वेगे अद्धं पच्चक्खाति, रहस्सं वेगे अद्धं पच्चक्खाति।

प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग मन से प्रत्याख्यान (अशुभ कार्य का त्याग) करते हैं और कुछ लोग वचन से प्रत्याख्यान करते हैं। अथवा प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग दीर्घकाल तक प्रत्याख्यान करते हैं और कुछ लोग अल्पकाल तक प्रत्याख्यान करते हैं (३९)। व्याख्या गर्हा के समान समझना चाहिए।

विद्या-चरण-पद

४०—दोहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अणादीयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीतिवएज्जा, तं जहा—विज्जाए चेव चरणेण चेव।

विद्या (ज्ञान) और चरण (चारित्र) इन दोनों स्थानों से सम्पन्न अनगार (साधु) अनादि-अनन्त दीर्घ मार्ग वाले एवं चतुर्गतिरूप विभागवाले संसार रूपी गहन वन को पार करता है, अर्थात् मुक्त होता है (४०)।

आरम्भ-परिग्रह-अपरित्याग पद

४१—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४२—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४३—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४४—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४५—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४६—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४७—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४८—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ४९—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५०—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव परिग्गहे चेव। ५१—दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को ज्ञपरिज्ञा से जाने और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से छोड़े विना आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को नहीं सुन पाता (४१)। आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा विशुद्ध बोधिका अनुभव नहीं कर पाता (४२)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा मुण्डित होकर घर से (ममता-मोह छोड़ कर) अनगारिता (साधुत्व) को नहीं पाता (४३)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त नहीं होता (४४)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो

स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा सम्पूर्ण संयम से संयुक्त नहीं होता (४५)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा सम्पूर्ण संवर से संवृत नहीं होता (४६)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा विशुद्ध आभिनिवोधिक ज्ञान को उत्पन्न अर्थात् प्राप्त नहीं कर पाता (४७)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाता (४८)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाता (४९)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाता (५०)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जाने और छोड़े विना आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाता (५१)।

आरम्भ-परिग्रह-परित्याग-पद

५२—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५३—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५४—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५५—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५६—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५७—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५८—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ५९—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ६०—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ६१—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव। ६२—दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को ज्ञपरिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्यागकर आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है (५२)। आरम्भ और परिग्रह-इन दो स्थानों को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्धबोधि का अनुभव करता है (५३)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और त्याग कर आत्मा मुण्डित होकर और गृहवास का त्याग कर सम्पूर्ण अनगारिता को पाता है (५४)। आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जानकर और त्याग कर आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है (५५)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और त्याग कर आत्मा सम्पूर्ण संयम से संयुक्त होता है (५६) आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और त्यागकर आत्मा सम्पूर्ण संवर से संवृत होता है (५७) आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और त्याग कर आत्मा विशुद्ध आभिनिवोधिक ज्ञान को उत्पन्न (प्राप्त) करता है (५८)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और त्याग कर आत्मा विशुद्ध श्रुत ज्ञान को उत्पन्न करता है (५९)। आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है (६०)। आरम्भ और परिग्रह—इन

दो स्थानों को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को उत्पन्न करता है (६१) आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को जानकर और त्यागकर आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को उत्पन्न करता है (६२)।

श्रवण समधिगमपद

६३—दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६४—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६५—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६६—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६७—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६८—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ६९—दोहिं ठाणेहिं आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७०—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७१—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७२—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव। ७३—दोहिं ठाणेहिं आया केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—सोच्चच्चेव, अभिसमेच्चच्चेव।

धर्म की उपादेयता सुनने और उसे जानने, इन दो स्थानों (कारणों) से आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है (६३)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध बोधि का अनुभव करता है (६४)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा मुण्डित होकर और घर का त्याग कर सम्पूर्ण अनगारिता को पाता है (६५)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य-वास को प्राप्त करता है (६६)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण संयम से संयुक्त होता है (६७)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा सम्पूर्ण संवर से संवृत होता है (६८)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को उत्पन्न करता है (६९)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को उत्पन्न करता है (७०)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है (७१)। सुनने और जानने-इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान को उत्पन्न करता है (७२)। सुनने और जानने—इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को उत्पन्न करता है (७३)।

समा (काल चक्र)-पद

७४ - दो समाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— ओसप्पिणी समा चेव, उस्सप्पिणी समा चेव।

दो समा कही गई हैं—अवसर्पिणी समा—इसमें वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध आदि का एवं जीवों की आयु, बल, बुद्धि, सुख आदि का क्रम से ह्रास होता है। उत्सर्पिणी समा—इसमें वस्तुओं के रूप, रस, गन्ध आदि का एवं जीवों की आयु, बल, बुद्धि, सुख आदि का क्रम से विकास होता है (७४)।

उन्माद-पद

७५—दुविहे उम्माए पण्णत्ते, तं जहा—जक्खाएसे चेव, मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं।

तत्थ णं जे से जक्खाएसे, से णं सुहवेयतराए चेव, सुहविमोयतराए चेव। तत्थ णं जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, से णं दुहवेयतराए चेव, दुहविमोयतराए चेव।

उन्माद अर्थात् बुद्धिभ्रम या बुद्धि की विपरीतता दो प्रकार की कही गई है—यक्षावेश से (यक्ष के शरीर में प्रविष्ट होने से) और मोहनीय कर्म के उदय से। इनमें जो यक्षावेश जनित उन्माद है, वह मोहनीय कर्म-जनित उन्माद की अपेक्षा सुख से भोगा जाने वाला और सुख से छूट सकने वाला होता है। किन्तु जो मोहनीय-कर्म-जनित उन्माद है, वह यक्षावेश जनित उन्माद की अपेक्षा दुःख से भोगा जाने वाला और दुःख से छूटने वाला होता है (७५)।

दण्ड-पद

७६—दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठादंडे चेव, अणट्ठादंडे चेव। ७७—णेरइयाणं दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठादंडे य, अणट्ठादंडे य। ७८—एवं—चउवीसादंडओ जाव वेमाणियाणं।

दर्शन-पद

दण्ड दो प्रकार का कहा गया है—अर्थदण्ड सप्रयोजन (प्राणातिपातादि) और अनर्थदण्ड (निष्प्रयोजन प्राणातिपातादि) (७६)। नारकियों में दोनों प्रकार के दण्ड कहे गये हैं—अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड (७७)। इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों में दो-दो दण्ड जानना चाहिए (७८)।

७९—दुविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मद्दंसणे चेव, मिच्छादंसणे चेव। ८०—सम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—णिसग्गसम्मद्दंसणे चेव, अभिगमसम्मद्दंसणे चेव। ८१—णिसग्गसम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव। ८२—अभिगमसम्मद्दंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव। ८३—मिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अभिग्गहिय-मिच्छादंसणे चेव, अणभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव। ८४—अभिग्गहियमिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सपज्जवसिते चेव, अपज्जवसिते चेव। ८५—[अणभिग्गहियमिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सपज्जवसिते चेव, अपज्जवसिते चेव]।

दर्शन (श्रद्धा या रुचि) दो प्रकार का कहा गया है—सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन (७९)। सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है—निसर्गसम्यग्दर्शन (अन्तरंग में दर्शनमोह का उपशमादि होने पर किसी बाह्य निमित्त के बिना स्वतः स्वभाव से उत्पन्न होने वाला) और अधिगम सम्यग्दर्शन (अन्तरंग में दर्शनमोह का उपशमादि होने और बाह्य में गुरु-उपदेश आदि के निमित्त से उत्पन्न होने वाला) (८०)। निसर्ग सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा गया है—प्रतिपाती (नष्ट हो जाने वाला औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन) और अप्रतिपाती (नहीं नष्ट होने वाला क्षायिकसम्यक्त्व (८१)। अधिगम-सम्यग्दर्शन भी दो प्रकार का कहा गया है—प्रतिपाती और अप्रतिपाती (८२)। मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है—आभिग्रहिक (इस भव में ग्रहण किया गया मिथ्यात्व) और

अनाभिग्रहिक (पूर्व भवों से आने वाला मिथ्यात्व) (८३)। आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है—सपर्यवसित (सान्त) और अपर्यवसित (अनन्त) (८४)। अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है—सपर्यवसित और अपर्यवसित (८५)।

विवेचन—यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि भव्य का दोनों प्रकार का मिथ्यादर्शन सान्त होता है, क्योंकि वह सम्यक्त्त्व की प्राप्ति होने पर छूट जाता है। किन्तु अभव्य का अनन्त है, क्योंकि वह कभी नहीं छूटता है।

ज्ञान-पद

८६—दुविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव। ८७—पच्चक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—केवलणाणे चेव, णोकेवलणाणे चेव। ८८—केवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवत्थकेवलणाणे चेव, सिद्धकेवलणाणे चेव। ८९—भवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। ९०—सजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। अहवा—चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। ९१—[अजोगिभवत्थकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अपढमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव। अहवा—चरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव, अचरिमसमयअजोगिभवत्थकेवलणाणे चेव]। ९२—सिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव, परंपरसिद्धकेवलणाणे चेव। ९३—अणंतरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—एक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्काणंतरसिद्धकेवलणाणे चेव। ९४—परंपरसिद्धकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—एक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव, अणेक्कपरंपरसिद्धकेवलणाणे चेव।

ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—प्रत्यक्ष-(इन्द्रियादि की सहायता के बिना पदार्थों को जानने वाला ज्ञान)। तथा परोक्ष (इन्द्रियादि की सहायता से पदार्थों को जानने वाला ज्ञान) (८६)। प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान (केवलज्ञान से भिन्न) (८७)। केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है– भवस्थ केवलज्ञान (मनुष्य भव में स्थित अरिहन्तों का ज्ञान) और सिद्ध केवलज्ञान (मुक्तात्माओं का ज्ञान) (८८)। भवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है– सयोगिभवस्थ केवलज्ञान (तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरिहन्तों का ज्ञान) और अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरिहन्तों का ज्ञान) (८९)। सयोगिभवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समयसयोगि-भवस्थ केवलज्ञान और अप्रथम समयसयोगि भवस्थ केवलज्ञान। अथवा—चरम समय सयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय भवस्थ केवलज्ञान (९०)। अयोगि-भवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अप्रथम समय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान। अथवा चरमसमय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय अयोगिभवस्थ केवलज्ञान (९१)। सिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान (प्रथम समय के मुक्त सिद्धों का ज्ञान) और परम्परसिद्ध केवलज्ञान (जिन्हें सिद्ध हुए एक समय से अधिक काल हो चुका है ऐसे सिद्ध जीवों का ज्ञान) (९२)। अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान दो प्रकार का कहा

गया है– एक अनन्तर सिद्ध का केवलज्ञान और अनेक अनन्तर सिद्धों का केवलज्ञान (९३)। परम्पर-सिद्ध केवलज्ञान भी दो प्रकार का कहा गया है–एक परम्पर सिद्ध का केवलज्ञान और अनेक परम्पर सिद्धों का केवलज्ञान (९४)।

९५—णोकेवलणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओहिणाणे चेव, मणपज्जवणाणे चेव। ९६—ओहिणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवपच्चइए चेव, खओवसमिए चेव। ९७—दोण्हं भवपच्चइए पण्णत्ते, तं जहा—देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव। ९८—दोण्हं खओवसमिए पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। ९९—मणपज्जवणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उज्जुमती चेव, विउलमती चेव।

नोकेवलप्रत्यक्षज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—अवधिज्ञान और मन:पर्यवज्ञान (९५)। अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—भवप्रत्ययिक (जन्म के साथ उत्पन्न होने वाला) और क्षायोपशमिक (अवधिज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से तपस्या आदि गुणों के निमित्त से उत्पन्न होने वाला) (९६)। दो गति के जीवों को भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कहा गया है—देवताओं को और नारकियों को (९७) दो गति के जीवों को क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहा गया है—मनुष्यों को और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकों को (९८)। मन:पर्यवज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—ऋजुमति (मानसिक चिन्तन के पुद्गलों को सामान्य रूप से जानने वाला) मन:पर्यवज्ञान। तथा विपुलमति (मानसिक चिन्तन के पुद्गलों की नाना पर्यायों को विशेष रूप से जानने वाला) मन:पर्यवज्ञान (९९)।

१००—परोक्खे णाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियणाणे चेव, सुयणाणे चेव। १०१—आभिणिबोहियणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुयणिस्सिए चेव, असुयणिस्सिए चेव। १०२—सुयणिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे चेव, वंजणोग्गहे चेव। १०३—असुयणिस्सिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थोग्गहे चेव, वंजणोग्गहे चेव। १०४—सुयणाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अंगपविट्ठे चेव, अंगबाहिरे चेव। १०५—अंगबाहिरे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आवस्सए चेव, आवस्सयवतिरित्ते चेव। १०६—आवस्सयवतिरित्ते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—कालिए चेव, उक्कालिए चेव।

परोक्षज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान (१००)। आभिनिबोधिक ज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित (१०१)। श्रुत-निश्रित दो प्रकार का कहा गया है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह (१०२)। अश्रुतनिश्रित दो प्रकार का कहा गया है—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह (१०३)। श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य (१०४)। अंगबाह्य श्रुतज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त (१०५)। आवश्यकव्यतिरिक्त दो प्रकार का कहा गया है—कालिक (दिन और रात के प्रथम और अन्तिम प्रहर में पढ़ा जाने वाला) श्रुत। और उत्कालिक (अकाल के सिवाय सभी प्रहरों में पढ़ा जाने वाला) श्रुत (१०६)।

विवेचन—वस्तुस्वरूप को जानने वाले आत्मिक गुण को ज्ञान कहते हैं। ज्ञान के पांच भेद कहे गये हैं—आभिनिबोधिक या मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवल-ज्ञान। इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाले ज्ञान को आभिनिवोधिक या मतिज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान-

पूर्वक शब्द के आधार से होने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न होने वाला और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा से सीमित, भूत-भविष्यत और वर्तमानकालवर्ती रूपी पदार्थों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। इन्द्रियादि की सहायता के बिना ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न हुए एवं दूसरों के मन संबंधी पर्यायों को प्रत्यक्ष जानने वाले ज्ञान को मनःपर्यय या मनःपर्यव ज्ञान कहते हैं। ज्ञानावरणकर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से त्रिलोक और त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों को और उनके गुण-पर्यायों को जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

उक्त पांचों ज्ञानों का इस द्वितीय स्थानक में उत्तरोत्तर दो-दो भेद करते हुए निरूपण किया गया है। प्रस्तुत ज्ञानपद में ज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—प्रत्यक्षज्ञान और परोक्षज्ञान। पुनः प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—केवलज्ञान और नोकेवलज्ञान। पुनः केवल ज्ञान के भी भवस्थ केवलज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान आदि भेद कर उत्तरोत्तर दो दो के रूप में अनेक भेद कहे गये हैं। तत्पश्चात् नोकेवलज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान। पुनः इन दोनों ज्ञानों के भी दो-दो के रूप में अनेक भेद कहे गये हैं, जिनका स्वरूप ऊपर दिया जा चुका है।

इसी प्रकार परोक्षज्ञान के भी दो भेद कहे गये हैं—आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान। पुनः आभिनिबोधिक ज्ञान के भी दो भेद कहे गये हैं—श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित। श्रुत शास्त्र को कहते हैं। जो वस्तु पहिले शास्त्र के द्वारा जानी गई है, पीछे किसी समय शास्त्र के आलम्बन विना ही उसके संस्कार के आधार से उसे जानना श्रुतनिश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान है। जैसे किसी व्यक्ति ने आयुर्वेद को पढ़ते समय यह जाना कि त्रिफला के सेवन से कब्ज दूर होती है। अब जब कभी उसे कब्ज होती है, तब उसे त्रिफला के सेवन की बात सूझ जाती है। उसका यह ज्ञान श्रुत-निश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान है। जो विषय शास्त्र के पढ़ने से नहीं, किन्तु अपनी सहज विलक्षण बुद्धि के द्वारा जाना जाय, उसे अश्रुतनिश्रित आभिनिबोधिकज्ञान कहते हैं।

श्रुत-निश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान के दो भेद कहे गये हैं—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। अर्थ नाम वस्तु या द्रव्य का है। किसी भी वस्तु के नाम, जाति आदि के विना अस्तित्व मात्र का बोध होना अर्थावग्रह कहलाता है। अर्थावग्रह से पूर्व असंख्यात समय तक जो अव्यक्त किंचित् ज्ञान मात्रा होती है उसे व्यञ्जनावग्रह कहते हैं। द्विस्थानक के अनुरोध से सूत्रकार ने उनके उत्तर भेदों को नहीं कहा है। नन्दीसूत्र के अनुसार मतिज्ञान के समस्त उत्तर भेद ३३६ होते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में अश्रुतनिश्रित आभिनिबोधिक ज्ञान के भी दो भेद कहे गये हैं—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। नन्दीसूत्र में इसके चार भेद कहे हैं—औत्पत्तिकी बुद्धि, वैनयिकी बुद्धि, कार्मिक-बुद्धि और पारिणामिकी बुद्धि। ये चारों बुद्धियां भी अवग्रह आदि रूप में उत्पन्न होती हैं। इनका विशेष वर्णन नन्दीसूत्र में किया गया है।

परोक्ष ज्ञान का दूसरा भेद जो श्रुतज्ञान है, उसके मूल दो भेद कहे गये हैं—अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य। तीर्थंकर की दिव्यध्वनि को सुनकर गणधर आचाराङ्ग आदि द्वादश अङ्गों की रचना करते हैं, उस श्रुत को अङ्गप्रविष्ट श्रुत कहते हैं। गणधरों के पश्चात् स्थविर आचार्यों के द्वारा रचित श्रुत को अङ्गबाह्य श्रुत कहते हैं। इस द्विस्थानक में अङ्गबाह्य श्रुत के दो भेद कहे गये हैं—आवश्यक सूत्र और आवश्यक-व्यतिरिक्त (भिन्न)। आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत के भी दो भेद

हैं--कालिक और उत्कालिक। दिन और रात के प्रथम और अन्तिम पहर में पढ़े जाने वाले श्रुत को कालिक श्रुत कहते हैं। जैसे--उत्तराध्ययनादि। अकाल के सिवाय सभी पहरों में पढ़े जाने वाले श्रुत को उत्कालिक श्रुत कहते हैं। जैसे दशवैकालिक आदि।

धर्मपद

१०७—दुविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव। १०८—सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्तसुयधम्मे चेव, अत्थसुयधम्मे चेव। १०९—चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अगारचरित्तधम्मे चेव, अणगारचरित्तधम्मे चेव।

धर्म दो प्रकार का कहा गया है--श्रुतधर्म (द्वादशाङ्गश्रुत का अभ्यास करना) और चारित्र-धर्म (सम्यक्त्व, व्रत, समिति आदि का आचरण) (१०७)। श्रुतधर्म दो प्रकार का कहा गया है--सूत्र-श्रुतधर्म (मूल सूत्रों का अध्ययन करना) और अर्थ-श्रुतधर्म (सूत्रों के अर्थ का अध्ययन करना (१०८)। चारित्रधर्म दो प्रकार का कहा गया है--अगारचारित्र धर्म (श्रावकों का अणुव्रत आदि रूप धर्म) और अनगारचारित्र धर्म (साधुओं का महाव्रत आदि रूप धर्म) (१०९)।

संयम-पद

११०—दुविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—सरागसंजमे चेव, वीतरागसंजमे चेव। १११—सरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव, बादरसंपरायसरागसंजमे चेव। ११२—सुहुमसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव, अपढमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव। अहवा—चरिमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव, अचरिमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे चेव। अहवा—सुहुमसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—संकिलेसमाणए चेव, विसुज्झमाणए चेव। ११३—बादरसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव, अपढमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव। अहवा—चरिमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव, अचरिमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे चेव। अहवा—बादरसंपरायसरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडिवातिए चेव, अपडिवातिए चेव।

संयम दो प्रकार का कहा गया है--सरागसंयम और वीतरागसंयम (११०)। सरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है--सूक्ष्मसाम्पराय सरागसंयम और बादरसाम्पराय सरागसंयम (१११)। सूक्ष्म साम्पराय सरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है--प्रथमसमय-सूक्ष्मसाम्पराय सरागसंयम और अप्रथमसमय-सूक्ष्मसाम्परायसरागसंयम। अथवा--चरमसमय सूक्ष्मसाम्पराय सरागसंयम और अचरम-समय सूक्ष्मसाम्पराय सरागसंयम। अथवा--सूक्ष्मसाम्पराय सरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है--संक्लिश्यमान सूक्ष्मसाम्पराय सरागसंयम (ग्यारहवें गुणस्थान से गिर कर दशवें गुणस्थानवर्त्ती साधु का संयम संक्लिश्यमान होता है) और विशुद्धचमान सूक्ष्म साम्परायसरागसंयम (दशवें गुणस्थान से ऊपर चढ़ने वाले का संयम विशुद्धचमान होता है) (११२)। बादरसाम्परायसरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है--प्रथमसमय-बादरसाम्परायसरागसंयम और अप्रथमसमय-बादर-साम्पराय सरागसंयम। अथवा--चरमसमय-बादरसाम्परायसरागसंयम और अचरमसमयबादरसाम्पराय सरागसंयम। अथवा--बादरसाम्पराय सरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है--प्रतिपाती बादर-

साम्परायसरागसंयम (नवम गुणस्थान से नीचे गिरनेवाले का संयम) और अप्रतिपाती बादरसम्पराय सरागसंयम (नवम गुणस्थान से ऊपर चढ़ने वाले का संयम) (११३)।

११४—वीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा उवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव, खीणकसायवीयरागसंजमे चेव। ११५—उवसंतकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव, अपढमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव। अहवा—चरिमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव, अचरिमसमयउवसंतकसायवीयरागसंजमे चेव। ११६—खीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे चेव, केवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव। ११७—छउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव, बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव। ११८—सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव, अपढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव। अहवा—चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव, अचरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव। ११९—बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव, अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागसंजमे चेव। अहवा—चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे चेव, अचरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागसंजमे चेव।

वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है—उपशान्तकषाय वीतरागसंयम और क्षीणकषाय वीतरागसंयम (११४)। उपशान्तकषाय वीतरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथमसमय उपशान्तकषाय वीतरागसंयम और अप्रथमसमय उपशान्तकषाय वीतरागसंयम। अथवा-चरमसमय-उपशान्तकषाय वीतरागसंयम और अचरमसमय उपशान्तकषाय वीतराग संयम (११५)। क्षीणकषाय वीतरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है—छद्मस्थक्षीणकषाय वीतरागसंयम और केवलिक्षीणकषाय वीतरागसंयम (११६)। छद्मस्थक्षीणकषाय वीतरागसंयम दो प्रकार का होता है—स्वयंबुद्ध छद्मस्थ क्षीणकषायवीतरागसंयम और बुद्धबोधित छद्मस्थ-क्षीणकषाय वीतरागसंयम (११७)। स्वयंबुद्ध छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग संयम और अप्रथमसमय-स्वयंबुद्ध-छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग संयम। अथवा—चरमसमय स्वयं बुद्ध-छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग संयम और अचरमसमय स्वयंबुद्ध-छद्मस्थक्षीणकषाय-वीतराग संयम (११८)। बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीणकषायवीतरागसंयम और अप्रथमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग संयम अथवा चरमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग संयम और अचरमसमय बुद्धबोधित छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग संयम (११९)।

१२०—केवलिखीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव, अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव। १२१—सजोगिकेवलिखीणकसा- वीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव, अ- समयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव। अहवा—चरिमसमयसजोगिके ...खीणक...

रागसंजमे चेव, अचरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव। १२२—अजोगिकेवलि-खीणकसायवीयरागसंजमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव, अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव। अहवा—चरिमसमयअजोगिकेवलि-खीणकसायवीयरागसंजमे चेव, अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागसंजमे चेव।

केवलि-क्षीणकषाय वीतरागसंयम दो प्रकार का कहा है—सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय वीतरागसंयम और अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय वीतराग संयम (१२०)। सयोगिकेवलि क्षीण-कषाय वीतराग संयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समय सयोगिकेवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम और अप्रथम समय सयोगिकेवलि क्षीणकषाय वीतरागसंयम। अथवा –चरमसमय सयोगिकेवलि क्षीणकषाय वीतरागसंयम और अचरमसमय सयोगिकेवलि क्षीणकषाय वीतरागसंयम (१२१)। अयोगिकेवलिक्षीणकषाय वीतरागसंयम दो प्रकार का कहा गया है—प्रथम समय अयोगिकेवलि क्षीणकषाय वीतरागसंयम और अप्रथम समय अयोगिकेवलि क्षीणकषायवीतरागसंयम। अथवा—चरम समय अयोगिकेवलि क्षीणकषाय संयम और अचरम समय अयोगिकेवलिक्षीणकषाय वीतरागसंयम (१२२)।

विवेचन—अहिंसादि पंच महाव्रतों के धारण करने को, ईर्यादि पंच समितियों के पालने को, कषायों का निग्रह करने को, मन, वचन, कायके वश में रखने को और पांचों इन्द्रियों के विषय जीतने को संयम कहते हैं। आगम में अन्यत्र संयम के सामायिक, छेदोपस्थापनादि पांच भेद कहे गये हैं, किन्तु प्रकृत में द्विस्थानक के अनुरोध से उसके दो मूल भेद कहे हैं—सरागसंयम और वीतराग संयम। दशवें गुणस्थान तक राग रहता है, अतः वहां तक के संयम को सरागसंयम और उससे ऊपर के गुणस्थानों में राग के उदय या सत्ता का अभाव हो जाने से वीतरागसंयम होता है। राग भी दो प्रकार का कहा गया है—सूक्ष्म और बादर (स्थूल)। दशवें गुणस्थान में सूक्ष्मराग रहता है, अतः वहाँ के संयम को सूक्ष्मसाम्परायसंयम (सूक्ष्म कषाय वाले मुनि का संयम) और नवम गुणस्थान तक के संयम को बादरसाम्परायसंयम (स्थूल कषायवान् मुनि का संयम) कहते हैं। नवम गुणस्थान के अन्तिम समय में बादर राग का अभाव कर दशम गुणस्थान में प्रवेश करने वाले जीवों के प्रथम समय के संयम को प्रथमसमय-सूक्ष्मसाम्पराय सरागसंयम कहते हैं और उसके सिवाय शेष समयवर्ती जीवों के संयम को अप्रथम समय सूक्ष्मसाम्परायसरागसंयम कहते हैं। इसी प्रकार दशम गुणस्थान के अन्तिम समय के संयम को चरम और उससे पूर्ववर्ती संयम को अचरम सूक्ष्म साम्परायसरागसंयम कहते हैं। आगे के सभी सूत्रों में प्रतिपादित प्रथम और अप्रथम, तथा चरम और अचरम का भी इसी प्रकार अर्थ जानना चाहिए।

कषायों का अभाव दो प्रकार से होता है—उपशम से और क्षय से। जब कोई जीव कषायों का उपशम कर ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है, तब उसके प्रथम समय के संयम को प्रथम समय उपशन्त कषाय वीतरागसंयम और शेष समयों के संयम को अप्रथम समय उपशान्त कषाय वीतराग संयम कहते हैं। इसी प्रकार चरम-अचरम समय का अर्थ जान लेना चाहिए।

कषायों का क्षय करके बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करने के प्रथम समय में और शेष समयों, तथा चरम समय और उससे पूर्ववर्ती अचरम समयवाले वीतराग छद्मस्थजीवों के वीतराग संयम को जानना चाहिए।

ऊपर श्रेणी चढ़ने वाले जीव के संयम को विशुद्धचमान और उपशम श्रेणी करके नीचे गिरने वाले के संयम को संक्लिश्यमान कहते हैं। उनके भी प्रथम और अप्रथम तथा चरम और अचरम को उक्त प्रकार से जानना चाहिए।

सयोगि-अयोगि केवली के प्रथम-अप्रथम एवं चरम-अचरम समयों की भावना भी इसी प्रकार करनी चाहिए।

जीव-निकाय-पद

१२३—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२४—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२५—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२६—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव बायरा चेव। १२७—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२८—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १२९—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३०—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३१—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३२—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३३—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३४—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३५—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३६—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३७—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२३)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२४)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२५)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२६)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२७)।

पुनः पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१२८)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१२९)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३०)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३१)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं— पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३२)।

पुनः पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत (बाह्य शस्त्रादि कारणों से जो अन्य रूप हो गया-अचित्त हो गया है)। और अपरिणत (जो ज्यों का त्यों सचित्त है) (१३३)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे हैं—परिणत और अपरिणत (१३४)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३५)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३६)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३७)।

विवेचन—यहां सूक्ष्म और बादर का अर्थ छोटा या मोटा अभीष्ट नहीं है, किन्तु जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो उन्हें सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो उन्हें बादर जानना चाहिए। बादरजीव भूमि, वनस्पति आदि के आधार से रहते हैं किन्तु सूक्ष्म जीव निराधार और सारे लोक में व्याप्त हैं। सूक्ष्म जीवों के शरीर का आघात-प्रतिघात और ग्रहण नहीं होता। किन्तु स्थूल जीवों के शरीर का आघात, प्रतिघात और ग्रहण होता है।

प्रत्येक जीव नवीन भव में उत्पन्न होने के साथ अपने शरीर के योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करता है, जिससे उसके शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्‌वास भाषा आदि का निर्माण होता है। उन पुद्‌गलों के ग्रहण करने की शक्ति अन्तर्मुहूर्त्त में प्राप्त हो जाती है। ऐसी शक्ति से सम्पन्न जीवों को पर्याप्तक कहते हैं। और जब तक उस शक्ति की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती है, तब तक उन्हें अपर्याप्तक कहा जाता है।

द्रव्य-पद

१३८—दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत (बाह्य कारणों से रूपान्तर को प्राप्त) और अपरिणत (अपने स्वाभाविक रूप से अवस्थित) (१३८)।

जीव-निकाय-पद

१३९—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४०—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४१—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४२—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४३—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (एक भव से दूसरे भव में जाते समय अन्तराल गति में वर्तमान) और अगति-समापन्नक (वर्तमान भव में अवस्थित (१३९)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४०)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४१)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१३२)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४३)।

द्रव्य-पद

१४४—दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (गमन में प्रवृत्त) और अगतिसमापन्नक (अवस्थित) (१४४)।

ऊपर श्रेणी चढ़ने वाले जीव के संयम को विशुद्धयमान और उपशम श्रेणी करके नीचे गिरने वाले के संयम को संक्लिश्यमान कहते हैं। उनके भी प्रथम और अप्रथम तथा चरम और अचरम को उक्त प्रकार से जानना चाहिए।

सयोगि-अयोगि केवली के प्रथम-अप्रथम एवं चरम-अचरम समयों की भावना भी इसी प्रकार करनी चाहिए।

जीव-निकाय-पद

१२३—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२४—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२५—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२६—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव बायरा चेव। १२७—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। १२८—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १२९—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३०—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३१—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३२—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव। १३३—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३४—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३५—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३६—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव। १३७—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२३)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२४)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२५)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२६)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (१२७)।

पुनः पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१२८)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१२९)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३०)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३१)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक (१३२)।

पुनः पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत (बाह्य शस्त्रादि कारणों से जो अन्य रूप हो गया-अचित्त हो गया है)। और अपरिणत (जो ज्यों का त्यों सचित्त है) (१३३)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे हैं—परिणत और अपरिणत (१३४)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३५)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३६)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत और अपरिणत (१३७)।

विवेचन—यहां सूक्ष्म और बादर का अर्थ छोटा या मोटा अभीष्ट नहीं है, किन्तु जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय हो उन्हें सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो उन्हें बादर जानना चाहिए। बादरजीव भूमि, वनस्पति आदि के आधार से रहते हैं किन्तु सूक्ष्म जीव निराधार और सारे लोक में व्याप्त हैं। सूक्ष्म जीवों के शरीर का आघात-प्रतिघात और ग्रहण नहीं होता। किन्तु स्थूल जीवों के शरीर का आघात, प्रतिघात और ग्रहण होता है।

प्रत्येक जीव नवीन भव में उत्पन्न होने के साथ अपने शरीर के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, जिससे उसके शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास भाषा आदि का निर्माण होता है। उन पुद्गलों के ग्रहण करने की शक्ति अन्तर्मुहूर्त्त में प्राप्त हो जाती है। ऐसी शक्ति से सम्पन्न जीवों को पर्याप्तक कहते हैं। और जब तक उस शक्ति की पूर्ण प्राप्ति नहीं होती है, तब तक उन्हें अपर्याप्तक कहा जाता है।

द्रव्य-पद

१३८—दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा—परिणया चेव, अपरिणया चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—परिणत (बाह्य कारणों से रूपान्तर को प्राप्त) और अपरिणत (अपने स्वाभाविक रूप से अवस्थित) (१३८)।

जीव-निकाय-पद

१३९—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४०—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४१—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४२—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव। १४३—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (एक भव से दूसरे भव में जाते समय अन्तराल गति में वर्तमान) और अगति-समापन्नक (वर्तमान भव में अवस्थित (१३९)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४०)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४१)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१३२)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक और अगतिसमापन्नक (१४३)।

द्रव्य-पद

१४४—दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (गमन में प्रवृत्त) और अगतिसमापन्नक (अवस्थित) (१४४)।

जीव-निकाय-पद

१४५—दुविहा पुढविकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव। १४६—दुविहा आउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव। १४७—दुविहा तेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव। १४८—दुविहा वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव। १४९—दुविहा वणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव।

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ (वर्तमान एक समय में किसी आकाश-प्रदेश में स्थित) और परम्परावगाढ (दो या अधिक समयों से किसी आकाश-प्रदेश में स्थित) (१४५)। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४६)। तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४७)। वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४८)। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१४९)।

द्रव्य-पद

१५०—दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरोगाढा चेव। १५१—दुविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—ओसप्पिणीकाले चेव, उस्सप्पिणीकाले चेव। १५२—दुविहे आगासे पण्णत्ते, तं जहा—लोगागासे चेव, अलोगागासे चेव।

द्रव्य दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ (१५०)। काल दो प्रकार का कहा गया है—अवसर्पिणीकाल और उत्सर्पिणीकाल (१५१)। आकाश दो प्रकार का कहा गया है—लोकाकाश और अलोकाकाश (१५२)।

शरीर-पद

१५३—णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरए कम्मए, बाहिरए वेउव्विए। १५४—देवाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरए कम्मए, बाहिरए वेउव्विए। १५५—पुढविकाइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरगे कम्मए, बाहिरगे ओरालिए जाव वणस्सइकाइयाणं। १५६—बेइंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणितबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १५७—तेइंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणितबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १५८—चउरिंदियाणं दो सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणितबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १५९—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १६०—मणुस्साणं दो शरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरगे चेव, बाहिरगे चेव। अब्भंतरगे कम्मए, अट्ठिमंससोणियण्हारुछिराबद्धे बाहिरगे ओरालिए। १६१—विग्गहगइसमावण्णगाणं णेरइयाणं दो सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—तेयए चेव, कम्मए चेव। णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

१६२—णेरइयाणं दोहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, तं जहा—रागेण चेव, दोसेण चेव जाव वेमाणियाणं। १६३—णेरइयाणं दुट्ठाणणिव्वत्तिए सरीरगे पण्णत्ते, तं जहा—रागणिव्वत्तिए चेव, दोसणिव्वत्तिए चेव जाव वेमाणियाणं।

नारकों के दो शरीर कहे गये हैं—आभ्यन्तर और बाह्य। आभ्यन्तर कार्मण शरीर है और बाह्य वैक्रियक शरीर है (१५३)। देवों के दो शरीर कहे गये हैं—आभ्यन्तर कार्मण शरीर (सर्वकर्मों का बीजभूत शरीर) और बाह्य वैक्रिय शरीर (१५४)। पृथ्वी-कायिक जीवों के दो शरीर कहे गये हैं—आभ्यन्तर कार्मणशरीर और बाह्य औदारिक शरीर। इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के दो-दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कार्मणशरीर और बाह्य औदारिक शरीर (१५५)। द्वीन्द्रिय जीवों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कार्मण शरीर और बाह्य अस्थि, मांस और रुधिर युक्त औदारिक शरीर (१५६)। त्रीन्द्रिय जीवों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कार्मण शरीर और बाह्य अस्थि, मांस और रक्तमय औदारिक शरीर (१५७)। चतुरिन्द्रिय-जीवों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कार्मणशरीर और बाह्य औदारिक शरीर (१५८)। पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कार्मण शरीर और बाह्य अस्थि, मांस, रुधिर, स्नायु एवं शिरायुक्त औदारिक शरीर (१५९)। मनुष्यों के दो शरीर होते हैं—आभ्यन्तर कार्मण शरीर और बाह्य अस्थि, मांस, रुधिर, स्नायु एवं शिरा युक्त औदारिक शरीर (१६०)।

पूर्व शरीर का त्याग करके जीव जब नवीन उत्पत्तिस्थान की ओर जाता है और उसका उत्पत्तिस्थान विश्रेणि में होता है तब वह विग्रहगति-समापन्नक कहलाता है। ऐसे नारक जीवों के दो शरीर कहे गये हैं—तैजसशरीर और कार्मण शरीर। इसी प्रकार विग्रहगतिसमापन्नक वैमानिक देवों तक सभी दण्डकों में दो-दो शरीर जानना चाहिए (१६१)। नारकों के दो स्थानों (कारणों) से शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होती है—राग से और द्वेष से। इसी प्रकार वैमानिक देवों तक सभी दण्डकों में जानना चाहिए (१६२)। नारकों के शरीर की निष्पत्ति (पूर्णता) दो स्थानों से होती है—राग से और द्वेष से (१६३)।

विवेचन—संसारी जीवों के शरीर की उत्पत्ति और निष्पत्ति का मूल कारण राग-द्वेष के द्वारा उपार्जित अमुक-अमुक कर्म ही है, तथापि यहां कार्य में कारण का उपचार करके राग और द्वेष से ही शरीर की उत्पत्ति और निष्पत्ति कही गई है।

काय-पद

१६४—दो काया पण्णत्ता, तं जहा—तसकाए चेव, थावरकाए चेव। १६५—तसकाए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवसिद्धिए चेव, अभवसिद्धिए चेव। १६६—थावरकाए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भवसिद्धिए चेव, अभवसिद्धिए चेव।

काय दो प्रकार के कहे गये हैं—त्रसकाय और स्थावरकाय (१६४)। त्रसकाय दो प्रकार का कहा गया है—भव्यसिद्धिक (भव्य) और अभव्यसिद्धिक (अभव्य) (१६५)। स्थावरकायक दो प्रकार का कहा गया है—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक (१६६)।

दिशाद्विक-करणीय पद

१६७—दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पव्वावित्तए—पाईणं

चेव, उदीणं चेव। १६८—दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा—मुंडावित्तए, सिक्खावित्तए, उवट्ठावित्तए, संभुंजित्तए, संवासित्तए, सज्झायमुद्दिसित्तए, सज्झायं समुद्दिसित्तए, सज्झायमणुजाणित्तए, आलोइत्तए, पडिक्कमित्तए, णिंदित्तए, गरहित्तए, विउट्टित्तए, विसोहित्तए, अकरणयाए अब्भुट्ठित्तए अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जित्तए—पाईणं चेव, उदीणं चेव। १६९—दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-जूसणा-जूसियाणं भत्तपाणपडियाइक्खित्ताणं पाओवगत्ताणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए, तं जहा—पाईणं चेव, उदीणं चेव।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओं में मुख करके दीक्षित करना कल्पता है (१६७)। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को पूर्व और उत्तर दिशा में मुख करके मुण्डित करना, शिक्षा देना, महाव्रतों में आरोपित करना, भोजनमण्डली में सम्मिलित करना, संस्तारक मण्डली में संवास करना, स्वाध्याय का उद्देश करना, स्वाध्याय का समुद्देश करना, स्वाध्याय की अनुज्ञा देना, आलोचना करना, प्रतिक्रमण करना, अतिचारों की निन्दा करना, गुरु के सम्मुख अतिचारों की गर्हा करना, लगे हुए दोषों का छेदन (प्रायश्चित्त) करना, दोषों की शुद्धि करना, पुनः दोष न करने के लिए अभ्युद्यत होना, यथादोष यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तपःकर्म स्वीकार करना कल्पता है (१६८)। पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओं के अभिमुख होकर निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को मारणान्तिकी सल्लेखना की प्रीतिपूर्वक आराधना करते हुए, भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर पादपोपगमन संथारा स्वीकार कर मरण की आकांक्षा नहीं करते हुए रहना कल्पता है। अर्थात् सल्लेखना स्वीकार करके पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके रहना चाहिए (१६९)।

विवेचन—किसी भी शुभ कार्य को करते समय पूर्व दिशा और उत्तर दिशा में मुख करने का विधान प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसका आध्यात्मिक उद्देश्य तो यह है कि पूर्व दिशा से उदित होने वाला सूर्य जिस प्रकार संसार को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार से दीक्षा लेना आदि कार्य भी मेरे लिए उत्तरोत्तर प्रकाश देते रहें। तथा उत्तर दिशा में मुख करने का उद्देश्य यह है कि भरतक्षेत्र की उत्तर दिशा में विदेह क्षेत्र के भीतर सीमन्धर आदि तीर्थंकर विहरमान हैं, उनका स्मरण मेरा पथ-प्रदर्शक रहे। ज्योतिर्विद् लोगों का कहना है कि पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके शुभ कार्य करने पर ग्रह-नक्षत्र आदि का शरीर और मन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और दक्षिण या पश्चिम दिशा में मुख करके कार्य करने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दीक्षा के पूर्व व्यक्ति का शिरोमुण्डन किया जाता है। दीक्षा के समय उसे दो प्रकार की शिक्षा दी जाती है—ग्रहण-शिक्षा—सूत्र और अर्थ को ग्रहण करने की शिक्षा और आसेवन-शिक्षा—पात्रादि के प्रतिलेखनादि की शिक्षा। शास्त्रों में साधुओं की सात मंडलियों का उल्लेख मिलता है—१. सूत्रमंडली—सूत्र-पाठ के समय एक साथ बैठना। २. अर्थ-मंडली—सूत्र के अर्थ-पाठ के समय एक साथ बैठना। इसी प्रकार ३. भोजन-मंडली, ४. काल प्रतिलेखन-मंडली, ५. प्रतिक्रमण-मंडली, ६. स्वाध्याय-मंडली और ७. संस्तारक-मंडली। इन सभी का निर्देश सूत्र १६८ में किया गया है। स्वाध्याय के उद्देश, समुद्देश आदि का भाव इस प्रकार है—'यह अध्ययन तुम्हें पढ़ना चाहिए,' गुरु के इस प्रकार के निर्देश को उद्देश कहते हैं। शिष्य भलीभाँति से पाठ पढ़ कर गुरु के आगे निवेदित करता है, तब गुरु उसे स्थिर और परिचित करने के लिए जो निर्देश देते हैं, उसे समुद्देश कहते हैं। पढ़े हुए पाठ के स्थिर

और परिचित हो जाने पर शिष्य पुनः गुरु के आगे निवेदित करता है, इसमें उत्तीर्ण हो जाने पर गुरु उसे भलीभाँति से स्मरण रखने और दूसरों को पढ़ाने का निर्देश देते हैं, इसे अनुज्ञा कहा जाता है। सूत्र १६९ में निर्ग्रन्थ और निग्रन्थियों को जो मारणान्तिकी सल्लेखना का विधान किया गया है, उसका अभिप्राय यह है—कषायों के कृश करने के साथ काय के कृश करने को सल्लेखना कहते हैं। मानसिक निर्मलता के लिए कषायों का कृश करना और शारीरिक वात-पित्तादि-जनित विकारों की शुद्धि के लिए भक्त-पान का त्याग किया जाता है, उसे भक्त-पान-प्रत्याख्यान समाधिमरण कहते हैं। सामर्थ्यवान् साधु उठना-बैठना और करवट बदलना आदि समस्त शारीरिक क्रियाओं को छोड़कर, संस्तर पर कटे हुए वृक्ष के समान निश्चेष्ट पड़ा रहता है, उसे पादपोपगमन संथारा कहते हैं। इसका दूसरा नाम प्रायोपगमन भी है। इस अवस्था में खान-पान का त्याग तो होता ही है, साथ ही वह मुख से भी किसी से कुछ नहीं बोलता है और न शरीर के किसी अंग से किसी को कुछ संकेत ही करता है। समाधिमरण के समय भी पूर्व या उत्तर की ओर मुख रहना आवश्यक है।

द्वितीय स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त।



द्वितीय स्थान

द्वितीय उद्देश

वेदना-पद

१७०—जे देवा उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा चारट्ठितिया गतिरतिया गतिसमावण्णगा, तेसि णं देवाणं सता समितं जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेदणं वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेयणं वेदेंति। १७१—णेरइयाणं सता समियं जे पावे कम्मे कज्जति, तत्थगतावि एगतिया वेदणं वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेदणं वेदेंति जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं। १७२—मणुस्साणं सता समितं जे पावे कम्मे कज्जति, इहगतावि एगतिया वेदणं वेदेंति, अण्णत्थगतावि एगतिया वेदणं वेदेंति। मणुस्सवज्जा सेसा एक्कगमा।

ऊर्ध्व लोक में उत्पन्न देव, जो सौधर्म आदि कल्पों में उपपन्न हैं, जो नौ ग्रैवेयक तथा अनुत्तर विमानों में उपपन्न है, जो चार (ज्योतिश्चक्र क्षेत्र) में उत्पन्न है, जो चारस्थितिक हैं अर्थात् समय-क्षेत्र-अढाई द्वीप से बाहर स्थित हैं, जो गतिशील और सतत गति वाले हैं, उन देवों से सदा-सर्वदा जो पाप कर्म का बन्ध होता है उसे कुछ देव उसी भव में वेदन करते हैं और कुछ देव अन्य भव में भी वेदन करते हैं (१७०)। नारकी तथा द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक तक दण्डकों के जीवों के सदा-सर्वदा जो पाप कर्म का बन्ध होता है, उसे कुछ जीव उसी भव में वेदन करते हैं और कुछ उसका अन्य गति में जाकर भी सदा-सर्वदा जो पाप-कर्म का बन्ध होता है, उसे कुछ जीव उसी भव में वेदन करते हैं और कुछ उसका अन्य गति में जाकर भी वेदन करते हैं (१७१)। मनुष्यों के जो सदा-सर्वदा पाप कर्म का बन्ध होता है, उसे कितने ही मनुष्य इसी भव में रहते हुए वेदन करते हैं और कितने ही उसे यहां भी वेदन करते हैं और अन्य गति में जाकर भी वेदन करते हैं (१७२)। मनुष्यों को छोड़कर शेष दण्डकों का कथन एक समान है। अर्थात् संचित कर्म का इस भव में भी वेदन करते हैं और अन्य भव में जाकर भी वेदन करते हैं। मनुष्य के लिए 'इसी भव में' ऐसा शब्द-प्रयोग होता है, अन्य जीवदण्डकों में 'उसी भव में' ऐसा प्रयोग होता है। इसी कारण 'मनुष्य को छोड़ कर शेष दण्डकों' का कथन समान कहा गया है (१७२)।

गति-आगति-पद

१७३—णेरइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता, तं जहा—णेरइए णेरइएसु उववज्जमाणे मणुस्सेहिंतो वा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वा उववज्जेज्जा। से चेव णं से णेरइए णेरइयत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा पंचिंदियतिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा।

नारक जीव दो गति और दो आगति वाले कहे गये हैं। यथा—नैरयिकों (बद्ध नरकायुष्क) जीव नारकों में मनुष्यों से अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकों में से (जाकर) उत्पन्न होता है। इसी प्रकार नारकी जीव नारक अवस्था को छोड़ कर मनुष्य अथवा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनि में (आकर) उत्पन्न होता है (१७३)।

विवेचन—गति का अर्थ है—गमन और आगति अर्थात् आगमन। नारक जीवों में मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच इन दो का गमन होता है और वहाँ से आगमन भी उक्त दोनों जाति के जीवों में ही होता है।

१७४—एवं असुरकुमारा वि, णवरं—से चेव णं से असुरकुमारे असुरकुमारत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा तिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा। एवं—सव्वदेवा।

इसी प्रकार असुरकुमार भवनपति देव भी दो गति और दो आगति वाले कहे गये हैं। विशेष—असुर कुमार देव असुरकुमार-पर्याय को छोड़ता हुआ मनुष्य पर्याय में या तिर्यग्योनि में जाता है। इसी प्रकार सर्व देवों की गति और आगति जानना चाहिए (१७४)।

विवेचन—यद्यपि असुरकुमारादि सभी देवों की सामान्य से दो गति और दो आगति का निर्देश इस सूत्र में किया गया है, तथापि यह विशेष ज्ञातव्य है कि देवों में मनुष्य और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच ही मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क) और ईशान कल्प तक के देव मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के सिवाय एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल और वनस्पति काय में भी उत्पन्न होते हैं।

१७५—पुढविकाइया दुगतिया दुयागतिया पण्णत्ता तं जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा णो-पुढविकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा। से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा णो-पुढविकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा। १७६—एवं जाव मणुस्सा।

पृथ्वीकायिक जीव दो गति और दो आगति वाले कहे गये हैं। यथा—पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय में उत्पन्न होता हुआ पृथ्वीकायिकों से अथवा नो-पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होता है। वही पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकता को छोड़ता हुआ पृथ्वीकायिक में, अथवा नो-पृथ्वीकायिकों—(अन्य अप्कायिकादि) में जाता है (१७५)। इसी प्रकार यावत् मनुष्यों तक दो गति और दो आगति कही गई है। अर्थात् अप्काय से लेकर मनुष्य तक के सभी दण्डकवाले जीव अपने-अपने काय से अथवा अन्य कायों से आकर उस-उस काय में उत्पन्न होते हैं और वे अपनी-अपनी अवस्था छोड़कर अपने-अपने उसी काय में अथवा अन्य कायों में जाते हैं (१७६)।

दण्डक-मार्गणा-पद

१७७—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—भवसिद्धिया चेव, अभवसिद्धिया चेव जाव वेमाणिया। १७८—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोववण्णगा चेव, परंपरोववण्णगा चेव जाव वेमाणिया। १७९—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—गतिसमावण्णगा चेव, अगतिसमावण्णगा चेव जाव वेमाणिया। १८०—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमओववण्णगा चेव, अपढमसमओववण्णगा चेव जाव वेमाणिया। १८१—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—आहारगा चेव, अणाहारगा चेव। एवं जाव वेमाणिया। १८२—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—उस्सासगा चेव, णोउस्सासगा चेव जाव वेमाणिया। १८३—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सइंदिया चेव, अणिंदिया चेव जाव वेमाणिया। १८४—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा चेव, अपज्जत्तगा चेव जाव वेमाणिया।

नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१७७)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१७८)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—गतिसमापन्नक (अपने उत्पत्तिस्थान को जाते हुए) और अगतिसमापन्नक (अपने भव में स्थित)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१७९)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—प्रथमसमयोपपन्नक और अप्रथमसमयोपपन्नक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८०)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—आहारक और अनाहारक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८१)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—उच्छ्वासक (उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त) और नो-उच्छ्वासक (उच्छ्वास पर्याप्ति से अपूर्ण) (१८२)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—सेन्द्रिय (इन्द्रिय पर्याप्ति से पर्याप्त) और अनिन्द्रिय (इन्द्रिय पर्याप्ति से अपर्याप्त) इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८३)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्तक (पर्याप्तियों से परिपूर्ण) और अपर्याप्तक (पर्याप्तियों से अपूर्ण)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८४)।

१८५—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सण्णी चेव, असण्णी चेव। एवं पंचेंदिया सव्वे विगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा। १८६—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—भासगा चेव, अभासगा चेव। एवमेगिंदियवज्जा सव्वे। १८७—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सम्मद्दिट्ठिया चेव, मिच्छद्दिट्ठिया चेव। एगिंदियवज्जा सव्वे। १८८—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—परित्तसंसारिया चेव, अणंतसंसारिया चेव। जाव वेमाणिया। १८९—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्ज-कालसमयट्ठितिया चेव, असंखेज्जकालसमयट्ठितिया चेव। एवं—पंचेंदिया एगिंदियविगलिंदियवज्जा जाव वाणमंतरा। १९०—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सुलभबोधिया चेव, दुलभबोधिया चेव जाव वेमाणिया। १९१—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—कण्हपक्खिया चेव, सुक्कपक्खिया चेव जाव वेमाणिया। १९२—दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—चरिमा चेव, अचरिमा चेव जाव वेमाणिया।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—संज्ञी (मनःपर्याप्ति से परिपूर्ण) और असंज्ञी (जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच योनि से नारकियों में उत्पन्न होते हैं)। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वान-व्यन्तर तक के सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८५)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—भाषक (भाषा पर्याप्ति से परिपूर्ण) और अभाषक

(भाषा पर्याप्ति से अपूर्ण)। इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८६)।

पुनः नारक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८७)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—परीत संसारी (जिनका संसार-वास सीमित रह गया है) और अनन्त संसारी (जिनके संसार-वास का कोई अन्त नहीं है)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८८)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—संख्येय काल स्थिति वाले और असंख्येय काल स्थिति वाले। इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वाण-व्यन्तर पर्यन्त सभी पञ्चेन्द्रिय जीवों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१८९)। (ज्योतिष्क और वैमानिक असंख्येय काल की स्थिति वाले ही होते हैं और एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रिय जीव संख्यात काल की स्थिति वाले ही होते हैं।)

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—सुलभ बोधि वाले और दुर्लभ बोधि वाले। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१९०)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त दो-दो भेद जानना चाहिए (१९१)।

पुनः नारक दो प्रकार के कहे गये हैं—चरम (नरक में पुनः जन्म नहीं लेने वाले) और अचरम (नरक में भविष्य में भी जन्म लेने वाले)। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में दो-दो भेद जानना चाहिए (१९२)।

अधोऽवधिज्ञान-दर्शन-पद

१९३—दोहिं ठाणेहिं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जणइ-पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता और देखता है - (१) वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता-देखता है। (२) वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। (३) अधोवधि (परमावधिज्ञान से नीचे के नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधि ज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किये विना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है (१९३)।

१९४—दोहिं ठाणेहिं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा तिर्यक् लोक को जानता-देखता है—वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा

अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधि-ज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला—परमावधि से नीचे का अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या विना किये भी अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है (१९४)।

१९५—दोहिं ठाणेहिं आया उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोकं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है—वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके, या किये विना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है (१९५)।

१९६—दोहिं ठाणेहिं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है—वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। अधोवधि (परमावधि की अपेक्षा नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किये विना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है (१९६)।

१९७—दोहिं ठाणेहिं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ अविउव्वितेणं चेव अप्पणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण करने पर आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। अधोवधि ज्ञानी वैक्रियशरीर का निर्माण करके या किये विना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है (१९७)।

१९८—दोहिं ठाणेहिं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ, अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा तिर्यक् लोक को जानता—देखता है – वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है (१९८)।

१९९—दोहिं ठाणेहिं आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—विउव्वितेणं चेव आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है– वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रिय शरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है (१९९)।

२००—दोहिं ठाणेहिं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, तं जहा – विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधि ज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रिय शरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है (२००)।

देशतः-सर्वत : श्रवणादि-पद

२०१—दोहिं ठाणेहिं आया सद्दाइं सुणेति, तं जहा—देसेण वि आया सद्दाइं सुणेति, सव्वेणवि आया सद्दाइं सुणेति। २०२—दोहिं ठाणेहिं आया रूवाइं पासइ, तं जहा—देसेण वि आया रूवाइं पासइ, सव्वेणवि आया रूवाइं पासइ। २०३—दोहिं ठाणेहिं आया गंधाइं अग्घाति, तं जहा—देसेण वि आया गंधाइं अग्घाति, सव्वेणवि आया गंधाइं अग्घाति। २०४—दोहिं ठाणेहिं आया रसाइं आसादेति, तं जहा—देसेण वि आया रसाइं आसादेति, सव्वेण वि आया रसाइं आसादेति। २०५—दोहिं ठाणेहिं आया फासाइं पडिसंवेदेति, तं जहा—देसेण वि आया फासाइं पडिसंवेदेति, सव्वेण वि आया फासाइं पडिसंवेदेति।

दो प्रकार से आत्मा शब्दों को सुनता है—एक देश (एक कान) से भी आत्मा शब्दों को सुनता है और सर्व से (दोनों कानों से) भी आत्मा शब्दों को सुनता है (२०१)। दो प्रकार से आत्मा रूपों को देखता है—एक देश (नेत्र) से भी आत्मा रूपों को देखता है और सर्व से भी आत्मा रूपों को देखता है (२०२)। दो प्रकार से आत्मा गन्धों को सूंघता है—एक देश (नासिका) से भी आत्मा

अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधि-ज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला—परमावधि से नीचे का अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या विना किये भी अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है (१९४)।

१९५—दोहिं ठाणेहिं आया उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया उड्ढलोकं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है—वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। अधोवधि (नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके, या किये विना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है (१९५)।

१९६—दोहिं ठाणेहिं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—समोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, असमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि समोहतासमोहतेणं चेव अप्पाणेणं आया केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है—वैक्रिय आदि समुद्घात करके आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय आदि समुद्घात न करके भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। अधोवधि (परमावधि की अपेक्षा नियत क्षेत्र को जानने वाला अवधिज्ञानी) वैक्रिय आदि समुद्घात करके या किये विना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है (१९६)।

१९७—दोहिं ठाणेहिं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ अविउव्वितेणं चेव अप्पणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया अहेलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा अधोलोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण करने पर आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है। अधोवधि ज्ञानी वैक्रियशरीर का निर्माण करके या किये विना भी अवधिज्ञान से अधोलोक को जानता—देखता है (१९७)।

१९८—दोहिं ठाणेहिं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ, अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आया तिरियलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा तिर्यक् लोक को जानता—देखता है – वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रियशरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से तिर्यक् लोक को जानता—देखता है (१९८)।

१९९—दोहिं ठाणेहिं आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, तं जहा—विउव्वितेणं चेव आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ, अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता उड्ढलोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है– वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रिय शरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक को जानता—देखता है (१९९)।

२००—दोहिं ठाणेहिं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, तं जहा– विउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ, अविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

आहोहि विउव्वियाविउव्वितेणं चेव अप्पाणेणं आता केवलकप्पं लोगं जाणइ-पासइ।

दो प्रकार से आत्मा सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है—वैक्रिय शरीर का निर्माण कर लेने पर आत्मा अवधि ज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। वैक्रिय शरीर का निर्माण किये विना भी आत्मा अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है। अधोवधि वैक्रिय शरीर का निर्माण करके या उसका निर्माण किये विना भी अवधिज्ञान से सम्पूर्ण लोक को जानता—देखता है (२००)।

देशतः-सर्वतः श्रवणादि-पद

२०१—दोहिं ठाणेहिं आया सद्दाइं सुणेति, तं जहा—देसेण वि आया सद्दाइं सुणेति, सव्वेणवि आया सद्दाइं सुणेति। २०२—दोहिं ठाणेहिं आया रूवाइं पासइ, तं जहा—देसेण वि आया रूवाइं पासइ, सव्वेणवि आया रूवाइं पासइ। २०३—दोहिं ठाणेहिं आया गंधाइं अग्घाति, तं जहा—देसेण वि आया गंधाइं अग्घाति, सव्वेणवि आया गंधाइं अग्घाति। २०४—दोहिं ठाणेहिं आया रसाइं आसादेति, तं जहा—देसेण वि आया रसाइं आसादेति, सव्वेण वि आया रसाइं आसादेति। २०५—दोहिं ठाणेहिं आया फासाइं पडिसंवेदेति, तं जहा—देसेण वि आया फासाइं पडिसंवेदेति, सव्वेण वि आया फासाइं पडिसंवेदेति।

दो प्रकार से आत्मा शब्दों को सुनता है—एक देश (एक कान) से भी आत्मा शब्दों को सुनता है और सर्व से (दोनों कानों से) भी आत्मा शब्दों को सुनता है (२०१)। दो प्रकार से आत्मा रूपों को देखता है—एक देश (नेत्र) से भी आत्मा रूपों को देखता है और सर्व से भी आत्मा रूपों को देखता है (२०२)। दो प्रकार से आत्मा गन्धों को सूंघता है—एक देश (नासिका) से भी आत्मा

गन्धों को सूंघता है और सर्व से भी गन्धों को सूंघता है (२०३)। दो प्रकार से आत्मा रसों का आस्वाद लेता है—एक देश (रसना) से भी आत्मा रसों का आस्वाद लेता है और सम्पूर्ण से भी रसों का आस्वाद लेता है (२०४)। दो प्रकार से आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है—एक देश से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है और सम्पूर्ण से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है (२०५)।

विवेचन—श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियों का प्रतिनियत क्षयोपशम होने पर जीव शब्द आदि को श्रोत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा सुनता—देखता आदि है। संस्कृत टीका के अनुसार 'एक देश से सुनता है' का अर्थ एक कान की श्रवण शक्ति नष्ट हो जाने पर एक ही कान से सुनता है और सर्व का अर्थ दोनों कानों से सुनता है—ऐसा किया है। यही बात नेत्र, रसना आदि के विषय में भी जानना चाहिए। साथ ही यह भी लिखा है कि संभिन्नश्रोतृलब्धि से युक्त जीव समस्त इन्द्रियों से भी सुनता है अर्थात् सारे शरीर से सुनता है। इसी प्रकार इस लब्धिवाला जीव रूप, रस, गन्ध और स्पर्श का ज्ञान किसी भी एक इन्द्रिय से और सम्पूर्ण शरीर से कर सकता है।

२०६ – दोहिं ठाणेहिं आया ओभासति, तं जहा—देसेणवि आया ओभासति, सव्वेणवि आया ओभासति। २०७—एवं—पभासति, विकुव्वति, परियारेति, भासं भासति, आहारेति, परिणामेति, वेदेति, णिज्जरेति। २०८—दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइं सुणेति, तं जहा—देसेणवि देवे सद्दाइं सुणेति, सव्वेणवि देवे सद्दाइं सुणेति जाव णिज्जरेति।

दो स्थानों से आत्मा अवभास (प्रकाश) करता है—खद्योत के समान एक देश से भी आत्मा अवभास करता है और प्रदीप की तरह सर्व रूप से भी अवभास करता है (२०६)। इसी प्रकार दो स्थानों से आत्मा प्रभास (विशेष प्रकाश) करता है, विक्रिया करता है, प्रवीचार (मैथुन सेवन) करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है और उसका उत्सर्ग करता है (२०७)। दो स्थानों से देव शब्द सुनता है—शरीर के एक देश से भी देव शब्दों को सुनता है और सम्पूर्ण शरीर से भी देव शब्दों को सुनता है। इसी प्रकार देव दोनों स्थानों से अवभास करता है, प्रभास करता है, विक्रिया करता है, प्रवीचार करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है और उसका उत्सर्ग करता है (२०८)।

शरीर-पद

२०९—मरुया देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—'एगसरीरी चेव दुसरीरी' चेव। २१०—एवं किण्णरा किंपुरिसा गंधव्वा णागकुमारा सुवण्णकुमारा अग्गिकुमारा वायुकुमारा। २११—देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—'एगसरीरी चेव, दुसरीरी' चेव।

मरुत् देव दो प्रकार के कहे गये हैं—एक शरीर वाले और दो शरीर वाले (२०९)। इसी प्रकार किन्नर, किम्पुरुष, गन्धर्व, नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार ये सभी देव दो-दो प्रकार के हैं—एक शरीर वाले और दो शरीर वाले (२१०)। (शेष) देव दो प्रकार के कहे गये हैं—एक शरीरवाले और दो शरीरवाले (२११)।

विवेचन—तीर्थकरों के निष्क्रमण कल्याणक के समय आकर उनके वैराग्य के समर्थक लोकान्तिक देवों का एक भेद मरुत् है। अन्तरालगति में एक कार्मण शरीर की अपेक्षा एक शरीर कहा गया है और भवधारणीय वैक्रिय शरीर के साथ कार्मणशरीर की अपेक्षा दो शरीर कहे गये हैं। अथवा भवधारणीय वैक्रिय शरीर की अपेक्षा एक और उत्तर वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से दो शरीर बतलाए गए हैं। मरुत् देव को उपलक्षण मानकर शेष लोकान्तिक देवों के भी एक शरीर और दो शरीरों का निर्देश इस सूत्र से किया गया जानना चाहिए। इस प्रकार सूत्र २१० में यद्यपि किन्नर आदि तीन व्यन्तर देवों का और नागकुमार आदि चार भवनपति देवों का निर्देश किया गया है, तथापि इन्हें उपलक्षण मानकर शेष व्यन्तरों और शेष भवनपतियों को भी एक शरीरी और दो शरीरी जानना चाहिए। उक्त देवों के सिवाय शेष ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के एक शरीरी और दो शरीरी होने का निर्देश सूत्र २११ से किया गया है।

द्वितीय उद्देश समाप्त ॥

गन्धों को सूंघता है और सर्व से भी गन्धों को सूंघता है (२०३)। दो प्रकार से आत्मा रसों का आस्वाद लेता है—एक देश (रसना) से भी आत्मा रसों का आस्वाद लेता है और सम्पूर्ण से भी रसों का आस्वाद लेता है (२०४)। दो प्रकार से आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है—एक देश से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है और सम्पूर्ण से भी आत्मा स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करता है (२०५)।

विवेचन—श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियों का प्रतिनियत क्षयोपशम होने पर जीव शब्द आदि को श्रोत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा सुनता—देखता आदि है। संस्कृत टीका के अनुसार 'एक देश से सुनता है' का अर्थ एक कान की श्रवण शक्ति नष्ट हो जाने पर एक ही कान से सुनता है और सर्व का अर्थ दोनों कानों से सुनता है—ऐसा किया है। यही बात नेत्र, रसना आदि के विषय में भी जानना चाहिए। साथ ही यह भी लिखा है कि संभिन्नश्रोतृलब्धि से युक्त जीव समस्त इन्द्रियों से भी सुनता है अर्थात् सारे शरीर से सुनता है। इसी प्रकार इस लब्धिवाला जीव रूप, रस, गन्ध और स्पर्श का ज्ञान किसी भी एक इन्द्रिय से और सम्पूर्ण शरीर से कर सकता है।

२०६—दोहिं ठाणेहिं आया ओभासति, तं जहा—देसेणवि आया ओभासति, सव्वेणवि आया ओभासति। २०७—एवं—पभासति, विकुव्वति, परियारेति, भासं भासति, आहारेति, परिणामेति, वेदेति, णिज्जरेति। २०८—दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइं सुणेति, तं जहा—देसेणवि देवे सद्दाइं सुणेति, सव्वेणवि देवे सद्दाइं सुणेति जाव णिज्जरेति।

दो स्थानों से आत्मा अवभास (प्रकाश) करता है—खद्योत के समान एक देश से भी आत्मा अवभास करता है और प्रदीप की तरह सर्व रूप से भी अवभास करता है (२०६)। इसी प्रकार दो स्थानों से आत्मा प्रभास (विशेष प्रकाश) करता है, विक्रिया करता है, प्रवीचार (मैथुन सेवन) करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है और उसका उत्सर्ग करता है (२०७)। दो स्थानों से देव शब्द सुनता है—शरीर के एक देश से भी देव शब्दों को सुनता है और सम्पूर्ण शरीर से भी देव शब्दों को सुनता है। इसी प्रकार देव दोनों स्थानों से अवभास करता है, प्रभास करता है, विक्रिया करता है, प्रवीचार करता है, भाषा बोलता है, आहार करता है, उसका परिणमन करता है, उसका अनुभव करता है और उसका उत्सर्ग करता है (२०८)।

शरीर-पद

२०९—मरुया देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—'एगसरीरी चेव दुसरीरी' चेव। २१०—एवं किण्णरा किंपुरिसा गंधव्वा णागकुमारा सुवण्णकुमारा अग्गिकुमारा वायुकुमारा। २११—देवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—'एगसरीरी चेव, दुसरीरी' चेव।

मरुत् देव दो प्रकार के कहे गये हैं—एक शरीर वाले और दो शरीर वाले (२०९)। इसी प्रकार किन्नर, किम्पुरुष, गन्धर्व, नागकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार ये सभी देव दो-दो प्रकार के हैं—एक शरीर वाले और दो शरीर वाले (२१०)। (शेष) देव दो प्रकार के कहे गये हैं—एक शरीरवाले और दो शरीरवाले (२११)।

द्वितीय स्थान

तृतीय उद्देश

शब्द-पद

२१२—दुविहे सद्दे पण्णत्ते, तं जहा—भासासद्दे चेव, णोभासासद्दे चेव। २१३—भासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अक्खरसंबद्धे चेव, णोअक्खरसंबद्धे चेव। २१४—णोभासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आउज्जसद्दे चेव, णोआउज्जसद्दे चेव। २१५—आउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—तते चेव, वितते चेव। २१६—तते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—घणे चेव, सुसिरे चेव। २१७—वितते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—घणे चेव, सुसिरे चेव। २१८—णोआउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भूसणसद्दे चेव, णोभूसणसद्दे चेव। २१९—णोभूसणसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—तालसद्दे चेव, लत्तियासद्दे चेव। २२०—दोहिं ठाणेहिं सद्दुप्पाते सिया, तं जहा—साहण्णंताणं चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया, भिज्जंताणं चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया।

शब्द दो प्रकार का कहा गया है—भाषा शब्द और नोभाषाशब्द (२१२)। भाषा शब्द दो प्रकार का कहा गया है—अक्षर-संबद्ध (वर्णात्मक) और नो-अक्षर-संबद्ध (२१३)। नोभाषाशब्द दो प्रकार का कहा गया है—आतोद्य-वादित्र-शब्द और नोआतोद्य शब्द (२१४)। आतोद्य शब्द दो प्रकार का कहा गया है—तत और वितत (२१५)। तत शब्द दो प्रकार का कहा गया है—घन और शुषिर (२१६)। वितत शब्द दो प्रकार का कहा गया है—घन और शुषिर (२१७)। नोआतोद्य शब्द दो प्रकार का कहा गया है—भूषण शब्द और नो-भूषण शब्द (२१८)। नोभूषण शब्द दो प्रकार का है, ताल शब्द और लत्तिका शब्द (२१९)। दो स्थानों (कारणों) से शब्द की उत्पत्ति होती है—संघात को प्राप्त होते हुए पुद्गलों से शब्द की उत्पत्ति होती है और भेद को प्राप्त होते हुए पुद्गलों से शब्द की उत्पत्ति होती है (२२०)।

विवेचन—उक्त सूत्रों से कहे गये पदों का अर्थ इस प्रकार है। भाषा शब्द—जीव के वचनयोग से प्रकट होने वाला शब्द। नोभाषाशब्द—वचनयोग से भिन्न पुद्गल के द्वारा प्रकट होने वाला शब्द। अक्षर-संबद्ध शब्द—अकार-ककार आदि वर्णों के द्वारा प्रकट होने वाला शब्द। नो अक्षर-संबद्ध शब्द—अनक्षरात्मक शब्द। आतोद्यशब्द—नगाड़े आदि बाजों का शब्द। नोआतोद्य शब्द—बांस आदि के फटने से होने वाला शब्द। ततशब्द—तार-वाले वीणा, सारंगी आदि बाजों का शब्द। वितत शब्द—तार-रहित बाजों का शब्द। ततघनशब्द—झांझ-मंजीरा जैसे बाजों का शब्द। तत शुषिर शब्द—वीणा-सारंगी आदि का मधुर शब्द। वितत घन-शब्द—भाणक बाजे का शब्द। वितत शुषिर शब्द—नगाड़े ढोल आदि का शब्द। भूषण शब्द—नूपुर-बिछुड़ी आदि आभूषणों का शब्द। नोभूषण शब्द—वस्त्र आदि के फटकारने से होने वाला शब्द। ताल शब्द—हाथ की ताली बजाने से होने वाला शब्द। लत्तिका शब्द—कांसे का शब्द—अथवा पाद-प्रहार से होने वाला शब्द। अनेक पुद्गलस्कन्धों के संघात होने-परस्पर मिलने से भी शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे घड़ी, मशीन आदि के चलने से। तथा भेद से भी शब्द की उत्पत्ति होती है, जैसे-बांस, वस्त्र आदि के फटने से।

पुद्गल-पद

२२१—दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तं जहा—सइं वा पोग्गला साहण्णंति, परेण वा पोग्गला साहण्णंति। २२२—दोहिं ठाणेहिं पोग्गला भिज्जंति, तं जहा—सइं वा पोग्गला भिज्जंति, परेण वा पोग्गला भिज्जंति। २२३—दोहिं ठाणेहिं परिपडंति, तं जहा—सइं वा पोग्गला परिपडंति, परेण वा पोग्गला परिपडंति। २२४—दोहिं ठाणेहिं पोग्गला परिसडंति, तं जहा—सइं वा पोग्गला परिसडंति, परेण वा पोग्गला परिसडंति। २२५—दोहिं ठाणेहिं पोग्गला विद्धंसंति, तं जहा—सइं वा पोग्गला विद्धंसंति, परेण वा पोग्गला विद्धंसंति।

दो कारणों से पुद्गल संहत (समुदाय को प्राप्त) होते हैं—मेघादि के समान स्वयं अपने स्वभाव से पुद्गल संहत होते हैं और पुरुष के प्रयत्न आदि दूसरे निमित्तों से भी पुद्गल संहत होते हैं (२२१)। दो कारणों से पुद्गल भेद को प्राप्त होते हैं—स्वयं अपने स्वभाव से पुद्गल भेद को प्राप्त प्राप्त होते हैं—बिछुड़ते हैं और दूसरे निमित्तों से भी पुद्गल भेद को प्राप्त होते हैं (२२२)। दो कारणों से पुद्गल नीचे गिरते हैं—स्वयं अपने स्वभाव से पुद्गल नीचे गिरते हैं और दूसरे निमित्तों से भी पुद्गल नीचे गिरते हैं (२२३)। दो कारणों से पुद्गल परिशडित होते है—स्वयं अपने स्वभाव से कुष्ठ आदि से गलकर शरीर से पुद्गल नीचे गिरते हैं। और दूसरे शास्त्र-छेदनादि निमित्तों से विकृत पुद्गल नीचे गिरते हैं (२२४)। दो स्थानों से पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं—स्वयं अपने स्वभाव से पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं और दूसरे निमित्तों से भी पुद्गल विध्वंस को प्राप्त होते हैं (२२५)।

२२६—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—भिण्णा चेव, अभिण्णा चेव। २२७—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—भेउरधम्मा चेव, णोभेउरधम्मा चेव। २२८—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—परमाणुपोग्गला चेव, णोपरमाणुपोग्गला चेव। २२९—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा चेव, बायरा चेव। २३०—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—बद्धपासपुट्ठा चेव, णोबद्धपासपुट्ठा चेव।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—भिन्न और अभिन्न (२२६)। पुनः पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—भिदुरधर्मा (स्वयं ही भेद को प्राप्त होने वाले) और नोभिदुरधर्मा (स्वयं भेद को नहीं प्राप्त होने वाले) (२२७)। पुनः पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—परमाणु पुद्गल और नोपरमाणु रूप (स्कन्ध) पुद्गल (२२८)। पुनः पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म और बादर (२२९)। पुनः पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—बद्ध-पार्श्वस्पृष्ट और नोबद्ध-पार्श्वस्पृष्ट (२३०)।

विवेचन—जो पुद्गल शरीर के साथ गाढ़ सम्बन्ध को प्राप्त रहते हैं वे बद्ध कहलाते हैं और जो पुद्गल शरीर से चिपके रहते हैं उन्हें पार्श्वस्पृष्ट कहते हैं। घ्राणेन्द्रिय से ग्राह्य गन्ध, रसनेन्द्रिय से ग्राह्य रस और स्पर्शनेन्द्रिय से ग्राह्य स्पर्शरूप पुद्गल बद्धपार्श्वस्पृष्ट होते हैं। अर्थात् स्पर्शन, रसना और घ्राणेन्द्रिय के साथ स्पर्श, रस एवं गंध का गाढा संवंध होने पर ही इनका ग्रहण-ज्ञान होता है। कर्णेन्द्रिय से ग्राह्य शब्द पुद्गल नोबद्ध किन्तु पार्श्वस्पृष्ट हैं अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय पार्श्वस्पृष्ट शब्द को ग्रहण कर लेती है। उसे गाढ संबंध की आवश्यकता नहीं होती। नेत्रेन्द्रिय अपने विषयभूत रूप को अबद्ध और अस्पृष्ट रूप से ही जानती है। इसलिए उसका निर्देश इस सूत्र में नहीं किया गया है।

२३१—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—परियादितच्चेव, अपरियादितच्चेव ।

पुनः पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—परियादित और अपरियादित (२३१) ।

विवेचन—'परियादित' और अपरियादित इन दोनों प्राकृत पदों का संस्कृत रूपान्तर टीकाकार ने दो-दो प्रकार से किया है पर्यायातीत और अपर्यायातीत । पर्यायातीत का अर्थ विवक्षित पर्याय से अतीत पुद्गल होता है और अपर्यायातीत का अर्थ विवक्षित पर्याय में अवस्थित पुद्गल होता है । दूसरा संस्कृत रूप पर्यात्त या पर्यादत्त और अपर्यात्त या अपर्यादत्त कहा है, जिसके अनुसार उनका अर्थ क्रमशः कर्मपुद्गलों के समान सम्पूर्णरूप से गृहीत पुद्गल और असम्पूर्ण रूप से गृहीत पुद्गल होता है । पर्यात्त का अर्थ परिग्रहरूप से स्वीकृत अथवा शरीरादिरूप से गृहीत पुद्गल भी किया गया है और उनसे विपरीत पुद्गल अपर्यात्त कहलाते हैं ।

२३२—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव ।

पुनः पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं—आत्त (जीव के द्वारा गृहीत) और अनात्त (जीव के द्वारा अगृहीत) पुद्गल (२३२) ।

२३३—दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव । कंता चेव, अकंता चेव, पिया चेव, अपिया चेव । मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव । मणामा चेव, अमणामा चेव ।

पुनः पुद्गल दो-दो प्रकार के कहे गये हैं--इष्ट और अनिष्ट; तथा कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३३) ।

विवेचन--सूत्रोक्त पदों का अर्थ इस प्रकार है:—इष्ट—जो किसी प्रयोजन विशेष से अभीष्ट हो । अनिष्ट—जो किसी कार्य के लिए इष्ट न हो । कान्त—जो विशिष्ट वर्णादि से युक्त सुन्दर हो । अकान्त—जो सुन्दर न हो । प्रिय—जो प्रीतिकर एवं इन्द्रियों को आनन्द-जनक हो । अप्रिय—जो अप्रीतिकर हो । मनोज्ञ—जिसकी कथा भी मनोहर हो । अमनोज्ञ—जिसकी कथा भी मनोहर न हो । मनाम—जिसका मन से चिन्तन भी प्रिय हो । अमनाम—जिसका मन से चिन्तन भी प्रिय न हो ।

इन्द्रिय-विषय-पद

२३४—दुविहा सद्दा पण्णत्ता, तं जहा—'अत्ता चेव, अणत्ता चेव' । इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव । कंता चेव, अकंता चेव । पिया चेव, अपिया चेव । मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव । मणामा चेव, अमणामा चेव । २३५—दुविहा रूवा पण्णत्ता, तं जहा—'अत्ता चेव, अणत्ता चेव' । इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव । कंता चेव, अकंता चेव । पिया चेव, अपिया चेव । मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव । मणामा चेव, अमणामा चेव । २३६—दुविहा गंधा पण्णत्ता, तं जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव । इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव । कंता चेव, अकंता चेव । पिया चेव, अपिया चेव । मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव । मणामा चेव, अमणामा चेव । २३७—दुविहा रसा पण्णत्ता, तं जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव । इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव । कंता चेव, अकंता चेव । पिया चेव, अपिया चेव । मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव । मणामा चेव, अमणामा चेव । २३८—दुविहा फासा पण्णत्ता, तं

जहा—अत्ता चेव, अणत्ता चेव। इट्ठा चेव, अणिट्ठा चेव। कंता चेव, अकंता चेव। पिया चेव, अपिया चेव। मणुण्णा चेव, अमणुण्णा चेव। मणामा चेव, अमणामा चेव।

दो प्रकार के शब्द कहे गये हैं—आत्त और अनात्त तथा इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३४)। दो प्रकार के रूप कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३५)। दो प्रकार के गन्ध कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३६)। दो प्रकार के रस कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३७)। दो प्रकार के स्पर्श कहे गये हैं—आत्त और अनात्त, इष्ट और अनिष्ट, कान्त और अकान्त, प्रिय और अप्रिय, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, मनाम और अमनाम (२३८)।

आचार-पद

२३९—दुविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे चेव, णोणाणायारे चेव। २४०—णोणाणायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणायारे चेव, णोदंसणायारे चेव। २४१—णोदंसणायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—चरित्तायारे चेव, णोचरित्तायारे चेव। २४२—णोचरित्तायारे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—तवायारे चेव, वीरियायारे चेव।

आचार दो प्रकार का कहा गया है—ज्ञानाचार और नो-ज्ञानाचार (२३९), नो-ज्ञानाचार दो प्रकार का कहा गया है—दर्शनाचार और नो-दर्शनाचार (२४०)। नो-दर्शनाचार दो प्रकार का कहा गया है—चारित्राचार और नो-चारित्राचार (२४१)। नो-चारित्राचार दो प्रकार का कहा गया है—तपःआचार और वीर्याचार (२४२)।

यद्यपि आचार के पांच भेद हैं, किन्तु द्विस्थानक के अनुरोध से उनको दो-दो भेद के रूप में वर्णन किया गया है। इनका विवेचन पंचम स्थानक में किया जायगा।

प्रतिमा-पद

२४३—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समाहिपडिमा चेव, उवहाणपडिमा चेव। २४४—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विवेगपडिमा चेव, विउसग्गपडिमा चेव। २४५—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—'भद्दा चेव, सुभद्दा चेव'। २४६—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—महाभद्दा चेव, सव्वतोभद्दा चेव। २४७—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खुड्डिया चेव मोयपडिमा, महल्लिया चेव मोयपडिमा। २४८—दो पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जवमज्झा चेव चंदपडिमा, वइरमज्झा चेव चंदपडिमा।

प्रतिमा दो प्रकार की कही गई हैं—समाधिप्रतिमा और उपधान प्रतिमा (२४३)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की कही गई हैं—विवेकप्रतिमा और व्युत्सर्गप्रतिमा (२४४)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की गई है—भद्रा और सुभद्रा (२४५)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की कही गई है—महाभद्रा और सर्वतोभद्रा (२४६)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की कही गई है—क्षुद्रक मोक प्रतिमा और महती मोक-

प्रतिमा (२४७)। पुनः प्रतिमा दो प्रकार की कही गई है—यवमध्यचन्द्र-प्रतिमा और वज्रमध्यचन्द्र प्रतिमा (२४८)।

विवेचन—टीकाकार ने 'प्रतिमा' का अर्थ प्रतिपत्ति, प्रतिज्ञा या अभिग्रह किया है। आत्म-शुद्धि के लिए जो विशिष्ट साधना की जाती है उसे प्रतिमा कहा गया है। श्रावकों की ग्यारह और साधुओं की बारह प्रतिमाएं हैं। प्रस्तुत छह सूत्रों के द्वारा साधुओं की बारह प्रतिमाओं का निर्देश द्विस्थानक के अनुरोध से दो-दो के रूप में किया गया है। इनका अर्थ इस प्रकार है—

१. **समाधि प्रतिमा**—अप्रशस्त भावों को दूर कर प्रशस्त भावों की श्रुताभ्यास और सदाचरण के द्वारा वृद्धि करना।

२. **उपधान प्रतिमा**—उपधान का अर्थ है तपस्या। श्रावकों की ग्यारह और साधुओं की बारह प्रतिमाओं में से अपने बल-वीर्य के अनुसार उनकी साधना करने को उपधान प्रतिमा कहते हैं।

३. **विवेक प्रतिमा** - आत्मा और अनात्मा का भेद-चिन्तन करना, स्व और पर का भेद-ज्ञान करना। जैसे—मेरा आत्मा ज्ञान-दर्शन स्वरूप है और क्रोधादि कषाय तथा शरीरादिक मेरे से सर्वथा भिन्न हैं। इस प्रकार के चिन्तन से पर पदार्थों से उदासीनता और आत्मस्वरूप में संलीनता प्राप्त होती है, तथा हेय-उपादेय का विवेक-ज्ञान प्रकट होता है।

४. **व्युत्सर्ग प्रतिमा**—विवेकप्रतिमा के द्वारा जिन वस्तुओं को हेय अर्थात् छोड़ने के योग्य जाना है, उनका त्याग करना व्युत्सर्ग प्रतिमा है।

५. **भद्रा प्रतिमा**—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर—इन चारों दिशाओं में क्रमशः चार-चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना। यह प्रतिमा दो दिन-रात में दो उपवास के द्वारा सम्पन्न होती है।

६. **सुभद्रा प्रतिमा**—इसकी साधना भी भद्राप्रतिमा से ऊंची संभव है। किन्तु टीकाकार के समय में भी इसकी विधि विच्छिन्न या अज्ञात हो गई थी।

७. **महाभद्रप्रतिमा**—चारों दिशाओं में क्रम से एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। यह प्रतिमा चार दिन-रात में चार दिन के उपवास के द्वारा सम्पन्न होती है।

८. **सर्वतोभद्रप्रतिमा**—चारों दिशाओं, चारों विदिशाओं, तथा ऊर्ध्व दिशा और अधोदिशा—इन दशों दिशाओं में क्रम से एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना। यह प्रतिमा दश दिन-रात और दश दिन के उपवास से पूर्ण होती है। पंचम स्थानक में इसके दो भेदों का भी निर्देश है, उनका विवेचन वहीं किया जायगा।

९. **क्षुद्रक-मोक-प्रतिमा**—मोक नाम प्रस्रवण (पेशाब) का है। इस प्रतिमा का साधक शीत या उष्ण ऋतु के प्रारम्भ में ग्राम से बाहिर किसी एकान्त स्थान में जाकर और भोजन का त्याग कर प्रातःकाल सर्वप्रथम किये गये प्रस्रवण का पान करता है। यह प्रतिमा यदि भोजन करके प्रारम्भ की जाती है तो छह दिन के उपवास से सम्पन्न होती है और यदि भोजन न करके प्रारम्भ की जाती है तो सात दिन के उपवास से सम्पन्न होती है। इस प्रतिमा की साधना के तीन लाभ बतलाये गये है—सिद्ध होना, महर्द्धिक देवपद पाना और शारीरिक रोग से मुक्त होना।

१०. **महती-मोक-प्रतिमा**--इसकी विधि क्षुद्रक मोक-प्रतिमा के समान ही है। अन्तर केवल

इतना है कि जब वह खा-पीकर स्वीकार की जाती है, तब वह सात दिन के उपवास से पूरी होती है और यदि बिना खाये-पिये स्वीकार की जाती है तो आठ दिन के उपवास से पूरी होती है।

११. यवमध्य चन्द्र प्रतिमा—जिस प्रकार यव (जौ) का मध्य भाग स्थूल और दोनों ओर के भाग कृश होते हैं, उसी प्रकार से इस साधना में कवल (ग्रास) ग्रहण मध्य में सबसे अधिक और आदि-अन्त में सबसे कम किया जाता है। इसकी विधि यह है—इस प्रतिमा का साधक साधु शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक कवल आहार लेता है। पुनः तिथि के अनुसार एक कवल आहार बढ़ाता हुआ शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को पन्द्रह कवल आहार लेता है। पुनः कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को १४ कवल आहार लेकर क्रम से एक-एक कवल घटाते हुए अमावस्या को उपवास करता है। चन्द्रमा की एक-एक कला शुक्ल पक्ष में जैसे बढ़ती है और कृष्णपक्ष में एक-एक घटती है उसी प्रकार इस प्रतिमा में कवलों की वृद्धि और हानि होने से इसे यवमध्य चन्द्र प्रतिमा कहा गया है।

१२. वज्रमध्य चन्द्र प्रतिमा—जिस प्रकार वज्र का मध्य भाग कृश और आदि-अन्त भाग स्थूल होता है, उसी प्रकार जिस साधना में कवल-ग्रहण आदि-अन्त में अधिक और मध्य में एक भी न हो, उसे वज्रमध्य चन्द्र प्रतिमा कहते हैं। इसे साधनेवाला साधक कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को १४ कवल आहार लेकर क्रम से चन्द्रकला के समान एक-एक कवल घटाते हुए अमावस्या को उपवास करता है। पुनः शुक्लपक्ष में प्रतिपदा के दिन एक कवल ग्रहण कर एक-एक कला वृद्धि के समान एक-एक कवल वृद्धि करते हुए पूर्णिमा को १५ कवल आहार ग्रहण करता है।

सामायिक-पद

२४९—दुविहे सामाइए पण्णत्ते, तं जहा—अगारसामाइए चेव, अणगारसामाइए चेव।

सामायिक दो प्रकार की कही गई है—अगार-(श्रावक) सामायिक अर्थात् देशविरति और अनगार-(साधु)-सामायिक अर्थात् सर्वविरति (२४९)।

जन्म-मरण-पद

२५०—दोण्हं उववाए पण्णत्ते, तं जहा—देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव। २५१—दोण्हं उव्वट्टणा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयाणं चेव, भवणवासीणं चेव। २५२—दोण्हं चवणे पण्णत्ते, तं जहा—जोइसियाणं चेव, वेमाणियाणं चेव। २५३—दोण्हं गब्भवक्कंती पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

दो का उपपात जन्म कहा गया है—देवों का और नारकों का (२५०)। दो का उद्वर्तन कहा गया है—नारकों का और भवनवासी देवों का (२५१)। दो का च्यवन होता है—ज्योतिष्क देवों का और वैमानिक देवों का (२५२)। दो की गर्भव्युत्क्रान्ति कही गई है—मनुष्यों की और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की (२५३)।

विवेचन—देव और नारकों का उपपात जन्म होता है। च्यवन का अर्थ है ऊपर से नीचे आना और उद्वर्तन नाम नीचे से ऊपर आने का है। नारक और भवनवासी देव मरण कर नीचे से ऊपर मध्यलोक में जन्म लेते हैं, अतः उनके मरण को उद्वर्त्तन कहा गया है। तथा ज्योतिष्क और विमानवासी देव मरण कर ऊपर से नीचे—मध्यलोक में जन्म लेते हैं, अतः उनके मरण को च्यवन

कहा गया है। मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का जन्म माता के गर्भ से होता है, अतः उसे गर्भ-व्युत्क्रांति कहते हैं।

गर्भस्थ-पद

२५४—दोण्हं गब्भत्थाणं आहारे पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५५—दोण्हं गब्भत्थाणं वुड्ढी पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५६—दोण्हं गब्भत्थाणं—णिवुड्ढी विगुव्वणा गतिपरियाए समुग्घाते कालसंजोगे आयाती मरणे पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५७—दोण्हं छविपव्वा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २५८—दो सुक्कसोणितसंभवा पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्सा चेव, पंचिदियतिरिक्खजोणिया चेव।

दो प्रकार के जीवों का गर्भावस्था में आहार कहा गया है – मनुष्यों का और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों का (इन दो के सिवाय अन्य जीवों का गर्भ होता ही नहीं है।) (२५४)। दो प्रकार के गर्भस्थ जीवों की गर्भ में रहते हुए शरीर-वृद्धि कही गई है—मनुष्यों की और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों की (२५५)। दो गर्भस्थ जीवों की गर्भ में रहते हुए हानि, विक्रिया, गतिपर्याय, समुद्घात, काल-संयोग, गर्भ से निर्गमन और गर्भ में मरण कहा गया है—मनुष्यों का तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों का (२५६)। दो के चर्म-युक्त पर्व (सन्धि-बन्धन) कहे गये हैं—मनुष्यों के और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकों के (२५७)। दो शुक्र (वीर्य) और शोणित (रक्त-रज) से उत्पन्न कहे गये हैं—मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव (२५८)।

स्थिति-पद

२५९—दुविहा ठिती पण्णत्ता, तं जहा—कायट्ठिती चेव, भवट्ठिती चेव। २६०—दोण्हं कायट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २६१—दोण्हं भवट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव।

स्थिति दो प्रकार की कही गई है—कायस्थिति (एक ही काय में लगातार जन्म लेने की काल-मर्यादा) और भवस्थिति (एक ही भव की काल-मर्यादा) (२५९)। दो की कायस्थिति कही गई है—मनुष्यों की और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों की (२६०)। दो की भवस्थिति कही गई है—देवों की और नारकों की (२६१)।

विवेचन—पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अतिरिक्त एकेन्द्रिय, आदि तिर्यंचों की भी कायस्थिति होती है। इस सूत्र से उनकी कायस्थिति का निषेध नहीं समझना चाहिए। प्रस्तुत सूत्र अन्ययोगव्यवच्छेदक नहीं, अयोगव्यवच्छेदक है, अर्थात् दो की कायस्थिति का विधान ही करता है, अन्य की कायस्थिति का निषेध नहीं करता। देव और नारक जीव मर कर पुनः देव-नारक नहीं होते, अतः उनकी कायस्थिति नहीं होती, मात्र भवस्थिति ही होती है।

आयु-पद

२६२—दुविहे आउए पण्णत्ते, तं जहा—अद्धाउए चेव, भवाउए चेव। २६३—दोण्हं

श्रद्धाउए पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं चेव। २६४—दोण्हं भवाउए पण्णत्ते, तं जहा—देवाणं चेव, णेरइयाणं चेव।

आयुष्य दो प्रकार का कहा गया है—अद्धायुष्य (एक भव के व्यतीत होने पर भी भवान्तरानुगामी कालविशेष रूप आयुष्य) और भवायुष्य (एक भववाला आयुष्य) (२६२)। दो का अद्धायुष्य कहा गया है—मनुष्यों का और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकों का (२६३)। दो का भवायुष्य कहा गया है—देवों का और नारकों का (२६४)।

कर्म-पद

२६५—दुविहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—पदेसकम्मे चेव, अणुभावकम्मे चेव। २६६—दो अहाउयं पालेंति, तं जहा—देवच्चेव, णेरइयच्चेव। २६७—दोण्हं आउय-संवट्टए पण्णत्ते, तं जहा—मणुस्साणं चेव, पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

कर्म दो प्रकार का कहा गया है—प्रदेश कर्म (जो कर्म मात्र कर्मपुद्गलों से वेदा जाय—रस-अनुभाग से नहीं) और अनुभाव कर्म (जिसके अनुभाग-रस का वेदन किया जाय) (२६५)। दो यथायु (पूर्णायु) का पालन करते हैं—देव और नारक (२६६)। दो का आयुष्य संवर्तक (अपवर्तन वाला) कहा गया है—मनुष्यों का और पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकों का (२६७)। तात्पर्य यह है कि मनुष्य और तिर्यंच दीर्घकालीन आयुष्य को अल्पकाल में भी भोग लेते हैं, क्योंकि वह सोपक्रम होता है। यह सूत्र भी पूर्ववत् अयोगव्यवच्छेदक ही है।

क्षेत्र-पद

२६८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव। २६९—एवमेएणमभिलावेणं—हेमवते चेव, हेरण्णवए चेव। हरिवासे चेव, रम्मयवासे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर (सुमेरु) पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये हैं—भरत (दक्षिण में) और ऐरवत (उत्तर में)। ये दोनों क्षेत्र-प्रमाण में सर्वथा सदृश हैं, नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमें कोई विशेषता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम (लम्बाई), विष्कम्भ (चौड़ाई), संस्थान (आकार) और परिणाह (परिधि) की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं—समान हैं। इसी प्रकार इसी अभिलाप (कथन) से हैमवत और हैरण्यवत, तथा हरिवर्ष और रम्यकवर्ष भी परस्पर सर्वथा समान कहे गये हैं (२६९)।

२७०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम-पच्चत्थिमे णं दो खेत्ता पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभ-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव।

जम्बू द्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व और पश्चिम में दो क्षेत्र कहे गये हैं—पूर्व विदेह और अपर विदेह। ये दोनों क्षेत्र प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, नगर-नदी आदि की दृष्टि से

उनमें कोई भिन्नता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से भी उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इनका आयाम, विष्कम्भ और परिधि भी एक दूसरे के समान है।

२७१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो कुराओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।

तत्थ णं दो महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णाइवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—कूडसामली चेव, जंबू चेव सुदंसणा।

तत्थ णं दो देवा महिड्डिया महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला महासोक्खा पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—गरुले चेव वेणुदेवे अणाढिते चेव जंबुद्दीवाहिवती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो कुरु कहे गये हैं—उत्तर में उत्तरकुरु और दक्षिण में देवकुरु। ये दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, नगर-नदी आदि की दृष्टि से उनमें कोई विशेषता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। वहां (देवकुरु में) कूटशाल्मली और (उत्तर कुरु में) सुदर्शन जम्बू नाम के दो अति विशाल महावृक्ष हैं। वे दोनों प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, उनमें परस्पर कोई विशेषता नहीं है, कालचक्र के परिर्वतन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध (मूल, गहराई), संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। उन पर महान् ऋद्धिवाले, महा द्युतिवाले, महाशक्ति वाले, महान् यशवाले, महान् बलवाले, महान् सौख्यवाले और एक पल्योपम की स्थितिवाले दो देव रहते हैं—कूटशाल्मली वृक्ष पर सुपर्णकुमार जाति का गरुड वेणुदेव और सुदर्शन जम्बूवृक्ष पर जम्बूद्वीप का अधिपति अनादृत देव (२७१)।

पर्वत-पद

२७२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासहरपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—चुल्लहिमवंते चेव, सिहरिच्चेव। २७३—एवं महाहिमवंते चेव, रूप्पिच्चेव। एवं—णिसढे चेव, णीलवंते चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो वर्षधर पर्वत कहे गये हैं—दक्षिण में क्षुल्लक हिमवान् और उत्तर में शिखरी। ये दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, उनमें परस्पर कोई विशेषता नहीं है, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२७२)। इसी प्रकार महाहिमवान् और रुक्मी, तथा निषध और नीलवन्त पर्वत भी परस्पर में क्षेत्र-प्रमाण, कालचक्र-परिवर्तन, आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि में एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२७३)। (महाहिमवान् और निषध पर्वत मन्दर के दक्षिण में हैं, और नीलवन्त तथा रुक्मी मन्दर के दक्षिण में हैं।)

२७४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं हेमवत-हेरण्णवतेसु वासेसु दो वट्टवेयड्डपव्वता पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्तोव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—सद्दावाती चेव, वियडावाती चेव।

तत्थ णं दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—साती चेव, पभासे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में हैमवत और उत्तर में हैरण्यवत क्षेत्र में दो वृत्त वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं, जो परस्पर क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। उन पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—दक्षिण दिशा में स्थित शब्दापाती वृत्त वैताढ्य पर स्वाति देव और उत्तर दिशा में स्थित विकटापाती वृत्त वैताढ्य पर प्रभासदेव (२७४)।

२७५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं हरिवास-रम्मएसु वासेसु दो वट्टवेयड्डपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—गंधावाती चेव, मालवंतपरियाए चेव।

तत्थ णं दो देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—अरुणे चेव, पउमे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, मन्दर पर्वत के दक्षिण में, हरिक्षेत्र में गन्धापाती और उत्तर में रम्यक क्षेत्र में माल्यवत्पर्याय नामक दो वृत्त वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं। दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का उल्लंघन नहीं करते हैं। उन पर महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—गन्धापाती पर अरुणदेव और माल्यवत्पर्याय पर पद्मदेव (२७५)।

२७६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं देवकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आस-क्खंधग-सरिसा अद्धचंद-संठाण-संठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—सोमणसे चेव, विज्जुप्पभे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में देवकुरु के पूर्व पार्श्व में सौमनस और पश्चिम पार्श्व में विद्युत्प्रभ नाम के दो वक्षार पर्वत कहे गये हैं। वे अश्व-स्कन्ध के सदृश (आदि में नीचे और अन्त में ऊंचे) तथा अर्धचन्द्र के आकार से अवस्थित हैं। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२७६)।

२७७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं उत्तरकुराए कुराए पुव्वावरे पासे, एत्थ णं आस-क्खंधग-सरिसा अद्धचंद-संठाण-संठिया दो वक्खारपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—गंधमायणे चेव, मालवंते चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में उत्तरकुरु के पूर्व पार्श्व में गन्धमादन और

पश्चिम पार्श्व में माल्यवत् नाम के दो वक्षार पर्वत कहे गये हैं। वे अश्व-स्कन्ध में सदृश (आदि में नीचे और अन्त में ऊंचे) तथा अर्धचन्द्र के आकार से अवस्थित हैं। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२७७)।

२७८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो दीहवेयड्ढपव्वया पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—भारहे चेव दीहवेयड्ढे, एरवते चेव दीहवेयड्ढे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर और दक्षिण में दो दीर्घ वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं। ये क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। उनमें से एक दीर्घ वैताढ्य भरत क्षेत्र में है और दूसरा दीर्घ वैताढ्य ऐरवत क्षेत्र में है (२७८)।

गुहा-पद

२७९—भारहए णं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ अविसेसमणाणत्ताओ अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—तिमिसगुहा चेव, खंडगप्पवायगुहा चेव। तत्थ णं दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—कयमालए चेव, णट्टमालए चेव। २८०—एरवए णं दीहवेयड्ढे दो गुहाओ पण्णत्ताओ जाव तं जहा—कयमालए चेव, णट्टमालए चेव।

भरत क्षेत्र के दीर्घ वैताढ्य पर्वत में तमिस्रा और खण्डप्रपात नामकी दो गुफाएं कही गई हैं। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, उनमें परस्पर कोई विशेषता नहीं है, काल-चक्र के परिवर्तन की दृष्टि में उनमें कोई विभिन्नता नहीं है, वे आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती हैं। उनमें महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—तमिस्रा में कृतमालक देव और खण्डप्रपात गुफा में नृत्तमालक देव (२७९)। ऐरवत क्षेत्र के दीर्घ वैताढ्य पर्वत में तमिस्रा और खण्डप्रपात नाम की दो गुफाएं कही गई हैं। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती हैं। उनमें महान् ऋद्धि वाले यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाले दो देव रहते हैं—तमिस्रा में कृतमालक और खण्डप्रपात गुफा में नृत्तमालक देव (२८०)।

कूट-पद

२८१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं चुल्लहिमवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव विक्खंभुच्चत्त-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—चुल्लहिमवंतकूडे चेव, वेसमणकूडे चेव। २८२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—महाहिमवंतकूडे चेव, वेरुलियकूडे चेव। २८३—एवं—णिसढे वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—णिसढकूडे चेव, रुयगप्पभे चेव। २८४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णीलवंते वासहरपव्वए दो कूडा पण्णत्ता—

बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—णीलवंतकूडे चेव, उवदंसणकूडे चेव। २८५—एवं—रुप्पिमि वासहर-पव्वए दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—रुप्पिकूडे चेव, मणिकंचणकूटे चेव। २८६—एवं—सिहरिंमि वासहरपव्वते दो कूडा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—सिहरिकूडे चेव, तिगिंछकूडे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत से दक्षिण में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत से ऊपर दो कूट (शिखर) कहे गये हैं—चुल्ल हिमवत्कूट और वैश्रमणकूट। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२८१)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत से दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर दो कूट कहे गये हैं—महाहिमवत्कूट और वैडूर्यकूट। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, आयामविष्कम्भ, उच्चत्व, यावत् संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२८२)। इसी प्रकार जम्बूद्वीपनामक द्वीप के मन्दर पर्वत के दक्षिण निषध पर्वत के ऊपर दो कूट कहे गये हैं—निषध कूट और रुचकप्रभ कूट। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, संस्थान, और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२८३)।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में नीलवन्त वर्षधर पर्वत के ऊपर दो कूट कहे गये हैं—नीलवन्त कूट और उपदर्शन कूट। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२८४)। इसी प्रकार जम्बूद्वीपनामक द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत के ऊपर दो कूट हैं—रुक्मी कूट और मणिकांचन कूट। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२८५)। इसी प्रकार जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के ऊपर दो कूट हैं—शिखरी कूट और तिगिंछ कूट। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं—यावत् आयाम, विष्कम्भ, उच्चत्व, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (२८६)।

महाद्रह-पद

२८७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं चुल्लहिमवंत-सिहरीसु वासहर-पव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अण्णमण्णं णातिवट्टंति आयाम-विक्खंभ-उव्वेह-संठाण-परिणाहेणं, तं जहा—पउमद्दहे चेव, पोंडरीयद्दहे चेव।

तत्थ णं दो देवयाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति तं जहा—सिरी चेव, लच्छी चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत पर पद्मद्रह (पद्मह्रद) और उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत पर पौण्डरीक द्रह (ह्रद) कहे गये हैं। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं; उनमें कोई विशेषता नहीं है। कालचक्र के परिवर्तन की दृष्टि से उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। वे आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की

अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। वहाँ महान् ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपमकी स्थितिवाली दो देवताएं रहती हैं—पद्मद्रह में श्री और पौण्डरीकद्रह में लक्ष्मी।

२८८—एवं महाहिमवंत-रुप्पीसु वासहरपव्वएसु दो महद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—महापउमद्दहे चेव, महापोंडरीयद्दहे चेव।

तत्थ णं दो देवयाओ हिरिच्चेव, बुद्धिच्चेव।

इसी प्रकार महाहिमवान् और रुक्मी वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे गये हैं, जो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। वहाँ दो देवियाँ रहती हैं—महापद्मद्रह में ह्री और महापौण्डरीक द्रह में बुद्धि।

२८९—एवं—णिसढ-णीलवंतेसु तिगिंछद्दहे चेव, केसरिद्दहे चेव।

तत्थ णं दो देवताओ धिती चेव, कित्ती चेव।

इसी प्रकार निषध और नीलवन्त वर्षधर पर्वत पर दो महाद्रह कहे गये हैं, जो क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् वे आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं। वहाँ दो देवियाँ रहती हैं—तिगिंछिद्रह के धृति और केसरीद्रह में कीर्ति।

महानदी-पद

२९०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ महापउमद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—रोहियच्चेव, हरिकंतच्चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के महापद्मद्रह से रोहिता और हरिकान्ता नाम की दो महानदियां प्रवाहित होती हैं।

२९१—एवं—णिसढाओ वासहरपव्वयाओ तिगिंछद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—हरिच्चेव, सीतोदच्चेव।

इसी प्रकार निषध वर्षधर पर्वत के तिगिंछद्रह नामक महाद्रह से हरित और सीतोदा नामकी दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं।

२९२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णीलवंताओ वासहरपव्वताओ केसरिद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—सीता चेव, णारिकंता चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के मन्दर पर्वत के उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत के केसरीनामक महाद्रह से सीता और नारीकान्ता नामकी दो महानदियां प्रवाहित होती हैं।

२९३—एवं—रुप्पीओ वासहरपव्वताओ महापोंडरीयद्दहाओ दहाओ दो महाणईओ पवहंति, तं जहा—णरकंता चेव, रुप्पकूला चेव।

इसी प्रकार रुक्मी वर्षधर पर्वत के महापौण्डरीक द्रह नामक महाद्रह से नरकान्ता और रूप्यकूला नामकी दो महानदियाँ प्रवाहित होती हैं।

प्रपातद्रह-पद

२९४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—गंगप्पवायद्दहे चेव, सिंधुप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—गंगाप्रपातद्रह और सिन्धु प्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्रप्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत्, आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२९५—एवं—हेमवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—रोहियप्पवायद्दहे चेव, रोहियंसप्पवायद्दहे चेव।

इसी प्रकार हैमवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—रोहितप्रपात द्रह और रोहितांश प्रपात द्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा ये एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२९६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं हरिवासे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला, तं जहा—हरिपवायद्दहे चेव, हरिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में हरि वर्ष क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—हरितप्रपात द्रह और हरिकान्तप्रपात द्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२९७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं महाविदेहे वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—सीतप्पवायद्दहे चेव, सीतोदप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र में दो महाप्रपातद्रह कहे गये हैं—सीताप्रपातद्रह और सीतोदाप्रपातद्रह। ये दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२९८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रम्मए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—णरकंतप्पवायद्दहे चेव, णारिकंतप्पवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में रम्यक क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—नरकान्ता प्रपातद्रह और नारीकान्ताप्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

२९९—एवं—हेरण्णवते वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—सुवण्णकूलप्पवायद्दहे चेव, रुप्पकूलप्पवायद्दहे चेव।

इसी प्रकार हैरण्यवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—स्वर्ण-कूलाप्रपातद्रह और रूप्यकूला-प्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

३००—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं एरवए वासे दो पवायद्दहा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—रत्तप्पवायद्दहे चेव, रत्तावईपवायद्दहे चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में दो प्रपातद्रह कहे गये हैं—रक्ताप्रपातद्रह और रक्तवतीप्रपातद्रह। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

महानदी-पद

३०१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव तं जहा—गंगा चेव, सिंधू चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं—गंगा और सिन्धु। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती हैं।

३०२—एवं—जहा—पवातद्दहा, एवं णईओ भाणियव्वाओ जाव एरवए वासे दो महाणईओ पण्णत्ताओ—बहुसमतुल्लाओ जाव तं जहा—रत्ता चेव, रत्तावती चेव।

इसी प्रकार जैसे प्रपातद्रह कहे गये हैं, उसी प्रकार नदियाँ कहनी चाहिए। यावत् ऐरवत क्षेत्र में दो महानदियाँ कही गई हैं—रक्ता और रक्तवती। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, उद्वेध, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करती हैं।

कालचक्र-पद

जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले होत्था। ३०४—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले पण्णत्ते। ३०५—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमदूसमाए समाए दो सागरोवमकोडाकोडीओ काले भविस्सति।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम था (३०३)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम कहा गया है (३०४)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में आगामी सुषम-दुषमा आरे का काल दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपम होगा (३०५)।

३०६—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए मणुया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, दोण्णि य पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था। ३०७—एवमिमीसे ओसप्पिणीए जाव पालइत्था। ३०८—एवमागमेस्साए उस्सप्पिणीए जाव पालयिस्संति।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गव्यूति (कोश) की थी और उनकी उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी (३०६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊंचाई दो गव्यूति (कोश) की थी और उनकी उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की थी (३०७)। इसी प्रकार यावत् आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे में मनुष्यों की ऊँचाई दो गव्यूति (कोश) और उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम की होगी (३०८)।

शलाका-पुरुष-वंश-पद

३०९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु 'एगसमये एगजुगे' दो अरहंतवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३१०—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टिवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३११—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो दसारवंसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में, एक युग में अरहन्तों के दो वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३०९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में, एक युग में चक्रवर्तियों के दो वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१०)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो दशार—(बलदेव-वासुदेव) वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३११)।

शलाका-पुरुष-पद

३१२—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो अरहंता उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३१३—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो चक्कवट्टी उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा। ३१४—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो बलदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उपज्जिस्संति वा। ३१५—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगसमये एगजुगे दो वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में, भरत और ऐरवत क्षेत्र में, एक समय में एक युग में दो अरहन्त उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१२)। जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भरत और ऐरवत क्षेत्र में, एक समय में, एक युग में दो चक्रवर्ती उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१३)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो बलदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१४)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१५)।

कालानुभाव-पद

३१६—जंबुद्दीवे दीवे दोसु कुरासु मणुया सया सुसमसुसममुत्तमं इड्ढि पत्ता पच्चणुभवमाणा

विहरंति, तं जहा—देवकुराए चेव, उत्तरकुराए चेव। ३१७—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसममुत्तमं इड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—हरिवासे चेव, रम्मगवासे चेव। ३१८—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसमदूसममुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—हेमवए चेव, हेरण्णवए चेव। ३१९—जंबुद्दीवे दीवे दोसु खेत्तेसु मणुया सया दूसमसुसम-मुत्तममिड्ढिं पत्ता पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—पुव्वविदेहे चेव, अवरविदेहे चेव। ३२०—जंबुद्दीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव, एरवते चेव।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण और उत्तर के देवकुरु और उत्तरकुरु में रहने वाले मनुष्य सदा सुषम-सुषमा नामक प्रथम आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में हरिक्षेत्र और उत्तर में रम्यक क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा सुषमा नामक दूसरे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१७)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में हैमवत क्षेत्र में और उत्तर के हैरण्यत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा सुषम-दुषमा नाम तीसरे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१८)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में पूर्व विदेह और पश्चिम में अपर—(पश्चिम—) विदेह क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य सदा दुषम-सुषमा नामक चौथे आरे की उत्तम ऋद्धि को प्राप्त कर उसका अनुभव करते हुए विचरते हैं (३१९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में भरत क्षेत्र और उत्तर में ऐरवत क्षेत्र में रहने वाले मनुष्य छहों प्रकार के काल का अनुभव करते हुए विचरते हैं (३२०)।

चन्द्र-सूर्य-पद

३२१—जंबुद्दीवे दीवे—दो चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। ३२२—दो सूरिआ तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो चन्द्र प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे (३२१)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे (३२२)।

नक्षत्र-पद

३२३—दो कित्तियाओ, दो रोहिणीओ, दो मग्गसिराओ, दो अद्दाओ, दो पुणव्वसू, दो पूसा, दो अस्सलेसाओ, दो महाओ, दो पुव्वाफग्गुणीओ, दो उत्तराफग्गुणीओ, दो हत्था, दो चित्ताओ, दो साईओ, दो विसाहाओ, दो अणुराहाओ, दो जेट्ठाओ, दो मूला, दो पुव्वासाढाओ, दो उत्तरा-साढाओ, दो अभिईओ, दो सवणा, दो धणिट्ठाओ, दो सयभिसया, दो पुव्वाभद्दवयाओ, दो उत्तराभद्द-वयाओ, दो रेवतीओ, दो अस्सिणीओ, दो भरणीओ, [जोयं जोएंसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा ?]।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में दो कृत्तिका, रोहिणी, दो मृगशिरा, दो आर्द्रा, दो पुनर्वसू, दो पुष्य, दो अश्लेषा, दो मघा, दो पूर्वाफाल्गुणी, दो उत्तराफाल्गुणी, दो हस्त, दो चित्रा, दो स्वाति, दो विशाखा, दो अनुराधा, दो ज्येष्ठा, दो मूल, दो पूर्वाषाढा, दो उत्तराषाढा, दो अभिजित, दो श्रवण,

सौवस्तिक, दो वर्धमानक, दो प्रलम्ब, दो नित्यालोक, दो नित्योद्योत, दो स्वयम्प्रभ, दो अवभास, दो श्रेयस्कर, दो क्षेमंकर, दो आभंकर, दो प्रभंकर, दो अपराजित, दो अजरस्, दो अशोक, दो विगत-शोक, दो विमल, दो वितत, दो वित्रस्त, दो विशाल, दो शाल, दो सुव्रत, दो अनिवृत्ति, दो एक-जटिन्, दो जटिन्, दो करकरिक, दो दोराजार्गल, दो पुष्पकेतु, दो भावकेतु, इन ८८ महाग्रहों ने चार (संचरण) किया था, चार करते हैं और चार करेंगे।

जम्बूद्वीप-वेदिका-पद

३२६—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

जम्बूदीप नामक द्वीप की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है।

लवण-समुद्र-पद

३२७—लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते। ३२८—लवणस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ (वलयाकार विस्तार) दो लाख योजन कहा गया है (३२७)। लवण समुद्र की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३२८)।

धातकीषण्ड-पद

३२९—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये है—दक्षिण में भरत और उत्तर में ऐरवत। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

३३०—एवं—जहा जंबुद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव दोसु वासेसु मणुया छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव, णवरं—कूडसामली चेव, धायईरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, सुदंसणे चेव।

इसी प्रकार जैसा जम्बू द्वीप के प्रकरण में वर्णन किया गया है, वैसा ही यहाँ पर भी कहना चाहिए, यावत् भरत और ऐरवत इन दोनों क्षेत्रों में मनुष्य छहों ही कालों के अनुभाव को अनुभव करते हुए विचरते हैं। विशेष इतना है कि यहाँ वृक्ष दो हैं—कूटशाल्मली और धातकी वृक्ष। कूट-शाल्मली वृक्ष पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव और धातकी वृक्ष पर सुदर्शन देव रहता है।

३३१—धायइसंडे दीवे पच्चत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता—बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये हैं—दक्षिण में भरत और उत्तर में ऐरवत। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

३३२—एवं—जहा जंबुद्दीवे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव, णवरं—कूडसामली चेव, महाधायईरुक्खे चेव। देवा गरुले चेव वेणुदेवे, पियदंसणे चेव।

इसी प्रकार जैसा जम्बूद्वीप के प्रकरण में वर्णन किया है, वैसा ही यहाँ पर भी कहना चाहिए, यावत् भरत और ऐरवत इन दोनों क्षेत्रों में मनुष्य छहों ही कालों के अनुभाव को अनुभव करते हुए विचरते हैं। विशेष इतना है कि यहां वृक्ष दो हैं—कूटशाल्मली और महाधातकी वृक्ष। कूट शाल्मली पर गरुडकुमार जाति का वेणुदेव और महाधातकी वृक्ष पर प्रियदर्शन देव रहता है।

३३३—धायइसंडे णं दीवे दो भरहाइं, दो एरवयाइं, दो हेमवयाइं, दो हेरण्णवयाइं, दो हरिवासाइं, दो रम्मगवासाइं, दो पुव्वविदेहाइं, दो अवरविदेहाइं, दो देवकुराओ, दो देवकुरुमहद्दुमा, दो देवकुरुमहद्दुमवासी देवा, दो उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरुमहद्दुमा, दो उत्तरकुरुमहद्दुमवासी देवा। ३३४—दो चुल्लहिमवंता, दो महाहिमवंता, दो णिसढा, दो णीलवंता, दो रुप्पी, दो सिहरी। ३३५—दो सद्दावाती, दो सद्दावातिवासी साती देवा, दो वियडावाती, दो वियडावातिवासी पभासा देवा, दो गंधावाती, दो गंधावातिवासी अरुणा देवा, दो मालवंतपरियागा, दो मालवंतपरियागवासी पउमा देवा।

धातकीखण्ड द्वीप में दो भरत, दो ऐरवत, दो हैमवत, दो हैरण्यवत, दो हरिवर्ष, दो रम्यक वर्ष, दो पूर्व विदेह, दो अपर विदेह, दो देवकुरु, दो देवकुरु-महाद्रुम, दो देवकुरु-महाद्रुमवासी देव, दो उत्तर कुरु, दो उत्तर कुरुमहाद्रुम और दो उत्तर कुरु महाद्रुमवासी देव कहे गये हैं (३३३)। वहाँ दो चुल्ल हिमवान्, दो महाहिमवान्, दो निषध, दो नीलवान्, दो रुक्मी और दो शिखरी वर्षधर पर्वत कहे गये हैं (३३४)। वहाँ दो शब्दापाती, दो शब्दापाति-वासी स्वाति देव, दो विकटापाती, दो विकटापातिवासी प्रभासदेव, दो गन्धापाती, दो गन्धापातिवासी अरुणदेव, दो माल्यवत्पर्याय, दो मालमवत्पर्यायवासी पद्मदेव, ये वृत्त वैताढ्य पर्वत और उन पर रहने वाले देव कहे गये हैं (३३५)।

३३६—दो मालवंता, दो चित्तकूडा, दो पम्हकूडा, दो णलिणकूडा, दो एगसेला, दो तिकूडा, दो वेसमणकूडा, दो अंजणा, दो मातंजणा, दो सोमणसा, दो विज्जुप्पभा, दो अंकावती, दो पम्हावती, दो आसीविसा, दो सुहावहा, दो चंदपव्वता, दो सूरपव्वता, दो णागपव्वता, दो देवपव्वता, दो गंधमायणा, दो उसुगारपव्वया, दो चुल्लहिमवंतकूडा, दो वेसमणकूडा, दो महाहिमवंतकूडा, दो वेरुलियकूडा, दो णिसढकूडा, दो रुयगकूडा दो णीलवंतकूडा, दो उवदंसणकूडा, दो रुप्पिकूडा, दो मणिकंचणकूडा, दो सिहरिकूडा, दो तिगिंछकूडा।

धातकीषण्ड द्वीप में दो माल्यवान्, दो चित्रकूट, दो पद्मकूट, दो नलिनकूट, दो एक शैल, दो त्रिकूट, दो वैश्रमण कूट, दो अंजन, दो मातांजन, दो सौमनस, दो विद्युत्प्रभ, दो अंकावती, दो पद्मावती, दो आसीविष, दो सुखावह, दो चन्द्रपर्वत, दो सूर्यपर्वत, दो नागपर्वत, दो देवपर्वत, दो गन्धमादन, दो इषुकार पर्वत, दो चुल्ल हिमवत्कूट, दो वैश्रमण कूट, दो महाहिमवत्कूट, दो वैडूर्यकूट, दो निषधकूट, दो रुचक कूट, दो नीलवत्कूट, दो उपदर्शनकूट, दो रुक्मिकूट, दो माणिकांचन-कूट, दो शिखरि कूट, दो तिगिंछ कूट कहे गये हैं।

३३७—दो पउमद्दहा, दो पउमद्दहवासिणीओ सिरीओ देवीओ, दो महापउमद्दहा, दो महापउमद्दहवासिणीओ हिरीओ देवीओ, एवं जाव दो पुंडरीयद्दहा, दो पोंडरीयद्दहवासिणीओ लच्छीओ देवीओ।

धातकीखण्ड द्वीप में दो पद्मद्रह, दो पद्मद्रहवासिनी श्रीदेवी, दो महापद्मद्रह, दो महापद्मद्रह-वासिनी ह्रीदेवी, इसी प्रकार यावत् (दो तिगिंछिद्रह, दो तिगिंछिद्रहवासिनी धृतिदेवी, दो केशरीद्रह, दो केशरीद्रहवासिनी कीर्त्तिदेवी, दो महापौण्डरीकद्रह, दो महापौण्डरीकद्रहवासिनी बुद्धिदेवी) दो पौण्डरीकद्रह, दो पौण्डरीकद्रहवासिनी लक्ष्मीदेवी कही गई हैं।

३३८—दो गंगप्पवायद्दहा जाव दो रत्तावतीपवातद्दहा।

धातकीखण्ड द्वीप में दो गंगाप्रपातद्रह, यावत् (दो सिन्धुप्रपातद्रह, दो रोहिताप्रपातद्रह, दो रोहितांशाप्रपातद्रह, दो हरितप्रपातद्रह, दो हरिकान्ताप्रपातद्रह, दो सीताप्रपातद्रह, दो सीतोदाप्रपातद्रह, दो नरकान्ताप्रपातद्रह, दो नारीकान्ताप्रपातद्रह, दो सुवर्णकूलाप्रपातद्रह, दो रूप्यकूलाप्रपातद्रह) दो रक्ताप्रपातद्रह) दो रक्तवतीप्रपातद्रह कहे गये हैं।

३३९—दो रोहियाओ जाव दो रुप्पकूलाओ, दो गाहवतीओ, दो दहवतीओ, दो पंकवतीओ, दो तत्तजलाओ, दो मत्तजलाओ, दो उम्मत्तजलाओ, दो खीरोयाओ, दो सीहसोताओ, दो अंतोवाहिणीओ, दो उम्मिमालिणीओ, दो फेणमालिणीओ, गंभीरमालिणीओ।

धातकीखण्ड द्वीप में दो रोहिता यावत् (दो हरिकान्ता, दो हरित्, दो सीतोदा, दो सीता, दो नारीकान्ता, दो नरकान्ता) दो रूप्यकूला, दो ग्राहवती, दो द्रहवती, दो पंकवती, दो तप्तजला, दो मत्तजला, दो उन्मत्तजला, दो क्षीरोदा, दो सिंहस्रोता, दो अन्तोमालिनी, दो उर्मिमालिनी, दो फेनमालिनी और दो गम्भीरमालिनी नदियाँ कही गई हैं।

विवेचन—यद्यपि धातकीखण्ड द्वीप के दो भरत क्षेत्रों में दो गंगा और दो सिन्धु नदियां भी हैं, तथा वहीं के दो ऐरवत क्षेत्रों में दो रक्ता और दो रक्तोदा नदियाँ भी हैं, किन्तु यहाँ पर सूत्र में उनका निर्देश नहीं किया गया है, इसका कारण टीकाकार ने यह बताया है कि जम्बूद्वीप के प्रकरण में कहे गये 'महाहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ' इत्यादि सूत्र २९० का आश्रय करने से यहां गंगा-सिन्धु आदि नदियों का उल्लेख नहीं किया गया है।

३४०—दो कच्छा, दो सुकच्छा, दो महाकच्छा, दो कच्छावती, दो आवत्ता, दो मंगलवत्ता, दो पुक्खला, दो पुक्खलावई, दो वच्छा, दो सुवच्छा, दो महावच्छा, दो वच्छगावती, दो रम्मा, दो रम्मगा, दो रमणिज्जा, दो मंगलावती, दो पम्हा, दो सुपम्हा, दो महपम्हा, दो पम्हगावती, दो संखा, दो णलिणा दो कुमुया, दो सलिलावती, दो वप्पा, दो सुवप्पा, दो महावप्पा, दो वप्पगावती दो वग्गू, दो सुवग्गू, दो गंधिला, दो गंधिलावती।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध-सम्बन्धी विदेहों में दो कच्छ, दो सुकच्छ, दो महाकच्छ, दो कच्छकावती, दो आवर्त, दो मंगलावर्त, दो पुष्कल, दो पुष्कलावती, दो वत्स, दो सुवत्स, दो महावत्स, दो वत्सकावती, दो रम्य, दो रम्यक, दो रमणीय, दो मंगलावती, दो पक्ष्म, दो सुपक्ष्म, दो महापक्ष्म, दो पक्ष्मकावती, दो शंख, दो नलिन, दो कुमुद, दो सलिलावती, दो वप्र,

सुवप्र, दो महावप्र, दो वप्रकावती, दो वल्गु, दो सुवल्गु, दो गन्धिल और दो गन्धिलावती ये बत्तीस विजय क्षेत्र हैं।

३४१—दो खेमाओ, दो खेमपुरीओ, दो रिट्ठाओ, दो रिट्ठपुरीओ, दो खग्गीओ, दो मंजूसाओ, दो ओसधीओ, दो पोंडरिगिणीओ, दो सुसीमाओ, दो कुंडलाओ, दो अपराजियाओ, दो पभंकराओ, दो अंकावईओ, दो पम्हावईओ, दो सुभाओ, दो रयणसंचयाओ, दो आसपुराओ, दो सीहपुराओ, दो महापुराओ, दो विजयपुराओ, दो अवराजिताओ, दो अवराओ, दो असोयाओ, दो विगयसोगाओ, दो विजयाओ, दो वेजयंतीओ, दो जयंतीओ, दो अपराजियाओ, दो चक्कपुराओ, दो खग्गपुराओ, दो अवज्झाओ, दो अउज्झाओ।

उपर्युक्त बत्तीस विजयक्षेत्रों में दो क्षेमा, दो क्षेमपुरी, दो रिष्टा, दो रिष्टपुरी, दो खड्गी, दो मंजूषा, दो औषधी, दो पौण्डरीकिणी, दो सुसीमा, दो कुण्डला, दो अपराजिता, दो प्रभंकरा, दो अंकावती, दो पक्ष्मावती, दो शुभा, दो रत्नसंचया, दो अश्वपुरी, दो सिंहपुरी, दो महापुरी, दो विजयपुरी, दो अपराजिता, दो अपरा, दो अशोका, दो विगतशोका, दो विजया, दो वैजयन्ती, दो जयन्ती, दो अपराजिता, दो चक्रपुरी, दो खड्गपुरी, दो अवध्या और दो अयोध्या, ये बत्तीस नगरियाँ हैं (३४१)।

३४२—दो भद्दसालवणा, दो णंदणवणा, दो सोमणसवणा, दो पंडगवणाइं।

धातकीषण्ड द्वीप में दो मन्दरगिरियों पर दो भद्रशालवन, दो नन्दनवन, दो सौमनस वन और दो पण्डक वन हैं (३४२)।

३४३—दो पंडुकंबलसिलाओ, दो अतिपंडुकंबलसिलाओ, दो रत्तकंबलसिलाओ, दो अइरत्तकंबलसिलाओ।

उक्त दोनों पण्डक वनों में दो पाण्डुकम्बल शिला, दो अतिपाण्डुकम्बलशिला, दो रक्तकम्बल शिला और दो अतिरक्तकम्बल शिला (क्रम से चारों दिशाओं में अवस्थित) हैं (३४३)।

३४४—दो मंदरा, दो मंदरचूलिआओ। ३४५—धायइसंडस्स णं दीवस्स वेदिया दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता। ३४६—कालोदस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

धातकीषण्ड द्वीप में दो मन्दर गिरि हैं और उनकी दो मन्दरचूलिकाएँ हैं।

धातकीषण्ड द्वीप की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३४५)। कालोद समुद्र की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३४६)।

पुष्करवर-पद

३४७—पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव तं जहा—भरहे चेव, एरवए चेव।

अर्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये हैं—दक्षिण में भरत और उत्तर में ऐरवत। वे दोनों क्षेत्र-प्रमाण की दृष्टि से सर्वथा सदृश हैं, यावत् आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा वे एक दूसरे का अतिक्रमण नहीं करते हैं (३४७)।

३४८—तहेव जाव दो कुराओ पण्णत्ताओ—देवकुरा चेव, उत्तरकुरा चेव।

तत्थ णं दो महतिमहालया महद्दुमा पण्णत्ता, तं जहा—कूडसामली चेव, पउमरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पउमे चेव जाव छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

तथैव यावत् (जम्बूद्वीप के प्रकरण में कहे गये सूत्र २६९-२७१ का सर्व वर्णन यहां वक्तव्य है) दो कुरु कहे गये हैं। वहाँ दो महातिमहान् महाद्रुम कहे गये हैं—कूटशाल्मली और पद्मवृक्ष। उनमें से कूटशाल्मली वृक्ष पर गरुडजाति का वेणुदेव और पद्मवृक्ष पर पद्मदेव रहता है। (यहां पर जम्बूद्वीप के समान सर्व वर्णन वक्तव्य है।) यावत् भरत और ऐरवत इन दोनों क्षेत्रों में मनुष्य छहों ही कालों के अनुभाव को अनुभव करते हुए विचरते हैं (३४८)।

३४९—पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तर-दाहिणे णं दो वासा पण्णत्ता। तहेव णाणत्तं—कूडसामली चेव, महापउमरुक्खे चेव। देवा—गरुले चेव वेणुदेवे, पुंडरीए चेव।

अर्धपुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्ध में मन्दर पर्वत के उत्तर-दक्षिण में दो क्षेत्र कहे गये हैं—दक्षिण में भरत और उत्तर में ऐरवत। उनमें (आयाम, विष्कम्भ, संस्थान और परिधि की अपेक्षा) कोई नानात्व नहीं है। विशेष इतना ही है कि यहां दो विशाल द्रुम हैं—कूटशाल्मली और महापद्म। इनमें से कूटशाल्मली वृक्ष पर गरुडजाति का वेणुदेव और महापद्मवृक्ष पर पुण्डरीक देव रहता है (३४९)।

३५०—पुक्खरवरदीवड्ढे णं दीवे दो भरहाइं, दो एरवयाइं जाव दो मंदरा, दो मंदरचूलियाओ।

अर्धपुष्करवर द्वीप में दो भरत, दो ऐरवत से लेकर यावत्, और दो मन्दर, और दो मन्दरचूलिका तक सभी दो-दो हैं (३५०)।

वेदिका-पद

३५१—पुक्खरवरस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता। ३५२—सव्वेसिंपि णं दीवसमुद्दाणं वेदियाओ दो गाउयाइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ताओ।

पुष्करवर द्वीप की वेदिका दो कोश ऊंची कही गई है (३५१)। सभी द्वीपों और समुद्रों की वेदिकाएँ दो-दो कोश ऊंची कही गई हैं (३५२)।

इन्द्र-पद

३५३—दो असुरकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—चमरे चेव, बली चेव। ३५४—दो णागकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—धरणे चेव, भूयाणंदे चेव। ३५५—दो सुवण्णकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—वेणुदेवे चेव, वेणुदाली चेव। ३५६—दो विज्जुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—हरिच्चेव, हरिस्सहे चेव। ३५७—दो अग्गिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अग्गिसिहे चेव, अग्गिमाणवे चेव। ३५८—दो दीवकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे चेव, विसिट्ठे चेव। ३५९—दो उदहिकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—जलकंते चेव, जलप्पभे चेव। ३६०—दो दिसाकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अमियगती चेव,

अमितवाहणे चेव। ३६१—दो वायुकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—वेलंबे चेव, पभंजणे चेव। ३६२—दो थणियकुमारिंदा पण्णत्ता, तं जहा—घोसे चेव, महाघोसे चेव।

असुरकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—चमर और बली (३५३)। नागकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—धरण और भूतानन्द (३५४)। सुपर्णकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—वेणुदेव और वेणुदाली (३५५)। विद्युत्कुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—हरि और हरिस्सह (३५६)। अग्निकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—अग्निशिख और अग्निमानव (३५७)। द्वीपकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—पूर्ण और विशिष्ट (३५८)। उदधिकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—जलकान्त और जलप्रभ (३५९)। दिशाकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—अमितगति और अमितवाहन (३६०)। वायुकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—वेलम्ब और प्रभंजन (३६१)। स्तनितकुमारों के दो इन्द्र कहे गये हैं—घोष और महाघोष (३६२)।

३६३—दो पिसाइंदा पण्णत्ता, तं जहा—काले चेव, महाकाले चेव। ३६४—दो भूइंदा पण्णत्ता, तं जहा—सुरूवे चेव, पडिरूवे चेव। ३६५—दो जक्खिदा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णभद्दे चेव, माणिभद्दे चेव। ३६६—दो रक्खसिंदा पण्णत्ता, तं जहा—भीमे चेव, महाभीमे चेव। ३६७—दो किण्णरिंदा पण्णत्ता, तं जहा—किण्णरे चेव, किंपुरिसे चेव। ३६८—दो किंपुरिसिंदा पण्णत्ता, तं जहा—सप्पुरिसे चेव, महापुरिसे चेव। ३६९—दो महोरगिंदा पण्णत्ता, तं जहा—अतिकाए चेव, महाकाए चेव। ३७०—दो गंधव्विंदा पण्णत्ता, तं जहा—गीतरती चेव, गीयजसे चेव।

पिशाचों के दो इन्द्र कहे गये हैं—काल और महाकाल (३६३)। भूतों के दो इन्द्र कहे गये हैं—सुरूप और प्रतिरूप (३६४)। यक्षों के दो इन्द्र कहे गये हैं—पूर्णभद्र और माणिभद्र (३६५)। राक्षसों के दो इन्द्र कहे गये हैं—भीम और महाभीम (३६६)। किन्नरों के दो इन्द्र कहे गये हैं—किन्नर और किम्पुरुष (३६७)। किम्पुरुषों के दो इन्द्र कहे गये हैं—सत्पुरुष और महापुरुष (३६८)। महोरगों के दो इन्द्र कहे गये हैं—अतिकाय और महाकाय (३६९)। गन्धर्वों के दो इन्द्र कहे गये हैं—गीतरति और गीतयश (३७०)।

३७१—दो अणपण्णिदा पण्णत्ता, तं जहा—सण्णिहिए चेव, सामण्णे चेव। ३७२—दो पणपण्णिदा पण्णत्ता, तं जहा—धाए चेव, विहाए चेव। ३७३—दो इसिवाइंदा पण्णत्ता, तं जहा—इसिच्चेव इसिवालए चेव। ३७४—दो भूतवाइंदा पण्णत्ता, तं जहा—इस्सरे चेव, महिस्सरे चेव। ३७५—दो कंदिदा पण्णत्ता, तं जहा—सुवच्छे चेव, विसाले चेव। ३७६—दो महाकंदिदा पण्णत्ता, तं जहा—हस्से चेव, हस्सरती चेव। ३७७—दो कुंभंडिदा पण्णत्ता, तं जहा—सेए चेव, महासेए चेव। ३७८—दो पतइंदा पण्णत्ता, तं जहा—पत्तए चेव, पतयवई चेव।

अणपन्नों के दो इन्द्र कहे गये हैं—सन्निहित और सामान्य (३७१)। पणपन्नों के दो इन्द्र कहे गये हैं—धाता और विधाता (३७२)। ऋषिवादियों के दो इन्द्र कहे गये हैं—ऋषि और ऋषिपालक (३७३)। भूतवादियों के दो इन्द्र कहे गये हैं—ईश्वर और महेश्वर (३७४)। स्कन्दकों के दो इन्द्र कहे गये हैं—सुवत्स और विशाल (३७५)। महास्कन्दकों के दो इन्द्र कहे गये हैं—हास्य और हास्यरति (३७६)। कूष्माण्डकों के दो इन्द्र कहे गये हैं—श्वेत और महाश्वेत (३७७)। पतगों के दो इन्द्र कहे गये हैं—पतग और पतगपति (३७८)।

३७९—जोइसियाणं देवाणं दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—चंदे चेव, सूरे च्चेव।

ज्योतिष्कों के दो इन्द्र कहे गये हैं—चन्द्र और सूर्य (३७९)।

३८०—सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—सक्के चेव, ईसाणे चेव।
३८१—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—सणंकुमारे चेव, माहिंदे चेव।
३८२—बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—बंभे चेव, लंतए चेव।
३८३ - महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा— महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव।
३८४—आणत-पाणत-आरण-अच्चुतेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—पाणते चेव, अच्चुते चेव।

सौधर्म और ईशान कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—शक्र और ईशान (३८०)। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—सनत्कुमार और माहेन्द्र (३८१)। ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—ब्रह्म और लान्तक (३८२)। महाशुक्र और सहस्रार कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—महाशुक्र और सहस्रार (३८३)। आनत और प्राणत तथा आरण और अच्युत कल्पों के दो इन्द्र कहे गये हैं— प्राणत और अच्युत (३८४)।

विमान-पद

३८५—महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा दुवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—'हालिद्दा चेव, सुक्किल्ला' चेव।

महाशुक्र और सहस्रार कल्प में विमान दो वर्ण के कहे गये हैं—हारिद्र-(पीत-) वर्ण और शुक्ल वर्ण।

देव-पद

३८६—गेविज्जगा णं देवा दो रयणीओ उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ग्रैवेयक विमानों के देवों की ऊंचाई दो रत्नि कही गई है।

द्वितीय स्थान का तृतीय उद्देश समाप्त

द्वितीय स्थान

चतुर्थ उद्देश

जीवाजीव-पद

३८७—समयाति वा आवलियाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति। ३८८—आणापाणूति वा थोवेति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति। ३८९—खणाति वा लवाति वा जीवाति या आजीवाति या पवुच्चति। एवं—मुहुत्ताति वा अहोरत्ताति वा पक्खाति वा मासाति वा उडूति वा अयणाति वा संवच्छराति वा जुगाति वा वाससयाति वा वाससहस्साइ वा वाससतसहस्साइ वा वासकोडीइ वा पुव्वंगाति वा पुव्वाति वा तुडियंगाति वा तुडियाति वा अडडंगाति वा अड़डाति वा अववंगाति वा अववाति वा हूहूअंगाति वा हूहूयाति वा उप्पलंगाति वा उप्पलाति वा पउमंगाति वा पउमाति वा णलिणंगाति वा णलिणालि वा अत्थणिकुरंगाति वा अत्थणिकुराति वा अउअंगाति वा अउआति वा णउअंगाति वा णउआति वा पउतंगाति वा पउताति वा चूलियंगाति वा चूलियाति वा सीसपहेलियंगाति वा सीसपहेलियाति वा पलिओवमाति वा सागरोवमाति वा ओसप्पिणीति वा उस्सप्पिणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

समय और आवलिका, ये जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं (३८७)। आन-प्राण और स्तोक, ये जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं (३८८)। क्षण और लव, ये जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं। इसी प्रकार मुहूर्त और अहोरात्र, पक्ष और मास, ऋतु और अयन, संवत्सर और युग, वर्षशत और वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र और वर्षकोटि, पूर्वांग और पूर्व, त्रुटितांग और त्रुटित, अटटांग और अटट, अववांग और अवव, हूहूकांग और हूहूक, उत्पलांग और उत्पल, पद्मांग और पद्म, नलिनांग और नलिन, अर्थनिकुरांग और अर्थनिकुर, अयुतांग और अयुत, नयुतांग और नयुत, प्रयुतांग णौर प्रयुत, चूलिकांग और चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्ष-प्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, ये सभी जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं (३८९)।

विवेचन—यद्यपि काल को एक स्वतंत्र द्रव्य माना गया है, तो भी वह चेतन जीवों के पर्याय-परिवर्त्तन में सहकारी है, अतः उसे यहाँ पर जीव कहा गया है और अचेतन पुद्गलादि द्रव्यों के परिवर्तन में सहकारी होता है, अतः उसे अजीव कहा गया है। काल के सबसे सूक्ष्म अभेद्य और निरवयव अंश को 'समय' कहते हैं। असंख्यात समयों के समुदाय को 'आवलिका' कहते हैं। यह क्षुद्रभवग्रहण काल के दो सौ छप्पन (२५६) वें भाग-प्रमाण होती है। संख्यात आवलिका प्रमाण काल को 'आन-प्राण' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम उच्छ्वास-निःश्वास है। हृष्ट-पुष्ट, नीरोग, स्वस्थ व्यक्ति को एक वार श्वास लेने और छोड़ने में जो काल लगता है, उसे आन-प्राण कहते हैं। सात आन-प्राण बराबर एक स्तोक, सात स्तोक बराबर एक लव और सतहत्तर लव या ३७७३ आन-प्राण के बराबर एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र (दिन-रात), १५ अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, २ मास की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन, दो अयन का एक

३७९—जोइसियाणं देवाणं दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—चंदे चेव, सूरे चेव।

ज्योतिष्कों के दो इन्द्र कहे गये हैं—चन्द्र और सूर्य (३७९)।

३८०—सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—सक्के चेव, ईसाणे चेव। ३८१—सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—सणंकुमारे चेव, माहिंदे चेव। ३८२—बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—बंभे चेव, लंतए चेव। ३८३ - महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा - महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव। ३८४—आणत-पाणत-आरण-अच्चुतेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—पाणते चेव, अच्चुते चेव।

सौधर्म और ईशान कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—शक्र और ईशान (३८०)। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—सनत्कुमार और माहेन्द्र (३८१)। ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—ब्रह्म और लान्तक (३८२)। महाशुक्र और सहस्रार कल्प के दो इन्द्र कहे गये हैं—महाशुक्र और सहस्रार (३८३)। आनत और प्राणत तथा आरण और अच्युत कल्पों के दो इन्द्र कहे गये हैं— प्राणत और अच्युत (३८४)।

विमान-पद

३८५—महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा दुवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—'हालिद्दा चेव, सुक्किल्ला' चेव।

महाशुक्र और सहस्रार कल्प में विमान दो वर्ण के कहे गये हैं—हारिद्र-(पीत-) वर्ण और शुक्ल वर्ण।

देव-पद

३८६—गेविज्जगा णं देवा दो रयणीओ उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ग्रैवेयक विमानों के देवों की ऊंचाई दो रत्नि कही गई है।

द्वितीय स्थान का तृतीय उद्देश समाप्त

द्वितीय स्थान

चतुर्थ उद्देश

जीवाजीव-पद

३८७—समयाति वा आवलियाति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति। ३८८—आणापाणूति वा थोवेति वा जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति। ३८९—खणाति वा लवाति वा जीवाति या आजीवाति या पवुच्चति। एवं—मुहुत्ताति वा अहोरत्ताति वा पक्खाति वा मासाति वा उडूति वा अयणाति वा संवच्छराति वा जुगाति वा वाससयाति वा वाससहस्साइ वा वाससतसहस्साइ वा वासकोडीइ वा पुव्वंगाति वा पुव्वाति वा तुडियंगाति वा तुडियाति वा अडडंगाति वा अडडाति वा अववंगाति वा अववाति वा हूहूअंगाति वा हूहूयाति वा उप्पलंगाति वा उप्पलाति वा पउमंगाति वा पउमाति वा णलिणंगाति वा णलिणाति वा अत्थणिकुरंगाति वा अत्थणिकुराति वा अउअंगाति वा अउआति वा णउअंगाति वा णउआति वा पउतंगाति वा पउताति वा चूलियंगाति वा चूलियाति वा सीसपहेलियंगाति वा सीसपहेलियाति वा पलिओवमाति वा सागरोवमाति वा ओसप्पिणीति वा उस्सप्पिणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

समय और आवलिका, ये जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं (३८७)। आन-प्राण और स्तोक, ये जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं (३८८)। क्षण और लव, ये जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं। इसी प्रकार मुहूर्त और अहोरात्र, पक्ष और मास, ऋतु और अयन, संवत्सर और युग, वर्षशत और वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र और वर्षकोटि, पूर्वांग और पूर्व, त्रुटितांग और त्रुटित, अटटांग और अटट, अववांग और अवव, हूहूकांग और हूहूक, उत्पलांग और उत्पल, पद्मांग और पद्म, नलिनांग और नलिन, अर्थनिकुरांग और अर्थनिकुर, अयुतांग और अयुत, नयुतांग और नयुत, प्रयुतांग णौर प्रयुत, चूलिकांग और चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्ष-प्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी, ये सभी जीव भी कहे जाते हैं और अजीव भी कहे जाते हैं (३८९)।

विवेचन—यद्यपि काल को एक स्वतंत्र द्रव्य माना गया है, तो भी वह चेतन जीवों के पर्याय-परिवर्त्तन में सहकारी है, अतः उसे यहाँ पर जीव कहा गया है और अचेतन पुद्‌गलादि द्रव्यों के परिवर्तन में सहकारी होता है, अतः उसे अजीव कहा गया है। काल के सबसे सूक्ष्म अभेद्य और निरवयव अंश को 'समय' कहते हैं। असंख्यात समयों के समुदाय को 'आवलिका' कहते हैं। यह क्षुद्रभवग्रहण काल के दो सौ छप्पन (२५६) वें भाग-प्रमाण होती है। संख्यात आवलिका प्रमाण काल को 'आन-प्राण' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम उच्छ्वास-निःश्वास है। हृष्ट-पुष्ट, नीरोग, स्वस्थ व्यक्ति को एक वार श्वास लेने और छोड़ने में जो काल लगता है, उसे आन-प्राण कहते हैं। सात आन-प्राण बरावर एक स्तोक, सात स्तोक बराबर एक लव और सतहत्तर लव या ३७७३ आन-प्राण के बरावर एक मुहूर्त होता है। ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र (दिन-रात), १५ अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, २ मास की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन, दो अयन का एक

संवत्सर (वर्ष), पाँच संवत्सर का एक युग, बीस युग का एक शतवर्ष, दश शतवर्षों का सहस्र वर्ष और सौ सहस्र वर्षों का एक शतसहस्र या लाख वर्ष होता है। ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वांग और ८४ लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है। आगे की सब संख्याओं का ८४-८४ लाख से गुणित करते हुए शीर्षप्रहेलिका तक ले जाना चाहिए। शीर्षप्रहेलिका में ५४ अंक और १४० शून्य होते हैं। यह सबसे बड़ी संख्या मानी गई है।

शीर्षप्रहेलिका के अंकों की उक्त संख्या स्थानांग के अनुसार है। किन्तु वीरनिर्वाण के ८४० वर्ष के बाद जो वलभी वाचना हुई, इसमें शीर्षप्रहेलिका की संख्या २५० अंक प्रमाण होने का उल्लेख ज्योतिष्करंड में मिलता है। तथा उसमें नलिनांग और नलिन संख्याओं से आगे महानलिनांग, महानलिन आदि अनेक संख्याओं का भी निर्देश किया गया है।

शीर्षप्रहेलिका की अंक-राशि चाहे १९४ अंक-प्रमाण हो, अथवा २५० अंक-प्रमाण हो, पर गणना के नामों में शीर्षप्रहेलिका को ही अन्तिम स्थान प्राप्त है। यद्यपि शीर्षप्रहेलिका से भी आगे संख्यात काल पाया जाता है, तो भी सामान्य ज्ञानी के व्यवहार-योग्य शीर्षप्रहेलिका ही मानी गई है। इससे आगे के काल को उपमा के माध्यम से वर्णन किया गया है। पल्य नाम गड्ढे का है। एक योजन लम्बे चौड़े और गहरे गड्ढे को मेष के अति सूक्ष्म रोमों को कैंची से काटकर भरने के बाद एक-एक रोम को सौ-सौ वर्षों के बाद निकालने में जितना समय लगता है, उतने काल को एक पल्योपम कहते हैं। यह असंख्यात कोड़ाकोड़ी वर्षप्रमाण होता है। दश कोड़ाकोड़ी पल्योपमों का एक सागरोपम होता है। दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल की एक उत्सर्पिणी होती है और अवसर्पिणी भी दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होती है।

शीर्षप्रहेलिका तक के काल का व्यवहार संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले प्रथम पृथ्वी के नारक, भवनपति और व्यन्तर देवों के, तथा भरत और ऐरवत क्षेत्र में सुषम-दुःषमा आरे के अन्तिम भाग में होने वाले मनुष्यों और तिर्यंचों के आयुष्य का प्रमाण बताने के लिए किया जाता है। इससे ऊपर असंख्यात वर्षों की आयुष्य वाले देव नारक और मनुष्य, तिर्यंचों के आयुष्य का प्रमाण पल्योपम से और उससे आगे के आयुष्य वाले देव-नारकों का आयुष्यप्रमाण सागरोपम से निरूपण किया जाता है।

३९०—गामाति वा णगराति वा णिगमाति वा रायहाणीति वा खेडाति वा कब्बडाति वा मडंबाति वा दोणमुहाति वा पट्टणाति वा आगराति वा आसमाति वा संबाहाति वा सण्णिवेसाइ वा घोसाइ वा आरामाइ वा उज्जाणाति वा वणाति वा वणसंडाति वा वावीति वा पुक्खरणीति वा सराति वा सरपंतीति वा अगडाति वा तलागाति वा दहाति वा णदीति वा पुढवीति वा उदहीति वा वातखंधाति वा उवासंतराति वा वलयाति वा विग्गहाति वा दीवाति वा समुद्दाति वा वेलाति वा वेइयाति वा दाराति वा तोरणाति वा णेरइयाति वा णेरइयावासाति वा जाव वेमाणियाति वा वेमाणियावासाति वा कप्पाति वा कप्पविमाणावासाति वा वासाति वा वासधरपव्वताति वा कूडाति वा कूडागाराति वा विजयाति वा रायहाणीति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

ग्राम और नगर, निगम और राजधानी, खेट और कर्वट, मडंब और द्रोणमुख, पत्तन और आकर, आश्रम और संवाह, सन्निवेश और घोष, आराम और उद्यान, वन और वनषण्ड, वापी

और पुष्करिणी, सर और सरपंक्ति, कूप और तालाव, ह्रद और नदी, पृथ्वी और उदधि, वातस्कन्ध और अवकाशान्तर, वलय और विग्रह, द्वीप और समुद्र, वेला और वेदिका, द्वार और तोरण, नारक और नारकावास, तथा वैमानिक तक के सभी दण्डक और उनके आवास, कल्प और कल्पविमानावास, वर्ष और वर्षधर पर्वत, कूट और कूटागार, विजय और राजधानी, ये सभी जीव और अजीव कहे जाते हैं (३९०)।

विवेचन—ग्राम, नगरादि में रहने वाले जीवों की अपेक्षा उनको जीव कहा गया है और ये ग्राम, नगरादि मिट्टी, पाषाणादि अचेतन पदार्थों से बनाये जाते हैं, अतः उन्हें अजीव भी कहा गया है। ग्राम आदि का अर्थ इस प्रकार है—जहाँ प्रवेश करने पर कर लगता हो, जिसके चारों ओर काँटों की बाढ़ हो, अथवा मिट्टी का परकोटा हो और जहां किसान लोग रहते हों, उसे ग्राम कहते हैं। जहां रहने वालों को कर न लगता हो, ऐसी अधिक जनसंख्या वाली वसतियों को नगर कहते हैं। जहां पर व्यापार करने वाले वणिक् लोग अधिकता से रहते हों, उसे निगम कहते हैं। जहां राजाओं का राज्याभिषेक किया जावे, जहां उनका निवास हो, ऐसे नगर-विशेषों को राजधानी कहते हैं। जिस वसति के चारों ओर धूलि का प्राकार हो, उसे खेट कहते हैं। जहां वस्तुओं का क्रय-विक्रय न होता हो और जहां अनैतिक व्यवसाय होता हो ऐसे छोटे कुनगर को कर्वट कहते हैं। जिस वसति के चारों ओर आधे या एक योजन तक कोई ग्राम न हो उसे मडम्ब कहते हैं। जहां पर जल और स्थल दोनों से जाने-आने का मार्ग हो, उसे द्रोणमुख कहते हैं। पत्तन दो प्रकार के होते हैं—जलपत्तन और स्थलपत्तन। जल-मध्यवर्ती द्वीप को जलपत्तन कहते हैं और निर्जल भूमिभाग वाले पत्तन को स्थलपत्तन कहते हैं। जहां सोना, लोहा आदि खाने हों और उनमें काम करने वाले मजदूर रहते हों उसे आकर कहते हैं। तापसों के निवास-स्थान को, तथा तीर्थस्थान को आश्रम कहते हैं। समतल भूमि पर खेती करके धान्य की रक्षा के लिए जिस ऊंची भूमि पर उसे रखा जावे ऐसे स्थानों को संवाह कहते हैं। जहाँ दूर-दूर तक के देशों में व्यापार करने वाले सार्थवाह रहते हों, उसे सन्निवेश कहते हैं। जहां दूध-दही के उत्पन्न करने वाले घोषी, गुवाले आदि रहते हों, उसे घोष कहते हैं।

जहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लताएं हों, केले आदि से ढके हुए घर हों और जहाँ पर नगर-निवासी लोग जाकर मनोरंजन करें, ऐसे नगर के समीपवर्ती बगीचों को आराम कहते हैं। पत्र, पुष्प, फल, छायादिवाले वृक्षों से शोभित जिस स्थान पर लोग विशेष अवसरों पर जाकर खान-पान आदि गोष्ठी का आयोजन करें, उसे उद्यान कहते हैं। जहाँ एक जाति के वृक्ष हों, उसे वन कहते हैं। जहां अनेक जाति के वृक्ष हों, उसे वनखण्ड कहते हैं।

चार कोण वाले जलाशय को वापी कहते हैं। गोलाकार निर्मित जलाशय को पुष्करिणी कहते हैं अथवा जिससे कमल खिलते हों, उसे पुष्करिणी कहते हैं। ऊंची भूमि के आश्रय से स्वयं बने हुए जलाशय को सर या सरोवर कहते हैं। अनेक सरोवरों की पंक्ति को सर-पंक्ति कहते हैं। कूप (कुआं) को अवट या अगड कहते हैं। मनुष्यों के द्वारा भूमि खोद कर बनाये गये जलाशय को तडाग या तालाब कहते हैं। हिमवान् आदि पर्वतों पर अकृत्रिम बने सरोवरों को द्रह (ह्रद) कहते हैं। अथवा नदियों के नीचले भाग में जहां जल गहरा भरा हो ऐसे स्थानों को भी द्रह कहते हैं।

घनवात, तनुवात आदि वातों के स्कन्ध को वातस्कन्ध कहते हैं। घनवात आदि वातस्कन्धों के नीचे वाले आकाश को अवकाशान्तर कहते हैं। लोक के सर्व ओर वेष्टित वातों के समूह को वलय या वातवलय कहते हैं। लोकनाडी के भीतर गति के मोड़ को विग्रह कहते हैं। समुद्र के जल की वृद्धि को वेला कहते हैं। द्वीप या समुद्र के चारों ओर की सहज-निर्मित भित्ति को वेदिका कहते हैं। द्वीप, समुद्र और नगरादि में प्रवेश करने वाले मार्ग को द्वार कहते हैं। द्वारों के आगे बने हुए अर्धचन्द्राकार मेहरावों को तोरण कहते हैं।

नारकों के निवासस्थान को नारकावास कहते हैं। वैमानिक देवों के निवासस्थान को वैमानिकावास कहते हैं। भरत आदि क्षेत्रों को वर्ष कहते हैं। हिमवान् आदि पर्वतों को वर्षधर कहते हैं। पर्वतों की शिखरों को कूट कहते हैं। कूटों पर निर्मित भवनों को कूटागार कहते हैं। महाविदेह के क्षेत्रों को विजय कहते हैं जो कि वहाँ के चक्रवर्त्तियों के द्वारा जीते जाते हैं। राजा के द्वारा शासित नगरी को राजधानी कहते हैं।

ये सभी उपर्युक्त स्थान जीव और अजीव दोनों से व्याप्त होते हैं, इसलिए इन्हें जीव भी कहा जाता है और अजीव भी कहा जाता है।

३९१—छायाति वा आतवाति वा दोसिणाति वा अंधकाराति वा ओमाणाति वा उम्माणाति वा अतियाणगिहाति वा उज्जाणगिहाति वा अवलिंबाति वा सणिप्पवाताति वा—जीवाति या अजीवाति या पवुच्चति।

छाया और आतप, ज्योत्स्ना और अन्धकार, अवमान और उन्मान, अतियानगृह और उद्यान गृह, अवलिम्ब और सनिष्प्रवात, ये सभी जीव और अजीव दोनों कहे जाते हैं (३९१)।

विवेचन—वृक्षादि के द्वारा सूर्य-ताप के निवारण को छाया कहते हैं। सूर्य के उष्ण प्रकाश को आतप कहते हैं। चन्द्र की शीतल चांदनी को ज्योत्स्ना कहते हैं। प्रकाश के अभाव को अन्धकार कहते हैं। हाथ, गज आदि के माप को अवमान कहते हैं। तुला आदि से तौलने के मान को उन्मान कहते हैं। नगरादि के प्रवेशद्वार पर जो धर्मशाला, सराय या गृह होते है उन्हें अतियान-गृह कहते हैं। उद्यानों में निर्मित गृहों को उद्यानगृह कहते हैं।

'अवलिबा' और **सणिप्पवाया'** इन दोनों का संस्कृत टीकाकार ने कोई अर्थ न करके लिखा है कि इनका अर्थ रूढि से जानना चाहिए। मुनि नथमल जी ने इन की विवेचना करते हुए लिखा है कि **'अवलिंब'** का दूसरा प्राकृत रूप **'ओलिंब'** हो सकता है। दीमक का एक नाम 'ओलिभा' है। यदि वर्ण-परिवर्तन माना जाय, तो 'अवलिंब' का अर्थ दीमक का डूह हो सकता है। और यदि पाठ-परिवर्तन की संभावना मानी जाय तो **'ओलिंद'** पाठ की कल्पना की सकती हैं, जिसका अर्थ होगा-बाहिर के दरवाजे का प्रकोष्ठ। अतियानगृह और उद्यानगृह के अनन्तर प्रकोष्ठ का उल्लेख प्रकरण-संगत भी है।

'सणिप्पवाय' के संस्कृत रूप दो किये जा सकते हैं—शनैःप्रपात और सनिष्प्रपात। शनैः प्रपात का अर्थ धीमी गति से गिरने वाला झरना और सनिष्प्रताप का अर्थ भीतर का प्रकोष्ठ (अपवरक) होता है। प्रकरण-संगति की दृष्टि से यहाँ सनिष्प्रपात अर्थ ही होना चाहिए।

सूत्रोक्त छाया आतप आदि जीवों से सम्बन्ध रखने के कारण जीव और पुद्गलों की पर्याय होने के कारण अजीव कहे गये हैं।

३९२—दो रासी पण्णत्ता, तं जहा—जीवरासी चेव, अजीवरासी चेव।

राशि दो प्रकार की कही गई है—जीवराशि और अजीवराशि (३९२)।

कर्म-पद

३९३—दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—पेज्जबंधे चेव, दोसबंधे चेव। ३९४—जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं बंधंति, तं जहा—रागेण चेव, दोसेण चेव। ३९५—जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं उदीरेंति, तं जहा—अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए। ३९६—जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं वेदेंति, तं जहा—अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए। ३९७—जीवा णं दोहिं ठाणेहिं पावं कम्मं णिज्जरेंति, तं जहा—अब्भोवगमियाए चेव वेयणाए, उवक्कमियाए चेव वेयणाए।

बन्ध दो प्रकार का कहा गया है—प्रेयोबन्ध और द्वेषबन्ध (३९३)। जीव दो स्थानों से पाप कर्म का बन्ध करते हैं—राग से और द्वेष से (३९४)। जीव दो स्थानों से पाप-कर्म की उदीरणा करते हैं—आभ्युपगमिकी वेदना से और औपक्रमिकी वेदना से (३९५)। जीव दो स्थानों से पाप-कर्म का वेदन करते हैं—आभ्युपगमिकी वेदना से और औपक्रमिकी वेदना से (३९६)। जीव दो स्थानों से पाप कर्म की निर्जरा करते हैं-आभ्युगमिकी वेदना से और औपक्रमिकी वेदना से (३९७)।

विवेचन—कर्म-फल के अनुभव करने को वेदन या वेदना कहते हैं। वह दो प्रकार की होती है—आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी। अभ्युपगम का अर्थ है—स्वयं स्वीकार करना। तपस्या किसी कर्म के उदय से नहीं होती, किन्तु युक्ति-पूर्वक स्वयं स्वीकार की जाती है। तपस्या-काल में जो वेदना होती है, उसे आभ्युपगमिकी वेदना कहते हैं। उपक्रम का अर्थ है—कर्म की उदीरणा का कारण। शरीर में उत्पन्न होने वाले रोगादि की वेदना को औपक्रमिकी वेदना कहते हैं। दोनों प्रकार की वेदना निर्जरा का कारण है। जीव राग और द्वेष के द्वारा जो कर्मबन्ध करता है, उसका उदय, उदीरणा या निर्जरा उक्त दो प्रकारों से होती है।

आत्म-निर्याण-पद

३९८—दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाति, तं जहा—देसेणवि आता सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरगं फुसित्ता णं णिज्जाति। ३९९—दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं फुरित्ता णं णिज्जाति, तं जहा—देसेणवि आता सरीरं फुरित्ता णं णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरगं फुरित्ता णं णिज्जाति। ४००—दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं फुडित्ता णं णिज्जाति, तं जहा—देसेणवि आता सरीरं फुडित्ता णं णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरगं फुडित्ता णं णिज्जाति। ४०१—दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं संवट्टइत्ता णं णिज्जाति, तं जहा—देसेणवि आता सरीरं संवट्टइत्ता णं णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरगं संवट्टइत्ता णं णिज्जाति। ४०२—दोहिं ठाणेहिं आता सरीरं णिवट्टइत्ता णं णिज्जाति, तं जहा—देसेणवि आता सरीरं णिवट्टइत्ता णं णिज्जाति, सव्वेणवि आता सरीरगं णिवट्टइत्ता णं णिज्जाति।

दो प्रकार से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहिर निकलती है—देश से (कुछ प्रदेशों से, या शरीर के किसी भाग से) आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहिर निकलती है और सर्व प्रदेशों से आत्मा शरीर का स्पर्श कर वाहिर निकलती है (३९८)। दो प्रकार से आत्मा शरीर को स्फुरित (स्पन्दित) कर बाहिर निकलती है—एक देश से आत्मा शरीर को स्फुरित कर वाहिर निकलती है और सर्व प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुरित कर वाहिर निकलती है (३९९)।

दो प्रकार से आत्मा शरीर को स्फुटित कर वाहिर निकलती है—एक देश से आत्मा शरीर को स्फुटित कर बाहिर निकलती है और सर्व प्रदेशों से आत्मा शरीर को स्फुटित कर वाहर निकलती है (४००)।

दो प्रकार से आत्मा शरीर को संवर्तित (संकुचित) कर बाहिर निकलती है— एक देश से आत्मा शरीर को संवर्तित कर वाहिर निकलती है और सर्व प्रदेशों से आत्मा शरीर को संवर्तित कर बाहिर निकलती है (४०१)।

दो प्रकार से आत्मा शरीर को निर्वर्तित (जीव-प्रदेशों से अलग) कर बाहिर निकलती है— एक देश से आत्मा शरीर को निर्वर्तित कर बाहिर निकलती है और सर्व प्रदेशों से आत्मा शरीर को निर्वर्तित कर बाहिर निकलती है (४०२)।

विवेचन—इन सूत्रों में बतलाया गया है कि जब आत्मा का मरण-काल आता है, उस समय वह शरीर के किसी एक भाग से भी वाहिर निकल जाती है अथवा सर्व शरीर से भी एक साथ निकल जाती है। संसारी जीवों के प्रदेशों का वहिर्गमन किसी एक भाग से होता है और सिद्ध होने वाले जीवों के प्रदेशों का निर्गमन सर्वाङ्ग से होता है। आत्म-प्रदेशों के बाहिर निकलते समय शरीर में होने वाली कम्पन, स्फुरण और संकोचन और निर्वतन दशाओं का उक्त सूत्रों द्वारा वर्णन किया गया है।

क्षय-उपशम-पद

४०३—दोहिं ठाणेहिं आता केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, तं जहा—खएण चेव उवसमेण चेव। ४०४—दोहिं ठाणेहिं आता—केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—खएण चेव, उवसमेण चेव।

दो प्रकार से आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाती है—कर्मों के क्षय से और उपशम से (४०३)। दो प्रकार से आत्मा विशुद्ध बोधि का अनुभव करती है, मुण्डित हो घर छोड़कर सम्पूर्ण अनगारिता को पाती है, सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करती है, सम्पूर्ण संयम के द्वारा संयत होती है, सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत होती है, विशुद्ध आभिनिवोधिक ज्ञान को प्राप्त करती है, विशुद्ध श्रुत-ज्ञान को प्राप्त करती है, विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करती है और विशुद्ध मनःपर्यव ज्ञान को प्राप्त करती है—क्षय से और उपशम से (४०३)।

विवेचन—यद्यपि यहाँ पर धर्म-श्रवण, वोधि-प्राप्ति आदि सभी कार्य-विशेषों की प्राप्ति का कारण सामान्य से कर्मों का क्षय या उपशम कहा गया है, तथापि प्रत्येक स्थान की प्राप्ति में विभिन्न

कर्मों के क्षय, उपशम और क्षयोपशम से होती है। यथा—केवलिप्रज्ञप्त धर्म-श्रवण और बोध-प्राप्ति के लिए ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम और दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम आवश्यक है। मुण्डित होकर अनगारिता पाने, ब्रह्मचर्यवासी होने, संयम और संवर से युक्त होने के लिए—चारित्र मोहनीय कर्म का उपशम और क्षयोपशम आवश्यक है। विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए आभिनिबोधिक ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम, विशुद्ध श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम, विशुद्ध अवधिज्ञान की प्राप्ति में लिए अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और विशुद्ध मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति के लिए मनःपर्यवज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम आवश्यक है। तथा इन सब के साथ दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम की भी आवश्यकता है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि उपशम तो केवल मोहकर्म का ही होता है, तथा क्षयोपशम चार घातिकर्मों का ही होता है। उदय को प्राप्त कर्म के क्षय से तथा अनुदय-प्राप्त कर्म के उपशम से होने वाली विशिष्ट अवस्था को क्षयोपशम कहते हैं। मोहकर्म के उपशम का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है। किन्तु क्षयोपशम का काल अन्तर्मुहूर्त से लगाकर सैकड़ों वर्षों तक का कहा गया है।

औपमिक-काल-पद

४०५—दुविहे अद्धोवमिए पण्णत्ते तं जहा—पलिओवमे चेव, सागरोवमे चेव। से किं तं पलिओवमे? पलिओवमे—

संग्रहणी-गाथा

जं जोयणविच्छिण्णं, पल्लं एगाहियप्परूढाणं।
होज्ज णिरंतरणिचितं, भरितं वालग्गकोडीणं ॥१॥
वाससए वाससए, एक्केक्के अवहडंमि जो कालो।
सो कालो बोद्धव्वो, उवमा एगस्स पल्लस्स ॥२॥
एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हवेज्ज दस गुणिता।
तं सागरोवमस्स उ, एगस्स भवे परीमाणं ॥३॥

औपमिक अद्धाकाल दो प्रकार का कहा गया है—पल्योपम और सागरोपम। भन्ते! पल्योपम किसे कहते हैं? संग्रहणी गाथा—

एक योजन विस्तीर्ण गड्ढे को एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे हुए (मेष के) वालाग्रों के खण्डों से ठसाठस भरा जाय। तदनन्तर सौ सौ वर्षों में एक-एक वालाग्रखण्ड के निकालने पर जितने काल में वह गड्ढा खाली होता है, उतने काल को पल्योपम कहा जाता है। दश कोड़ाकोड़ी पल्योपमों का एक सागरोपम काल कहा जाता है।

पाप-पद

४०६—दुविहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—आयपइट्ठिए चेव, परपइट्ठिए चेव। ४०७—दुविहे माणे, दुविहा माया, दुविहे लोभे, दुविहे पेज्जे, दुविहे दोसे, दुविहे कलहे, दुविहे अब्भक्खाणे, दुविहे पेसुण्णे,

दुविहे परपरिवाए, दुविहा अरतिरती, दुविहे मायामोसे, दुविहे मिच्छादंसणसल्ले पण्णत्ते, तं जहा—आयपइट्ठिए चेव, परपइट्ठिए चेव। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

क्रोध दो प्रकार का कहा गया है—आत्म-प्रतिष्ठित और पर-प्रतिष्ठित (४०६)। इसी प्रकार मान दो प्रकार का, माया दो प्रकार की, लोभ दो प्रकार का, प्रेयस् (राग) दो प्रकार का, द्वेष दो प्रकार का, कलह दो प्रकार का, अभ्याख्यान दो प्रकार का, पैशुन्य दो प्रकार का, परपरिवाद दो प्रकार का, अरति-रति दो प्रकार की, माया-मृषा दो प्रकार की, और मिथ्यादर्शन शल्य दो प्रकार का कहा गया है—आत्म-प्रतिष्ठित और पर-प्रतिष्ठित। इसी प्रकार नारकों से लेकर वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में जीवों के क्रोध आदि दो-दो प्रकार के होते हैं (४०७)।

विवेचन—विना किसी दूसरे के निमित्त से स्वयं ही अपने भीतर प्रकट होने वाले क्रोध आदि को आत्म-प्रतिष्ठित कहते हैं। तथा जो क्रोधादि पर के निमित्त से उत्पन्न होता है उसे पर-प्रतिष्ठित कहते हैं। संस्कृत टीकाकार ने अथवा कह कर यह भी अर्थ किया है कि जो अपने द्वारा आक्रोश आदि करके दूसरे में क्रोधादि उत्पन्न किया जाता है, वह आत्म-प्रतिष्ठित है। तथा दूसरे व्यक्ति के द्वारा आक्रोशादि से जो क्रोधादि उत्पन्न किया जाता है वह पर-प्रतिष्ठित कहलाता है। यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि पृथ्वीकायिकादि असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के दण्डकों में आत्म-प्रतिष्ठित क्रोधादि पूर्वभव के संस्कार द्वारा जनित होते हैं।

जीव-पद

४०८—दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—तसा चेव, थावरा चेव। ४०९—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धा चेव, असिद्धा चेव। ४१०—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—सइंदिया चेव अणिंदिया चेव, सकायच्चेव अकायच्चेव, सजोगी चेव अजोगी चेव, सवेया चेव अवेया चेव, सकसाया चेव अकसाया चेव, सलेसा चेव अलेसा चेव, णाणी चेव अणाणी चेव, सागारोवउत्ता चेव अणागारोवउत्ता चेव, आहारगा चेव अणाहारगा चेव, भासगा चेव अभासगा चेव, चरिमा चेव अचरिमा चेव, ससरीरी चेव असरीरी चेव।

संसार-समापन्नक (संसारी) जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—त्रस और स्थावर (४०८)। सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सिद्ध और असिद्ध (४०९)। पुन: सर्व जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—सेन्द्रिय (इन्द्रिय सहित) और अनिन्द्रिय (इन्द्रिय-रहित)। सकाय और अकाय, सयोगी और अयोगी, सवेद और अवेद, सकषाय और अकषाय, सलेश्य और अलेश्य, ज्ञानी और अज्ञानी, साकारोपयोग-युक्त और अनाकारोपयोग-युक्त, आहारक और अनाहरक, भाषक और अभाषक, सशरीरी और अशरीरी (४१०)।

मरण-पद

४११—दो मरणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णो णिच्चं वण्णियाइं णो णिच्चं कित्तियाइं णो णिच्चं बुइयाइं णो णिच्चं पसत्थाइं णो णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति, तं जहा—वलयमरणे चेव, वसट्टमरणे चेव। ४१२—एवं णियाणमरणे चेव तब्भवमरणे चेव, गिरिपडणे चेव, तरुपडणे चेव, जलपवेसे चेव जलणपवेसे चेव, विसभक्खणे चेव सत्थोवाडणे चेव। ४१३—दो मरणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णो णिच्चं वण्णियाइं णो णिच्चं कित्तियाइं

णो णिच्चं बुइयाइं णो णिच्चं पसत्थाइं णो णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति। कारणे पुण अप्पडिकुट्ठाइं, तं जहा—वेहाणसे चेव गिद्धपट्ठे चेव। ४१४—दो मरणाइं समणेण भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णियाइं णिच्चं कित्तियाइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं अब्भणुण्णायाइं भवंति, तं जहा—पाओवगमणे चेव, भत्तपच्चक्खाणे चेव। ४१५—पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते तं जहा—णीहारिमे चेव, अणीहारिमे चेव। णियमं अपडिकम्मे। ४१६—भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—णीहारिमे चेव, अणीहारिमे चेव। णियमं सपडिकम्मे।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अभ्यनुज्ञात नहीं किये हैं—वलन्मरण और वशार्त मरण (४११)। इसी प्रकार निदान मरण और तद्भवमरण, गिरिपतन मरण और तरुपतन मरण, जल-प्रवेश मरण और अग्नि-प्रवेश मरण, विष-भक्षण मरण और शस्त्रावपाटन मरण (४१२)। ये दो-दो प्रकार के मरण श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए श्रमण भगवान् महावीर ने कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अभ्यनुज्ञात नहीं किये हैं। किन्तु कारण-विशेष होने पर वैहायस और गिद्धपट्ठ (गृद्ध स्पृष्ट) ये दो मरण अभ्यनुज्ञात हैं (४१३)। श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण सदा वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशंसित और अभ्यनुज्ञात किये हैं—प्रायोपगमन मरण और भक्त-प्रत्याख्यान मरण (४१४)। प्रायोपगमन मरण दो प्रकार का कहा गया है—निर्हारिम और अनिर्हारिम। प्रायोपगमन मरण नियमतः अप्रतिकर्म होता है (४१५)। भक्तप्रत्याख्यानमरण दो प्रकार का कहा गया है— निर्हारिम और अनिर्हारिम। भक्तप्रत्याख्यानमरण नियमतः सप्रतिकर्म होता है।

विवेचन— मरण दो प्रकार के होते हैं—अप्रशस्त मरण और प्रशस्त मरण। जो कषायावेश से मरण होता है वह अप्रशस्त कहलाता है और जो कषायावेश विना-समभावपूर्वक शरीरत्याग किया जाता है, वह प्रशस्त मरण कहलाता है। अप्रशस्त मरण के वलन्मरण आदि जो अनेक प्रकार कहे गये हैं उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१. **वलन्मरण**—परिषहों से पीड़ित होने पर संयम छोड़कर मरना।
२. **वशार्तमरण**—इन्द्रिय-विषयों के वशीभूत होकर मरना।
३. **निदानमरण**—ऋद्धि, भोगादि की इच्छा करके मरना।
४. **तद्भवमरण**—वर्तमान भव की ही आयु बांध कर मरना।
५. **गिरिपतनमरण**—पर्वत से गिर कर मरना।
६. **तरुपतनमरण**—वृक्ष से गिर कर मरना।
७. **जल-प्रवेश-मरण**—अगाध जल में प्रवेश कर या नदी में बहकर मरना।
८. **अग्नि-प्रवेश-मरण**—जलती आग में प्रवेश कर मरना।
९. **विष-भक्षणमरण**—विष खाकर मरना।
१०. **शस्त्रावपाटन मरण**—शस्त्र से घात कर मरना।
११. **वैहायसमरण**—गले में फांसी लगाकर मरना।
१२ **गिद्धपट्ठ या गृद्धस्पृष्टमरण**—वृहत्काय वाले हाथी आदि के मृत शरीर में प्रवेश कर

मरना। इस प्रकार मरने से गिद्ध आदि पक्षी उस शव के साथ मरने वाले के शरीर को भी नोंच-नोंच कर खा डालते हैं। इस प्रकार से मरने को गृद्धस्पृष्टमरण कहते हैं।

उक्त सूत्रों में आये हुए वर्णित आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. **वर्णित**—उपादेयरूप से सामान्य वर्णन करना।

२. **कीर्तित**—उपादेय बुद्धि से विशेष कथन करना।

३. **उक्त**—व्यक्त और स्पष्ट वचनों से कहना।

४. **प्रशस्त या प्रशंसित**—श्लाघा या प्रशंसा करना।

५. **अभ्यनुज्ञात**—करने की अनुमति, अनुज्ञा या स्वीकृति देना। भगवान् महावीर ने किसी भी प्रकार के अप्रशस्त मरण की अनुज्ञा नहीं दी है। तथापि संयम एवं शील आदि की रक्षा के लिए वैहायस-मरण और गृद्धस्पृष्ट-मरण की अनुमति दी है, किन्तु यह अपवादमार्ग ही है।

प्रशस्त मरण दो प्रकार के हैं—भक्तप्रत्याख्यान और प्रायोपगमन। भक्त-पान का क्रम-क्रम से त्याग करते हुए समाधि पूर्वक प्राण-त्याग करने को भक्तप्रत्याख्यान मरण कहते हैं। इस मरण को अंगीकार करने वाला साधक स्वयं उठ बैठ सकता है, दूसरों के द्वारा उठाये-बैठाये जाने पर उठता-बैठता है और दूसरों के द्वारा की गई वैयावृत्त्य को भी स्वीकार करता है। अपने सामर्थ्य को देख-कर साधु संस्तर पर जिस रूप से पड़ जाता है, उसे फिर बदलता नहीं है. किन्तु कटे हुए वृक्ष के समान निश्चेष्ट ही पड़ा रहता है, इस प्रकार से प्राण-त्याग करने को प्रायोपगमन मरण कहते हैं। इसे स्वीकार करने वाला साधु न स्वयं अपनी वैयावृत्त्य करता है और न दूसरों से ही कराता है। इसी से भगवान् महावीर ने उसे अप्रतिकर्म अर्थात् शारीरिक-प्रतिक्रिया से रहित कहा है। किन्तु भक्तप्रत्याख्यान मरण सप्रतिकर्म होता है।

निर्हारिम का अर्थ है—मरण-स्थान से मृत शरीर को बाहर ले जाना। अनिर्हारिम का अर्थ है—मरण-स्थान पर ही मृत-शरीर का पड़ा रहना। जब समाधिमरण वसतिकादि में होता है, तब शव को बाहर लेजाकर छोड़ा जा सकता है, या दाह-क्रिया की जा सकती है। किन्तु जब मरण गिरि-कन्दरादि प्रदेश में होता है, तब शव बाहर नहीं ले जाया जाता।

लोक-पद

४१७—के अयं लोगे? जीवच्चेव, अजीवच्चेव। ४१८—के अणंता लोगे? जीवच्चेव अजीवच्चेव। ४१९—के सासया लोगे? जीवच्चेव अजीवच्चेव।

यह लोक क्या है? जीव और अजीव ही लोक हैं (४१७)। लोक में अनन्त क्या है? जीव और अजीव ही अनन्त हैं (४१८)? लोक में शाश्वत क्या है? जीव और अजीव ही शाश्वत हैं (४१९)।

बोधि-पद

४२०—दुविहा बोधी पण्णत्ता, तं जहा—णाणबोधी चेव, दंसणबोधी चेव। ४२१—दुविहा बुद्धा पण्णत्ता, तं जहा—णाणबुद्धा चेव, दंसणबुद्धा चेव।

बोधि दो प्रकार की कही गई है—ज्ञानबोधि और दर्शनबोधि (४२०)। बुद्ध दो प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानबुद्ध और दर्शनबुद्ध (४२१)।

मोह-पद

४२२—दुविहे मोहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणमोहे चेव, दंसणमोहे चेव। ४२३—दुविहा मूढा पण्णत्ता, तं जहा—णाणमूढा चेव, दंसणमूढा चेव।

मोह दो प्रकार का कहा गया है—ज्ञानमोह और दर्शनमोह (४२२)। मूढ दो प्रकार के कहे गये हैं— ज्ञानमूढ और दर्शनमूढ (४२३)।

कर्म-पद

४२४—णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसणाणावरणिज्जे चेव, सव्वणाणावरणिज्जे चेव। ४२५—दरिसणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसदरिसणावरणिज्जे चेव, सव्वदरिसणावरणिज्जे चेव। ४२६—वेयणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सातावेयणिज्जे चेव, असातावेयणिज्जे चेव। ४२७—मोहणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणमोहणिज्जे चेव, चरित्तमोहणिज्जे चेव। ४२८—आउए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अद्धाउए चेव, भवाउए चेव। ४२९—णामे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुभणामे चेव, असुभणामे चेव। ४३०—गोत्ते कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चागोते चेव, णीयागोते चेव। ४३१—अंतराइए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडुप्पण्णविणासिए चेव, पिहितआगामिपहं चेव।

ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—देशज्ञानावरणीय (मतिज्ञानावरण आदि) और सर्वज्ञानावरणीय (केवलज्ञानावरण) (४२४)। दर्शनावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—देशदर्शनावरणीय और सर्वदर्शनावरणीय (केवलदर्शनावरण) (४२५)। वेदनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—सातवेदनीय और असातवेदनीय (४२६)। मोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय (४२७)। आयुष्यकर्म दो प्रकार का कहा गया है—अद्धायुष्य (कायस्थिति की आयु) और भवायुष्य (उसी भव की आयु) (४२८)। नामकर्म दो प्रकार का कहा गया है—शुभनाम और अशुभनाम (४२९)। गोत्रकर्म दो प्रकार का कहा गया है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र (४३०)। अन्तरायकर्म दो प्रकार का कहा गया है—प्रत्युत्पन्नविनाशि (वर्तमान में प्राप्त वस्तु का विनाश करने वाला) और पिहित-आगामिपथ अर्थात् भविष्य में होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला (४३१)।

मूर्च्छा-पद

४३२—दुविहा मुच्छा पण्णत्ता, तं जहा—पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव। ४३३—पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—माया चेव, लोभे चेव। ४३४—दोसवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कोहे चेव, माणे चेव।

मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है—प्रेयस्प्रत्यया (राग के कारण होने वाली मूर्च्छा) और द्वेषप्रत्यया (द्वेष के कारण होने वाली मूर्च्छा) (४३२)। प्रेयस्प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही

मरना। इस प्रकार मरने से गिद्ध आदि पक्षी उस शव के साथ मरने वाले के शरीर को भी नोंच-नोंच कर खा डालते हैं। इस प्रकार से मरने को गृद्धस्पृष्टमरण कहते हैं।

उक्त सूत्रों में आये हुए वर्णित आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. **वर्णित**—उपादेयरूप से सामान्य वर्णन करना।

२. **कीर्तित**—उपादेय बुद्धि से विशेष कथन करना।

३. **उक्त**—व्यक्त और स्पष्ट वचनों से कहना।

४. **प्रशस्त या प्रशंसित**—श्लाघा या प्रशंसा करना।

५. **अभ्यनुज्ञात**—करने की अनुमति, अनुज्ञा या स्वीकृति देना। भगवान् महावीर ने किसी भी प्रकार के अप्रशस्त मरण की अनुज्ञा नहीं दी है। तथापि संयम एवं शील आदि की रक्षा के लिए वैहायस-मरण और गृद्धस्पृष्ट-मरण की अनुमति दी है, किन्तु यह अपवादमार्ग ही है।

प्रशस्त मरण दो प्रकार के हैं—भक्तप्रत्याख्यान और प्रायोपगमन। भक्त-पान का क्रम-क्रम से त्याग करते हुए समाधि पूर्वक प्राण-त्याग करने को भक्तप्रत्याख्यान मरण कहते हैं। इस मरण को अंगीकार करने वाला साधक स्वयं उठ बैठ सकता है, दूसरों के द्वारा उठाये-बैठाये जाने पर उठता-बैठता है और दूसरों के द्वारा की गई वैयावृत्त्य को भी स्वीकार करता है। अपने सामर्थ्य को देख-कर साधु संस्तर पर जिस रूप से पड़ जाता है, उसे फिर बदलता नहीं है. किन्तु कटे हुए वृक्ष के समान निश्चेष्ट ही पड़ा रहता है, इस प्रकार से प्राण-त्याग करने को प्रायोपगमन मरण कहते हैं। इसे स्वीकार करने वाला साधु न स्वयं अपनी वैयावृत्त्य करता है और न दूसरों से ही कराता है। इसी से भगवान् महावीर ने उसे अप्रतिकर्म अर्थात् शारीरिक-प्रतिक्रिया से रहित कहा है। किन्तु भक्तप्रत्याख्यान मरण सप्रतिकर्म होता है।

निर्हारिम का अर्थ है—मरण-स्थान से मृत शरीर को बाहर ले जाना। अनिर्हारिम का अर्थ है— मरण-स्थान पर ही मृत-शरीर का पड़ा रहना। जब समाधिमरण वसतिकादि में होता है, तब शव को बाहर लेजाकर छोड़ा जा सकता है, या दाह-क्रिया की जा सकती है। किन्तु जब मरण गिरि-कन्दरादि प्रदेश में होता है, तब शव बाहर नहीं ले जाया जाता।

लोक-पद

४१७—के अयं लोगे? जीवच्चेव, अजीवच्चेव। ४१८—के अणंता लोगे? जीवच्चेव अजीवच्चेव। ४१९—के सासया लोगे? जीवच्चेव अजीवच्चेव।

यह लोक क्या है? जीव और अजीव ही लोक हैं (४१७)। लोक में अनन्त क्या है? जीव और अजीव ही अनन्त हैं (४१८)? लोक में शाश्वत क्या है? जीव और अजीव ही शाश्वत हैं (४१९)।

बोधि-पद

४२०—दुविहा बोधी पण्णत्ता, तं जहा—णाणबोधी चेव, दंसणबोधी चेव। ४२१—दुविहा बुद्धा पण्णत्ता, तं जहा—णाणबुद्धा चेव, दंसणबुद्धा चेव।

बोधि दो प्रकार की कही गई है—ज्ञानबोधि और दर्शनबोधि (४२०)। बुद्ध दो प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानबुद्ध और दर्शनबुद्ध (४२१)।

मोह-पद

४२२—दुविहे मोहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणमोहे चेव, दंसणमोहे चेव। ४२३—दुविहा मूढा पण्णत्ता, तं जहा—णाणमूढा चेव, दंसणमूढा चेव।

मोह दो प्रकार का कहा गया है—ज्ञानमोह और दर्शनमोह (४२२)। मूढ दो प्रकार के कहे गये हैं— ज्ञानमूढ और दर्शनमूढ (४२३)।

कर्म-पद

४२४—णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसणाणावरणिज्जे चेव, सव्वणाणावरणिज्जे चेव। ४२५—दरिसणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसदरिसणावरणिज्जे चेव, सव्वदरिसणावरणिज्जे चेव। ४२६—वेयणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सातावेयणिज्जे चेव, असातावेयणिज्जे चेव। ४२७—मोहणिज्जे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दंसणमोहणिज्जे चेव, चरित्तमोहणिज्जे चेव। ४२८—आउए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अद्धाउए चेव, भवाउए चेव। ४२९—णामे कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुभणामे चेव, असुभणामे चेव। ४३०—गोत्ते कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चागोते चेव, णीयागोते चेव। ४३१—अंतराइए कम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडुप्पण्णविणासिए चेव, पिहितआगामिपहं चेव।

ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—देशज्ञानावरणीय (मतिज्ञानावरण आदि) और सर्वज्ञानावरणीय (केवलज्ञानावरण) (४२४)। दर्शनावरणीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—देशदर्शनावरणीय और सर्वदर्शनावरणीय (केवलदर्शनावरण) (४२५)। वेदनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—सातवेदनीय और असातवेदनीय (४२६)। मोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा गया है—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय (४२७)। आयुष्यकर्म दो प्रकार का कहा गया है—अद्धायुष्य (कायस्थिति की आयु) और भवायुष्य (उसी भव की आयु) (४२८)। नामकर्म दो प्रकार का कहा गया है—शुभनाम और अशुभनाम (४२९)। गोत्रकर्म दो प्रकार का कहा गया है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र (४३०)। अन्तरायकर्म दो प्रकार का कहा गया है—प्रत्युत्पन्नविनाशि (वर्तमान में प्राप्त वस्तु का विनाश करने वाला) और पिहित-आगामिपथ अर्थात् भविष्य में होने वाले लाभ के मार्ग को रोकने वाला (४३१)।

मूर्च्छा-पद

४३२—दुविहा मुच्छा पण्णत्ता, तं जहा—पेज्जवत्तिया चेव, दोसवत्तिया चेव। ४३३—पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—माया चेव, लोभे चेव। ४३४—दोसवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—कोहे चेव, माणे चेव।

मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है—प्रेयस्प्रत्यया (राग के कारण होने वाली मूर्च्छा) और द्वेषप्रत्यया (द्वेष के कारण होने वाली मूर्च्छा) (४३२)। प्रेयस्प्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही

गई है—मायारूपा और लोभरूपा (४३३)। द्वेषप्रत्यया मूर्च्छा दो प्रकार की कही गई है—क्रोधरूपा और मानरूपा (४३४)।

आराधना-पद

४३५—दुविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मियाराहणा चेव, केवलिआराहणा चेव। ४३६—धम्मियाराहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुयधम्माराहणा चेव, चरित्तधम्माराहणा चेव। ४३७—केवलिआराहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अंतकिरिया चेव, कप्पविमाणोववत्तिया चेव।

आराधना दो प्रकार की कही गई है—धार्मिक आराधना (धार्मिक श्रावक-साधु जनों के द्वारा की जाने वाली आराधना) और कैवलिकी आराधना (केवलियों के द्वारा की जाने वाली आराधना) (४३५)। धार्मिकी आराधना दो प्रकार की कही गई है—श्रुतधर्म की आराधना और चारित्रधर्म की आराधना (४३६)। कैवलिकी आराधना दो प्रकार की कही गई है—अन्तक्रियारूपा और कल्पविमानोपपत्तिका (४३७)। कल्पविमानोपपत्तिका आराधना श्रुतकेवली आदि की ही होती है, केवलज्ञानकेवली की नहीं। केवलज्ञानी शैलेशीकरणरूप अन्तक्रिया आराधना ही करते हैं।

तीर्थंकर-वर्ण-पद

४३८—दो तित्थगरा णीलुप्पलसमा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—मुणिसुव्वए चेव, अरिट्ठणेमी चेव। ४३९—दो तित्थगरा पियंगुसामा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—मल्ली चेव, पासे चेव। ४४०—दो तित्थगरा पउमगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—पउमप्पहे चेव, वासुपुज्जे चेव। ४४१—दो तित्थगरा चंदगोरा वण्णेणं पण्णत्ता, तं जहा—चंदप्पभे चेव, पुप्फदंते चेव।

दो तीर्थंकर नीलकमल के समान नीलवर्ण वाले कहे गये हैं—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि (४३८)। दो तीर्थंकर प्रियंगु (कांगनी) के समान श्यामवर्णवाले कहे गये हैं—मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ (४३९)। दो तीर्थंकर पद्म के समान लाल गौरवर्णवाले कहे गये हैं—पद्मप्रभ और वासुपूज्य (४४०)। दो तीर्थंकर चन्द्र के समान श्वेत गौरवर्णवाले कहे गये हैं—चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त (४४१)।

पूर्ववस्तु-पद

४४२—सच्चप्पवायपुव्वस्स णं दुवे वत्थू पण्णत्ता।

सत्यप्रवाद पूर्व के दो वस्तु (महाधिकार) कहे गये हैं (४४२)।

नक्षत्र-पद

४४३—पुव्वाभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। ४४४—उत्तराभद्दवयाणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। ४४५—पुव्वफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते। ४४६—उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के दो तारे कहे गये हैं (४४३)। उत्तराभाद्रपद के दो तारे कहे गये हैं (४४४)। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे कहे गये हैं (४४५)। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के दो तारे कहे गये हैं (४४६)।

समुद्र-पद

४४७—अंतो णं मणुस्सखेत्तस्स दो समुद्दा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे चेव, कालोदे चेव।

मनुष्य क्षेत्र के भीतर दो समुद्र कहे गये हैं—लवणोद और कालोद।

चक्रवर्त्ती-पद

४४८—दो चक्कवट्टी अपरिचत्तकामभोगा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा, तं जहा—सुभूमे चेव, बंभदत्ते चेव।

दो चक्रवर्ती काम-भागों को छोड़े विना मरण काल में मरकर नीचे की ओर सातवीं पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरक में नारकी रूप से उत्पन्न हुए—सुभूम और ब्रह्मदत्त।

देव-पद

४४९—असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। ४५०—सोहम्मे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। ४५१—ईसाणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं सातिरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। ४५२—सणंकुमारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। ४५३—माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। ४५४—दोसु कप्पेसु कप्पित्थियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव। ४५५—दोसु कप्पेसु देवा तेउलेस्सा पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव। ४५६—दोसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे चेव, ईसाणे चेव। ४५७—दोसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—सणंकुमारे चेव, माहिंदे चेव। ४५८—दोसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—बंभलोगे चेव, लंतगे चेव। ४५९—दोसु कप्पेसु देवा सद्दपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—महासुक्के चेव, सहस्सारे चेव। ४६०—दो इंदा मणपरियारगा पण्णत्ता, तं जहा—पाणए चेव, अच्चुए चेव।

असुरेन्द्र को छोड़कर शेष भवनवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम दो पल्योपम कही गई है (४४९)। सौधर्म कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम कही गई है (४५०)। ईशानकल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है (४५१)। सनत्कुमार कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम कही गई है (४५२)। माहेन्द्रकल्प में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम से कुछ अधिक कही गई है (४५३)। दो कल्पों में कल्पस्त्रियां (देवियां) कही गई हैं—सौधर्मकल्प में और ईशानकल्प में (४५४)। दो कल्पों में देव तेजोलेश्यावाले कहे गये हैं—सौधर्म-कल्प में और ईशान कल्प में (४५५)। दो कल्पो में देव काय-परिचारक (काय से संभोग करने वाले) कहे गये हैं—सौधर्मकल्प में और ईशानकल्प में (४५६)। दो कल्पों में देव स्पर्श-परिचारक (देवी के स्पर्शमात्र से वासनापूर्ति करने वाले) कहे गये हैं—सनत्कुमार कल्प में और माहेन्द्र कल्प में (४५७)। दो कल्पों में देव रूप-परिचारक (देवी का रूप देखकर वासना-पूर्त्ति करने वाले) कहे गये हैं—ब्रह्मलोक में और लान्तक कल्प में (४५८)। दो कल्पों में देव शब्द-परिचारक (देवी के शब्द सुन कर वासना-पूर्त्ति करने वाले) कहे गये हैं—महाशुक्रकल्प में और सहस्रार कल्प में (४५९)। दो इन्द्र मन:परिचारक (मन में देवी का स्मरण कर वासना-पूर्त्ति करने वाले) कहे गये हैं—प्राणतेन्द्र और अच्युतेन्द्र (४६०)।

पपाकर्म-पद

४६१—जीवाणं दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—तसकायणिव्वत्तिए चेव, थावरकायणिव्वत्तिए चेव।

जीवों ने द्विस्थान-निर्वर्तित पुद्गलों को पाप कर्म के रूप में चय किया है, करते हैं और करेंगे—त्रसकाय-निर्वर्तित (त्रस काय के रूप में उपार्जित) और स्थावरकायनिर्वर्तित (स्थावरकाय के रूप में उपार्जित) (४६१)।

४६२—जीवाणं दुट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए उवचिणिसु वा उवचिणंति वा, उवचिणिस्संति वा, बंधिसु वा बंधेंति वा बंधिस्संति वा, उदीरिंसु वा उदीरेंति वा उदीरिस्संति वा, वेदेंसु वा वेदेंति वा वेदिस्संति वा, णिज्जरिंसु वा णिज्जरेंति वा णिज्जरिस्संति वा, तं जहा—तसकायणिव्वत्तिए चेव, थावरकायणिव्वत्तिए चेव।

जीवों ने द्विस्थान-निर्वर्तित पुद्गलों का पाप-कर्म के रूप में उपचय किया है, करते हैं और करेंगे। उदीरण किया है, करते हैं और करेंगे। वेदन किया है, करते हैं और करेंगे। निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे—त्रसकाय-निर्वर्तित और स्थावरकाय-निर्वर्तित।

विवेचन—चय अर्थात् कर्म-परमाणुओं को ग्रहण करना और उपचय का अर्थ है गृहीत कर्म-परमाणुओं के अबाधाकाल के पश्चात् निषेक-रचना। उदीरण का अर्थ अनुदय-प्राप्त कर्म-परमाणुओं को अपकर्षण कर उदय में क्षेपण करना—उदयावलिका में 'खींच' लाना। उदय-प्राप्त कर्म-परमाणुओं के फल भोगने को वेदन कहते हैं और कर्म-फल भोगने के पश्चात् उनके झड़ जाने को निर्जरा या निर्जरण कहते हैं। कर्मों के ये सभी चय-उपचयादि को त्रसकाय और स्थावरकाय के जीव ही करते हैं, अतः उन्हें त्रसकाय-निर्वर्तित और स्थावरकाय-निर्वर्तित कहा गया है।

पुद्गल-पद

४६३—दुपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता। ४६४—दुपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। ४६५—एवं जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

द्विप्रदेशी पुद्गल-स्कन्ध अनन्त हैं (४६३)। द्विप्रदेशावगाढ (आकाश के दो प्रदेशों में रहे हुए) पुद्गल अनन्त हैं (४६४)। इसी प्रकार दो समय की स्थिति वाले और दो गुण वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं, शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के दो गुण वाले यावत् दो गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त-अनन्त कहे गये हैं (४६५)।

चतुर्थ उद्देश समाप्त।
स्थानाङ्ग का द्वितीय स्थान समाप्त॥

तृतीय स्थान

सार : संक्षेप

प्रस्तुत स्थान के चार उद्देश हैं, जिनमें तीन-तीन की संख्या से संवद्ध विषयों का निरूपण किया गया है।

प्रथम उद्देश में तीन प्रकार के इन्द्रों का, देव-विक्रिया, और उनके प्रवीचार-प्रकारों का तथा योग, करण, आयुष्य-प्रकरण के द्वारा उनके तीन तीन प्रकारों का वर्णन किया गया है। पुनः गुप्ति-अगुप्ति, दण्ड, गर्हा, प्रत्याख्यान, उपकार और पुरुषजात पदों के द्वारा उनके तीन-तीन प्रकारों का वर्णन है।

तत्पश्चात् मत्स्य, पक्षी, परिसर्प, स्त्री-पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, तिर्यग्योनिक, और लेश्यापदों के द्वारा उनके तीन-तीन प्रकार बताये गये हैं। पुनः तारा-चलन, देव-विक्रिया, अन्धकार-उद्योत आदि पदों के द्वारा तीन-तीन प्रकारों का वर्णन है। पुनः तीन दुष्प्रतीकारों का वर्णन कर उनसे उऋण होने का बहुत मार्मिक वर्णन किया गया है।

तदनन्तर संसार से पार होने के तीन मार्ग बताकर कालचक्र, अच्छिन्न पुद्गल चलन, उपधि, परिग्रह, प्रणिधान, योनि, तृणवनस्पति, तीर्थ, शलाका पुरुष और उनके वंश के तीन-तीन प्रकारों का वर्णन कर, आयु, बीज-योनि, नरक, समान-क्षेत्र, समुद्र, उपपात, विमान, देव और प्रज्ञप्ति पदों के द्वारा तीन-तीन वर्ण्य विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय उद्देश का सार

इस उद्देश में तीन प्रकार के लोक, देव-परिषद्, याम (पहर) वय (अवस्था) बोधि, प्रव्रज्या शैक्षभूमि, स्थविरभूमि का निरूपण कर गत्वा-अगत्वा आदि २० पदों के द्वारा पुरुषों की विभिन्न प्रकार की तीन-तीन मनोभावनाओं का वहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। जैसे—कुछ लोग हित, मित सात्त्विक भोजन करने के बाद सुख का अनुभव करते हैं। कुछ लोग अहितकर और अपरिमित भोजन करने के बाद अजीर्ण, उदर-पीड़ा आदि के हो जाने पर दुःख का अनुभव करते हैं। किन्तु हित-मित भोजी संयमी पुरुष खाने के बाद न सुख का अनुभव करता है और न दुःख का ही अनुभव करता है, किन्तु मध्यस्थ रहता है। इस सन्दर्भ के पढ़ने से मनुष्यों की मनोवृत्तियों का बहुत विशद परिज्ञान होता है।

तदनन्तर गर्हित, प्रशस्त, लोकस्थिति, दिशा, त्रस-स्थावर और अच्छेद्य आदि पदों के द्वारा तीन-तीन विषयों का वर्णन किया गया है।

अन्त में दुःख पद के द्वारा भगवान् महावीर और गौतम के प्रश्न-उत्तरों में दुःख, दुःख होने के कारण, एवं अन्य तीर्थिकों के मन्तव्यों का निराकरण किया गया है।

तृतीय उद्देश का सार

इस उद्देश में सर्वप्रथम आलोचना पद के द्वारा तीन प्रकार की आलोचना का विस्तृत विवेचन कर श्रुतधर, उपधि, आत्मरक्ष, विकटदत्ति, विसम्भोग, वचन, मन और वृष्टि पदके द्वारा तत्-तत्-विषयक तीन-तीन प्रकारों का निरूपण किया गया है। यह भी बताया गया है कि किन तीन कारणों से देव वहां जन्म लेने के पश्चात् मध्यलोक में अपने स्वजनों के पास चाहते हुए भी नहीं आता ? देवमन:स्थिति पद में देवों की मानसिक स्थिति का बहुत सुन्दर चित्रण है। विमान, वृष्टि और सुगति-दुर्गति पद में उससे संबद्ध तीन-तीन विषयों का वर्णन है।

तदनन्तर तप:पावक, पिण्डैषणा, अवमोदरिका, निर्ग्रन्थचर्या, शल्य, तेजोलेश्या, भिक्षु-प्रतिमा, कर्मभूमि, दर्शन, प्रयोग, व्यवसाय, अर्थयोनि, पुद्गल, नरक, मिथ्यात्व, धर्म, और उपक्रम, तीन-तीन प्रकारों का निरूपण किया गया है।

अन्तिम त्रिवर्ग पद में तीन प्रकार की कथाओं और विनिश्चयों को बताकर गौतम द्वारा पूछे गये और भगवान् महावीर द्वारा दिये गये साधु-पर्युपासना सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों का बहुत सुन्दर निरूपण किया गया है।

चतुर्थ उद्देश का सार

इस उद्देश में सर्वप्रथम प्रतिमापद के द्वारा प्रतिमाधारी अनगार के लिए तीन-तीन कर्तव्यों का विवेचन किया गया है। पुन: काल, वचन, प्रज्ञापना, उपघात-विशोधि. आराधना, संक्लेश-असंक्लेश, और अतिक्रमादि पदों के द्वारा तत्संबद्ध तीन-तीन विषयों का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर प्रायश्चित्त, अकर्मभूमि, जम्बूद्वीपस्थ वर्ष (क्षेत्र) वर्षधर पर्वत, महाद्रह, महा-नदी आदि का वर्णन कर धातकीखण्ड और पुष्करवर द्वीप सम्बन्धी क्षेत्रादि के जानने की सूचना करते हुए भूकम्प पद के द्वारा भूकम्प होने के तीन कारणों का निरूपण किया गया है।

तत्पश्चात् देवकिल्विषिक, देवस्थिति, प्रायश्चित्त और प्रव्रज्यादि-अयोग्य तीन प्रकार के व्यक्तियों का वर्णन कर वाचनीय-अवाचनीय और दु:संज्ञाप्य-सुसंज्ञाप्य व्यक्तियों का निरूपण किया गया है। पुन: माण्डलिक पर्वत, महामहत् कल्पस्थिति, और शरीर-पदों के द्वारा तीन-तीन विषयों का वर्णन कर प्रत्यनीक पद में तीन प्रकार के प्रतिकूल आचरण करने वालों का सुन्दर चित्रण किया गया है।

पुन: अंग, मनोरथ, पुद्गल-प्रतिघात, चक्षु, अभिसमागम, ऋद्धि, गौरव, करण, स्वाख्यातधर्म ज्ञ-अज्ञ, अन्त, जिन, लेश्या, और मरण, पदों के द्वारा वर्ण्य विषयों का वर्णन कर श्रद्धानी की विजय और अश्रद्धानी के पराभव के तीन-तीन कारणों का निरूपण किया गया है।

अन्त में पृथ्वीवलय, विग्रहगति, क्षीणमोह, नक्षत्र, तीर्थंकर, ग्रैवेयकविमान, पापकर्म और पुद्गल पदों के द्वारा तत्तद्विषयक विषयों का निरूपण किया गया है।

तृतीय स्थान

प्रथम उद्देश

इन्द्र-पद

१—तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—णामिंदे, ठवणिंदे, दव्विंदे। २—तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—णाणिंदे, दंसणिंदे, चरित्तिंदे। ३—तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—देविंदे, असुरिंदे, मणुस्सिंदे।

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये हैं—नाम-इन्द्र (केवल नाम से इन्द्र) स्थापना-इन्द्र (किसी मूर्ति आदि में इन्द्र का आरोपण) और द्रव्य-इन्द्र (जो भूतकाल में इन्द्र था अथवा आगे होगा) (१)। पुनः इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञान-इन्द्र (विशिष्ट श्रुतज्ञानी या केवली), दर्शन-इन्द्र (क्षायिकसम्यग्दृष्टि) और चारित्र-इन्द्र (यथाख्यातचारित्रवान्) (२)। पुनः इन्द्र तीन प्रकार के कहे गये हैं—देव-इन्द्र, असुर-इन्द्र और मनुष्य-इन्द्र (चक्रवर्ती आदि) (३)।

विवेचन—निक्षेपपद्धति के अनुसार यहां चौथे भाव-इन्द्र का उल्लेख होना चाहिए, किन्तु त्रिस्थानक का प्रकरण होने से उसकी गणना नहीं की गई। टीकाकार के अनुसार दूसरे सूत्र में ज्ञानेन्द्र आदि का जो उल्लेख है, वे पारमार्थिक दृष्टि से भावेन्द्र हैं। अतः भावेन्द्र का निरूपण दूसरे सूत्र में समझना चाहिए। द्रव्य-ऐश्वर्य की दृष्टि से देवेन्द्र आदि को इन्द्र कहा है।

विक्रिया-पद

४—तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—बाहिरए पोग्गलए परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा। ५—तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—अब्भंतरए पोग्गले परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भंतरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, अब्भंतरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा। ६—तिविहा विकुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरब्भंतरए पोग्गले अपरियादित्ता—एगा विकुव्वणा, बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियादित्तावि अपरियादित्तावि—एगा विकुव्वणा।

विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—१. बाह्य-पुद्गलों को ग्रहण करके की जाने वाली विक्रिया। २. बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना की जाने वाली विक्रिया। ३. बाह्य पुद्गलों के ग्रहण और अग्रहण दोनों के द्वारा की जाने वाली विक्रिया (भवधारणीय शरीर में किंचित् विशेषता उत्पन्न करना) (४)। पुनः विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—१. आन्तरिक पुद्गलों को ग्रहण कर की जाने वाली विक्रिया। २. आन्तरिक पुद्गलों को ग्रहण किये बिना की जानेवाली विक्रिया। ३. आन्तरिक पुद्गलों के ग्रहण और अग्रहण दोनों के द्वारा की जानेवाली विक्रिया (५)। पुनः विक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—१. बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्गलों को ग्रहण कर की जाने वाली विक्रिया। २. बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना

की जाने वाली विक्रिया । ३. बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्‌गलों के ग्रहण और अग्रहण के द्वारा की जाने वाली विक्रिया (६) ।

संचित-पद

७—तिविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—कतिसंचिता, अकतिसंचिता, अवत्तव्वगसंचिता । ८—एवमेगिंदियवज्जा जाव वेमाणिया ।

नारक तीन प्रकार के कहे गये हैं— १. कतिसंचित, २. अकतिसंचित, ३. अवक्तव्यसंचित (७) । इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिक देवों तक के सभी दण्डक तीन-तीन प्रकार के कहे गये हैं (८) ।

विवेचन—'कति' शब्द संख्यावाचक है । दो से लेकर संख्यात तक की संख्या को कति कहा जाता है । अकति का अर्थ असंख्यात और अनन्त है । अवक्तव्य का अर्थ 'एक' है, क्योंकि 'एक' की गणना संख्या में नहीं की जाती है । क्योंकि किसी संख्या के साथ एक का गुणाकार या भागाकार करने पर वृद्धि-हानि नहीं होती । अतः 'एक' संख्या नहीं, संख्या का मूल है । नरक गति में नारक एक साथ संख्यात उत्पन्न होते हैं । उत्पत्ति की इस समानता से उन्हें कति-संचित कहा गया है । तथा नारक एक साथ असंख्यात भी उत्पन्न होते हैं, अतः उन्हें अकति-संचित भी कहा गया है । कभी-कभी जघन्य रूप से एक ही नारक नरकगति में उत्पन्न होता है अतः उसे अवक्तव्य-संचित कहा गया है, क्योंकि उसकी गणना न तो कति-संचित में की जा सकती है और न अकति-संचित में ही की जा सकती है । एकेन्द्रिय जीव प्रतिसमय या साधारण वनस्पति में अनन्त उत्पन्न होते हैं, वे केवल अकति-संचित ही होते हैं, अतः सूत्र में उनको छोड़ने का निर्देश किया गया है ।

परिचारणा-सूत्र

९—तिविहा परियारणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. एगे देवे अण्णे देवे, अण्णेसिं देवाणं देवीओ य अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय-विउव्विय परियारेति ।

२. एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पणिज्जिआओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्विय-विउव्विय परियारेति ।

३. एगे देवे णो अण्णे देवे, णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, णो अप्पणिज्जताओ देवीओ अभिजुंजिय-अभिजुंजिय परियारेति, अप्पाणमेव अप्पाणं विउव्विय-विउव्विय परियारेति ।

परिचारणा तीन प्रकार की कही गई है—१. कुछ देव अन्य देवों तथा अन्य देवों की देवियों का आलिंगन कर-कर परिचारणा करते हैं, कुछ देव अपनी देवियों का वार-वार आलिंगन करके परिचारणा करते हैं और कुछ देव अपने ही शरीर से बनाये हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करते हैं । परिचार का अर्थ मैथुन-सेवन है (९) ।

२. कुछ देव अन्य देवों तथा अन्य देवों की देवियों का वारंवार आलिगन करके परिचारणा नहीं करते, किन्तु अपनी देवियों का आलिगन कर-कर के परिचारणा करते हैं, तथा अपने ही शरीर से बनाये हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करते हैं।

३, कुछ देव अन्य देवों तथा अन्य देवों की देवियों से आलिंगन कर-कर परिचारणा नहीं करते, अपनी देवियों का भी आलिगन कर-करके परिचारणा नहीं करते। केवल अपने ही शरीर से वनाये हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करते हैं (९)।

मैथुन-प्रकार सूत्र

१०—तिविहे मेहुणे पण्णत्ते, तं जहा—दिव्वे, माणुस्सए, तिरिक्खजोणिए। ११—तम्रो मेहुणं गच्छंति, तं जहा—देवा, मणुस्सा, तिरिक्खजोणिया। १२—तम्रो मेहुणं सेवंति, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

मैथुन तीन प्रकार का कहा गया है—दिव्य, मानुष्य और तिर्यग्-योनिक (१०)। तीन प्रकार के जीव मैथुन करते हैं—देव, मनुष्य और तिर्यंच (११)। तीन प्रकार के जीव मैथुन का सेवन करते हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक (१२)।

योग-सूत्र

१३—तिविहे जोगे पण्णत्ते, तं जहा—मणजोगे, वइजोगे कायजोगे। एवं—णेरइयाणं विगलिंदियवज्जाणं जाव वेमाणियाणं। १४—तिविहे पम्रोगे पण्णत्ते, तं जहा—मणपम्रोगे, वइपम्रोगे कायपम्रोगे। जहा जोगो विगलिंदियवज्जाणं जाव तहा पम्रोगोवि।

योग तीन प्रकार का कहा गया है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। इसी प्रकार विकलेन्द्रियों (एकेन्द्रियों से लेकर चतुरिन्द्रियों तक के जीवों) को छोड़कर वैमानिक देवों तक के सभी दण्डकों में तीन-तीन योग होते हैं (१३)। प्रयोग तीन प्रकार का कहा गया है—मनःप्रयोग, वचन-प्रयोग और काय-प्रयोग। जैसा योग का वर्णन किया, उसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़ कर शेष सभी दण्डकों में तीनों ही प्रयोग जानना चाहिए (१४)।

करण-सूत्र

१५—तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे, एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं। १६—तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—आरंभकरणे, संरंभकरणे, समारंभकरणे। णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

करण तीन प्रकार का कहा गया है—मनःकरण, वचन-करण और काय-करण। इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर शेष सभी दण्डकों में तीनों ही करण होते हैं (१५) पुनः करण तीन प्रकार का कहा गया है—आरम्भकरण, संरम्भकरण और समारम्भकरण। ये तीनों ही करण वैमानिक-पर्यन्त सभी दण्डकों में पाये जाते हैं (१६)।

विवेचन—वीर्यान्तिराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली जीव की शक्ति या

वीर्य को योग कहते हैं। तत्त्वार्थसूत्रकार ने मन, वचन और काय की क्रिया को योग कहा है। योग के निमित्त से ही कर्मों का आस्रव और बन्ध होता है। मन से युक्त जीव के योग को मनोयोग कहते हैं। अथवा मन के कृत, कारित और अनुमतिरूप व्यापार को मनोयोग कहते हैं। इसी प्रकार वचन-योग और काययोग का भी अर्थ जानना चाहिए। प्रयोजन-विशेष से किये जाने वाले मन-वचन-काय के व्यापार-विशेष को प्रयोग कहते हैं। योग के समान प्रयोग के भी तीन भेद होते हैं और उनसे कर्मों का विशेष आस्रव और बन्ध होता है। योगों के संरम्भ-समारम्भादि रूप परिणमन को करण कहते हैं। पृथ्वीकायिकादि जीवों के घात का मनमें संकल्प करना संरम्भ कहलाता है। उक्त जीवों को सन्ताप पहुंचाना समारम्भ कहलाता है और उनका घात करना आरम्भ कहलाता है। इस प्रकार योग, प्रयोग और करण इन तीनों के द्वारा जीव, कर्मों का आस्रव और बन्ध करते रहते हैं। साधारणतः योग, प्रयोग और करण को एकार्थक भी कहा गया है।

आयुष्य-सूत्र

१७—तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—पाणे अतिवातित्ता भवति, मुसं वइत्ता भवति, तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवति—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

तीन प्रकार से जीव अल्पआयुष्य कर्म का बन्ध करते हैं—प्राणों का अतिपात (घात) करने से, मृषाबाद बोलने से और तथारूप श्रमण माहन को अप्रासुक, अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार का प्रतिलाभ (दान) करने से। इन तीन प्रकारों से जीव अल्प आयुष्य कर्म का बन्ध करते हैं (१७)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में आये विशिष्ट पदों का अर्थ इस प्रकार है—संयम-साधना के अनुरूप वेष के धारक को तथारूप कहते हैं। अहिंसा के उपदेश देनेवाले को माहन कहते हैं। सजीव खान-पान की वस्तुओं को अप्रासुक कहते हैं। साधु के लिए अग्राह्य भोज्य पदार्थों को अनेषणीय कहते हैं। दाल, भात, रोटी आदि अशन कहलाते हैं। पीने के योग्य पदार्थ पान कहे जाते हैं। फल, मेवा आदि को खाद्य और लौंग, इलायची आदि स्वाद लेने योग्य पदार्थों को स्वाद्य कहते हैं।

१८—तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—णो पाणे अतिवातित्ता भवइ, णो मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा 'फासुएणं एसणिज्जेणं' असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

तीन प्रकार से जीव दीर्घायुष्य कर्म का बन्ध करते हैं—प्राणों का अतिपात न करने से, मृषावाद न बोलने से, और तथारूप श्रमण माहन को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार का प्रतिलाभ करने से। इन तीन प्रकारों से जीव दीर्घआयुष्य कर्म का बन्ध करते हैं (१८)।

१९—तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—पाणे अतिवातित्ता भवइ, मुसं वइत्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा हीलित्ता णिंदित्ता खिंसित्ता गरहित्ता अवमाणित्ता अण्णयरेणं अमणुण्णेणं अपीतिकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

तीन प्रकार से जीव अशुभ दीर्घायुष्य कर्म का बन्ध करते हैं—प्राणों का घात करने से, मृषावाद बोलने से और तथारूप श्रमण माहन की अवहेलना, निन्दा, अवज्ञा, गर्हा और अपमान कर कोई अमनोज्ञ तथा अप्रीतिकर अशन' पान, खाद्य, स्वाद्य का प्रतिलाभ करने से। इन तीन प्रकारों से जीव अशुभ दीर्घ आयुष्य कर्म का बन्ध करते हैं (१९)।

२०—तिहिं ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—णो पाणे अतिवातित्ता भवइ, णो मुसं वदित्ता भवइ, तहारूवं समणं वा माहणं वा वंदित्ता णमंसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाणं मंगलं-देवतं चेतितं पज्जुवासेत्ता मणुण्णेणं पीतिकारएणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेत्ता भवइ—इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउयत्ताए कम्मं पगरेंति।

तीन प्रकार से जीव शुभ दीर्घायुष्य कर्म का बन्ध करते हैं—प्राणों का घात न करने से, मृषावाद न बोलने से और तथारूप श्रमण माहन को वन्दन-नमस्कार कर, उनका सत्कार सम्मान कर, कल्याणकर, मंगल देवरूप तथा चैत्यरूप मानकर उनकी पर्युपासना कर उन्हें मनोज्ञ एवं प्रीतिकर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार का प्रतिलाभ करने से। तीन प्रकारों से जीव शुभ दीर्घायुष्य कर्म का बन्ध करते हैं (२०)।

गुप्ति-अगुप्ति-सूत्र

२१—तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती। २२—संजयमणुस्साणं तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती। २३—तओ अगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणअगुत्ती, वइअगुत्ती, कायअगुत्ती। एवं—णेरइयाणं जाव थणियकुमाराणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं असंजतमणुस्साणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं।

गुप्ति तीन प्रकार की कही गई हैं—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति (२१)। संयत मनुष्यों के तीनों गुप्तियां कही गई हैं—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति (२२)। अगुप्ति तीन प्रकार की कही गई है—मन-अगुप्ति, वचन-अगुप्ति और काय-अगुप्ति। इसी प्रकार नारकों से लेकर यावत् स्तनित कुमारों के, पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकों के, असंयत मनुष्यों के, वान-व्यन्तर देवों के, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के तीनों ही अगुप्तियां कही गई हैं (मन, वचन, काय के नियंत्रण को गुप्ति और नियंत्रण न रखने को अगुप्ति कहते हैं)। (२३)

दण्ड-सूत्र

२४—तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे, वइदंडे, कायदंडे। २५—णेरइयाणं तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे, वइदंडे, कायदंडे। विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

दण्ड तीन प्रकार के कहे गये हैं—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड (२४)। नारकों के तीन दण्ड कहे गये हैं—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सभी दण्डकों में तीनों ही दण्ड कहे गये हैं। (योगों की दुष्ट प्रवृत्ति को दण्ड कहते हैं) (२५)।

गर्हा-सूत्र

२६—तिविहा गरहा पण्णत्ता, तं जहा—मणसा वेगे गरहति, वयसा वेगे गरहति, कायसा वेगे गरहति—पावाणं कम्माणं अकरणयाए।

अहवा—गरहा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—दीहंपेगे अद्धं गरहति, रहस्संपेगे अद्धं गरहति, कायंपेगे पडिसाहरति—पावाणं कम्माणं अकरणयाए।

गर्हा तीन प्रकार की कही गई है—कुछ लोग मन से गर्हा करते हैं, कुछ लोग वचन से गर्हा करते हैं और कुछ लोग काया से गर्हा करते हैं—पाप कर्मों को नहीं करने के रूप से। अथवा गर्हा तीन प्रकार की कही गई है—कुछ लोग दीर्घकाल तक पाप-कर्मों को गर्हा करते हैं, कुछ लोग अल्प काल तक पाप-कर्मों की गर्हा करते हैं और कुछ लोग काया का निरोध कर गर्हा करते हैं · पाप कर्मों को नहीं करने के रूप से (भूतकाल में किये गये पापों की निन्दा करने को गर्हा कहते हैं।) (२६)।

प्रत्याख्यान-सूत्र

२७—तिविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसा वेगे पच्चक्खाति, वयसा वेगे पच्चक्खाति, कायसा वेगे पच्चक्खाति—[पावाणं कम्माणं अकरणयाए।

अहवा—पच्चक्खाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—दीहंपेगे अद्धं पच्चक्खाति, रहस्संपेगे अद्धं पच्चक्खाति, कायंपेगे पडिसाहरति—पावाणं कम्माणं अकरणयाए]।

प्रत्याख्यान तीन प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग मन से प्रत्याख्यान करते हैं, कुछ लोग वचन से प्रत्याख्यान करते हैं और कुछ लोग काया से प्रत्याख्यान करते हैं (पाप-कर्मों को आगे नहीं करने के रूप से।

अथवा प्रत्याख्यान तीन प्रकार का कहा गया है—कुछ लोग दीर्घकाल तक पापकर्मों का प्रत्याख्यान करते हैं, कुछ लोग अल्पकाल तक पाप-कर्मों का प्रत्याख्यान करते हैं और कुछ लोग काया का निरोध कर प्रत्याख्यान करते हैं पाप-कर्मों को आगे नहीं करने के रूप से (भविष्य में पाप कर्मों के त्याग को प्रत्याख्यान कहते हैं।) (२७)।

उपकार-सूत्र

२८—तओ रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—पत्तोवगे, पुप्फोवगे, फलोवगे।

एवामेव तओ पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—पत्तोवारुक्खसमाणे, पुप्फोवारुक्खसमाणे, फलोवारुक्खसमाणे।

वृक्ष तीन प्रकार के कहे गये हैं—पत्रों वाले, पुष्पों वाले और फलों वाले। इसी प्रकार पुरुष भी तीन प्रकार के कहे गये हैं—पत्रोंवाले वृक्ष के समान अल्प उपकारी, पुष्पोंवाले वृक्ष के समान विशिष्ट उपकारी और फलोंवाले वृक्ष के समान विशिष्टतर उपकारी (२८)।

विवेचन—केवल पत्ते वाले वृक्षों से पुष्पों वाले और उनसे भी अधिक फलवाले वृक्ष लोक में उत्तम माने जाते हैं। जो पुरुष दुःखी पुरुष को आश्रय देते हैं वे पत्रयुक्त वृक्ष के समान हैं। जो आश्रय के साथ उसके दुःख दूर करने का अश्वासन भी देते हैं, वे पुष्पयुक्त वृक्ष के समान हैं और उसका भारण-पोषण भी करते हैं वे फलयुक्त वृक्ष के समान हैं।

पुरुषजात-सूत्र

२९—तम्रो पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—णामपुरिसे, ठवणपुरिसे, दव्वपुरिसे। ३०—तम्रो पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—णाणपुरिसे, दंसणपुरिसे, चरित्तपुरिसे। ३१—तम्रो पुरिसज्जाया पण्णत्ता, तं जहा—वेदपुरिसे, चिंधपुरिसे, अभिलावपुरिसे। ३२—तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, तं जहा—उत्तमपुरिसा, मज्झिमपुरिसा, जहण्णपुरिसा। ३३—उत्तमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मपुरिसा, भोगपुरिसा, कम्मपुरिसा। धम्मपुरिसा अरहंता, भोगपुरिसा चक्कवट्टी, कम्मपुरिसा वासुदेवा। ३४—मज्झिमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उग्गा, भोगा, राइण्णा। ३५—जहण्ण-पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—दासा, भयगा, भाइल्लगा।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—नामपुरुष, स्थापनापुरुष और द्रव्यपुरुष (२९)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानपुरुष, दर्शनपुरुष और चारित्रपुरुष (३०)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—वेदपुरुष, चिह्नपुरुष और अभिलापपुरुष (३१)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं— उत्तमपुरुष, मध्यम पुरुष और जघन्य पुरुष (३२) उत्तम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—धर्मपुरुष (अरहन्त) भोगपुरुष (चक्रवर्ती) और कर्मपुरुष (वासुदेव) (३३)। मध्यम पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—उग्र, भोग और राजन्य (३४) जघन्य पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—दास, भृतक और भागीदार (३५)।

विवेचन—उक्त सूत्रों में कहे गये विविध प्रकार के पुरुषों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

नामपुरुष—जिस चेतन या अचेतन वस्तु का 'पुरुष' नाम हो वह।

स्थापनापुरुष—पुरुष की मूर्ति या जिस किसी अन्य वस्तु में 'पुरुष' का संकल्प किया हो वह।

द्रव्यपुरुष—पुरुष रूप में भविष्य में उत्पन्न होने वाला जीव या पुरुष का मृत शरीर।

दर्शनपुरुष—विशिष्ट सम्यग्दर्शन वाला पुरुष।

चारित्रपुरुष—विशिष्ट चारित्र से संपन्न पुरुष।

वेदपुरुष—पुरुष वेद का अनुभव करने वाला जीव।

चिह्नपुरुष—दाढ़ी-मूंछ आदि चिह्नों से युक्त पुरुष।

अभिलापपुरुष—लिंगानुशासन के अनुसार पुल्लिग द्वारा कहा जाने वाला शब्द।

उत्तम प्रकार के पुरुषों में भी उत्तम धर्मपुरुष तीर्थंकर अरहन्त देव होते हैं। उत्तम प्रकार के मध्यम पुरुषों में भोगपुरुष चक्रवर्ती माने जाते हैं और उत्तम प्रकार के जघन्यपुरुषों में कर्मपुरुष वासुदेव नारायण कहे गये हैं।

मध्यम प्रकार के तीन पुरुष उग्र, भोग या भोज और राजन्य हैं। उग्रवंशी या प्रजा-संरक्षण का कार्य करने वालों को उग्रपुरुष कहा जाता है। भोग या भोजवंशी एवं गुरु, पुरोहित स्थानीय पुरुषों को भोग या भोज पुरुष कहा जाता है। राजा के मित्र-स्थानीय पुरुषों को राजन्य पुरुष कहते हैं।

जघन्य प्रकार के पुरुषों में दास, भृतक और भागीदार कर्मकर परिगणित हैं। मूल्य से खरीदे गये सेवक को दास कहा जाता है। प्रतिदिन मजदूरी लेकर काम करने वाले मजदूर को या मासिक वेतन लेकर काम करने वाले को भृतक कहते हैं। तथा जो खेती, व्यापार आदि में तीसरे,

चौथे आदि भाग को लेकर कार्य करते हैं, उन्हें भाइल्लक, भागी या भागीदार कहते हैं। वर्तमान में दासप्रथा समाप्तप्राय: है, दैनिक या मासिक वेतन पर काम करने वाले या खेती व्यापार में भागीदार बनकर काम करने वाले ही पुरुष अधिकतर पाये जाते हैं।

मत्स्य-सूत्र

३६—तिविहा मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा। ३७—अंडया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा। ३८—पोतया मच्छा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं—अण्डज (अंडे से उत्पन्न होने वाले) पोतज (बिना आवरण के उत्पन्न होने वाले) और सम्मूर्च्छिम (इधर उधर के पुद्गल-संयोगों से उत्पन्न होने वाले) (३६)। अण्डज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद वाले (३७)। पोतज मत्स्य तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदवाले। (संमूर्छिम मत्स्य नपुंसक ही होते हैं) (३८)।

पक्षि-सूत्र

३९—तिविहा पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा। ४०—अंडया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा। ४१—पोयया पक्खी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं—अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम (३९)। अण्डज पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदवाले (४०)। पोतज पक्षी तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदवाले (४१)।

परिसर्प-सूत्र

४२—एवमेतेणं अभिलावेणं उरपरिसप्पा वि भाणियव्वा, भुजपरिसप्पा वि [तिविहा उरपरिसप्पा पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा। ४३—अंडया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा। ४४—पोयया उरपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा। ४५—तिविहा भुजपरिसप्पा पण्णत्ता, तं जहा—अंडया, पोयया, संमुच्छिमा। ४६—अंडया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा। ४७—पोयया भुजपरिसप्पा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा]।

इसी प्रकार उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प का भी कथन जानना चाहिए। [उर-परिसर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम (४२)। अण्डज उर-परिसर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदवाले (४३)। पोतज उरपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदवाले (४४)। भुजपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम (४५)। अण्डज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद वाले (४६)। पोतज भुजपरिसर्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदवाले (४७)।]

विवेचन—उदर, वक्षःस्थल अथवा भुजाओं आदि के बलपर सरकने या चलने वाले जीवों को परिसर्प कहा जाता है। इन की जातियां मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं—उरःपरिसर्प और भुज-परिसर्प। पेट और छाती के बलपर रेंगने या सरकने वाले सांप आदि को उरःपरिसर्प कहते हैं और भुजाओं के बल पर चलने वाले नेउले, गोह आदि को भुजपरिसर्प कहते हैं। इन दोनों जातियों के अण्डज और पोतज जीव तो तीनों ही वेदवाले होते हैं। किन्तु सम्मूर्च्छिम जाति वाले केवल नपुंसक वेदी ही होते हैं।

स्त्री-सूत्र

४८—तिविहाओ इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तिरिक्खजोणित्थीओ, मणुस्सित्थीओ देवित्थीओ। ४९—तिरिक्खजोणीओ इत्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जलचरीओ थलचरीओ, खहचरीओ। ५०—मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कम्मभूमियाओ, अकम्मभूमियाओ अंतरदीविगाओ।

स्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं—तिर्यग्योनिकस्त्री, मनुष्यस्त्री और देवस्त्री (४८)। तिर्यग्योनिक स्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं—जलचरी स्थलचरी और खेचरी (नभश्चरी) (४९)। मनुष्य स्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं—कर्मभूमिजा, अकर्मभूमिजा और अन्तर्द्वीपजा (५०)।

विवेचन—नरक गति में नारक केवल एक नपुंसक वेद वाले होते हैं अतः शेष तीन गतिवाले जीवों में स्त्रियों का होना कहा गया है। तिर्यग्योनि के जीव तीन प्रकार के होते हैं, जलचर—मत्स्य, मेंढक आदि। स्थलचर—बैल भैंसा आदि। खेचर या नभश्चर—कबूतर, बगुला, आदि। इन तीनों जातियों की अपेक्षा उन की स्त्रियां भी तीन प्रकार की कही गई हैं। मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज। जहां पर मषि, असि, कृषि आदि कर्मों के द्वारा जीवन-निर्वाह किया जाता है, उसे कर्मभूमि कहते है। भरत, ऐरवत क्षेत्र में अवसर्पिणी आरे के अन्तिम तीन कालों में, तथा उत्सर्पिणी के प्रारम्भिक तीन कालों में कृषि आदि से जीविका चलाई जाती है, अतः उस समय वहां उत्पन्न होने वाले मनुष्य-तिर्यंचों को कर्मभूमिज कहा जाता है। विदेह क्षेत्र के देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर पूर्व और अपर विदेह में उत्पन्न होने वाले मनुष्य-तिर्यंच कर्म-भूमिज ही कहलाते हैं। शेष हैमवत आदि क्षेत्रों में तथा सुषमासुषमा आदि तीन कालों में उत्पन्न हुए मनुष्य-तिर्यंचों को अकर्मभूमिज या भोगभूमिज कहा जाता है, क्योंकि वहां के मनुष्य और तिर्यंच प्रकृति-जन्य कल्पवृक्षों द्वारा प्रदत्त भोगों को भोगते हैं। उक्त दो जाति के अतिरिक्त लवण आदि समुद्रों के भीतर स्थित द्वीपों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों को अन्तर्द्वीपज कहते हैं। इस प्रकार मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं, अतः उनकी स्त्रियां भी तीन प्रकार की कही गई हैं।

पुरुष-सूत्र

५१—तिविहा पुरिसा पण्णत्ता, तं जहा—तिरिक्खजोणियपुरिसा, मणुस्सपुरिसा, देवपुरिसा ५२—तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलचरा, थलचरा, खहचरा। ५३—मणुस्स पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—कम्मभूमिया, अकम्मभूमिया, अंतरदीवगा।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—तिर्यग्योनिक पुरुष, मनुष्य-पुरुष और देव-पुरुष (५१)।

तिर्यग्योनिक पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—जलचर, स्थलचर और खेचर (५२)। मनुष्य-पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज (५३)।

नपुंसक-सूत्र

५४—तिविहा णपुंसगा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयणपुंसगा, तिरिक्खजोणियणपुंसगा, मणुस्सणपुंसगा। ५५—तिरिक्खजोणियणपुंसगा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलयरा, थलयरा, खहयरा। ५६—मणुस्सणपुंसगा तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—कम्मभूमिगा, अकम्मभूमिगा, अंतरदीवगा।

नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं—नारक-नपुंसक, तिर्यग्योनिक-नपुंसक और मनुष्य-नपुंसक (५४)। तिर्यग्योनिक नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं—जलचर, स्थलचर और खेचर (५५)। मनुष्य-नपुंसक तीन प्रकार के कहे गये हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज (देवगति में नपुंसक नहीं होते) (५६)।

तिर्यग्योनिक-सूत्र

५७—तिविहा तिरिक्खजोणिया पण्णत्ता, तं जहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

तिर्यग्योनिक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं-स्त्रीतिर्यंच, पुरुषतिर्यंच और नपुंसकतिर्यंच(५७)।

लेश्या-सूत्र

५८—णेरइयाणं तओ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ५९—असुरकुमाराणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ६०—एवं जाव थणियकुमाराणं। ६१—एवं—पुढविकाइयाणं आउ-वणस्सतिकाइयाणवि। ६२—तेउकाइयाणं वाउकाइयाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदिआणवि तओ लेस्सा, जहा णेरइयाणं। ६३—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ६४—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं तओ लेसाओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा। ६५—एवं मणुस्साण वि [मणुस्साणं तओ लेसाओ संकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ६६—मणुस्साणं तओ लेसाओ असंकिलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा]। ६७—वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं। ६८—वेमाणियाणं तओ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।

नारकों में तीन लेश्याएं कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (५८)। असुरकुमारों में तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (५९)। इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देवों में तीनों अशुभ लेश्याएं कही गई हैं (६०)। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में भी तीनों अशुभ लेश्याएं होती हैं—कृष्ण-लेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (६१)। तेजस्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में भी नारकों के समान तीनों अशुभ लेश्याएं होती हैं (६२)। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिक जीवों में तीन अशुभलेश्याएं कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (६३)।

पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों में तीन शुभ लेश्याएं कही गई हैं—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (६४)। इसी प्रकार मनुष्यों में भी तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (६५)। मनुष्यों में तीन शुभ लेश्याएं भी कही गई हैं—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, और शुक्ल-लेश्या (६६)।) वान-व्यन्तरों में असुरकुमारों के समान तीन अशुभ लेश्याएं कही गई हैं (६७)। वैमानिक देवों में तीन शुभ लेश्याएं कही गई हैं—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (६८)।

विवेचन—यद्यपि तत्त्वार्थसूत्र आदि में असुरकुमार आदि भवनवासी और व्यन्तरदेवों के तेजो-लेश्या भी बतलाई गई है, परन्तु इस स्थान में तीन-तीन का संकलन विवक्षित है, अतः उनमें केवल तीन अशुभ लेश्याओं का ही कथन किया गया है। लेश्याओं के स्वरूप का विवेचन प्रथम स्थान के लेश्यापद में किया जा चुका है।

तारारूप-चलन-सूत्र

६९—तिहिं ठाणेहिं तारारूवे चलेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा, परियारेमाणे वा, ठाणाओ वा ठाणं संकममाणे तारारूवे चलेज्जा।

तीन कारणों से तारा चलित होता है—विक्रिया करते हुए, परिचारणा करते हुए और एक स्थान से दूसरे स्थान में संक्रमण करते हुए।

देवविक्रिया-सूत्र

७०—तिहिं ठाणेहिं देवे विज्जुयारं करेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा, परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढि जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमं उवदंसेमाणे—देवे विज्जुयारं करेज्जा। ७१—तिहिं ठाणेहिं देवे थणियसद्दं करेज्जा, तं जहा—विकुव्वमाणे वा, [परियारेमाणे वा, तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढि जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमं उवदंसेमाणे—देवे थणियसद्दं करेज्जा]।

तीन कारणों से देव विद्युत्कार (विद्युत्प्रकाश) करते हैं—वैक्रियरूप करते हुए, परिचारणा करते हुए और तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए (७०)। तीन कारणों से देव मेघ जैसी गर्जना करते हैं—वैक्रिय रूप करते हुए, (परिचारणा करते हुए, और तथारूप श्रमण माहन के सामने अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार तथा पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए।) (७१)।

विवेचन—देवों के विद्युत् जैसा प्रकाश करने और मेघ जैसी गर्जना करने के तीसरे कारण में उल्लिखित ऋद्धि आदि शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—विमान एवं परिवार आदि के वैभव को ऋद्धि कहते हैं। शरीर और आभूषण आदि की कान्ति को द्युति कहते हैं। प्रख्याति या प्रसिद्धि को यश कहते हैं। शारीरिक शक्ति को बल और आत्मिक शक्ति को वीर्य कहते हैं। पुरुषार्थ करने के अभिमान को पुरुषकार कहते हैं, तथा पुरुषार्थजनित अहंकार को पराक्रम कहते हैं। किसी संयमी साधु के समक्ष अपना वैभव आदि दिखलाने के लिए भी बिजली जैसा प्रकाश और मेघ जैसी गर्जना करते हैं।

अन्धकार-उद्योत-आदि-सूत्र

७२—तिहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंत-पण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे। ७३—तिहिं ठाणेहिं लोगुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

तीन कारणों से मनुष्यलोक में अंधकार होता है—अरहंतों के विच्छेद (निर्वाण) होने पर अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के विच्छेद होने पर और चतुर्दश पूर्वगत श्रुत के विच्छेद होने पर (७२)। तीन कारणों से मनुष्यलोक में उद्योत (प्रकाश) होता है—अरहन्तों (तीर्थकरों) के जन्म लेने के समय, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७३)।

७४—तिहिं ठाणेहिं देवंधकारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंत-पण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे। ७५—तिहिं ठाणेहिं देवुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहि पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु।

तीन कारणों से देवलोक में अंधकार होता है—अरहंतों के विच्छेद होने पर, अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म के विच्छेद होने पर और पूर्वगत श्रुत के विच्छेद होने पर (७४)। तीन कारणों से देवलोक के भवनों आदि में उद्योत होता है—अरहन्तों के जन्म लेने के समय, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७५)।

७६—तिहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ७७—एवं देवुक्कलिया, देवकहकहए [तिहिं ठाणेहिं देवुक्कलिया सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ७८—तिहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ७९—तिहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ८०—एवं—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति [तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]।

तीन कारणों से देव-सन्निपात (देवों का मनुष्यलोक में आगमन) होता है—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७६)। इसी प्रकार देवोत्कलिका और देव कह-कह भी जानना चाहिए। तीन कारणों से देवोत्कलिका (देवताओं की सामूहिक उपस्थिति) होती है—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७७)। तीन कारणों से देव कह-कह (देवों का कल-कल शब्द) होता है—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७८)।) तीन कारणों से देवेन्द्र शीघ्र मनुष्यलोक में आते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (७९)। इसी प्रकार सामानिक,

त्रायस्त्रिशक और लोकपाल देव, अग्रमहिषी देवियां, पारिषद्य देव, अनीकाधिपति, तथा आत्मरक्षक देव तीन कारणों से शीघ्र मनुष्य लोक में आते हैं। (अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय।) (८०)।

विवेचन—जो आज्ञा-ऐश्वर्य के को छोड़ कर स्थान, आयु, शक्ति, परिवार और भोगोपभोग आदि में इन्द्र के समान होते हैं, उन्हें सामानिक देव कहते हैं। इन्द्र के मंत्री और पुरोहित स्थानीय देवों को त्रायस्त्रिंश देव कहते हैं। यत: इनकी संख्या ३३ होती है, अत: उन्हें त्रायस्त्रिंश कहा जाता है। देवलोक का पालन करने वाले देवों को लोकपाल कहते हैं। इन्द्रसभा के सदस्यों को पारिषद्य, देवसेना के स्वामी को अनीकाधिपति और इन्द्र के अंग-रक्षक को आत्म-रक्षक कहते हैं।

८१—तिहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं जाव तं चेव [अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ८२—एवं आसणाइं चलेज्जा, सीहनायं करेज्जा, चेलुक्खेवं करेज्जा [तिहिं ठाणेहिं देवाणं आसणाइं चलेज्जा, तं जहा अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुत्पायमहिमासु। ८३—तिहिं ठाणेहिं देवा सीहणायं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु। ८४—तिहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेवं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ८५—तिहिं ठाणेहिं चेइयरुक्खा चलेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं [जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु]। ८६—तिहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं अरहंताणं णाणुप्पाय-महिमासु।

तीन कारणों से देव अपने सिंहासन से तत्काल उठ खड़े होते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, (अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय) (८१)। इसी प्रकार 'आसनों' का चलना, सिंहनाद करना और चेलोत्क्षेप करना भी जानना चाहिए। [तीन कारणों से देवों के आसन चलायमान होते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८२)। तीन कारणों से देव सिंहनाद करते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८३)। तीन कारणों से देव चेलोत्क्षेप (वस्त्रों का उछालना) करते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८४)।] तीन कारणों से देवों के चैत्य वृक्ष चलायमान होते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर [अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८५)।] तीन कारणों से लोकान्तिक देव तत्काल मनुष्य लोक में आते हैं—अरहन्तों के जन्म होने पर, अरहन्तों के प्रव्रजित होने के समय और अरहन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के समय (८६)।

दुष्प्रतीकार-सूत्र

८७—तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो! तं जहा—अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स।

१. संपातोवि य णं केइ पुरिसे अम्मापियरं सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेत्ता, सुरभिणा

गंधट्टएणं उव्वट्टित्ता, तिहिं उदगेहिं मज्जावेत्ता, सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता, मणुण्णं थालीपागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं भोयणं भोयावेत्ता जावज्जीवं पिट्ठिवडेंसियाए परिवहेज्जा, तेणावि तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियारं भवइ।

अहे णं से तं अम्मापियरं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियारं भवति समणाउसो!

२. केइ महच्चे दरिद्दं समुक्कसेज्जा। तए णं से दरिद्दे समुक्किट्ठे समाणे पच्छा पुरं च णं विउलभोगसमितिसमण्णागते यावि विहरेज्जा।

तए णं से महच्चे अण्णया कयाइ दरिद्दीहूए समाणे तस्स दरिद्दस्स अंतिए हव्वमागच्छेज्जा।

तए णं से दरिद्दे तस्स भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणावि तस्स दुप्पडियारं भवति।

अहे णं से तं भट्टिं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवति [समणाउसो! ?]।

३. केइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा णिसम्म कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णे।

तए णं से देवे तं धम्मायरियं दुब्भिक्खाओ वा देसाओ सुभिक्खं देसं साहरेज्जा, कंताराओ वा णिक्कंतारं करेज्जा, दीहकालिएणं वा रोगातंकेणं अभिभूतं समाणं विमोएज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियारं भवति।

अहे णं से तं धम्मायरियं केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भट्ठं समाणं भुज्जोवि केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स धम्मायरियस्स सुप्पडियारं भवति [समणाउसो! ?]।

हे आयुष्मान् श्रमणो! ये तीन दुष्प्रतीकार हैं—इनसे उऋण होना दुःशक्य है—माता-पिता, भर्ता (पालन-पोषण करने वाला स्वामी) और धर्माचार्य।

१. कोई पुरुष (पुत्र) अपने माता-पिता का प्रातःकाल होते ही शतपाक और सहस्रपाक तेलों से मर्दन कर, सुगन्धित चूर्ण से उबटन कर, सुगन्धित जल, शीतल जल एवं उष्ण जल से स्नान कराकर, सर्व अलंकारों से उन्हें विभूषित कर, अठारह प्रकार के स्थाली-पाक शुद्ध व्यंजनों से युक्त भोजन कराकर, जीवन-पर्यन्त पृष्ठ्यवतंसिका से (पीठ पर बैठाकर, या कावड़ में बिठाकर कन्धे से) उनका परिवहन करे, तो भी वह उनके (माता-पिता के) उपकारों से उऋण नहीं हो सकता। हे आयुष्मान् श्रमणो! वह उनसे तभी उऋण हो सकता है जब कि उन माता-पिता को संबोधित कर, धर्म का स्वरूप और उसके भेद-प्रभेद बताकर केवलि-प्रज्ञप्त धर्म में स्थापित करता है।

२. कोई धनिक व्यक्ति किसी दरिद्र पुरुष का धनादि से समुत्कर्ष करता है। संयोगवश कुछ समय के बाद या शीघ्र ही वह दरिद्र, विपुल भोग-सामग्री से सम्पन्न हो जाता है और वह उपकारक धनिक व्यक्ति किसी समय दरिद्र होकर सहायता की इच्छा से उसके समीप आता है। उस समय वह भूतपूर्व दरिद्र अपने पहले वाले स्वामी को सब कुछ अर्पण करके भी उसके उपकारों से उऋण

नहीं हो सकता। हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह उसके उपकार से तभी उऋण हो सकता है जबकि उसे संबोधित कर, धर्म का स्वरूप और उसके भेद-प्रभेद बताकर केवलि-प्रज्ञप्त धर्म में स्थापित करता है।

३. कोई व्यक्ति तथारूप श्रमण माहन के (धर्माचार्य के) पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनकर, हृदय में धारण कर मृत्युकाल में मरकर, किसी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होता है। किसी समय वह देव अपने धर्माचार्य को दुर्भिक्ष वाले देश से सुभिक्ष वाले देश में लाकर रख दे, जंगल से बस्ती में ले आवे, या दीर्घकालीन रोगातङ्क से पीड़ित होने पर उन्हें उससे विमुक्त कर दे, तो भी वह देव उस धर्माचार्य के उपकार से उऋण नहीं हो सकता है। हे आयुष्मान् श्रमणो ! वह उनसे तभी उऋण हो सकता है जब कदाचित् उस धर्माचार्य के केवलि-प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाने पर उसे संबोधित कर, धर्मका स्वरूप और उसके भेद-प्रभेद बताकर केवलि-प्रज्ञप्त धर्म में स्थापित करता है।

विवेचन—टीकाकार अभयदेवसूरि ने शतपाक के चार अर्थ किये हैं—१. सौ औषधियों के क्वाथ से पकाया गया, २. सौ औषधियों के साथ पकाया गया, ३. सौ वार पकाया गया और ४. सौ रुपयों के मूल्य से पकाया गया तेल। इसी प्रकार सहस्रपाक तेल के चार अर्थ किये हैं। स्थाली-पाक का अर्थ है—हांडी,कुंडी या वटलोई, भगौनी आदि में पकाया गया भोजन। सूत्र-पठित अष्टादश पद को उपलक्षण मानकर जितने भी खान-पान के प्रकार हो सकते हैं, उन सबको यहाँ इस पद से ग्रहण करना चाहिए।

व्यतिव्रजन-सूत्र

८८—तिहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंत-संसारकंतारं वीईवएज्जा, तं जहा—अणिदाणयाए, दिट्ठिसंपण्णयाए, जोगवाहियाए।

तीन स्थानों से सम्पन्न अनगार (साधु) इस अनादि-अनन्त, अतिविस्तीर्ण चातुर्गतिक संसार कान्तार से पार हो जाता है—अनिदानता से (भोग-प्राप्ति के लिए निदान नहीं करने से) दृष्टि-सम्पन्नता से (सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से) और योगवाहिता से (८८)।

विवेचन—अभयदेव सूरिने योगवाहिता के दो अर्थ किये हैं—१. श्रुतोपधानकारिता, अर्थात् शास्त्राभ्यास के लिए आवश्यक अल्पनिद्रा लेना, अल्प भोजन करना, मित-भाषण करना, विकथा, हास्यादि का त्याग करना। २. समाधिस्थायिता-अर्थात् काम-क्रोध आदि का त्याग कर चित्त में शांति और समाधि रखना। इस प्रकार की योगवाहिता के साथ निदान-रहित एवं सम्यक्त्व सम्पन्न साधु इस अनादि-अनन्त संसार से पार हो जाता है।

कालचक्र-सूत्र

८९—तिविहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। ९०—एवं छप्पि समाओ भाणियव्वाओ, जाव दूसमदूसमा [तिविहा सुसम-सुसमा, तिविहा सुसमा, तिविहा सुसम-दूसमा, तिविहा दूसम-सुसमा, तिविहा दूसमा, तिविहा दूसम-दूसमा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा]। ९१—तिविहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। ९२—एवं छप्पि समाओ भाणियव्वाओ [तिविहा दुस्सम-दुस्समा, तिविहा दुस्समा, तिविहा दुस्सम-सुसमा, तिविहा सुसम-दुस्समा, तिविहा सुसमा, तिविहा सुसम-सुसमा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा]।

अवसर्पिणी तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (८९)। इसी प्रकार दुःषम दुःषमा तक छहों आरा जानना चाहिए, यथा [सुषमसुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषमा-दुःषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुःषम-सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुःषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुःषम-दुःषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। (९०)।]

उत्सर्पिणी तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (९१)। इसी प्रकार छहों आरा जानना चाहिए यथा—[दुःषम-दुःषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुःषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। दुःषम-सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषम दुःषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। सुषम सुषमा तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (९२)।]

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-सूत्र

९३—तिहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, तं जहा—आहारिज्जमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, विकुव्वमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, ठाणाओ वा ठाणं संकामिज्जमाणे पोग्गले चलेज्जा।

अच्छिन्न पुद्गल (स्कन्ध के साथ संलग्न पुद्गल परमाणु) तीन कारणों से चलित होता है—जीवों के द्वारा आकृष्ट होने पर चलित होता है, विक्रियमाण (विक्रियावशवर्त्ती) होने पर चलित होता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर संक्रमित होने पर (हाथ आदि द्वारा हटाने पर) चलित होता है।

उपधि-सूत्र

९४—तिविहे उवधी पण्णत्ते, तं जहा—कम्मोवही, सरीरोवही, बाहिरभंडमत्तोवही। एवं असुरकुमाराणं भाणियव्वं। एवं—एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं।

अहवा—तिविहे उवधी पण्णत्ते, तं जहा—सचित्ते, अचित्ते, मीसए। एवं—णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

उपधि तीन प्रकार की कही गई है—कर्म-उपधि, शरीर-उपधि और वस्त्र-पात्र आदि बाह्य-उपधि। यह तीनों प्रकार की उपधि एकेन्द्रियों और नारकों को छोड़कर असुरकुमारों से लेकर वैमानिक-पर्यन्त सभी दण्डकों में कहना चाहिए।

विवेचन—जिस के द्वारा जीव और उसके शरीर आदि का पोषण हो उसे उपधि कहते हैं। नारकों और एकेन्द्रिय जीव बाह्य-उपकरणरूप उपधि से रहित होते हैं, अतः यहां उन्हें छोड़ दिया गया है। आगे परिग्रह के विषय में भी यही समझना चाहिए।

परिग्रह-सूत्र

९५—तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—कम्मपरिग्गहे, सरीरपरिग्गहे, बाहिरभंडमत्त-परिग्गहे। एवं—असुरकुमाराणं। एवं—एगिंदियणेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं।

अहवा—तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—सचित्ते, अचित्ते, मीसए। एवं—णेरइयाणं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

परिग्रह तीन प्रकार का कहा गया है—कर्मपरिग्रह, शरीरपरिग्रह और वस्त्र-पात्र आदि बाह्य परिग्रह। यह तीनों प्रकार का परिग्रह एकेन्द्रिय और नारकों को छोड़कर सभी दण्डकवाले जीवों के होता है। अथवा तीन प्रकार का परिग्रह कहा गया है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। यह तीनों प्रकार का परिग्रह सभी दण्डकवाले जीवों के होता है।

प्रणिधान-सूत्र

९६—तिविहे पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणपणिहाणे, वयपणिहाणे, कायपणिहाणे। एवं—पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं। ९७—तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे कायसुप्पणिहाणे। ९८—संजयमणुस्साणं तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे। ९९—तिविहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे। एवं—पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

प्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है—मन:प्रणिधान, वचनप्रणिधान और कायप्रणिधान (९६)। ये तीनों प्रणिधान पंचेन्द्रियों से लेकर वैमानिक देवों तक सभी दण्डकों में जानना चाहिए। सुप्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है—मन:सुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान और कायसुप्रणिधान (९७)। संयत मनुष्यों के तीन सुप्रणिधान कहे गये हैं—मन:सुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान और कायसुप्रणिधान (९८)। दुष्प्रणिधान तीन प्रकार का कहा गया है—मन:दुष्प्रणिधान, वचनदुष्प्रणि-धान और कायदुष्प्रणिधान। ये तीनों दुष्प्रणिधान सभी पंचेन्द्रियों में यावत् वैमानिक देवों में पाये जाते हैं (९९)।

विवेचन—उपयोग की एकाग्रता को प्रणिधान कहते हैं। यह एकाग्रता जब जीव-संरक्षण आदि शुभ व्यापार रूप होता है, तब उसे सुप्रणिधान कहा जाता है और जीव-घात आदि अशुभ व्यापार रूप होती है, तब उसे दुष्प्रणिधान कहा जाता है। यह एकाग्रता केवल मानसिक ही नहीं होती, बल्कि वाचनिक और कायिक भी होती है, इसीलिए उसके भेद बतलाये गये हैं।

योनि-सूत्र

१००—तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—सीता, उसिणा, सीओसिणा। एवं—एगिंदियाणं विगलिंदियाणं तेउकाइयवज्जाणं संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं संमुच्छिममणुस्साण य। १०१—तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिया। एवं—एगिंदियाणं विगलिंदियाणं संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं संमुच्छिममणुस्साण य। १०२—तिविहा जोणी पण्णत्ता तं जहा—संवुडा, वियडा, संवुड-वियडा।

योनि (जीव की उत्पत्ति का स्थान) तीन प्रकार की कही गई है—शीतयोनि, उष्णयोनि और शीतोष्ण (मिश्र) योनि। तेजस्कायिक जीवों को छोड़कर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यच और सम्मूर्छिम मनुष्यों के तीनों ही प्रकार की योनियां कही गई हैं (१००)। पुनः योनि तीन प्रकार की कही गई है—सचित्त, अचित्त और मिश्र (सचित्ताचित्त)। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिमपंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के तीनों ही प्रकार की योनियां कही गई हैं (१०१)। पुनः योनि तीन प्रकार की होती है—संवृत, विवृत और संवृतविवृत (१०२)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने संवृत का अर्थ 'घटिकालयवत् संकटा' किया है और उसका हिन्दी अर्थ संकड़ी किया गया है। किन्तु आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में संवृत का अर्थ 'सम्यग्-वृतः संवृतः, दुरूपलक्ष्यः प्रदेशः' किया है जिसका अर्थ अच्छी तरह से आवृत या ढका हुआ स्थान होता है। इसी प्रकार विवृत का अर्थ खुला हुआ स्थान और संवृतविवृत का अर्थ कुछ खुला, कुछ ढंका अर्थात् अधखुला स्थान किया है। लाडनूं वाली प्रति में संवृत का अर्थ संकड़ी, विवृत का अर्थ चौड़ी और संवृतविवृत का अर्थ कुछ संकड़ी कुछ चौड़ी योनि किया है।

१०३—तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—कुम्मुण्णया, संखावत्ता, वंसीवत्तिया।

१. कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाऊणं। कुम्मुण्णयाए णं जोणिए तिविहा उत्तमपुरिसा गब्भं वक्कमंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

२. संखावत्ता णं जोणी इत्थीरयणस्स। संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति, णो चेव णं णिप्फज्जंति।

३. वंसीवत्तिता णं जोणी पिहज्जणस्स। वंसीवत्तिताए णं जोणिए बहवे पिहज्जणा गब्भं वक्कमंति।

पुनः योनि तीन प्रकार की कही गई है—कूर्मोन्नत (कछुए के समान उन्नत) योनि, शंखावर्त (शंख के समान आवर्तवाली) योनि, और वंशीपत्रिका (बांस के पत्ते के समान आकार वाली) योनि।

१. कूर्मोन्नत योनि उत्तम पुरुषों की माताओं के होती है। कूर्मोन्नत योनि में तीन प्रकार के उत्तम पुरुष गर्भ में आते हैं—अरहन्त (तीर्थंकर), चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव।

२. शंखावर्तयोनि (चक्रवर्ती के) स्त्रीरत्न की होती है। शंखावर्तयोनि में बहुत से जीव और पुद्गल उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, किन्तु निष्पन्न नहीं होते।

३. वंशीपत्रिकायोनि सामान्य जनों की माताओं के होती है। वंशीपत्रिका योनि में अनेक सामान्य जन गर्भ में आते हैं।

तृणवनस्पति-सूत्र

१०४—तिविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्जजीविका, असंखेज्जजीविका, अणंतजीविका।

तृणवनस्पतिकायिक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—१. संख्यात जीव वाले (नाल से बंधे हुए पुष्प) २. असंख्यात जीव वाले (वृक्ष के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वक्-छाल, शाखा और प्रवाल,) ३. अनन्त जीव वाले (पनक, फफूंदी, लीलन-फूलन आदि)।

तीर्थ-सूत्र

१०५—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तम्रो तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे। १०६—एवं एरवएवि। १०७—जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजये तम्रो तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे। १०८—एवं—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे वि पच्चत्थिमद्धे वि। पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धे वि, पच्चत्थिमद्धे वि।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भारतवर्ष में तीन तीर्थ कहे गये हैं—मागध, वरदाम और प्रभास (१०५)। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र में भी तीन तीर्थ कहे गये हैं (१०६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में एक-एक चक्रवर्ती के विजयखण्ड में तीन-तीन तीर्थ कहे गये हैं—मागध, वरदाम और प्रभास (१०७)। इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा पुष्करार्ध द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी तीन-तीन तीर्थ जानना चाहिए (१०८)।

कालचक्र-सूत्र

१०९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले होत्था। ११०—एवं ओसप्पिणीए नवरं पण्णत्ते [जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले पण्णत्ते। १११—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले भविस्सति]। ११२—एवं—धायइसंडे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि। एवं—पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि कालो भाणियव्वो।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम था (१०९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम कहा गया है (११०)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम होगा (१११)। इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी और इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी काल कहना चाहिए (११२)।

११३—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालइत्था। ११४—एवं—इमीसे ओसप्पिणीए, आगमिस्साए उस्सप्पिणीए। ११५—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउआइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, तिण्णि पलिओवमाइं परमाउं पालयंति। ११६—एवं जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा नामक आरे में मनुष्य की ऊंचाई तीन गव्यूति (कोश) की थी और उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी (११३)। इसी प्रकार इस वर्तमान अवसर्पिणी तथा आगामी उत्सर्पिणी में भी ऐसा ही जानना चाहिए (११४)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्यों की ऊंचाई तीन

योनि (जीव की उत्पत्ति का स्थान) तीन प्रकार की कही गई है—शीतयोनि, उष्णयोनि और शीतोष्ण (मिश्र) योनि। तेजस्कायिक जीवों को छोड़कर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच और सम्मूर्छिम मनुष्यों के तीनों ही प्रकार की योनियां कही गई हैं (१००)। पुनः योनि तीन प्रकार की कही गई है—सचित्त, अचित्त और मिश्र (सचित्ताचित्त)। एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिमपंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के तीनों ही प्रकार की योनियां कही गई हैं (१०१)। पुनः योनि तीन प्रकार की होती है—संवृत, विवृत और संवृतविवृत (१०२)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने संवृत का अर्थ 'घटिकालयवत् संकटा' किया है और उसका हिन्दी अर्थ संकड़ी किया गया है। किन्तु आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि में संवृत का अर्थ 'सम्यग्-वृतः संवृतः, दुरूपलक्ष्यः प्रदेशः' किया है जिसका अर्थ अच्छी तरह से आवृत या ढका हुआ स्थान होता है। इसी प्रकार विवृत का अर्थ खुला हुआ स्थान और संवृतविवृत का अर्थ कुछ खुला, कुछ ढंका अर्थात् अधखुला स्थान किया है। लाडनूं वाली प्रति में संवृत का अर्थ संकड़ी, विवृत का अर्थ चौड़ी और संवृतविवृत का अर्थ कुछ संकड़ी कुछ चौड़ी योनि किया है।

१०३—तिविहा जोणी पण्णत्ता, तं जहा—कुम्मुण्णया, संखावत्ता, वंसीवत्तिया।

१. कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तमपुरिसमाऊणं। कुम्मुण्णयाए णं जोणिए तिविहा उत्तमपुरिसा गब्भं वक्कमंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

२. संखावत्ता णं जोणी इत्थीरयणस्स। संखावत्ताए णं जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति, णो चेव णं णिप्फज्जंति।

३. वंसीवत्तिता णं जोणी पिहज्जणस्स। वंसीवत्तिताए णं जोणिए बहवे पिहज्जणा गब्भं वक्कमंति।

पुनः योनि तीन प्रकार की कही गई है—कूर्मोन्नत (कछुए के समान उन्नत) योनि, शंखावर्त (शंख के समान आवर्तवाली) योनि, और वंशीपत्रिका (बांस के पत्ते के समान आकार वाली) योनि।

१. कूर्मोन्नत योनि उत्तम पुरुषों की माताओं के होती है। कूर्मोन्नत योनि में तीन प्रकार के उत्तम पुरुष गर्भ में आते हैं—अरहन्त (तीर्थंकर), चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव।

२. शंखावर्तयोनि (चक्रवर्ती के) स्त्रीरत्न की होती है। शंखावर्तयोनि में बहुत से जीव और पुद्गल उत्पन्न और विनष्ट होते हैं, किन्तु निष्पन्न नहीं होते।

३. वंशीपत्रिकायोनि सामान्य जनों की माताओं के होती है। वंशीपत्रिका योनि में अनेक सामान्य जन गर्भ में आते हैं।

तृणवनस्पति-सूत्र

१०४—तिविहा तणवणस्सइकाइया पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्जजीविका, असंखेज्जजीविका, अणंतजीविका।

तृणवनस्पतिकायिक जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—१. संख्यात जीव वाले (नाल से बंधे हुए पुष्प) २. असंख्यात जीव वाले (वृक्ष के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वक्-छाल, शाखा और प्रवाल,) ३. अनन्त जीव वाले (पनक, फफूंदी, लीलन-फूलन आदि)।

तीर्थ-सूत्र

१०५—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तम्रो तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे। १०६—एवं एरवएवि। १०७—जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्कवट्टिविजये तम्रो तित्था पण्णत्ता, तं जहा—मागहे, वरदामे, पभासे। १०८—एवं—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे वि पच्चत्थिमद्धे वि। पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धे वि, पच्चत्थिमद्धे वि।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भारतवर्ष में तीन तीर्थ कहे गये हैं—मागध, वरदाम और प्रभास (१०५)। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र में भी तीन तीर्थ कहे गये हैं (१०६)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में एक-एक चक्रवर्ती के विजयखण्ड में तीन-तीन तीर्थ कहे गये हैं—मागध, वरदाम और प्रभास (१०७)। इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा पुष्करार्ध द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी तीन-तीन तीर्थ जानना चाहिए (१०८)।

कालचक्र-सूत्र

१०९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले होत्था। ११०—एवं म्रोसप्पिणीए णवरं पण्णत्ते [जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे म्रोसप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले पण्णत्ते। १११—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु म्रागमिस्साए उस्सप्पिणीए सुसमाए समाए तिण्णि सागरोवमकोडाकोडीम्रो काले भविस्सति]। ११२—एवं—धायइसंडे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि। एवं—पुक्खरवरदीवद्धे पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे वि कालो भाणियव्वो।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम था (१०९)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम कहा गया है (११०)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के सुषमा नामक आरे का काल तीन कोडाकोडी सागरोपम होगा (१११)। इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी और इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी काल कहना चाहिए (११२)।

११३—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, तिण्णि पलिम्रोवमाइं परमाउं पालइत्था। ११४—एवं—इमीसे म्रोसप्पिणीए, म्रागमिस्साए उस्सप्पिणीए। ११५—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउम्राइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, तिण्णि पलिम्रोवमाइं परमाउं पालयंति। ११६—एवं जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा नामक आरे में मनुष्य की ऊंचाई तीन गव्यूति (कोश) की थी और उत्कृष्ट आयु तीन पल्योपम की थी (११३)। इसी प्रकार इस वर्तमान अवसर्पिणी तथा आगामी उत्सर्पिणी में भी ऐसा ही जानना चाहिए (११४)। जम्बूद्वीपनामक द्वीप के देवकुरु और उत्तरकुरु में मनुष्यों की ऊंचाई तीन

गव्यूति की कही गई है और उनकी तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु होती है (११५)। इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा पुष्करद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिए (११६)।

शलाकापुरुष-वंश-सूत्र

११७—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीए तओ वंसाओ उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंतवंसे, चक्कवट्टिवंसे, दसारवंसे। ११८—एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी काल में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे—अरहन्त-वंश, चक्रवर्ती-वंश और दशार-वंश (११७)। इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में तीन वंश उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं, तथा उत्पन्न होंगे (११८)।

शलाका-पुरुष-सूत्र

११९—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीए तओ उत्तम-पुरिसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेव-वासुदेवा। १२०—एवं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी में तीन प्रकार के उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव (११९)। इसी प्रकार धातकीखण्ड तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिए (१२०)।

आयुष्य-सूत्र

१२१—तओ अहाउयं पालयंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा। १२२—तओ मज्झिममाउयं पालयंति, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेववासुदेवा।

तीन प्रकार के पुरुष अपनी पूरी आयु का उपभोग करते हैं—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव (१२१)। तीनों अपने समय की मध्यम आयु का पालन करते हैं—अरहन्त, चक्रवर्ती और बलदेव-वासुदेव (१२२)।

१२३—बायरतेउकाइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं ठिती पण्णत्ता। १२४—बायरवाउ-काइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

बादर तेजस्कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन रात-दिन की कही गई है (१२३)। बादर वायुकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की कही गई है (१२४)।

योनिस्थिति-सूत्र

१२५—अह भंते! सालीणं वीहीणं गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं—एतेसि णं धण्णाणं

कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं पिहिताणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठति ?

जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायति। तेण परं जोणी पविद्धंसति। तेण परं जोणी विद्धंसति। तेण परं बीए अबीए भवति। तेण परं जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते।

हे भगवन् ! शालि, व्रीहि, गेहूं, जौ और यवयव (जौ विशेष) इन धान्यों की कोठे में सुरक्षित रखने पर, पल्य (धान्य भरने के पात्र-विशेष) में सुरिक्षत रखने पर, मचान और माले में डालकर, उनके द्वार-देश को ढक्कन ढक देने पर, उसे लीप देने पर, सर्व ओर से लीप देने पर, रेखादि से चिह्नित कर देने पर, मुद्रा (मोहर) लगा देने पर, अच्छी तरह बन्द रखने पर उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है ?

(हे आयुष्मन्) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक उनकी योनि रहती है। तत्पश्चात् योनि म्लान हो जाती है, तत्पश्चात् योनि विध्वस्त हो जाती है, तत्पश्चात् योनि विनष्ट हो जाती है, तत्पश्चात् बीज अबीज हो जाता है, तत्पश्चात् योनि का विच्छेद हो जाता है, अर्थात् वे बोने पर उगने योग्य नहीं रहते (१२५)।

नरक-सूत्र

१२६—दोच्चाए णं सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। १२७—तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। १२८—पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। १२९—तिसु णं पुढवीसु णेरइयाणं उसिणवेयणा पण्णत्ता, तं जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए। १३०—तिसु णं पुढवीसु णेरइया उसिणवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए।

दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी में नारकों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम कही गई है (१२६)। तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में नारकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम कही गई है (१२७)। पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी में तीन लाख नरकावास कहे गये हैं (१२८)। आदि की तीन पृथिवियों में नारकों के उष्ण वेदना कही गई है (१२९)। प्रथम, द्वितीय और तृतीय इन तीन पृथिवियों में नारक जीव उष्ण वेदना का अनुभव करते रहते हैं (१३०)।

सम-सूत्र

१३१—तओ लोगे समा सपक्खि सपडिदिसिं पण्णत्ता, तं जहा—अप्पइट्ठाणे णरए, जंबुद्दीवे दीवे, सव्वट्ठसिद्धे विमाणे।

लोक में तीन समान (प्रमाण की दृष्टि से एक लाख योजन विस्तीर्ण) सपक्ष (समश्रेणी की दृष्टि से उत्तर-दक्षिण समान पार्श्व वाले) और सप्रतिदिश (विदिशाओं में समान) कहे गये हैं—सातवीं पृथ्वी का अप्रतिष्ठान नामक नारकावास, जम्बूद्वीपनामक द्वीप और सर्वार्थसिद्धनामक अनुत्तर विमान (१३१)।

१३२—तओ लोगे समा सपक्खि सपडिदिसिं पण्णत्ता, त जहा—सीमंतए णं णरए, समयक्खेत्ते, ईसीपब्भारा पुढवी।

पुनः लोक में तीन समान (प्रमाण की दृष्टि से पैंतालीस लाख योजन विस्तीर्ण) सपक्ष और सप्रतिदिश कहे गये हैं—सीमन्तक (नामक प्रथम पृथिवी में प्रथम प्रस्तर का) नारकावास, समयक्षेत्र (मनुष्यक्षेत्र-अढाई द्वीप) और ईषत्प्राग्भारपृथ्वी (सिद्धशिला) (१३२)।

समुद्र-सूत्र

१३३—तओ समुद्दा पगईए उदगरसा पण्णत्ता, तं जहा—कालोदे, पुक्खरोदे, सयंभुरमणे। १३४—तओ समुद्दा बहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे, कालोदे, सयंभुरमणे।

तीन समुद्र प्रकृति से उदक रसवाले (पानी जैसे स्वाद वाले) कहे गये हैं—कालोद, पुष्करोद और स्वयम्भूरमण समुद्र (१३३)। तीन समुद्र बहुत मत्स्यों और कछुओं आदि जलचरजीवों से व्याप्त कहे गये हैं—लवणोद, कालोद और स्वयम्भूरमण समुद्र (अन्य समुद्रों में जलचर जीव थोड़े हैं) (१३४)।

उववात-सूत्र

१३५—तओ लोगे णिस्सीला णिव्वता णिग्गुणा णिम्मेरा णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववज्जंति, तं जहा—रायाणो, मंडलीया, जे य महारंभा कोडुंबी। १३६—तओ लोए सुसीला सुव्वया सग्गुणा समेरा सपच्चक्खाण-पोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—रायाणो परिचत्तकामभोगा, सेणावती, पसत्थारो।

लोक में ये तीन पुरुष—यदि शील-रहित, व्रत-रहित, निर्गुणी, मर्यादाहीन, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास से रहित होते हैं तो काल मास में काल करके नीचे सातवीं पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नारकावास में नारक के रूप से उत्पन्न होते हैं—राजा लोग (चक्रवर्ती और वासुदेव) माण्डलिक राजा और महारम्भी गृहस्थ जन (१३५)। लोक में ये तीन पुरुष जो सुशील, सुव्रती, सगुण, मर्यादावाले, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास करने वाले हैं—वे काल मास में काल करके सर्वार्थसिद्ध-नामक अनुत्तर विमान में देवता के रूप से उत्पन्न होते हैं—काम-भोगों को त्यागने वाले (सर्वविरत) जन, राजा, सेनापति और प्रशास्ता (जनशासक मंत्री आदि या धर्मशास्त्रपाठक) जन (१३६)।

विमान-सूत्र

१३७—बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु विमाणा तिवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—किण्णा, णीला, लोहिया।

ब्रह्मलोक और लान्तक देवलोक में विमान तीन वर्णवाले कहे गये हैं—कृष्ण, नील और लोहित (लाल)।

देव-सूत्र

१३८—आणयपाणयारणच्चुतेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जसरीरगा उक्कोसेणं तिण्णि रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में देवों के भव-धारणीय शरीर उत्कृष्ट तीन रत्नि-प्रमाण ऊंचे कहे गये हैं।

प्रज्ञप्ति-सूत्र

१३९—तओ पण्णत्तीओ कालेणं अहिज्जंति, तं जहा—चंदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती।

तीन प्रज्ञप्तियां यथाकाल (प्रथम और अंतिम पौरुषी में) पढ़ी जाती हैं—चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और द्वीपसागर प्रज्ञप्ति। (त्रिस्थानक होने से व्याख्याप्रज्ञप्ति तथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की विवक्षा नहीं की गई है।)

।। तृतीय स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त ।।

द्वितीय उद्देश

लोक-सूत्र

१४०—तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—णामलोगे, ठवणलोगे, दव्वलोगे। १४१—तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—णाणलोगे, दंसणलोगे, चरित्तलोगे। १४२—तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—उड्ढलोगे, अहोलोगे, तिरियलोगे।

लोक तीन प्रकार के कहे गये हैं—नामलोक स्थापनालोक और द्रव्यलोक (१४०)। पुन: लोक तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानलोक, दर्शनलोक और चारित्रलोक (ये तीनों भावलोक हैं) (१४१)। पुन: लोक तीन प्रकार के कहे गये हैं—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग्लोक (१४२)।

परिषद्-सूत्र

१४३—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिता, चंडा, जाया। अब्भितरिया समिता, मज्झिमिया चंडा, बाहिरिया जाया। १४४—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सामाणियाणं देवाणं तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिता जहेव चमरस्स। १४५—एवं—तायत्तीसगाणवि। १४६—लोगपालाणं—तुंबा तुडिया पव्वा। १४७—एवं—अग्गमहिसीणवि। १४८—बलिस्सवि एवं चेव जाव अग्गमहिसीणं।

असुरकुमारों के राजा चमर असुरेन्द्र की तीन परिषद् (सभा) कही गई हैं—समिता, चण्डा और जाता। आभ्यन्तर परिषद् का नाम समिता है, मध्य की परिषद् का नाम चण्डा है और बाहिरी परिषद् का नाम जाता है (१४३)। असुरकुमारों के राजा चमर असुरेन्द्र के सामानिक देवों की तीन परिषद् कही गई हैं—समिता, चण्डा और जाता (१४४)। इसी प्रकार चमर असुरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशकों की तीन परिषद् कही गई हैं (१४५)। चमर असुरेन्द्र के लोकपालों की तीन परिषद् कही गई हैं—तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा (१४६)। इसी प्रकार चमर असुरेन्द्र की अग्रमहिषियों की तीन परिषद् कही गई हैं—तुम्बा त्रुटिता और पर्वा (१४७)। वैरोचनेन्द्र बली की तथा उनके सामानिकों और त्रायस्त्रिंशकों की तीन-तीन परिषद् कही गई हैं—समिता चण्डा और जाता। उसके लोकपालों और अग्रमहिषियों की भी तीन-तीन परिषद् कही गई हैं—तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा (१४८)।

१४९—धरणस्स य सामाणिय-तायत्तीसगाणं च—समिता चंडा जाता। १५०—'लोगपालाणं अग्गमहिसीणं'—ईसा तुडिया दढरहा। १५१—जहा धरणस्स तहा सेसाणं भवणवासीणं।

नागकुमारों के राजा धरण नागेन्द्र, तथा उसके सामानिकों एवं त्रायस्त्रिंशकों की तीन-तीन परिषद् कही गई हैं—समिता, चण्डा और जाता (१४९)। धरण नागेन्द्र के लोकपालों और अग्र-

महिषियों की तीन-तीन परिषद् कही गई हैं—ईषा, त्रुटिता और दृढ़रथा (१५०)। जैसा धरण की परिषदों का वर्णन किया गया है, वैसा ही शेष भवनवासी देवों की परिषदों का भी जानना चाहिए (१५१)।

१५२—कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—ईसा तुडिया दढरहा। १५३—एवं—सामाणिय-अग्गमहिसीणं। १५४—एवं जाव गीयरतिगीयजसाणं।

पिशाचों के राजा काल पिशाचेन्द्र की तीन परिषद् कही गई हैं—ईशा, त्रुटिता और दृढ़रथा (१५२)। इसी प्रकार उसके सामानिकों और अग्रमहिषियों की भी तीन-तीन परिषद् जाननी चाहिए (१५३)। इसी प्रकार गन्धर्वेन्द्र गीतरति और गीतयश तक के सभी वाण-व्यन्तर देवेन्द्रों की तीन-तीन परिषद् कही गई हैं (१५४)।

१५५—चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तुंबा तुडिया पव्वा। १५६—एवं सामाणिय-अग्गमहिसीणं। १५७—एवं—सूरस्सवि।

ज्योतिष्क देवों के राजा चन्द्र ज्योतिष्केन्द्र की तीन परिषद् कही गई हैं—तुम्बा, त्रुटिता और पर्वा (१५५)। इसी प्रकार उसके सामानिकों और अग्रमहिषियों की भी तीन-तीन परिषद् कही गई हैं (१५६)। इसी प्रकार सूर्य इन्द्र की और उसके सामानिकों तथा अग्रमहिषियों की तीन-तीन परिषद् जाननी चाहिए (१५७)।

१५८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समिता, चंडा जाया। १५९—एवं—जहा चमरस्स जाव अग्गमहिसीणं। १६०—एवं जाव अच्चुतस्स लोगपालाणं।

देवों के राजा शक्र देवेन्द्र की तीन परिषद् कही गई हैं—समिता, चण्डा और जाता (१५८)। इसी प्रकार जैसे चमर की यावत् उसकी अग्रमहिषियों की परिषदों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार शक्र देवेन्द्र के सामानिकों और त्रायस्त्रिंशकों की तीन-तीन परिषद् जाननी चाहिए (१५९)। इसी प्रकार ईशानेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र तक के सभी इन्द्रों, उनकी अग्रमहिषियों, सामानिक, लोक-पाल और त्रायस्त्रिंशक देवों की भी तीन-तीन परिषद् जाननी चाहिए (१६०)।

याम-सूत्र

१६१—तओ जामा पण्णत्ता, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६२—तिहिं जामेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६३—एवं जाव [तिहिं जामेहिं आया केवलं बोधिं बुज्झेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६४—तिहिं जामेहिं आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६५—तिहिं जामेहिं आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६६—तिहिं जामेहिं आया केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६७—तिहिं जामेहिं आया केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १६८—तिहिं जामेहिं आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे

जामे, पच्छिमे जामे। १६९—तिहिं जामेहिं आया केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १७०—तिहिं जामेहिं आया केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १७१—तिहिं जामेहिं आया केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे। १७२—तिहिं जामेहिं आया] केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।

तीन याम (प्रहर) कहे गये हैं—प्रथम याम, मध्यम याम और पश्चिम याम (१६१)। तीनों ही यामों में आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म-श्रवण का लाभ पाता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६२)। [तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध बोधि को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६३)। तीनों ही यामों में आत्मा मुंडित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६४)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास में निवास करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६५)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध संयम से संयत होता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६६)। तीनों ही यामों में, आत्मा विशुद्ध संवर से संवृत होता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६७)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१६८)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम-याम में और पश्चिम याम में (१६९)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१७०)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध मन:पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१७१)। तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है]—प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में (१७२)।

विवेचन—साधारणत: याम का प्रसिद्ध अर्थ प्रहर, दिन या रात का चौथा भाग है। किन्तु यहां त्रिस्थान का प्रकरण होने से रात्रि को तथा दिन को तीन यामों में विभक्त करके वर्णन किया गया है। अर्थात् दिन और रात्रि के तीसरे भाग को याम कहा गया है। इस सूत्र का आशय यह है कि दिन रात का ऐसा कोई समय नहीं है, जिसमें कि आत्मा धर्म-श्रवण और विशुद्ध बोधि आदि को न प्राप्त कर सके। अर्थात् सभी समयों में प्राप्त कर सकता है।

वय:-सूत्र

१७३—तओ वया पण्णत्ता, तं जहा—पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए। १७४—तिहिं वएहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए। १७५—[एसो चेव गमो णेयव्वो जाव केवलनाणं ति तिहिं वएहिं आया—केवलं बोधि बुज्झेज्जा, केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, केवलेणं संजमेणं संजमेज्जा, केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं सुयणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा, केवलं केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए]।

वय (काल-कृत अवस्था-भेद) तीन कहे गये हैं—प्रथमवय, मध्यमवय और पश्चिमवय (१७३)। तीनों ही वयों में आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म-श्रवण का लाभ पाता है—प्रथमवय में, मध्यम वय में और पश्चिमवय में (१७४)। तीनों ही वयों में आत्मा विशुद्ध बोधि को प्राप्त होता है—प्रथमवय में, मध्यमवय में और पश्चिमवय में। इसी प्रकार तीनों ही वयों में आत्मा मुण्डित होकर अगार से विशुद्ध अनगारिता को पाता है, विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास में निवास करता है, विशुद्ध संयम के द्वारा संयत होता है, विशुद्ध संवर के द्वारा संवृत होता है, विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है, विशुद्ध श्रुतज्ञान को प्राप्त करता है, विशुद्ध अवधिज्ञान को प्राप्त करता है, विशुद्ध मनः पर्यवज्ञान को प्राप्त करता है और विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है—प्रथमवय में, मध्यमवय में और पश्चिमवय में (१७५)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने सोलह वर्ष तक बाल-काल, सत्तर वर्ष तक मध्यमकाल और इससे परे वृद्धकाल का निर्देश एक प्राचीन श्लोक को उद्धृत करके किया है। साधुदीक्षा आठ वर्ष के पूर्व नहीं होने का विधान है, अतः प्रकृत में प्रथमवय का अर्थ आठ वर्ष से लेकर तीस वर्ष तक का कुमार-काल लेना चाहिए। इकतीस वर्ष से लेकर साठ वर्ष तक के समय को युवावस्था या मध्यम-वय और उससे आगे की वृद्धावस्था को पश्चिमवय जानना चाहिए। वस्तुतः वयों का विभाजन आयुष्य की अपेक्षा रखता है और आयुष्य कालसापेक्ष है अतएव सदा-सर्वदा के लिए कोई भी एक प्रकार का विभाजन नहीं हो सकता।

बोधि-सूत्र

१७६—तिविधा बोधी पण्णत्ता, तं जहा—णाणबोधी, दंसणबोधी, चरित्तबोधी। १७७—तिविहा बुद्धा पण्णत्ता, तं जहा—णाणबुद्धा, दंसणबुद्धा, चरित्तबुद्धा।

बोधि तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञानबोधि, दर्शनबोधि और चारित्रबोधि (१७६)। बुद्ध तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानबुद्ध, दर्शनबुद्ध और चारित्रबुद्ध (१७७)।

मोह-सूत्र

१७८—एवं मोहे, मूढा [तिविहे मोहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणमोहे, दंसणमोहे, चरित्तमोहे। १७९—तिविहा मूढा पण्णत्ता, तं जहा—णाणमूढा, दंसणमूढा, चरित्तमूढा]।

मोह तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानमोह, दर्शनमोह और चारित्रमोह (१७८)। मूढ तीन प्रकार के कहे गये हैं—ज्ञानमूढ, दर्शनमूढ और चारित्रमूढ (१७९)।

विवेचन—यहां 'मोह' का अर्थ विपर्यास या विपरीतता है। ज्ञान का मोह होने पर ज्ञान अयथार्थ हो जाता है। दर्शन का मोह होने पर वह मिथ्या हो जाता है। इसी प्रकार चारित्र का मोह होने पर सदाचार असदाचार हो जाता है।

प्रव्रज्या-सूत्र

१८०—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहतो [लोग ?] पडिबद्धा। १८१—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—पुरतो पडिबद्धा, मग्गतो पडिबद्धा,

दुहओ पडिबद्धा। १८२—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, बुआवइत्ता। १८३—तिविहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ओवातपव्वज्जा, अक्खातपव्वज्जा, संगारपव्वज्जा।

प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—इहलोक प्रतिबद्धा (इस लोक-सम्बन्धी सुखों की प्राप्ति के लिए अंगीकार की जाने वाली) प्रव्रज्या, परलोक-प्रतिबद्धा (परलोक में सुखों की प्राप्ति के लिए स्वीकार की जाने वाली) प्रव्रज्या, और द्वयलोक-प्रतिबद्धा (दोनों लोकों में सुखों की प्राप्ति के लिए ग्रहण की जाने वाली) प्रव्रज्या (१८०)। पुनः प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—पुरतः प्रतिबद्धा, (आगे होने वाले शिष्यादि से प्रतिबद्ध) प्रव्रज्या, पृष्ठतः प्रतिबद्धा (पीछे के स्वजनादि के साथ स्नेह-सम्बन्ध विच्छेद होने से प्रतिबद्ध) प्रव्रज्या और उभयतः प्रतिबद्धा (आगे के शिष्य-आदि और पीछे के स्वजन आदि के स्नेह आदि से प्रतिबद्ध) प्रव्रज्या (१८१)। पुनः प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—तोदयित्वा (कष्ट देकर दी जाने वाली) प्रव्रज्या, प्लावयित्वा (दूसरे स्थान में ले जाकर दी जाने वाली) प्रव्रज्या, और वाचयित्वा (बातचीत करके दो जाने वाली) प्रव्रज्या (१८२)। पुनः प्रव्रज्या तीन प्रकार की कही गई है—अवपात (गुरु-सेवा से प्राप्त) प्रव्रज्या, आख्यात (उपदेश से प्राप्त) प्रव्रज्या, और संगार (परस्पर प्रतिज्ञा-बद्ध होकर ली जाने वाली) प्रव्रज्या (१८३)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने तोदयित्वा प्रव्रज्या के लिए 'सागरचन्द्र' का, प्लावयित्वा दीक्षा के लिए आर्यरक्षित का, और वाचयित्वा दीक्षा के लिए गौतमस्वामी से वार्तालाप कर एक किसान का उल्लेख किया है। इसी प्रकार आख्यातप्रव्रज्या के लिए फल्गुरक्षित का और संगारप्रव्रज्या के लिए मेतार्य के नाम का उल्लेख किया है। इनकी कथाएं कथानुयोग से जानना चाहिए।

निर्ग्रन्थ-सूत्र

१८४—तओ णियंठा णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता, तं जहा—पुलाए, णियंठे, सिणाए। १८५—तओ णियंठा सण्ण-णोसण्णोवउत्ता पण्णत्ता, तं जहा—बउसे, पडिसेवणाकुसीले, कसायकुसीले।

तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ नोसंज्ञा से उपयुक्त कहे गये हैं—पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक (१८४)। तीन प्रकार के निर्ग्रन्थ संज्ञा और नोसंज्ञा इन दोनों से उपयुक्त होते हैं—बकुश, प्रति-सेवना कुशील और कषायकुशील (१८५)।

विवेचन—ग्रन्थ का अर्थ परिग्रह है। जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित होते हैं, उन्हें निर्ग्रन्थ कहा जाता है। आहार आदि की अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं। जो इस प्रकार की संज्ञा से उपयुक्त होते हैं उन्हें संज्ञोपयुक्त कहते हैं और जो इस प्रकार की संज्ञा से उपयुक्त नहीं होते हैं, उन्हें नो-संज्ञोपयुक्त कहते हैं। इन दोनों प्रकार के निर्ग्रन्थों के जो तीन-तीन नाम गिनाये गये हैं, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. पुलाक—तपस्या-विशेष से लब्धि-विशेष को पाकर उसका उपयोग करके अपने संयम को असार करने वाले साधु को पुलाक कहते हैं।

२. निर्ग्रन्थ—जिसके मोह-कर्म उपशान्त हो गया है, ऐसे ग्यारहवें गुणस्थानवर्त्ती और जिसका मोहकर्म क्षय हो गया है ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनियों को निर्ग्रन्थ कहते हैं।

३. स्नातक—घन घाति चारों कर्मों का क्षय करने वाले तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्तों को स्नातक कहते हैं।

इन तीनों को नोसंज्ञोपयुक्त कहा गया है—

१. बकुश—शरीर और उपकरण की विभूषा द्वारा अपते चारित्ररूपी वस्त्र में धब्बे लगाने वाले साधु को बकुश कहते हैं।

२. प्रतिसेवनाकुशील—किसी मूल गुण की विराधना करने वाले साधु को प्रतिसेवना-कुशील कहते हैं।

३. कषायकुशील—क्रोधादि कषायों के आवेश में आकर अपने शील को कुत्सित करने वाले साधु को कषायकुशील कहते हैं।

इन तीनों प्रकार के साधुओं को संज्ञोपयुक्त और नो-संज्ञोपयुक्त कहा गया है। साधारण रूप से तो ये आहारादि की अभिलाषा से रहित होते हैं, किन्तु किसी निमित्त विशेष के मिलने पर आहार, भय आदि संज्ञाओं से उपयुक्त भी हो जाते हैं।

शैक्षभूमिसूत्र

१८६—तओ सेहभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा। उक्कोसा छम्मासा, मज्झिमा चउमासा, जहण्णा सत्तराइंदिया।

तीन शैक्षभूमियां कही गई हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य। उत्कृष्ट छह मास की, मध्यम चार मास की और जघन्य सात दिन-रात की (१८६)।

विवेचन—सामायिक चारित्र के ग्रहण करने वाले नवदीक्षित साधुको शैक्ष कहते हैं और उसके अभ्यास-काल को शैक्षभूमि कहते हैं। दीक्षा-ग्रहण करने के समय सर्व सावद्य प्रवृत्ति का त्याग रूप सामयिक चारित्र अंगीकार किया जाता है। उसमें निपुणता प्राप्त कर लेने पर छेदोपस्थापनीय चारित्र को स्वीकार किया जाता है, उसमें पांच महाव्रतों और छठे रात्रि-भोजन विरमण व्रत को धारण किया जाता है। प्रस्तुत सूत्र में सामायिकचारित्र की तीन भूमियां बतलाई गई हैं। छह मास की उत्कृष्ट शैक्षभूमि के पश्चात् निश्चित रूप से छेदोपस्थापनीय चारित्र स्वीकार करना आवश्यक होता है। यह मन्दबुद्धि शिष्य की भूमिका है। उसे दीक्षित होने के छह मास के भीतर सर्व सावद्य-योग के प्रत्याख्यान का, इन्द्रियों के विषयों पर विजय पाने का एवं साधु-समाचारी का भली-भाँति से अभ्यास कर लेना चाहिए। जो इससे अधिक बुद्धिमान शिष्य होता है, वह उक्त कर्त्तव्यों का चार मास में अभ्यास कर लेता है और उसके पश्चात् छेदोपस्थापनीय चारित्र को अंगीकार करता है। यह शैक्ष की मध्यम भूमिका है। जो नव दीक्षित प्रबल बुद्धि एवं प्रतिभावान् होता है और जिसकी पूर्वभूमिका तैयार होती है वह उक्त कार्यों को साठ दिन में ही सीखकर छेदोपस्थापनीय चारित्र को धारण कर लेता है, यह शैक्ष की जघन्य भूमिका है[1]।

व्यवहारभाष्य के अनुसार यदि कोई मुनि दीक्षा से भ्रष्ट होकर पुनः दीक्षा ले तो वह विस्मृत सामाचारी आदि को सात दिन में ही अभ्यास कर लेता है, अतः उसे सातवें दिन ही महाव्रतों में उप-स्थापित कर दिया जाता है। इस अपेक्षा से भी शैक्षभूमि के जघन्य काल का विधान संभव है।

१. व्यवहारभाष्य उ० २, गा० ५३-५४।

थेरभूमि-सूत्र

१८७—तओ थेरभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जातिथेरे, सुयथेरे, परियायथेरे। सट्ठिवासजाए समणे णिग्गंथे जातिथेरे, ठाणसमवायधरे णं समणे णिग्गंथे सुयथेरे, वीसवासपरियाए णं समणे णिग्गंथे परियायथेरे।

तीन स्थविरभूमियां कही गई हैं—जातिस्थविर, श्रुतस्थविर और पर्यायस्थविर। साठ वर्ष का श्रमण निर्ग्रन्थ जातिस्थविर (जन्म की अपेक्षा) है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग का ज्ञाता श्रमण निर्ग्रन्थ श्रुतस्थविर है और वीस वर्ष की दीक्षपर्यायवाला श्रमण निर्ग्रन्थ पर्यायस्थविर है।

सुमन-दुर्मनादिसूत्र : विभिन्न अपेक्षाओं से

१८८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुमणे, दुम्मणे, णोसुमणे-णोदुम्मणे। १८९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंता णामेगे सुमणे भवति, गंता णामेगे दुम्मणे भवति, गंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। १९०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जामीतेगे सुमणे भवति, जामीतेगे दुम्मणे भवति, जामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। १९१—एवं [तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—] जाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, [जाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]। १९२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अगंता णामेगे सुमणे भवति, [अगंता णामेगे दुम्मणे भवति, अगंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]। १९३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण जामि एगे सुमणे भवति, [ण जामि एगे दुम्मणे भवति, ण जामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]। १९४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण जाइस्सामि एगे सुमणे भवति, एवं [ण जाइस्सामि एगे दुम्मणे भवति, ण जाइस्सामि एगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—सुमनस्क (मानसिक हर्ष वाले), दुर्मनस्क (मानसिक विषाद-वाले) और नो-सुमनस्क-नोदुर्मनस्क (न हर्ष वाले, न विषादवाले, किन्तु मध्यस्थ) (१८८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष (कहीं बाहर) जाकर सुमनस्क होता है। कोई पुरुष जाकर दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष जाकर न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है। (१८९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं जाता हूं' इसलिए—ऐसा विचार करके सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं जाता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं जाता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९०)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं जाऊंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं जाऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'मैं जाऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९१)।

[पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'न जाने' पर सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'न जाने पर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'न जाने पर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'नहीं जाता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं जाता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं जाता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९३)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—'नहीं जाऊंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं जाऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं जाऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९४)।]

१९५—एवं [तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—] आगंता णामेगे सुमणे भवति, आगंता णामेगे दुम्मणे भवति, आगंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। १९६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—एमीतेगे सुमणे भवति, एमीतेगे दुम्मणे भवति, एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। १९७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—एस्सामीतेगे सुमणे भवति, एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे] भवति। १९८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अणागंता णामेगे सुमणे भवति, अणागंता णामेगे दुम्मणे भवति, अणागंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

एवं एएणं अभिलावेणं—

गंता य अगंता य, आगंता खलु तहा अणागंता।
चिट्ठित्तमचिट्ठित्ता, णिसितित्ता चेव णो चेव ॥१॥

हंता य अहंता य, छिंदित्ता खलु तहा अछिंदित्ता।
बूतित्ता अबूतित्ता, भासित्ता चेव णो चेव ॥२॥

दच्चा य अदच्चा य, भुंजित्ता खलु तहा अभुंजित्ता।
लंभित्ता अलंभित्ता, पिबइत्ता चेव णो चेव ॥३॥

सुतित्ता असुतित्ता, जुज्झित्ता खलु तहा अजुज्झित्ता।
जतित्ता अजयित्ता, पराजिणित्ता चेव णो चेव ॥४॥

सद्दा रूवा गंधा, रसा य फासा तहेव ठाणा य।
णिस्सीलस्स गरहिता, पसत्था पुण सीलवंतस्स ॥५॥

एवमिक्केक्के तिण्णि उ तिण्णि उ आलावगा भाणियव्वा।

१९९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण एमीतेगे सुमणे भवति, ण एमीतेगे दुम्मण भवति, ण एमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २००—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण एस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण एस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण एस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'आकर के' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'आकर के' दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'आकर के' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है—सम भाव में रहता है (१९५)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'आता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'आता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'आता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९६)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'आऊंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'आऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'आऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९७)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं आकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं आकर' दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'नहीं आकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं आता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं आता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं आता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (१९९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं आऊंगा' इसलिए

सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं आऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं आऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२००)।]

२०१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—चिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवति, चिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, चिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २०२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—चिट्ठामीतेगे सुमणे भवति, चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवति, चिट्ठामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २०३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवति, चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'ठहर कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'ठहर कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'ठहर कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०१)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'ठहरता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'ठहरता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'ठहरता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'ठहरूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'ठहरूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'ठहरूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०३)।]

२०४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अचिट्ठित्ता णामेगे सुमणे भवति, अचिट्ठित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अचिट्ठित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २०५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण चिट्ठामीतेगे सुमणे भवति, ण चिट्ठामीतेगे दुम्मणे भवति, ण चिट्ठामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २०६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण चिट्ठिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण चिट्ठिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण चिट्ठिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

[पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं ठहर कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं ठहर कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं ठहर कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०४)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं ठहरता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है, कोई पुरुष 'नहीं ठहरता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं ठहरता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०५)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं ठहरूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं ठहरूंगा' इस लिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं ठहरूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०६)।]

२०७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—णिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवति, णिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, णिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २०८—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—णिसीदामीतेगे सुमणे भवति, णिसीदामीतेगे दुम्मणे भवति, णिसीदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २०९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—णिसीदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, णिसीदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, णिसीदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'बैठ कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष

'बैठ कर' दुर्मनस्क होता है। कोई पुरुष 'बैठकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०७)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'बैठता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'बैठता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'बैठता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'बैठूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'बैठूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'बैठूंगा' इसलिये न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२०९)।]

२१०—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अणिसिइत्ता णामेगे सुमणे भवति, अणिसिइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अणिसिइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २११—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण णिसीदामीतेगे सुमणे भवति, ण णिसीदामीतेगे दुम्मणे भवति, ण णिसीदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २१२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण णिसीदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण णिसीदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण णिसीदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।]

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं बैठ कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं बैठ कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं बैठ कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१०)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं बैठता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं बैठता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं बैठता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२११)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है—कोई पुरुष 'नहीं बैठूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं बैठूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं बैठूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१२)।]

२१३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हंता णामेगे सुमणे भवति, हंता णामेगे दुम्मणे भवति, हंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २१४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हणामीतेगे सुमणे भवति, हणामीतेगे दुम्मणे भवति, हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २१५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।]

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मार कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मार कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मार कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१३)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'मारता हूँ' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मारता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मारता हूँ' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१४)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मारूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मारूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'मारूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१५)।]

२१६—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अहंता णामेगे सुमणे भवति, अहंता णामेगे दुम्मणे भवति, अहंता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २१७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं

जहा—ण हणामीतेगे सुमणे भवति, ण हणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण हणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २१८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण हणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण हणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण हणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।]

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं मारकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं मारकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं मारकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१६)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं मारता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं मारता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं मारता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१७)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं मारूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं मारूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं मारूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१८)।]

२१९—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति, छिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, छिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २२०—तओ—पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदामीतेगे सुमणे भवति, छिंदामीतेगे दुम्मणे भवति, छिंदामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २२१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष छेदन करके सुमनस्क होता है। कोई पुरुष छेदन करके दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष छेदन करके न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२१९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं छेदन करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं छेदन करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं छेदन करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२०)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं छेदन करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं छेदन करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं छेदन करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२१)।]

२२२—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अछिंदित्ता णामेगे सुमणे भवति, अछिंदित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अछिंदित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २२३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २२४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण छिंदिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण छिंदिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'छेदन नहीं कर' सुमनस्क होता है, कोई पुरुष 'छेदन नहीं कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'छेदन नहीं कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'छेदन नहीं करता हूं'

इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'छेदन नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'छेदन नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२३)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं छेदन करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं छेदन करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं छेदन करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२४)।]

२२५—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बूइत्ता णामेगे सुमणे भवति, बूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, बूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २२६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बेमीतेगे सुमणे भवति, बेमीतेगे दुम्मणे भवति, बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २२७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वोच्छामीतेगे सुमणे भवति, वोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति, वोच्छामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'बोलकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'बोलकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'बोलकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२५)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं बोलता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं बोलता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं बोलता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२६)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'बोलूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'बोलूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'बोलूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२७)।]

२२८—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अबूइत्ता णामेगे सुमणे भवति, अबूइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अबूइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २२९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण बेमीतेगे सुमणे भवति, ण बेमीतेगे दुम्मणे भवति, ण बेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २३०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण वोच्छामीतेगे सुमणे भवति, ण वोच्छामीतेगे दुम्मणे भवति, ण वोच्छामीतेगे णोसुमणे-णो-दुम्मणे भवति।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं बोलकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं बोलकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं बोलकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं बोलता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं बोलता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं-बोलता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२२९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं बोलूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं बोलूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं बोलूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३०)।

२३१—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भासित्ता णामेगे सुमणे भवति, भासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, भासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २३२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भासामीतेगे सुमणे भवति, भासामीतेगे दुम्मणे भवति, भासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे

भवति। २३३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, भासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति] ।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'संभाषण कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'संभाषण कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'संभाषण कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३१)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'मैं संभाषण करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं संभाषण करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं-संभाषण करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'मैं संभाषण करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'मैं संभाषण करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'मैं संभाषण करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३३)।

२३४—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अभासित्ता णामेगे सुमणे भवति, अभासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अभासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २३५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण भासामीतेगे सुमणे भवति, ण भासामीतेगे दुम्मणे भवति, ण भासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २३६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण भासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण भासिस्सामीते दुम्मणे भवति, च भासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं संभाषण कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं संभाषण कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं संभाषण कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३४)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं संभाषण करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं संभाषण करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं संभाषण करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३५)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं संभाषण करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं संभाषण करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं संभाषण करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३६)।]

दच्चा-अदच्चा-पद

२३७—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दच्चा णामेगे सुमणे भवति, दच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, दच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २३८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—देमीतेगे सुमणे भवति, देमीतेगे दुम्मणे भवति, देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २३९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दासामीतेगे सुमणे भवति, दासामीतेगे दुम्मणे भवति, दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'देकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'देकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'देकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क (२३७)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'देता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'देता-हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'देता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्म-

नस्क होता है (२३८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'दूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'दूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'दूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२३९)।]

२४०—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—अदच्चा णामेगे सुमणे भवति, अदच्चा णामेगे दुम्मणे भवति, अदच्चा णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २४१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण देमीतेगे सुमणे भवति, ण देमीतेगे दुम्मणे भवति, ण देमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २४२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण दासामीतेगे सुमणे भवति, ण दासामीतेगे दुम्मणे भवति, ण दासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं देकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं देकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं देकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४०)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं देता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं देता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं देता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४१)। कोई पुरुष 'नहीं दूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं दूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं दूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४२)।

[२४३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति, भुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, भुंजित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २४४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भुंजामीतेगे सुमणे भवति, भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति, भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २४५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति, भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'भोजन कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४३)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'भोजन करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४४)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'भोजन करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४५)।]

२४६—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अभुंजित्ता णामेगे सुमणे भवति, अभुंजित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अभुंजित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २४७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण भुंजामीतेगे सुमणे भवति, ण भुंजामीतेगे दुम्मणे भवति, ण भुंजामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २४८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण भुंजिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण भुंजिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण भुंजिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुप तीन प्रकार के कहे गये हैं--कोई पुरुप 'भोजन न करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन न करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन न करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४६)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'भोजन नहीं करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४७)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'भोजन नहीं करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'भोजन नहीं करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'भोजन नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४८)।

२४९—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—लभित्ता णामेगे सुमणे भवति, लभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, लभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २५०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—लभामीतेगे सुमणे भवति, लभामीतेगे दुम्मणे भवति, लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २५१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति, लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'प्राप्त कर के' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२४९)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'प्राप्त करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त करता हूं' इसलिए न सुमनस्के होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५०)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'प्राप्त करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५१)।

२५२—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अलभित्ता णामेगे सुमणे भवति, अलभित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अलभित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २५३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण लभामीतेगे सुमणे भवति, ण लभामीतेगे दुम्मणे भवति, ण लभामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २५४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण लभिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण लभिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण लभिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'प्राप्त न करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त न करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त न करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५२)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'प्राप्त नहीं करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५३)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'प्राप्त नहीं करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'प्राप्त नहीं करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'प्राप्त नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५४)।]

२५५—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पिबित्ता णामेगे सुमणे भवति, पिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, पिबित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २५६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पिबामीतेगे सुमणे भवति, पिबामीतेगे दुम्मणे भवति, पिबामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २५७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पिबिस्सामीतेगे सुमणे भवति, पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पीकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पीकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पीकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५५)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पीता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पीता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पीता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५६)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पीऊंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पीऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पीऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५७)।]

२५८—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अपिबित्ता णामेगे सुमणे भवति, अपिबित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अपिबित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २५९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण पिबामीतेगे सुमणे भवति, ण पिबामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पिबामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २६०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण पिबिस्सामितेगे सुमणे भवति, ण पिबिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पिबिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं पीकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं पीकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं पीकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं पीता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं पीता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं पीकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२५९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं पीऊंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं पीऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं पीऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६०)।]

२६१—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुइत्ता णामेगे सुमणे भवति, सुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, सुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २६२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुआमीतेगे सुमणे भवति, सुआमीतेगे दुम्मणे भवति, सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २६३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति, सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

'सोता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'सोता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'सोऊंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'सोऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'सोऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६३)।

२६४ – [तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—असुइत्ता णामेगे सुमणे भवति, असुइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, असुइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २६५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण सुआमीतेगे सुमणे भवति, ण सुसामीतेगे दुम्मणे भवति, ण सुआमीतेगे णोसुमणे-णोदुमम्णे भवति। २६६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण सुइस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण सुइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण सुइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कुछ पुरुष 'न सोने पर' सुमनस्क होते हैं। कुछ पुरुष 'न सोने पर' दुर्मनस्क होते हैं। तथा कुछ पुरुष 'न सोने पर' न सुमनस्क होते हैं और न दुर्मनस्क होते हैं (२६४)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं सोता हूँ' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं सोता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं सोता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६५) पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं सोऊंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं सोऊंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं सोऊंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६६)।]

२६७—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति, जुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, जुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २६८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुज्झामीतेगे सुमणे भवति, जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवति, जुज्झामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २६९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति, जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६७)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क हता है (२६८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२६९)।

२७०—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अजुज्झित्ता णामेगे सुमणे भवति, अजुज्झित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अजुज्झित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २७१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण जुज्झमीतेगे सुमणे भवति, ण जुज्झामीतेगे दुम्मणे भवति, ण जुज्झामीतेगे

णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २७२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण जुज्झिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण जुज्झिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण जुज्झिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७०)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७१)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'युद्ध नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७२)।]

२७३—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जइत्ता णामेगे सुमणे भवति, जइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, जइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २७४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जिणामीतेगे सुमणे भवति, जिणामीतेगे दुम्मणे भवति, जिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २७५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'जीत कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'जीतकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'जीत कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७३)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'जीतता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'जीतता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'जीतता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७४)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'जीतूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'जीतूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'जीतूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७५)।

२७६—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अजइत्ता णामेगे सुमणे भवति, अजइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अजइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २७७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण जिणामीतेगे सुमणे भवति, ण जिणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण जिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २७८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण जिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण जिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण जिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं जीत कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं जीत कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं जीत कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७६)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं जीतता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं जीतता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं जीतता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७७)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'नहीं जीतूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'नहीं जीतूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'नहीं जीतूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७८)।]

२७९—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति, पराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, पराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २८०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पराजिणामीतेगे सुमणे भवति, पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति, पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २८१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष (किसी को) 'पराजित करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२७९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है और कोई पुरुष 'पराजित करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८०)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८१)।

२८२—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अपराजिणित्ता णामेगे सुमणे भवति, अपराजिणित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, अपराजिणित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २८३—तओ पुरिसजया पण्णत्ता, तं जहा—ण पराजिणामीतेगे सुमणे भवति, ण पराजिणामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पराजिणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २८४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—ण पराजिणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, ण पराजिणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, ण पराजिणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित नहीं करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित नहीं करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित नहीं करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित नहीं करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८३)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'पराजित नहीं करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'पराजित नहीं करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'पराजित नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८४)।

२८५—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं सुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति, सद्दं सुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, सद्दं सुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २८६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं सुणामीतेगे सुमणे भवति, सद्दं सुणामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्दं सुणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २८७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, सद्दं सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्दं सुणिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द सुन करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष

'शब्द सुन करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुन करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८५)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द सुनता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द सुनता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुनता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८६)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द सुनूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द सुनूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुनूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८७)।]

२८८—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं असुणेत्ता णामेगे सुमणे भवति, सद्दं असुणेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, सद्दं असुणेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २८९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं ण सुणामीतेगे सुमणे भवति, सद्दं ण सुणामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्दं ण सुणामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे सुमणे भवति, सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, सद्दं ण सुणिस्सामीतेगे-णोसुमणे णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द नहीं सुन करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द नहीं सुन करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द नहीं सुन करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द सुनता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द सुनता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'शब्द सुनता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२८९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'शब्द नहीं सुनूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'शब्द नहीं सुनूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है और कोई पुरुष 'शब्द नहीं सुनूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९०)।]

२९१—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवं पासित्ता णामेगे सुमणे भवति, रूवं पासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रूवं पासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवं पासामीतेगे सुमणे भवति, रूवं पासामीतेगे दुम्मणे भवति, रूवं पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवं पासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, रूवं पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रूवं पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रूप देखकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप देखकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप देखकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९१)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'रूप देखता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप देखता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप देखता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'रूप देखूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप देखूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप देखूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९३)।

२९४—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवं अपासित्ता णामेगे सुमणे भवति, रूवं अपासित्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रूवं अपासित्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवं ण पासामीतेगे सुमणे भवति, रूवं ण पासामीतेगे दुम्मणे भवति, रूवं ण पासामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९६—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवं ण पासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, रूवं ण पासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रूवं ण पासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के होते हैं—कोई पुरुष 'रूप नहीं देखकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप नहीं देखकर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप न देखकर' न सुमनस्क होता है और न दुमनस्क होता है (२९४)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रूप नहीं देखता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप नहीं देखता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप नहीं देखता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९५)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रूप नहीं देखूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रूप नहीं देखूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रूप नहीं देखूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९६)।]

२९७—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंधं अग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, गंधं अग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, गंधं अग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंधं अग्घामीतेगे सुमणे भवति, गंधं अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति, गंधं अग्घामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। २९९—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंधं अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, गंधं अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, गंधं अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध सूंघकर के' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध सूंघ करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'गन्ध सूंघकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९७)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध सूंघता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध सूंघता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'गन्ध सूंघता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९८)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध सूंघूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध सूंघूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा पुरुष 'गन्ध सूंघूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (२९९)।]

३००—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, गंधं अणग्घाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३०१—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंधं ण अग्घामीतेगे सुमणे भवति, गंधं ण अग्घामीतेगे दुम्मणे भवति, गंधं ण अग्घामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३०२—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे सुमणे भवति, गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, गंधं ण अग्घाइस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघकर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघ कर' दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघकर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३००)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है तथा कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०१)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'गन्ध नहीं सूंघूगा' इसलिए न सुमनस्क होता है, और न दुर्मनस्क होता है (३०२)।

३०३—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रसं आसाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, रसं आसाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रसं आसाइत्ता णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३०४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रसं आसादेमीतेगे सुमणे भवति, रसं आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति, रसं आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३०५—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रसं आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति, रसं आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रसं आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन कर' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन कर' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन कर' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०३)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०४)। पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०५)।]

३०६—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रसं अणासाइत्ता णामेगे सुमणे भवति, रसं अणासाइत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, रसं अणासाइत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३०७—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रसं ण आसादेमीतेगे सुमणे भवति, रसं ण आसादेमीतेगे दुम्मणे भवति, रसं ण आसादेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३०८—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रसं ण आसादिस्सामीतेगे सुमणे भवति, रसं ण आसादिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, रसं ण आसादिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०६)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०७)। पुन: पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई

पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'रस आस्वादन नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०८)।

३०९—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—फासं फासेत्ता णामेगे सुमणे भवति, फासं फासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, फासं फासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३१०—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—फासं फासेमीतेगे सुमणे भवति, फासं फासेमीतेगे दुम्मणे भवति, फासं फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३११—तओ पुरिसजया पण्णत्ता, तं जहा—फासं फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, फासं फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, फासं फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष स्पर्श को स्पर्श करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३०९)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३१०)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३११)।]

३१२—[तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—फासं अफासेत्ता णामेगे सुमणे भवति, फासं अफासेत्ता णामेगे दुम्मणे भवति, फासं अफासेत्ता णामेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३१३—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—फासं ण फासेमीतेगे सुमणे भवति, फासं ण फासेमीतेगे दुम्मणे भवति, फासं ण फासेमीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति। ३१४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—फासं ण फासिस्सामीतेगे सुमणे भवति, फासं ण फासिस्सामीतेगे दुम्मणे भवति, फासं ण फासिस्सामीतेगे णोसुमणे-णोदुम्मणे भवति]।

[पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करके' सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करके' दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करके' न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३१२)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करता हूं' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करता हूं' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करता हूं' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३१३)। पुनः पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करूंगा' इसलिए सुमनस्क होता है। कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करूंगा' इसलिए दुर्मनस्क होता है। तथा कोई पुरुष 'स्पर्श को स्पर्श नहीं करूंगा' इसलिए न सुमनस्क होता है और न दुर्मनस्क होता है (३१४)।]

विवेचन—उपर्युक्त १८८ से ३१४ तक के सूत्रों में पुरुषों की मानसिक दशाओं का विश्लेषण किया गया है। कोई पुरुष उसी कार्य को करते हुए हर्ष का अनुभव करता है, यह व्यक्ति की राग-

जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—प्रत्येकशरीरी (एक शरीर का स्वामी एक जीव) साधारणशरीरी (एक शरीर के स्वामी अनन्त जीव) और न प्रत्येकशरीरी न साधारणशरीरी (सिद्ध)। अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—सूक्ष्म, बादर और न सूक्ष्म न बादर (सिद्ध)। अथवा सर्व जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—संज्ञी (समनस्क) असंज्ञी (अमनस्क) और न संज्ञी, न असंज्ञी (सिद्ध)। अथवा सर्व जीव तीन प्रकार कहे गये हैं—भव्य, अभव्य और न भव्य, न अभव्य (सिद्ध) (३१८)।

लोकस्थिति-सूत्र

३१९—तिविधा लोगठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपइट्ठिए वाते, वातपइट्ठिए उदही, उदहीपइट्ठिया पुढवी।

लोक-स्थिति तीन प्रकार की कही गई है—आकाश पर घनवात तथा तनुवात प्रतिष्ठित है। घनवात और तनुवात पर घनोद प्रतिष्ठित है और घनोदधि पृथ्वी (तमस्तमःप्रभा आदि) पर प्रतिष्ठित-स्थित है।

दिशा-सूत्र

३२०—तओ दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उड्ढा, अहा, तिरिया। ३२१—तिहिं दिसाहिं जीवाणं गती पवत्तति—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए। ३२२—एवं तिहिं दिसाहिं जीवाणं—आगती, वक्कंती, आहारे, वुड्ढी, णिवुड्ढी, गतिपरियाए, समुग्घाते, कालसंजोगे, दंसणाभिगमे, णाणाभिगमे जीवाभिगमे [पण्णत्ते, तं जहा—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए]। ३२३—तिहिं दिसाहिं जीवाणं अजीवाभिगमे पण्णत्ते, तं जहा—उड्ढाए, अहाए, तिरियाए। ३२४—एवं—पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं। ३२५—एवं मणुस्साणवि।

दिशाएं तीन कही गई हैं—ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यग्दिशा (३२०)। तीन दिशाओं में जीवों की गति (गमन) होती है—ऊर्ध्वदिशा में, अधोदिशा में और तिर्यग्दिशा में (३२१)। इसी प्रकार तीन दिशाओं से जीवों की आगति (आगमन) अवक्रान्ति (उत्पत्ति) आहार, वृद्धि निवृद्धि (हानि) गति-पर्याय, समुद्घात, कालसंयोग, दर्शनाभिगम (प्रत्यक्ष दर्शन से होने वाला बोध) ज्ञानाभिगम (प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा होने वाला बोध) और जीवाभिगम (जीव-विषयक बोध) कहा गया है (३२२)। तीन दिशाओं में जीवों का अजीवाभिगम कहा गया है—ऊर्ध्वदिशा में, अधोदिशा में और तिर्यग्दिशा में (३२३)। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिवाले जीवों की गति, आगति आदि तीनों दिशाओं में कही गई है (३२४)। इसी प्रकार मनुष्यों की भी गति, आगति आदि तीनों ही दिशाओं में कही गई है (३२५)।

त्रस-स्थावर-सूत्र

३२६—तिविहा तसा पण्णत्ता, तं जहा—तेउकाइया, वाउकाइया, उराला तसा पाणा। ३२७—तिविहा थावरा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया।

त्रसजीव तीन प्रकार के कहे गये हैं तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदार (स्थूल) त्रसप्राणी

(द्वीन्द्रियादि) (३२६)। स्थावर जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—पृथिवीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक (३२७)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में तेजस्कायिक और वायुकायिक को गति की अपेक्षा त्रस कहा गया है। पर उनके स्थावर नामकर्म का उदय है अतः वे वास्तव में स्थावर ही है।

अच्छेद्य-आदि-सूत्र

३२८—तओ अच्छेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३२९—एवमभेज्जा अडज्झा अगिज्झा अणड्ढा अमज्झा अपएसा [तओ अभेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३०—तओ अणज्झा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३१—तओ अगिज्झा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३२—तओ अणड्ढा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३३—तओ अमज्झा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू। ३३४—तओ अपएसा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू]। ३३५—तओ अविभाइमा पण्णत्ता, तं जहा—समए, पदेसे, परमाणू।

तीन अच्छेद्य (छेदन करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय (काल का सबसे छोटा भाग) प्रदेश (आकाश आदि द्रव्यों का सबसे छोटा भाग) और परमाणु (पुद्गल का सबसे छोटा भाग) (३२८)। इसी प्रकार अभेद्य, अदाह्य, अग्राह्य, अनर्ध, अमध्य, और अप्रदेशी। यथा-तीन अभेद्य (भेदन करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३२९)। तीन अदाह्य (दाह करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाण (३३०)। तीन अग्राह्य (ग्रहण करने के अयोग्य) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३१)। तीन अनर्ध (अर्ध भाग से रहित) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३२)। तीन अमध्य (मध्य भाग से रहित) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३३)। तीन अप्रदेशी (प्रदेशों से रहित) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३४)। तीन अविभाज्य (विभाजन के अयोग्य) कहे गये हैं—समय, प्रदेश और परमाणु (३३५)।

दुःख-सूत्र

३३६—अज्जोति! समणे भगवं महावीरे गोतमादी समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी—किंभया पाणा समणाउसो?

गोतमादी समणा णिग्गंथा समणं भगवं महावीरं उवसंकमंति, उवसंकमित्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—णो खलु वयं देवाणुप्पिया! एयमट्ठं जाणामो वा पासामो वा। तं जदि णं देवाणुप्पिया! एयमट्ठं णो गिलायंति परिकहित्तए, तमिच्छामो णं देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं जाणित्तए।

अज्जोति! समणे भगवं महावीरे गोतमादी समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी—दुक्खभया पाणा समणाउसो!

से णं भंते! दुक्खे केण कडे?
जीवेणं कडे पमादेणं।
से णं भंते! दुक्खे कहं वेइज्जति?
अप्पमाएणं।

आर्यो ! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमंत्रित कर कहा—'आयुष्मन्त श्रमणो ! जीव किससे भय खाते हैं ?'

गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के समीप आये, समीप आकर वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

देवानुप्रिय ! हम इस अर्थ को नहीं जान रहे हैं, नहीं देख रहे हैं। यदि देवानुप्रिय को इस अर्थ का परिकथन करने में कष्ट न हो, तो हम आप देवानुप्रिय से इसे जानने की इच्छा करते हैं।'

'आर्यो !' श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को संबोधित करके कहा—'आयुष्मन्त श्रमणो ! जीव दुःख से भय खाते हैं।'

प्रश्न—तो भगवन् ! दुःख किसके द्वारा उत्पन्न किया गया है ?
उत्तर—जीवों के द्वारा, अपने प्रमाद[1] से उत्पन्न किया गया है।
प्रश्न—तो भगवन् ! दुःखों का वेदन (क्षय) कैसे किया जाता है ?
उत्तर—जीवों के द्वारा, अपने ही अप्रमाद से किया जाता है।

३३७—अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति कहण्णं समणाणं णिग्गंथाणं किरिया कज्जति ?

तत्थ जा सा कडा कज्जइ, णो तं पुच्छंति। तत्थ जा सा कडा णो कज्जति, णो तं पुच्छंति। तत्थ जा सा अकडा णो कज्जति, णो तं पुच्छंति। तत्थ जा सा अकडा कज्जति, णो तं पुच्छंति। से एवं वत्तव्वं सिया ?

अकिच्चं दुक्खं, अफुसं दुक्खं, अकज्जमाणकडं दुक्खं। अकट्टु-अकट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयणं वेदेंतित्ति वत्तव्वं।

जे ते एवमाहंसु, ते मिच्छा एवमाहंसु। अहं पुण एवमाइक्खामि एवं भासामि एवं पण्णवेमि एवं परूवेमि—किच्चं दुक्खं, फुसं दुक्खं, कज्जमाणकडं दुक्खं। कट्टु-कट्टु पाणा भूया जीवा सत्ता वेयणं वेयंतित्ति वत्तव्वयं सिया।

भदन्त ! कुछ अन्य यूथिक (दूसरे मत वाले) ऐसा आख्यान करते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसा प्रज्ञापन करते हैं, ऐसा प्ररूपण करते हैं कि जो क्रिया की जाती है, उसके विषय में श्रमण निर्ग्रन्थों का क्या अभिमत है ? उनमें जो कृत क्रिया की जाती है, वे उसे नहीं पूछते हैं। उनमें जो कृत क्रिया नहीं की जाती है, वे उसे भी नहीं पूछते हैं। उनमें जो अकृत क्रिया नहीं की जाती है, वे उसे भी नहीं पूछते हैं। किन्तु जो अकृत क्रिया की जाती है, वे उसे पूछते हैं। उनका वक्तव्य इस प्रकार है—

१. दुःखरूप कर्म (क्रिया) अकृत्य है (आत्मा के द्वारा नहीं किया जाता)।
२. दुःख अस्पृश्य है (आत्मा से उसका स्पर्श नहीं होता)।
३. दुःख अक्रियमाण कृत है (वह आत्मा के द्वारा नहीं किये जाने पर होता है।)

---

१. प्रमाद का अर्थ यहां आलस्य नहीं किन्तु अज्ञान, संशय, मिथ्याज्ञान, राग, द्वेष, मतिभ्रंश, धर्म का आचरण न करना और योगों की अशुभ प्रवृत्ति है।—संस्कृतटीका.

उसे विना किये ही प्राण, भूत, जीव, सत्त्व वेदना का वेदन करते हैं।)

उत्तर—आयुष्मन्त श्रमणो ! जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। किन्तु मैं ऐसा आख्यान करता हूं, भाषण करता हूं, प्रज्ञापन करता हूं और प्ररूपण करता हूं कि—

१. दुःख कृत्य है—(आत्मा के द्वारा उपार्जित किया जाता है।)

२. दुःख स्पृश्य है—(आत्मा से उसका स्पर्श होता है।)

३. दुःख क्रियमाण कृत है—(वह आत्मा के द्वारा किये जाने पर होता है।) उसे करके ही प्राण, भूत, जीव, सत्त्व उसकी वेदना का वेदन करते हैं। ऐसा मेरा वक्तव्य है।

विवेचन—आगम-साहित्य में अन्य दार्शनिकों या मत-मतान्तरों का उल्लेख 'अन्ययूथिक' या 'अन्यतीर्थिक' शब्द के द्वारा किया गया है। 'यूथिक' शब्द का अर्थ 'समुदाय वाला' और 'तीर्थिक' शब्द का अर्थ 'सम्प्रदाय वाला' है। यद्यपि प्रस्तुत सूत्र में किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय का नाम-निर्देश नहीं है, तथापि बौद्ध-साहित्य से ज्ञात होता है कि जिस 'अकृततावाद' या 'अहेतुवाद' का निरूपण पूर्वपक्ष के रूप में किया गया है, उसके प्रवर्तक या समर्थक प्रक्रुध कात्यायन (पकुधकच्चायण) थे। उनका मन्तव्य था कि प्राणी जो भी सुख दुःख, या अदुःख-असुख का अनुभव करता है वह सब विना हेतु के या विना कारण के ही करता है। मनुष्य जो जीवहिंसा, मिथ्या-भाषण, पर-धन हरण, पर-दारा-सेवन आदि अनैतिक कार्य करता है, वह सब विना हेतु या कारण के ही करता है। उनके इस मन्तव्य के विषय में किसी शिष्य ने भगवान् महावीर से पूछा—भगवन् ! दुःख रूप क्रिया या कर्म क्या अहेतुक या अकारण ही होता है ? इसके उत्तर में भगवान् महावीर ने कहा—सुख-दुःख रूप कोई भी कार्य अहेतुक या अकारण नहीं होता। जो अकारणक मानते हैं, वे मिथ्या-दृष्टि हैं और उनका कथन मिथ्या है। आत्मा स्वयं कृत या उपार्जित एवं क्रियमाण कर्मों का कर्ता है और उनके सुख-दुःख रूप फल का भोक्ता है। सभी प्राणी, भूत, सत्त्व या जीव अपने किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं। इस प्रकार भगवान् महावीर ने प्रक्रुध कात्यायन के मत का इस सूत्र में उल्लेख कर और उसका खण्डन करके अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया है।

॥ तृतीय स्थान का द्वितीय उद्देश समाप्त ॥

तृतीय उद्देश

आलोचना-सूत्र

३३८—तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—अकरिंसु वाहं, करेमि वाहं, करिस्सामि वाहं।

तीन कारणों से मायावी माया करके भी उसकी आलोचना नहीं करता, प्रतिक्रमण नहीं करता, आत्मसाक्षी से निन्दा नहीं करता, गुरुसाक्षी से गर्हा नहीं करता, व्यावर्तन (उस सम्बन्धी अध्यवसाय को बदलना) नहीं करता, उसकी शुद्धि नहीं करता, उसे पुनः नहीं करने के लिए अभ्युद्यत नहीं होता और यथायोग्य प्रायश्चित एवं तपःकर्म अंगीकार नहीं करता –

१. मैंने अकरणीय किया है। (अब कैसे उसकी निन्दादि करूं ?)
२. मैं अकरणीय कर रहा हूं। (जब वर्तमान में भी कर रहा हूं तो कैसे उसकी निंदा करूं ?)
३. मैं अकरणीय करूंगा। (आगे भी करूंगा तो फिर कैसे निन्दा करूं ?)

३३९—तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—अकित्ती वा मे सिया, अवण्णे वा मे सिया, अविणए वा मे सिया।

तीन कारणों से मायावी माया करके भी उसकी आलोचना नहीं करता, प्रतिक्रमण नहीं करता, निन्दा नहीं करता, गर्हा नहीं करता, व्यावर्तन नहीं करता, उसकी शुद्धि नहीं करता, उसे पुनः नहीं करने के लिए अभ्युद्यत नहीं होता और यथायोग्य प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म अंगीकार नहीं करता—

१. मेरी अकीर्त्ति होगी।
२. मेरा अवर्णवाद होगा।
३. दूसरों के द्वारा मेरा अविनय होगा।

३४०—तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, [णो पड़िक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं] पडिवज्जेज्जा, तं जहा—कित्ती वा मे परिहाइस्सति, जसे वा मे परिहाइस्सति पूयासक्कारे वा मे परिहाइस्सति।

तीन कारणों से मायावी माया करके भी उसकी आलोचना नहीं करता, (प्रतिक्रमण नहीं करता, निन्दा नहीं करता, गर्हा नहीं करता, व्यावर्तन नहीं करता, उसकी शुद्धि नहीं करता, उसे

पुनः नहीं करने के लिए अभ्युद्यत नहीं होता और यथायोग्य प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म अंगीकार नहीं करता—

१. मेरी कीर्ति (एक दिशा में प्रसिद्धि) कम होगी।
२. मेरा यश (सब दिशाओं में व्याप्त प्रसिद्धि) कम होगा।
३. मेरा पूजा-सत्कार कम होगा।

३४१—तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, [णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं] पडिवज्जेज्जा, तं जहा—माइस्स णं अंसि लोगे गरहिए भवति, उववाए गरहिए भवति, आयाती गरहिया भवति।

तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, (निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावर्तन करता है, उसकी शुद्धि करता है, उसे पुनः नहीं करने के लिए अभ्युद्यत होता है और यथायोग्य प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म) अंगीकार करता है—

१. मायावी का यह लोक (वर्तमान भव) गर्हित हो जाता है।
२. मायावी का उपपात (अग्रिम भव) गर्हित हो जाता है।
३. मायावी की आजाति (अग्रिम भव से आगे का भव) गर्हित हो जाता है।

३४२—तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, [पडिक्कमेज्जा णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं] पडिवज्जेज्जा, तं जहा—अमाइस्स णं अंसि लोगे पसत्थे भवति, उववाते पसत्थे भवति, आयाती पसत्था भवति।

तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, (प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावर्तन करता है, उसकी शुद्धि करता है, उसे पुनः नहीं करने के लिए अभ्युद्यत होता है, और यथायोग्य प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म) अंगीकार करता है—

१. अमायावी (मायाचार नहीं करने वाले) का यह लोक प्रशस्त होता है।
२. अमायावी का उपपात प्रशस्त होता है।
३. अमायावी की आजाति प्रशस्त होती है।

३४३—तिहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, [पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं] पडिवज्जेज्जा, तं जहा—णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए।

तीन कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, (प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावर्तन करता है, उसकी शुद्धि करता है, उसे पुनः नहीं करने के लिए अभ्युद्यत होता है और यथायोग्य प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म) अंगीकार करता है—

१. ज्ञान की प्राप्ति के लिए।
२. दर्शन की प्राप्ति के लिए।
३. चारित्र की प्राप्ति के लिए।

श्रुतधर-सूत्र

३४४—तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्तधरे, अत्थधरे, तदुभयधरे।

श्रुतधर पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—सूत्रधर, अर्थधर और तदुभयधर (सूत्र और अर्थ दोनों के धारक) (३४४)।

उपधि-सूत्र

३४५—कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा तओ वत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा—जंगिए, भंगिए, खोमिए।

निर्ग्रन्थ साधुओं को तथा निर्ग्रन्थिनी साध्वियों को तीन प्रकार के वस्त्र रखना और पहिनना कल्पता है—जाङ्गिक (ऊनी) भाङ्गिक (सन-निर्मित) और क्षौमिक (कपास-रूई-निर्मित) (३४५)।

३४६—कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा तओ पायाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा—लाउयपादे वा, दारुपादे वा, मट्टियापादे वा।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को तीन प्रकार के पात्र धरना और उपयोग करना कल्पता है—अलाबु- (तुम्बा) पात्र, दारु-(काष्ठ-)पात्र और मृत्तिका-(मिट्टी का)पात्र (३४६)।

३४७—तिहिं ठाणेहिं वत्थं धरेज्जा, तं जहा—हिरिपत्तियं, दुगुंछापत्तियं परीसहवत्तियं।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियां तीन कारणों से वस्त्र धारण कर सकती हैं—

१. ह्रीप्रत्यय से (लज्जा-निवारण के लिए)।
२. जुगुप्साप्रत्यय से (घृणा निवारण के लिए)।
६. परीषहप्रत्यय से (शीतादि परीषह के निवारण के लिए) (३४७)।

आत्म-रक्ष-सूत्र

तओ आयरक्खा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएत्ता भवति, तुसिणीए वा सिया, उट्ठित्ता वा आताए एगंतमंतमवक्कमेज्जा।

तीन प्रकार के आत्मरक्षक कहे गये हैं—

१. अकरणीय कार्य में प्रवृत्त व्यक्ति को धार्मिक प्रेरणा से प्रेरित करने वाला।
२. प्रेरणा न देने की स्थिति में मौन-धारण करने वाला।
३. मौन और उपेक्षा न करने की स्थिति में वहाँ से उठकर एकान्त में चला जाने वाला (३४८)।

विकट-दत्ति-सूत्र

३४९—णिग्गंथस्स णं गिलायमाणस्स कप्पंति तओ वियडदत्तीओ पडिग्गाहित्तते, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा।

ग्लान (रुग्ण) निर्ग्रन्थ साधु को तीन प्रकार की दत्तियां लेनी कल्पती हैं—

१. उत्कृष्ट दत्ति—पर्याप्त जल या कलमी चावल की कांजी।
२. मध्यम दत्ति—अनेक वार किन्तु अपर्याप्त जल और साठी चावल की कांजी।
३. जघन्य दत्ति—एक वार पी सके उतना जल, तृण धान्य की कांजी या उष्ण जल (३४९)।

विवेचन—धारा टूटे विना एक वार में जितना जल आदि मिले, उसे एक दत्ति कहते हैं। जितने जल से सारा दिन निकल जाय, उतना जल लेने को उत्कृष्ट दत्ति कहते हैं। उससे कम लेना मध्यम दत्ति है। तथा एक वार ही प्यास बुझ सके, इतना जल लेना जघन्य दत्ति है।

विसंभोग-सूत्र

३५०—तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं संभोगियं विसंभोगियं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—सयं वा दट्ठुं, सड्ढयस्स वा णिसम्म, तच्चं मोसं आउट्टति, चउत्थं णो आउट्टति।

तीन कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने साधर्मिक, साम्भोगिक साधु को विसम्भोगिक करता हुआ (भगवान् की) आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है—

१. स्वयं किसी को सामाचारी के प्रतिकूल आचरण करता देखकर।
२. श्राद्ध (विश्वास-पात्र साधु) से सुनकर।
३. तीन वार मृषा (अनाचार) का प्रायश्चित्त देने के बाद चौथी वार प्रायश्चित्त विहित नहीं होने के कारण।

विवेचन—जिन साधुओं का परस्पर आहारादि के आदान-प्रदान का व्यवहार होता है, उन्हें साम्भोगिक कहा जाता है। कोई साम्भोगिक साधु यदि साधु-सामाचारी के विरुद्ध आचरण करता है, उसके उस कार्य को संघ का नेता साधु स्वयं देखले, या किसी विश्वस्त साधु से सुनले, तथा उसको उसी अपराध की शुद्धि के लिए तीन वार प्रायश्चित्त भी दिया जा चुका हो, फिर भी यदि वह चौथी वार उसी अपराध को करे तो संघ का नेता आचार्य आदि अपनी साम्भोगिक साधु-मण्डली से पृथक् कर सकता है। और ऐसा करते हुए वह भगवद्-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता, प्रत्युत पालन ही करता है। पृथक् किये गये साधु को विसम्भोगिक कहते हैं।

अनुज्ञादि-सूत्र

३५१—तिविधा अणुण्णा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए। ३५२—तिविधा समणुण्णा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए। ३५३—एवं उवसंपया एवं विजहणा [तिविधा उवसंपया पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए। ३५४—तिविधा विजहणा पण्णत्ता, तं जहा—आयरियत्ताए, उवज्झायत्ताए, गणित्ताए]।

अनुज्ञा तीन प्रकार की कही गई है—आचार्यत्व की, उपाध्यायत्व की और गणित्व की (३५१)। समनुज्ञा तीन प्रकार की कही गई है—आचार्यत्व की, उपाध्यायत्व की और गणित्व की (३५२)। (उपसम्पदा तीन प्रकार की कही गई है—आचार्यत्व की, उपाध्यायत्व की और गणित्व की (३५३)। विहान (परित्याग) तीन प्रकार का कहा गया है—आचार्यत्व का, उपाध्यायत्व का और गणित्व का (३५४)।

विवेचन—भगवान् महावीर के श्रमण-संघ में आचार्य, उपाध्याय और गणी ये तीन महत्त्वपूर्ण पद माने गये हैं। जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार तपाचार और वीर्याचार इन पांच प्रकार के आचारों का स्वयं आचरण करते हैं, तथा अपने अधीनस्थ साधुओं से इनका आचरण कराते हैं, जो आगम-सूत्रार्थ के वेत्ता और गच्छ के मेढीभूत होते हैं तथा दीक्षा-शिक्षा देने का जिन्हें अधिकार होता है, उन्हें आचार्य कहते हैं। जो आगम-सूत्र की शिष्यों को वाचना प्रदान करते हैं, उनका अर्थ पढ़ाते हैं, ऐसे विद्यागुरु साधु को उपाध्याय कहते हैं। गण-नायक को गणी कहते हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार ये तीनों पद या तो आचार्यों के द्वारा दिये जाते थे, अथवा स्थविरों के अनुमोदन (अधिकार-प्रदान) से प्राप्त होते थे। यह अनुमोदन सामान्य और विशिष्ट दोनों प्रकार का होता था। सामान्य अनुमोदन को 'अनुज्ञा' और विशिष्ट अनुमोदन को समनुज्ञा कहते हैं। उक्त पद प्राप्त करने वाला व्यक्ति यदि उस पद के योग्य सम्पूर्ण गुणों से युक्त हो तो उसे दिये जाने वाले अधिकार को 'समनुज्ञा' कहा जाता है और यदि वह समग्र गुणों से युक्त नहीं है, तब उसे दिये जाने वाले अधिकार को 'अनुज्ञा' कहा जाता है। किसी साधु के ज्ञान-दर्शन-चारित्र की विशेष प्राप्ति के लिए अपने गण के आचार्य, उपाध्याय, या गणी छोड़कर दूसरे गण के आचार्य, उपाध्याय या गणी के पास जाकर उसका शिष्यत्व स्वीकार करने को 'उपसम्पदा' कहते हैं। किसी प्रयोजन-विशेष के उपस्थित होने पर आचार्य, उपाध्याय या गणी के अपने पद के त्याग करने को 'विहान' कहते हैं। (देखो ठाणं, पृ. २७५)।

वचन-सूत्र

३५५—तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—तव्वयणे, तदण्णवयणे, णोअवयणे। ३५६—तिविहे अवयणे पण्णत्ते, तं जहा—णोतव्वयणे, णोतदण्णवयणे, अवयणे।

वचन तीन प्रकार का कहा गया है—

१. तद्वचन—विवक्षित वस्तु का कथन अथवा यथार्थ नाम, जैसे ज्वलन (अग्नि)।
२. तदन्यवचन—विवक्षित वस्तु से भिन्न वस्तु का कथन अथवा व्युत्पत्तिनिमित्त से भिन्न अर्थ वाला रूढ शब्द।
३. नो-अवचन—सार-हीन वचन-व्यापार (३५५)।

अवचन तीन प्रकार का कहा गया है—

१. नो-तद्वचन—विवक्षित वस्तु का अकथन, जैसे घट की अपेक्षा से पट कहना।
२. नो-तदन्यवचन—विवक्षित वस्तु का कथन जैसे घट को घट कहना।
३. अवचन—वचन-निवृत्ति (३५६)।

मनः-सूत्र

३५७—तिविहे मणे पण्णत्ते, तं जहा—तम्मणे, तयण्णमणे, णोअमणे। ३५८—तिविहे अमणे पण्णत्ते, तं जहा—णोतम्मणे, णोतयण्णमणे, अमणे।

मन तीन प्रकार का कहा गया है—

१. तन्मन—लक्ष्य में लगा हुआ मन।

२. तदन्यमन—अलक्ष्य में लगा हुआ मन।

३. नो-अमन—मन का लक्ष्य-हीन व्यापार (३५७)।

अमन तीन प्रकार का कहा गया है—

१. नो-तन्मन—लक्ष्य में नहीं लगा हुआ मन।

२. नो-तदन्यमन—अलक्ष्य में नहीं लगा अर्थात् लक्ष्य में लगा हुआ मन।

३. अमन—मनकी अप्रवृत्ति (३५८)।

वृष्टि-सूत्र

३५९—तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठीकाए सिया, तं जहा—

१. तंसि च णं देसंसि वा पदेसंसि वा णो बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताते वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति।

२. देवा णागा जक्खा भूता णो सम्ममाराहिता भवंति, तत्थ समुट्ठियं उदगपोग्गलं परिणतं वासितुकामं अण्णं देसं साहरंति।

३. अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठितं परिणतं वासितुकामं वाउकाए विधुणति।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अप्पवुट्ठिगाए सिया।

तीन कारणों से अल्पवृष्टि होती है—

१. किसी देश या प्रदेश में (क्षेत्र स्वभाव से) पर्याप्त मात्रा में उदकयोनिक जीवों और पुद्गलों के उदकरूप में उत्पन्न या च्यवन न करने से।

२. देवों, नागों, यक्षों या भूतों का सम्यक् प्रकार से आराधन न करने से, उस देश में समुत्थित, वर्षा में परिणत तथा बरसने ही वाले उदक-पुद्गलों (मेघों) का उनके द्वारा अन्य देश में संहरण कर लेने से।

३. समुत्थित, वर्षा में परिणत तथा बरसने ही वाले बादलों को प्रचंड वायु नष्ट कर देती है।

इन तीन कारणों से अल्पवृष्टि होती है (३५९)।

३६०—तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठीकाए सिया, तं जहा—

१. तंसि च णं देसंसि वा पदेसंसि वा बहवे उदगजोणिया जीवा य पोग्गला य उदगत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति।

२. देवा णागा जक्खा भूता सम्ममाराहिता भवंति, अण्णत्थ समुट्ठितं उदगपोग्गलं परिणयं वासिउकामं तं देसं साहरंति।

३. अब्भवद्दलगं च णं समुट्ठितं परिणयं वासितुकामं णो वाउआए विधुणति।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं महावुट्ठिकाए सिया।

तीन कारणों से महावृष्टि होती है—

१. किसी देश या प्रदेश में (क्षेत्र-स्वभाव से) पर्याप्त मात्रा में उदकयोनिक जीवों और पुद्‌गलों के उदक रूप में उत्पन्न या च्यवन होने से।

२. देव, नाग, यक्ष या भूत सम्यक् प्रकार से आराधित होने पर अन्यत्र समुत्थित, वर्षा में परिणत तथा बरसने ही वाले उदक-पुद्‌गलों का उनके द्वारा उस देश में संहरण होने से।

३. समुत्थित, वर्षा में परिणत तथा बरसने ही वाले बादलों के वायु-द्वारा नष्ट न होने से। इन तीन कारणों से महावृष्टि होती है (३६०)।

अधुनोपपन्न-देव-सूत्र

३६१—तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाति, णो परियाणाति, णो अट्ठं बंधति, णो णियाणं पगरेति, णो ठिइपकप्पं पगरेति।

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए पेम्मे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवति।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते [गिद्धे गढिते] अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तं गच्छं, तेणं कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है, किन्तु तीन कारणों से आ नहीं सकता—

१. देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव दिव्य काम-भोगों में मूर्छित, गृद्ध, बद्ध एवं आसक्त होकर मानुषिक काम-भोगों को न आदर देता है, न उन्हें अच्छा जानता है, न उनसे प्रयोजन रखता है, न निदान (उन्हें पाने का संकल्प) करता है और न स्थिति-प्रकल्प (उनके बीच में रहने की इच्छा) करता है।

२. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, बद्ध एवं आसक्त देव का मानुषिक-प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है, तथा उसमें दिव्य प्रेम संक्रांत हो जाता है।

३. दिव्यलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगों में मूर्च्छित, (गृद्ध, बद्ध) तथा आसक्त-देव सोचता है—मैं मनुष्य लोक में अभी नहीं थोड़ी देर में, एक मुहूर्त के बाद जाऊंगा, इस प्रकार उसके सोचते रहने के समय में ही अल्प आयु का धारक मनुष्य (जिनके लिए वह जाना चाहता था) कालधर्म से संयुक्त हो जाते हैं (मर जाते हैं)।

इन तीन कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है, किन्तु आ नहीं पाता।

३६२—तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएइ हव्वमागच्छित्तए—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसिं पभावेणं मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागते, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि णमस्सामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि।

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए [अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—एस णं माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अतिदुक्कर-दुक्करकारगे, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि णमंसामि [सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं] पज्जुवासामि।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिए अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे माताति वा [पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा] सुण्हाति वा, तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि, पासंतु ता मे इमं एतारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभावं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएति हव्वमागच्छित्तए॥

तीन कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है, और आने में समर्थ भी होता है—

१. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध एवं अनासक्त देव सोचता है—मनुष्यलोक में मेरे मनुष्य भव के आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर और गणावच्छेदक हैं, जिनके प्रभाव से मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति, और दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत (भोग्य-अवस्था को प्राप्त) हुआ है। अतः मैं जाऊं और उन भगवन्तों को वन्दन करूं, नमस्कार करूं, उनका सत्कार करूं, सन्मान करूं। तथा उन कल्याणकर, मंगलमय, देव और चैत्य स्वरूप की पर्युपासना करूं।

२. देवलोक में तत्काल उत्पन्न, दिव्य काम-भोगों में अमूर्च्छित (अगृद्ध, अबद्ध) एवं अनासक्त देव सोचता है कि—मनुष्य भव में अनेक ज्ञानी, तपस्वी और अतिदुष्कर तपस्या करने वाले हैं। अतः मैं जाऊं और उन भगवन्तों को वन्दन करूं, नमस्कार करूं (उनका सत्कार करूं सन्मान करूं। तथा उन कल्याणकर, मंगलमय देवरूप तथा ज्ञानस्वरूप) भगवन्तों की पर्युपासना करूं।

३. देवलोक में तत्काल उत्पन्न (दिव्य काम-भोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अबद्ध) एवं अना-

सक्त देव सोचता है—मेरे मनुष्य भव के माता, (पिता, भाई, वहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री) और पुत्र-वधू हैं, अतः मैं उनके पास जाऊं और उनके सामने प्रकट होऊं, जिससे वे मेरी इस प्रकार की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव की—जो मुझे उपलब्धि हुई है, प्राप्ति हुई है, अभि-समन्वागति हुई है, उसे देखें।

इन तीन कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना चाहता है और आने में समर्थ भी होता है (३६२)।

विवेचन—आगम के अर्थ की वाचना देने वाले एवं दीक्षागुरु को, तथा संघ के स्वामी को आचार्य कहते हैं। आगमसूत्रों की वाचना देने वाले को उपाध्याय कहते हैं। वैयावृत्त्य, तपस्या आदि में साधुओं की नियुक्ति करने वाले को प्रवर्तक कहते हैं। संयम में स्थिर करने वाले एवं वृद्ध साधुओं को स्थविर कहते हैं। गण के नायक को गणी कहते हैं। तीर्थंकर के प्रमुख शिष्य गणधर कहलाते हैं। साध्वियों के विहार आदि की व्यवस्था करने वाले को भी गणधर कहते हैं। जो आचार्य की अनुज्ञा लेकर गण के उपकार के लिए वस्त्र-पात्रादि के निमित्त कुछ साधुओं को साथ लेकर गणसे अन्यत्र विहार करता है, उसे गणावच्छेदक कहते हैं।

देव-मनःस्थिति-सूत्र

३६३—तओ ठाणाइं देवे पीहेज्जा, तं जहा—माणुस्सगं भवं, आरिए खेत्ते जम्मं, सुकुलपच्चायातिं ।।

देव तीन स्थानों की इच्छा करता है—मानुष भव की, आर्य क्षेत्र में जन्म लेने की और सुकुल में प्रत्याजाति (उत्पन्न होने) की (३६३)।

३६४—तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा, तं जहा—

१. अहो ! णं मए संते बले संते वीरिए संते पुरिसक्कार-परक्कमे खेमंसि सुभिक्खंसि आयरिय-उवज्झाएहिं विज्जमाणेहिं कल्लसरीरेणं णो बहुए सुते अहीते ।

२. अहो ! णं मए इहलोगपडिबद्धेणं परलोगपरंमुहेणं विसयतिसितेणं णो दीहे सामण्णपरियाए अणुपालिते ।

३. अहो ! णं मए इड्ढि-रस-साय-गरुएणं भोगासंसगिद्धेणं णो विसुद्धे चरित्ते फासिते ।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं देवे परितप्पेज्जा ।

तीन कारणों से देव परितप्त होता है—

१. अहो ! मैंने बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, क्षेम, सुभिक्ष, आचार्य और उपाध्याय की उपस्थिति तथा नीरोग शरीर के होते हुए भी श्रुत का अधिक अध्ययन नहीं किया।

२. अहो ! मैंने इस लोक-सम्बन्धी विषयों में प्रतिबद्ध होकर, तथा परलोक से पराङ्मुख होकर, दीर्घकाल तक श्रामण्य-पर्याय का पालन नहीं किया।

३. अहो ! मैंने ऋद्धि, रस एवं साता गौरव से युक्त होकर, अप्राप्त भोगों की आकांक्षा कर और भोगों में गृद्ध होकर विशुद्ध (निरतिचार-उत्कृष्ट) चारित्र का स्पर्श (पालन) नहीं किया।

इन तीन कारणों से देव परितप्त होता है (३६४)।

३६५—तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ, तं जहा—विमाणाभरणाइं णिप्पभाइं पासित्ता, कप्परुक्खगं मिलायमाणं पासित्ता, अप्पणो तेयलेस्सं परिहायमाणिं जाणित्ता—इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे चइस्सामित्ति जाणइ ।।

तीन कारणों से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊंगा—

१. विमान और आभूषणों को निष्प्रभ देखकर।
२. कल्पवृक्ष को मुर्भाया हुआ देखकर।
३. अपनी तेजोलेश्या (कान्ति) को क्षीण होती हुई देखकर।

इन तीन कारणों से देव यह जान लेता है कि मैं च्युत होऊंगा (३६५)।

३६६—तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा, तं जहा—

१. अहो ! णं मए इमाओ एतारूवाओ दिव्वाओ देविड्ढीओ दिव्वाओ देवजुतीओ दिव्वाओ देवाणुभावाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागताओ चइयव्वं भविस्सति।

२. अहो ! णं मए माउओयं पिउसुक्कं तं तदुभयसंसट्ठं तप्पढमयाए आहारो आयारेयव्वो भविस्सति।

३. अहो ! णं मए कलमल-जंबालाए असुईए उव्वेयणियाए भीमाए गब्भवसहीए वसियव्वं भविस्सइ।

इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं देवे उव्वेगमागच्छेज्जा ।।

तीन कारणों से देव उद्वेग को प्राप्त होता है—

१. अहो ! मुझे इस प्रकार की उपार्जित, प्राप्त, एवं अभिसमन्वागत दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव को छोड़ना पड़ेगा।

२. अहो ! मुझे सर्वप्रथम माता के ओज (रज) और पिता के शुक्र (वीर्य) का सम्मिश्रण रूप आहार लेना होगा।

३. अहो ! मुझे कलमल-जम्बाल (कीचड़) वाले अशुचि, उद्वेजनीय (उद्वेग उत्पन्न करने वाले) और भयानक गर्भाशय में रहना होगा।

इन तीन कारणों से देव उद्वेग को प्राप्त होता है (३६६)।

विमान-सूत्र

तिसंठिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—वट्टा, तंसा, चउरंसा।

१. तत्थ णं जे ते वट्टा विमाणा, ते णं पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिया सव्वओ समंता पागार-परिक्खित्ता एगदुवारा पण्णत्ता।

२. तत्थ णं जे ते तंसा विमाणा, ते णं सिंघाडगसंठाणसंठिया दुहतोपागारपरिक्खित्ता एगतो वेइया-परिक्खित्ता तिदुवारा पण्णत्ता।

३. तत्थ णं जे ते चउरंसा विमाणा, ते णं अक्खाडगसंठाणसंठिया सव्वतो समंता वेइया-परिक्खित्ता चउदुवारा पण्णत्ता ।।

विमान तीन प्रकार के संस्थान (आकार) वाले कहे गये हैं—वृत्त, त्रिकोण और चतुष्कोण ।

१. जो विमान वृत्त होते हैं वे कमल की कर्णिका के आकार के गोलाकार होते हैं, सर्व दिशाओं और विदिशाओं में प्राकार (परकोटा) से घिरे होते हैं, तथा वे एक द्वार वाले कहे गये हैं ।

२. जो विमान त्रिकोण होते हैं वे सिंघाड़े के आकार के होते हैं, दो ओर से प्राकार से घिरे हुए तथा एक ओर से वेदिका से घिरे होते हैं तथा उनके तीन द्वार कहे गये हैं ।

३. जो विमान चतुष्कोण होते हैं वे अखाड़े के आकार के होते हैं, सर्व दिशाओं और विदिशाओं में वेदिकाओं से घिरे होते हैं, तथा उनके चार द्वार कहे गये हैं (३६७) ।

३६८—तिपतिट्ठिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—घणोदधिपतिट्ठिता, घणवातपइट्ठिता, ओवासंतरपइट्ठिता ।।

विमान त्रिप्रतिष्ठित (तीन आधारों से अवस्थित) कहे गये हैं—घनोदधि-प्रतिष्ठित, घनवात-प्रतिष्ठित और अवकाशान्तर-(आकाश-) प्रतिष्ठित (३६८) ।

३६९—तिविधा विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—अवट्ठिता, वेउव्विता, पारिजाणिया ।।

विमान तीन प्रकार के कहे गये हैं—

१. अवस्थित—स्थायी निवास वाले ।
२. वैक्रिय—भोगादि के लिए बनाये गए ।
३. पारियानिक—मध्यलोक में आने के लिए बनाए गए ।

दृष्टि-सूत्र

३७०—तिविधा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—सम्मादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी । ३७१—एवं विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं ।।

नारकी जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि (३७०) । इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर सभी दण्डकों में तीनों प्रकार की दृष्टिवाले जीव जानना चाहिए (३७१) ।

दुर्गति-सुगति-सूत्र

३७२—तओ दुग्गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णेरइयदुग्गती, तिरिक्खजोणियदुग्गती, मणुयदुग्गती ।।

तीन दुर्गतियां कही गई हैं—नरकदुर्गति, तिर्यग्योनिक दुर्गति और मनुजदुर्गति (दीन-हीन दु:खी मनुष्यों की अपेक्षा से) (३७२)।

३७३—तओ सुगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सिद्धसोगती, देवसोगती, मणुस्ससोगती।

तीन सुगतियां कही गई हैं—सिद्धसुगति, देवसुगत और मनुष्यसुगति (३७३)।

३७४—तओ दुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गता, मणुस्सदुग्गता।

दुर्गत (दुर्गति को प्राप्त जीव) तीन प्रकार के कहे गये हैं—नारकदुर्गत, तिर्यग्योनिकदुर्गत और मनुष्यदुर्गत (३७४)।

३७५—तओ सुगता पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धसोगता, देवसुग्गता, मणुस्ससुग्गता।

सुगत (सुगति को प्राप्त जीव) तीन प्रकार के कहे गये हैं—सिद्ध-सुगत, देव-सुगत और मनुष्य-सुगत (३७५)।

तप:-पानक-सूत्र

३७६—चउत्थभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—उस्सेइमे, संसेइमे, चाउलधोवणे।

चतुर्थभक्त (एक उपवास) करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक ग्रहण करना कल्पता है—

१. उत्स्वेदिम—आटे का धोवन।
२. संसेकिम—सिझाये हुए कैर आदि का धोवन।
३. तन्दुल-धोवन—चावलों का धोवन (३७६)।

३७७—छट्ठभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—तिलोदए, तुसोदए, जवोदए।

षष्ठ भक्त (दो उपवास) करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक ग्रहण करना कल्पता है—

१. तिलोदक—तिलों के धोने का जल।
२. तुषोदक—तुष-भूसे के धोने का जल।
३. यवोदक—जौ के धोने का जल (३७७)।

३७८—अट्ठमभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—आयामए, सोवीरए, सुद्धवियडे।

अष्टम भक्त (तीन उपवास) करने वाले भिक्षु को तीन प्रकार के पानक लेना कल्पता है—

१. आयामक (आचामक)—अवस्रावण अर्थात् उबाले हुए चावलों का मांड।
२. सौवीरक—कांजी, छांछ के ऊपर का पानी।

३. शुद्ध विकट—शुद्ध उष्ण जल (३७८)।

पिण्डैषणा-सूत्र

३७९—तिविहे उवहडे पण्णत्ते, तं जहा—फलिग्रोवहडे, सुद्धोवहडे, संसट्ठोवहडे।

उपहृत—(भिक्षु को दिया जाने वाला) भोजन—तीन प्रकार का कहा गया है—

१. फलिकोपहृत—खाने के लिए थाली आदि में परोसा गया भोजन।
२. शुद्धोपहृत—खाने के लिए साथ में लाया हुआ लेप-रहित भोजन।
३. संसृष्टोपहृत—खाने में लिए हाथ में उठाया हुआ अनुच्छिष्ट भोजन (३७९)।

३८०—तिविहे ओग्गहिते पण्णत्ते, तं जहा—जं च ओगिण्हति, जं च साहरति, जं च आसगंसि पक्खिवति।

अवगृहीत भोजन तीन प्रकार का कहा गया है—

१. परोसने के लिए ग्रहण किया हुआ भोजन।
२. परोसा हुआ भोजन।
३. परोसने से बचा हुआ और पुनः पाक-पात्र में डाला हुआ भोजन (३८०)।

अवमोदरिका-सूत्र

३८१—तिविधा ओमोयरिया पण्णत्ता, तं जहा—उवगरणोमोयरिया, भत्तपाणोमोदरिया, भावोमोदरिया।

अवमोदरिका (भक्त-पात्रादि को कम करने की वृत्ति-ऊनोदरी) तीन प्रकार की कही गई है—

१. उपकरण-अवमोदरिका—उपकरणों को घटाना।
२. भक्त-पान-अवमोदरिका—खान-पान की वस्तुओं को घटाना।
३. भाव-अवमोदरिका—राग-द्वेषादि दुर्भावों का घटाना (३८१)।

३८२—उवगरणोमोदरिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगे वत्थे, एगे पाते, चियत्तोवहि-साइज्जणया।

उपकरण—अवमोदरिका तीन प्रकार की कही गई है—

१. एक वस्त्र रखना।
२. एक पात्र रखना।
३. संयमोपकारी समझकर आगम-सम्मत उपकरण रखना (३८२)।

निर्ग्रन्थ-चर्या-सूत्र

३८३—तओ ठाणा णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अहियाए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणगामियत्ताए भवंति, तं जहा—कूअणता, कक्करणता, अवज्झाणता।

तीन स्थान निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों में लिए अहितकर, अशुभ, अक्षम (अयुक्त) अनिःश्रेयस (अकल्याणकर) अनानुगामिक, अमुक्तिकारी और अशुभानुबन्धी होते हैं—

१. कूजनता—आर्तस्वर में करुण क्रन्दन करना।
२. कर्करणता—शय्या, उपधि आदि के दोष प्रकट करने के लिए प्रलाप करना।
३. अपध्यानता—आर्त्त और रौद्रध्यान करना (३८३)।

३८४—तओ ठाणा णिग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हिताए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामिअत्ताए भवंति, तं जहा—अकूअणता, अकक्करणता, अणवज्झाणता।

तीन स्थान निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के लिए हितकर, शुभ, क्षम, निःश्रेयस एवं आनुगामिता (मुक्ति-प्राप्ति) के लिए होते हैं—

१. अकूजनता—आर्तस्वर से करुण क्रन्दन नहीं करना।
२. अकर्करणता—शय्या आदि के दोषों को प्रकट करने के लिए प्रलाप नहीं करना।
३. अनपध्यानता—आर्त-रौद्ररूप दुर्ध्यान नहीं करना (३८४)।

शल्य-सूत्र

३८५—तओ सल्ला पण्णत्ता, तं जहा—मायासल्ले, णियाणसल्ले, मिच्छादंसणसल्ले।

शल्य तीन हैं—मायाशल्य, निदान शल्य और मिथ्यादर्शन शल्य (३८५)।

तेजोलेश्या-सूत्र

३८६—तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संखित्त-विउलतेउलेस्से भवति, तं जहा—आयावणयाए, खंतिखमाए, अपाणगेणं तवोकम्मेणं।

तीन स्थानों से श्रमण निर्ग्रन्थ संक्षिप्त की हुई विपुल तेजोलेश्यावाले होते हैं—

१. आतापना लेने से—सूर्य की प्रचण्ड किरणों द्वारा उष्णता सहन करने से।

२. क्षान्ति-क्षमा धारण करने से—बदला लेने के लिए समर्थ होते हुए भी क्रोध पर विजय पाने से।

३. अपानक तपःकर्म से—निर्जल—जल विना पीये तपश्चरण करने से (३८६)।

भिक्षु-प्रतिमा-सूत्र

३८७—तिमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति तओ दत्तीओ भोअणस्स पडिगाहेत्तए, तओ पाणगस्स।

त्रैमासिक भिक्षु-प्रतिमा को स्वीकार करने वाले अनगार के लिए तीन दत्तियां भोजन की और तीन दत्तियां पानक की ग्रहण करना कल्पता है (३८७)।

३८८—एगरातियं भिक्खुपडिमं सम्मं अणणुपालेमाणस्स अणगारस्स इमे तओ ठाणा अहिताए

असुभाए अखमाए अणिस्सेयसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—उम्मायं वा लभिज्जा, दीहकालियं वा रोगातंकं पाउणेज्जा, केवलीपण्णत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

एक रात्रिकी भिक्षु-प्रतिभा का सम्यक् प्रकार से अनुपालन नहीं करने वाले अनगार के लिए तीन स्थान अहितकर, अशुभ, अक्षम, अनि:श्रेयसकारी और अनानुगामिता के कारण होते हैं—

१. उक्त अनगार उन्माद को प्राप्त हो जाता है।
२. या दीर्घकालिक रोगातंक से ग्रसित हो जाता है।
३. अथवा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है (३८८)।

३८९—एगरातियं भिक्खुपडिमं सम्मं अणुपालेमाणस्स अणगारस्स तओ ठाणा हिताए सुभाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—ओहिणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा, मणपज्जवणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा, केवलणाणे वा से समुप्पज्जेज्जा।

एकरात्रिकी भिक्षु-प्रतिमा का सम्यक् प्रकार से अनुपालन करने वाले अनगार के लिए तीन स्थान हितकर शुभ, क्षम, नि:श्रेयसकारी और अनुगामिता के कारण होते हैं—

१. उक्त अनगार को अवधिज्ञान उत्पन्न होता है।
२. या मन:पर्यवज्ञान प्राप्त होता है।
३. अथवा केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है (३८९)।

कर्मभूमि-सूत्र

३९०—जंबुद्दीवे दीवे तओ कम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भरहे, एरवए, महाविदेहे।
३९१—एवं—धायइसंडे दीवे पुरित्थिमद्धे जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में तीन कर्मभूमियां कही गई हैं—भरत-कर्मभूमि, ऐरवत-कर्मभूमि और महाविदेह-कर्मभूमि (३९०)। इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में, तथा अर्धपुष्कर वरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी तीन-तीन कर्मभूमियां जाननी चाहिए (३९१)।

दर्शन-सूत्र

३९२—तिविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मद्दंसणे, मिच्छद्दंसणे, सम्मामिच्छद्दंसणे।

दर्शन तीन प्रकार का कहा गया है—सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन और सम्यग्मिथ्यादर्शन(३९२)

३९३—तिविहा रुई पण्णत्ता, तं जहा—सम्मरुई, मिच्छरुई, सम्मामिच्छरुई।

रुचि तीन प्रकार की कही गई है—सम्यग् रुचि, मिथ्यारुचि और सम्यग्मिथ्यारुचि (३९३)

प्रयोग-सूत्र

३९४—तिविधे पओगे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मपओगे, मिच्छपओगे, सम्मामिच्छपओगे।

प्रयोग तीन प्रकार का कहा गया है—सम्यक् प्रयोग, मिथ्या प्रयोग और सम्यग्मिथ्याप्रयो (३९४)।

विवेचन—उक्त तीन सूत्रों में जीवों के व्यवहार की क्रमिक भूमिकाओं का निर्देश किया गया है। संज्ञी जीव में सर्वप्रथम दृष्टिकोण का निर्माण होता है। तत्पश्चात् उसमें रुचि या श्रद्धा उत्पन्न होती है और तदनुसार वह कार्य करता है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि यदि जीव में सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया है तो उसकी रुचि भी सम्यक् होगी और तदनुसार उसके मन वचन काय की प्रवृत्ति भी सम्यक् होगी। इसी प्रकार दर्शन के मिथ्या या मिश्रित होने पर उसकी रुचि एवं प्रवृत्ति भी मिथ्या एवं मिश्रित होगी।

व्यवसाय-सूत्र

३९५—तिविहे ववसाए पण्णत्ते, तं जहा—धम्मिए ववसाए, अधम्मिए ववसाए, धम्मियाधम्मिए ववसाए।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे, पच्चइए, आणुगामिए।

अहवा—तिविधे ववसाए पण्णत्ते, तं जहा—इहलोइए, परलोइए, इहलोइय-परलोइए।

व्यवसाय (वस्तुस्वरूप का निर्णय अथवा पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान) तीन प्रकार का कहा गया है—धार्मिक व्यवसाय, अधार्मिक व्यवसाय और धार्मिकाधार्मिक व्यवसाय। अथवा व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—प्रत्यक्ष व्यवसाय, प्रात्ययिक (व्यवहार-प्रत्यक्ष) व्यवसाय और अनुगामिक (आनुमानिक व्यवसाय) अथवा व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—ऐहलौकिक, पारलौकिक और ऐहलौकिक-पारलौकिक (३९५)।

३९६—इहलोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—लोइए, वेइए, सामइए।

ऐहलौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—लौकिक, वैदिक और सामयिक—श्रमणों का व्यवसाय (३९६)।

३९७—लोइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थे, धम्मे, कामे।

लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—अर्थव्यवसाय, धर्मव्यवसाय और काम-व्यवसाय (३९७)।

३९८—वेइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते, तं जहा—रिउव्वेदे, जउव्वेदे- सामवेदे।

वैदिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद व्यवसाय अर्थात् इन वेदों के अनुसार किया जाने वाला निर्णय या अनुष्ठान (३९८)।

३९९—सामइए ववसाए तिविधे पण्णत्ते तं जहा—णाणे, दंसणे, चरित्ते।

सामयिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान, दर्शन और चरित्र व्यवसाय (३९९)।

विवेचन—उपर्युक्त पांच सूत्रों में विभिन्न व्यवसायों का निर्देश किया गया है। व्यवसाय का अर्थ है—निश्चय, निर्णय और अनुष्ठान। निश्चय करने के साधनभूत ग्रन्थों को भी व्यवसाय कहा जाता है। उक्त पांच सूत्रों में विभिन्न दृष्टिकोणों से व्यवसाय का वर्गीकरण किया गया है।

प्रथम वर्गीकरण धर्म के आधार पर किया गया है। दूसरा वर्गीकरण ज्ञान के आधार पर किया गया है। यह वैशेपिक एवं सांख्यदर्शन-सम्मत तीन प्रमाणों की ओर संकेत करता है—

सूत्रोक्त वर्गीकरण	वैशेषिक एवं सांख्य-सम्मत प्रमाण
१. प्रत्यक्ष	१. प्रत्यक्ष
२. प्रात्ययिक-आगम	२. अनुमान
३. आनुगामिक—अनुमान	३. आगम

संस्कृत टीकाकार ने प्रत्यक्ष और प्रात्ययिक के दो-दो अर्थ किये हैं। प्रत्यक्ष के दो अर्थ—अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान रूप मुख्य या पारमार्थिक प्रत्यक्ष और स्वयंदर्शन रूप स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। प्रात्ययिक के दो अर्थ—१. इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाला ज्ञान (सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष) और २. आप्तपुरुष के वचन से होने वाला ज्ञान (आगम ज्ञान)।

तीसरा वर्गीकरण वर्तमान और भावी जीवन के आधार पर किया गया है। मनुष्य के कुछ व्यवसाय वर्तमान जीवन की दृष्टि से होते हैं, कुछ भावी जीवन की दृष्टि से और कुछ दोनों की दृष्टि से। ये क्रमशः ऐहलौकिक, पारलौकिक और ऐहलौकिक-पारलौकिक व्यवसाय कहलाते हैं।

चौथा वर्गीकरण विचार-धारा या शास्त्रों के आधार पर किया गया है। इसमें मुख्यतः तीन विचार-धाराएं वर्णित हैं—लौकिक, वैदिक और सामयिक।

लौकिक विचार-धारा के प्रतिपादक होते हैं—अर्थशास्त्री, धर्मशास्त्री और कामशास्त्री। ये लोग अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और कामशास्त्र के माध्यम से अर्थ, धर्म और काम के औचित्य एवं अनौचित्य का निर्णय करते हैं। सूत्रकार ने इसे लौकिक व्यवसाय माना है। इस विचार-धारा का किसी धर्म या दर्शन से सम्बन्ध नहीं होता। इसका सम्बन्ध लोकमत से होता है।

वैदिक विचारधारा के आधारभूत ग्रन्थ तीन हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। इस वर्गीकरण में व्यवसाय के निमित्तभूत ग्रन्थों को व्यवसाय ही कहा गया है।

संस्कृत टीकाकार ने सामयिक व्यवसाय का अर्थ सांख्य आदि दर्शनों के समय या सिद्धान्त से होने वाला व्यवसाय किया है। प्राचीनकाल में सांख्यदर्शन श्रमण-परम्परा का ही एक अंग रहा है। उसी दृष्टि से टीकाकार ने यहां मुख्यता से सांख्य का उल्लेख किया है।

सामयिक व्यवसाय के तीनों प्रकारों का दो नयों से अर्थ किया जा सकता है। एक नय के अनुसार—

१. ज्ञान व्यवसाय—ज्ञान का निश्चय या ज्ञान के द्वारा होने वाला निश्चय।

२. दर्शन व्यवसाय—दर्शन का निश्चय या दर्शन के द्वारा होने वाला निश्चय।

३. चारित्र व्यवसाय—सदाचरण का निश्चय।

दूसरे नय के अनुसार ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये श्रमण-परम्परा या जैनशासन के प्रधान व्यवसाय हैं और इनके समुदाय को ही रत्नत्रयात्मक धर्म-व्यवसाय या मोक्ष-पुरुषार्थ का कारणभूत धर्मपुरुषार्थ कहा गया है।

अर्थ-योनि-सूत्र

४००—तिविधा अत्थजोणी पण्णत्ता, तं जहा—सामे, दंडे, भेदे।

अर्थ योनि तीन प्रकार कही गई है—सामयोनि, दण्डयोनि और भेदयोनि (४००)।

विवेचन—राज्यलक्ष्मी आदि की प्राप्ति के उपायभूत कारणों को अर्थयोनि कहते हैं। राजनीति में इसके लिए साम, दान, दण्ड और भेद इन चार उपायों का उपयोग किया जाता है। प्रस्तुत सूत्र में दान को छोड़ कर शेष तीन उपायों का उल्लेख किया गया है। यदि प्रतिपक्षी व्यक्ति अपने से अधिक बलवान्, समर्थ या सैन्यशक्ति वाला हो तो उसके साथ सामनीति का प्रयोग करना चाहिए। समभाव के साथ प्रिय वचन बोलकर, अपने पूर्वजों के कुलक्रमागत स्नेह-पूर्ण सम्बन्धों की याद दिला कर, तथा भविष्य में होने वाले मधुर सम्बन्धों की सम्भावनाएं बतलाकर प्रतिपक्षी को अपने अनुकूल करना सामनीति कही जाती है। जब प्रतिपक्षी व्यक्ति सामनीति से अनुकूल न हो, तब दण्डनीति का प्रयोग किया जाता है। दण्ड के तीन भेदों का संस्कृत टीकाकार ने उल्लेख किया है—वध, परिक्लेश और धन-हरण। यदि शत्रु उग्र हो तो उसका वध करना, यदि उससे हीन हो तो उसे विभिन्न उपायों से कष्ट पहुंचाना और यदि उससे भी कमजोर हो तो उसके धन का अपहरण कर लेना दण्ड-नीति है। टीकाकार द्वारा उद्धृत श्लोक में भेदनीति के तीन भेद कहे गये हैं—स्नेहरागापनयन—स्नेह या अनुराग का दूर करना, संहर्षोत्पादन—स्पर्धा उत्पन्न करना और संतर्जन—तर्जना या भर्त्सना करना। धर्मशास्त्र में राजनीति को गर्हित ही बताया गया है। प्रस्तुत सूत्र में केवल 'तीन वस्तुओं के संग्रह के अनुरोध से' उनका निर्देश किया गया है।

पुद्गल-सूत्र

४०१—तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा—पओगपरिणता, मीसापरिणता, वीससापरिणता।

पुगद्ल तीन प्रकार के कहे गये हैं—प्रयोग-परिणत—जीव के प्रयत्न से परिणमन पाये हुए पुगद्ल, मिश्र-परिणत—जीव के प्रयोग तथा स्वाभाविक रूप से परिणत पुगद्ल, और विस्रसा—स्वतः-स्वभाव से परिणत पुगद्ल (४०१)।

नरक-सूत्र

४०२—तिपतिट्ठिया णरगा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविपतिट्ठिया, आगासपतिट्ठिया, आयपइट्ठिया। णेगम-संगह-ववहाराणं पुढविपतिट्ठिया, उज्जुसुतस्स आगासपतिट्ठिया, तिण्हं सद्दणयाणं आयपतिट्ठिया।

नरक त्रिप्रतिष्ठित (तीन पर आश्रित) कहे गये हैं—पृथ्वी-प्रतिष्ठित, आकाश-प्रतिष्ठित और आत्म प्रतिष्ठित (४०२)।

१. नैगम, संग्रह और व्यवहार नय की अपेक्षा से नरक पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हैं।

२. ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा से वे आकाश-प्रतिष्ठित हैं।

३. शब्द, समभिरूढ तथा एवम्भूत नय की अपेक्षा से आत्म-प्रतिष्ठित हैं, क्योंकि शुद्ध नय की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु अपने स्व-भाव में ही रहती है।

मिथ्यात्व-सूत्र

४०३—तिविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—अकिरिया, अविणए, अण्णाणे ।

मिथ्यात्व तीन प्रकार का कहा गया है—अक्रियारूप, अविनयरूप और अज्ञानरूप (४०३)।

विवेचन—यहां मिथ्यात्व से अभिप्राय विपरीत श्रद्धान रूप मिथ्यादर्शन से नहीं है, किन्तु की जाने वाली क्रियाओं की असमीचीनता से है। जो क्रियाएं मोक्ष की साधक नहीं हैं उनका अनुष्ठान या आचरण करने को अक्रियारूप मिथ्यात्व जानना चाहिए। सम्मग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और उनके धारक पुरुषों की विनय नहीं करना अविनय मिथ्यात्व है। मुक्ति के कारणभूत सम्यग्ज्ञान के सिवाय शेष समस्त प्रकार का लौकिक ज्ञान अज्ञान-मिथ्यात्व है।

४०४—अकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, अण्णाण-किरिया ।

अक्रिया (दूषित क्रिया) तीन प्रकार की कही गई है—प्रयोग क्रिया, समुदान क्रिया और अज्ञान क्रिया (४०४)।

विवेचन—मन, वचन और काय योग के व्यापार द्वारा कर्म-वन्ध कराने वाली क्रिया को प्रयोग-क्रियारूप अक्रिया कहते हैं। प्रयोगक्रिया के द्वारा गृहीत कर्म-पुद्गलों का प्रकृतिबन्धादिरूप से तथा देशघाती और सर्व-घाती रूप से व्यवस्थापित करने को समुदानरूप-अक्रिया कहा गया है। अज्ञान से जाने वाली चेष्टा अज्ञान-क्रिया कहलाती है।

४०५—पओगकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—
कायपओगकिरिया ।

प्रयोगक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—मनःप्रयोग-
प्रयोग क्रिया (४०५)।

४०६—समुदाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं ज
समुदाणकिरिया, तदुभयसमुदाणकिरिया ।

समुदान-क्रिया तीन प्रकार की कही गई है—अनन्त
और तदुभय-समुदानक्रिया (४०६)।

विवेचन—प्रयोगक्रिया के द्वारा सामान्य रूप से कर्मव
उन्हें प्रकृति, स्थिति आदि तथा सर्वघाती, देशघाती आदि
अन्तर अर्थात् व्यवधान। जिस समुदानक्रिया के करने में दूस
प्रथम समयवर्तिनी क्रिया अनन्तर-समुदानक्रिया है। द्वितीय तृ
समुदान क्रिया को परम्परसमुदानक्रिया कहते हैं। प्रथम और त
वाली समुदानक्रिया तदुभयसमुदान क्रिया कहलाती है।

४०७—अण्णाणकिरिया तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—मतिअण्णाणकिरिया, सुतअण्णाणकिरिया, विभंगअण्णाणकिरिया।

अज्ञानक्रिया तीन प्रकार की कही गई है—मति-अज्ञानक्रिया, श्रुत-अज्ञानक्रिया और विभंग-अज्ञानक्रिया (४०७)।

विवेचन—इन्द्रिय और मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं। आप्त वाक्यों के श्रवण-पठनादि से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। इन्द्रिय और मन की अपेक्षा के विना अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले भूत भविष्यकालान्तरित एवं देशान्तरित वस्तु के जानने वाले सीमित ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव के होने वाले ये तीनों ज्ञान क्रमशः मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंग-अज्ञान कहे जाते हैं।

४०८—अविणए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—देसच्चाई, णिरालंबणता, णाणापेज्जदोसे।

अविनय तीन प्रकार का कहा गया है—

१. देशत्यागी—स्वामी को गाली आदि देके देश को छोड़ कर चले जाना।
२. निरालम्बन—गच्छ या कुटुम्व को छोड़ देना या उससे अलग हो जाना।
३. नानाप्रेयोद्वेषी—नाना प्रकारों से लोगों के साथ राग-द्वेष करना (४०८)।

४०९—अण्णाणे तिविधे पण्णत्ते, तं जहा—देसण्णाणे, सव्वण्णाणे, भावण्णाणे।

अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है—

१. देश-अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु के किसी एक अंश को न जानना।
२. सर्व-अज्ञान—ज्ञातव्य वस्तु को सर्वथा न जानना।
३. भाव-अज्ञान—वस्तु के अमुक ज्ञातव्य पर्यायों को नहीं जानना (४०९)।

धर्म-सूत्र

४१०—तिविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे।

धर्म तीन प्रकार का कहा गया है—

१. श्रुत-धर्म—वीतराग-भावना के साथ शास्त्रों का स्वाध्याय करना।
२. चारित्र-धर्म—मुनि और श्रावक के धर्म का परिपालन करना।
३. अस्तिकाय-धर्म—प्रदेश वाले द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं और उनके स्वभाव को अस्तिकाय-धर्म कहा जाता है (४१०)।

उपक्रम-सूत्र

४११—तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—धम्मिए उवक्कमे, अधम्मिए उवक्कमे, धम्मियाधम्मिए उवक्कमे।

अहवा—तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—आओवक्कमे, परोवक्कमे, तदुभयोवक्कमे।

उपक्रम (उपाय-पूर्वक कार्य का आरम्भ) तीन प्रकार का कहा गया है—

१. धार्मिक-उपक्रम—श्रुत और चारित्र रूप धर्म की प्राप्ति के लिए प्रयास करना।

२. अधार्मिक-उपक्रम—असंयम-वर्धक आरम्भ-कार्य करना।

३. धार्मिकाधार्मिक-उपक्रम—संयम और असंयमरूप कार्यों का करना।

अथवा उपक्रम तीन प्रकार का कहा गया है—

१. आत्मोपक्रम—अपने लिए कार्य-विशेष का उपक्रम करना।

२. परोपक्रम—दूसरों के लिए कार्य-विशेष का उपक्रम करना।

३. तदुभयोपक्रम—अपने और दूसरों के लिए कार्य-विशेष करना (४११)।

वैयावृत्यादि-सूत्र

४१२—[**तिविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, तं जहा—आयवेयावच्चे, परवेयावच्चे, तदुभयवेयावच्चे।** ४१३—**तिविधे अणुग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—आयअणुग्गहे, परअणुग्गहे, तदुभयअणुग्गहे।** ४१४—**तिविधा अणुसट्ठी पण्णत्ता, तं जहा—आयअणुसट्ठी, परअणुसट्ठी, तदुभयअणुसट्ठी।** ४१५—**तिविधे उवालंभे पण्णत्ते, तं जहा—आओवालंभे, परोवालंभे, तदुभयोवालंभे**]।

वैयावृत्त्य (सेवा-टहल) तीन प्रकार का है—आत्मवैयावृत्त्य, पर-वैयावृत्त्य और तदुभय-वैयावृत्त्य (४१२)। अनुग्रह (उपकार) तीन प्रकार का कहा गया है—आत्मानुग्रह, परानुग्रह और तदुभयानुग्रह (४१३)। अनुशिष्टि (अनुशासन) तीन प्रकार की है—आत्मानुशिष्टि, परानुशिष्टि और तदुभयानुशिष्टि (४१४)। उपालम्भ (उलाहना) तीन प्रकार का कहा गया है—आत्मोपालम्भ, परोपालम्भ और तदुभयोपालम्भ (४१५)।

त्रिवर्ग-सूत्र

४१६—**तिविहा कहा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थकहा, धम्मकहा, कामकहा।** ४१७—**तिविहे विणिच्छए पण्णत्ते, तं जहा—अत्थविणिच्छए, धम्मविणिच्छए, कामविणिच्छए।**

कथा तीन प्रकार की कही गई है—अर्थकथा, धर्मकथा और कामकथा (४१६)। विनिश्चय तीन प्रकार का कहा गया है—अर्थ-विनिश्चय, धर्म-विनिश्चय और काम-विनिश्चय (४१७)।

४१८—**तहारूवं णं भंते! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किंफला पज्जुवासणया?**

सवणफला।

से णं भंते! सवणे किंफले?

णाणफले।

से णं भंते! णाणे किंफले?

विण्णाणफले।

[से णं भंते ! विण्णाणे किंफले ?
पच्चक्खाणफले ।
से णं भंते ! पच्चक्खाणे किंफले ?
संजमफले ।
से णं भंते ! संजमे किंफले ?
अणण्हयफले ।
से णं भंते ! अणण्हए किंफले ?
तवफले ।
से णं भंते ! तवे किंफले ?
वोदाणफले ।
से णं भंते ! वोदाणे किंफले ?
अकिरियफले] ।
सा णं भंते ! अकिरिया किंफला ?
णिव्वाणफला ।
से णं भंते ! णिव्वाणे किंफले ?
सिद्धिगइ-गमण-पज्जवसाण-फले समणाउसो !

प्रश्न—भदन्त ! तथारूप श्रमण-माहन की पर्युपासना करने का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! पर्युपासना का फल धर्म-श्रवण है ।
प्रश्न—भदन्त ! धर्म-श्रवण का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! धर्म-श्रवण का फल ज्ञान-प्राप्ति है ।
प्रश्न—भदन्त ! ज्ञान-प्राप्ति का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! ज्ञान-प्राप्ति का फल विज्ञान (हेय-उपादेय के विवेक) की प्राप्ति है ।
[प्रश्न—भदन्त ! विज्ञान-प्राप्ति का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! विज्ञान-प्राप्ति का फल प्रत्याख्यान (पाप का त्याग करना) है ।
प्रश्न—भदन्त ! प्रत्याख्यान का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! प्रत्याख्यान का फल संयम है ।
प्रश्न—भदन्त ! संयम का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! संयम-धारण का फल अनास्रव (कर्मों के आस्रव का निरोध) है ।
प्रश्न—भदन्त ! अनास्रव का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! अनास्रव का फल तप है ।
प्रश्न—भदन्त ! तप का क्या फल है ?
उत्तर—आयुष्मन् ! तप का फल व्यवदान (कर्म-निर्जरा) है ।
प्रश्न—भदन्त ! व्यवदान का क्या फल है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! व्यवदान का फल अक्रिया अर्थात् मन-वचन-काय की हलन-चलन रूप क्रिया या प्रवृत्ति का पूर्ण निरोध है (४१८)।

प्रश्न—भदन्त ! अक्रिया का क्या फल है ?

उत्तर—आयुष्मन् ! अक्रिया का फल निर्वाण है।

प्रश्न—भदन्त ! निर्वाण का क्या फल है ?

उत्तर—आयुष्मन् श्रमण ! निर्वाण का फल सिद्धगति को प्राप्त कर संसार-परिभ्रमण (जन्म-मरण) का अन्त करना है।

। तृतीय उद्देश समाप्त ।

तृतीय स्थान

चतुर्थ उद्देश

प्रतिमा-सूत्र

४१९—पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया पडिलेहित्तए, तं जहा—अहे आगमणगिहंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलगिहंसि वा।

प्रतिमा-प्रतिपन्न (मासिकी आदि प्रतिमाओं को स्वीकार करने वाले) अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयों (आवासों) का प्रतिलेखन (निवास के लिए देखना) करना कल्पता है।

१. आगमन-गृह—यात्रियों के आकर ठहरने का स्थान सभा, प्रपा (प्याऊ), धर्मशाला, सराय आदि।

२. विवृत-गृह—अनाच्छादित (ऊपर से खुला) या एक-दो ओर से खुला माला-रहित घर, वाड़ा आदि।

३. वृक्षमूल-गृह—वृक्ष का अधो भाग (४१९)।

४२०—[पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया अणुण्णवेत्तए, तं जहा—अहे आगमणगिहंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलगिहंसि वा।

[प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयों की अनुज्ञा (उनके स्वामियों की आज्ञा या स्वीकृति लेना) लेनी चाहिए—

१. आगमन-गृह में ठहरने के लिए।
२. अथवा विवृत-गृह में ठहरने के लिए।
३. अथवा वृक्षमूल-गृह में ठहरने के लिए (४२०)।

४२१—पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ उवस्सया उवाइणित्तए, तं जहा—अहे आगमणगिहंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलगिहंसि वा]।

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के उपाश्रयों में रहना कल्पता है—

१. आगमन-गृह में।
२. अथवा विवृत-गृह में।
३. अथवा वृक्षमूल-गृह में (४२१)।]

४२२—पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ संथारगा पडिलेहित्तए, तं जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला, अहासंथडमेव।

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के संस्तारकों का प्रतिलेखन करना कल्पता है—

१. पृथ्वीशिला—समतल भूमि या पाषाण-शिला।

२. काष्ठशिला—सूखे वृक्ष का या काठ का समतल भाग, तख्ता आदि।

३. यथासंसृत—घास, पलाल (पियांर) आदि जो उपयोग के योग्य हो।

४२३—[**पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ संथारगा अणुण्णवेत्तए, तं जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला, अहासंथडमेव।**

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के संस्तारकों की अनुज्ञा लेना कल्पता है—पृथ्वी-शिला, काष्ठशिला और यथासंसृत संस्तारक की (४२३)।

४२४—पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति तओ संथारगा उवाइणित्तए, तं जहा—पुढविसिला, कट्ठसिला, अहासंथडमेव]।

प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार को तीन प्रकार के संस्तारकों का उपयोग करना कल्पता है—पृथ्वीशिला, काष्ठशिला और यथासंसृत संस्तारक का (४२४)।]

काल-सूत्र

४२५—तिविहे काले पण्णत्ते, तं जहा—तीए, पडुप्पण्णे, अणागए। ४२६—तिविहे समए पण्णत्ते, तं जहा—तीए, पडुप्पण्णे, अणागए। ४२७—एवं—आवलिया आणापाणू थोवे लवे मुहुत्ते अहोरत्ते जाव वाससतसहस्से पुव्वंगे पुव्वे जाव ओसप्पिणी। ४२८—तिविधे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते, तं जहा—तीते, पडुप्पण्णे, अणागए।

काल तीन प्रकार का कहा गया है—अतीत (भूत-काल), प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) काल और अनागत (भविष्य) काल (४२५)। समय तीन प्रकार का कहा गया है—अतीत, प्रत्युत्पन्न और अनागतसमय (४२६)। इसी प्रकार आवलिका, आन-प्राण (श्वासोच्छ्वास) स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र (दिन-रात) यावत् लाख वर्ष, पूर्वाङ्ग, पूर्व, यावत् अवसर्पिणी तीन तीन प्रकार की जानना चाहिए (४२७)। पुद्गल-परावर्त तीन प्रकार का कहा गया है—अतीत-पुद्गल-परावर्त, प्रत्युत्पन्न-पुद्गल-परावर्त और अनागत-पुद्गल परावर्त (४२८)।

वचन-सूत्र

४२९—तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—एगवयणे, दुवयणे, बहुवयणे।

अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—इत्थिवयणे, पुंवयणे, णपुंसगवयणे।

अहवा—तिविहे वयणे पण्णत्ते, तं जहा—तीतवयणे, पडुप्पण्णवयणे, अणागयवयणे।

वचन तीन प्रकार के कहे गये हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। अथवा वचन तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्रीवचन, पुरुषवचन और नपुंसक वचन। अथवा वचन तीन प्रकार के कहे गये हैं—अतीत वचन, प्रत्युत्पन्न वचन और अनागत-वचन (४२९)।

ज्ञानादि-प्रज्ञापना-सम्यक्-सूत्र

४३०—तिविहा पण्णवणा पण्णत्ता, तं जहा—णाणपण्णवणा, दंसणपण्णवणा, चरित्त-पण्णवणा ।

प्रज्ञापना तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञान की प्रज्ञापना (भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा) दर्शन की प्रज्ञापना और चारित्र की प्रज्ञापना (४३०)।

४३१—तिविधे सम्मे पण्णत्ते, तं जहा—णाणसम्मे, दंसणसम्मे, चरित्तसम्मे ।

सम्यक् (मोक्षप्राप्ति के अनुकूल) तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-सम्यक्, दर्शन-सम्यक् और चारित्र-सम्यक् (४३१)।

विशोधि-सूत्र

४३२—तिविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, एसणोवघाते ।

उपघात (चारित्र का विराधन) तीन प्रकार का कहा गया है—

१. उद्गम-उपघात—आहार की निष्पत्ति से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो दाता-गृहस्थ के द्वारा किया जाता है।

२. उत्पादन-उपघात—आहार के ग्रहण करने से सम्बन्धित भिक्षा-दोष, जो साधु-द्वारा किया जाता है।

३. एषणा-उपघात—आहार को लेने के समय होने वाला भिक्षा-दोष, जो साधु और गृहस्थ दोनों के द्वारा किया जाता है (४३२)।

४३३—[तिविधा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणा-विसोही] ।

विशोधि तीन प्रकार की कही गई है—

१. उद्गम-विशोधि—उद्गम-सम्बन्धी भिक्षा-दोषों की निवृत्ति।
२. उत्पादन-विशोधि—उत्पादन-सम्बन्धी भिक्षा-दोषों की निवृत्ति।
३. एषणा-विशोधि—गोचरी-सम्बन्धी दोषों की निवृत्ति (४३३)।

आराधना-सूत्र

४३४—तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा—णाणाराहणा, दंसणाराहणा, चरित्ताराहणा । ४३५—णाणाराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा । ४३६—[दंसणाराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा । ४३७—चरित्ताराहणा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा] ।

आराधना तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञान-आराधना, दर्शन-आराधना और चारित्र-

आराधना (४३४)। ज्ञान-आराधना तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (४३५)। [दर्शन-आराधना तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (४३६)। चारित्र-आराधना तीन प्रकार की कही गई है—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य (४३७)।]

विवेचन—आराधना अर्थात् मुक्ति के कारणों की साधना। अकाल-श्रुताध्ययन को छोड़कर स्वाध्याय काल में ज्ञानाराधन के आठों अंगों का अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगपूर्वक निरतिचार परिपालन करना उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है। किसी दो-एक अंग के विना ज्ञानाभ्यास करना मध्यम ज्ञानाराधना है। सातिचार ज्ञानाभ्यास करना जघन्य ज्ञानाराधना है। सम्यक्त्व के निःशंकित आदि आठों अंगों के साथ निरतिचार सम्यग्दर्शन को धारण करना उत्कृष्ट दर्शनाराधना है। किसी दो-एक अंग के विना सम्यक्त्व को धारण करना मध्यम दर्शनाराधना है। सातिचार सम्यक्त्व को धारण करना जघन्य दर्शनाराधना है। पांच समिति और तीन गुप्ति आठों अंगों के साथ चारित्र का निरतिचार परिपालन करना उत्कृष्ट चारित्राराधना है। किसी एकादि अंग से हीन चारित्र का पालन करना मध्यम चारित्राराधना है और सातिचार चारित्र का पालन करना जघन्य चारित्राराधना है।

संक्लेश-असंक्लेश सूत्र

४३८—तिविधे संकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—णाणसंकिलेसे, दंसणसंकिलेसे, चरित्तसंकिलेसे। ४३९—[तिविधे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअसंकिलेसे. दंसणअसंकिलेसे, चरित्तअसंकिलेसे।

संक्लेश तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-संक्लेश, दर्शन-संक्लेश और चारित्र-संक्लेश (४३८)। [असंक्लेश तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-असंक्लेश, दर्शन-असंक्लेश और चारित्र-असंक्लेश (४३९)]।

विवेचन—कषायों की तीव्रता से उत्पन्न होने वाली मन की मलिनता को संक्लेश कहते हैं। तथा कषायों की मन्दता से होने वाली मन की विशुद्धि को असंक्लेश कहते हैं। ये दोनों ही ज्ञान, दर्शन और चारित्र में हो सकते हैं, अतः उनके तीन-तीन भेद कहे गये हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्र से प्रतिपतन रूप संक्लिश्यमान परिणाम ज्ञानादिका संक्लेश है और ज्ञानादि का विशुद्धिरूप विशुद्धयमान परिणाम ज्ञानादि का असंक्लेश है।

अतिक्रमादि-सूत्र

४४०—तिविधे अतिक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअतिक्कमे, दंसणअतिक्कमे, चरित्त-अतिक्कमे। ४४१- तिविधे वइक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—णाणवइक्कमे, दंसणवइक्कमे. चरित्तवइक्कमे। ४४२—तिविधे अइयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणअइयारे, दंसणअइयारे, चरित्तअइयारे। ४४३—तिविधे अणायारे पण्णत्ते तं जहा—णाणअणायारे, दंसणअणायारे, चरित्तअणायारे]।

[अतिक्रम तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-अतिक्रम, दर्शन-अतिक्रम और चारित्र-अतिक्रम (४४०)। व्यतिक्रम तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-व्यतिक्रम, दर्शन-व्यतिक्रम और चारित्र-व्यतिक्रम (४४१)। अतिचार तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-अतिचार, दर्शन-अतिचार और चारित्र-अतिचार (४४२)। अनाचार तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञान-अनाचार, दर्शन-अनाचार और चारित्र-अनाचार (४४३)।]

विवेचन—ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आठ-आठ अंग या आचार कहे गये हैं। उनके प्रतिकूल आचरण करने का मन में विचार आना अतिक्रम कहा जाता है। इसके पश्चात् प्रतिकूल आचरण का प्रयास करना व्यतिक्रम कहलाता है। इससे भी आगे बढ़कर प्रतिकूल आंशिक आचरण करना अतिचार है और पूर्ण रूप से प्रतिकूल आचरण करने को अनाचार कहते हैं।[1]

४४४—तिण्हमतिक्कमाणं—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहेज्जा, [विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं] पडिवज्जेजा, तं जहा—णाणातिक्कमस्स, दंसणातिक्कमस्स, चरित्तातिक्कमस्स।

ज्ञानातिक्रम, दर्शनातिक्रम और चारित्रातिक्रम इन तीनों प्रकारों के अतिक्रमों की आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए, गर्हा करनी चाहिए, (व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुनः वैसा नहीं करने का संकल्प करना चाहिए। तथा सेवन किये हुए अतिक्रम दोषों की निवृत्ति के लिए यथोचित प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म) स्वीकार करना चाहिए (४४४)।

४४५—[तिण्हं वइक्कमाणं—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—णाणवइक्कमस्स, दंसणवइक्कमस्स, चरित्तवइक्कमस्स।

[ज्ञान-व्यतिक्रम-दर्शन-व्यतिक्रम, और चारित्र-व्यतिक्रम इन तीनों प्रकारों के व्यतिक्रमों की आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए, गर्हा करनी चाहिए, व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुनः वैसा न करने का संकल्प करना चाहिए। तथा यथोचित प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म स्वीकार करना चाहिए (४४५)।]

४४६—तिण्हमतिचाराणं—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अरकणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—णाणातिचारस्स, दंसणातिचारस्स, चरित्तातिचारस्स।

[ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार और चारित्रातिचार इन तीनों प्रकारों के अतिचारों की आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए, गर्हा करनी चाहिए, व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुनः वैसा नहीं करने का संकल्प करना चाहिए। तथा यथोचित प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म स्वीकार करना चाहिए (४४६)।]

४४७—तिण्हमणायाराणं—आलोएज्जा, पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरहेज्जा, बिउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा, तं जहा—णाण-अणायारस्स, दंसण-अणायारस्स, चरित्त-अणायारस्स]।

---

१. क्षतिं मनःशुद्धिविवेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलव्रते विलंघनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम्॥
अमितगति-द्वात्रिंशिका श्लोक ९।

[ज्ञान-अनाचार, दर्शन-अनाचार और चारित्र-अनाचार इन तीनों प्रकारों के अनाचारों की आलोचना करनी चाहिए, प्रतिक्रमण करना चाहिए, निन्दा करनी चाहिए. गर्हा करनी चाहिए, व्यावर्तन करना चाहिए, विशोधि करनी चाहिए, पुनः वैसा नहीं करने का संकल्प करना चाहिए। तथा यथोचित प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म स्वीकार करना चाहिए (४४७)।]

प्रायश्चित्त-सूत्र

४४८—तिविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे।

प्रायश्चित्त तीन प्रकार का कहा गया है—आलोचना के योग्य, प्रतिक्रमण के योग्य और तदुभय (आलोचना और प्रतिक्रमण) के योग्य (४४८)।

विवेचन—जिसके करने से उपार्जित पाप का छेदन हो, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। उसके आगम में यद्यपि दश भेद बतलाये गये हैं, तथापि यहां पर त्रिस्थानक के अनुरोध से आदि के तीन ही प्रायश्चित्तों का प्रस्तुत सूत्र में निर्देश किया गया है। गुरु के सम्मुख अपने भिक्षाचर्या आदि में लगे दोषों के निवेदन करने को आलोचना कहते हैं। मैंने जो दोष किये हैं वे मिथ्या हों, इस प्रकार 'मिच्छा मि दुक्कडं' करने को प्रतिक्रमण कहते हैं। आलोचना और प्रतिक्रमण इन दोनों के करने को तदुभय कहते हैं। जो भिक्षादि-जनित साधारण दोष होते हैं, उनकी शुद्धि केवल आलोचना से हो जाती है। जो सहसा अनाभोग से दुष्कृत हो जाते हैं, उनकी शुद्धि प्रतिक्रमण से होती है और जो राग-द्वेषादि-जनित दोष होते हैं, उनकी शुद्धि आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के करने से होती है।

अकर्मभूमि-सूत्र

४४९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते, हरिवासे, देवकुरा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में तीन अकर्मभूमियाँ कही गई हैं—हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु (४४९)।

४५०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उत्तरकुरा, रम्मगवासे, हेरण्णवए।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में तीन अकर्मभूमियां कही गई हैं—उत्तर कुरु, रम्यकवर्ष और हैरण्यवत (४५०)।

वर्ष-(क्षेत्र)-सूत्र

४५१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, हेमवए, हरिवासे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में तीन वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं—भरत, हैमवत और हरिवर्ष (४५१)।

४५२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ वासा पण्णत्ता, तं जहा—रम्मगवासे, हेरण्णवते, एरवए।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में तीन वर्ष कहे गये हैं—रम्यक वर्ष, हैरण्यवतवर्ष और ऐरवत वर्ष।

वर्षधर-पर्वत-सूत्र

४५३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में तीन वर्षधर पर्वत कहे गये हैं—क्षुल्ल हिमवान्, महाहिमवान् और निषधपर्वत।

४५४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तओ वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—णीलवंते, रुप्पी, सिहरी।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में तीन वर्षधर पर्वत कहे गये हैं—नीलवान्, रुक्मी और शिखरी पर्वत।

महाद्रह-सूत्र

४५५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तओ महादहा पण्णत्ता, तं जहा—पउमदहे, महापउमदहे, तिगिंछदहे।

तत्थ णं तओ देवताओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—सिरी, हिरी, धिती।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में तीन महाद्रह कहे गये हैं—पद्मद्रह, महापद्मद्रह और तिगिंछद्रह। इन द्रहों पर एक पल्योपम की स्थितिवाली तीन देवियाँ निवास करती हैं—श्रीदेवी, ह्रीदेवी और धृतिदेवी।

४५६—एवं—उत्तरे ण वि, नवरं—केसरिदहे, महापोंडरीयदहे, पोंडरीयदहे। देवताओ—कित्ती, बुद्धी, लच्छी।

इसी प्रकार मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में भी तीन महाद्रह कहे गये हैं—केशरीद्रह, महापुण्डरीकद्रह और पुण्डरीकद्रह। इन द्रहों पर भी एक पल्योपम की स्थितिवाली तीन देवियां निवास करती हैं—कीर्तिदेवी, बुद्धिदेवी और लक्ष्मीदेवी।

नदी-सूत्र

४५७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं चुल्लहिमवंताओ वासधरपव्वताओ पउमदहाओ महादहाओ तओ महाणदीओ पवहंति, तं जहा—गंगा, सिंधू, रोहितंसा।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में क्षुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के पद्मद्रह नामक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती हैं—गंगा, सिन्धु और रोहितांशा (४५७)।

४५८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं सिहरीओ वासहरपव्वताओ पोंडरीयद्दहाओ महादहाओ तओ महाणदीओ पवहंति, तं जहा—सुवण्णकूला, रत्ता, रत्तवती।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के पुण्डरीक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती हैं—सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तवती (४५८)।

४५९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गाहावती, दहवती, पंकवती।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्वभाग में सीता महानदी के उत्तर भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—ग्राहवती, द्रहवती और पंकवती (४५९)।

४६०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में सीता महानदी के दक्षिण भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—तप्तजला, मत्तजला और उन्मत्तजला (४६०)।

४६१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए दाहिणे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खीरोदा, सीहसोता, अंतोवाहिणी।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के उत्तर भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—क्षीरोदा, सिंहस्रोता और अन्तर्वाहिनी (४६१)।

४६२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए उत्तरे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उम्मिमालिणी, फेणमालिनी, गंभीरमालिणी।

धातकीषंड-पुष्करवर-सूत्र

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी और गम्भीरमालिनी (४६२)।

४६३—एवं—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे वि अकम्मभूमीओ आढवेत्ता जाव अंतरणदीओत्ति णिरवसेसं भाणियव्वं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं।

इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में जम्बूद्वीप के समान तीन-तीन अकर्मभूमियाँ तथा अन्तर्नदियां आदि समस्त पद कहना चाहिए (४६३)।

भूकंप-सूत्र

४६४—तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा, तं जहा—

१. अहे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उराला पोग्गला णिवतेज्जा। तते णं उराला पोग्गला णिवतमाणा देसं पुढवीए चालेज्जा।

२. महोरगे वा महिड्ढीए जाव महेसक्खे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उम्मज्ज-णिमज्जियं करेमाणे देसं पुढवीए चालेज्जा ।

३. णागसुवण्णाण वा संगामंसि वट्टमाणंसि देसं पुढवीए चलेज्जा ।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा ।

तीन कारणों से पृथ्वी का एक देश (भाग) चलित (कम्पित) होता है—

१. इस रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी के अधोभाग में स्वभाव परिणत उदार (स्थूल) पुद्गल आकर टकराते हैं, उनके टकराने से पृथ्वी का एक देश चलित हो जाता है।

२. महर्द्धिक, महाद्युति, महाबल, तथा महानुभाव महेश नामक महोरग व्यन्तर देव रत्नप्रभा पृथ्वी के अधोभाग में उन्मज्जन-निमज्जन करता हुआ पृथ्वी के एक देश को चलायमान कर देता है।

३. नागकुमार और सुपर्णकुमार जाति के भवनवासी देवों का संग्राम होने पर पृथ्वी का एक देश चलायमान हो जाता है (४६४)।

४६५—तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा, तं जहा—

१. अधे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाते गुप्पेज्जा। तए णं से घणवाते गुविते समाणे घणोदहिमेएज्जा। तए णं से घणोदही एइए समाणे केवलकप्पं पुढविं चालेज्जा।

२. देवे वा महिड्ढिए जाव महेसक्खे तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा इड्ढिं जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमं उवदंसेमाणे केवलकप्पं पुढविं चालेज्जा।

३. देवासुरसंगामंसि वा वट्टमाणंसि केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

तीन कारणों से केवल-कल्पा-सम्पूर्ण या प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वी चलित होती है—

१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अधोभाग में घनवात क्षोभ को प्राप्त होता है। वह घनवात क्षुब्ध होता हुआ घनोदधिवात को क्षोभित करता है। तत्पश्चात् वह घनोदधिवात क्षोभित होता हुआ केवलकल्पा (सारी) पृथ्वी को चलायमान कर देता है।

२. कोई महर्धिक, महाद्युति, महाबल तथा महानुभाव महेश नामक देव तथारूप श्रमण माहन को अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम दिखाता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को चलायमान कर देता है।

३. देवों तथा असुरों के परस्पर संग्राम होने पर सम्पूर्ण पृथ्वी चलित हो जाती है।

इन तीन कारणों से सारी पृथ्वी चलित होती है (४६५)।

देवकिल्विषिक-सूत्र

४६६—तिविधा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, तं जहा—तिपलिओवमट्ठितीया, तिसागरोवमट्ठितीया तेरससागरोवमट्ठितीया।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में क्षुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत के पद्मद्रह नामक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती हैं—गंगा, सिन्धु और रोहितांशा (४५७)।

४५८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं सिहरीओ वासहरपव्वताओ पोंडरीयद्दहाओ महादहाओ तओ महाणदीओ पवहंति, तं जहा—सुवण्णकूला, रत्ता, रत्तवती।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के पुण्डरीक महाद्रह से तीन महानदियाँ प्रवाहित होती हैं—सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तवती (४५८)।

४५९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गाहावती, दहवती, पंकवती।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्वभाग में सीता महानदी के उत्तर भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—ग्राहवती, द्रहवती और पंकवती (४५९)।

४६०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तत्तजला, मत्तजला, उम्मत्तजला।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में सीता महानदी के दक्षिण भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—तप्तजला, मत्तजला और उन्मत्तजला (४६०)।

४६१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए दाहिणे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खीरोदा, सीहसोता, अंतोवाहिणी।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के उत्तर भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—क्षीरोदा, सिंहस्रोता और अन्तर्वाहिनी (४६१)।

४६२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए उत्तरे णं तओ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उम्मिमालिणी, फेणमालिनी, गंभीरमालिणी।

धातकीषंड-पुष्करवर-सूत्र

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग में तीन अन्तर्नदियाँ कही गई हैं—ऊर्मिमालिनी, फेनमालिनी और गम्भीरमालिनी (४६२)।

४६३—एवं—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे वि अकम्मभूमीओ आढवेत्ता जाव अंतरणदीओत्ति णिरवसेसं भाणियव्वं जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं।

इसी प्रकार धातकीषण्ड तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में जम्बूद्वीप के समान तीन-तीन अकर्मभूमियाँ तथा अन्तर्नदियां आदि समस्त पद कहना चाहिए (४६३)।

भूकंप-सूत्र

४६४—तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा, तं जहा—

१. अहे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उराला पोग्गला णिवतेज्जा। तते णं उराला पोग्गला णिवतमाणा देसं पुढवीए चालेज्जा।

२. महोरगे वा महिड्ढीए जाव महेसक्खे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे उम्मज्ज-णिमज्जियं करेमाणे देसं पुढवीए चालेज्जा।

३. णागसुवण्णाण वा संगामंसि वट्टमाणंसि देसं पुढवीए चलेज्जा।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं देसे पुढवीए चलेज्जा।

तीन कारणों से पृथ्वी का एक देश (भाग) चलित (कम्पित) होता है—

१. इस रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी के अधोभाग में स्वभाव परिणत उदार (स्थूल) पुद्गल आकर टकराते हैं, उनके टकराने से पृथ्वी का एक देश चलित हो जाता है।

२. महर्द्धिक, महाद्युति, महाबल, तथा महानुभाव महेश नामक महोरग व्यन्तर देव रत्नप्रभा पृथ्वी के अधोभाग में उन्मज्जन-निमज्जन करता हुआ पृथ्वी के एक देश को चलायमान कर देता है।

३. नागकुमार और सुपर्णकुमार जाति के भवनवासी देवों का संग्राम होने पर पृथ्वी का एक देश चलायमान हो जाता है (४६४)।

४६५—तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा, तं जहा—

१. अधे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवाते गुप्पेज्जा। तए णं से घणवाते गुविते समाणे घणोदहिमेएज्जा। तए णं से घणोदही एइए समाणे केवलकप्पं पुढविं चालेज्जा।

२. देवे वा महिड्ढिए जाव महेसक्खे तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा इड्ढिं जुतिं जसं बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमं उवदंसेमाणे केवलकप्पं पुढविं चालेज्जा।

३. देवासुरसंगामंसि वा वट्टमाणंसि केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

इच्चेतेहिं तिहिं ठाणेहिं केवलकप्पा पुढवी चलेज्जा।

तीन कारणों से केवल-कल्पा-सम्पूर्ण या प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वी चलित होती है—

१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अधोभाग में घनवात क्षोभ को प्राप्त होता है। वह घनवात क्षुब्ध होता हुआ घनोदधिवात को क्षोभित करता है। तत्पश्चात् वह घनोदधिवात क्षोभित होता हुआ केवलकल्पा (सारी) पृथ्वी को चलायमान कर देता है।

२. कोई महर्धिक, महाद्युति, महाबल तथा महानुभाव महेश नामक देव तथारूप श्रमण माहन को अपनी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम दिखाता हुआ सम्पूर्ण पृथ्वी को चलायमान कर देता है।

३. देवों तथा असुरों के परस्पर संग्राम होने पर सम्पूर्ण पृथ्वी चलित हो जाती है।

इन तीन कारणों से सारी पृथ्वी चलित होती है (४६५)।

देवकिल्विषिक-सूत्र

४६६—तिविधा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, तं जहा—तिपलिओवमट्ठितीया, तिसागरोवम-ट्ठितीया तेरससागरोवमट्ठितीया।

१. कहि णं भंते ! तिपलिओवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

उप्पिं जोइसियाणं, हिट्ठिं सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिपलिओवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति।

२. कहि णं भंते ! तिसागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

उप्पिं सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं, हेट्ठिं सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिसागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति।

३. कहि णं भंते ! तेरससागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

उप्पिं बंभलोगस्स कप्पस्स, हेट्ठिं लंतगे कप्पे, एत्थ णं तेरससागरोवमट्ठितीया देवकिब्बिसिया परिवसंति।

किल्विषिक देव तीन प्रकार के कहे गये हैं—तीन पल्योपम की स्थितिवाले, तीन सागरोपम की स्थितिवाले और तेरह सागरोपम की स्थितिवाले।

१. प्रश्न भदन्त ! तीन पल्योपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव कहां निवास करते हैं ?

उत्तर—आयुष्मन् ! ज्योतिष्क देवों के ऊपर तथा सौधर्म-ईशानकल्पों के नीचे, तीन पल्योपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव निवास करते हैं।

२. प्रश्न—भदन्त ! तीन सागरोपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

उत्तर—आयुष्मन् ! सौधर्म और ईशान कल्पों के ऊपर, तथा सनत्कुमार महेन्द्रकल्पों से नीचे, तीन सागरोपम की स्थितिवाले देव निवास करते हैं।

३. प्रश्न—भदन्त ! तेरह सागरोपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

उत्तर—आयुष्मन् ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर तथा लान्तककल्प के नीचे तेरह सागरोपम की स्थितिवाले किल्विषिक देव निवास करते हैं।

देवस्थिति-सूत्र

४६७—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिरपरिसाए देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। ४६८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भिंतरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। ४६९—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो बाहिरपरिसाए देवीणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवेन्द्र, देवराज शक्र की बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है (४६७)। देवेन्द्र, देवराज शक्र की आभ्यन्तर परिषद् की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है (४६८)। देवेन्द्र, देवराज ईशान की बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है (४६९)।

प्रायश्चित्त-सूत्र

४७०—तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—णाणपायच्छित्ते, दंसणपायच्छित्ते, चरित्त-पायच्छित्ते।

प्रायश्चित्त तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानप्रायश्चित्त, दर्शनप्रायश्चित्त और चारित्र-प्रायश्चित्त (४७०)।

४७१—तओ अणुग्घातिमा पण्णत्ता, तं जहा—हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं सेवेमाणे, राईभोयणं भुंजमाणे।

तीन अनुद्घात (गुरु) प्रायश्चित्त के योग्य कहे गये हैं—हस्त-कर्म करने वाला, मैथुन सेवन करने वाला और रात्रिभोजन करने वाला (४७१)।

४७२—तओ पारंचिता पण्णत्ता, तं जहा—दुट्ठे पारंचिते, पमत्ते पारंचिते, अण्णमण्णं करेमाणे पारंचिते।

तीन पारांचित प्रायश्चित्त के भागी कहे गये हैं—दुष्ट पारांचित, (तीव्रतम काषायदोष से दूषित तथा विषयदुष्ट साध्वीकामुक) प्रमत्त पारांचित (स्त्यानर्द्धिनिद्रावाला) और अन्योन्य मैथुन सेवन करने वाला (४७२)।

४७३—तओ अणवट्ठप्पा पण्णत्ता, तं जहा—साहम्मियाणं तेणियं करेमाणे, अण्णधम्मियाणं तेणियं करेमाणे, हत्थातालं दलयमाणे।

तीन अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त के योग्य कहे गये हैं—सार्धमिकों की चोरी करने वाला, अन्य-धार्मिकों की चोरी करने वाला और हस्तताल देने वाला (मारक प्रहार करने वाला) (४७३)।

विवेचन—लघु प्रायश्चित्त को उद्घातिम और गुरु प्रायश्चित्त को अनुद्घातिम कहते हैं। अर्थात् दिये गये प्रायश्चित्त में गुरु द्वारा कुछ कमी करना उद्घात कहलाता है। तथा जितना प्रायश्चित्त गुरु द्वारा दिया जावे उसे उतना ही पालन करना अनुद्घात कहा जाता है। जैसे १ मास के तप में अढाई दिन कम करना उद्घात प्रायश्चित्त है और पूरे मास भर तप करना अनुद्घात प्रायश्चित्त है। हस्तकर्म, मैथुनसेवन और रात्रि-भोजन करने वालों को अनुद्घात प्रायश्चित्त दिया जाता है। पारांचिक प्रायश्चित्त का आशय वहिष्कृत करना है। वह वहिष्कार लिंग (वेष) से, उपाश्रय ग्राम आदि क्षेत्र से नियतकाल से तथा तपश्चर्या से होता है। तत्पश्चात् पुनः दीक्षा दी जाती है। जो विषय-सेवन से या कषायों की तीव्रता से दुष्ट है, स्त्यानर्द्धि निद्रावाला एवं परस्पर मैथुन-सेवी साधु है, उसे पारांचित प्रायश्चित्त दिया जाता है। तपस्या-पूर्वक पुनः दीक्षा देने को अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त कहते हैं। जो साधर्मी जनों के या अन्य धार्मिक के वस्त्र-पात्रादि चुराता है या किसी साधु आदि को मारता-पीटता है, ऐसे साधु को यह अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त दिया जाता है। किस प्रकार के दोषसेवन से कौन सा प्रायश्चित्त दिया जाता है, इसका विशद विवेचन वृहत्कल्प आदि छेदसूत्रों में देखना चाहिए।

प्रव्रज्यादि-अयोग्य-सूत्र

४७४—तओ णो कप्पंति पव्वावेत्तए, तं जहा—पंडए, वातिए, कीवे।

तीन को प्रव्रजित करना नहीं कल्पता है—नपुंसक, वातिक[1] (तीव्र वात रोग से पीड़ित) और क्लीव (वीर्य-धारण में अशक्त) को (४७४)।

४७५—[तओ णो कप्पंति]—मुंडावित्तए, सिक्खावित्तए, उवट्ठावेत्तए, संभुंजित्तए, संवासित्तए, तं जहा—पंडए, वातिए, कीवे।

तीन को मुण्डित करना, शिक्षण देना,, महाव्रतों में आरोपित करना, उनके साथ संभोग करना (आहार आदि का संबंध रखना) और सहवास करना नहीं कल्पता है—नपुंसक, वातिक और क्लीव को (४७५)।

अवाचनीय-वाचनीय-सूत्र

४७६—तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—अविणीए, विगतीपडिबद्धे, अविओसवितपाहुडे।

तीन वाचना देने के अयोग्य कहे गये हैं—

१. अविनीत—विनय-रहित, उद्दण्ड।

२. विकृति-प्रतिबद्ध—दूध, घी आदि रसों के सेवन में आसक्त।

३. अव्यवशमितप्राभृत—कलह को शान्त नहीं करने वाला (४७६)।

४७७—तओ कप्पंति वाइत्तए, तं जहा—विणीए, अविगतीपडिबद्धे, विओसवियपाहुडे।

तीन को वाचना देना कल्पता है—विनीत, विकृति-अप्रतिबद्ध और व्यवशमितप्राभृत (४७७)।

दुःसंज्ञाप्य-सुसंज्ञाप्य

४७८—तओ दुसण्णप्पा पण्णत्ता, तं जहा—दुट्ठे, मूढे, वुग्गाहिते।

तीन दुःसंज्ञाप्य (दुर्बोध्य) कहे गये हैं—दुष्ट, मूढ (विवेकशून्य) और व्युद्ग्राहित—कदाग्रही के द्वारा भड़काया हुआ (४७८)।

४७९—तओ सुसण्णप्पा पण्णत्ता, तं जहा—अदुट्ठे, अमूढे, अवुग्गाहिते।

तीन सुसंज्ञाप्य (सुबोध्य) कहे गये हैं—अदुष्ट, अमूढ और अव्युद्ग्राहित (४७९)।

माण्डलिक-पर्वत-सूत्र

४८०—तओ मंडलिया पव्वता पण्णत्ता, तं जहा—माणुसुत्तरे, कुंडलवरे, रुयगवरे।

---

१. किसी निमित्त से वेदोदय होने पर जो मैथुनसेवन किए विना न रह सकता हो, उसे यहां वातिक समझना चाहिए। 'वातित' के स्थान पर पाठान्तर है—'वाहिय' जिसका अर्थ है रोगी।

तीन माण्डलिक (वलयाकार वाले) पर्वत कहे गये हैं—मानुषोत्तर, कुण्डलवर और रुचकवर पर्वत (४८०)।

महतिमहालय-सूत्र

४८१—तओ महतिमहालया पण्णत्ता, तं जहा—जंबुद्दीवए मंदरे मंदरेसु, सयंभूरमणे समुद्दे समुद्देसु, बंभलोए कप्पे कप्पेसु।

तीन महतिमहालय (अपनी-अपनी कोटि में सबसे बड़े) कहे गये हैं—मन्दर पर्वतों में जम्बूद्वीप का सुमेरु पर्वत, समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र और कल्पों में ब्रह्मलोक कल्प (४८१)।

कल्पस्थिति-सूत्र

४८२—तिविधा कप्पठिती पण्णत्ता, तं जहा—सामाइयकप्पठिती, छेदोवट्ठावणियकप्पठिती, णिव्विसमाणकप्पठिती।

अहवा—तिविहा कप्पठिती पण्णत्ता, तं जहा—णिव्विट्ठकप्पट्ठिती, जिणकप्पट्ठिती, थेरकप्पट्ठिती।

कल्पस्थिति तीन प्रकार की कही गई है—सामयिक कल्पस्थिति, छेदोपस्थापनीय कल्पस्थिति और निर्विशमान कल्पस्थिति।

अथवा कल्पस्थिति तीन प्रकार की कही गई है—निर्विष्टकल्पस्थिति, जिनकल्पस्थिति और स्थविरकल्पस्थिति।

विवेचन—साधुओं की आचार-मर्यादा को कल्पस्थिति कहते हैं। इस सूत्र के पूर्व भाग में जिन तीन कल्पस्थितियों का नाम-निर्देश किया गया है, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१. सामायिक कल्पस्थिति—सामायिक नामक संयम की कल्पस्थिति अर्थात् काल-मर्यादा को सामायिक-कल्पस्थिति कहते हैं। यह कल्पस्थिति प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय में अल्पकाल की होती है, क्योंकि वहां छेदोपस्थापनीय-कल्पस्थिति होती है। शेष बाईस तीर्थंकरों के समय में तथा महाविदेह में जीवन-पर्यन्त की होती है, क्योंकि छेदोपस्थानीय-कल्पस्थिति नहीं होती है।

इस कल्प के अनुसार शय्यातर-पिण्ड-परिहार, चातुर्यामधर्म का पालन, पुरुषज्येष्ठत्व और कृतिकर्म; ये चार आवश्यक होते हैं। तथा अचेलकत्व (वस्त्र का अभाव या अल्प वस्त्र ग्रहण) औद्देशिकत्व (एक साधु के उद्देश्य से बनाये गये) आहार का दूसरे साम्भोगिक-द्वारा अग्रहण, राज-पिण्ड का अग्रहण, नियमित प्रतिक्रमण, मास-कल्प विहार और पर्युषणा कल्प ये छह वैकल्पिक होते हैं।

२. छेदोपस्थापनीय-कल्पस्थिति प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय में ही हाती है। इस कल्प के अनुसार उपर्युक्त दश कल्पों का पालन करना अनिवार्य है।

३. निर्विशमान कल्पस्थिति—परिहारविशुद्धि संयम की साधना करने वाले तपस्यारत साधुओं की आचार-मर्यादा को निर्विशमान कल्पस्थिति कहते हैं।

४. निर्विष्टकायिक स्थिति—जिन तीन प्रकार की कल्पस्थितियों का सूत्र के उत्तर भाग में निर्देश किया गया है उसमें पहिली निर्विष्ट कल्पस्थिति है। परिहारविशुद्धि संमय की साधना सम्पन्न कर चुकने वाले साधुओं की स्थिति को निर्विष्ट कल्पस्थिति कहते हैं। इसका खुलासा इस प्रकार है—

परिहारविशुद्धि संयम की साधना में नौ साधु एक साथ अवस्थित होते हैं। उनमें चार साधु पहिले तपस्या प्रारम्भ करते हैं, उन्हें निर्विशमान कल्पस्थितिक साधु कहा जाता है। चार साधु उनकी परिचर्या करते हैं, तथा एक साधु वाचनाचार्य होता है। निर्विशमान साधुओं की तपस्या का क्रम इस प्रकार से रहता है—वे साधु ग्रीष्म, शीत और वर्षा ऋतु में जघन्य रूप से क्रमशः चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त और अष्टमभक्त की तपस्या करते हैं। मध्यम रूप से उक्त ऋतुओं में क्रमशः षष्ठभक्त, अष्टमभक्त और दशमभक्त की तपस्या कहते हैं। तथा उत्कृष्ट रूप से उक्त ऋतुओं में क्रमशः अष्टमभक्त, दशम-भक्त और द्वादशभक्त की तपस्या करते हैं। पारणा में साभिग्रह आयम्बिल की तपस्या करते हैं। शेष पांचों साधु भी इस साधना-काल में आयम्बिल तप करते हैं।

पूर्व के चार साधुओं की तपस्या समाप्त हो जाने पर शेष चार तपस्या प्रारम्भ करते हैं तथा साधना-समाप्त कर चुकने वाले चारों साधु उनकी परिचर्या करते हैं, उन्हें निर्विष्टकल्पस्थिति वाला कहा जाता है। इन चारों की साधना उक्त प्रकार से समाप्त हो जाने पर वाचनाचार्य साधना में अवस्थित होते हैं और शेष साधु उनकी परिचर्या करते हैं।

उक्त नवों ही साधु जघन्य रूप से नवें प्रत्याख्यान पूर्व की तीसरी आचारनामक वस्तु (अधिकार-विशेष) के ज्ञाता होते हैं और उत्कृष्ट रूप से कुछ कम दश पूर्वो के ज्ञाता होते हैं।

दिगम्बर-परम्परा में परिहारविशुद्धि संयम की साधना के विषय में कहा गया है कि जो व्यक्ति जन्म से लेकर तीस वर्ष तक गृहस्थी के सुख भोग कर तीर्थंकर के समीप दीक्षित होकर वर्ष-पृथक्त्व (तीन से नौ वर्ष) तक उनके पादमूल में रह कर प्रत्याख्यान पूर्व का अध्ययन करता है, उसके परिहार-विशुद्धि संयम की सिद्धि होती है। इस तपस्या से उसे इस प्रकार की ऋद्धि प्राप्त हो जाती है कि उसके गमन करते, उठते, बैठते और आहार-पान ग्रहण करते हुए किसी भी समय किसी भी जीव को पीड़ा नहीं पहुंचती है।[1]

---

१. परिहारप्रधानः शुद्धिसंयतः परिहारशुद्धिसंयतः। त्रिंशद्वर्षाणि यथेच्छया भोगमनुभूय सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वा संयममादाय द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावगत-परिमितापरिमितप्रत्याख्यान-प्रतिपादक प्रत्याख्यान-पूर्णमहार्णवं समधिगम्य व्यपगतसकलसंशयस्तपोविशेषात् समुत्पन्नपरिहारर्द्धिस्तीर्थंकरपादमूले परिहार-संयममादत्ते। एयमादाय स्थान-गमन-चङ्क्रमणाशन-पानासनादिषु व्यापारेष्वशेषप्राणिपरिहरणदक्षः परिहार-शुद्धिसंयतो भवति।

(धवला टीका पुस्तक १, पृ० ३७०-३७१)

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं च तित्थयरमूले।
पच्चक्खाणं पढिदो संभूणदुगाउयविहारो॥

(गो० जीवकांड, गाथा ४७२)

परिहारर्द्धिसमेतो जीवो षट्कायसंकुले विहरन्।
पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन॥१॥

(गो० जीवकांड, जीवप्रबोधिका टीका उद्धृत)

५. जिनकल्पस्थिति—दीर्घकाल तक संघ में रह कर संयम-साधना करने के पश्चात् जो साधु और भी अधिक संयम की साधना करने के लिए गण, गच्छ आदि से निकल कर एकाकी विचरते हुए एकान्तवास करते हैं उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहते हैं। वे प्रतिदिन आयंबिल करते हैं, दश गुण वाले स्थंडिल भूमि में उच्चार-प्रस्रवण करते है, तीसरे प्रहर में भिक्षा लेते हैं, मासकल्प विहार करते हैं, तथा एक गली में छह दिनों से पहिले भिक्षा के लिए नहीं जाते हैं। वे वज्रर्षभनाराच संहनन के धारक और सभी प्रकार के घोरातिघोर उपसर्गों को सहन करने के सामर्थ्य वाले होते हैं।

६. स्थविरकल्पस्थिति—जो आचार्यादि के गण-गच्छ से प्रतिबद्ध रह कर संयम की साधना करते हैं, ऐसे साधुओं की आचार-मर्यादा स्थविरकल्पस्थिति कहलाती है। स्थविरकल्पी साधु पठन-पाठन, शिक्षा, दीक्षा और व्रत ग्रहण आदि कार्यों में संलग्न रहते हैं, अनियत वासी होते हैं, तथा साधु-समाचारी का सम्यक् प्रकार से परिपालन करते हैं।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि स्थविर कल्पस्थिति में सामायिक चारित्र का पालन करते हुए छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। उसके सम्पन्न होने पर परिहारविशुद्धि चारित्र के भेद रूप निर्विशमान और तदनन्तर निर्विष्टकायिक संयम की साधना की जाती है और अन्त में जिनकल्पस्थिति की योग्यता होने पर उसे अंगीकार किया जाता है।

शरीर-सूत्र

४८३—णेरइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए। ४८४—असुर-कुमाराणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए। ४८५—एवं—सव्वेसिं देवाणं। ४८६—पुढविकाइयाणं तओ सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, तेयए, कम्मए। ४८७—एवं—वाउकाइयवज्जाणं जाव चउरिंदियाणं।

नारक जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं - वैक्रिय शरीर (नाना प्रकार की विक्रिया करने में समर्थ शरीर) तैजस शरीर (तैजस वर्गणाओं से निर्मित सूक्ष्म शरीर) और कार्मण शरीर (कर्म वर्गणात्मक सूक्ष्म शरीर)(४८३)। असुरकुमारों के तीन शरीर कहे गये हैं—वैक्रिय शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर (४८४)। इसी प्रकार सभी देवों के तीन शरीर जानना चाहिए (४८५)। पृथ्वी-कायिक जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं—औदारिक शरीर (औदारिक पुद्गल वर्गणाओं से निर्मित अस्थि-मांसमय शरीर) तैजस शरीर और कार्मण शरीर (४८६)। इसी प्रकार वायुकायिक जीवों को छोड़कर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीवों के तीन शरीर जानना चाहिए (वायुकायिकों के चार शरीर होने से उन्हें छोड़ दिया गया है) (४८७)।

प्रत्यनीक-सूत्र

४८८—गुरुं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—आयरियपडिणीए, उवज्झाय-पडिणीए, थेरपडिणीए।

गुरु की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक (प्रतिकूल व्यवहार करने वाले) कहे गये हैं—आचार्य-प्रत्यनीक, उपाध्याय-प्रत्यनीक और स्थविर-प्रत्यनीक।

४८९—गतिं पडुच्च तओो पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगपडिणीए, परलोगपडिणीए, दुहओलोगपडिणीए।

गति की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—इहलोक-प्रत्यनीक (इन्द्रियार्थ से विरुद्ध करने वाला, यथा-पंचाग्नि तपस्वी) परलोक-प्रत्यनीक (इन्द्रियविषयों में तल्लीन) और उभय-लोक-प्रत्यनीक (चोरी आदि करके इन्द्रिय-विषयों में तल्लीन) (४८९)।

४९०—समूहं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघ-पडिणीए।

समूह की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक और संघ-प्रत्यनीक (४९०)।

४९१—अणुकंपं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेहपडिणीए।

अनुकम्पा की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—तपस्वी-त्प्रयनीक, ग्लान-प्रत्यनीक और शैक्ष-प्रत्यनीक (४९१)।

४९२—भावं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—णाणपडिणीए, दंसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए।

भावकी अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—ज्ञान-प्रत्यनीक, दर्शन-प्रत्यनीक और चारित्र-प्रत्यनीक (४९२)।

४९३—सुयं पडुच्च तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्तपडिणीए, अत्थपडिणीए, तदुभय-पडिणीए।

श्रुत की अपेक्षा से तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं—सूत्र-प्रत्यनीक, अर्थ-प्रत्यनीक और तदुभय-प्रत्यनीक (४९३)।

विवेचन—प्रत्यनीक शब्द का अर्थ प्रतिकूल आचरण करने वाला व्यक्ति है। आचार्य और उपाध्याय दीक्षा और शिक्षा देने के कारण गुरु हैं, तथा स्थविर वयोवृद्ध, तपोवृद्ध एवं ज्ञान-गरिमा की अपेक्षा गुरु तुल्य हैं। जो इन तीनों के प्रतिकूल आचरण करता है, उनकी यथोचित विनय नहीं करता, उनका अवर्णवाद करता और उनका छिद्रान्वेषण करता है वह गुरु-प्रत्यनीक कहलाता है।

जो इस लोक सम्बन्धी प्रचलित व्यवहार के प्रतिकूल आचरण करता है वह इह-लोक प्रत्यनीक है। जो परलोक के योग्य सदाचरण न करके कदाचरण करता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहता और परलोक का निषेध करता है वह परलोक-प्रत्यनीक कहलाता है। दोनों लोकों के प्रतिकूल आचरण करने वाला व्यक्ति उभयलोक-प्रत्यनीक कहा जाता है।

साधु के लघु-समुदाय को कुल कहते हैं, अथवा एक आचार्य की शिष्य-परम्परा को कुल कहते हैं। परस्पर-सापेक्ष तीन कुलों के समुदाय को गण कहते हैं। तथा संयम की साधना करने वाले सभी

साधुओं के समुदाय को संघ कहते हैं। कुल, गण या संघ का अवर्णवाद करने वाला, उन्हें स्नानादि न करने से म्लेच्छ, या अस्पृश्य कहने वाला व्यक्ति समूह की अपेक्षा प्रत्यनीक कहा जाता है।

मासोपवास आदि प्रखर तपस्या करने वाले को तपस्वी कहते हैं। रोगादि से पीड़ित साधु को ग्लान कहते हैं और नव-दीक्षित साधु को शैक्ष कहते हैं। ये तीनों ही अनुकम्पा के पात्र कहे गये हैं। उनके ऊपर जो न स्वयं अनुकम्पा करता है, न दूसरों को उनकी सेवा-सुश्रूषा करने देता है, प्रत्युत उनके प्रतिकूल आचरण करता है, उसे अनुकम्पा की अपेक्षा प्रत्यनीक कहा जाता है।

ज्ञान-दर्शन-चारित्रात्मक भाव, कर्म-मुक्ति एवं आत्मिक सुख-शान्ति के कारण हैं, उन्हें व्यर्थ कहने वाला और उनकी विपरीत प्ररूपणा करने वाला व्यक्ति भाव-प्रत्यनीक कहलाता है।

श्रुत (शास्त्राभ्यास) के तीन अंग हैं—मूल सूत्र, उसका अर्थ तथा दोनों का समन्वित अभ्यास। इन तीनों के प्रतिकूल श्रुत की अवज्ञा करने वाले और विपरीत अभ्यास करने वाले व्यक्ति को श्रुत-प्रत्यनीक कहते हैं।

अंग-सूत्र

४९४—तओ पितियंगा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठी, अट्ठिमिंजा, केसमंसुरोमणहे।

तीन पितृ-अंग (पिता के वीर्य से बनने वाले) कहे गये हैं—अस्थि, मज्जा और केश-दाढ़ी-मूँछ, रोम एवं नख (४९४)।

४९५—तओ माउयंगा पण्णत्ता, तं जहा—मंसे, सोणिते, मत्थुलिंगे।

तीन मातृ-अंग (माता के रज से बनने वाले अंग) कहे गये हैं—मांस, शोणित (रक्त) और मस्तुलिंग (मस्तिष्क) (४९५)।

मनोरथ-सूत्र

४९६—तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—

१. कया णं अहं अप्पं वा बहुयं वा सुयं अहिज्जिस्सामि ?

२. कया णं अहं एकल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरिस्सामि ?

३. कया णं अहं अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते कालं अणवकंखमाणे विहरिस्सामि ?

एवं समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणे निग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

तीन कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है—

१. कब मैं अल्प या बहुत श्रुत का अध्ययन करूंगा ?

२. कब मैं एकल विहार प्रतिमा को स्वीकार कर विहार करूंगा ?

३. कब मैं अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना से युक्त होकर, भक्त-पान का परित्याग कर पादोपगमन संथारा स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ विचरूंगा ?

इस प्रकार उत्तम मन, वचन, काय से उक्त भावना करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा तथा महापर्यवसान वाला होता है।

४९७—तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—

१. कया णं अहं अप्पं या बहुयं वा परिग्गहं परिचइस्सामि ?

२. कया णं अहं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइस्सामि ?

३. कया णं अहं अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाणपडियाइक्खिते पाओवगते कालं अणवकंखमाणे विहरिस्सामि ?

एवं समणसा सवयसा सकायसा पागडेमाणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति।

तीन कारणों से श्रमणोपासक (गृहस्थ श्रावक) महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है—

१. कब मैं अल्प या बहुत परिग्रह का परित्याग करूंगा ?

२. कब मैं मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होऊंगा ?

३. कब मैं अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना से युक्त होकर भक्त-पान का परित्याग कर, प्रायोपगमन संथारा स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ विचरूंगा ?

इस प्रकार उत्तम मन, वचन, काय से उक्त भावना करता हुआ श्रमणोपासक महानिर्जरा और महापर्यवसान वाला होता है (४९७)।

विवेचन—सात तत्त्वों में निर्जरा एक प्रधान तत्त्व है। बंधे हुए कर्मों के झड़ने को निर्जरा कहते हैं। यह कर्म-निर्जरा जब विपुल प्रमाण में असंख्यात गुणित क्रम से होती है, तब वह महानिर्जरा कही जाती है। महापर्यवसान के दो अर्थ होते हैं—समाधिमरण और अपुनर्मरण। जिस व्यक्ति के कर्मों की महानिर्जरा होती है, वह समाधिमरण को प्राप्त हो या तो कर्म-मुक्त होकर अपुर्नमरण को प्राप्त होता है, अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से छूट कर सिद्ध हो जाता है। अथवा उत्तम जाति के देवों में उत्पन्न होकर फिर क्रम से मोक्ष प्राप्त करता है।

उक्त दो सूत्रों में से प्रथम सूत्र में जो तीन कारण महानिर्जरा और महापर्यवसान के बताये गये हैं वे श्रमण (साधु) की अपेक्षा से और दूसरे सूत्र में श्रमणोपासक (श्रावक) की अपेक्षा से कहे गये हैं। उन तीन कारणों में मारणान्तिक सलेखना कारण दोनों के समान हैं। श्रमणोपासक का दूसरा कारण घर त्याग कर साधु बनने की भावना रूप है। तथा श्रमण का दूसरा कारण एकल विहार (प्रतिमा धारण) की भावना वाला है।

एकल विहार प्रतिमा का अर्थ है—अकेला रहकर आत्म-साधना करना। भगवान् ने तीन स्थितियों में अकेले विचरने की अनुज्ञा दी है—

१. एकाकीविहार प्रतिमा-स्वीकार करने पर।

२. जिनकल्प-प्रतिमा स्वीकार करने पर।

३. मासिक आदि भिक्षु-प्रतिमाएं स्वीकार करने पर।

एकाकीविहार-प्रतिमा वाले के लिए १. श्रद्धावान्, २. सत्यवादी, ३. मेधावी, ४. बहुश्रुत, ५. शक्तिमान् ६. अल्पाधिकरण, ७. धृतिमान् और ८. वीर्यसम्पन्न होना आवश्यक है। इन आठों गुणों का विवेचन आठवें स्थान के प्रथम सूत्र की व्याख्या में किया जावेगा।

पुद्गल-प्रतिघात-सूत्र

४९८—तिविहे पोग्गलपडिघाते पण्णत्ते, तं जहा—परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलं पप्प पडिहण्णिज्जा, लुक्खत्ताए वा पडिहण्णिज्जा, लोगंते वा पडिहण्णिज्जा।

तीन कारणों से पुद्गलों का प्रतिघात (गति-स्खलन) कहा गया है—

१. एक पुद्गल-परमाणु दूसरे पुद्गल-परमाणु से टकरा कर प्रतिघात को प्राप्त होता है।

२. अथवा रूक्षरूप से परिणत होकर प्रतिघात को प्राप्त होता है।

३. अथवा लोकान्त में जाकर प्रतिघात को प्राप्त होता है क्योंकि आगे गतिसहायक धर्मास्तिकाय का अभाव है (५९८)।

चक्षुः-सूत्र

४९९—तिविहे चक्खू पण्णत्ते, तं जहा—एगचक्खू, बिचक्खू, तिचक्खू।

छउमत्थे णं मणुस्से एगचक्खू, देवे बिचक्खू, तहारूवे समणे वा माहणे वा उप्पणणाणदंसणधरे तिचक्खुत्ति वत्तव्वं सिया।

चक्षुष्मान् (नेत्रवाले) तीन प्रकार के कहे गये हैं—एकचक्षु, द्विचक्षु और त्रिचक्षु।

१. छद्मस्थ (अल्पज्ञानी बारहवें गुणस्थान तक का) मनुष्य एक चक्षु होता है।

२. देव द्विचक्षु होता है, क्योंकि उसके द्रव्य नेत्र के साथ अवधिज्ञान रूप दूसरा भी नेत्र होता है।

३. द्रव्यनेत्र के साथ केवलज्ञान और केवलदर्शन का धारक श्रमण-माहन त्रिचक्षु कहा गया है (४९९)।

अभिसमागम सूत्र

५००—तिविधे अभिसमागमे पण्णत्ते, तं जहा—उड्ढं, अहं, तिरियं।

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जति, से णं तप्पढमताए उड्ढमभिसमेति, ततो तिरियं, ततो पच्छा अहे। अहोलोगे णं दुरभिगमे पण्णत्ते समणाउसो !

अभिसमागम (वस्तु-स्वरूप का यथार्थज्ञान) तीन प्रकार का कहा गया है—ऊर्ध्व-अभिसमागम, तिर्यक्-अभिसमागम और अधः-अभिसमागम।

जब तथारूप श्रमण-माहनको अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होता है, तब वह सर्वप्रथम ऊर्ध्वलोक को जानता है। तत्पश्चात् तिर्यक्लोक को जानता है और उसके पश्चात् अधोलोक को जानता है।

हे आयुष्मन् श्रमण! अधोलोक सबसे अधिक दुरभिगम कहा गया है (५००)।

ऋद्धि-सूत्र

५०१—तिविधा इड्ढी पण्णत्ता, तं जहा—देविड्ढी, राइड्ढी, गणिड्ढी।

ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—देव-ऋद्धि, राज्य-ऋद्धि और गणि(आचार्य)-ऋद्धि।

५०२—देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—विमाणिड्ढी, विगुव्वणिड्ढी, परियारणिड्ढी।

अहवा—देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

देव-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—विमान-ऋद्धि, वैक्रिय-ऋद्धि और परिचारण-ऋद्धि।

अथवा देव-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—सचित्त-ऋद्धि, (देवी-देवादिका परिवार) अचित्त-ऋद्धि-वस्त्र-आभूशाषादि और मिश्र-ऋद्धि-वस्त्राभरणभूषित देवी आदि (५०२)।

५०३—राइड्ढी तिविधा पण्णत्ता, तं जहा—रण्णो अतियाणिड्ढी, रण्णो णिज्जाणिड्ढी, रण्णो बल-वाहण-कोस-कोट्ठागारिड्ढी।

अहवा—राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

राज्य-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—

१. अतियान-ऋद्धि—नगरप्रवेश के समय की जाने वाली तोरण-द्वारादि रूप शोभा।

२. निर्याण-ऋद्धि—नगर से बाहर निकलने का ठाठ।

३. कोष-कोष्ठागार-ऋद्धि—खजाने और धान्य-भाण्डारादि रूप।

अथवा-राज्य-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है—

१. सचित्त-ऋद्धि—रानी, सेवक, परिवारादि।

२. अचित्त-ऋद्धि—वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्रादि।

३. मिश्र-ऋद्धि—अस्त्र-शस्त्र धारक सेना आदि (५०३)।

विवेचन—जब कोई राजा युद्धादि को जीतकर नगर में प्रवेश करता है, या विशिष्ट अतिथि जब नगर में आते हैं, उस समय की जाने वाली नगर-शोभा या सजावट अतियान ऋद्धि कही जाती है। जब राजा युद्ध के लिये या किसी मांगलिक कार्य के लिए नगर से बाहर ठाठ-बाट के साथ निकलता है उस समय की जाने वाली शोभा-सजावट निर्याण-ऋद्धि कहलाती है।

५०४—गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—णाणिड्ढी, दंसणिड्ढी, चरित्तिड्ढी।

अहवा—गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सचित्ता, अचित्ता, मीसिता।

गणि-ऋद्धि तीन प्रकार की कही है--

१. ज्ञान-ऋद्धि—विशिष्ट श्रुत-सम्पदा की प्राप्ति।

२. दर्शन-ऋद्धि—प्रवचन में निःशंकितादि, एवं प्रभावक प्रवचनशक्ति आदि।

३. चारित्र-ऋद्धि--निरतिचार चारित्र प्रतिपालना आदि।

अथवा गणि-ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है--

१. सचित्त-ऋद्धि—शिष्य-परिवार आदि।

२. अचित्त-ऋद्धि—वस्त्र, पात्र, शास्त्र-संग्रहादि।

३. मिश्र-ऋद्धि—वस्त्र-पात्रादि से युक्त शिष्य-परिवारादि (५०४)।

गौरव-सूत्र

५०५—तओ गारवा पण्णत्ता, तं जहा—इड्ढीगारवे, रसगारवे, सातागारवे।

गौरव तीन प्रकार के कहे गये हैं—

१. ऋद्धि-गौरव—राजादि के द्वारा पूज्यता का अभिमान।

२. रस-गौरव—दूध, घृत, मिष्ट रसादि की प्राप्ति का अभिमान।

३. साता-गौरव—सुखशीलता, सुकुमारता संबंधी गौरव (५०५)।

करण-सूत्र

५०६—तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—धम्मिए करणे, अधम्मिए करणे, धम्मियाधम्मिए करणे।

करण तीन प्रकार का कहा गया है—

१. धार्मिककरण—संयमधर्म के अनुकूल अनुष्ठान।

२. अधार्मिक-करण—संयमधर्म के प्रतिकूल आचरण।

३. धार्मिकाधार्मिक-करण—कुछ धर्माचरण और कुछ अधर्माचरणरूप प्रवृत्ति (५०६)।

स्वाख्यातधर्म-सूत्र

५०७—तिविहे भगवता धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुअधिज्झिते, सुज्झाइते, सुतवस्सिते। जया सुअधिज्झितं भवति तदा सुज्झाइतं भवति, जया सुज्झाइतं भवति तदा सुतवस्सितं भवति, से सुअधिज्झिते सुज्झिाइते सुतवस्सिते सुयक्खाते णं भगवता धम्मे पण्णत्ते।

भगवान् ने तीन प्रकार का धर्म कहा है—सु-अधीत (समीचीन रूप से अध्ययन किया गया)। सु-ध्यात (समीचीन रूप से चिन्तन किया गया) और सु-तपस्यित (सु-आचरित)।

जब धर्म सु-अधीत होता है, तब वह सु-ध्यात होता है।

जब वह सु-ध्यात होता है, तब वह सु-तपस्यित होता है।

सु-अधीत, सु-ध्यात और सु-तपस्यित धर्म को भगवान ने स्वाख्यात धर्म कहा है (५०७)।

ज्ञ-अज्ञ-सूत्र

५०८—तिविधा वावत्ती पण्णत्ता, तं जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

व्यावृत्ति (पापरूप कार्यों से निवृत्ति) तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञान-पूर्वक, अज्ञान-पूर्वक और विचिकित्सा (संशयादि)-पूर्वक (५०८)।

५०९—[तिविधा अज्झोववज्जणा पण्णत्ता, तं जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

[अध्युपपादन (इन्द्रिय-विषयानुसंग) तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानपूर्वक, अज्ञान-पूर्वक और विचिकित्सा-पूर्वक (५०९)।

५१०—तिविधा परियावज्जणा पण्णत्ता, तं जहा—जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा]।

पर्यापादन (विषय-सेवन) तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानपूर्वक, अज्ञान-पूर्वक और विचिकित्सा-पूर्वक (५१०)।]

अन्त-सूत्र

५११—तिविधे अंते पण्णत्ते, तं जहा—लोगंते, वेयंते, समयंते।

अंत (रहस्य-निर्णय) तीन प्रकार का कहा गया है—

१. लोकान्त-निर्णय—लौकिक शास्त्रों के रहस्य का निर्णय।
२. वेदान्त-निर्णय—वैदिक शास्त्रों के रहस्य का निर्णय।
३. समयान्त-निर्णय—जैनसिद्धान्तों के रहस्य का निर्णय (५११)।

जिन-सूत्र

५१२—तओ जिणा पण्णत्ता, तं जहा—ओहिणाणजिणे, मणपज्जवणाणजिणे, केवलणाणजिणे।
५१३—तओ केवली पण्णत्ता, तं जहा—ओहिणाणकेवली, मणपज्जवणाणकेवली, केवलणाणकेवली।
५१४—तओ अरहा पण्णत्ता, तं जहा—ओहिणाणअरहा, मणपज्जवणाणअरहा, केवलणाणअरहा।

जिन तीन प्रकार के कहे गये हैं—अवधिज्ञानी जिन, मनःपर्यवज्ञानी जिन और केवलज्ञानी जिन (५१२)। केवली तीन प्रकार के कहे गये हैं—अवधिज्ञान केवली, मनः पर्यवज्ञान केवली और केवलज्ञान केवली (५१३)। अर्हन्त तीन प्रकार के कहे गये हैं—अवधिज्ञानी अर्हन्त, मनःपर्यवज्ञानी अर्हन्त और केवलज्ञानी अर्हन्त (५१४)।

लेश्या-सूत्र

५१५—तओ लेसाओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ५१६—तओ लेसाओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा। ५१७—[तओ लेसाओ—दोग्गतिगामिणीओ, संकिलिट्ठाओ, अमणुण्णाओ, अविसुद्धाओ, अप्पसत्थाओ, सीत-लुक्खाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा। ५१८—तओ लेसाओ—सोगति-गामिणीओ, असंकिलिट्ठाओ मणुण्णाओ, विसुद्धाओ, पसत्थाओ, णिद्धुण्हाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेउलेसा, पम्हलेसा, सुक्कलेसा।]

तीन लेश्याएँ दुरभि गंध (दुर्गन्ध) वाली कही गई हैं—कृष्णालेश्या, नीललेश्या और कापोत-लेश्या (५१५)। तीन लेश्यायें सुरभिगंध (सुगन्ध) वाली कही गई हैं—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (५१६)। (तीन लेश्यायें दुर्गतिगामिनी, संक्लिष्ट, अमनोज्ञ, अविशुद्ध, अप्रशस्त और शीत-रूक्ष कही गई हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या (५१७)। तीन लेश्याएँ सुगतिगमिनी असंक्किष्ट, मनोज्ञ, विशुद्ध, प्रशस्त और स्निग्ध-उष्ण कही गई हैं— तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या (५१८))।

मरण-सूत्र

५१९—तिविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा—बालमरणे, पंडियमरणे, बालपंडियमरणे। ५२०—बालमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, संकिलिट्ठलेस्से, पज्जवजातलेस्से। ५२१—पंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से पज्जवजातलेस्से। ५२२—बालपंडियमरणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—ठितलेस्से, असंकिलिट्ठलेस्से, अपज्जवजातलेस्से।

मरण तीन प्रकार का कहा गया है—बाल-मरण (असंयमी का मरण) पंडित-मरण (संयमी का मरण) और बाल-पंडित मरण (संयमासंयमी-श्रावक का मरण) (५१९)। बाल-मरण तीन प्रकार का कहा गया है—स्थितलेश्य (स्थिर संक्लिष्ट लेश्या वाला) संक्लिष्टलेश्य (संक्लेश-वृद्धि से युक्त लेश्या वाला) और पर्यवजातलेश्य (विशुद्धि की वृद्धि से युक्त लेश्या वाला) (५२०)। पंडित-मरण तीन प्रकार का कहा गया है—स्थितलेश्य (स्थिर विशुद्ध लेश्या वाला) असंक्लिष्टलेश्य (संक्लेश से रहित लेश्या वाला) और पर्यवजात लेश्य-(प्रवर्धनमान विशुद्ध लेश्या वाला) (५२१)। बाल-पंडित-मरण तीन प्रकार का कहा गया है—स्थितलेश्य, असंक्लिष्टलेश्य, और अपर्यवजात-लेश्य (हानि वृद्धि से रहित लेश्या वाला) (५२२)।

विवेचन—मरण के तीन भेदों में पहला बालमरण है। बाल का अर्थ है अज्ञानी, असंयत या मिथ्यादृष्टि जीव। उसके मरण को बाल-मरण कहते हैं। उसके तीन प्रकारों में पहला भेद स्थितलेश्य है। जब जीव की लेश्या न विशुद्धि को प्राप्त हो और न संक्लेश को प्राप्त हो रही हो, ऐसी स्थितलेश्या वाली दशा को स्थितलेश्य कहते हैं। यह स्थितलेश्य मरण तब संभव है, जब कि कृष्णादि लेश्या वाला जीव कृष्णादि लेश्या वाले नरक में उत्पन्न होता है। बाल-मरण का दूसरा भेद संक्लिष्टलेश्य मरण है।

संक्लेश की वृद्धि होते हुए अज्ञानी जीव का जो मरण होता है, वह संक्लिष्टलेश्य मरण कहलाता है। यह तब संभव है, जबकि नीलादि लेश्यावाला जीव मरण कर कृष्णादि लेश्यावाले नारकों में उत्पन्न होता है। विशुद्धि की वृद्धि से युक्त लेश्या वाले अज्ञानी जीव के मरण को पर्यवजात लेश्य मरण कहते हैं। यह तब होता है जब कि कृष्णादि लेश्या वाला जीव मर कर नीलादि लेश्या वाले नारकों में उत्पन्न होता हैं। पंडितमरण संयमी पुरुष का ही होता है, अतः उसमें लेश्या की संक्लिश्यमानता नही है, अतः वह वस्तुतः दो ही प्रकार का होता है। बाल-पंडित मरण संयतासंयत श्रावक के होता है और वह स्थित लेश्या वाला होता है, अतः उसके संक्लिश्यमान और पर्यवजात लेश्या संभव नहीं होने से स्थितलेश्य रूप एक ही मरण होता है। इसी कारण उसका मरण असंक्लिष्टलेश्य और अपर्यवजातलेश्य कहा गया है।

अश्रद्धालु-सूत्र

५२३—तओ ठाणा अव्ववसितस्स अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—

१. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवइ।

२. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए पंचहिं महव्वएहिं संकिते [कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे] कलुससमावण्णे पंच महव्वताइं णो सद्दहति [णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति] णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति।

३. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं [संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय] अभिभवति।

अव्यस्थित (अश्रद्धालु) निर्ग्रन्थ के तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस और अनानुगामिता के कारण होते हैं—

१. वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंकित, कांक्षित, विचिकित्सक, भेदसमापन्न और कलुष-समापन्न होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं करता। उसे परीषह आकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत नहीं कर पाता।

२. वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर पाँच-महाव्रतों में शंकित, (कांक्षित, विचिकित्सिक, भेदसमापन्न) और कलुषसमापन्न होकर पाँच महाव्रतों पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं करता। उसे परीषह आकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर] उन्हें अभिभूत नहीं कर पाता (५२३)।

३. वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर छह जीव-निकायों में [शंकित, कांक्षित, विचिकित्सिक, भेदसमापन्न और कलुष-समापन्न होकर छह जीव-निकाय पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं करता। उसे परीषह प्राप्त होकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर] उन्हें अभिभूत नहीं कर पाता।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में जिन तीन स्थानों की श्रद्धा आदि नहीं करने पर अनगार परीषहों से अभिभूत होता है वे हैं—निर्ग्रन्थ प्रवचन, पंच महाव्रत और छह जीव-निकाय। निर्ग्रन्थ साधु को इन तीनों स्थानों का श्रद्धालु होना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा उसकी सारी प्रव्रज्या उसी के लिए दु:ख-दायिनी हो जाती है। इस सम्बन्ध में सूत्र-निर्दिष्ट विशिष्ट शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—

अहित—अपथ्यकर। अशुभ—पापरूप। अक्षम—असंगतता, असमर्थता। अनि:श्रेयस—अकल्याणकर, अशिवकारक। अनानुगामिकता—अशुभानुबन्धिता, अशुभ-शृंखला। शंकित—शंकाशील या संशयवान्। कांक्षित—मतान्तर की आकांक्षा रखने वाला। विचिकित्सित—ग्लानि रखने वाला। भेदसमापन्न—फलप्राप्ति के प्रति दुविधाशील। कलुषसमापन्न—कलुषित मन वाला।

जो साधु-दीक्षा स्वीकार करने के पश्चात् उक्त तीन स्थानों पर शंकित, कांक्षित यावत् कलुषसमापन्न रहता है, उसके लिए वे तीनों ही स्थान अहितकर यावत् अनानुगामिता के लिए होते हैं और वह परीषहों पर विजय न पाकर उनसे पराभव को प्राप्त होता है।

श्रद्धालु-विजय-सूत्र

५२४—तओ ठाणा ववसियस्स हिताए [सुभाए खमाए णिस्सेसाए] आणुगामियणाए भवंति, तं जहा—

१. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिते [णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे] णो कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं सद्दहति पत्तियति रोएति, से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति, णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

२. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचहिं महव्वएहिं णिस्संकिए णिक्कंखिए [णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे पंच महव्वताइं सद्दहति पत्तियति रोएति, से] परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवइ, णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

३. से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं णिस्संकिते [णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिते णो भेदसमावण्णे णो कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए सद्दहति पत्तियति रोएति, से] परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति, णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

व्यवसित (श्रद्धालु) निर्ग्रन्थ के लिए तीन स्थान हित [शुभ, क्षम, नि:श्रेयस] और अनुगामिता के कारण होते हैं।

१. जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन में नि:शंकित

(निःकांक्षित, निर्विचिकित्सिक, अभेदसमापन्न) और अकलुषसमापन्न होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन में श्रद्धा करता है, प्रीति करता है, रुचि करता है, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह अभिभूत नहीं कर पाते।

२. जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर पाँच महाव्रतों में निःशंकित, निःकांक्षित (निर्विचिकित्सिक, अभेदसमापन्न और अकलुषसमापन्न होकर पाँच महाव्रतों में श्रद्धा करता है, प्रीति करता है, रुचि करता है, वह) परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह अभिभूत नहीं कर पाते।

३. जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर छह जीव-निकायों में निःशंकित (निःकांक्षित, निर्विचिकित्सिक, अभेदसमापन्न और अकलुषसमापन्न होकर छह जीवनिकाय में श्रद्धा करता है, प्रीति करता है, रुचि करता है, वह) परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझ कर अभिभूत नहीं कर पाते (५२४)।

पृथ्वी-वलय-सूत्र

५२५—एगमेगा णं पुढवी तिहिं वलएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, तं जहा—घणोदधि-वलएणं, घणवातवलएणं, तणुवायवलएणं।

रत्नप्रभादि प्रत्येक पृथ्वी तीन-तीन वलयों के द्वारा सर्व ओर से परिक्षिप्त (घिरी हुई) है--घनोदधिवलय से, घनवात वलय से और तनुवात वलय से (५२५)।

विग्रहगति-सूत्र

५२६—णेरइया णं उक्कोसेणं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जंति। एगिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

नारकी जीव उत्कृष्ट तीन समय वाले विग्रह से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिक देवों तक के सभी जीव उत्कृष्ट तीन समय वाले विग्रह से उत्पन्न होते हैं (५२६)।

विवेचन—विग्रह नाम शरीर का है। जब जीव मर कर नवीन जन्म के शरीर-धारण करने के लिए जाता है, तब उसके गमन को विग्रह-गति कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है, ऋजुगति और वक्रगति। ऋजुगति सीधी समश्रेणी वाले स्थान पर उत्पन्न होने वाले जीव की होती है और उसमें एक समय लगता है। वक्र नाम मोड़ का है। जब जीव मरकर विषम श्रेणी वाले स्थान पर उत्पन्न होता है तब उसे मुड़कर के नियत स्थान पर जाना पड़ता है। इसलिए वह वक्रगति कही जाती है। वक्रगति के तीन भेद हैं—पाणिमुक्ता, लांगलिका और गोमूत्रिकागति। ये तीनों संज्ञाएं दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार दी गई हैं। जैसे पाणि (हाथ) से किसी वस्तु के फेंकने से एक मोड़ होता है, उसी प्रकार जिस विग्रह या वक्रगति में से एक मोड़ लेना पड़ता है, उसे पाणिमुक्ता-गति कहते हैं। इस गति में दो समय लगते हैं। लांगल नाम हल का है। जैसे हल के दो मोड़ होते हैं, उसी प्रकार जिस वक्रगति में दो मोड़ लेने पड़ते हैं, उसे लांगलिक गति कहते हैं। इस गति में तीन समय लगते हैं। बैल चलते हुए जैसे मूत्र (पेशाब) करता जाता है तब भूमि पर पतित मूत्र-धारा में अनेक मोड़ पड़ जाते हैं। इसी

प्रकार तीन मोड़ वाली गति को गोमूत्रिका-गति कहते हैं। इस गति में तीन मोड़ और चार समय लगते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में तीन समय वाली दो मोड़ की गति का वर्णन किया गया है। एकेन्द्रिय जीवों के सिवाय सभी दण्डकों के जीव किसी भी स्थान से मर कर किसी भी स्थान में दो मोड़ लेकर के तीसरे समय में नियत स्थान पर उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि सभी त्रस जीव त्रसनाडी के भीतर ही उत्पन्न होते और मरते हैं। किन्तु स्थावर एकेन्द्रिय-जीव त्रसनाडी से बाहर भी समस्त लोककाश में कहीं से भी मर कर कहीं भी उत्पन्न हो सकते हैं। अतः जब कोई एकेन्द्रिय जीव निष्कुट (लोक का कोणप्रदेश) क्षेत्र से मर निष्कुट क्षेत्र में उत्पन्न होता है, तब उसे तीन मोड़ लेने पड़ते हैं और उसमें चार समय लगते हैं। अतः 'एकेन्द्रिय को छोड़कर' ऐसा सूत्र में कहा गया है।

क्षीणमोह-सूत्र

५२७—खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, अंतराइयं।

क्षीणमोहवाले अर्हन्त के तीन सत्कर्म (सत्ता रूप में विद्यमान कर्म) एक साथ नष्ट होते हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म (५२७)।

नक्षत्र-सूत्र

५२८—अभिईणक्खत्ते तितारे पण्णत्ते। ५२९—एवं—सवणे, अस्सिणी, भरणी, मगसिरे, पूसे, जेट्ठा।

अभिजित नक्षत्र तीन तारावाला कहा गया है इसी प्रकार श्रवण, अश्विनी, भरणी, मृगशिर पुष्य और ज्येष्ठा भी तीन-तीन तारा वाले कहे गये हैं (५२८-५२९)।

तीर्थंकर-सूत्र

५३०—धम्माओ णं अरहाओ संती अरहा तिहिं सागरोवमेहिं तिचउब्भागपलिओवमऊणएहिं वीतिक्कंतेहिं समुप्पण्णे।

धर्मनाथ तीर्थंकर के पश्चात् शान्तिनाथ तीर्थंकर त्रि-चतुर्भाग ($\frac{3}{4}$) पल्योपम-न्यून तीन सागरोपमों के व्यतीत होने पर समुत्पन्न हुए (५३०)।

५३१—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी।

श्रवण भगवान् महावीर के पश्चात् तीसरे पुरुषयुग जम्बूस्वामी तक युगान्तकर भूमि रही है, अर्थात् निर्वाण-गमन का क्रम चलता रहा है (५३१)।

५३२—मल्ली णं अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता [अगाराओ अणगारियं] पव्वइए।

मल्ली अर्हत् तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर (अगार से अनगार धर्म में) प्रव्रजित हुए (५३२)।

५३३—[पासे णं अरहा तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए]।

(पार्श्व अर्हत् तीन सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए (५३३)।

५३४—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तिण्णि सया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवातीणं जिणा [जिणाणं ?] इव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था।

श्रमण भगवान महावीर के तीन सौ शिष्य चौदह पूर्वधर थे, वे जिन नहीं होते हुए भी जिन के समान थे, सर्वाक्षर-सन्निपाती, तथा जिन भगवान के समान अवितथ व्याख्यान करने वाले थे। यह भगवान् महावीर की चतुर्दशपूर्वी उत्कृष्ट शिष्य-सम्पदा थी (५३४)।

विवेचन—अनादिनिधन वर्णमाला के अक्षर चौसठ (६४) माने गये हैं। उनके दो तीन आदि अक्षरों से लेकर चौसठ अक्षरों तक के संयोग से उत्पन्न होने वाले पद असंख्यात होते हैं। असंख्यात भेदों को जाननेवाला ज्ञानी सर्वाक्षर-सन्निपाती श्रुतधर कहलाता है। सन्निपात का अर्थ संयोग है। सर्व अक्षरों के संयोग से होने वाले ज्ञान को सर्वाक्षर-सन्निपाती कहते हैं।

५३४—तओ तित्थयरा चक्कवट्टी होत्था, तं जहा—संती, कुंथू, अरो।

तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती हुए—शान्ति, कुन्थु और अरनाथ (५३५)।

ग्रैवेयक-विमान-सूत्र

५३६—तओ गेविज्ज-विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

ग्रैवेयक विमान के तीन प्रस्तर कहे गये हैं—अधस्तन (नीचे का) ग्रैवेयक विमान प्रस्तर, मध्यम (बीच का) ग्रैवेयक विमान प्रस्तर, और उपरिम (ऊपर का) ग्रैवेयक विमान प्रस्तर (५३६)।

५३७—हिट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, हेट्ठिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, हेट्ठिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

अधस्तन ग्रैवेयकविमानप्रस्तर तीन प्रकार का कहा गया है—अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक विमान-प्रस्तर, अधस्तन-मध्यमविमान-प्रस्तर और अधस्तन-उपरिमग्रैवेयक विमान-प्रस्तर (५३७)।

५३८—मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—मज्झिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, मज्झिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, मज्झिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर तीन प्रकार का कहा गया है—मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक

विमान प्रस्तर, मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर और मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर (५३८)।

५३९—उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—उवरिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, उवरिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, उवरिम उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे।

उपरिम ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तर तीन प्रकार का कहा गया है—उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक-विमान प्रस्तर, उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक-विमान प्रस्तर और उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमान प्रस्तर (५३९)।

विवेचन—ग्रैवेयकविमान सब मिलकर नौ हैं और वे एक-दूसरे के ऊपर अवस्थित हैं। उन्हें पहले तीन विभागों में कहा गया है—नीचे का त्रिक, बीच का त्रिक और ऊपर का त्रिक। तत्पश्चात् एक-एक त्रिक के तीन-तीन विकल्प किए गए हैं। सब मिलकर नौ विमान होते हैं।

पापकर्म-सूत्र

५४०—जीवाणं तिट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—इत्थिणिव्वत्तिते, पुरिसणिव्वत्तिते, णपुंसगणिव्वत्तिते।

एवं—चिण-उवचिण-बंध उदीर-वेद तह णिज्जरा चेव।

जीवों ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलों का कर्मरूप से संचय किया है, संचय करते हैं और संचय करेंगे—

१. स्त्रीनिर्वर्तित (स्त्रीवेद द्वारा उपार्जित) पुद्गलों का कर्मरूप से संचय।
२. पुरुषनिर्वर्तित (पुरुषवेद द्वारा उपार्जित) पुद्गलों का कर्मरूप से संचय।
२. नपुंसकनिर्वर्तित (नपुंसकवेद द्वारा उपार्जित) पुद्गलों का कर्मरूप से संचय।

इसी प्रकार जीवों ने त्रिस्थान-निर्वर्तित पुद्गलों का कर्मरूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन तथा निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पुद्गल-सूत्र

५४१—तिपदेसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

त्रि-प्रदेशी (तीन प्रदेश वाले) पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (५४१)।

५४२—एवं जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

इसी प्रकार तीन प्रदेशावगाढ़, तीन समय की स्थितिवाले और तीन गुणवाले पुद्गल-स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। तथा शेष सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के तीन-तीन गुणवाले पुद्गल-स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं।

॥ तृतीय स्थानक समाप्त ॥

चतुर्थ स्थान

सार : संक्षेप

प्रस्तुत चतुर्थ स्थान में चार की संख्या से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के विषय संकलित हैं। यद्यपि इस स्थान में सैद्धान्तिक, भौगोलिक और प्राकृतिक आदि अनेक विषयों के चार-चार प्रकार वर्णित हैं, तथापि सबसे अधिक वृक्ष, फल, वस्त्र, गज, अश्व, मेघ आदि के माध्यम से पुरुषों की मनोवृत्तियों का बहुत सूक्ष्म वर्णन किया गया है।

जीवन के अन्त में की जाने वाली क्रिया को अन्तक्रिया कहते हैं। उसके चार प्रकारों का सर्वप्रथम वर्णन करते हुए प्रथम अन्तक्रिया में भरत चक्री का, द्वितीय अन्तक्रिया में गजसुकुमाल का, तीसरी में सनत्कुमार चक्री का और चौथी में मरुदेवी का दृष्टान्त दिया गया है।

उन्नत-प्रणत वृक्ष के माध्यम से पुरुष की उन्नत-प्रणतदशा का वर्णन करते हुए उन्नत-प्रणत-रूप, उन्नत-प्रणतमन, उन्नत-प्रणत-संकल्प, उन्नत-प्रणत-प्रज्ञ, उन्नत-प्रणत दृष्टि, उन्नत-प्रणत-शीलाचार, उन्नत-प्रणत व्यवहार और उन्नत-प्रणत पराक्रम की चतुर्भंगियों के द्वारा पुरुष की मनोवृत्ति के उतार-चढ़ाव का चित्रण किया गया है, उसी प्रकार उतनी ही चतुर्भंगियों के द्वारा जाति, कुल पद, दीन-अदीन पद आदि का भी वर्णन किया गया है।

विकथा और कथापद में उनके अनेक प्रकारों का, कषाय-पद में अनन्तानुबन्धी आदि चारों प्रकार की कषायों का सदृष्टान्त वर्णन कर उनमें वर्तमान जीवों के दुर्गति-सुगतिगमन का वर्णन बड़ा उद्बोधक है।

भौगोलिक वर्णन में जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करवरद्वीप का, उनके क्षेत्र-पर्वत, आदि का वर्णन है। नन्दीश्वरद्वीप का विस्तृत वर्णन तो चित्त को चमत्कृत करने वाला है। इसी प्रकार आर्य-अनार्य और म्लेच्छ पुरुषों का तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यों का वर्णन भी अपूर्व है।

सैद्धान्तिक वर्णन में महाकर्म—अल्पकर्म वाले निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी एवं श्रमणोपासक-श्रमणोपासिका का, ध्यान-पद में चारों ध्यानों के भेद-प्रभेदों का, और गति-आगति-पद में जीवों के गति-आगति का वर्णन जानने योग्य है।

साधुओं की दुःखशय्या और सुखशय्या के चार-चार प्रकार उनके लिए बड़े उद्बोधनीय हैं। आचार्य और अन्तेवासी के प्रकार भी उनकी मनोवृत्तियों के परिचायक हैं।

ध्यान के चारों भेदों तथा उनके प्रभेदों का वर्णन दुर्ध्यानों को त्यागने और सद्-ध्यानों को ध्याने की प्रेरणा देता है।

अधुनोपपन्न देवों और नारकों का वर्णन मनोवृत्ति और परिस्थिति का परिचायक है। अन्धकार उद्योतादि पद धर्म-अधर्म की महिमा के द्योतक हैं।

इसके अतिरिक्त तृण-वनस्पति-पद, संवास-पद, कर्म-पद, अस्तिकाय-पद स्वाध्याय-पद, प्रायश्चित्त-पद, काल, पुद्गल, सत्कर्म, प्रतिषेवि-पद आदि भी जैन-सिद्धान्त के विविध विषयों का ज्ञान कराते हैं।

यदि संक्षेप में कहा जाय तो यह स्थानक ज्ञान-सम्पदा का विशाल भण्डार है। □□

चतुर्थ स्थान

प्रथम उद्देश

अन्तक्रिया-सूत्र

१—चत्तारि अंतकिरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थ खलु इमा पढमा अंतकिरिया—अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी। तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसज्जाते दीहेणं परियाएणं सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्वदुक्खाणमंतं करेइ, जहा—से भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी—पढमा अंतकिरिया।

२. अहावरा दोच्चा अंतकिरिया—महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए संजमबहुले संवरबहुले (समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी) उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी। तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति, तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसजाते णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झति (बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति सव्वदुक्खाण) मंतं करेति, जहा—से गयसूमाले अणगारे—दोच्चा अंतकिरिया।

३. अहावरा तच्चा अंतकिरिया—महाकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए (संजमबहुले संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी। तस्स णं तहप्पगारे तवे भवति, तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसजाते) दीहेणं परियाएणं सिज्झति [बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति) सव्वदुक्खाणमंतं करेति, जहा—से सणंकुमारे राया चाउरंतचक्कवट्टी—तच्चा अंतकिरिया।

४. अहावरा चउत्था अंतकिरिया—अप्पकम्मपच्चायाते यावि भवति। से णं मुंडे भवित्ता (अगाराओ अणगारियं) पव्वइए संजमबहुले (संवरबहुले समाहिबहुले लूहे तीरट्ठी उवहाणवं दुक्खक्खवे तवस्सी) तस्स णं णो तहप्पगारे तवे भवति, णो तहप्पगारा वेयणा भवति। तहप्पगारे पुरिसजाते णिरुद्धेणं परियाएणं सिज्झति (बुज्झति मुच्चति परिणिव्वाति) सव्वदुक्खाणमंतं करेति, जहा—सा मरुदेवा भगवती—चउत्था अंतकिरिया।

अन्तक्रिया चार प्रकार की कही गई है—उनमें यह प्रथम अन्तक्रिया है—

१. प्रथम अन्तक्रिया—कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्यभव को प्राप्त हुआ। पुन: वह मुण्डित होकर, घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर प्रव्रजित हो संयम-बहुल, संवर-बहुल और समाधि-बहुल होकर रूक्ष (भोजन करता हुआ) तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दु:ख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके न तो उस प्रकार का घोर तप होता है और न उस प्रकार की घोर वेदना होती है।

इस प्रकार का पुरुष दीर्घ-कालिक साधु-पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परि-निर्वाण को प्राप्त होता है और सर्व दुःखों का अन्त करता है। जैसे कि चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा हुआ। यह प्रथम अन्तक्रिया है।

२. दूसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है—कोई पुरुष बहुत-भारी कर्मों के साथ मनुष्य-भव को प्राप्त हुआ। पुनः वह मुण्डित होकर, घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर प्रव्रजित हो, संयम-बहुल, संवर-बहुल और (समाधि-बहुल होकर रूक्ष भोजन करता हुआ तीर का अर्थी) उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके विशेष प्रकार का घोर तप होता है और विशेष प्रकार की घोर वेदना होती है। इस प्रकार का पुरुष अल्पकालिक साधु-पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है, (बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सर्व दुःखों का) अन्त करता है। जैसे कि गजसुकुमाल अनगार। यह दूसरी अन्तक्रिया है।

३. तीसरी अन्तक्रिया इस प्रकार है—कोई पुरुष बहुत कर्मों के साथ मनुष्य-भव को प्राप्त हुआ। पुनः वह मुण्डित होकर. घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर प्रव्रजित हो (संयम-बहुल, संवर-बहुल और समाधि-बहुल होकर रूक्ष भोजत करता हुआ तीर का अर्थी) उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला तपस्वी होता है।

उसके उस प्रकार का घोर तप होता है, और उस प्रकार की घोर वेदना होती है। इस प्रकार का पुरुष दीर्घ-कालिक साधु-पर्याय के द्वारा सिद्ध [होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है] और सर्व दुःखों का अन्त करता है। जैसे कि चातुरन्त चक्रवर्ती सनत्कुमार राजा। यह तीसरी अन्तक्रिया है।

४. चौथी अन्तक्रिया इस प्रकार है—कोई पुरुष अल्प कर्मों के साथ मनुष्य-भवको प्राप्त हुआ। पुनः वह मुण्डित होकर [घर त्याग कर, अनगारिता को धारण कर] प्रव्रजित हो संयम-बहुल, (संवर-बहुल, और समाधि-बहुल होकर रूक्ष भोजन करता हुआ) तीर का अर्थी, उपधान करने वाला, दुःख को खपाने वाला] तपस्वी होता है।

उसके न उस प्रकार का घोर तप होता है और न उस प्रकार की घोर वेदना होती है। इस प्रकार का पुरुष अल्पकालिक साधु-पर्याय के द्वारा सिद्ध होता है, [बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है] और सर्व दुखों का अन्त करता है। जैसे कि भगवती मरुदेवी। यह चौथी अन्तक्रिया है (१)।

विवेचन—जन्म-मरण की परम्परा का अन्त करने वाली और सर्व कर्मों का क्षय करने वाली योग-निरोध क्रिया को अन्तक्रिया कहते हैं। उपर्युक्त चारों क्रियाओं में पहली अन्तक्रिया अल्पकर्म के साथ आये तथा दीर्घकाल तक साधु-पर्याय पालने वाले पुरुष की कही गई है। दूसरी अन्तक्रिया भारी कर्मों के साथ आये तथा अल्पकाल साधु-पर्याय पालने वाले व्यक्ति की कही गई है। तीसरी अन्तक्रिया गुरुतर कर्मों को साथ आये और दीर्घकाल तक साधु-पर्याय पालने वाले पुरुष की कही गई है। चौथी अन्तक्रिया अल्पकर्म के साथ आये और अल्पकाल साधु-पर्याय पालने वाले व्यक्ति की कही गई है। जितने भी व्यक्ति आज तक कर्म-मुक्त होकर सिद्ध बुद्ध हुए हैं, और आगे होंगे, वे सब उक्त चार

प्रकार की अन्तक्रियाओं में से कोई एक अन्तक्रिया करके ही मुक्त हुए हैं और आगे होंगे। भरत, गजसुकुमाल, सनत्कुमार चक्रवर्ती और मरुदेवी के कथानक कथानुयोग से जानना चाहिए।

उन्नत-प्रणत-सूत्र

२—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णते, उण्णते णामेगे पणते, पणते णाममेगे उण्णते, पणते णाममेगे पणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णामेगे उण्णते, तहेव जाव [उण्णते नाममेगे पणते, पणते णाममेगे उण्णते] पणते णाममेगे पणते।]

वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई वृक्ष शरीर से भी उन्नत होता है और जाति से भी उन्नत होता है। जैसे—शाल वृक्ष।
२. कोई वृक्ष शरीर से (द्रव्य) से उन्नत, किन्तु जाति (भाव) से प्रणत (हीन) होता है। जैसे—नीम।
३. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत, किन्तु जाति से उन्नत होता है। जैसे—अशोक।
४. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और जाति से भी प्रणत होता है। जैसे—खैर।

इस प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से भी उन्नत होता है और गुणों से भी उन्नत होता है।
२. [कोई पुरुष शरीर से उन्नत होता है किन्तु गुणों से प्रणत होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से प्रणत और गुणों से उन्नत होता है]।
४. कोई पुरुष शरीर से भी प्रणत होता है और गुणों से भी प्रणत होता है (२)।

विवेचन—कोई वृक्ष शाल के समान शरीर रूप द्रव्य से उन्नत (ऊंचे) होते हैं और जाति रूप भाव से उन्नत होते हैं। नीम वृक्ष शरीर रूप द्रव्य से तो उन्नत है, किन्तु मधुर रस आदि भाव से प्रणत (हीन) होता है। अशोक वृक्ष शरीर से हीन या छोटा है, किन्तु जाति आदि भाव की अपेक्षा उन्नत (ऊंचा) माना जाता है। खैर (खदिर, बंबूल) वृक्ष जाति और शरीर दोनों से ही हीन होते हैं। इसी प्रकार कोई पुरुष कुल, जाति आदि की अपेक्षा से भी ऊंचा होता है और ज्ञान आदि गुणों से भी ऊंचा होता है। अथवा वर्तमान भव में भी उच्चकुलीन है और आगामी भव में भी उच्चगति को प्राप्त होने से उच्च है। कोई मनुष्य उच्च कुल में जन्म लेकर भी ज्ञानादि गुणों से प्रणत (हीन) होता है। कोई मनुष्य नीच कुल में जन्म लेने पर भी ज्ञान, तपश्चरणादि गुणों से उन्नत (उच्च) होता है। तथा कोई पुरुष नीच कुल में उत्पन्न एवं ज्ञानादि गुणों से भी हीन होता है। इस सूत्र के द्वारा वृक्ष के समान पुरुषजाति के चार प्रकार बताये गये। वृक्ष-चतुर्भंगी के समान आगे कही जाने वाली चतुर्भंगियों का स्वरूप भी जानना चाहिए।

३—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते, उण्णते णाममेगे पणतपरिणते, पणते णाममेगे उण्णतपरिणते, पणते णाममेगे पणतपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते, चउभंगो [उण्णते णाममेगे पणतपरिणते, पणते णाममेगे उण्णतपरिणते, पणते णाममेगे पणतपरिणते]।

पुनः वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नतपरिणत (अशुभ रसादि को छोड़ कर शुभ रसादि रूप से परिणत) होता है।

२. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत होकर भी प्रणतपरिणत (शुभ रसादि को छोड़ कर अशुभ रसादि रूप से परिणत) होता है।

३. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

४. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत भाव से परिणत होता है (३)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

२. [कोई पुरुष शरीर से उन्नत और प्रणत भाव से परिणत होता है।

३. कोई पुरुष शरीर से प्रणत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

४. कोई पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणत भाव से भी परिणत होता है।]

४—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतरूवे, तहेव चउभंगो (उण्णते णाममेगे पणतरूवे, पणते णाममेगे उण्णतरूवे, पणते णाममेगे पणतरूवे)।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे (४) उण्णतरूवे, [उण्णते णाममेगे पणतरूवे, पणते णाममेगे उण्णतरूवे, पणते णाममेगे पणतरूवे]।

पुनः वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नत (उत्तम) रूप वाला होता है।

२. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत किन्तु प्रणत रूप वाला (कुरूप) होता है।

३. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत किन्तु उन्नत रूप वाला होता है।

४. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत रूप वाला होता है (४)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नत रूप वाला होता है।

[२. कोई पुरुष शरीर से उन्नत किन्तु प्रणत रूप वाला होता है।

३. कोई पुरुष शरीर से प्रणत किन्तु उन्नत रूप वाला होता है।

४. कोई पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणत रूप वाला होता है।]

५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतमणे ४ (उण्णते णाममेगे पणतमणे पणते णाममेगे उण्णतमणे, पणते णाममेगे पणतमणे)।

एवं संकप्पे ८, पण्णे ९, दिट्ठी १०, सीलायारे ११, ववहारे १२, परक्कमे १३।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत मन वाला (उदार) होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत किन्तु प्रणत मन वाला (कंजूस) होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत (हीन) किन्तु उन्नत मन वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और मन से भी प्रणत होता है (५)।

६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतसंकप्पे, उण्णते णाममेगे पणतसंकप्पे, पणते णाममेगे उण्णतसंकप्पे, पणते णाममेगे पणतसंकप्पे।]

[पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत संकल्प वाला होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत किन्तु प्रणत (हीन) संकल्प वाला होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत संकल्प वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और संकल्प से भी प्रणत होता है (६)।]

७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपण्णे, उण्णते णाममेगे पणतपण्णे, पणते णाममेगे उण्णतपण्णे, पणते णाममेगे पणतपण्णे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत प्रज्ञा वाला (बुद्धिमान्) होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत प्रज्ञा वाला (मूर्ख) होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत प्रज्ञा वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रज्ञा से भी प्रणत होता है (७)।

८—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, उण्णते णाममेगे पणतदिट्ठी, पणते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, पणते णाममेगे पणतदिट्ठी।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत दृष्टि वाला होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और प्रणत दृष्टि वाला होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत दृष्टि वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत दृष्टि वाला होता है (८)।

९—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, उण्णते णाममेगे पणतसीलाचारे, पणते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, पणते णाममेगे पणतसीलाचारे।]

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत शील-आचार वाला होता है।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाता पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपरिणते, चउभंगो [उण्णते णाममेगे पणतपरिणते, पणते णाममेगे उण्णतपरिणते, पणते णाममेगे पणतपरिणते]।

पुनः वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नतपरिणत (अशुभ रसादि को छोड़ कर शुभ रसादि रूप से परिणत) होता है।

२. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत होकर भी प्रणतपरिणत (शुभ रसादि को छोड़ कर अशुभ रसादि रूप से परिणत) होता है।

३. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

४. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत भाव से परिणत होता है (३)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

२. [कोई पुरुष शरीर से उन्नत और प्रणत भाव से परिणत होता है।

३. कोई पुरुष शरीर से प्रणत और उन्नत भाव से परिणत होता है।

४. कोई पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणत भाव से भी परिणत होता है।]

४—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतरूवे, तहेव चउभंगो (उण्णते णाममेगे पणतरूवे, पणते णाममेगे उण्णतरूवे, पणते णाममेगे पणतरूवे)।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे (४) उण्णतरूवे, [उण्णते णाममेगे पणतरूवे, पणते णाममेगे उण्णतरूवे, पणते णाममेगे पणतरूवे]।

पुनः वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत और उन्नत (उत्तम) रूप वाला होता है।

२. कोई वृक्ष शरीर से उन्नत किन्तु प्रणत रूप वाला (कुरूप) होता है।

३. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत किन्तु उन्नत रूप वाला होता है।

४. कोई वृक्ष शरीर से प्रणत और प्रणत रूप वाला होता है (४)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से उन्नत और उन्नत रूप वाला होता है।

[२. कोई पुरुष शरीर से उन्नत किन्तु प्रणत रूप वाला होता है।

३. कोई पुरुष शरीर से प्रणत किन्तु उन्नत रूप वाला होता है।

४. कोई पुरुष शरीर से प्रणत और प्रणत रूप वाला होता है।]

५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतमणे ४ (उण्णते णाममेगे पणतमणे पणते णाममेगे उण्णतमणे, पणते णाममेगे पणतमणे)।

एवं संकप्पे ८, पण्णे ९, दिट्ठी १०, सीलायारे ११, ववहारे १२, परक्कमे १३।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत मन वाला (उदार) होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत किन्तु प्रणत मन वाला (कंजूस) होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत (हीन) किन्तु उन्नत मन वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और मन से भी प्रणत होता है (५)।

६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतसंकप्पे, उण्णते णाममेगे पणतसंकप्पे, पणते णाममेगे उण्णतसंकप्पे, पणते णाममेगे पणतसंकप्पे।]

[पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत संकल्प वाला होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत किन्तु प्रणत (हीन) संकल्प वाला होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत संकल्प वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और संकल्प से भी प्रणत होता है (६)।]

७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपण्णे, उण्णते णाममेगे पणतपण्णे, पणते णाममेगे उण्णतपण्णे, पणते णाममेगे पणतपण्णे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत प्रज्ञा वाला (बुद्धिमान्) होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत प्रज्ञा वाला (मूर्ख) होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत प्रज्ञा वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रज्ञा से भी प्रणत होता है (७)।

८—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, उण्णते णाममेगे पणतदिट्ठी, पणते णाममेगे उण्णतदिट्ठी, पणते णाममेगे पणतदिट्ठी।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत दृष्टि वाला होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और प्रणत दृष्टि वाला होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत दृष्टि वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत दृष्टि वाला होता है (८)।

९—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, उण्णते णाममेगे पणतसीलाचारे, पणते णाममेगे उण्णतसीलाचारे, पणते णाममेगे पणतसीलाचारे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत शील-आचार वाला होता है।

२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत किन्तु प्रणत (हीन) शील-आचार वाला होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत शील-आचार वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत शील-आचार वाला होता है (९)।

१०—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतववहारे, उण्णते णाममेगे पणतववहारे, पणते णाममेगे उण्णतववहारे, पणते णाममेगे पणतववहारे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत व्यवहार वाला होता है।
२ कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत व्यवहार वाला होता है।
३. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत व्यवहार वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत व्यवहार वाला होता है (१०)।

११—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उण्णते णाममेगे उण्णतपरक्कमे, उण्णते णाममेगे पणतपरक्कमे, पणते णाममेगे उण्णतपरक्कमे, पणते णाममेगे पणतपरक्कमे]।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत और उन्नत पराक्रम वाला होता है।
२. कोई पुरुष ऐश्वर्य से उन्नत, किन्तु प्रणत पराक्रम वाला होता है।
३ कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत, किन्तु उन्नत पराक्रम वाला होता है।
४. कोई पुरुष ऐश्वर्य से प्रणत और प्रणत पराक्रम वाला होता है (११)।

ऋजु-वंक-सूत्र

१२—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वंके, चउभंगो ४। एवं जहा उन्नतपणतेहिं गमो तहा उज्जू वंकेहिं विभाणियव्वो। जाव परक्कमे [वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू ४, [उज्जू णाममेगे वंके, वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके]।

वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई वृक्ष शरीर से ऋजु (सरल-सीधा) होता है और (यथासमय फलादि देने रूप) कार्य से भी ऋजु होता है।

२. कोई वृक्ष शरीर से ऋजु होता है, किन्तु (यथासमय फलादि देने रूप) कार्य से वक्र होता है। (यथासमय फलादि नहीं देता है।)

३. कोई वृक्ष शरीर से वक्र (टेढ़ा-मेढ़ा) होता है, किन्तु कार्य से ऋजु होता है।

४. कोई वृक्ष शरीर से भी वक्र होता है और कार्य से भी वक्र होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष बाहर (शरीर, गति, चेष्टादि) से ऋजु होता है और अन्तरंग से भी ऋजु (निश्छल व्यवहार वाला) होता है।

२. कोई पुरुष बाहर से ऋजु होता है, किन्तु अन्तरंग से वक्र (कुटिल व्यवहार वाला) होता है।

३. कोई पुरुष बाहर से वक्र (कुटिल चेष्टा वाला) होता है, किन्तु अन्तरंग से ऋजु होता है।

४. कोई पुरुष बाहर से भी वक्र और अंतरंग से भी वक्र होता है।

१३—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते, उज्जू णाममेगे वंकपरिणते, वंके णाममेगे उज्जुपरिणते, वंके णाममेगे वंकपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुपरिणते, उज्जू णाममेगे वंकपरिणते, वंके णाममेगे उज्जुपरिणते, वंके णाममेगे वंकपरिणते।

पुनः वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं—

१. कोई वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु-परिणत होता है।

२. कोई वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-परिणत होता है।

३. कोई वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-परिणत होता है।

४. कोई वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र-परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-परिणत होता है।

२. कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र-परिणत होता है।

३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु-परिणत होता है।

४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र-परिणत होता है (१४)।

१४—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे, उज्जू णाममेगे वंकरूवे, वंके णाममेगे उज्जुरूवे, वंके णाममेगे, वंकरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुरूवे, उज्जू णाममेगे वंकरूवे, वंके णाममेगे उज्जुरूवे, वंके णाममेगे वंकरूवे।

पुनः वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं—

१. कोई वृक्ष शरीर से ऋजु और ऋजु रूप वाला होता है।

२. कोई वृक्ष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र रूप वाला होता है।

३. कोई वृक्ष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु रूप वाला होता है।

४. कोई वृक्ष शरीर से वक्र और वक्र रूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु रूप वाला होता है।

२. कोई पुरुप शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र रूपवाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु रूपवाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र रूपवाला होता है (१४)।

१५—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुमणे, उज्जू णाममेगे वंकमणे, वंके णाममेगे उज्जुमणे, वंके णाममेगे वंकमणे।]

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु मनवाला होता है।
२. कोई पुरूष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र मनवाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु मनवाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र मनवाला होता है (१५)।

१६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुसंकप्पे, उज्ज णाममेगे वंकसंकप्पे, वंके णाममेगे उज्जुसंकप्पे, वंके णाममेगे वंकसंकप्पे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु संकल्पवाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र संकल्पवाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु संकल्पवाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र संकल्पवाला होता है (१६)।

१७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुपण्णे, उज्जू णाममेगे वंकपण्णे, वंके णाममेगे उज्जुपण्णे, वंके णाममेगे वंकपण्णे।]

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु-प्रज्ञ (तीक्ष्णबुद्धि) वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र प्रज्ञावाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु प्रज्ञावाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र प्रज्ञावाला होता है (१७)।

१८—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुदिट्ठी, उज्जू णाममेगे वंकदिट्ठी, वंके णाममेगे उज्जुदिट्ठी, वंके णाममेगे वंकदिट्ठी।]

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—
१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु दृष्टिवाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र दृष्टिवाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु दृष्टिवाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र दृष्टिवाला होता है।

१९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुसीलाचारे, उज्जू णाममेगे वंकसीलाचारे, वंके णाममेगे उज्जुसीलाचारे, वंके णाममेगे वंकसीलाचारे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु शील-आचार वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र शील-आचार वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु शील-आचार वाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र शील-आचार वाला होता है (१९)।

२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुववहारे, उज्जू णाममेगे वंकववहारे, वंके णाममेगे उज्जुववहारे, वंके णाममेगे वंकववहारे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु व्यवहार वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र व्यवहार वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु व्यवहार वाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र व्यवहार वाला होता है (२०)।

२१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जुपरक्कमे, उज्जू णाममेगे वंकपरक्कमे, वंके णाममेगे उज्जुपरक्कमे, वंके णाममेगे वंकपरक्कमे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से ऋजु और ऋजु पराक्रम वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से ऋजु, किन्तु वक्र पराक्रम वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से वक्र, किन्तु ऋजु पराक्रम वाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से वक्र और वक्र पराक्रम वाला होता है (२१)।

भाषा-सूत्र

२२—पडिमापडिवण्णस्स णं अणगारस्स कप्पंति चत्तारि भासाओ भासित्तए, तं जहा—जायणी, पुच्छणी, अणुण्णवणी, पुट्ठस्स वागरणी।

भिक्षु-प्रतिमाओं के धारक अनगार को चार भाषाएँ बोलना कल्पता है, जैसे—

१. याचनी भाषा—वस्त्र-पात्रादि की याचना के लिए बोलना।
२. प्रच्छनी भाषा—सूत्र का अर्थ और मार्ग आदि पूछने के लिए बोलना।
३. अनुज्ञापनी भाषा—स्थान आदि की आज्ञा लेने के लिए बोलना।
४. प्रश्नव्याकरणी भाषा—पूछे गये प्रश्न का उत्तर देने के लिए बोलना (२२)।

२३—चत्तारि भासाजाता पण्णत्ता, तं जहा—सच्चमेगं भासज्जायं, बीयं मोसं, तइयं सच्चमोसं, चउत्थं असच्चमोसं ।

भाषा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. सत्य भाषा— यथार्थ बोलना ।
२. मृषा भाषा—अयथार्थ या असत्य बोलना ।
३. सत्य-मृषा भाषा—सत्य-असत्य मिश्रित भाषा बोलना ।
४. असत्यामृषा भाषा—व्यवहार भाषा (जिसमें सत्य-असत्य का व्यवहार न हो) बोलना (२३) ।

शुद्ध-अशुद्ध-सूत्र

२४—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धे, सुद्धे णामं एगे असुद्धे, असुद्धे णामं एगे सुद्धे, असुद्धे णामं एगे असुद्धे ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धे, [सुद्धे णामं एगे असुद्धे, असुद्धे णामं एगे सुद्धे, असुद्धे णामं एगे असुद्धे ।

चार प्रकार के वस्त्र कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई वस्त्र प्रकृति से (शुद्ध तन्तु आदि के द्वारा निर्मित होने से) शुद्ध होता है और (ऊपरी मलादि से रहित होने के कारण वर्तमान) स्थिति से भी शुद्ध होता है ।
२. कोई वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु स्थिति से अशुद्ध होता है ।
३. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु स्थिति से शुद्ध होता है ।
४. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और स्थिति से भी अशुद्ध होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से भी शुद्ध होता है और गुण से भी शुद्ध होता है ।
२. कोई पुरुष जाति से तो शुद्ध होता है, किन्तु गुण से अशुद्ध होता है ।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध होता है, किन्तु गुण से शुद्ध होता है ।
४. कोई पुरुष जाति से भी अशुद्ध और गुण से भी अशुद्ध होता है (२४) ।

२५—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए, सुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए, असुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए, असुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए, सुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए, असुद्धे णामं एगे सुद्धपरिणए, असुद्धे णामं एगे असुद्धपरिणए ।

पुनः वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध-परिणत होता है ।

२. कोई वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-परिणत होता है।
३. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-परिणत होता है।
४. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध-परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--
१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध-परिणत होता है।
२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध-परिणत होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध-परिणत होता है।
४. कोई पुरुष जाति से भी अशुद्ध और परिणति से भी अशुद्ध होता है (२५)।

२६—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे, सुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे, असुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे, असुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे, सुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे, असुद्धे णामं एगे सुद्धरूवे, असुद्धे णामं एगे असुद्धरूवे]।

पुनः वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--
१. कोई वस्त्र प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध रूपवाला होता है।
२. कोई वस्त्र प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध रूपवाला होता है।
३. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध रूपवाला होता है।
४. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध रूपवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--
१. कोई पुरुष प्रकृति से शुद्ध और शुद्ध रूपवाला होता है।
२. कोई पुरुष प्रकृति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध रूपवाला होता है।
३. कोई पुरुष प्रकृति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध रूपवाला होता है।
४. कोई पुरुष प्रकृति से अशुद्ध और अशुद्ध रूपवाला होता है (२६)।

२७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धमणे, [सुद्धे णामं एगें असुद्धमणे, असुद्धे णामं एगे सुद्धमणे, असुद्धे णामं एगे असुद्धमणे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--
१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध मनवाला होता है।
२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध मनवाला होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध मनवाला होता है।
४. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध मनवाला होता है (२७)।

२८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धसंकप्पे, सुद्धे णामं एगे असुद्धसंकप्पे, असुद्धे णामं एगे सुद्धसंकप्पे, असुद्धे णामं एगे असुद्धसंकप्पे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध संकल्प वाला होता है।
२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध संकल्प वाला होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध संकल्प वाला होता है।
४. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध संकल्प वाला होता है (२८)।

२९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धपण्णे, सुद्धे णामं एगे असुद्धपण्णे, असुद्धे णामं एगे सुद्धपण्णे, असुद्धे णामं एगे असुद्धपण्णे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध प्रज्ञा वाला होता है।
२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध प्रज्ञा वाला होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध प्रज्ञा वाला होता है।
४. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध प्रज्ञा वाला होता है (२९)।

३०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धदिट्ठी, सुद्धे णामं एगे असुद्धदिट्ठी, असुद्धे णामं एगे सुद्धदिट्ठी, असुद्धे णामं एगे असुद्धदिट्ठी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध दृष्टिवाला होता है।
२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध दृष्टिवाला होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध दृष्टिवाला होता है।
४. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध दृष्टिवाला होता है (३०)।

३१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धसीलाचारे, सुद्धे णामं एगे असुद्धसीलाचारे, असुद्धे णामं एगे सुद्धसीलाचारे, असुद्धे णामं एगे असुद्धसीलाचारे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध शील-आचार वाला होता है।
२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध शील-आचार वाला होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध शील-आचार वाला होता है।
४. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध शील-आचार वाला होता है (३१)।

३२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धववहारे, सुद्धे णामं एगे असुद्धववहारे, असुद्धे णामं एगे सुद्धववहारे, असुद्धे णामं एगे असुद्धववहारे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध व्यवहारवाला होता है।

२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध व्यवहार वाला होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध व्यवहार वाला होता है।
४. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध व्यवहार वाला होता है (३२)।

३३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुद्धे णामं एगे सुद्धपरक्कमे, सुद्धे णामं एगे असुद्धपरक्कमे, असुद्धे णामं एगे सुद्धपरक्कमे, असुद्धे णामं एगे असुद्धपरक्कमे]।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से शुद्ध और शुद्ध पराक्रम वाला होता है।
२. कोई पुरुष जाति से शुद्ध, किन्तु अशुद्ध पराक्रम वाला होता है।
३. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध, किन्तु शुद्ध पराक्रम वाला होता है।
४. कोई पुरुष जाति से अशुद्ध और अशुद्ध पराक्रम वाला होता है (३३)।

सुत-सूत्र

३४—चत्तारि सुता पण्णत्ता, तं जहा—अतिजाते, अणुजाते, अवजाते, कुलिंगाले।

सुत (पुत्र) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई सुत अतिजात—पिता से भी अधिक समृद्ध और श्रेष्ठ होता है।
२. कोई सुत अनुजात—पिता के समान समृद्धिवाला होता है।
३. कोई सुत अपजात—पिता से हीन समृद्धि वाला होता है।
४. कोई सुत कुलाङ्गार—कुल में अंगार के समान—कुल को दूषित करने वाला होता है।

सत्य-असत्य-सूत्र

३५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चे, सच्चे णामं एगे असच्चे, असच्चे णामं एगे सच्चे, असच्चे णामं एगे असच्चे। एवं परिणते जाव परक्कमे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष पहले भी सत्य (वादी) और पीछे भी सत्य (वादी) होता है।
२. कोई पुरुष पहले सत्य (वादी) किन्तु पीछे असत्य (वादी) होता है।
३. कोई पुरुष पहले असत्य (वादी) किन्तु पीछे सत्य (वादी) होता है।
४. कोई पुरुष पहले भी असत्य (वादी) और पीछे भी असत्य (वादी) होता है (३५)।

३६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चपरिणते, सच्चे णामं एगे असच्चपरिणते, असच्चे णामं एगे सच्चपरिणते, असच्चे णामं एगे असच्चपरिणते।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य (सत्यवादी-प्रतिज्ञापालक) और सत्य-परिणत होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य-परिणत होता है।

३. कोई पुरुष असत्य (असत्यभाषी) किन्तु सत्य-परिणत होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य-परिणत होता है (३६)।

३७ चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चरूवे, सच्चे णामं एगे असच्चरूवे, असच्चे णामं एगे सच्चरूवे, असच्चे णामं एगे असच्चरूवे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य रूप वाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य रूप वाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य रूप वाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य रूप वाला होता है (३७)।

३८—चत्तारि पुरिसजाया तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चमणे, सच्चे णामं एगे असच्चमणे, असच्चे णामं एगे सच्चमणे, असच्चे णामं एगे असच्चमणे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य मनवाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य मनवाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य मनवाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य मनवाला होता है (३८)।

३९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चसंकप्पे, सच्चे णामं एगे असच्चसंकप्पे, असच्चे णामं एगे सच्चसंकप्पे, असच्चे णामं एगे असच्चसंकप्पे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य संकल्प वाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य किन्तु असत्य संकल्प वाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य किन्तु सत्य संकल्प वाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य संकल्प वाला होता है (३९)।

४०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चपण्णे, सच्चे णामं एगे असच्चपण्णे, असच्चे णामं एगे सच्चपण्णे, असच्चे णामं एगे असच्चपण्णे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य प्रज्ञा वाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य प्रज्ञा वाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य प्रज्ञा वाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य प्रज्ञावाला होता है (४०)।

४१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चदिट्ठी, सच्चे णामं एगे असच्चदिट्ठी, असच्चे णामं एगे सच्चदिट्ठी, असच्चे णामं एगे असच्चदिट्ठी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य दृष्टि वाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य दृष्टि वाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य दृष्टि वाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य दृष्टिवाला होता है (४१)।

४२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चसीलाचारे, सच्चे णामं एगे असच्चसीलाचारे, असच्चे णामं एगे सच्चसीलाचारे, असच्चे णामं एगे असच्चसीलाचारे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य शील-आचार वाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य शील-आचार वाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य शील-आचार वाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य शील-आचार वाला होता है (४२)।

४३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चववहारे, सच्चे णामं एगे असच्चववहारे, असच्चे णामं एगे सच्चववहारे, असच्चे णामं एगे असच्चववहारे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य व्यवहार वाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य व्यवहार वाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य व्यवहार वाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य व्यवहार वाला होता है (४३)।

४४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सच्चे णामं एगे सच्चपरक्कमे, सच्चे णामं एगे असच्चपरक्कमे, असच्चे णामं एगे सच्चपरक्कमे, असच्चे णामं एगे असच्चपरक्कमे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सत्य और सत्य पराक्रम वाला होता है।
२. कोई पुरुष सत्य, किन्तु असत्य पराक्रम वाला होता है।
३. कोई पुरुष असत्य, किन्तु सत्य पराक्रम वाला होता है।
४. कोई पुरुष असत्य और असत्य पराक्रम वाला होता है (४४)।

शुचि-अशुचि-सूत्र

४५—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुई, सुई णामं एगे असुई, चउभंगो ४। [असुई णामं एगे सुई, असुई णामं एगे असुई]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुई, चउभंगो। एवं जहेव सुद्धेणं वत्थेणं भणितं तहेव सुईणा जाव परक्कमे। [सुई णामं एगे असुइं, असुई णामं एगे सुई, असुई णामं एगे असुई।

वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वस्त्र प्रकृति से शुचि (स्वच्छ) और परिष्कार-सफाई से शुचि होता है।
२. कोई वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अपरिष्कार-सफाई न होने से अशुचि होता है।
३. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु परिष्कार से शुचि होता है।
४. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अपरिष्कार से भी अशुचि होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और स्वभाव से शुचि होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु स्वभाव से अशुचि होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु स्वभाव से शुचि होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और स्वभाव से भी अशुचि होता है (४५)।

४६—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइपरिणते, सुई णामं एगे असुइपरिणते, असुई णामं एगे सुइपरिणते, असुई णामं एगे असुइपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइपरिणते, सुई णामं एगे असुइपरिणते, असुई णामं एगे सुइपरिणते, असुई णामं एगे असुइपरिणते।

पुन: वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वस्त्र प्रकृति से शुचि और शुचि-परिणत होता है।
२. कोई वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अशुचि-परिणत होता है।
३. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु शुचि-परिणत होता है।
४. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि-परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और शुचि-परिणत होता है।
१. कोई पुरुष शरीर से शुचि किन्तु अशुचि-परिणत होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि-परिणत होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि-परिणत होता है (४६)।

४७—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइरूवे, सुई णामं एगे असुइरूवे, असुई णामं एगे सुइरूवे, असुई णामं एगे असुइरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइरूवे, सुई णामं एगे असुइरूवे, असुई णामं एगे सुइरूवे, असुई णामं एगे असुइरूवे।

पुन: वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वस्त्र प्रकृति से शुचि और शुचि रूप वाला होता है।
२. कोई वस्त्र प्रकृति से शुचि, किन्तु अशुचि रूप वाला होता है।
३. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुचि, किन्तु शुचि रूप वाला होता है।
४. कोई वस्त्र प्रकृति से अशुचि और अशुचि रूप वाला होता है (४७)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि (पवित्र) और शुचि रूप वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि रूप वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि रूप वाला होता हैं।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि रूप वाला होता है।

४८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइमणे, सुई णामं एगे असुइमणे, असुई णामं एगे सुइमणे, असुई णामं एगे असुइमणे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और मन से भी शुचि होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि मन वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि मन वाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि मन वाला होता है (४८)।

४९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइसंकप्पे, सुई णामं एगे असुइसंकप्पे, असुई णामं एगे सुइसंकप्पे, असुई णामं एगे असुइसंकप्पे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और शुचि संकल्पवाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि संकल्पवाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि संकल्पवाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि संकल्पवाला होता है (४९)।

५०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइपण्णे सुई णामं एगे असुइपण्णे, असुई णामं एगे सुइपण्णे, असुई णामं एगे असुइपण्णे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और प्रज्ञा से भी शुचि होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि प्रज्ञावाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि प्रज्ञावाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि प्रज्ञावाला होता है (५०)।

५१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइदिट्ठी, सुई णामं एगे असुइदिट्ठी, असुई णामं एगे सुइदिट्ठी, असुई णामं एगे असुइदिट्ठी।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और शुचि दृष्टि वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि दृष्टि वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि दृष्टि वाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि दृष्टि वाला होता है (५१)।

५२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइसीलाचारे, सुई णामं एगे असुइसीलाचारे, असुई णामं एगे सुइसीलाचारे, असुई णामं एगे असुइसीलाचारे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और शुचि शील-आचार वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि शील-आचार वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि शील-आचार वाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि शील-आचार वाला होता है (५२)।

५३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं सुइववहारे, सुई णामं एगे असुइववहारे, असुई णामं एगे सुइववहारे, असुई णामं एगे असुइववहारे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और शुचि व्यवहार वाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि व्यवहार वाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि व्यवहार वाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि व्यवहार वाला होता है (५३)।

५४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुई णामं एगे सुइपरक्कमे, सुई णामं एगे असुइपरक्कमे, असुई णामं एगे सुइपरक्कमे, असुई णामं एगे असुइपरक्कमे]।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष शरीर से शुचि और शुचि पराक्रमवाला होता है।
२. कोई पुरुष शरीर से शुचि, किन्तु अशुचि पराक्रमवाला होता है।
३. कोई पुरुष शरीर से अशुचि, किन्तु शुचि पराक्रमवाला होता है।
४. कोई पुरुष शरीर से अशुचि और अशुचि पराक्रमवाला होता । (५४)

कोरक-सूत्र

५५—चत्तारि कोरवा पण्णत्ता, तं जहा—अंबपलंबकोरवे, तालपलंबकोरवे, वल्लिपलंबकोरवे, मेंढविसाणकोरवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अंबपलंबकोरवसमाणे, तालपलंबकोरवसमाणे, वल्लिपलंबकोरवसमाणे, मेंढविसाणकोरवसमाणे।

कोरक (कलिका) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आम्रप्रलम्बकोरक—आम के फल की कलिका।
२. तालप्रलम्ब कोरक—ताड़ के फल की कलिका।
३. वल्लीप्रलम्ब कोरक—वल्ली (लता) के फल की कलिका।
४. मेढ्रविषाणकोरक—मेढ़े के सींग के समान फल वाली वनस्पति-विशेष की कलिका।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आम्रप्रलम्ब-कोरक समान—जो सेवा करने पर उचित अवसर पर उचित उपकार रूप फल प्रदान करे (प्रत्युपकार करे)।

२. तालप्रलम्ब-कोरक समान—जो दीर्घकाल तक खूब सेवा करने पर उपकाररूप फल प्रदान करे।

३. वल्ली प्रलम्ब-कोरक समान—जो सेवा करने पर शीघ्र और कठिनाई विना फल प्रदान करे।

४. मेढ्र विषाण-कोरक-समान—जो सेवा करने पर भी केवल मीठे वचन ही बोले, किन्तु कोई उपकार न करे (५५)।

भिक्षाक-सूत्र

५६—चत्तारि घुणा पण्णत्ता, तं जहा—तयक्खाए, छल्लिक्खाए, कट्ठक्खाए, सारक्खाए।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—तयक्खायसमाणे, जाव [छल्लिक्खायसमाणे कट्ठक्खायसमाणे] सारक्खायसमाणे।

१. तयक्खायसमाणस्य णं भिक्खागस्स सारक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
२. सारक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स तयक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
३. छल्लिक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स कट्ठक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।
४. कट्ठक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स छल्लिक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

घुण (काष्ठ-भक्षक कीड़े) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. त्वक्-खाद—वृक्ष की ऊपरी छाल को खानेवाला।
२. छल्ली-खाद—छाल के भीतरी भाग को खानेवाला।
३. काष्ठ-खाद—काठ को खानेवाला।
४. सार-खाद—काठ के मध्यवर्ती सार को खानेवाला।

इसी प्रकार भिक्षाक (भिक्षा-भोजी साधु) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. त्वक्-खाद-समान—नीरस, रूक्ष अन्त-प्रान्त आहार-भोजी साधु।

२. छल्ली-खाद-समान—अलेप आहार-भोजी साधु ।
३. काष्ठ-खाद-समान—दूध, दही, घृतादि से रहित (विगयरहित) आहार-भोजी साधु ।
४. सार-खाद-समान—दूध, दही, घृतादि से परिपूर्ण आहार-भोजी साधु ।

१. त्वक्-खान-समान भिक्षाक का तप सार-खाद-घुण के समान कहा गया है ।
२. सार-खाद-समान भिक्षाक का तप त्वक्-खाद-घुण के समान कहा गया है ।
३. छल्ली-खाद-समान भिक्षाक का तप काष्ठ-खाद घुण के समान कहा गया है ।
४. काष्ठ खाद-समान भिक्षाक का तप छल्ली-खाद घुण के समान कहा गया है ।

विवेचन—जिस घुण कीट के मुख की भेदन-शक्ति जितनी अल्प या अधिक होती है, उसी के अनुसार वह त्वचा, छाल, काठ या सार को खाता है । जो भिक्षु प्रान्तवर्ती (बचा-खुचा) स्वल्प रूखा-सूखा आहार करता है, उसके कर्म-क्षपण करनेवाले तप को शक्ति सार को खानेवाले घुण के समान सबसे अधिक होती है । जो भिक्षु दूध, दही आदि विकृतियों से परिपूर्ण आहार करता है, उसके कर्म-क्षपण (तप) की शक्ति त्वचा को खाने वाले घुण के समान अत्यल्प होती है । जो भिक्षु विकृति-रहित आहार करता है, उसकी कर्म-क्षपण-शक्ति काठ को खाने वाले घुण के समान अधिक होती है । जो भिक्षु दूध, दही आदि विकृतियों को नहीं खाता है, उसकी कर्म-क्षपण-शक्ति छाल को खाने वाले घुण के समान अल्प होती है । उक्त चारों में त्वक्-खाद-समान भिक्षु सर्वश्रेष्ठ उत्तम है । छल्ली-खाद-समान भिक्षु मध्यम है । काष्ठ-खाद-समान भिक्षु जघन्य है और सार-खाद-समान भिक्षु जघन्यतर श्रेणी का है । श्रेणी के समान ही उनके तप में भी तारतम्य-हीनाधिकता जाननी चाहिए । पहले का तप प्रधानतर, दूसरे का अप्रधानतर, तीसरे का प्रधान और चौथे का अप्रधान तप है, ऐसा टीकाकार का कथन है ।

तृणवनस्पति-सूत्र

५७—चउव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया ।

तृणवनस्पतिकायिक जीव चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. अग्रबीज—जिस वनस्पति का अग्रभाग बीज हो जैसे—कोरण्ट आदि ।
२. मूलबीज—जिस वनस्पति का मूल बीज हो । जैसे—कमल, जमीकन्द आदि ।
३. पर्वबीज—जिस वनस्पति का पर्व बीज हो । जैसे—ईख-गन्ना आदि ।
४. स्कन्धबीज—जिस वनस्पति का स्कन्ध बीज हो । जैसे—सल्लकी वृक्ष आदि (५७) ।

अधुनोपपन्न-नैरयिक-सूत्र

५८—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए—

१. अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि समुब्भूयं वेयणं वेयमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए ।

२. अहुणोववण्णे णेरइए णिरयलोगंसि णिरयपालेहिं भुज्जो-भुज्जो अहिट्ठिज्जमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

३. अहुणोववण्णे णेरइए णिरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

४. [अहुणोववण्णे णेरइए णिरयाउअंसि कम्मंसि जाव अक्खीणंसि जाव अवेइयंसि अणिज्जिण्णंसि इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए] णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

इच्चेतेहि चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे णेरइए [णिरयलोगंसि इच्छेज्जा माणुसंलोगं हव्वमागच्छित्तए] णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

नरकलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ नैरयिक चार कारणों से शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नहीं सकता—

१. तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरकलोक में होने वाली वेदना का वेदन करता हुआ शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नहीं सकता।

२. तत्काल उत्पन्न नैरयिक नरकलोक में नरक-पालों के द्वारा समाक्रांत—पीडित होता हुआ शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नहीं सकता।

३. तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु नरकलोक में वेदन करने योग्य कर्मों के क्षीण हुए विना, उनको भोगे विना, उनके निर्जीर्ण हुए विना आ नहीं सकता।

४. तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु नारकायुकर्म के क्षीण हुए विना, उसको भोगे विना, उसके निर्जीर्ण हुए विना आ नहीं सकता।

इन उक्त चार कारणों से नरकलोक में तत्काल उत्पन्न नैरयिक शीघ्र मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु आ नहीं सकता (५८)।

संघाटी-सूत्र

५९—कप्पंति णिग्गंथीणं चत्तारि संघाडीओ धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा—एगं दुहत्थवित्थारं, दो तिहत्थवित्थारा, एगं चउहत्थवित्थारं।

निर्ग्रन्थी साध्वियों को चार संघाटियां (साड़ियां) रखने और पहिनने के लिए कल्पती हैं—

१. दो हाथ विस्तारवाली एक संघाटी—जो उपाश्रय में ओढ़ने के काम आती है।

२. तीन हाथ विस्तारवाली दो संघाटी—उनमें से एक भिक्षा लेने को जाते समय ओढ़ने के लिए।

३. दूसरी शौच जाते समय ओढ़ने के लिए।

४. चार हाथ विस्तारवाली एक संघाटी—व्याख्यान-परिषद् में जाते समय ओढ़ने के लिए (५९)।

ध्यान-सूत्र

६०—चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा—अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे।

ध्यान चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्त्तध्यान—किसी भी प्रकार के दुःख आने पर शोक तथा चिन्तामय मन की एकाग्रता।
२. रौद्रध्यान—हिंसादि पापमयी क्रूर मानसिक परिणति की एकाग्रता।
३. धर्म्यध्यान—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म के चिन्तन की एकाग्रता।
४. शुक्लध्यान—कर्मक्षय के कारणभूत शुद्धोपयोग में लीन रहना (६०)।

६१—अट्टझाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. अमणुण्ण-संपओग-संपउत्ते, तस्स विप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति।
२. मणुण्ण-संपओग-संपउत्ते, तस्स अविप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति।
३. आतंक-संपओग-संपउत्ते, तस्स विप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति।
४. परिजुसित-काम-भोग-संपओग-संपउत्ते, तस्स अविप्पओग-सति-समण्णागते यावि भवति।

आर्त्तध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. अमनोज्ञ (अप्रिय) वस्तु का संयोग होने पर उसके दूर करने का वार-वार चिन्तन करना।
२. मनोज्ञ (प्रिय) वस्तु का संयोग होने पर उसका वियोग न हो, ऐसा वार-वार चिन्तन करना।
३. आतंक (घातक रोग) होने पर उसके दूर करने का वार-वार चिन्तन करना।
४. प्रीति-कारक काम-भोग का संयोग होने पर उसका वियोग न हो, ऐसा वार-वार चिंतन करना (६१)।

६२—अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—कंदणता, सोयणता, तिप्पणता, परिदेवणता।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे—

१. क्रन्दनता—उच्च स्वर से बोलते हुए रोना।
२. शोचनता—दीनता प्रकट करते हुए शोक करना।
३. तेपनता—आंसू बहाना।
४. परिदेवनता—करुणा-जनक विलाप करना (६२)।

विवेचन—अमनोज्ञ, अप्रिय और अनिष्ट ये तीनों एकार्थक शब्द हैं। इसी प्रकार मनोज्ञ, प्रिय और इष्ट ये तीनों एकार्थवाची है। अनिष्ट वस्तु का संयोग या इष्ट का वियोग होने पर मनुष्य जो दुःख, शोक, सन्ताप, आक्रन्दन और परिदेवन करता है, वह सब आर्त्तध्यान है। रोग को दूर करने के लिए चिन्तातुर रहना और प्राप्त भोग नष्ट न हो जावें, इसके लिए चिन्तित रहना भी

आर्त्तध्यान है। तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थों में निदान को भी आर्त्तध्यान के भेदों में गिना है। यहां वर्णित चौथे भेद को वहां दूसरे भेद में ले लिया है।

जब दु:ख आदि के चिन्तन में एकाग्रता आ जाती है तभी वह ध्यान की कोटि में आता है।

६३—रोद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—हिंसाणुबंधि, मोसाणुबंधि, तेणाणुबंधि, सारक्खणाणुबंधि।

रौद्रध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. हिंसानुबन्धी—निरन्तर हिंसक प्रवृत्ति में तन्मयता कराने वाली चित्त की एकाग्रता।
२. मृषानुबन्धी—असत्य भाषण सम्बन्धी एकाग्रता।
३. स्तेनानुबन्धी—निरन्तर चोरी करने-कराने की प्रवृत्ति सम्बन्धी एकाग्रता।
४. संरक्षणानुबन्धी—परिग्रह के अर्जन और संरक्षण सम्बन्धी तन्मयता (६३)।

६४—रुद्दस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—ओसण्णदोसे, बहुदोसे, अण्णाणदोसे, आमरणंतदोसे।

रौद्रध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे—

१. उत्सन्नदोष—हिंसादि किसी एक पाप में निरन्तर प्रवृत्ति करना।
२. बहुदोष—हिंसादि सभी पापों के करने में संलग्न करना।
३. अज्ञानदोष—कुशास्त्रों के संस्कार से हिंसादि अधार्मिक कार्यों को धर्म मानना।
४. आमरणान्त दोष—मरणकाल तक भी हिंसादि करने का अनुताप न होना (६४)।

विवेचन—निरन्तर रुद्र या क्रूर कार्यों को करना, आरम्भ-समारम्भ में लगे रहना, उनको करते हुए जीव-रक्षा का विचार न करना, झूठ बोलते और चोरी करते हुए भी पर-पीड़ा का विचार न करके आनन्दित होना, ये सर्व रौद्रध्यान के कार्य कहे गये हैं। शास्त्रों में आर्त्तध्यान को तिर्यंगति का कारण और रौद्रध्यान को नरकगति का कारण कहा गया है। ये दोनों ही अप्रशस्त या अशुभध्यान हैं।

६५—धम्मे झाणे चउविहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, तं जहा—आणाविजए, अवायविजए, विवागविजए, संठाणविजए।

(स्वरूप, लक्षण, आलम्बन और अनुपेक्षा इन) चार पदों में अवतरित धर्म्यध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. आज्ञाविचय—जिन-आज्ञा रूप प्रवचन के चिन्तन में संलग्न रहना।
२. अपायविचय—संसार-पतन के कारणों का विचार करते हुए उनसे बचने का उपाय करना।
३. विपाकविचय—कर्मों के फल का विचार करना।
४. संस्थानविचय—जन्म-मरण के आधारभूत पुरुषाकार लोक के स्वरूप का चिन्तन करना (६५)।

६६—धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—आणारुई, णिसग्गरुई, सुत्तरुई, ओगाढरुई।

धर्म्यध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं, जैसे—

१. आज्ञारुचि—जिन आज्ञा के मनन-चिन्तन में रुचि, श्रद्धा एवं भक्ति होना।
२. निसर्ग रुचि—धर्मकार्यों के करने में स्वाभाविक रुचि होना।
३. सूत्ररुचि—आगम-शास्त्रों के पठन-पाठन में रुचि होना।
४. अवगाढ़रुचि—द्वादशाङ्गवाणी के अवगाहन में प्रगाढ़ रुचि होना (६६)।

६७—धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, तं जहा—वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा।

धर्म्यध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं, जैसे—

१. वाचना—आगम-सूत्र आदि का पठन करना।
२. प्रतिप्रच्छना—शंका-निवारणार्थ गुरुजनों से पूछना।
३. परिवर्तन—पठित सूत्रों का पुनरावर्तन करना।
४. अनुप्रेक्षा—अर्थ का चिन्तन करना (६७)।

६८—धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—एगाणुप्पेहा, अणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, संसाराणुप्पेहा।

धर्म्यध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं कही गई हैं, जैसे—

१. एकात्वानुप्रेक्षा—जीव के सदा अकेले परिभ्रमण और सुख-दुःख भोगने का चिन्तन करना।
२. अनित्यानुप्रेक्षा—सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता का चिन्तन करना।
३. अशरणानुप्रेक्षा जीव को कोई दूसरा-धन परिवार आदि शरण नहीं, ऐसा चिन्तन करना।
४. संसारानुप्रेक्षा—चतुर्गति रूप संसार की दशा का चिन्तन करना (६८)।

विवेचन—शास्त्रों में धर्म के स्वरूप के पांच प्रकार प्रतिपादन किये गये हैं—१. अहिंसालक्षण धर्म २. क्षमादि दशलक्षण धर्म ३. मोह तथा क्षोभ से विहीन परिणामरूप धर्म ४. सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप रत्नत्रय धर्म और ५. वस्तुस्वभाव धर्म। उक्त प्रकार के धर्मों के अनुकूल प्रवर्तन करने को धर्म्य कहते हैं। धर्म्यध्यान की सिद्धि के लिए वाचना आदि चार आलम्बन या आधार बताये गये हैं ओर उसको स्थिरता के लिए एकत्व आदि चार अनुप्रेक्षाएं कही गई हैं। उस धर्म्यध्यान के आज्ञाविचय आदि चार भेद हैं। और आज्ञारुचि आदि उसके चार लक्षण कहे गये हैं। आर्त्त और रौद्र इन दोनों दुर्ध्यानों से उपरत होकर कषायों की मन्दता से शुभ अध्यवसाय या शुभ उपयोगरूप पुण्य-कर्म-सम्पादक जितने भी कार्य हैं, उन सब को करना, कराना और अनुमोदन करना, शास्त्रों का

पठन-पाठन करना, व्रत, शील और समय का परिपालन करना और करने के लिए चिन्तन करना धर्म्यध्यान है। किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि इन सब कर्त्तव्यों का अनुष्ठान करते समय जितनी देर चित्त एकाग्र रहता है, उतनी देर ही ध्यान होता है। छद्मस्थ का ध्यान अन्तर्मुहूर्त तक ही टिकता है, अधिक नहीं।

६९—सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोआरे पण्णत्ते, तं जहा—पुहुत्तवितक्के सवियारी, एगत्तवितक्के अवियारी, सुहुमकिरिए अणियट्टी, समुच्छिण्णकिरिए अप्पडिवाती।

(स्वरूप, लक्षण, आलम्बन और अनुप्रेक्षा इन) चार पदों में अवतरित शुक्लध्यान चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. पृथक्त्ववितर्क सविचार, २. एकत्ववितर्क अविचार, ३. सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति और ४. समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाति (६९)।

विवेचन—जब कोई उत्तम संहनन का धारक सप्तम गुणस्थानवर्ती अप्रमत्त संयत मोहनीय कर्म के उपशमन या क्षपण करने के लिए उद्यत होता है और प्रति-समय अनन्त गुणी विशुद्धि से प्रवर्धमान परिणाम वाला होता है, तब वह अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान में प्रवेश करता है। वहां पर शुभोपयोग की प्रवृत्ति दूर होकर शुद्धोपयोगरूप वीतराग परिणति और प्रथम शुक्लध्यान प्रारम्भ होता है, जिसका नाम पृथक्त्ववितर्क सविचार है। वितर्क का अर्थ है—भावश्रुत के आधार से द्रव्य, गुण और पर्याय का विचार करना। विचार का अर्थ है—अर्थ व्यंजन और योग का परिवर्तन। जब ध्यानस्थित साधु किसी एक द्रव्य का चिन्तन करता-करता उसके किसी एक गुण का चिन्तन करने लगता है और फिर उसी की किसी एक पर्याय का चिन्तन करने लगता है, तब उसके इस प्रकार पृथक्-पृथक् चिन्तन को पृथक्त्ववितर्क कहते हैं। जब वही संयत अर्थ से शब्द में और शब्द से अर्थ के चिन्तन में संक्रमण करता है और मनोयोग से वचनयोग का और वचनयोग से काययोग का आलम्बन लेता है, तब वह सविचार कहलाता है। इस प्रकार वितर्क और विचार के परिवर्तन और संक्रमण की विभिन्नता के कारण इस ध्यान को पृथक्त्ववितर्क सविचार कहते हैं। यह प्रथम शुक्लध्यान चतुर्दश पूर्वधर के होता है और इसके स्वामी आठवें गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थानवर्त्ती संयत हैं। इस ध्यान के द्वारा उपशम श्रेणी पर आरूढ़ संयत दशवें गुणस्थान में पहुँच कर मोहनीय कर्म के शेष रहे सूक्ष्म लोभ का भी उपशम कर देता है, तब वह ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थान को प्राप्त होता है और जब क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ संयत दशवें गुणस्थान में अवशिष्ट सूक्ष्म लोभ का क्षय करके बारहवें गुणस्थान में पहुँचता है, तब वह क्षीणमोह क्षपक कहलाता है।

२. एकत्व-वितर्क अविचार शुक्लध्यान—बारहवें गुणस्थानवर्त्ती क्षीणमोही क्षपक-साधक की मनोवृत्ति इतनी स्थिर हो जाती है कि वहाँ न द्रव्य, गुण, पर्याय के चिन्तन का परिवर्तन होता है और न अर्थ, व्यञ्जन (शब्द) और योगों का ही संक्रमण होता है। किन्तु वह द्रव्य, गुण या पर्याय में से किसी एक के गम्भीर एवं सूक्ष्म चिन्तन में संलग्न रहता है और उसका वह चिन्तन किसी एक अर्थ, शब्द या योग के आलम्बन से होता है। उस समय वह एकाग्रता की चरम कोटि पर पहुँच जाता है और इसी दूसरे शुक्लध्यान की प्रज्वलित अग्नि में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और

अन्तराय कर्म की सर्व प्रकृतियों को भस्म कर अनन्त ज्ञान, दर्शन और बल-वीर्य का धारक सयोगी जिन बन कर तेरहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है।

३. तीसरे शुक्लध्यान का नाम सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति है। तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी जिन का आयुष्क जब अन्तर्मुहूर्त प्रमाणमात्र शेष रहता है और उसी की बराबर स्थितिवाले वेदनीय, नाम और गोत्रकर्म रह जाते हैं, तब वे सयोगी जिन-बादर तथा सूक्ष्म सर्व मनोयोग और वचनयोग का निरोध कर सूक्ष्म काययोग का आलम्बन लेकर सूक्ष्मक्रिय अनिवृत्ति ध्यान ध्याते हैं। इस समय श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया शेष रहती है और इस अवस्था से निवृत्ति या वापिस लौटना नहीं होता है, अतः इसे सूक्ष्मक्रिय-अनिवृत्ति कहते हैं।

४. चौथे शुक्लध्यान का नाम समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाती है। यह शुक्लध्यान सूक्ष्म काययोग का निरोध होने पर चौदहवें गुणस्थान में होता है और योगों की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव हो जाने से आत्मा अयोगी जिन हो जाता है। इस चौथे शुक्लध्यान के द्वारा वे अयोगी जिन अघातिया कर्मों की शेष रही ८५ प्रकृतियों की प्रतिक्षण असंख्यात गुणितक्रम से निर्जरा करते हुए अन्तिम क्षण में कर्म-लेप से सर्वथा विमुक्त होकर सिद्ध परमात्मा बन कर सिद्धालय में जा विराजते हैं। अतः इस शुक्लध्यान से योग-क्रिया समुच्छिन्न (सर्वथा विनष्ट) हो जाती है और उससे नीचे पतन नहीं होता, अतः इसका समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाती यह सार्थक नाम है।

७०—सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—अव्वहे, असम्मोहे, विवेगे, विउस्सग्गे।

शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं। जैसे—

१. अव्यथ—व्यथा से परिषह या उपसर्गादि से पीड़ित होने पर भी क्षोभित नहीं होना।
२. असम्मोह—देवादिकृत माया से मोहित नहीं होना।
३. विवेक—सभी संयोगों को आत्मा से भिन्न मानना।
४. व्युत्सर्ग—शरीर और उपधि से ममत्व का त्याग कर पूर्ण निःसंग होना।

७१—सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षान्ति (क्षमा) २. मुक्ति (निर्लोभता) ३. आर्जव (सरलता) ४. मार्दव (मृदुता)।

७२—सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—अणंतवत्तियाणुप्पेहा, विप्परिणामाणुप्पेहा, असुभाणुप्पेहा, अवायाणुप्पेहा।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं कही गई हैं। जैसे—

१. अनन्तवृत्तितानुप्रेक्षा—संसार में परिभ्रमण की अनन्तता का विचार करना।
२. विपरिणामानुप्रेक्षा—वस्तुओं के विविध परिणमनों का विचार करना।

३. अशुभानुप्रेक्षा—संसार, देह और भोगों की अशुभता का विचार करना।
४. अपायानुप्रेक्षा—राग द्वेष से होने वाले दोषों का विचार करना (७२)।

देव-स्थिति-सूत्र

७३—चउव्विहा देवाण ठिती पण्णत्ता, तं जहा—देवे णाममेगे, देवसिणाते णाममेगे, देव-पुरोहिते णाममेगे, देवपज्जलणे णाममेगे।

देवों की स्थिति (पद-मर्यादा) चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. देव—सामान्य देव।
२. देव-स्नातक—प्रधान देव। अथवा मंत्री-स्थानीय देव।
३. देव-पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाले पुरोहित स्थानीय देव।
४. देव-प्रज्वलन—मंगल-पाठक चारण-स्थानीय मागध देव (७३)।

संवास-सूत्र

७४—चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, देवे णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा, छवी णाममेगे छवीए सद्धिं संवासं गच्छेज्जा।

संवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कोई देव देवी के साथ संवास (सम्भोग) करता है।
२. कोई देव छवि (औदारिक शरीरी मनुष्यनी या तिर्यंचनी) के साथ संवास करता है।
३. कोई छवि (मनुष्य या तिर्यंच) देवी के साथ संवास करता है।
४. कोई छवि (मनुष्य या तिर्यंच) छवी (मनुष्यनी या तिर्यंचनी) के साथ संवास करता है।

कषाय-सूत्र

७५—चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोभ-कसाए। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

कषाय चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्रोधकषाय, २. मानकषाय, ३. मायाकषाय और ४. लोभकषाय।
नारकों से लेकर वैमानिकों तक के सभी दण्डकों में ये चारों कषाय होते हैं।

७६—चउ-पतिट्ठिते कोहे पण्णत्ते, तं जहा—आत-पतिट्ठिते, पर-पतिट्ठिते, तदुभय-पतिट्ठिते, अपतिट्ठिते। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

क्रोधकषाय चतु:प्रतिष्ठित कहा गया है। जैसे—

१. आत्म-प्रतिष्ठित—अपने ही दोष से संकट उत्पन्न होने पर अपने ही ऊपर क्रोध होना।
२. पर-प्रतिष्ठित—पर के निमित्त से उत्पन्न अथवा पर-विषयक क्रोध।

३. तदुभय-प्रतिष्ठित—स्व और पर के निमित्त से उत्पन्न उभय-विषयक क्रोध ।

४. अप्रतिष्ठित—बाह्य निमित्त के विना क्रोध कषाय के उदय से उत्पन्न होने वाला क्रोध, जो जीवप्रतिष्ठित होकर भी आत्मप्रतिष्ठित आदि न होने से अप्रतिष्ठित कहलाता है ।

इसी प्रकार नारकों से लेकर वैमानिकों तक के सभी दण्डकों में जानना चाहिए ।

७७—[चउपतिट्ठिते माणे पण्णत्ते, तं जहा—आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते, तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते । एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

मानकषाय चतुःप्रतिष्ठित कहा गया है । जैसे—

१. आत्मप्रतिष्ठित, २. परप्रतिष्ठित, ३. तदुभयप्रतिष्ठित और ४. अप्रतिष्ठित ।

यह चारों प्रकार का मान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में होता है ।

७८—चउपतिट्ठिता माया पण्णत्ता, तं जहा—आतपतिट्ठिता, परपतिट्ठिता, तदुभयपतिट्ठिता, अपतिट्ठिता । एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

मायाकषाय चतुःप्रतिष्ठित कहा गया है । जैसे—

१. आत्मप्रतिष्ठित, २. परप्रतिष्ठित, ३. तदुभयप्रतिष्ठित और ४. अप्रतिष्ठित ।

यह चारों प्रकार की माया नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में होती हैं ।

७९—चउपतिट्ठिते लोभे पण्णत्ते, तं जहा—आतपतिट्ठिते, परपतिट्ठिते, तदुभयपतिट्ठिते, अपतिट्ठिते । एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं] ।

लोभकषाय चतुःप्रतिष्ठित कहा गया है । जैसे—

१. आत्मप्रतिष्ठित २. परप्रतिष्ठित, ३. तदुभयप्रतिष्ठित और ४. अप्रतिष्ठित ।

यह चारों प्रकार का लोभ नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में होता है ।

८०—चउहिं ठाणेहिं कोधुप्पत्ती सिता, तं जहा—खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा । एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

चार कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है । जैसे—

१. क्षेत्र (खेत-भूमि) के कारण २. वास्तु (घर आदि) के कारण,

३. शरीर (कुरूप आदि होने) के कारण, ४. उपधि (उपकरणादि) के कारण ।

नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में उक्त चार कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है ।

८१—[चउहिं ठाणेहिं माणुप्पत्ती सिता, तं जहा—खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा । एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ।

चार कारणों से मान की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१. क्षेत्र के कारण, २. वास्तु के कारण, ३. शरीर के कारण, ४. उपधि के कारण। नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में उक्त चार कारणों से मान की उत्पत्ति होती है।

८२—चउहिं ठाणेहिं मायुप्पत्ती सिता, तं जहा—खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

चार कारणों से माया की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१. क्षेत्र के कारण, २. वास्तु के कारण ३. शरीर के कारण, ४. उपधि के कारण। नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में उक्त चार कारणों से माया की उत्पत्ति होती है।

८३—चउहिं ठाणेहिं लोभुप्पत्ती सिता, तं जहा—खेत्तं पडुच्चा, वत्थुं पडुच्चा, सरीरं पडुच्चा, उवहिं पडुच्चा। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं]।

चार कारणों से लोभ की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१. क्षेत्र के कारण, २. वास्तु के कारण, ३. शरीर के कारण, ४. उपधि के कारण। नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में उक्त चार कारणों से लोभ की उत्पत्ति होती है।

८४—चउव्विधे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी कोहे, अपच्चक्खाणकसाए कोहे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, संजलणे कोहे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अनन्तानुबन्धी क्रोध—संसार की अनन्त परम्परा का अनुबन्ध करने वाला।
२. अप्रत्याख्यानकषाय क्रोध—देशविरति का अवरोध करने वाला।
३. प्रत्याख्यानावरण क्रोध—सर्वविरति का अवरोध करने वाला।
४. संज्वलन क्रोध—यथाख्यात चारित्र का अवरोध करने वाला।

यह चारों प्रकार का क्रोध नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

८५—[चउव्विधे माणे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी माणे, अपच्चक्खाणकसाए माणे, पच्चक्खाणावरणे माणे, संजलणे माणे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।।

मान चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अनन्तानुबन्धी मान, २. अप्रत्याख्यानकषाय मान,
३. प्रत्याख्यानावरण मान, ४. संज्वलन मान।

'' प्रकार का मान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

८६—चउव्विधा माया पण्णत्ता, तं जहा—अणंताणुबंधी माया, अपच्चक्खाणकसाया माया, पच्चक्खाणावरणा माया, संजलणा माया। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

माया चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. अनन्तानुबन्धी माया, २. अप्रत्याख्यानकषाय माया,
३. प्रत्याख्यानावरण माया, ४. संज्वलन माया।

यह चारों प्रकार की माया नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाई जाती है।

८७—चउव्विधे लोभे पण्णत्ते, तं जहा—अणंताणुबंधी लोभे, अपच्चक्खाणकसाए लोभे, पच्चक्खाणावरणे लोभे, संजलणे लोभे। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं]।

लोभ चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अनन्तानुबन्धी लोभ, २. अप्रत्याख्यान कषाय लोभ,
३. प्रत्याख्यानावरण लोभ, ४. संज्वलन लोभ।

यह चारों प्रकार का लोभ नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

८८—चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसंते, अणुवसंते। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

पुनः क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आभोगनिर्वर्तित क्रोध, २. अनाभोगनिर्वर्तित क्रोध,
३. उपशान्त क्रोध, ४. अनुपशान्त क्रोध।

यह चारों प्रकार का क्रोध नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है।

विवेचन—बुद्धिपूर्वक किये गये क्रोध को आभोग-निर्वर्तित और अबुद्धिपूर्वक होने वाले क्रोध को अनाभोग-निर्वर्तित कहा जाता है। यह साधारण व्याख्या है। संस्कृत टीकाकार अभयदेव सूरि ने आभोग का अर्थ ज्ञान किया है। जो व्यक्ति क्रोध के दुष्फल को जानते हुए भी क्रोध करता है, उसके क्रोध को आभोगनिर्वर्तित कहा है। मलयगिरि सूरि ने प्रज्ञापनासूत्र की टीका में इसकी व्याख्या भिन्न प्रकार से की है। वे लिखते हैं कि जब मनुष्य दूसरे के द्वारा किये गये अपराध को भली भांति से जान लेता है और विचारता है कि अपराधी व्यक्ति सीधी तरह से नहीं मानेगा, इसे अच्छी सीख देना चाहिए। ऐसा विचार कर रोष-युक्त मुद्रा से उस पर क्रोध करता है, तब उसे आभोगनिर्वर्तित क्रोध कहते हैं। क्रोध के गुण-दोष का विचार किये विना सहसा उत्पन्न हुए क्रोध को अनाभोगनिर्वर्तित कहते हैं। उदय को नहीं प्राप्त, किन्तु सत्ता में अवस्थित क्रोध को उपशान्त क्रोध कहते हैं। उदय को प्राप्त क्रोध अनुपशान्त क्रोध कहलाता है। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले चारों प्रकार के मान, माया और लोभ का अर्थ जानना चाहिए।

८९—[चउव्विहे माणे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसंते, अणुवसंते। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

मान चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आभोगनिर्वर्तित—बुद्धिपूर्वक किया गया मान।
२. अनाभोगनिर्वर्तित—अबुद्धिपूर्वक किया गया मान।
३. उपशान्त मान—उदय को अप्राप्त, किन्तु सत्ता में स्थित मान।
४. अनुपशान्त मान—उदय को प्राप्त मान।

यह चारों प्रकार का मान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाया जाता है (८९)।

९०—चउव्विहा माया पण्णत्ता, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिता, अणाभोगणिव्वत्तिता, उवसंता, अणुवसंता। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

माया चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. आभोगनिर्वर्तित—बुद्धिपूर्वक की गई माया।
२. अनाभोगनिर्वर्तित—अबुद्धिपूर्वक की गई माया।
३. उपशान्त माया—उदय को अप्राप्त, किन्तु सत्ता में स्थित माया।
४. अनुपशान्त माया—उदय को प्राप्त माया।

यह चारों प्रकार की माया नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डकों में पाई जाती है (९०)।

९१—चउव्विहे लोभे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगणिव्वत्तिते, अणाभोगणिव्वत्तिते, उवसंते, अणुवसंते। एवं—णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।]

लोभ चार प्रकार का गया है। जैसे—

१. आभोगनिर्वर्तित—बुद्धिपूर्वक किया गया लोभ।
२. अनाभोगनिर्वर्तित—अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ लोभ।
३. उपशान्त लोभ—उदय को अप्राप्त, किन्तु सत्ता में स्थित लोभ।
४. अनुपशान्त लोभ—उदय को प्राप्त लोभ (९१)।

कर्म-प्रकृति-सूत्र

९२—जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठकम्मपगडीओ चिणिंसु, तं जहा—कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं। एवं जाव वेमाणियाणं।

एवं चिणंति, एस दंडओ, एवं चिणिस्संति एस दंडओ, एवमेतेणं तिण्णि दंडगा।

जीवों ने चार कारणों से आठों कर्मप्रकृतियों का भूतकाल में संचय किया है। जैसे—

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से और ४. लोभ से।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीवों ने भूतकाल में आठों कर्मप्रकृतियों का संचय किया है (९२)।

९३—[जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठकम्मपगडीओ चिणंति, तं जहा—कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं। एवं जाव वेमाणियाणं।

जीव चार कारणों से आठों कर्मप्रकृतियों का वर्तमान में संचय कर रहे हैं। जैसे—

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से और ४. लोभ से।

इसी प्रकार वैमानिकों तक के सभी दण्डक वाले जीव वर्तमान में आठों कर्मप्रकृतियों का संचय कर रहे हैं (९३)।

९४—जीवा णं चउहिं ठाणेहिं अट्ठकम्मपगडीओ चिणिस्संति, तं जहा—कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं। एवं जाव वेमाणियाणं।]

जीव चार कारणों से भविष्य में आठों कर्मप्रकृतियों का संचय करेंगे। जैसे—

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीव भविष्य में चारों कारणों से आठों प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का संचय करेंगे (९४)।

९५—एवं—उवचिणिसु उवचिणंति उवचिणिस्संति, बंधिसु बंधंति बंधिस्संति, उदीरिंसु उदीरिंति उदीरिस्संति, वेदेंसु वेदेंति वेदिस्संति, णिज्जरेंसु णिज्जरेंति णिज्जरिस्संति जाव वेमाणियाणं। [एवमेक्केक्कपदे तिन्नि तिन्नि दंडगा भाणियव्वा]।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीवों ने आठों कर्म-प्रकृतियों का उपचय किया है, कर रहे हैं और करेंगे। आठों कर्म-प्रकृतियों का बन्ध किया है, कर रहे हैं और करेंगे। आठों कर्म-प्रकृतियों की उदीरणा की है, कर रहे हैं, और करेंगे। आठों कर्म-प्रकृतियों को वेदा (भोगा) है, वेद रहे हैं और वेदन करेंगे। तथा आठों कर्म-प्रकृतियों की निर्जरा की है, कर रहे हैं और करेंगे (९५)।

प्रतिमा-सूत्र

९६—चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समाहिपडिमा, उवहाणपडिमा, विवेगपडिमा, विउस्सग्गपडिमा।

प्रतिमा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. समाधिप्रतिमा, २. उपधान-प्रतिमा, ३. विवेक-प्रतिमा, ४. व्युत्सर्ग-प्रतिमा (९६)।

९७—चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा, सुभद्दा महाभद्दा, सव्वतोभद्दा।

पुनः प्रतिमा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. भद्रा, २. सुभद्रा, ३. महाभद्रा, ४. सर्वतोभद्रा (९७)।

९८—चत्तारि पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खुड्डिया मोयपडिमा, महल्लिया मोयपडिमा, जवमज्झा, वइरमज्झा।

पुनः प्रतिमा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. छोटी मोकप्रतिमा, २. बड़ी मोकप्रतिमा, ३. यवमध्या, ४. वज्रमध्या।

इन सभी प्रतिमाओं का विवेचन दूसरे स्थान के प्रतिमापद में किया जा चुका है (९८)।

अस्तिकाय-सूत्र

९९—चत्तारि अत्थिकाया अजीवकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

चार अस्तिकाय द्रव्य अजीवकाय कहे गये हैं। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. पुद्‌गलास्तिकाय (९९)।

विवेचन—ये चारों द्रव्य तीनों कालों में पाये जाने से 'अस्ति' कहलाते हैं। और बहुप्रदेशी होने से 'काय' कहे जाते हैं। अथवा अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशों का समूहरूप द्रव्य। इन चारों द्रव्यों में दोनों धर्म पाये जाने से वे अस्तिकाय कहे गये हैं।

१००—चत्तारि अत्थिकाया अरूविकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए।

चार अस्तिकाय द्रव्य अरूपीकाय कहे गये हैं। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय (१००)।

विवेचन—जिसमें रूप, रसादि पाये जाते हैं, ऐसे पुद्‌गल द्रव्य को रूपी कहते हैं। इन धर्मास्तिकाय आदि चारों द्रव्यों में रूपादि नहीं पाये जाते हैं, अतः ये अरूपी काय कहे गये हैं।

आम-पक्व-सूत्र

१०१—चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा—आमे णाममेगे आममहुरे, आमे णाममेगे पक्कमहुरे, पक्के णाममेगे आममहुरे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आमे णाममेगे आममहुरफलसमाणे, आमे णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे, पक्के णाममेगे आममहुरफलसमाणे, पक्के णाममेगे पक्कमहुरफलसमाणे।

फल चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई फल आम (अपक्व) होकर भी आम-मधुर (अल्प मिष्ट) होता है।

२. कोई फल आम होकर के भी पक्व-मधुर (पके फल के समान अत्यन्त मिष्ट) होता है।

३. कोई फल पक्व होकर के भी आम-मधुर (अल्प मिष्ट) होता है।

४. कोई फल पक्व होकर के पक्व-मधुर (अत्यन्त मिष्ट) होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष आम (आयु और श्रुताभ्यास से अपक्व) होने पर भी आम-मधुर फल के समान उपशम भावादि रूप अल्प-मधुर स्वभाववाला होता है।

२. कोई पुरुष आम (आयु और श्रुताभ्यास से अपक्व) होने पर भी पक्व-मधुर फल के समान प्रकृष्ट उपशम भाववाला और अत्यन्त मधुर स्वभावी होता है।

३. कोई पुरुष पक्व (आयु और श्रुताभ्यास से परिपुष्ट) होने पर भी आम-मधुर फल के समान अल्प-उपशम भाववाला और अल्प-मधुर स्वभावी होता है।

४. कोई पुरुष पक्व (आयु और श्रुताभ्यास से परिपुष्ट) होकर पक्व मधुर-फल के समान प्रकृष्ट उपशम वाला और अत्यन्त मधुर स्वभावी होता है (१०१)।

सत्य-मृषा-सूत्र

१०२—चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—काउज्जुयया, भासुज्जुयया, भावुज्जुयया, अविसंवायणाजोगे।

सत्य चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. काय-ऋजुता-सत्य—काय के द्वारा सरल सत्य वस्तु का संकेत करना।

२. भाषा-ऋजुता-सत्य—वचन के द्वारा यथार्थ वस्तु का प्रतिपादन करना।

३. भाव-ऋजुता-सत्य—मन में सरल सत्य कहने का भाव रखना।

४. अविसंवादना-योग-सत्य—विसंवाद-रहित, किसी को धोखा न देने वाली मन, वचन, काय की प्रवृत्ति रखना (१०२)।

१०३—चउव्विहे मोसे पण्णत्ते, तं जहा—कायअणुज्जुयया, भासअणुज्जुयया, भावअणुज्जुयया, विसंवादणाजोगे।

मृषा (असत्य) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. काय-अनृजुकता-मृषा—काय के द्वारा असत्य (सत्य को छिपाने वाला) संकेत करना।

२. भाषा-अनृजुकता-मृषा—वचन के द्वारा अयथार्थ वस्तु का प्रतिपादन करना।

३. भाव-अनृजुकता-मृषा—मन में कुटिलता रख कर असत्य कहने का भाव रखना।

४. विसंवादना-योग-मृषा—विसंवाद-युक्त, दूसरों को धोखा देने वाली मन, वचन, काय की प्रवृत्ति रखना (१०३)।

प्रणिधान-सूत्र

१०४—चउव्विहे पणिधाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणपणिधाणे, वइपणिधाणे, कायपणिधाणे, उवकरणपणिधाणे। एवं—णेरइयाणं पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

प्रणिधान (मन आदि का प्रयोग) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. मनः-प्रणिधान, २. वाक्-प्रणिधान, ३. काय-प्रणिधान, ४. उपकरण-प्रणिधान (लौकिक तथा लोकोत्तर वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का प्रयोग) ये चारों प्रणिधान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी पंचेन्द्रिय दण्डकों में कहे गये हैं (१०४)।

१०५—चउव्विहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, जाव [वइसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणिहाणे], उवगरणसुप्पणिहाणे। एवं—संजयमणुस्साणवि।

सुप्रणिधान (मन आदि का शुभ प्रवर्तन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. मनः-सुप्रणिधान, २. वाक्-सुप्रणिधान, ३. काय-सुप्रणिधान,
४. उपकरण-सुप्रणिधान।

ये चारों सुप्रणिधान संयम के धारक मनुष्यों के कहे गये हैं (१०५)।

१०६—चउव्विहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते, तं जहा—मणदुप्पणिहाणे, जाव [वइदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे], उवकरणदुप्पणिहाणे। एवं—पंचिंदियाणं जाव वेमाणियाणं।

दुष्प्रणिधान (असंयम के लिए मन आदि का प्रवर्तन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. मनः-दुष्प्रणिधान, २. वाक्-दुष्प्रणिधान, ३. काय-दुष्प्रणिधान, ४. उपकरण-दुष्प्रणिधान।

ये चारों दुष्प्रणिधान नारकों से लेकर वैमानिक तक के सभी पंचेन्द्रिय दण्डकों में कहे गये हैं (१०६)।

आपात-संवास-सूत्र

१०७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आवातभद्दए णाममेगे णो संवासभद्दए, संवासभद्दए णाममेगे णो आवातभद्दए, एगे आवातभद्दएवि संवासभद्दएवि, एगे णो आवातभद्दए णो संवासभद्दए।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष आपात-भद्रक होता है, संवास-भद्रक नहीं। (प्रारम्भ में मिलने पर भला दिखता है, किन्तु साथ रहने पर भला नहीं लगता)।

२. कोई पुरुष संवास-भद्रक होता है, आपात-भद्रक नहीं। (प्रारम्भ में मिलने पर भला नहीं दिखता, किन्तु साथ रहने पर भला लगता है।)

३. कोई पुरुष आपात-भद्रक भी होता है और संवास-भद्रक भी होता है।

४. कोई पुरुष न आपात-भद्रक होता है और न संवास-भद्रक ही होता है (१०७)।

वर्ज्य-सूत्र

१०८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे वज्जं पासति णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं पासति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्जं पासति परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्जं पासति णो परस्स।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (पश्चात्तापयुक्त होने से) अपना वर्ज्य देखता है, दूसरे का नहीं।

२. कोई पुरुष दूसरे का वर्ज्य देखता है, (अहंकारी होने से) अपना नहीं।

३. कोई पुरुष अपना भी वर्ज्य देखता है और दूसरे का भी।

४. कोई पुरुष न अपना वर्ज्य देखता है और न दूसरे का ही देखता है (१०८)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने 'वज्ज' इस प्राकृत पद के तीन संस्कृत रूप लिखे हैं—१. वर्ज्य—त्याग करने के योग्य कार्य, २. वज्रवद् वा वज्र—वज्र के समान भारी हिंसादि महापाप। तथा

'वज्ज' पद में अकारका लोप मान कर उसका संस्कृत रूप 'अवद्य' भी किया है। जिसका अर्थ पाप या निन्द्य कार्य होता है। 'वर्ज्य' पद में उक्त सभी अर्थ आ जाते हैं।

१०९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइणो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं उदीरेइ णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्जं उदीरेइ परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्जं उदीरेइ णो परस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करता है (कष्ट सहन करके उदय में लाता है अथवा मैंने यह किया, ऐसा कहता है) दूसरे के अवद्य की नहीं।

२. कोई पुरुष दूसरे के अवद्य की उदीरणा करता है, अपने अवद्य की नहीं।

३. कोई पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करता है और दूसरे के अवद्य की भी।

४. कोई पुरुष न अपने अवद्य की उदीरणा करता है और न दूसरे के अवद्य की (१०९)।

११०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेति णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं उवसामेति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्जं उवसामेति परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्जं उवसामेति णो परस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष अपने अवर्ज्य को उपशान्त करता है, दूसरे के अवर्ज्य को नहीं।

२. कोई पुरुष दूसरे के अवर्ज्य को उपशान्त करता है, अपने अवर्ज्य को नहीं।

३. कोई पुरुष अपने भी अवर्ज्य को उपशान्त करता है और दूसरे के अवर्ज्य को भी।

४. कोई पुरुष न अपने अवर्ज्य को उपशान्त करता है और न दूसरे के अवर्ज्य को उपशान्त करता है (११०)।

लोकोपचार-विनय-सूत्र

१११—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अब्भुट्ठेति णाममेगे णो अब्भुट्ठावेति, अब्भुट्ठावेति णाममेगे णो अब्भुट्ठेति, एगे अब्भुट्ठेति वि अब्भुट्ठावेति वि, एगे णो अब्भुट्ठेति णो अब्भुट्ठावेति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि को देख कर) अभ्युत्थान करता है, किन्तु (दूसरों से) अभ्युत्थान करवाता नहीं।

२. कोई पुरुष (दूसरों से) अभ्युत्थान करवाता है, किन्तु (स्वयं) अभ्युत्थान नहीं करता।

३. कोई पुरुष स्वयं भी अभ्युत्थान करता है और दूसरों से भी अभ्युत्थान करवाता है।

४. कोई पुरुष न स्वयं अभ्युत्थान करता है और न दूसरों से भी अभ्युत्थान करवाता है (१११)।

विवेचन—प्रथम भंग में संविग्नपाक्षिक या लघुपर्याय वाला साधु गिना गया है, दूसरे भंग

में गुरु, तीसरे भंग में वृषभादि और चौथे भंग में जिन-कल्पी आदि। आगे भी इसी प्रकार यथायोग्य उदाहरण स्वयं समझ लेना चाहिए।

११२—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वंदति णाममेगे णो वंदावेति, वंदावेति णाममेगे णो वंदति, एगे वंदति वि वंदावेति वि, एगे णो वंदति णो वंदावेति]।

एवं सक्कारेइ, सम्माणेति पूएइ, वाएइ, पडिपुच्छति पुच्छइ, वागरेति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि की) वन्दना करता है, किन्तु (दूसरों से) वन्दना करवाता नहीं।
२. कोई पुरुष (दूसरों से) वन्दना करवाता है, किन्तु (स्वयं) वन्दना नहीं करता।
३. कोई पुरुष स्वयं भी वन्दना करता है और दूसरों से भी वन्दना करवाता है।
४. कोई पुरुष न स्वयं वन्दना करता है और न दूसरों से वन्दना करवाता है (११२)।

११३—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सक्कारेइ णाममेगे णो सक्कारावेइ, सक्कारावेइ णाममेगे णो सक्कारेइ, एगे सक्कारेइ वि सक्कारावेइ वि, एगे णो सक्कारेइ णो सक्कारावेइ।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि का) सत्कार करता है, किन्तु (दूसरों से) सत्कार करवाता नहीं।
२. कोई पुरुष दूसरों से सत्कार करवाता है, किन्तु स्वयं सत्कार नहीं करता।
३. कोई पुरुष स्वयं भी सत्कार करता है और दूसरों से भी सत्कार करवाता है।
४. कोई पुरुष न स्वयं सत्कार करता है और न दूसरों से सत्कार करवाता है (११३)।

११४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सम्माणेति णाममेगे णो सम्माणावेति, सम्माणावेति णाममेगे णो सम्माणेति, एगे सम्माणेति वि सम्माणावेति वि, एगे णो सम्माणेति णो सम्माणाव्वेति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि का) सन्मान करता है, किन्तु (दूसरों से) सन्मान नहीं करवाता।
२. कोई पुरुष दूसरों से सन्मान करवाता है, किन्तु स्वयं सन्मान नहीं करता।
३. कोई पुरुष स्वयं भी सन्मान करता है और दूसरों से भी सन्मान करवाता है।
४. कोई पुरुष न स्वयं सन्मान करता है और न दूसरों से सन्मान करवाता है (११४)।

११५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पूएइ णाममेगे णो पूयावेति, पूयावेति णाममेगे णो पूएइ, एगे पूएइ वि पूयावेति वि, एगे णो पूएइ णो पूयावेति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि की) पूजा करता है, किन्तु (दूसरों से) पूजा नहीं करवाता।

'वज्ज' पद में अकारका लोप मान कर उसका संस्कृत रूप 'अवद्य' भी किया है। जिसका अर्थ पाप या निन्द्य कार्य होता है। 'वर्ज्य' पद में उक्त सभी अर्थ आ जाते हैं।

१०९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे वज्जं उदीरेइ णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं उदीरेइ णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्जं उदीरेइ परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्जं उदीरेइ णो परस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करता है (कष्ट सहन करके उदय में लाता है अथवा मैंने यह किया, ऐसा कहता है) दूसरे के अवद्य की नहीं।

२. कोई पुरुष दूसरे के अवद्य की उदीरणा करता है, अपने अवद्य की नहीं।

३. कोई पुरुष अपने अवद्य की उदीरणा करता है और दूसरे के अवद्य की भी।

४. कोई पुरुष न अपने अवद्य की उदीरणा करता है और न दूसरे के अवद्य की (१०९)।

११०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे वज्जं उवसामेति णो परस्स, परस्स णाममेगे वज्जं उवसामेति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि वज्जं उवसामेति परस्सवि, एगे णो अप्पणो वज्जं उवसामेति णो परस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष अपने अवर्ज्य को उपशान्त करता है, दूसरे के अवर्ज्य को नहीं।

२. कोई पुरुष दूसरे के अवर्ज्य को उपशान्त करता है, अपने अवर्ज्य को नहीं।

३. कोई पुरुष अपने भी अवर्ज्य को उपशान्त करता है और दूसरे के अवर्ज्य को भी।

४. कोई पुरुष न अपने अवर्ज्य को उपशान्त करता है और न दूसरे के अवर्ज्य को उपशान्त करता है (११०)।

लोकोपचार-विनय-सूत्र

१११—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अब्भुट्ठेति णाममेगे णो अब्भुट्ठावेति, अब्भुट्ठावेति णाममेगे णो अब्भुट्ठेति, एगे अब्भुट्ठेति वि अब्भुट्ठावेति वि, एगे णो अब्भुट्ठेति णो अब्भुट्ठावेति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि को देख कर) अभ्युत्थान करता है, किन्तु (दूसरों से) अभ्युत्थान करवाता नहीं।

२. कोई पुरुष (दूसरों से) अभ्युत्थान करवाता है, किन्तु (स्वयं) अभ्युत्थान नहीं करता।

३. कोई पुरुष स्वयं भी अभ्युत्थान करता है और दूसरों से भी अभ्युत्थान करवाता है।

४. कोई पुरुष न स्वयं अभ्युत्थान करता है और न दूसरों से भी अभ्युत्थान करवाता है(१११)।

विवेचन—प्रथम भंग में संविग्नपाक्षिक या लघुपर्याय वाला साधु गिना गया है, दूसरे भंग

२. कोई पुरुष व्याख्यान करवाता है, किन्तु स्वयं व्याख्यान नहीं करता है।
३. कोई पुरुष स्वयं व्याख्यान करता है और अन्य से व्याख्यान करवाता भी है।
४. कोई पुरुष न स्वयं व्याख्यान करता है और न अन्य से व्याख्यान करवाता है (११९)।

१२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्तधरे णाममेगे णो अत्थधरे, अत्थधरे णाममेगे णो सुत्तधरे, एगे सुत्तधरे वि अत्थधरे वि, एगे णो सुत्तधरे णो अत्थधरे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं—जैसे—

१. कोई पुरुष सूत्रधर (सूत्र का ज्ञाता) होता है, किन्तु अर्थधर (अर्थ का ज्ञाता) नहीं होता।
२. कोई पुरुष अर्थधर होता है, किन्तु सूत्रधर नहीं होता।
३. कोई पुरुष सूत्रधर भी होता है और अर्थधर भी होता है।
४. कोई पुरुष न सूत्रधर होता है और न अर्थधर होता है (१२०)।

लोकपाल-सूत्र

१२१—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे।

असुरकुमार-राज असुरेन्द्र चमर के चार लोकपाल कहे गये हैं। जैसे—

१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण। (१२१)

१२२—एवं—बलिस्सवि—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। धरणस्स—कालपाले, कोलपाले, सेलपाले, संखपाले। भूयाणंदस्स—कालपाले, कोलपाले, संखपाले, सेलपाले। वेणुदेवस्स—चित्ते, विचित्ते, चित्तपक्खे, विचित्तपक्खे। वेणुदालिस्स—चित्ते, विचित्ते, विचित्तपक्खे, चित्तपक्खे। हरिकंतस्स—पभे, सुप्पभे, पभकंते, सुप्पभकंते। हरिस्सहस्स—पभे, सुप्पभे, सुप्पभकंते, पभकंते। अग्गिसिहस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउकंते, तेउप्पभे। अग्गिमाणवस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउप्पभे, तेउकंते। पुण्णस्स—रूवे, रूवंसे, रूवकंते, रूवप्पभे। विसिट्ठस्स—रूवे, रूवंसे, रूवप्पभे रूवकंते। जलकंतस्स—जले, जलरते, जलकंते, जलप्पभे। जलप्पहस्स—जले, जलरते, जलप्पहे, जलकंते। अमितगतिस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहगती, सीहविक्कमगती। अमितवाहणस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहविक्कमगती, सीहगती। वेलंबस्स—काले, महाकाले, अंजणे, रिट्ठे। पभंजणस्स—काले, महाकाले, रिट्ठे, अंजणे। घोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, णंदियावत्ते, महाणंदियावत्ते। महाघोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, महाणंदियावत्ते, णंदियावत्ते। सक्कस्स—सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे। ईसाणस्स—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। एवं—एगंतरिता जाव अच्चुतस्स।

इसी प्रकार वलि आदि के भी चार-चार लोकपाल कहे गये हैं। जैसे—
वलि के—१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण।
धरण के—१. कालपाल, २. कोलपाल, ३. सेलपाल, ४. शंखपाल।
भूतानन्द के—१. कालपाल, २. कोलपाल, ३. शंखपाल, ४. सेलपाल।
वेणुदेव के—१. चित्र, २. विचित्र, ३. चित्रपक्ष, ४. विचित्रपक्ष।
वेणुदालि के—१. चित्र, २. विचित्र, ३. विचित्रपक्ष, ४. चित्रपक्ष।

२. कोई पुरुष दूसरों से पूजा करवाता है, किन्तु स्वयं पूजा नहीं करता।
३. कोई पुरुष स्वयं भी पूजा करता है और दूसरों से भी पूजा करवाता है।
४. कोई पुरुष न स्वयं पूजा करता है और न दूसरों से पूजा करवाता है (११५)।

स्वाध्याय-सूत्र

११६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वाएइ णाममेगे णो वायावेइ, वायावेइ णाममेगे णो वाएइ, एगे वाएइ वि वायावेइ वि, एगे णो वाएइ णो वायावेइ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष दूसरों को वाचना देता है, किन्तु दूसरों से वाचना नहीं लेता।
२. कोई पुरुष दूसरों से वाचना लेता है, किन्तु दूसरों को वाचना नहीं देता।
३. कोई पुरुष दूसरों को वाचना देता है और दूसरों से वाचना लेता भी है।
४. कोई पुरुष न दूसरों को वाचना देता है और न दूसरों से वाचना लेता है (११६)।

११७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पडिच्छति णाममेगे णो पडिच्छावेति, पडिच्छावेति णाममेगे णो पडिच्छति, एगे पडिच्छति वि पडिच्छावेति वि, एगे णो पडिच्छति णो पडिच्छावेति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. कोई पुरुष प्रतीच्छा (सूत्र और अर्थ का ग्रहण) करता है, किन्तु प्रतीच्छा करवाता नहीं है।
२. कोई पुरुष प्रतीच्छा करवाता है, किन्तु प्रतीच्छा करता नहीं है।
३. कोई पुरुष प्रतीच्छा करता भी है और प्रतीच्छा करवाता भी है।
४. कोई पुरुष प्रतीच्छा न करता है और न प्रतीच्छा करवाता है (११७)।

११८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुच्छइ णाममेगे णो पुच्छावेइ, पुच्छावेइ णाममेगे णो पुच्छइ, एगे पुच्छइ वि पुच्छावेइ वि, एगे णो पुच्छइ णो पुच्छावेइ।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष प्रश्न करता है, किन्तु प्रश्न करवाता नहीं है।
२. कोई पुरुष प्रश्न करवाता है, किन्तु स्वयं प्रश्न करता नहीं है।
३. कोई पुरुष प्रश्न करता भी है और प्रश्न करवाता भी है।
४. कोई पुरुष न प्रश्न करता है न प्रश्न करवाता है (११८)।

११९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वागरेति णाममेगे णो वागरावेति, वागरावेति णाममेगे णो वागरेति, एगे वागरेति वि वागरावेति वि, एगे णो वागरेति णो वागरावेति]।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. कोई पुरुष सूत्रादि का व्याख्यान करता है, किन्तु अन्य से व्याख्यान करवाता नहीं है।

२. कोई पुरुष व्याख्यान करवाता है, किन्तु स्वयं व्याख्यान नहीं करता है।
३. कोई पुरुष स्वयं व्याख्यान करता है और अन्य से व्याख्यान करवाता भी है।
४. कोई पुरुष न स्वयं व्याख्यान करता है और न अन्य से व्याख्यान करवाता है (११९)।

१२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुत्तधरे णाममेगे णो अत्थधरे, अत्थधरे णाममेगे णो सुत्तधरे, एगे सुत्तधरे वि अत्थधरे वि, एगे णो सुत्तधरे णो अत्थधरे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं—जैसे—
१. कोई पुरुष सूत्रधर (सूत्र का ज्ञाता) होता है, किन्तु अर्थधर (अर्थ का ज्ञाता) नहीं होता।
२. कोई पुरुष अर्थधर होता है, किन्तु सूत्रधर नहीं होता।
३. कोई पुरुष सूत्रधर भी होता है और अर्थधर भी होता है।
४. कोई पुरुष न सूत्रधर होता है और न अर्थधर होता है (१२०)।

लोकपाल-सूत्र

१२१—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चत्तारि लोगपाला पण्णत्ता, तं जहा—सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे।

असुरकुमार-राज असुरेन्द्र चमर के चार लोकपाल कहे गये हैं। जैसे—
१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण। (१२१)

१२२—एवं—बलिस्सवि—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। धरणस्स—कालपाले, कोलपाले, सेलपाले, संखपाले। भूयाणंदस्स—कालपाले, कोलपाले, संखपाले, सेलपाले। वेणुदेवस्स—चित्ते, विचित्ते, चित्तपक्खे, विचित्तपक्खे। वेणुदालिस्स—चित्ते, विचित्ते, विचित्तपक्खे, चित्तपक्खे। हरिकंतस्स—पभे, सुप्पभे, पभकंते, सुप्पभकंते। हरिस्सहस्स—पभे, सुप्पभे, सुप्पभकंते, पभकंते। अग्गिसिहस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउकंते, तेउप्पभे। अग्गिमाणवस्स—तेऊ, तेउसिहे, तेउप्पभे, तेउकंते। पुण्णस्स—रूवे, रूवंसे, रूवकंते, रूवप्पभे। विसिट्ठस्स—रूवे, रूवंसे, रूवप्पभे रूवकंते। जलकंतस्स—जले, जलरते, जलकंते, जलप्पभे। जलप्पहस्स—जले, जलरते, जलप्पहे, जलकंते। अमितगतिस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहगती, सीहविक्कमगती। अमितवाहणस्स—तुरियगती, खिप्पगती, सीहविक्कमगती, सीहगती। वेलंबस्स—काले, महाकाले, अंजणे, रिट्ठे। पभंजणस्स—काले, महाकाले, रिट्ठे, अंजणे। घोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, णंदियावत्ते, महाणंदियावत्ते। महाघोसस्स—आवत्ते, वियावत्ते, महाणंदियावत्ते, णंदियावत्ते। सक्कस्स—सोमे, जमे, वरुणे, वेसमणे। ईसाणस्स—सोमे, जमे, वेसमणे, वरुणे। एवं—एगंतरिता जाव अच्चुतस्स।

इसी प्रकार बलि आदि के भी चार-चार लोकपाल कहे गये हैं। जैसे—
बलि के—१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण।
धरण के—१. कालपाल, २. कोलपाल, ३. सेलपाल, ४. शंखपाल।
भूतानन्द के—१. कालपाल, २. कोलपाल, ३. शंखपाल, ४. सेलपाल।
वेणुदेव के—१. चित्र, २. विचित्र, ३. चित्रपक्ष, ४. विचित्रपक्ष।
वेणुदालि के—१. चित्र, २. विचित्र, ३. विचित्रपक्ष, ४. चित्रपक्ष।

हरिकान्त के—१. प्रभ, २. सुप्रभ, ३. प्रभकान्त, ४. सुप्रभकान्त।
हरिस्सह के—१. प्रभ, २. सुप्रभ, ३. सुप्रभकान्त, ४. प्रभकान्त।
अग्निशिख के—१. तेज, २. तेजशिख, ३. तेजस्कान्त, ४. तेजप्रभ।
अग्निमाणव के—१. तेज, २. तेजशिख, ३. तेजप्रभ, ४. तेजस्कान्त।
पूर्ण के—१. रूप, २. रूपांश, ३. रूपकान्त, ४. रूपप्रभ।
विशिष्ट के—१. रूप, २. रूपांश, ३. रूपप्रभ, ४. रूपकान्त।
जलकान्त के—१. जल, २. जलरत, ३. जलप्रभ, ४. जलकान्त।
जलप्रभ के—३. जल, २. जलरत, ३. जलकान्त, ४. जलप्रभ।
अमितगति के—१. त्वरितगति, २. क्षिप्रगति, ३. सिंहगति, ४. सिंहविक्रमगति।
अमितवाहन के—१. त्वरितगति, २. क्षिप्रगति, ३. सिंहविक्रमगति, ४. सिंहगति।
वेलम्ब के—१. काल, २. महाकाल, ३. अंजन, ४. रिष्ट।
प्रभंजन के—१. काल, २. महाकाल, ३. रिष्ट ४. अंजन।
घोष के—१. आवर्त २. व्यावर्त ३. नन्दिकावर्त, ४. महानन्दिकावर्त।
महाघोष के—१. आवर्त, २. व्यावर्त, ३. महानन्दिकावर्त, ४. नन्दिकावर्त।
इसी प्रकार शक्रेन्द्र के—१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण।
ईशानेन्द्र के—१.सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण।

तथा आगे एकान्तरित यावत् अच्युतेन्द्र के चार-चार लोकपाल कहे गये हैं। अर्थात्—माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार, आरण और अच्युत के—१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण ये चार-चार लोकपाल हैं (१२२)।

विवेचन—यहां इतना विशेष ज्ञातव्य है कि दक्षिणेन्द्र के तीसरे लोकपाल का जो नाम है, वह उत्तरेन्द्र के चौथे लोकपाल का नाम है। इसी प्रकार शक्रेन्द्र के जिस नाम वाले लोकपाल हैं उसी नाम वाले सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, शुक्र और प्राणतेन्द्र के लोकपाल हैं। तथा ईशानेन्द्र के जिस नाम-वाले लोकपाल हैं, उसी नामवाले माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार और अच्युतेन्द्र के लोकपाल हैं।

देव-सूत्र

१२३—चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता, तं जहा—काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

वायुकुमार चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. काल, २. महाकाल, ३. वेलम्ब, ४. प्रभंजन। (ये चार पातालकलशों के स्वामी हैं (१२३)।)

१२४—चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, विमाणवासी।

देव चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. भवनवासी, २. वानव्यन्तर, ३. ज्योतिष्क, ४. विमानवासी (१२४)।

प्रमाण-सूत्र

१२५—चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वप्पमाणे, खेत्तप्पमाणे, कालप्पमाणे, भावप्पमाणे।

प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. द्रव्य-प्रमाण—द्रव्य का प्रमाण बताने वाली संख्या आदि।
२. क्षेत्र-प्रमाण—क्षेत्र का माप करने वाले दण्ड, धनुष, योजन आदि।
३. काल-प्रमाण—काल का माप करने वाले आवलिका मुहूर्त आदि।
४. भाव-प्रमाण—प्रत्यक्षादि प्रमाण और नैगमादिनय (१२५)।

महत्तरि-सूत्र

१२६—चत्तारि दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रूया, रूयंसा, सुरूवा, रूयावती।

दिक्कुमारियों की चार महत्तरिकाएं कही गई हैं, जैसे—

१. रूपा, २. रूपांशा, ४. सुरूपा, ४. रूपवती। (ये चारों स्वयं महत्तरिका अर्थात् प्रधानतम हैं अथवा दिक्कुमारियों में प्रधानतम हैं (१२६)।)

१२७—चत्तारि विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—चित्ता, चित्तकणगा, सतेरा, सोयामणी।

विद्युत्कुमारियों की चार महत्तरिकाएं कही गई हैं, जैसे—

१. चित्रा, २. चित्रकनका, ३. सतेरा, ४. सौदामिनी (१२७)।

देवस्थिति-सूत्र

१२८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र की मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है (१२८)।

१२९—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो मज्झिमपरिसाए देवीणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज ईशानेन्द्र की मध्यम परिषद् की देवियों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है (१२९)।

संसार-सूत्र

१३०—चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वसंसारे, खेत्तसंसारे, कालसंसारे, भावसंसारे।

संसार चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. द्रव्य-संसार—जीवों और पुद्गलों का परिभ्रमण।
२. क्षेत्र-संसार—जीवों और पुद्गलों के परिभ्रमण का क्षेत्र।

हरिकान्त के—१. प्रभ, २. सुप्रभ, ३. प्रभकान्त, ४. सुप्रभकान्त।
हरिस्सह के—१. प्रभ, २. सुप्रभ, ३. सुप्रभकान्त, ४. प्रभकान्त।
अग्निशिख के—१. तेज, २. तेजशिख, ३. तेजस्कान्त, ४. तेजप्रभ।
अग्निमाणव के—१. तेज, २. तेजशिख, ३. तेजप्रभ, ४. तेजस्कान्त ।
पूर्ण के—१. रूप, २. रूपांश, ३. रूपकान्त, ४. रूपप्रभ।
विशिष्ट के—१. रूप, २. रूपांश, ३. रूपप्रभ, ४. रूपकान्त।
जलकान्त के—१. जल, २. जलरत, ३. जलप्रभ, ४. जलकान्त।
जलप्रभ के—१. जल, २. जलरत, ३. जलकान्त, ४. जलप्रभ।
अमितगति के—१. त्वरितगति, २. क्षिप्रगति, ३. सिंहगति, ४. सिंहविक्रमगति।
अमितवाहन के—१. त्वरितगति, २. क्षिप्रगति, ३. सिंहविक्रमगति, ४. सिंहगति।
वेलम्ब के—१. काल, २. महाकाल, ३. अंजन, ४. रिष्ट।
प्रभंजन के—१. काल, २. महाकाल, ३. रिष्ट ४. अंजन।
घोष के—१. आवर्त २. व्यावर्त ३. नन्दिकावर्त, ४. महानन्दिकावर्त।
महाघोष के—१. आवर्त, २. व्यावर्त, ३. महानन्दिकावर्त, ४. नन्दिकावर्त।
इसी प्रकार शक्रेन्द्र के—१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण।
ईशानेन्द्र के—१.सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण।

तथा आगे एकान्तरित यावत् अच्युतेन्द्र के चार-चार लोकपाल कहे गये हैं। अर्थात्—माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार, आरण और अच्युत के—१. सोम, २. यम, ३. वरुण, ४. वैश्रवण ये चार-चार लोकपाल हैं (१२२)।

विवेचन—यहां इतना विशेष ज्ञातव्य है कि दक्षिणेन्द्र के तीसरे लोकपाल का जो नाम है, वह उत्तरेन्द्र के चौथे लोकपाल का नाम है। इसी प्रकार शक्रेन्द्र के जिस नाम वाले लोकपाल हैं उसी नाम वाले सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, शुक्र और प्राणतेन्द्र के लोकपाल हैं। तथा ईशानेन्द्र के जिस नाम-वाले लोकपाल हैं, उसी नामवाले माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार और अच्युतेन्द्र के लोकपाल हैं।

देव-सूत्र

१२३—चउव्विहा वाउकुमारा पण्णत्ता, तं जहा—काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

वायुकुमार चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. काल, २. महाकाल, ३. वेलम्ब, ४. प्रभंजन। (ये चार पातालकलशों के स्वामी हैं (१२३)।)

१२४—चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, विमाणवासी।

देव चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. भवनवासी, २. वानव्यन्तर, ३. ज्योतिष्क, ४. विमानवासी (१२४)।

प्रमाण-सूत्र

१२५—चउव्विहे पमाणे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वप्पमाणे, खेत्तप्पमाणे, कालप्पमाणे, भावप्पमाणे।

६. सत्यप्रवाद पूर्व—इसमें दश प्रकार के सत्य वचन, अनेक प्रकार के असत्य वचन, बारह प्रकार की भाषा, तथा उच्चारण के शब्दों के स्थान, प्रयत्न, वाक्य-संस्कार आदि का विस्तृत विवेचन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ छह है।

७. आत्मप्रवाद पूर्व—इसमें आत्मा के कर्तृत्व, भोक्तृत्व, अमूर्तत्व आदि अनेक धर्मों का वर्णन है। इसकी पद-संख्या छब्बीस करोड़ है।

८. कर्मप्रवाद पूर्व—इसमें कर्मों की मूल-उत्तरप्रकृतियों का, तथा उनकी बन्ध, उदय, सत्त्व, आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ अस्सी लाख है।

९. प्रत्याख्यान पूर्व—इसमें नाम, स्थापनादि निक्षेपों के द्वारा अनेक प्रकार के प्रत्याख्यानों का वर्णन है। इसकी पद-संख्या चौरासी लाख है।

१०. विद्यानुवाद पूर्व—इसमें अंगुष्ठ प्रसेनादि सात सौ लघुविद्याओंका और रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्याओं के साधन-भूत मंत्र, तंत्र आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ दश लाख है।

११. अवन्ध्य पूर्व—इसमें तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म आदि पांच कल्याणकों का, तीर्थंकर गोत्र के उपार्जन करने वाले कारणों आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या छब्बीस करोड़ है।

१२. प्राणायुपूर्व—इसमें काय-चिकित्सा आदि आयुर्वेद के आठ अंगों का, इडा, पिंगला आदि नाड़ियों का और प्राणों के उपकारक-अपकारक आदि द्रव्यों का वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ छप्पन लाख है।

१३. क्रियाविशालपूर्व—इसमें संगीत, छन्द, अलंकार, पुरुषों की ७२ कलाएं, स्त्रियों की ६४ कलाएं, शिल्प-विज्ञान आदि का और नित्य नैमित्तक हर क्रियाओं का वर्णन है। इसकी पद-संख्या नौ करोड़ है।

१४. लोकबिन्दुसार पूर्व—इसमें लोक का स्वरूप, छत्तीस परिकर्म, आठ व्यवहार और चार बीज आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या साढ़े बारह करोड़ है।

यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि सभी पूर्वों के नाम और उनके पदों की संख्या दोनों सम्प्रदायों में समान है। भेद केवल ग्यारहवें पूर्व के नाम में है। दि० शास्त्रों में उसका नाम 'कल्याणवाद' दिया गया है। तथा बारहवें पूर्व की पद-संख्या तेरह करोड़ कही गई है।

दृष्टिवाद का पांचवा भेद चूलिका है। इसके पांच भेद हैं—१. जलगता, २. स्थलगता; ३. आकाशगता, ४. मायागता और ५. रूपगता। इसमें जल, स्थल, और आकाश आदि में विचरण करने वाले प्रयोगों का वर्णन है। मायागता में नाना प्रकार के इन्द्रजालादि मायामयी योगों का और रूपगता में नाना प्रकार के रूप-परिवर्तन के प्रयोगों का वर्णन है।

पूर्वगत श्रुत विच्छिन्न हो गया है, अतएव किस पूर्व में क्या-क्या वर्णन था, इसके विषय में कहीं कुछ भिन्नता भी संभव है।

प्रायश्चित्त-सूत्र

१३२—चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—णाणपायच्छित्ते, दंसणपायच्छित्ते, चरित्त-पायच्छित्ते, वियत्तकिच्चपायच्छित्ते।

३. काल-संसार—उत्सर्पिणी आदि काल में होने वाला जीव-पुद्गल का परिभ्रमण।

४. भाव-संसार—औदयिक आदि भावों में जीवों का और वर्ण, रसादि में पुद्गलों का परिवर्तन (१३०)।

दृष्टिवाद-सूत्र

१३१—चउव्विहे दिट्ठिवाए पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मं, सुत्ताइं, पुव्वगए, अणुजोगे।

दृष्टिवाद (द्वादशांगी श्रुत का बारहवां अंग) चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. परिकर्म—इसके पढ़ने से सूत्र आदि के ग्रहण की योग्यता प्राप्त होती है।

२. सूत्र—इसके पढ़ने से द्रव्य-पर्याय-विषयक ज्ञान प्राप्त होता है।

३. पूर्वगत—इसके अन्तर्गत चौदह पूर्वों का समावेश है।

४. अनुयोग—इसमें तीर्थंकरादि शलाका पुरुषों के चरित्र वर्णित हैं।

विवेचन—शास्त्रों में अन्यत्र दृष्टिवाद के पांच भेद बताये गये हैं। १. परिकर्म, २. सूत्र, ३. प्रथमानुयोग, ४. पूर्वगत और ५. चूलिका। प्रकृत सूत्र में चतुर्थस्थान के अनुरोध से प्रारम्भ के चार भेद कहे गये हैं। परिकर्म में गणित सम्बन्धी करण-सूत्रों का वर्णन है। तथा इसके पांच भेद कहे गये हैं—१. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २. सूर्यप्रज्ञप्ति, ३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४. द्वीप-सागरप्रज्ञप्ति और ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति। इनमें चन्द्र-सूर्यादिसम्बन्धी विमान, आयु, परिवार, गमन आदि का वर्णन किया गया है।

दृष्टिवाद के दूसरे भेद सूत्र में ३६३ मिथ्यामतों का पूर्वपक्ष बता कर उनका निराकरण किया गया है।

दृष्टिवाद के तीसरे भेद प्रथमानुयोग में ६३ शालाका पुरुषों के चरित्रों का वर्णन किया गया है।

दृष्टिवाद के चौथे भेद में चौदह पूर्वोका वर्णन है। उनके नाम और वर्ण्य विषय इस प्रकार हैं—

१. उत्पादपूर्व—इसमें प्रत्येक द्रव्य के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और उनके संयोगी धर्मों का वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ है।

२. आग्रायणीयपूर्व—इसमें द्वादशाङ्ग में प्रधानभूत सात सौ सुनय, दुर्नय, पंचास्तिकाय, सप्त तत्त्व आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या छयानवे लाख है।

३. वीर्यानुवाद पूर्व—इससे आत्मवीर्य, परवीर्य, कालवीर्य, तपोवीर्य, द्रव्यवीर्य, गुणवीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्यों का वर्णन है। इसकी पदसंख्या सत्तर लाख है।

४. अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व—इसमें प्रत्येक द्रव्य के धर्मों का स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, आदि सप्त भंगों का प्रमाण और नय के आश्रित वर्णन है। इसकी पद-संख्या साठ लाख है।

५. ज्ञान-प्रवाद पूर्व—इसमें ज्ञान के भेद-प्रभेदों का स्वरूप, संख्या, विषय और फलादि की अपेक्षा से विस्तृत वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक कम एक करोड़ (९९९९९९९) है।

६. सत्यप्रवाद पूर्व—इसमें दश प्रकार के सत्य वचन, अनेक प्रकार के असत्य वचन, बारह प्रकार की भाषा, तथा उच्चारण के शब्दों के स्थान, प्रयत्न, वाक्य-संस्कार आदि का विस्तृत विवेचन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ छह है।

७. आत्मप्रवाद पूर्व—इसमें आत्मा के कर्तृत्व, भोक्तृत्व, अमूर्तत्व आदि अनेक धर्मों का वर्णन है। इसकी पद-संख्या छब्बीस करोड़ है।

८. कर्मप्रवाद पूर्व—इसमें कर्मों की मूल-उत्तरप्रकृतियों का, तथा उनकी बन्ध, उदय, सत्त्व, आदि अवस्थाओं का वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ अस्सी लाख है।

९. प्रत्याख्यान पूर्व—इसमें नाम, स्थापनादि निक्षेपों के द्वारा अनेक प्रकार के प्रत्याख्यानों का वर्णन है। इसकी पद-संख्या चौरासी लाख है।

१०. विद्यानुवाद पूर्व—इसमें अंगुष्ठ प्रसेनादि सात सौ लघुविद्याओंका और रोहिणी आदि पांच सौ महाविद्याओं के साधन-भूत मंत्र, तंत्र आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ दश लाख है।

११. अवन्ध्य पूर्व—इसमें तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म आदि पांच कल्याणकों का, तीर्थंकर गोत्र के उपार्जन करने वाले कारणों आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या छब्बीस करोड़ है।

१२. प्राणायुपूर्व—इसमें काय-चिकित्सा आदि आयुर्वेद के आठ अंगों का, इडा, पिंगला आदि नाड़ियों का और प्राणों के उपकारक-अपकारक आदि द्रव्यों का वर्णन है। इसकी पद-संख्या एक करोड़ छप्पन लाख है।

१३. क्रियाविशालपूर्व—इसमें संगीत, छन्द, अलंकार, पुरुषों की ७२ कलाएं, स्त्रियों की ६४ कलाएं, शिल्प-विज्ञान आदि का और नित्य नैमित्तक हर क्रियाओं का वर्णन है। इसकी पद-संख्या नौ करोड़ है।

१४. लोकबिन्दुसार पूर्व—इसमें लोक का स्वरूप, छत्तीस परिकर्म, आठ व्यवहार और चार बीज आदि का वर्णन है। इसकी पद-संख्या साढ़े बारह करोड़ है।

यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि सभी पूर्वों के नाम और उनके पदों की संख्या दोनों सम्प्रदायों में समान है। भेद केवल ग्यारहवें पूर्व के नाम में है। दि० शास्त्रों में उसका नाम 'कल्याणवाद' दिया गया है। तथा बारहवें पूर्व की पद-संख्या तेरह करोड़ कही गई है।

दृष्टिवाद का पांचवा भेद चूलिका है। इसके पांच भेद हैं—१. जलगता, २. स्थलगता; ३. आकाशगता, ४. मायागता और ५. रूपगता। इसमें जल, स्थल, और आकाश आदि में विचरण करने वाले प्रयोगों का वर्णन है। मायागता में नाना प्रकार के इन्द्रजालादि मायामयी योगों का और रूपगता में नाना प्रकार के रूप-परिवर्तन के प्रयोगों का वर्णन है।

पूर्वगत श्रुत विच्छिन्न हो गया है, अतएव किस पूर्व में क्या-क्या वर्णन था, इसके विषय में कहीं कुछ भिन्नता भी संभव है।

प्रायश्चित्त-सूत्र

१३२—चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—णाणपायच्छित्ते, दंसणपायच्छित्ते, चरित्त-पायच्छित्ते, वियत्तकिच्चपायच्छित्ते।

प्रायश्चित्त चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. ज्ञान-प्रायश्चित्त, २. दर्शन-प्रायश्चित्त, ३. चारित्र-प्रायश्चित्त, ४. व्यक्तकृत्य-प्रायश्चित्त।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने इनके स्वरूपों का दो प्रकार से निरूपण किया है।

प्रथम प्रकार—ज्ञान के द्वारा चित्त की शुद्धि और पापों का विनाश होता है, अतः ज्ञान ही प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र के द्वारा चित्त की शुद्धि और पापों का विनाश है, अतः वे ही प्रायश्चित्त हैं। व्यक्त अर्थात्—भाव से गीतार्थ साधु के सभी कार्य सदा सावधान रहने से पाप-विनाशक होते हैं, अतः वह स्वयं-प्रायश्चित्त है।

द्वितीय प्रकार—ज्ञान की आराधना करने में जो अतिचार लगते हैं, उनकी शुद्धि करना ज्ञान-प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार दर्शन और चारित्र की आराधना करते समय लगने वाले अतिचारों की शुद्धि करना दर्शन-प्रायश्चित्त और चारित्र-प्रायश्चित्त है।

'वियत्तकिच्च' पद का पूर्वोक्त अर्थ 'व्यक्तकृत्य' संस्कृत रूप मानकर के किया गया है। उन्होंने 'यद्वा' कह कर उसी पद का दूसरा संस्कृत रूप 'विदत्तकृत्य' मान कर यह किया है कि किसी अपराध-विशेष का प्रायश्चित्त यदि तत्कालीन प्रायश्चित्त ग्रन्थों में नहीं भी कहा गया हो तो गीतार्थ साधु मध्यस्थ भाव से जो कुछ भी प्रायश्चित्त देता है, वह 'विदत्त' अर्थात् विशेष रूप से दिया गया प्रायश्चित्त 'वियत्तकिच्च' (विदत्तकृत्य) प्रायश्चित्त कहलाता है। संस्कृत टीकाकार के सम्मुख 'चियत्तकिच्च' पाठ भी रहा है, अतः उसका अर्थ—'प्रीतिकृत्य' करके प्रीतिपूर्वक वैयावृत्य आदि करने को 'चियत्तकिच्च' प्रायश्चित्त कहा है।

१३३—चउव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—पडिसेवणापायच्छित्ते, संजोयणापायच्छित्ते, आरोवणापायच्छित्ते, पलिउंचणापायच्छित्ते।

पुनः प्रायश्चित्त चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रतिसेवना-प्रायश्चित्त, २. संयोजना-प्रायश्चित्त, ३. आरोपणा-प्रायश्चित्त, ४. परिकुंचना-प्रायश्चित्त।

विवेचन—गृहीत मूलगुण या उत्तर गुण की विराधना करने वाले या उसमें अतिचार लगाने वाले कार्य का सेवन करने पर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह प्रतिसेवना-प्रायश्चित्त है। एक जाति के अनेक अतिचारों के मिलाने को यहां संयोजना-दोष कहते हैं। जैसे—शय्यातर के यहां की भिक्षा लेना एक दोष है। वह भी गीले हाथ आदि से लेना दूसरा दोष है, और वह भिक्षा भी आधाकर्मिक होना, तीसरा दोष है। इस प्रकार से अनेक सम्मिलित दोषों के लिए जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह संयोजना-प्रायश्चित्त कहलाता है। एक अपराध का प्रायश्चित्त चलते समय पुनः उसी अपराध के करने पर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, अर्थात् पूर्वप्रदत्त प्रायश्चित्त की जो सीमा बढ़ाई जाती है, उसे आरोपणा-प्रायश्चित्त कहते हैं। अन्य प्रकार से किये गये अपराध को अन्य प्रकार से गुरु के सम्मुख कहने को परिकुंचना (प्रवंचना) कहते हैं। ऐसे दोष की शुद्धि के लिए जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह परिकुंचनाप्रायश्चित्त कहलाता है। इन प्रायश्चित्तों का विस्तृत विवेचन प्रायश्चित्त सूत्रों से जानना चाहिए।

काल-सूत्र

१३४—चउव्विहे काले पण्णत्ते, सं जहा—पमाणकाले, अहाउयनिव्वत्तिकाले, मरणकाले, अद्धाकाले।

काल चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रमाणकाल—समय, आवलिका, यावत् सागरोपम का विभाग रूपकाल।
२. यथायुनिवृत्तिकाल—आयुष्य के अनुसार नरक आदि में रहने का काल।
३. मरण-काल—मृत्यु का समय (जीवन का अन्त-काल)।
४. अद्धाकाल—सूर्य के परिभ्रमण से ज्ञात होने वाला काल।

पुद्गल-परिणाम-सूत्र

१३५—चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—वण्णपरिणामे, गंधपरिणामे, रस-परिणामे, फासपरिणामे।

पुद्गल का परिणाम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. वर्ण-परिणाम—श्वेत, रक्त आदि रूपों का परिवर्तन।
२. गन्ध-परिणाम—सुगन्ध-दुर्गन्ध रूप गन्ध का परिवर्तन।
३. रस-परिणाम—आम्ल, मधुर आदि रसों का परिवर्तन।
४. स्पर्श-परिणाम—स्निग्ध, रूक्ष आदि स्पर्शों का परिवर्तन (१३५)।

चातुर्याम-परिणाम-सूत्र

१३६—भरहेरवएसु णं वासेसु पुरिम-पच्छिम-वज्जा मज्झिमगा बावीसं अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवेंति, तं जहा—सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं, एवं सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर को छोड़कर मध्यवर्ती बाईस अर्हन्त भगवन्त चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं। जैसे—

१. सर्व प्राणातिपात (हिंसा-कर्म) से विरमण।
२. सर्व मृषावाद (असत्य-भाषण) से विरमण।
३. सर्व अदत्तादान (चौर-कर्म) से विरमण।
४. सर्व बाह्य (वस्तुओं के) आदान से विरमण (१३६)।

१३७—सव्वेसु णं महाविदेहेसु अरहंता भगवंतो चाउज्जामं धम्मं पण्णवयंति, तं जहा—सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं, जाव [सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं], सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं।

सभी महाविदेह क्षेत्रों में अर्हन्त भगवन्त चातुर्याम धर्म का उपदेश देते हैं जैसे—

१. सर्व प्राणातिपात से विरमण। २. सर्व मृषावाद से विरमण।

३. सर्व अदत्तादान से विरमण। ४. सर्व बाह्य-आदान से विरमण (१३७)।

दुर्गति-सुगति-सूत्र

१३८—चत्तारि दुग्गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णेरइयदुग्गती, तिरिक्खजोणियदुग्गती, मणुस्सदुग्गती, देवदुग्गती।

दुर्गतियाँ चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. नैरयिक-दुर्गति, २. तिर्यग्-योनिक्-दुर्गति, ३. मनुष्य-दुर्गति, ४. देव-दुर्गति (१३८)।

१३९—चत्तारि सोग्गईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सिद्धसोग्गती, देवसोग्गती, मणुयसोग्गती, सुकुलपच्चायाती।

सुगतियां चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. सिद्ध सुगति, २. देव सुगति, ३. मनुष्य सुगति, ४. सुकुल-उत्पत्ति (१३९)।

१४०—चत्तारि दुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—णेरइयदुग्गता, तिरिक्खजोणियदुग्गता, मणुयदुग्गता, देवदुग्गता।

दुर्गत (दुर्गति में उत्पन्न होने वाले जीव) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. नैरयिक-दुर्गत, २. तिर्यग्योनिक-दुर्गत, ३. मनुष्य-दुर्गत, ४. देव-दुर्गत (१४०)।

१४१—चत्तारि सुग्गता पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धसुग्गता, जाव [देवसुग्गता, मणुयसुग्गता], सुकुलपच्चायाया।

सुगत (सुगति में उत्पन्न होने वाले जीव) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धसुगत, २. देवसुगत, ३. मनुष्यसुगत, ४, सुकुल-उत्पन्न जीव (१४१)।

कर्मांश-सूत्र

१४२—पढमसमयजिणस्स णं चत्तारि कम्मंसा खीणा भवंति, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, मोहणिज्जं, अंतराइयं।

प्रथम समयवर्ती केवली जिनके चार (सत्कर्म कर्मांश-सत्ता में स्थित कर्म) क्षीण हो चुके होते हैं। जैसे—

१. ज्ञानावरणीय सत्-कर्म, २. दर्शनावरणीय सत्-कर्म, ३. मोहनीय सत्-कर्म, ४. आन्तरायिक सत्-कर्म (१४२)।

१४३—उप्पण्णणाणदंसणधरे णं अरहा जिणे केवली चत्तारि कम्मंसे वेदेति, तं जहा—वेदणिज्जं, आउयं, णामं, गोतं।

उत्पन्न हुए केवलज्ञान-दर्शन के धारक केवली जिन अर्हन्त चार सत्कर्मों का वेदन करते हैं। जैसे—

१. वेदनीय कर्म, २. आयु कर्म, २. नाम कर्म, ४. गोत्र कर्म (१४३)।

१४४—पढमसमयसिद्धस्स णं चत्तारि कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोतं।

प्रथम समयवर्ती सिद्ध के चार सत्कर्म एक साथ क्षीण होते हैं। जैसे—

१. वेदनीय कर्म, २. आयु कर्म, ३. नाम कर्म, ४. गोत्र कर्म (१४४)।

हास्योत्पत्ति-सूत्र

१४५—चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती सिया, तं जहा—पासेत्ता, भासेत्ता, सुणेत्ता, संभरेत्ता।

चार कारणों से हास्य की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१. देख कर—नट, विदूषक आदि की चेष्टाओं को देख करके।
२. बोल कर—किसी के बोलने की नकल करने से।
३. सुन कर—हास्योत्पादक वचन सुनकर।
४. स्मरण कर—हास्यजनक देखी या सुनी बातों को स्मरण करने से (१४५)।

अंतर-सूत्र

१४६—चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—कट्ठंतरे, पम्हंतरे, लोहंतरे, पत्थरंतरे।

एवामेव इत्थीए वा पुरिसस्स वा चउव्विहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा—कट्ठंतरसमाणे, पम्हंतर-समाणे, लोहंतरसमाणे, पत्थरंतरसमाणे।

अन्तर चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. काष्ठान्तर—एक काष्ठ से दूसरे काष्ठ का अन्तर, रूप-निर्माण आदि की अपेक्षा से।
२. पक्ष्मान्तर—धागे से धागे का अन्तर, विशिष्ट कोमलता आदि की अपेक्षा से।
३. लोहान्तर—छेदन-शक्ति की अपेक्षा से।
४. प्रस्तरान्तर—सामान्य पाषाण से हीरा-पन्ना आदि विशिष्ट पाषाण की अपेक्षा से।

इसी प्रकार स्त्री से स्त्री का और पुरुष से पुरुष का अन्तर भी चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. काष्ठान्तर के समान—विशिष्ट पद आदि की अपेक्षा से।
२. पक्ष्मान्तर के समान—वचन-मृदुता आदि की अपेक्षा से।
३. लोहान्तर के समान—स्नेहच्छेदन आदि की अपेक्षा से।
४. प्रस्तरान्तर के समान—विशिष्ट गुणों आदि की अपेक्षा से (१४६)।

भृतक-सूत्र

१४७—चत्तारि भयगा पण्णत्ता, तं जहा—दिवसभयए, जत्ताभयए, उच्चत्तभयए, कब्बाल-भयए।

भृतक (सेवक) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. दिवस-भृतक—प्रतिदिन का नियत पारिश्रमिक लेकर कार्य करने वाला।
२. यात्रा-भृतक—यात्रा (देशान्तरगमन) काल का सेवक—सहायक।
३. उच्चत्व-भृतक—नियत कार्य का ठेका लेकर कार्य करने वाला।
४. कब्बाड-भृतक—नियत भूमि आदि खोदकर पारिश्रमिक लेने वाला। जैसे ओड आदि (१४७)।

प्रतिसेवि-सूत्र

१४८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—संपागडपडिसेवी णामेगे णो पच्छण्णपडिसेवी, पच्छण्णपडिसेवी णामेगे णो संपागडपडिसेवी, एगे संपागडपडिसेवी वि पच्छण्णपडिसेवी वि, एगे णो संपागडपडिसेवी णो पच्छण्णपडिसेवी।

दोष-प्रतिसेवी पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सम्प्रकट-प्रतिसेवी—प्रकट रूप से दोष सेवन करने वाला होता है, किन्तु प्रच्छन्न-प्रतिसेवी—गुप्त रूप से दोषसेवी नहीं होता।
२. कोई पुरुष प्रच्छन्न-प्रतिसेवी होता है, किन्तु सम्प्रकट-प्रतिसेवी नहीं होता।
३. कोई पुरुष सम्प्रकट-प्रतिसेवी भी होता है और प्रच्छन्न-प्रतिसेवी भी होता है।
४. कोई पुरुष न सम्प्रकट-प्रतिसेवी होता है और न प्रच्छन्न-प्रतिसेवी ही होता है (१४८)।

अग्रमहिषी-सूत्र

१४९—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कणगा, कणगलता, चित्तगुत्ता, वसुंधरा।

असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल सोम महाराज की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. कनका, २. कनकलता, ३. चित्रगुप्ता, ४. वसुन्धरा (१४९)।

१५०—एवं जमस्स वरुणस्स वेसमणस्स।

इसी प्रकार यम, वरुण और वैश्रवण लोकपालों की भी चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१५०)।

१५१—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मितगा, सुभद्दा, विज्जुता, असणी।

वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के लोकपाल सोम महाराज की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. मितका, २ सुभद्रा, ३. विद्युत, ४. अशनि (१५१)।

१५२—एवं जमस्स वेसमणस्स वरुणस्स।

इसी प्रकार यम, वैश्रवण और वरुण लोकपालों की भी चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१५२)।

१५३—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—असोगा, विमला, सुप्पभा, सुदंसणा॥

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण लोकपाल महाराज कालपाल की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. अशोका, २. विमला, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना (१५३)।

१५४—एवं जाव संखवालस्स।

इसी प्रकार शंखपाल तक के शेष लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१५४)।

१५५—भूताणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सुणंदा, सुभद्दा, सुजाता, सुमणा।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द के लोकपाल महाराज कालपाल की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. सुनन्दा, २. सुभद्रा, ३. सुजाता, ४. सुमना (१५५)।

१५६—एवं जाव सेलवालस्स।

इसी प्रकार सेलपाल तक के शेष लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१५६)।

१५७—जहा धरणस्स एवं सव्वेसिं दाहिणिंदलोगपालाणं जाव घोसस्स।

जैसे धरण के लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, उसी प्रकार सभी दक्षिणेन्द्र—वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष के लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. अशोका, २. विमला, ३. सुप्रभा, ४. सुदर्शना (१५७)।

१५८—जहा भूताणंदस्स एवं जाव महाघोसस्स लोगपालाणं।

जैसे भूतानन्द के लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, उसी प्रकार शेष सभी

उत्तर दिशा के इन्द्र—वेणुदालि, अग्निमाणव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन, और महाघोष के लोकपालों के चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. सुनन्दा, २. सुप्रभा, ३. सुजाता, ४. सुमना (१५८)।

१५९—कालस्स णं पिसाइंदस्स पिसायरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा कमला, कमलप्पभा, उप्पला, सुदंसणा।

पिशाचराज पिशाचेन्द्र काल की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. कमला, २. कमलप्रभा, ३. उत्पला, ४. सुदर्शना (१५९)।

१६०—एवं महाकालस्सवि।

इसी प्रकार महाकाल की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१६०)।

१६१—सुरूवस्स णं भूतिंदस्स भूतरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रूववती, बहुरूवा, सुरूवा, सुभगा।

भूतराज भूतेन्द्र सुरूप की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. रूपवती, २. बहुरूपा, ३. सुरूपा, ४. सुभगा (१६१)।

१६२—एवं पडिरूवस्सवि।

इसी प्रकार प्रतिरूप की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१६२)।

१६३—पुण्णभद्दस्स णं जक्खिंदस्स जक्खरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा पुण्णा, बहुपुण्णिता, उत्तमा, तारगा।

यक्षराज यक्षेन्द्र पूर्णभद्र की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. पूर्णा, २. बहुपूर्णिका, ३. उत्तमा, ४. तारका (१६३)।

१६४—एवं माणिभद्दस्सवि।

इसी प्रकार माणिभद्र की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१६४)।

१६५—भीमस्स णं रक्खसिंदस्स रक्खसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पउमा, वसुमती, कणगा, रतणप्पभा।

राक्षसराज राक्षसेन्द्र भीम की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. पद्मा, २. वसुमती, ३. कनका, ४. रत्नप्रभा (१६५)।

१६६—एवं महाभीमसस्सवि।

इसी प्रकार महाभीम की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१६६)।

१६७—किण्णरस्स णं किण्णरिंदस्स [किण्णररण्णो] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—वडेंसा, केतुमती, रतिसेणा, रतिप्पभा।

किन्नरराज किन्नरेन्द्र किन्नर की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. अवतंसा, २. केतुमती, ३. रतिसेना, ४. रतिप्रभा (१६७)।

१६८—एवं किंपुरिसस्सवि।

इसी प्रकार किंपुरुष की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१६८)।

१६९—सप्पुरिसस्स णं किंपुरिसिंदस्स [किंपुरिसरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रोहिणी, णवमिता, हिरी, पुप्फवती।

किंपुरुषराज किंपुरुषेन्द्र सत्पुरुष की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. रोहिणी, २. नवमिता, ३. ह्री, ४. पुष्पवती (१६९)।

१७०—एवं महापुरिसस्सवि।

इसी प्रकार महापुरुष की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१७०)।

१७१—अतिकायस्स णं महोरगिंदस्स [महोरगरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भुयगा, भुयगावती, महाकच्छा, फुडा।

महोरगराज महोरगेन्द्र अतिकाय की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. भुजगा, २. भुजगवती, ३. महाकक्षा, ४. स्फुटा (१७१)।

१७२—एवं महाकायस्सवि।

इसी प्रकार महाकाय की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१७२)।

१७३—गीतरतिस्स णं गंधव्विंदस्स [गंधव्वरण्णो ?] चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सुघोसा, विमला, सुस्सरा, सरस्सती।

गन्धर्वराज गन्धर्वेन्द्र गीतरति की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. सुघोषा, २. विमला, ३. सुस्वरा ४. सरस्वती (१७३)।

१७४—एवं गीयजसस्सवि।

इसी प्रकार गीतयश की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१७४)।

१७५—चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा।

ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. चन्द्रप्रभा, २. ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमालिनी, ४. प्रभंकरा (१७५)।

१७६—एवं सूरस्सवि, णवरं—सूरप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा।

इसी प्रकार ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र सूर्य की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। केवल नाम इस प्रकार हैं—१. सूर्यप्रभा २. ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमिलिनी, ४. प्रभंकरा (१७६)।

१७७—इंगालस्स णं महागहस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया।

महाग्रह अंगार की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता (१७७)।

१७८—एवं सव्वेसिं महग्गहाणं जाव भावकेउस्स।

इसी प्रकार भावकेतु तक के सभी महाग्रहों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१७८)।

१७९—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रोहिणी, मयणा, चित्ता, सामा।

देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल महाराज सोम की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. रोहिणी, २, मदना, ३. चित्रा, ४. सोमा (१७९)।

१८०—एवं जाव वेसमणस्स।

इसी प्रकार वैश्रवण तक के सभी लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१८०)।

१८१—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुढवी, राती, रयणी, विज्जू।

देवराज देवेन्द्र ईशान के लोकपाल महाराजा सोम की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. पृथ्वी, २. रात्रि, ३. रजनी, ४. विद्युत् (१८१)।

१८२—एवं जाव वरुणस्स।

इसी प्रकार वरुण तक के सभी लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१८२)।

१७५—चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—चंदप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा।

ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. चन्द्रप्रभा, २. ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमालिनी, ४. प्रभंकरा (१७५)।

१७६—एवं सूरस्सवि, णवरं—सूरप्पभा, दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा।

इसी प्रकार ज्योतिष्कराज ज्योतिष्केन्द्र सूर्य की भी चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। केवल नाम इस प्रकार हैं—१. सूर्यप्रभा २. ज्योत्स्नाभा, ३. अर्चिमिलिनी, ४. प्रभंकरा (१७६)।

१७७—इंगालस्स णं महागहस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिया।

महाग्रह अंगार की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता (१७७)।

१७८—एवं सव्वेसिं महग्गहाणं जाव भावकेउस्स।

इसी प्रकार भावकेतु तक के सभी महाग्रहों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१७८)।

१७९—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रोहिणी, मयणा, चित्ता, सामा।

देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल महाराज सोम की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. रोहिणी, २, मदना, ३. चित्रा, ४. सोमा (१७९)।

१८०—एवं जाव वेसमणस्स।

इसी प्रकार वैश्रवण तक के सभी लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१८०)।

१८१—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुढवी, राती, रयणी, विज्जू।

देवराज देवेन्द्र ईशान के लोकपाल महाराजा सोम की चार अग्रमहिषियां कही गई हैं, जैसे—

१. पृथ्वी, २. रात्रि, ३. रजनी, ४. विद्युत् (१८१)।

१८२—एवं जाव वरुणस्स।

इसी प्रकार वरुण तक के सभी लोकपालों की चार-चार अग्रमहिषियां कही गई हैं (१८२)।

विकृति-सूत्र

१८३—चत्तारि गोरसविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खीरं, दहिं, सप्पिं, णवणीतं।

चार गोरस सम्बन्धी विकृतियां कही गई हैं, जैसे—
१. क्षीर (दूध), २. दही, ३. घी, ४. नवनीत (मक्खन) (१८३)।

१८४—चत्तारि सिणेहविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तेल्लं, घयं, वसा, णवणीतं।

चार स्नेह (चिकनाई) वाली विकृतियां कही गई हैं, जैसे—
१. तेल, २. घी, ३. वसा (चर्बी), ४. नवनीत (१८४)।

१८५—चत्तारि महाविगतीओ, तं जहा—महुं, मंसं, मज्जं, णवणीतं।

चार महाविकृतियां कही गई हैं, जैसे—
१. मधु, २. मांस, ३. मद्य, ४. नवनीत (१८५)।

गुप्त-अगुप्त-सूत्र

१८६—चत्तारि कूडागारा पण्णत्ता, तं जहा—गुत्ते णामं एगे गुत्ते, गुत्ते णामं एगे अगुत्ते, अगुत्ते णामं एगे गुत्ते, अगुत्ते णामं एगे अगुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गुत्ते णामं एगे गुत्ते, गुत्ते णामं एगे अगुत्ते, अगुत्ते णामं एगे गुत्ते, अगुत्ते णामं एगे अगुत्ते।

चार प्रकार के कूटागार (शिखर वाले घर अथवा प्राणियों के बन्धनस्थान) कहे गये हैं, जैसे—

१. गुप्त होकर गुप्त—कोई कूटागार परकोटे से भी घिरा होता है और उसके द्वार भी बन्द होते हैं अथवा काल की दृष्टि से पहले भी बन्द, बाद में भी बन्द।

२. गुप्त होकर अगुप्त—कोई कूटागार परकोटे से तो घिरा होता है, किन्तु उसके द्वार बन्द नहीं होते।

३. अगुप्त होकर गुप्त—कोई कूटागार परकोटे से घिरा नहीं होता, किन्तु उसके द्वार बन्द होते हैं।

४. अगुप्त होकर अगुप्त—कोई कूटागार न परकोटे से घिरा होता है और न उसके द्वार ही बन्द होते हैं।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. गुप्त होकर गुप्त—कोई पुरुष वस्त्रों की वेष-भूषा से भी गुप्त (ढंका) होता है और उसकी इन्द्रियां भी गुप्त (वशीभूत—काबू में) होती हैं।

२. गुप्त होकर अगुप्त—कोई पुरुष वस्त्र से गुप्त होता है, किन्तु उसकी इन्द्रियां गुप्त नहीं होती।

३. अगुप्त होकर गुप्त—कोई पुरुष वस्त्र से अगुप्त होता है, किन्तु उसकी इन्द्रियां गुप्त होती हैं।

४. अगुप्त होकर अगुप्त--कोई पुरुष न वस्त्र से ही गुप्त होता है और न उसकी इन्द्रियां गुप्त होती हैं (१८६)।

१८७—चत्तारि कूडागारसालाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा, गुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा, अगुत्ता णाममेगा गुत्तदुवारा, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तदुवारा।

एवामेव चत्तारित्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया, गुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया, अगुत्ता णाममेगा गुत्तिंदिया, अगुत्ता णाममेगा अगुत्तिंदिया।

चार प्रकार की कूटागार-शालाएं कही गई हैं, जैसे--

१. गुप्त होकर गुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला परकोटे से गुप्त और गुप्त द्वार वाली होती है।

२. गुप्त होकर अगुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला परकोटे से गुप्त, किन्तु अगुप्त द्वारवाली होती है।

३. अगुप्त होकर गुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला परकोटे से अगुप्त, किन्तु गुप्तद्वार वाली होती है।

४. अगुप्त होकर अगुप्तद्वार—कोई कूटागार-शाला न परकोटे वाली होती है और न उसके द्वार ही गुप्त होते हैं।

इसी प्रकार स्त्रियां भी चार प्रकार की कही गई हैं, जैसे—

१. गुप्त होकर गुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से भी गुप्त होती है और गुप्त इन्द्रिय वाली भी होती है।

२. गुप्त होकर अगुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से गुप्त होकर भी गुप्त इन्द्रियवाली नहीं होती।

३. अगुप्त होकर गुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री वस्त्र से अगुप्त होकर भी गुप्त इन्द्रियवाली होती है।

४. अगुप्त होकर अगुप्तेन्द्रिय—कोई स्त्री न वस्त्र से गुप्त होती है और न उसकी इन्द्रियां ही गुप्त होती है (१८७)।

अवगाहना सूत्र

१८८—चउव्विहा ओगाहणा पण्णत्ता, तं जहा—दव्वोगाहणा, खेत्तोगाहणा, कालोगाहणा, भावोगाहणा।

अवगाहना चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. द्रव्यावगाहना, २. क्षेत्रावगाहना, ३. कालावगाहना, ४. भावावगाहना (१८८)।

विवेचन—जिसमें जीवादि द्रव्य अवगाहन करें, रहें या आश्रय को प्राप्त हों, उसे अवगाहना कहते हैं। जिस द्रव्य का जो शरीर या आकार है, वही उसकी द्रव्यावगाहना है। अथवा विवक्षित द्रव्य के आधारभूत आकाश-प्रदेशों में द्रव्यों की जो अवगाहना है, वही द्रव्यावगाहना है। इसी प्रकार आकाशरूप क्षेत्र को क्षेत्रावगाहना, मनुष्यक्षेत्ररूप समय की अवगाहना को कालावगाहना और भाव (पर्यायों) वाले द्रव्यों की अवगाहना को भावावगाहना जानना चाहिए।

प्रज्ञप्ति-सूत्र

१८९—चत्तारि पण्णत्तीओ अंगबाहिरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—चंदपण्णत्ती, सूरपण्णत्ती, जंबुद्दीवपण्णत्ती, दीवसागरपण्णत्ती।

चार अंगबाह्य-प्रज्ञप्तियां कही गई हैं, जैसे—

१. चन्द्रप्रज्ञप्ति, २. सूर्यप्रज्ञप्ति, ३. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (१८९)।

विवेचन—यद्यपि पांचवीं व्याख्याप्रज्ञप्ति कही गई है, किन्तु उसके अंगप्रविष्ट में परिगणित होने से उसे यहां नहीं कहा गया है। इनमें सूर्यप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पंचम और षष्ठ अंग की उपाङ्ग रूप हैं और शेष दोनों प्रकीर्णक रूप कही गई हैं।

॥ चतुर्थ स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त ॥

चतुर्थ स्थान

द्वितीय उद्देश

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-सूत्र

१६०—चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—कोहपडिसंलीणे, माणपडिसंलीणे, मायापडिसंलीणे, लोभपडिसंलीणे।

प्रतिसंलीन चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. क्रोध-प्रतिसंलीन, २. मान-प्रतिसंलीन, ३. माया-प्रतिसंलीन, ४. लोभ-प्रतिसंलीन (१६०)।

१६१—चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—कोहअपडिसंलीणे जाव (माणअपडिसंलीणे, मायाअपडिसंलीणे,) लोभअपडिसंलीणे।

अप्रतिसंलीन चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. क्रोध-अप्रतिसंलीन, २. मान-अप्रतिसंलीन, ३. माया-अप्रतिसंलीन ४. लोभ-अप्रतिसंलीन (१६१)।

विवेचन—किसी वस्तु के प्रतिपक्ष में लीन होने को प्रतिसंलीनता कहते हैं। और उस वस्तु में लीन होने को अप्रतिसंलीनता कहते हैं। प्रकृत में क्रोध आदि कषायों के उदय होने पर भी उसमें लीन न होना, अर्थात् क्रोधादि कषायों के होने वाले उदय का निरोध करना और उदय-प्राप्त क्रोधादि को विफल करना क्रोध-आदि प्रतिसंलीनता है। तथा क्रोध-आदि कषायों के उदय होने पर क्रोध आदि रूप परिणति रखना क्रोध आदि अप्रतिसंलीनता है। इसी प्रकार आगे कही जाने वाली मनःप्रतिसंलीनता आदि का भी अर्थ जानना चाहिए।

१६२—चत्तारि पडिसंलीणा पण्णत्ता तं जहा—मणपडिसंलीणे, वइपडिसंलीणे- कायपडिसंलीणे, इंदियपडिसंलीणे।

पुनः प्रतिसंलीन चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. मनः-प्रतिसंलीन, २. वाक्-प्रतिसंलीन, ३. काय-प्रतिसंलीन, ४. इन्द्रिय-प्रतिसंलीन (१६२)।

१६३—चत्तारि अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—मणअपडिसंलीणे, जाव (वइअपडिसंलीणे, कायअपडिसंलीणे) इंदियअपडिसंलीणे।

अप्रतिसंलीन चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. मनः-अप्रतिसंलीन, २. वाक्-प्रतिसंलीन, ३. काय-अप्रतिसंलीन, ४. इन्द्रिय-अप्रतिसंलीन (१६३)।

विवेचन—मन, वचन, काय की प्रवृत्ति में संलग्न नहीं होकर उसका निरोध करना मन, वचन, काय की प्रतिसंलीनता है। पांच इन्द्रियों के विषयों में संलग्न नहीं होना इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता है। मन, वचन, काय की तथा इन्द्रियों के विषयों की प्रवृत्ति में संलग्न होना उनकी अप्रति-संलीनता है।

दीण-अदीण-सूत्र

१९४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणे, दीणे णाममेगे अदीणे, अदीणे णाममेगे दीणे, अदीणे णाममेगे अदीणे ।।१।।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन होकर दीन—कोई पुरुष बाहर से दीन (दरिद्र) है और भीतर से भी दीन (दयनीय-मनोवृत्तिवाला) होता है।

२. दीन होकर अदीन—कोई पुरुष बाहर से दीन, किन्तु भीतर से अदीन होता है।

३. अदीन होकर दीन—कोई पुरुष बाहर से अदीन, किन्तु भीतर से दीन होता है।

४. अदीन होकर अदीन—कोई पुरुष न बाहर से दीन होता है और न भीतर से दीन होता है (१९४)।

१९५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा दीणे णाममेगे दीणपरिणते, दीणे णाममेगे अदीणपरिणते, अदीणे णाममेगे दीणपरिणते, अदीणे णाममेगे अदीणपरिणते ।।२।।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन होकर दीन-परिणत—कोई पुरुष दीन है और बाहर से भी दीन रूप से परिणत होता है।

२. दीन होकर अदीन-परिणत—कोई पुरुष दीन होकर के भी दीनरूप से परिणत नहीं होता है।

३. अदीन होकर दीन-परिणत—कोई पुरुष दीन नहीं होकर के भी दीनरूप से परिणत होता है।

४. अदीन होकर अदीन-परिणत—कोई पुरुष न दीन है और न दीनरूप से परिणत होता है (१९५)।

१९६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणरूवे, (दीणे णममेगे अदीणरूवे, अदीणे णाममेगे दीणरूवे, अदीणे णाममेगे अदीणरूवे ।।३।।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन होकर दीनरूप—कोई पुरुष दीन है और दीनरूप वाला (दीनतासूचक मलीन वस्त्र आदि वाला) होता है।

२. दीन होकर अदीनरूप—कोई पुरुष दीन है, किन्तु दीनरूप वाला नहीं होता है।

३. अदीन होकर दीनरूप--कोई पुरुष दीन न होकर के भी दीनरूप वाला होता है।
४. अदीन होकर अदीनरूप--कोई पुरुष न दीन है और न दीनरूप वाला होता है (१९६)।

१९७—एवं दीणमणे ४, दीणसंकप्पे ४, दीणपण्णे ४, दीणदिट्ठी ४, दीणसीलाचारे ४, दीणववहारे ४, एवं सव्वेसिं चउभंगो भाणियव्वो। (चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणमणे, दीणे णाममेगे अदीणमणे, अदीणे णाममेगे दीणमणे, अदीणे णाममेगे अदीणमणे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनमन—कोई पुरुष दीन है और दीन मनवाला भी होता है।
२. दीन और अदीनमन—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन मनवाला नहीं होता।
३. अदीन और दीनमन—कोई पुरुष दीन नहीं होकर के भी दीन मनवाला होता है।
४. अदीन और अदीनमन—कोई पुरुष न दीन है और न दीन मनवाला होता है (१९७)।

१९८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणसंकप्पे, दीणे णाममेगे अदीणसंकप्पे, अदीणे णाममेगे दीणसंकप्पे, अदीणे णाममेगे अदीणसंकप्पे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनसंकल्प—कोई पुरुष दीन होता है और दीन संकलपवाला भी होता है।
२. दीन और अदीन संकल्प—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन संकलपवाला नहीं होता।
३. अदीन और दीन संकल्प--कोई पुरुष दीन नहीं होकर के भी दीन संकल्पवाला होता है।
४. अदीन और अदीन संकल्प--कोई पुरुष न दीन है और न दीन संकलपवाला होता है (१९८)।

१९९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणपण्णे, दीणे णाममेगे अदीणपण्णे, अदीणे णाममेगे दीणपण्णे, अदीणे णाममेगे अदीणपण्णे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--

१. दीन और दीनप्रज्ञ--कोई पुरुष दीन है और दीन प्रज्ञावाला होता है।
२. दीन और अदीनप्रज्ञ--कोई पुरुष दीन होकर के भी दीन प्रज्ञावाला नहीं होता।
३. अदीन और दीनप्रज्ञ--कोई पुरुष दीन नहीं होकर के भी दीनप्रज्ञावाला होता है।
४. अदीन और अदीनप्रज्ञ--कोई पुरुष न दीन है और न दीनप्रज्ञावाला होता है (१९९)।

२००—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणदिट्ठी, दीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी, अदीणे णाममेगे दीणदिट्ठी, अदीणे णाममेगे अदीणदिट्ठी।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--

१. दीन और दीनदृष्टि—कोई पुरुष दीन है और दीन दृष्टिवाला होता है।
२. दीन और अदीनदृष्टि--कोई पुरुष दीन होकर भी दीनदृष्टि वाला नहीं होता है।

३. अदीन और दीनदृष्टि—कोई पुरुष दीन नहीं होकर भी दीनदृष्टि वाला होता है।

४. अदीन और अदीनदृष्टि—कोई पुरुष न दीन है और न दीनदृष्टिवाला होता है (२००)।

२०१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणसीलाचारे, दीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे, अदीणे णाममेगे दीणसीलाचारे, अदीणे णाममेगे अदीणसीलाचारे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीन शीलाचार—कोई पुरुष दीन है और दीन शील-आचार वाला है।

२. दीन और अदीन शीलाचार—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन शील-आचार वाला नहीं होता।

३. अदीन और दीन शीलाचार—कोई पुरुष दीन नहीं होकर भो दीन शील-आचार वाला होता है।

४. अदीन और अदीन शीलाचार—कोई पुरुष न दीन है और न दीन शोल-आचार वाला होता है (२०१)।

२०२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणववहारे, दीणे णाममेगे अदीणववहारे, अदीणे णाममेगे दीणववहारे, अदीणे णाममेगे अदीणववहारे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीन व्यवहार—कोई पुरुष दीन है और दोन व्यवहारवाला होता है।

२. दीन और अदीन व्यवहार—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन व्यवहारवाला नहीं होता।

३. अदीन और दीन व्यवहार—कोई पुरुष दोन नहीं होकर भो दीन व्यवहारवाला होता है।

४. अदीन और अदीन व्यवहार—कोई पुरुष न दीन है और न दीन व्यवहारवाला होता है (२०२)।

२०३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणपरक्कमे, दीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे, (अदीणे णाममेगे दीणपरक्कमे, अदीणे णाममेगे अदीणपरक्कमे।)

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनपराक्रम—कोई पुरुष दीन है और दीन पराक्रमवाला भी होता है।

२. दीन और अदीनपराक्रम—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन पराक्रमवाला नहीं होता।

३. अदीन और दीनपराक्रम—कोई पुरुष दीन नहीं होकर भी दीन पराक्रमवाला होता है।

४. अदीन और अदीनपराक्रम—कोई पुरुष न दीन है और न दीन पराक्रमवाला होता है (२०३)।

२०४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणवित्ती, दीणे णाममेगे अदीणवित्ती, अदीणे णाममेगे दीणवित्ती, अदीणे णाममेगे अदीणवित्ती।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनवृत्ति—कोई पुरुष दीन है और दीनवृत्ति (दीन जैसी आजीविका) वाला होता है।

२. दीन और अदीनवृत्ति—कोई पुरुष दीन होकर भी दीनवृत्तिवाला नहीं होता है।

३. अदीन और दीनवृत्ति—कोई पुरुष दीन नहीं होकर भी दीनवृत्तिवाला होता है।

४. अदीन और अदीनवृत्ति—कोई पुरुष न दीन है और न दीनवृत्तिवाला होता है (२०४)।

२०५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—दीणे णाममेगे दीणजाती, दीणे णाममेगे अदीणजाती, अदीणे णाममेगे दीणजाती, अदीणे णाममेगे अदीणजाती।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनजाति—कोई पुरुष दीन है और दीन जातिवाला होता है।

२. दीन और अदीनजाति—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन जातिवाला नहीं होता है।

३. अदीन और दीनजाति—कोई पुरुष दीन नहीं होकर भी दीन जातिवाला होता है।

४. अदीन और अदीनजाति—कोई पुरुष न दीन है और न दीनजातिवाला होता है[1] (२०५)।

२०६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणभासी, दीणे णाममेगे अदीणभासी, अदीणे णाममेगे दीणभासी, अदीणे णाममेगे अदीणभासी।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे

१. दीन और दीनभाषी—कोई पुरुष दीन है और दीनभाषा बोलनेवाला होता है।

२. दीन और अदीनभाषी—कोई पुरुष दीन होकर भी दीनभाषा नहीं बोलनेवाला होता है।

३. अदीन और दीनभाषी—कोई पुरुष दीन नहीं होकर भी दीनभाषा बोलनेवाला होता है।

४. अदीन और अदीनभाषी—कोई पुरुष न दीन है और न दीनभाषा बोलने वाला होता है। (२०६)।

२०७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणोभासी, दीणे णाममेगे अदीणोभासी, अदीणे णाममेगे दीणोभासी, अदीणे णाममेगे अदीणोभासी]।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनावभासी—कोई पुरुष दीन है और दीन के समान जान पड़ता है।

२. दीन और अदीनावभासी—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन नहीं जान पड़ता है।

३. अदीन और दीनावभासी—कोई पुरुष दीन नहीं होकर भी दीन जान पड़ता है।

४. अदीन और अदीनावभासी—कोई पुरुष न दीन है और न दीन जान पड़ता है (२०७)।

२०८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणसेवी, दीणे णाममेगे अदीणसेवी, अदीणे णाममेगे दीणसेवी, अदीणे णाममेगे अदीणसेवी।

---

१. संस्कृत टीकाकार ने अथवा लिखकर 'दीणजाती' पद का दूसरा संस्कृत रूप 'दीनयाची' लिखा है जिसके अनुसार दीनतापूर्वक याचना करनेवाला पुरुष होता है। तीसरा संस्कृतरूप 'दीनयायी' लिखा है, जिसका अर्थ दीनता को प्राप्त होने वाला पुरुष होता है।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनसेवी—कोई पुरुष दीन है और दीनपुरुष (नायक—स्वामी) की सेवा करता है।
२. दीन और अदीनसेवी—कोई पुरुष दीन होकर अदीन पुरुष की सेवा करता है।
३. अदीन और दीनसेवी—कोई पुरुष अदीन होकर भी दीन पुरुष की सेवा करता है।
४. अदीन और अदीनसेवी—कोई पुरुष न दीन है और न दीन पुरुष की सेवा करता है (२०८)।

२०९—एवं [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणपरियाए, दीणे णाममेगे अदीणपरियाए, अदीणे णाममेगे दीणपरियाए, अदीणे णाममेगे अदीणपरियाए।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीनपर्याय—कोई पुरुष दीन है और दीन पर्याय (अवस्था) वाला होता है।
२. दीन और अदीनपर्याय—कोई पुरुष दीन होकर भी दीन पर्यायवाला नहीं होता है।
३. अदीन और दीनपर्याय—कोई पुरुष दीन न होकर दीन पर्यायवाला होता है।
४. अदीन और अदीनपर्याय—कोई पुरुष न दीन है और न दीन पर्यायवाला होता है (२०९)।

२१०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दीणे णाममेगे दीणपरियाले, दीणे णाममेगे अदीणपरियाले, अदीणे णाममेगे दीणपरियाले, अदीणे णाममेगे अदीणपरियाले। [सव्वत्थ चउब्भंगो।]

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. दीन और दीन परिवार—कोई पुरुष दीन है और दीन परिवारवाला होता है।
२. दीन और अदीन परिवार—कोई पुरुष दीन होकर दीन परिवारवाला नहीं होता है।
३. अदीन और दीनपरिवार—कोई पुरुष दीन न होकर दीन परिवारवाला होता है।
४. अदीन और अदीन परिवार—कोई पुरुष न दीन है और न दीन परिवारवाला होता है (२१०)।

आर्य-अनार्य-सूत्र[1]

२११—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जे, अज्जे णाममेगे अणज्जे, अणज्जे णाममेगे अज्जे, अणज्जे णाममेगे अणज्जे। एवं अज्जपरिणए, अज्जरूवे अज्जमणे अज्जसंकप्पे, अज्जपण्णे अज्जदिट्ठी अज्जसीलाचारे, अज्जववहारे, अज्जपरक्कमे अज्जवित्ती, अज्जजाती, अज्जभासी अज्जोवभासी, अज्जसेवी, एवं अज्जपरियाये अज्जपरियाले एवं सत्तरसस आलावगा जहा दीणेणं भणिया तहा अज्जेण वि भाणियव्वा।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्य—कोई पुरुष जाति से भी आर्य और गुण से भी आर्य होता है।

१. जिनमें धर्म-कर्म की उत्तम प्रवृत्ति हो, ऐसे आर्यदेशोत्पन्न पुरुषों को आर्य कहते हैं। जिनमें धर्म आदि की प्रवृत्ति नहीं, ऐसे अनार्यदेशोत्पन्न पुरुषों को अनार्य कहते हैं। आर्य पुरुष क्षेत्र, जाति, कुल, कर्म शिल्प, भाषा ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अपेक्षा नौ प्रकार के कहे गये हैं। इनसे विपरीत पुरुषों को अनार्य कहा गया है।

२. आर्य और अनार्य—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु गुण से अनार्य होता है।
३. अनार्य और आर्य—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु गुण से आर्य होता है।
४. अनार्य और अनार्य—कोई पुरुषजाति से अनार्य और गुण से भी अनार्य होता है (२११)।

२१२—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जपरिणए, अज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए, अणज्जे णाममेगे अज्जपरिणए, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरिणए।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यपरिणत—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यरूप से परिणत होता है।
२. आर्य और अनार्यपरिणत—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यरूप से परिणत होता है।
३. अनार्य और आर्यपरिणत—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यरूप से परिणत होता है।
४. अनार्य और अनार्यपरिणत—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यरूप से परिणत होता है (२१२)।

२१३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जरूवे, अज्जे णाममेगे अणज्जरूवे, अणज्जे णाममेगे अज्जरूवे, अणज्जे णाममेगे अणज्जरूवे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यरूप—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यरूपवाला होता है।
२. आर्य और अनार्यरूप—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यरूपवाला होता है।
३. अनार्य और आर्यरूप—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यरूपवाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यरूप—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यरूपवाला होता है (२१३)।

२१४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जमणे, अज्जे णाममेगे अणज्जमणे, अणज्जे णाममेगे अज्जमणे, अणज्जे णाममेगे अणज्जमणे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यमन—कोई पुरुष जाति से आर्य और मन से भी आर्य होता है।
२. आर्य और अनार्यमन—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु मन से अनार्य होता है।
३. अनार्य और आर्यमन—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु मन से आर्य होता है।
४. अनार्य और अनार्यमन—कोई पुरुष जाति से अनार्य और मन से भी अनार्य होता है (२१४)।

२१५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जसंकप्पे, अज्जे णाममेगे अणज्जसंकप्पे, अणज्जे णाममेगे अज्जसंकप्पे, अणज्जे णाममेगे अणज्जसंकप्पे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्य संकल्प—कोई पुरुष जाति से आर्य और संकल्प से भी आर्य होता है।
२. आर्य और अनार्यसंकल्प—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य-संकल्प वाला होता है।
३. अनार्य और आर्यसंकल्प—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य-संकल्प वाला होता है।

४. अनार्य और अनार्यसंकल्प--कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य-संकल्पवाला होता है (२१५)।

२१६--चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अज्जे णाममेगे अज्जपण्णे, अज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे, अणज्जे णाममेगे अज्जपण्णे, अणज्जे णाममेगे अणज्जपण्णे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--

१. आर्य और आर्यप्रज्ञ--कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यप्रज्ञावाला होता है।
२. आर्य और अनार्यप्रज्ञ--कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यप्रज्ञावाला होता है।
३. अनार्य और आर्यप्रज्ञ--कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यप्रज्ञावाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यप्रज्ञ--कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यप्रज्ञावाला होता है (२१६)।

२१७--चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी, अज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी, अणज्जे णाममेगे अज्जदिट्ठी, अणज्जे णाममेगे अणज्जदिट्ठी।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--

१. आर्य और आर्यदृष्टि--कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यदृष्टिवाला होता है।
२. आर्य और अनार्यदृष्टि--कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यदृष्टिवाला होता है।
३. अनार्य और आर्यदृष्टि--कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यदृष्टिवाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यदृष्टि--कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यदृष्टिवाला होता है। (२१७)।

२१८--चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे, अज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे, अणज्जे णाममेगे अज्जसीलाचारे, अणज्जे णाममेगे अणज्जसीलाचारे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--

१. आर्य और आर्यशीलाचार--कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्य शील-आचारवाला होता है।
२. आर्य और अनार्यशीलाचार--कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यशील-आचार वाला होता है।
३. अनार्य और आर्यशीलाचार--कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यशील-आचार वाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यशीलाचार--कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यशील-आचार वाला होता है (२१८)।

२१९--चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा--अज्जे णाममेगे अज्जववहारे, अज्जे णाममेगे अणज्जववहारे, अणज्जे णाममेगे अज्जववहारे, अणज्जे णाममेगे अणज्जववहारे।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--

१. आर्य और आर्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यव्यवहार वाला होता है।
२. आर्य और अनार्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यव्यवहार वाला होता है।
३. अनार्य और आर्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यव्यवहार वाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यव्यवहार—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यव्यवहार वाला भी होता है (२१९)।

२२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जपरक्कमे, अज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कमे, अणज्जे णाममेगे अज्जपरक्कमे, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरक्कमे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यपराक्रम वाला होता है।
२. आर्य और अनार्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यपराक्रम वाला होता है।
३. अनार्य और आर्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से अनार्य किन्तु आर्यपराक्रम वाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यपराक्रम—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यपराक्रम वाला होता है (२२०)।

२२१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जवित्ती, अज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती, अणज्जे णाममेगे अज्जवित्ती, अणज्जे णाममेगे अणज्जवित्ती।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यवृत्तिवाला होता है।
२. आर्य और अनार्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यवृत्तिवाला होता है।
३. अनार्य और आर्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यवृत्तिवाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यवृत्ति—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यवृत्तिवाला होता है (२२१)।

२२२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जजाती, अज्जे णाममेगे अणज्जजाती, अणज्जे णाममेगे अज्जजाती, अणज्जे णाममेगे अणज्जजाती।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यजाति—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यजाति वाला (सगुण मातृ-पक्षवाला) होता है।
२. आर्य और अनार्यजाति—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य जाति (मातृपक्ष) वाला होता है।

३. अनार्य और आर्यजाति--कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यजाति (मातृपक्ष) वाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यजाति--कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यजाति (मातृपक्ष) वाला होता है (२२२)।

२२३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जभासी, अज्जे णाममेगे अणज्जभासी, अणज्जे णाममेगे अज्जभासी, अणज्जे णाममेगे अणज्जभासी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे--

१. आर्य और आर्यभाषी--कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यभाषा बोलनेवाला होता है।
२. आर्य और अनार्यभाषी—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यभाषा बोलनेवाला होता है।
३. अनार्य और आर्यभाषी—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यभाषा बोलनेवाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यभाषी—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यभाषा बोलनेवाला होता है (२२३)।

२२४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जओभासी, अज्जे णाममेगे अणज्जओभासी, अणज्जे णाममेगे अज्जओभासी, अणज्जे णाममेगे अणज्जओभासी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यावभासी—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्य के समान दिखता है।
२. आर्य और अनार्यावभासी—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्य के समान दिखता है।
३. अनार्य और आर्यावभासी—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्य के समान दिखता है।
४. अनार्य और अनार्यावभासी—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य के समान दिखता है (२२४)।

२२५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जसेवी, अज्जे णाममेगे अणज्जसेवी, अणज्जे णाममेगे अज्जसेवी, अणज्जे णाममेगे अणज्जसेवी।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यसेवी—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यपुरुष की सेवा करता है।
२. आर्य और अनार्यसेवी—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यपुरुष की सेवा करता है।
३. अनार्य और आर्यसेवी—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यपुरुष की सेवा करता है।
४. अनार्य और अनार्यसेवी—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्य पुरुष की सेवा करता है (२२५)।

२२६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जपरियाए, अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए, अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाए, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाए।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आर्य और आर्यपर्याय—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यपर्याय वाला होता है।
२. आर्य और अनार्यपर्याय—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यपर्याय वाला होता है।
३. अनार्य और आर्यपर्याय—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यपर्याय वाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यपर्याय—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यपर्याय वाला होता है (२२६)।

२२७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जपरियाले, अज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले, अणज्जे णाममेगे अज्जपरियाले, अणज्जे णाममेगे अणज्जपरियाले।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यपरिवार—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यपरिवारवाला होता है।
२. आर्य और अनार्यपरिवार—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यपरिवारवाला होता है।
३. अनार्य और आर्यपरिवार—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यपरिवारवाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यपरिवार—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यपरिवारवाला होता है।

२२८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अज्जे णाममेगे अज्जभावे, अज्जे णाममेगे अणज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अज्जभावे, अणज्जे णाममेगे अणज्जभावे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. आर्य और आर्यभाव—कोई पुरुष जाति से आर्य और आर्यभाव (क्षायिकदर्शनादि गुण) वाला होता है।
२. आर्य और अनार्यभाव—कोई पुरुष जाति से आर्य, किन्तु अनार्यभाववाला (क्रोधादि युक्त) होता है।
३. अनार्य और आर्यभाव—कोई पुरुष जाति से अनार्य, किन्तु आर्यभाववाला होता है।
४. अनार्य और अनार्यभाव—कोई पुरुष जाति से अनार्य और अनार्यभाववाला होता है (२२८)।

जाति-सूत्र

२२९—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे, कुलसंपण्णे, बलसंपण्णे, रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे, जाव [कुलसंपण्णे, बलसंपण्णे] रूवसंपण्णे।

वृषभ (बैल) चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. जातिसम्पन्न, २. कुलसम्पन्न, ३. बलसम्पन्न (भारवहन के सामर्थ्य से सम्पन्न), ४. रूपसम्पन्न (देखने में सुन्दर) ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. जातिसम्पन्न, २. कुलसम्पन्न, ३. बलसम्पन्न, ४. रूपसम्पन्न (२२९) ।

विवेचन—मातृपक्ष को जाति कहते हैं और पितृपक्ष को कुल कहते हैं। सामर्थ्य को बल और शारीरिक सौन्दर्य को रूप कहते हैं। बैलों में ये चारों धर्म पाये जाते हैं और उनके समान पुरुषों में भी ये धर्म पाये जाते हैं।

२३०—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णामं एगे णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णामं एगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि कुलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो कुलसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि कुलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो कुलसंपण्णे।

चार प्रकार के वृषभ कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई बैल जाति से सम्पन्न होता है, किन्तु कुल से सम्पन्न नहीं होता।
२. कोई बैल कुल से सम्पन्न होता है, किन्तु जाति से सम्पन्न नहीं होता।
३. कोई बैल जाति से भी सम्पन्न होता है और कुल से भी सम्पन्न होता है।
४. कोई बैल न जाति से सम्पन्न होता है और न कुल से ही सम्पन्न होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष जाति से सम्पन्न होता है, किन्तु कुल से सम्पन्न नहीं होता।
२. कोई पुरुष कुल से सम्पन्न होता है, किन्तु जाति से सम्पन्न नहीं होता।
३. कोई पुरुष जाति से भी सम्पन्न होता है और कुल से भी सम्पन्न होता है।
४. कोई पुरुष न जाति से सम्पन्न होता है और न कुल से ही सम्पन्न होता है (२३०)।

२३१—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णामं एगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो बलसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णामं एगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो बलसंपण्णे।

पुनः वृषभ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई वैल जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई वैल बलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई वैल जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. कोई वैल न जातिसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है, और बलसम्पन्न भी होता है।
४. कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (२३१)।

२३२—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णामं एगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाम एगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंप्पण्णे णो रूवसंपण्णे।

पुनः वृषभ चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. कोई बैल जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई बैल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई बैल जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. कोई बैल न जातिसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न होता है।
४. कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (२३२)।

कुल-सूत्र

२३३—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णामं एगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो बलसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णामं एगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णामं एगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो बलसंपण्णे।

पुनः वृषभ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई बैल कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई बैल बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई बैल कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. कोई बैल न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।

२. कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (२३३)।

२३४—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णामं एगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णामं एगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

पुनः वृषभ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई बैल कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई बैल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई बैल कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. कोई बैल न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (२३४)।

बल-सूत्र

२३५—चत्तारि उसभा पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णामं एगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णामं एगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णामं एगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

पुनः वृषभ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई बैल बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई बैल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
३. कोई बैल बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. कोई बैल न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गयें हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।

३. कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (२३५)।

हस्ति-सूत्र

२३६—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—भद्दे, मंदे, मिए, संकिण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—भद्दे, मंदे, मिए, संकिण्णे।

हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. भद्र—धैर्य, वीर्य, वेग आदि गुण वाला।
२. मन्द—धैर्य, वीर्य आदि गुणों की मन्दतावाला।
३. मृग—हरिण के समान छोटे शरीर और भीरुतावाला।
४. संकीर्ण—उक्त तीनों जाति के हाथियों के मिले हुए गुणवाला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. भद्रपुरुष—धैर्य-वीर्यादि उत्कृष्ट गुणों की प्रकर्षतावाला।
२. मन्दपुरुष—धैर्य-वीर्यादि गुणों की मन्दतावाला।
३. मृगपुरुष—छोटे शरीरवाला, भीरु स्वभाववाला।
४. संकीर्णपुरुष—उक्त तीनों जाति के पुरुषों के मिले हुए गुणवाला (२३६)।

२३७—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—भद्दे णाममेगे भद्दमणे, भद्दे णाममेगे मंदमणे, भद्दे णाममेगे मियमणे, भद्दे णाममेगे संकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता. तं जहा—भद्दे णाममेगे भद्दमणे, भद्दे णाममेगे मंदमणे, भद्दे णाममेगे मियमणे, भद्दे णाममेगे संकिण्णमणे।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. भद्र और भद्रमन—कोई हाथी जाति से भद्र होता है और भद्र मनवाला (धीर) भी होता है।
२. भद्र और मन्दमन—कोई हाथी जाति से भद्र, किन्तु मन्द मनवाला (अत्यन्त धीर नहीं) होता है।
३. भद्र और मृगमन—कोई हाथी जाति से भद्र, किन्तु मृग मनवाला (भीरु) होता है।
४. भद्र और संकीर्णमन—कोई हाथी जाति से भद्र, किन्तु संकीर्ण मनवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. भद्र और भद्रमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र और भद्र मनवाला होता है।
२. भद्र और मन्दमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र किन्तु मन्द मनवाला होता है।
३. भद्र और मृगमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र, किन्तु मृग मनवाला होता है।
४. भद्र और संकीर्णमन—कोई पुरुष स्वभाव से भद्र, किन्तु संकीर्ण मनवाला होता है (२३७)।

२३८—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—मंदे णाममेगे भद्दमणे, मंदे णाममेगे मंदमणे, मंदे णाममेगे मियमणे, मंदे णाममेगे संकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मंदे णाममेगे भद्दमणे, [मंदे णाममेगे मंदमणे, मंदे णाममेगे मियमणे, मंदे णाममेगे संकिण्णमणे]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मन्द और भद्रमन—कोई हाथी जाति से मन्द, किन्तु भद्र मनवाला होता है
२. मन्द और मन्दमन—कोई हाथी जाति से मन्द और मन्द मनवाला होता है।
३. मन्द और मृगमन—कोई हाथी जाति से मन्द और मृग मनवाला होता है।
४. मन्द और संकीर्णमन—कोई हाथी जाति से मन्द और संकीर्ण मनवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मन्द और भद्रमन—कोई पुरुष स्वभाव से मन्द किन्तु भद्रमनवाला होता है।
२. मन्द और मन्दमन—कोई पुरुष स्वभाव से मन्द और मन्द ही मनवाला होता है।
३. मन्द और मृगमन—कोई पुरुष स्वभाव से मन्द और मृग मनवाला होता है।
४. मन्द और संकीर्णमन—कोई पुरुष स्वभाव से मन्द और संकीर्ण मनवाला होता है (२३८)।

२३९—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—मिए णाममेगे भद्दमणे, मिए णाममेगे मंदमणे, मिए णाममेगे मियमणे, मिए णाममेगे संकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मिए णाममेगे भद्दमणे, [मिए णाममेगे मंदमणे, मिए णाममेगे मियमणे, मिए णाममेगे संकिण्णमणे]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मृग और भद्रमन—कोई हाथी जाति से मृग (भीरु) किन्तु भद्रमन वाला (धैर्यवान्) होता है।
२. मृग और मन्दमन—कोई हाथी जाति से मृग और मन्द मनवाला (कम धैर्यवाला) होता है।
३. मृग और मृगमन—कोई हाथी जाति से मृग और मृगमन वाला होता है।
४. मृग और संकीर्णमन—कोई हाथी जाति से मृग और संकीर्ण मनवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार जाति के कहे गये हैं। जैसे—

१. मृग और भद्रमन—कोई पुरुष स्वभाव से मृग, किन्तु भद्र मनवाला होता है।
२. मृग और मन्दमन—कोई पुरुष स्वभाव से मृग और मन्द मनवाला होता है।
३. मृग और मृगमन—कोई पुरुष स्वभाव से मृग और मृग मनवाला होता है।
४. मृग और संकीर्णमन—कोई पुरुष स्वभाव से मृग और संकीर्ण मनवाला होता है (२३९)।

२४०—चत्तारि हत्थी पण्णत्ता, तं जहा—संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे, संकिण्णे णाममेगे मंदमणे, संकिण्णे णाममेगे मियमणे, संकिण्णे णाममेगे संकिण्णमणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—संकिण्णे णाममेगे भद्दमणे, [संकिण्णे णाममेगे मंदमणे, संकिण्णे णाममेगे मियमणे] संकिण्णे णाममेगे संकिण्णमणे।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. संकीर्ण और भद्रमन—कोई हाथी जाति से संकीर्ण (मिले-जुले स्वभाववाला) किन्तु भद्र मनवाला होता है।
२. संकीर्ण और मन्दमन—कोई हाथी जाति से संकीर्ण और मन्द मनवाला होता है।
३ संकीर्ण और मृगमन—कोई हाथी जाति से संकीर्ण और मृगमनवाला होता है।
४. संकीर्ण और संकीर्ण—कोई हाथी जाति से संकीर्ण और संकीर्ण ही मनवाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार जाति के कहे गये हैं जैसे—

१. संकीर्ण और भद्रमन – कोई पुरुष स्वभाव से संकीर्ण, किन्तु भद्रमन वाला होता है।
२. संकीर्ण और मन्दमन – कोई पुरुष स्वभाव से संकीर्ण, और मन्द मनवाला होता है।
३. संकीर्ण और मृगमन—कोई पुरुष स्वभाव से संकीर्ण और मृग मनवाला होता है।
४. संकीर्ण और संकीर्ण—कोई पुरुष स्वभाव से संकीर्ण और संकीर्ण मनवाला होता है।

संग्रहणी-गाथा

मधुगुलिय-पिंगलक्खो, अणुपुव्व-सुजाय-दीहणंगूलो।
पुरओ उदग्गधीरो, सव्वंगसमाधितो भद्दो ॥१॥

चल-बहल-विसम-चम्मो, थूलसिरो थूलएण पेएण।
थूलणह-दंत-वालो, हरिपिंगल-लोयणो मंदो ॥२॥

तणुओ तणुयग्गीवो, तणुयतओ तणुयदंत-णह-वालो।
भीरू तत्थुव्विग्गो, तासी य भवे मिए णामं ॥३॥

एतेसिं हत्थीणं थोवा थोवं, तु जो अणुहरति हत्थी।
रूवेण व सीलेण व, सो संकिण्णोत्ति णायव्वो ॥४॥

भद्दो मज्जइ सरए, मंदो उण मज्जते वसंतंमि।
मिउ मज्जति हेमंते, संकिण्णो सव्वकालंमि ॥५॥

१. जिसके नेत्र मधु की गोली के समान गोल रक्त-पिंगल वर्ण के हों, जो काल-मर्यादा के अनुसार ठीक तरह से उत्पन्न हुआ हो, जिसकी पूंछ लम्बी हो, जिसका अग्र भाग उन्नत हो, जो धीर हो, जिसके सब अंग प्रमाण और लक्षण से सुव्यवस्थित हों, उसे भद्र जाति का हाथी कहते हैं।

२. जिसका चर्म शिथिल, स्थूल और विषम (रेखाओं से युक्त) हो, जिसका शिर और पूंछ का मूलभाग स्थूल हो, जिसके नख, दन्त और केश स्थूल हों, जिसके नेत्र सिंह के समान पीत पिंगल वर्ण के हों, वह मन्द जाति का हाथी है।

३. जिसका शरीर, ग्रीवा, चर्म, नख, दन्त और केश पतले हों, जो भीरु, त्रस्त और उद्विग्न स्वभाववाला हो, तथा दूसरों को त्रास देता हो, वह मृग जाति का हाथी है।

४. जो ऊपर कहे हुए तीनों जाति के हाथियों के कुछ-कुछ लक्षणों का, रूप से और शील (स्वभाव) से अनुकरण करता हो, अर्थात् जिसमें भद्र, मन्द और मृग जाति के हाथी की कुछ-कुछ समानता पाई जावे, वह संकीर्ण हाथी कहलाता है।

५. भद्र हाथी शरद् ऋतु में मदयुक्त होता है, मन्द हाथी वसन्त ऋतु में मदयुक्त होता है—मद झरता है, मृग हाथी हेमन्त ऋतु में मदयुक्त होता है और संकीर्ण हाथी सभी ऋतुओं में मदयुक्त रहता है (२४०)।

विकथा-सूत्र

२४१—चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा।

विकथा चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. स्त्रीकथा, २. भक्तकथा, ३. देशकथा, ४. राजकथा (२४१)।

२४२—इत्थिकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थीणं जाइकहा, इत्थीणं कुलकहा, इत्थीणं रूवकहा, इत्थीणं णेवत्थकहा।

स्त्री कथा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. स्त्रियों की जाति की कथा, २. स्त्रियों के कुल की कथा।
३. स्त्रियों के रूप की कथा, ४. स्त्रियों के नेपथ्य (वेष-भूषा) की कथा (२४२)।

२४३—भत्तकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—भत्तस्स आवावकहा, भत्तस्स णिव्वावकहा, भत्तस्स आरंभकहा, भत्तस्स णिट्ठाणकहा।

भक्तकथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. आवापकथा—रसोई की सामग्री आटा, दाल, नमक आदि की चर्चा करना।
२. निर्वापकथा—पके या बिना पके अन्न या व्यंजनादि की चर्चा करना।
३. आरम्भकथा—रसोई बनाने के लिए आवश्यक सामान और धन आदि की चर्चा करना।
४. निष्ठानकथा—रसोई में लगे सामान और धनादि की चर्चा करना (२४३)।

२४४—देसकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—देसविहिकहा, देसविकप्पकहा, देसच्छंदकहा, देसणेवत्थकहा।

देशकथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. देशविधिकथा—विभिन्न देशों में प्रचलित विधि-विधानों की चर्चा करना।
२. देशविकल्पकथा—विभिन्न देशों के गढ़, परिधि, प्राकार आदि की चर्चा करना।
३. देशच्छन्दकथा—विभिन्न देशों के विवाहादि सम्बन्धी रीति-रिवाजों की चर्चा करना।
४. देशनेपथ्यकथा—विभिन्न देशों के वेष-भूषादि की चर्चा करना (२४४)।

२४५—रायकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—रण्णो अतियाणकहा, रण्णो णिज्जाणकहा, रण्णो बलवाहणकहा, रण्णो कोसकोट्ठागारकहा।

राजकथा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. राज-अतियान कथा—राजा के नगर-प्रवेश के समारम्भ की चर्चा करना।
२. राज-निर्याण कथा—राजा के युद्ध आदि के लिए नगर से निकलने की चर्चा करना।
३. राज-बल-वाहनकथा—राजा के सैन्य, सैनिक और वाहनों की चर्चा करना।
४. राज-कोष-कोष्ठागार कथा—राजा के खजाने और धान्य-भण्डार आदि की चर्चा करना (२४६)।

विवेचन—कथा का अर्थ है—कहना, वार्तालाप करना। जो कथा संयम से विरुद्ध हो, विपरीत हो वह विकथा कहलाती है, अर्थात् जिससे ब्रह्मचर्य में स्खलना उत्पन्न हो, स्वादलोलुपता जागृत हो, जिससे आरम्भ-समारम्भ को प्रोत्साहन मिले, जो एकनिष्ठ साधना में बाधक हो, ऐसा समग्र वार्तालाप विकथा में परिगणित है। उक्त भेद-प्रभेदों में सब प्रकार की विकथाओं का समावेश हो जाता है।

कथा-सूत्र

२४६—चउव्विहा कहा पण्णत्ता, तं जहा—अक्खेवणी, विक्खेवणी, संवेयणी, णिव्वेदणी।

धर्मकथा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. आक्षेपणी कथा—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि के प्रति आकर्षण करने वाली कथा करना।
२. विक्षेपणी कथा—पर-मत का कथन कर स्व-मत की स्थापना करने वाली कथा करना।
३. संवेजनी या संवेदनी कथा—संसार के दुःख, शरीर की अशुचिता आदि दिखाकर वैराग्य उत्पन्न करने वाली चर्चा करना।
४. निर्वेदनी कथा—कर्मों के फल बतलाकर संसार से विरक्ति उत्पन्न करने वाली चर्चा करना (२४६)।

२४७—अक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—आयारअक्खेवणी, ववहारअक्खेवणी, पण्णत्तिअक्खेवणी, दिट्ठिवायअक्खेवणी।

आक्षेपणी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. आचाराक्षेपणी कथा—साधु और श्रावक के आचार की चर्चा कर उसके प्रति श्रोता को आकर्षित करना।
२. व्यवहाराक्षेपणी कथा—व्यवहार-प्रायश्चित्त लेने और न लेने के गुण-दोषों की चर्चा करना।
३. प्रज्ञप्ति-आक्षेपणी कथा—संशय-ग्रस्त श्रोता के संशय को दूरकर उसे संबोधित करना।
४. दृष्टिवादाक्षेपणी कथा—विभिन्न नयों की दृष्टियों से श्रोता की योग्यतानुसार तत्त्व का निरूपण करना (२४७)।

२४८—विक्खेवणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—ससमयं कहेइ, ससमयं कहित्ता परसमयं कहेइ, परसमयं कहेत्ता ससमयं ठावइता भवति, सम्मावायं कहेइ, सम्मावायं कहेत्ता मिच्छावायं कहेइ, मिच्छावायं कहेत्ता सम्मावायं ठावइता भवति।

विक्षेपणी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. पहले स्व-समय को कहना, पुनः स्वसमय कहकर पर-समय को कहना।
२. पहले पर-समय को कहना, पुनः स्वसमय को कहकर उसकी स्थापना करना।
३. घुणाक्षरन्याय से जिनमत के सदृश पर-समय-गत सम्यक् तत्त्वों का कथन कर पुनः उनके मिथ्या तत्त्वों का कहना।
अथवा—आस्तिकवाद का निरूपण कर नास्तिकवाद का निरूपण करना।
४. पर-समय-गत मिथ्या तत्त्वों का कथन कर सम्यक् तत्त्व का निरूपण करना।
अथवा नास्तिकवाद का निराकरण कर आस्तिकवाद की स्थापना करना (२४८)।

२४९—संवेयणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगसंवेयणी, परलोगसंवेयणी, आतसरीरसंवेयणी, परसरीरसंवेयणी।

संवेजनी या संवेगनी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. इहलोकसंवेजनी कथा—इस लोक-सम्बन्धी असारता का निरूपण करना।
२. परलोकसंवेजनी कथा—परलोक-सम्बन्धी असारता का निरूपण करना।
३. आत्मशरीरसंवेजनी कथा—अपने शरीर की अशुचिता का निरूपण करना।
४. परशरीरसंवेदनी कथा—दूसरों के शरीरों की अशुचिता का निरूपण करना (२४९)।

२५०—णिव्वेदणी कहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।
२. इहलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।
३. परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा इहलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।
४. परलोगे दुच्चिण्णा कम्मा परलोगे दुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।

१. इहलोगे सुचिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।
२. इहलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।
३. [परलोगे सुचिण्णा कम्मा इहलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति।
४. परलोगे सुचिण्णा कम्मा परलोगे सुहफलविवागसंजुत्ता भवंति]।

निर्वेदनी कथा चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. इस लोक के दुश्चीर्ण कर्म परलोक में दुःखमय फल को देने वाले होते हैं।
२. इस लोक के दुश्चीर्ण कर्म परलोक में दुःखमय फल को देने वाले होते हैं।
३. परलोक के दुश्चीर्ण कर्म इस लोक में दुःखमय फल को देने वाले होते हैं।

४. परलोक के दुश्चीर्ण कर्म परलोक में ही दुःखमय फल को देने वाले होते हैं, इस प्रकार की प्ररूपणा करना।

१. इस लोक के सुचीर्ण कर्म इसी लोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं।
२. इस लोक के सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं।
३. परलोक के सुचीर्ण कर्म इस लोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं।
४. परलोक के सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं (२५०)।

विवेचन—निर्वेदनी कथा का दो प्रकार से निरूपण किया गया है। प्रथम प्रकार में पाप कर्मो के फल भोगने के चार प्रकार बताये गये हैं। उनका अभिप्राय इस प्रकार है—१. चोर आदि इसी जन्म में चोरी आदि करके इसी जन्म में कारागार आदि की सजा भोगते हैं। २. कितने ही शिकारी आदि इस जन्म में पाप बन्धकर परलोक में नरकादि के दुःख भोगते हैं। ३. कितने ही प्राणी पूर्वभवोपार्जित पाप कर्मों का दुष्फल इस जन्म में गर्भ काल से लेकर मरण तक दारिद्रय, व्याधि आदि के रूप में भोगते हैं। ४. पूर्वभव में उपार्जन किये गये अशुभ कर्मों से उत्पन्न काक, गिद्ध आदि जीव मांस-भक्षणादि करके पाप कर्मों को बांधकर नरकादि में दुःख भोगते हैं।

द्वितीय प्रकार में पुण्य कर्म का फल भोगने के चार प्रकार बताये गये हैं। उनका खुलासा इस प्रकार है—१. तीर्थकरों को दान देने वाला दाता इसी भव में सातिशय पुण्य का उपार्जन कर स्वर्णवृष्टि आदि पंच आश्चर्यों को प्राप्त कर पुण्य का फल भोगता है। २. साधु इस लोक में संयम की साधना के साथ-साथ पुण्य कर्म को बांधकर परभव में स्वर्गादि के सुख भोगता है। ३. परभव में उपार्जित पुण्य के फल को तीर्थकरादि इस भव में भोगते हैं। ४. पूर्व भव में उपार्जित पुण्य कर्म के फल से देव भव में स्थित तीर्थकरादि अग्रिम भव में तीर्थकरादि रूप से उत्पन्न होकर भोगते हैं।

इस प्रकार से पाप और पुण्य के फल प्रकाशित करने वाली निर्वेदनी कथा के दो प्रकारों से निरूपण का आशय जानना चाहिए।

कृश-दृढ़-सूत्र

२५१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—किसे णाममेगे किसे, किसे णाममेगे दढे, दढे णाममेगे किसे, दढे णाममेगे दढे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कृश और कृश—कोई पुरुष शरीर से भी कृश होता है और मनोबल से भी कृश होता है। अथवा पहले भी कृश और पश्चात् भी कृश होता है।
२. कृश और दृढ—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है, किन्तु मनोबल से दृढ होता है।
३. दृढ और कृश—कोई पुरुष शरीर से दृढ होता है, किन्तु मनोबल से कृश होता है।
४. दृढ और दृढ—कोई पुरुष शरीर से दृढ होता है और मनोबल से भी दृढ होता है (२५१)।

२५२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—किसे णाममेगे किससरीरे, किसे णाममेगे दढसरीरे, दढे णाममेगे किससरीरे, दढे णाममेगे दढसरीरे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कृश और कृशशरीर—कोई पुरुष भावों से कृश होता है और शरीर से भी कृश होता है।

२. कृश और दृढशरीर—कोई पुरुष भावों से कृश होता है, किन्तु शरीर से दृढ होता है।

३. दृढ और कृशशरीर—कोई पुरुष भावों से दृढ होता है, किन्तु शरीर से कृश होता है।

४. दृढ और दृढशरीर—कोई पुरुष भावों से भी दृढ़ होता है और शरीर से भी दृढ होता है (२५२)।

२५३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति णो दढसरीरस्स, दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति णो किससरीरस्स, एगस्स किससरीरस्सवि णाणदंसणे समुप्पज्जति दढसरीरस्सवि, एगस्स णो किससरीरस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति णो दढसरीरस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. किसी कृश शरीर वाले पुरुष के विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु दृढ शरीर वाले के नहीं उत्पन्न होते।

२. किसी दृढ़ शरीर वाले पुरुष के विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु कृश शरीर वाले के नहीं उत्पन्न होते।

३. किसी कृश शरीर वाले पुरुष के भी विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं और दृढ शरीर वाले के भी उत्पन्न होते हैं।

४. किसी कृश शरीर वाले पुरुष के भी विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होते और दृढशरीर वाले के भी उत्पन्न नहीं होते (२५३)।

विवेचन—सामान्य ज्ञान और दर्शन तो सभी संसारी प्राणियों के जाति, इन्द्रिय आदि के तारतम्य से हीनाधिक पाये जाते हैं। किन्तु प्रकृत सूत्र में विशिष्ट क्षयोपशम से होने वाले अवधि ज्ञान-दर्शनादि और तदावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन का अभिप्राय है। इनकी उत्पत्ति का सम्बन्ध कृश या दृढशरीर से नहीं, किन्तु तदावरण कर्म के क्षय और क्षयोपशम से है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-सूत्र

२५४—चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सिं समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामेवि ण समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

१. अभिक्खणं-अभिक्खणं इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं कहेत्ता भवति।

२. विवेगेण विउस्सग्गेणं णो सम्ममप्पाणं भावित्ता भवति।

३. पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि णो धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति।

४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स णो सम्मं गवेसित्ता भवति।

४. परलोक के दुश्चीर्ण कर्म परलोक में ही दुःखमय फल को देने वाले होते हैं, इस प्रकार की प्ररूपणा करना ।

१. इस लोक के सुचीर्ण कर्म इसी लोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं ।
२. इस लोक के सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं ।
३. परलोक के सुचीर्ण कर्म इस लोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं ।
४. परलोक के सुचीर्ण कर्म परलोक में सुखमय फल को देने वाले होते हैं (२५०) ।

विवेचन—निर्वेदनी कथा का दो प्रकार से निरूपण किया गया है । प्रथम प्रकार में पाप कर्मों के फल भोगने के चार प्रकार बताये गये हैं । उनका अभिप्राय इस प्रकार है—१. चोर आदि इसी जन्म में चोरी आदि करके इसी जन्म में कारागार आदि की सजा भोगते हैं । २. कितने ही शिकारी आदि इस जन्म में पाप बन्धकर परलोक में नरकादि के दुःख भोगते हैं । ३. कितने ही प्राणी पूर्वभवोपार्जित पाप कर्मों का दुष्फल इस जन्म में गर्भ काल से लेकर मरण तक दारिद्र्य, व्याधि आदि के रूप में भोगते हैं । ४. पूर्वभव में उपार्जन किये गये अशुभ कर्मों से उत्पन्न काक, गिद्ध आदि जीव मांस-भक्षणादि करके पाप कर्मों को बांधकर नरकादि में दुःख भोगते हैं ।

द्वितीय प्रकार में पुण्य कर्म का फल भोगने के चार प्रकार बताये गये हैं । उनका खुलासा इस प्रकार है—१. तीर्थंकरों को दान देने वाला दाता इसी भव में सातिशय पुण्य का उपार्जन कर स्वर्णवृष्टि आदि पंच आश्चर्यों को प्राप्त कर पुण्य का फल भोगता है । २. साधु इस लोक में संयम की साधना के साथ-साथ पुण्य कर्म को बांधकर परभव में स्वर्गादि के सुख भोगता है । ३. परभव में उपार्जित पुण्य के फल को तीर्थंकरादि इस भव में भोगते हैं । ४. पूर्व भव में उपार्जित पुण्य कर्म के फल से देव भव में स्थित तीर्थंकरादि अग्रिम भव में तीर्थंकरादि रूप से उत्पन्न होकर भोगते हैं ।

इस प्रकार से पाप और पुण्य के फल प्रकाशित करने वाली निर्वेदनी कथा के दो प्रकारों से निरूपण का आशय जानना चाहिए ।

कृश-दृढ़-सूत्र

२५१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—किसे णाममेगे किसे, किसे णाममेगे दढे, दढे णाममेगे किसे, दढे णाममेगे दढे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कृश और कृश—कोई पुरुष शरीर से भी कृश होता है और मनोबल से भी कृश होता है । अथवा पहले भी कृश और पश्चात् भी कृश होता है ।
२. कृश और दृढ—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है, किन्तु मनोबल से दृढ होता है ।
३. दृढ और कृश—कोई पुरुष शरीर से दृढ होता है, किन्तु मनोबल से कृश होता है ।
४. दृढ और दृढ—कोई पुरुष शरीर से दृढ होता है और मनोबल से भी दृढ होता है (२५१) ।

२५२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—किसे णाममेगे किससरीरे, किसे णाममेगे दढसरीरे, दढे णाममेगे किससरीरे, दढे णाममेगे दढसरीरे ।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कृश और कृशशरीर—कोई पुरुष भावों से कृश होता है और शरीर से भी कृश होता हैं।

२. कृश और दृढशरीर—कोई पुरुष भावों से कृश होता है, किन्तु शरीर से दृढ होता है।

३. दृढ और कृशशरीर—कोई पुरुष भावों से दृढ होता है, किन्तु शरीर से कृश होता है।

४. दृढ और दृढशरीर—कोई पुरुष भावों से भी दृढ़ होता है और शरीर से भी दृढ होता है (२५२)।

२५३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—किससरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति णो दढसरीरस्स, दढसरीरस्स णाममेगस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति णो किससरीरस्स, एगस्स किससरीरस्सवि णाणदंसणे समुप्पज्जति दढसरीरस्सवि, एगस्स णो किससरीरस्स णाणदंसणे समुप्पज्जति णो दढसरीरस्स।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. किसी कृश शरीर वाले पुरुष के विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु दृढ शरीर वाले के नहीं उत्पन्न होते।

२. किसी दृढ़ शरीर वाले पुरुष के विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं, किन्तु कृश शरीर वाले के नहीं उत्पन्न होते।

३. किसी कृश शरीर वाले पुरुष के भी विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते हैं और दृढ शरीर वाले के भी उत्पन्न होते हैं।

४. किसी कृश शरीर वाले पुरुष के भी विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होते और दृढशरीर वाले के भी उत्पन्न नहीं होते (२५३)।

विवेचन—सामान्य ज्ञान और दर्शन तो सभी संसारी प्राणियों के जाति, इन्द्रिय आदि के तारतम्य से हीनाधिक पाये जाते हैं। किन्तु प्रकृत सूत्र में विशिष्ट क्षयोपशम से होने वाले अवधि ज्ञान-दर्शनादि और तदावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन का अभि-प्राय है। इनकी उत्पत्ति का सम्बन्ध कृश या दृढशरीर से नहीं, किन्तु तदावरण कर्म के क्षय और क्षयोपशम से है, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए।

अतिशेष-ज्ञान-दर्शन-सूत्र

२५४—चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सिं समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामेवि ण समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

१. अभिक्खणं-अभिक्खणं इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं कहेत्ता भवति।
२. विवेगेण विउस्सग्गेणं णो सम्ममप्पाणं भावित्ता भवति।
३. पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि णो धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति।
४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स णो सम्मं गवेसित्ता भवति।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा जाव [अस्सि समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामेवि] णो समुप्पज्जेज्जा।

चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के इस समय में अर्थात् तत्काल अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते-होते भी उत्पन्न नहीं होते, जैसे—

१. जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी बार-बार स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा करता है।

२. जो निर्ग्रन्थ या निग्रन्थी विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करने वाला नहीं होता।

३. जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी पूर्वरात्रि और अपररात्रिकाल के समय धर्म-जागरण करके जागृत नहीं रहता।

४. जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक, एषणीय, उञ्छ और सामुदानिक भिक्षा की सम्यक् प्रकार से गवेषणा नहीं करता (२५४)।

इन चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को तत्काल अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते-होते भी रुक जाते हैं—उत्पन्न नहीं होते।

विवेचन—साधु और साध्वी को विशिष्ट, अतिशय-सम्पन्न ज्ञान और दर्शन को उत्पन्न करने के लिए चार कार्यों को करना अत्यावश्यक है। वे चार कार्य हैं—१ विकथा का नहीं करना। २. विवेक और कायोत्सर्गपूर्वक आत्मा की सम्यक् भावना करना। ३. रात के पहले और पिछले पहर में जाग कर धर्मचिन्तन करना। ४. तथा, प्रासुक, एषणीय, उञ्छ और सामुदानिक गोचरी लेना। जो साधु या साध्वी उक्त कार्यों को नहीं करता, वह अतिशायी ज्ञान-दर्शन को प्राप्त नहीं कर पाता। इस सन्दर्भ में आये हुए विशिष्ट पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. विवेक—अशुद्ध भावों को त्यागकर शरीर और आत्मा की भिन्नता का विचार करना।
२. व्युत्सर्ग—वस्त्र-पात्रादि और शरीर से ममत्व छोड़कर कायोत्सर्ग करना।
३. प्रासुक—असु नाम प्राण का है, जिस बीज, वनस्पति और जल आदि में से प्राण निकल गये हों ऐसी अचित्त या निर्जीव वस्तु को प्रासुक कहते हैं।
४. एषणीय—उद्गम आदि दोषों से रहित साधुओं के लिए कल्प्य आहार।
५. उञ्छ—अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा लिया जाने वाला भक्त-पान।
६. सामुदानिक—याचनावृत्ति से भिक्षा ग्रहण करना।

२५५—चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा [अंस्सि समयंसि ?] अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

१. इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं णो कहेत्ता भवति।
२. विवेगेण विउस्सग्गेणं सम्ममप्पाणं भावेत्ता भवति।
३. पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति।
४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स सम्मं गवेसित्ता भवति।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा जाव [अस्सि समयंसि ?] अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे) समुप्पज्जेज्जा।

चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को अभीष्ट अतिशय-युक्त ज्ञान दर्शन तत्काल उत्पन्न होते हैं, जैसे—

१. जो स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा को नहीं कहता।

२. जो विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा की सम्यक् प्रकार से भावना करता है।

३. जो पूर्वरात्रि और अपर रात्रि के समय धर्म ध्यान करता हुआ जागृत रहता है।

४. जो प्रासुक, एषणीय, उञ्छ और सामुदानिक भिक्षा की सम्यक् प्रकारसे गवेषणा करता है (२५५)।

इन चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के अभीष्ट, अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन तत्काल उत्पन्न हो जाते हैं।

स्वाध्याय-सूत्र

२५६—णो कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहपाडिवए, कत्तियपाडिवए, सुगिम्हगपाडिवए।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को चार महाप्रतिपदाओं में स्वध्याय करना नहीं कल्पता है, जैसे—

१. आषाढ़-प्रतिपदा—आषाढ़ी पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली सावन की प्रतिपदा।

२. इन्द्रमह-प्रतिपदा—आसौज मास की पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली कार्तिक की प्रतिपदा।

३. कार्तिक-प्रतिपदा—कार्तिकी पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली मगसिर की प्रतिपदा।

४. सुग्रीष्म-प्रतिपदा—चैत्री पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली वैशाख की प्रतिपदा (२५६)।

विवेचन—किसी महोत्सव के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहा जाता है। भगवान् महावीर के समय इन्द्रमह, स्कन्दमह, यक्षमह और भूतमह ये चार महोत्सव जन-साधारण में प्रचलित थे। निशीथभाष्य के अनुसार आषाढ़ी पूर्णिमा को इन्द्रमह, आश्विनी पूर्णिमा को स्कन्द-मह, कार्तिकी पूर्णिमा को यक्षमह और चैत्री पूर्णिमा को भूतमह मनाया जाता था। इन उत्सवों में सम्मिलित होने वाले लोग मदिरा-पान करके नाचते-कूदते हुए अपनी परम्परा के अनुसार इन्द्रादि की पूजनादि करते थे। उत्सव के दूसरे दिन प्रतिपदा को अपने मित्रादिकों को बुलाते और मदिरा-पान पूर्वक भोजनादि करते-कराते थे।

इन महाप्रतिपदाओं के दिन स्वाध्याय-निषेध के अनेक कारणों में से एक प्रधान कारण यह बताया गया है कि महोत्सव में सम्मिलित लोग समीपवर्ती साधु और साध्वियों को स्वाध्याय करते अर्थात् जोर-जोर से शास्त्र-वाचनादि करते हुए देखकर भड़क सकते हैं और मदिरा-पान से उन्मत्त होने के कारण उपद्रव भी कर सकते हैं। अतः यही श्रेष्ठ है कि उस दिन साधु-साध्वी मौनपूर्वक अपने धर्म-कार्यों को सम्पन्न करें। दूसरा कारण यह भी बताया गया है कि जहां समीप में जन-धारण का जोर-जोर से शोर-गुल हो रहा हो, वहां पर साधु-साध्वी एकाग्रतापूर्वक शास्त्र की द या अर्थवाचना को ग्रहण भी नहीं कर सकते हैं।

२५७—णो कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पढमाए, पच्छिमाए, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते ।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को चार सन्ध्याओं में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है, जैसे—

१. प्रथम सन्ध्या—सूर्योदय का पूर्वकाल ।
२. पश्चिम सन्ध्या—सूर्यास्त के पीछे का काल ।
३. मध्याह्न सन्ध्या—दिन के मध्य समय का काल ।
४. अर्धरात्र सन्ध्या—आधी रात का समय (२५७) ।

विवेचन— दिन और रात के सन्धि-काल को सन्ध्या कहते हैं । इसी प्रकार दिन और रात्रि के मध्य भाग को भी सन्ध्या कहा जाता है, क्योंकि वह पूर्वभाग और पश्चिम भाग (पूर्वाह्न और अपराह्न) का सन्धिकाल है । इन सन्ध्याओं में स्वाध्याय के निषेध का कारण यह बताया गया है कि ये चारों सन्ध्याएं ध्यान का समय मानी गई हैं । स्वाध्याय से ध्यान का स्थान ऊंचा है, अतः ध्यान के समय में ध्यान ही करना उचित है ।

२५८—कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउक्ककालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे ।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को चार कालों में स्वाध्याय करना कल्पता है, जैसे—

१. पूर्वाह्न में—दिन के प्रथम पहर में ।
२. अपराह्न में—दिन के अन्तिम पहर में ।
३. प्रदोष में—रात के प्रथम पहर में ।
४. प्रत्यूष में—रात के अन्तिम पहर में (२५८) ।

लोकस्थिति-सूत्र

२५९—चउव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपतिट्ठिए वाते, वातपतिट्ठिए उदधी, उदधिपतिट्ठिया पुढवी, पुढविपतिट्ठिया तसा थावरा पाणा ।

लोकस्थिति चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. वायु (तनुवात-घनवात) आकाश पर प्रतिष्ठित है ।
२. घनोदधि वायु पर प्रतिष्ठित है ।
३. पृथिवी घनोदधि पर प्रतिष्ठित है ।
४. त्रस और स्थावर जीव पृथिवी पर प्रतिष्ठित हैं (२५९) ।

पुरुष-भेद-सूत्र

२६०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—तहे णाममेगे, णोतहे णाममेगे, सोवत्थी णाममेगे, पधाणे णाममेगे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. तथापुरुष—आदेश को 'तहत्ति' (स्वीकार) ऐसा कहकर काम करने वाला सेवक।
२. नोतथापुरुष—आदेश को न मानकर स्वतन्त्रता से काम करने वाला पुरुष।
३. सौवस्तिकपुरुष—स्वस्ति-पाठक-मागध चारण आदि।
४. प्रधानपुरुष—पुरुषों में प्रधान, स्वामी, राजा आदि (२६०)।

आत्म-सूत्र

२६१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आयंतकरे णाममेगे णो परंतकरे, परंतकरे णाममेगे णो आयंतकरे, एगे आयंतकरेवि परंतकरेवि, एगे णो आयंतकरे णो परंतकरे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कोई पुरुष अपना अन्त करने वाला होता है, किन्तु दूसरे का अन्त नहीं करता।
२. कोई पुरुष दूसरे का अन्त करने वाला होता है, किन्तु अपना अन्त नहीं करता।
३. कोई पुरुष अपना भी अन्त करने वाला होता है और दूसरे का भी अन्त करता है।
४. कोई पुरुष न अपना अन्त करने वाला होता है और न दूसरे का अन्त करता है (२६१)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने 'अन्त' शब्द के चार अर्थ करके इस सूत्र की व्याख्या की है। प्रथम प्रकार इस प्रकार है—

१. कोई पुरुष अपने संसार का अन्त करता है अर्थात् कर्म-मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है। किन्तु दूसरे को उपदेशादि न देने से दूसरे के संसार का अन्त नहीं करता। जैसे प्रत्येकबुद्ध केवली आदि।

२. दूसरे भंग में वे आचार्य आदि आते हैं, जो अचरमशरीरी होने से अपना अन्त तो नहीं कर पाते, किन्तु उपदेशादि के द्वारा दूसरे के संसार का अन्त करते हैं।

३. तीसरे भंग में तीर्थंकर और अन्य सामान्य केवली आते हैं जो अपने भी संसार का अन्त करते हैं और उपदेशादि के द्वारा दूसरों के भी संसार का अन्त करते हैं।

४. चौथे भंग में दुःषमाकाल के आचार्य आते हैं, जो न अपने संसार का ही अन्त कर पाते हैं और न दूसरे के संसार का ही अन्त कर पाते हैं।

'अन्त' शब्द का मरण अर्थ भी होता है।

दूसरे प्रकार के चारों अंगों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. जो अपना 'अन्त' अर्थात् मरण या घात करे, किन्तु दूसरे का घात न करे।
२. पर-घातक, किन्तु आत्म-घातक नहीं।
३. आत्म-घातक भी और पर-घातक भी।
४. न आत्म-घातक, और न पर-घातक। (२)

तीसरी व्याख्या सूत्र के 'आयंतकर' का संस्कृत रूप 'आत्मतन्त्रकर' मान कर इस प्रकार की है—

१. आत्म-तन्त्रकर—अपने स्वाधीन होकर कार्य करने वाला पुरुष, किन्तु 'परतन्त्र' होकर कार्य नहीं करने वाला जैसे—तीर्थंकर।

२. परतन्त्रकर, किन्तु आत्मतन्त्रकर नहीं। जैसे—साधु।

३. आत्मतन्त्रकर भी और परतन्त्रकर भी जैसे—आचार्यादि।

४. न आत्मतन्त्रकर और न परतन्त्रकर। जैसे—शठ पुरुष।

चौथी व्याख्या 'आयंतकर' का संस्कृतरूप 'आत्मायत्त-कर' मान कर इस प्रकार की है—

१. आत्मायत्त-कर, परायत्त-कर नहीं—धन आदि को अपने अधीन करने वाला, किन्तु दूसरे के अधीन नहीं करने वाला पुरुष।

२. अपने धनादि को पर के अधीन करने वाला, किन्तु अपने अधीन नहीं करने वाला पुरुष।

३. धनादि को अपने अधीन करने वाला और पर के अधीन भी करने वाला पुरुष।

४. धनादि को न स्वाधीन करने वाला और न पराधीन करने वाला पुरुष।

२६२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आयंतमे णाममेगे णो परंतमे, परंतमे णाममेगे णो आयंतमे, एगे आयंतमेवि परंतमेवि, एगे णो आयंतमे णो परंतमे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आत्म-तम, किन्तु पर-तम नहीं—जो अपने आपको खिन्न करे, दूसरे को नहीं।

२. पर-तम, किन्तु आत्म-तम नहीं—जो पर को खिन्न करे, किन्तु अपने को नहीं।

३. आत्म-तम भी और पर-तम भी—जो अपने को भी खिन्न करे और पर को भी खिन्न करे।

४. न आत्म-तम, न पर-तम—जो न अपने को खिन्न करे और न पर को खिन्न करे। (२६२)

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने उक्त अर्थ 'आत्मानं तमयति खेदयतीति आत्मतमः' निरुक्ति करके किया है। अथवा करके तम का अर्थ अज्ञान और क्रोध भी अर्थ किया है। तदनुसार चारों भंगों का अर्थ इस प्रकार है—

१. जो अपने में अज्ञान या क्रोध उत्पन्न करे, पर में नहीं।

२. जो पर में अज्ञान या क्रोध उत्पन्न करे, अपने में नहीं।

३. जो अपने में भी और पर में भी अज्ञान या क्रोध उत्पन्न करे।

४. जो न अपने में अज्ञान और क्रोध उत्पन्न करे, न दूसरे में।

२६३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आयंदमे णाममेगे णो परंदमे, परंदमे णाममेगे णो आयंदमे, एगे आयंदमेवि, परंदमेवि, एगे णो आयंदमे णो परंदमे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. आत्म-दम, किन्तु पर-दम नहीं—जो अपना दमन करे, किन्तु दूसरे का दमन न करे।

२. पर-दम, किन्तु आत्म-दम नहीं—जो पर का दमन करे, किन्तु अपना दमन न करे।

३. आत्म-दम भी और पर-दम भी—जो अपना दमन भी करे और पर का दमन भी करे।

४. न आत्म-दम, न पर-दम—जो न अपना दमन करे और न पर का दमन करे (२६३)।

गर्हा-सूत्र

२६४—चउव्विहा गरहा पण्णत्ता, तं जहा—उवसंपज्जामित्तेगा गरहा, वितिगिच्छामित्तेगा गरहा, जंकिंचिमिच्छामित्तेगा गरहा, एवंपि पण्णत्तेगा गरहा।

गर्हा चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. उपसम्पदारूप गर्हा—अपने दोष को निवेदन करने के लिए गुरु के समीप जाऊं, इस प्रकार का विचार करना, यह एक गर्हा है।

२. विचिकित्सारूप गर्हा—अपने निन्दनीय दोषों का निराकरण करूं, इस प्रकार का विचार करना, यह दूसरी गर्हा है।

३. मिच्छामिरूप गर्हा—जो कुछ मैंने असद् आचरण किया है, वह मेरा मिथ्या हो, इस प्रकार के विचार से प्रेरित हो ऐसा कहना यह तीसरी गर्हा है।

४. एवमपि प्रज्ञप्तिरूप गर्हा—ऐसा भी भगवान् ने कहा है कि अपने दोष की गर्हा (निन्दा) करने से भी किये गये दोष की शुद्धि होती है, ऐसा विचार करना, यह चौथी गर्हा है (२६४)।

अलमस्तु (निग्रह)-सूत्र

२६५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे अलमंथू भवति णो परस्स, परस्स णाममेगे अलमंथू भवति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि अलमंथू भवति परस्सवि, एगे णो अप्पणो अलमंथू भवति णो परस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आत्म-अलमस्तु, पर अलमस्तु नहीं—कोई पुरुष अपना निग्रह करने में समर्थ होता है, किन्तु दूसरे का निग्रह करने में समर्थ नहीं होता।

२. पर-अलमस्तु, आत्म-अलमस्तु नहीं—कोई पुरुष दूसरे का निग्रह करने में समर्थ होता है, अपना निग्रह करने में समर्थ नहीं होता।

३. आत्म-अलमस्तु भी और पर-अलमस्तु भी—कोई पुरुष अपना निग्रह करने में भी समर्थ होता है और पर के निग्रह करने में भी समर्थ होता है।

४. न आत्म-अलमस्तु, न पर-अलमस्तु—कोई पुरुष न अपना निग्रह करने में समर्थ होता है और न पर का निग्रह करने में समर्थ होता है (२६५)।

विवेचन—'अलमस्तु' का दूसरा अर्थ है—निषेधक अर्थात् निषेध करने वाला; कुकृत्य में प्रवृत्ति को रोकने वाला। इसकी चौभंगी भी उक्त प्रकार से ही समझ लेनी चाहिए।

ऋजु-वक्र-सूत्र

२६६—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वंके, वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वंके, वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके।

मार्ग चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. ऋजु और ऋजु—कोई मार्ग ऋजु (सरल) दिखता है और सरल ही होता है।
२. ऋजु और वक्र—कोई मार्ग ऋजु दिखता है, किन्तु वक्र होता है।
३. वक्र और ऋजु—कोई मार्ग वक्र दिखता है, किन्तु ऋजु होता है।
४. वक्र और वक्र—कोई मार्ग वक्र दिखता है और वक्र ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. ऋजु और ऋजु—कोई पुरुष सरल दिखता है और सरल ही होता है।
२. ऋजु और वक्र—कोई पुरुष सरल दिखता है किन्तु कुटिल होता है।
३. वक्र और ऋजु— कोई पुरुष कुटिल दिखता है, किन्तु सरल होता है।
४. वक्र और वक्र—कोई पुरुष कुटिल दिखता है और कुटिल होता है (२६६)।

विवेचन—ऋजु का अर्थ सरल या सीधा और वक्र का अर्थ कुटिल है। कोई मार्ग आदि में सीधा और अन्त में भी सीधा होता है, इस प्रकार से मार्ग के शेष भंगों को भी जानना चाहिए। पुरुष पक्ष में संस्कृत टीकाकार ने दो प्रकार से अर्थ किया है। जैसे—

(१) प्रथम प्रकार—१. कोई पुरुष प्रारम्भ में ऋजु प्रतीत होता है और अन्त में भी ऋजु निकलता है, इस प्रकार से शेष भंगों का भी अर्थ करना चाहिए।

(२) द्वितीय प्रकार—१. कोई पुरुष ऊपर से ऋजु दिखता है और भीतर से भी ऋजु होता है। इस प्रकार से शेष भंगों का अर्थ करना चाहिए।

क्षेम-अक्षेम-सूत्र

२६७—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे, अखेमे णाममेगे अखेमे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे, अखेमे णाममेगे अखेमे।

पुनः मार्ग चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षेम और क्षेम—कोई मार्ग आदि में भी क्षेम (निरुपद्रव) होता है और अन्त में भी क्षेम होता है।

२. क्षेम और अक्षेम—कोई मार्ग आदि में क्षेम, किन्तु अन्त में अक्षेम (उपद्रव वाला) होता है।

३. अक्षेम और क्षेम—कोई मार्ग आदि में अक्षेम, किन्तु अन्त में क्षेम होता है।

४. अक्षेम और अक्षेम—कोई मार्ग आदि में भी अक्षेम और अन्त में भी अक्षेम होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षेम और क्षेम—कोई पुरुष आदि में क्षेम क्रोधादि (उपद्रव से रहित) होता है और अन्त में भी क्षेम होता है।

२. क्षेम और अक्षेम—कोई पुरुष आदि में क्षेम होता है, किन्तु अन्त में अक्षेम होता है।

३. अक्षेम और क्षेम—कोई पुरुष आदि में अक्षेम होता है किन्तु अन्त में क्षेम होता है।

४. अक्षेम और अक्षेम—कोई पुरुष आदि में भी अक्षेम होता है और अन्त में भी अक्षेम होता है (२६७)।

उक्त चारों भंगों की बाहर से क्षमाशील और अंतरंग से भी क्षमाशील, तथा बाहर से क्रोधी और अन्तरंग से भी क्रोधी इत्यादि रूप में व्याख्या समझनी चाहिए। इस व्याख्या के अनुसार प्रथम भंग में द्रव्य-भावलिंगी साधु, दूसरे में द्रव्यलिंगी साधु, तीसरे में निह्नव और चौथे में अन्यतीर्थिकों का समावेश होता है। आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

२६८—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे, अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे, अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

पुनः मार्ग चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. क्षेम और क्षेमरूप—कोई मार्ग क्षेम और क्षेम रूप (आकार) वाला होता है।

२. क्षेम और अक्षेमरूप—कोई मार्ग क्षेम, किन्तु अक्षेमरूप वाला होता है।

३. अक्षेम और क्षेमरूप—कोई मार्ग अक्षेम, किन्तु क्षेमरूप वाला होता है।

४. अक्षेम और अक्षेमरूप—कोई मार्ग अक्षेम और अक्षेमरूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. क्षेम और क्षेमरूप—कोई पुरुष क्षेम और क्षेम रूपवाला होता है।

२. क्षेम और अक्षेमरूप—कोई पुरुष क्षेम, किन्तु अक्षेम रूपवाला होता है।

३. अक्षेम और क्षेमरूप—कोई पुरुष अक्षेम, किन्तु क्षेमरूप वाला होता है।

४. अक्षेम और अक्षेमरूप—कोई पुरुष अक्षेम और अक्षेमरूप वाला होता है (२६८)।

वाम-दक्षिण-सूत्र

२६९—चत्तारि संबुक्का पण्णत्ता, तं जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उज्जू णाममेगे उज्जू, उज्जू णाममेगे वंके, वंके णाममेगे उज्जू, वंके णाममेगे वंके।

मार्ग चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. ऋजु और ऋजु—कोई मार्ग ऋजु (सरल) दिखता है और सरल ही होता है।
२. ऋजु और वक्र—कोई मार्ग ऋजु दिखता है, किन्तु वक्र होता है।
३. वक्र और ऋजु—कोई मार्ग वक्र दिखता है, किन्तु ऋजु होता है।
४. वक्र और वक्र—कोई मार्ग वक्र दिखता है और वक्र ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. ऋजु और ऋजु—कोई पुरुष सरल दिखता है और सरल ही होता है।
२. ऋजु और वक्र—कोई पुरुष सरल दिखता है किन्तु कुटिल होता है।
३. वक्र और ऋजु— कोई पुरुष कुटिल दिखता है, किन्तु सरल होता है।
४. वक्र और वक्र—कोई पुरुष कुटिल दिखता है और कुटिल होता है (२६६)।

विवेचन—ऋजु का अर्थ सरल या सीधा और वक्र का अर्थ कुटिल है। कोई मार्ग आदि सीधा और अन्त में भी सीधा होता है, इस प्रकार से मार्ग के शेष भंगों को भी जानना चाहिए पुरुष पक्ष में संस्कृत टीकाकार ने दो प्रकार से अर्थ किया है। जैसे—

(१) प्रथम प्रकार—१. कोई पुरुष प्रारम्भ में ऋजु प्रतीत होता है और अन्त में भी ऋजु निकलता है, इस प्रकार से शेष भंगों का भी अर्थ करना चाहिए।

(२) द्वितीय प्रकार—१. कोई पुरुष ऊपर से ऋजु दिखता है और भीतर से भी ऋजु होता है। इस प्रकार से शेष भंगों का अर्थ करना चाहिए।

क्षेम-अक्षेम-सूत्र

२६७—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे, अखेमे णाममेगे अखेमे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमे, खेमे णाममेगे अखेमे, अखेमे णाममेगे खेमे, अखेमे णाममेगे अखेमे।

पुनः मार्ग चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षेम और क्षेम—कोई मार्ग आदि में भी क्षेम (निरुपद्रव) होता है और अन्त में भी क्षेम होता है।

२. क्षेम और अक्षेम—कोई मार्ग आदि में क्षेम, किन्तु अन्त में अक्षेम (उपद्रव वाला) होता है।

३. अक्षेम और क्षेम—कोई मार्ग आदि में अक्षेम, किन्तु अन्त में क्षेम होता है।

४. अक्षेम और अक्षेम—कोई मार्ग आदि में भी अक्षेम और अन्त में भी अक्षेम होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षेम और क्षेम—कोई पुरुष आदि में क्षेम क्रोधादि (उपद्रव से रहित) होता है और अन्त में भी क्षेम होता है।

२. क्षेम और अक्षेम—कोई पुरुष आदि में क्षेम होता है, किन्तु अन्त में अक्षेम होता है।

३. अक्षेम और क्षेम—कोई पुरुष आदि में अक्षेम होता है किन्तु अन्त में क्षेम होता है।

४. अक्षेम और अक्षेम—कोई पुरुष आदि में भी अक्षेम होता है और अन्त में भी अक्षेम होता है (२६७)।

उक्त चारों भंगों की बाहर से क्षमाशील और अंतरंग से भी क्षमाशील, तथा बाहर से क्रोधी और अन्तरंग से भी क्रोधी इत्यादि रूप में व्याख्या समझनी चाहिए। इस व्याख्या के अनुसार प्रथम भंग में द्रव्य-भावलिंगी साधु, दूसरे में द्रव्यलिंगी साधु, तीसरे में निह्नव और चौथे में अन्यतीर्थिकों का समावेश होता है। आगे भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

२६८—चत्तारि मग्गा पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे, अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—खेमे णाममेगे खेमरूवे, खेमे णाममेगे अखेमरूवे, अखेमे णाममेगे खेमरूवे, अखेमे णाममेगे अखेमरूवे।

पुनः मार्ग चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. क्षेम और क्षेमरूप—कोई मार्ग क्षेम और क्षेम रूप (आकार) वाला होता है।

२. क्षेम और अक्षेमरूप—कोई मार्ग क्षेम, किन्तु अक्षेमरूप वाला होता है।

३. अक्षेम और क्षेमरूप—कोई मार्ग अक्षेम, किन्तु क्षेमरूप वाला होता है।

४. अक्षेम और अक्षेमरूप—कोई मार्ग अक्षेम और अक्षेमरूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. क्षेम और क्षेमरूप—कोई पुरुष क्षेम और क्षेम रूपवाला होता है।

२. क्षेम और अक्षेमरूप—कोई पुरुष क्षेम, किन्तु अक्षेम रूपवाला होता है।

३. अक्षेम और क्षेमरूप—कोई पुरुष अक्षेम, किन्तु क्षेमरूप वाला होता है।

४. अक्षेम और अक्षेमरूप—कोई पुरुष अक्षेम और अक्षेमरूप वाला होता है (२६८)।

वाम-दक्षिण-सूत्र

२६९—चत्तारि संवुक्का पण्णत्ता, तं जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

शंख चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. वाम और वामावर्त—कोई शंख वाम (वाम पार्श्व में स्थित या प्रतिकूल गुण वाला) और वामावर्त (बाईं ओर घुमाव वाला) होता है।

२. वाम और दक्षिणावर्त—कोई शंख वाम और दक्षिणावर्त (दाईं ओर घुमाव वाला) होता है।

३. दक्षिण और वामावर्त—कोई शंख दक्षिण (दाहिने पार्श्व में स्थित या अनुकूल गुण वाला) और वामावर्त होता है।

४. दक्षिण और दक्षिणावर्त—कोई शंख दक्षिण और दक्षिणावर्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. वाम और वामावर्त—कोई पुरुष वाम (स्वभाव से प्रतिकूल) और वामावर्त (प्रवृत्ति से भी प्रतिकूल) होता है।

२. वाम और दक्षिणावर्त—कोई पुरुष वाम, किन्तु दक्षिणावर्त (अनुकूल प्रवृत्ति वाला) होता है।

३. दक्षिण और वामावर्त—कोई पुरुष दक्षिण (स्वभाव से अनुकूल), किन्तु वामावर्त होता है।

४. दक्षिण और दक्षिणावर्त—कोई पुरुष दक्षिण (स्वभाव से भी अनुकूल) और दक्षिणावर्त (अनुकूल प्रवृत्ति वाला) होता है (२६९)।

२७०—चत्तारि धूमसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

धूम-शिखाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. वामा और वामावर्ता—कोई धूम-शिखा वाम और वामावर्त होती है।
२. वामा और दक्षिणावर्ता—कोई धूम-शिखा वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होती है।
३. दक्षिणा और वामावर्ता—कोई धूम-शिखा दक्षिण, किन्तु वामावर्त होती है।
४. दक्षिण और दक्षिणावर्ता—कोई धूम-शिखा दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है।

इसी प्रकार चार प्रकार की स्त्रियां कही गई हैं, जैसे—

१. वामा और वामावर्ता—कोई स्त्री वाम और वामावर्त होती है।
२. वामा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होती है।
३. दक्षिणा और वामावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण किन्तु वामावर्ती होती है।
४. दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है (२७०)।

२७१—चत्तारि अग्गिसिहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

अग्नि-शिखाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. वामा और वामावर्ता—कोई अग्नि-शिखा वाम और वामावर्त होती है।
२. वामा और दक्षिणावर्ता—कोई अग्नि-शिखा वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होती है।
३. दक्षिणा और वामावर्ता—कोई अग्नि-शिखा दक्षिण, किन्तु वामावर्त होती है।
४. दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई अग्नि-शिखा दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है।

इसी प्रकार स्त्रियां भी चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. वामा और वामावर्ता—कोई स्त्री वाम और वामावर्त होती है।
२ वामा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होती है।
३. दक्षिणा और वामावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण, किन्तु वामावर्त होती है।
४. दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है (२७१)।

२७२—चत्तारि वायमंडलिया पण्णत्ता, तं जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

एवामेव चत्तारि इत्थीओ पण्णत्ताओ. तं जहा—वामा णाममेगा वामावत्ता, वामा णाममेगा दाहिणावत्ता, दाहिणा णाममेगा वामावत्ता, दाहिणा णाममेगा दाहिणावत्ता।

वात-मण्डलिकाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. वामा और वामावर्ता—कोई वात-मण्डलिका वाम और वामावर्त होती है।
२. वामा और दक्षिणावर्ता—कोई वात-मण्डलिका वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होती है।
३. दक्षिणा और वामावर्ता—कोई वात-मण्डलिका दक्षिण, किन्तु वामावर्त होती है।
४. दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई वात-मण्डलिका दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है।

इसी प्रकार स्त्रियां भी चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. वामा और वामावर्ता—कोई स्त्री वाम और वामावर्त होती है।
२. वामा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होती है।
३. दक्षिणा और वामावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण, किन्तु वामावर्त होती है।
४. दक्षिणा और दक्षिणावर्ता—कोई स्त्री दक्षिण और दक्षिणावर्त होती है (२७२)।

विवेचन—उपर्युक्त तीन सूत्रों में क्रमशः धूम-शिखा, अग्निशिखा और वात-मण्डलिका के चार-चार प्रकारों का, तथा उनके दार्ष्टान्ति स्वरूप चार-चार प्रकार की स्त्रियों का निरूपण किया गया है। जैसे धूम-शिखा मलिन स्वभाववाली होती है, उसी प्रकार मलिन स्वभाव की अपेक्षा स्त्रियों के चारों भागों को घटित करना चाहिए। इसी प्रकार अग्नि-शिखा के सन्ताप-स्वभाव और वात-मण्डलिका के चपल-स्वभाव के समान स्त्रियों की सन्ताप-जनकता और चंचलता स्वभावों की अपेक्षा चार-चार भंगों को घटित करना चाहिए।

२७३—चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वामे णाममेगे वामावत्ते, वामे णाममेगे दाहिणावत्ते, दाहिणे णाममेगे वामावत्ते, दाहिणे णाममेगे दाहिणावत्ते।

वनषण्ड (उद्यान) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. वाम और वामावर्त—कोई वनषण्ड वाम और वामावर्त होता है।
२. वाम और दक्षिणावर्त—कोई वनषण्ड वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होता है।
३. दक्षिण और वामावर्त—कोई वनषण्ड दक्षिण और वामावर्त होता है।
४. दक्षिण और दक्षिणावर्त—कोई वनषण्ड दक्षिण और दक्षिणावर्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. वाम और वामावर्त—कोई पुरुष वाम और वामावर्त होता है।
२. वाम और दक्षिणावर्त—कोई पुरुष वाम, किन्तु दक्षिणावर्त होता है।
३. दक्षिण और वामावर्त—कोई पुरुष दक्षिण, किन्तु वामावर्त होता है।
४. दक्षिण और दक्षिणावर्त—कोई पुरुष दक्षिण और दक्षिणावर्त होता है (२७३)।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-सूत्र

२७४—चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं आलवमाणे वा संलवमाणे वा णातिक्कमति, तं जहा—१. पंथं पुच्छमाणे वा, २. पंथं देसमाणे वा, ३. असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दलेमाणे वा, ४. असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा, दलावेमाणे वा।

निर्ग्रन्थ चार कारणों से निर्ग्रन्थी के साथ आलाप-संलाप करता हुआ निर्ग्रन्थाचार का उल्लंघन नहीं करता है। जैसे—

१. मार्ग पूछता हुआ। २. मार्ग बताता हुआ।
३. अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य देता हुआ।
४. गृहस्थों के घर से अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य दिलाता हुआ (२७४)।

तमस्काय-सूत्र

२७५—तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—तमेति वा, तमुक्काएति वा, अंधकारेति वा, महंधकारेति वा।

तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं। जैसे—

१. तम, २. तमस्काय, ३. अन्धकार, ४. महान्धकार (२७५)।

२७६—तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—लोगंधगारेति वा, लोगतमसेति वा, देवंधगारेति वा देवतमसेति वा।

पुन: तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं, जैसे—

१. लोकान्धकार, २. लोकतम, ३. देवान्धकार, ४. देवतम (२७६)।

२७७—तमक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—वातफलिहेति वा, वातफलिहखोभेति वा, देवरण्णेति वा, देववूहेति वा।

पुन: तमस्काय के चार नाम कहे गये हैं, जैसे—

१. वातपरिघ, २. वातपरिघक्षोभ, ३. देवारण्य, ४. देवव्यूह (२७७)।

विवेचन—उक्त तीनों सूत्रों में जिस तमस्काय का निरूपण किया गया है वह जलकाय के परिणमन-जनित अन्धकार का एक प्रचयविशेष है। इस जम्बूद्वीप से आगे असंख्यात द्वीप-समुद्र जाकर अरुणवर द्वीप आता है। उसकी बाहरी वेदिका के अन्त में अरुणवर समुद्र है। उसके भीतर ४२ हजार योजन जाने पर एक प्रदेश विस्तृत गोलाकार अन्धकार की एक श्रेणी ऊपर की ओर उठती है जो १७२१ योजन ऊंची जाने के बाद तिर्यक् विस्तृत होती हुई सौधर्म आदि चारों देवलोकों को घेर कर पांचवें ब्रह्मलोक के रिष्ट विमान तक चली गई है। यत: उसके पुद्‌गल कृष्णवर्ण के हैं, अत: उसे तमस्काय कहा जाता है। प्रथम सूत्र में उसके चार नाम सामान्य अन्धकार के और दूसरे सूत्र में उसके चार नाम महान्धकार के वाचक हैं। लोक में इसके समान अत्यन्त काला कोई दूसरा अन्धकार नहीं है, इसलिए उसे लोकतम और लोकान्धकार कहते है। देवों के शरीर की प्रभा भी वहां हतप्रभ हो जाती है, अत: उसे देवतम और देवान्धकार कहते हैं। वात (पवन) भी उसमें प्रवेश नहीं पा सकता, अत: उसे वात-परिघ और वातपरिघक्षोभ कहते हैं। देवों के लिए भी वह दुर्गम है, अत: उसे देवारण्य और देवव्यूह कहा जाता है।

२७८—तमुक्काए णं चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठति, तं जहा—सोधम्मीसाणं सणंकुमार-माहिंदं।

तमस्काय चार कल्पों को घेर करके अवस्थित है। जैसे—

१. सौधर्मकल्प, २. ईशानकल्प, ३ सनत्कुमार कल्प ४. माहेन्द्रकल्प (२७८)।

दोष-प्रतिवेवि-सूत्र

२७९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—संपागडपडिसेवी णाममेगे, पच्छण्णपडिसेवी णाममेगे, पडुप्पण्णणंदी णाममेगे, णिस्सरणणंदी णाममेगे।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। जैसे—

१. सम्प्रकटप्रतिसेवी—कोई पुरुष प्रकट में (अगीतार्थ के समक्ष अथवा जान-बूझकर दर्प से) दोष सेवन करता है।

२. प्रच्छन्नप्रतिसेवी—कोई पुरुष छिपकर दोष सेवन करता है।

३. प्रत्युत्पन्नप्रतिनन्दी—कोई पुरुष यथालब्ध का सेवन करके आनन्दानुभव करता है।

४. नि:सरणानन्दी—कोई पुरुष दूसरों के चले जाने पर (गच्छ आदि से अभ्यागत साधु या शिष्य आदि के निकल जाने पर) प्रसन्न होता है (२७९)।

जय-पराजय-सूत्र

२८०—चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जइत्ता णाममेगा णो पराजिणित्ता, पराजिणित्ता णाममेगा णो जइत्ता, एगा जइत्तावि पराजिणित्तावि, एगा णो जइत्ता णो पराजिणित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जइत्ता णाममेगे णो पराजिणित्ता, पराजिणित्ता णाममेगे णो जइत्ता, एगे जइत्तावि पराजिणित्तावि, एगे णो जइत्ता, णो पराजिणित्ता।

सेनाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे--

१. जेत्री, न पराजेत्री--कोई सेना शत्रु-सेना को जीतती है, किन्तु शत्रु-सेना से पराजित नहीं होती।
२. पराजेत्री, न जेत्री--कोई सेना शत्रु-सेना से पराजित होती है, किन्तु उसे जीतती नहीं है।
३. जेत्री भी, पराजेत्री भी—कोई सेना कभी शत्रु-सेना को जीतती भी है और कभी उससे पराजित भी होती है।
४. न जेत्री, न पराजेत्री--कोई सेना न जीतती है और न पराजित ही होती है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. जेता, न पराजेता—कोई साधु-पुरुष परीषहादि को जीतता है, किन्तु उनसे पराजित नहीं होता। जैसे भगवान् महावीर।
२. पराजेता, न जेता—कोई साधु-पुरुष परीषहादि से पराजित होता है, किन्तु उनको जीत नहीं पाता। जैसे कण्डरीक।
३. जेता भी, पराजेता भी—कोई साधु पुरुष परीषहादि को कभी जीतता भी है और कभी उनसे पराजित भी होता है। जैसे—शैलक राजर्षि।
४. न जेता, न पराजेता—कोई साधु पुरुष परीषहादि को न जीतता ही है और न पराजित ही होता है। जैसे—अनुत्पन्न परीषहवाला साधु (२८०)।

२८१—चत्तारि सेणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—जइत्ता णाममेगा जयइ, जइत्ता णाममेगा पराजिणति, पराजिणित्ता णाममेगा जयइ, पराजिणित्ता णाममेगा पराजिणति।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जइत्ता णाममेगा जयइ, जइत्ता णाममेगे पराजिणति, पराजिणित्ता णाममेगे जयइ, पराजिणित्ता णाममेगे पराजिणति।

पुनः सेनाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. जित्वा, पुनः जेत्री—कोई सेना एक वार शत्रु-सेना को जीतकर दुबारा युद्ध होने पर फिर भी जीतती है।
२. जित्वा, पुनः पराजेत्री—कोई सेना एक वार शत्रु-सेना को जीतकर दुबारा युद्ध होने पर उससे पराजित होती है।
३. पराजित्य, पुनः जेत्री—कोई सेना एक वार शत्रु-सेना से पराजित होकर दुबारा युद्ध होने पर उसे जीतती है।

४. पराजित्य पुनः पराजेत्री—कोई सेना एक बार पराजित होकर के पुनः पराजित होती है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जित्वा पुनः जेता—कोई पुरुष कष्टों को जीत कर फिर भी जीतता है।
२. जित्वा पुनः पराजेता—कोई पुरुष कष्टों को पहले जीतकर पुनः (बाद में) हार जाता है।
३. पराजित्य पुनः जेता—कोई पुरुष पहले हार कर पुनः जीतता है।
४. पराजित्य पुनः पराजेता—कोई पुरुष पहले हार कर फिर भी हारता है (२८१)।

माया-सूत्र

२८२—चत्तारि केतणा पण्णत्ता, तं जहा—वंसीमूलकेतणए, मेंढविसाणकेतणए, गोमुत्तिकेतणए, अवलेहणियकेतणए।

एवामेव चउविधा माया पण्णत्ता, तं जहा—वंसीमूलकेतणासमाणा, जाव (मेंढविसाणकेतणासमाणा, गोमुत्तिकेतणासमाणा), अवलेहणियकेतणासमाणा।

१. वंसीमूलकेतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।
२. मेंढविसाणकेतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति।
३. गोमुत्ति जाव (केतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे) कालं करेति, मणुस्सेसु उववज्जति।
४. अवलेहणिय जाव (केतणासमाणं मायमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति), देवेसु उववज्जति।

केतन (वक्र पदार्थ) चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. वंशीमूल केतनक, वांस की जड़ का वक्रपन।
२. मेढ़विषाणकेतनक—मेढ़े के सींग का वक्रपन।
३. गोमूत्रिका केतनक—चलते बैल की मूत्र-धारा का वक्रपन।
४. अवलेखनिका केतनक—छिलते हुए बाँस की छाल का वक्रपन।

इसी प्रकार माया भी चार प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. वंशीमूल केतनसमाना—बांस की जड़ के समान अत्यन्त कुटिल अनन्तानुबन्धी माया।
२. मेढ़विषाण केतनसमाना—मेढ़े के सींग के समान कुटिल अप्रत्याख्यानावरण माया।
३. गोमूत्रिका केतनसमाना—गोमूत्रिका केतनक के समान प्रत्याख्यानावरण माया।
४. अवलेखनिका केतनकसमाना—बांस के छिलके के समान संज्वलन माया।

१. वंशीमूल के समान माया में प्रवर्तमान जीव काल (मरण) करता है तो नारकी जीवों में उत्पन्न होता है।
२. मेष-विषाण के समान माया में प्रवर्तमान जीव काल करता है तो तिर्यग्योनि के जीवों में उत्पन्न होता है।
३. गोमूत्रिका के समान माया में प्रवर्तमान जीव काल करता है तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

४. अवलेखनिका के समान माया में प्रवर्तमान जीव काल करता है तो देवों में उत्पन्न होता है (२८२)।

मान-सूत्र

२८३—चत्तारि थंभा पण्णत्ता, तं जहा—सेलथंभे, अट्ठिथंभे, दारुथंभे, तिणिसलताथंभे। एवामेव चउव्विधे माणे पण्णत्ते, तं जहा—सेलथंभसमाणे, जाव (अट्ठिथंभसमाणे, दारुथंभसमाणे), तिणिसलताथंभसमाणे।

१. सेलथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।
२. एवं जाव (अट्ठिथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे कालं करेति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति।
३. दारुथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, मणुस्सेसु उववज्जति)।
४. तिणिसलताथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, देवेसु उववज्जति।

स्तम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. शैलस्तम्भ—पत्थर का खम्भा। २. अस्थिस्तम्भ—हाड़ का खम्भा।
३. दारुस्तम्भ—काठ का खम्भा। ४. तिनिशलतास्तम्भ—वेंत का स्तम्भ।

इसी प्रकार मान भी चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. शैलस्तम्भ समान—पत्थर के खम्भे के समान अत्यन्त कठोर अनन्तानुवन्धी मान।
२. अस्थिस्तम्भ समान—हाड़ के खम्भे के समान कठोर अप्रत्याख्यानावरण मान।
३. दारुस्तम्भ समान—काठ के खम्भे के समान अल्प कठोर प्रत्याख्यानावरण मान।
४. तिनिशलतास्तम्भ समान—वेंत के खम्भे के समान स्वल्प कठोर संज्वलन मान।

१. शैलस्तम्भ के समान मान में प्रवर्तमान जीव काल करता है तो नारकियों में उत्पन्न होता है।
२. अस्थिस्तम्भ के समान मान में प्रवर्तमान जीव काल करता है तो तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता है।
३. दारुस्तम्भ के समान मान में प्रवर्तमान जीव काल करता है तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
४. तिनिशलतास्तम्भ के समान मान में प्रवर्तमान जीव काल करता है तो देवों में उत्पन्न होता है (२८३)।

लोभ-सूत्र

२८४—चत्तारि वत्था पण्णत्ता, तं जहा—किमिरागरत्ते, कद्दमरागरत्ते, खंजणरागरत्ते, हलिद्दरागरत्ते।

एवामेव चउव्विधे लोभे पण्णत्ते, तं जहा—किमिरागरत्तवत्थसमाणे, कद्दमरागरत्तवत्थसमाणे, खंजणरागरत्तवत्थसमाणे, हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणे।

१. किमिरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जइ।

२. **तहेव जाव [कद्दमरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जइ ।**
३. **खंजणरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जइ ।]**
४. **हलिद्दरागरत्तवत्थसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, देवेसु उववज्जइ ।**

वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं, जैसे—

१. कृमिरागरक्त—कृमियों के रक्त से, या किर्मिजी रंग से रंगा हुआ वस्त्र ।
२. कर्दमरागरक्त—कीचड़ से रंगा हुआ वस्त्र ।
३. खञ्जनरागरक्त—काजल के रंग से रंगा हुआ वस्त्र ।
४. हरिद्रारागरक्त—हल्दी के रंग से रंगा हुआ वस्त्र ।

इसी प्रकार लोभ भी चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. कृमिरागरक्त वस्त्र के समान अत्यन्त कठिनाई से छूटने वाला अनन्तानुबन्धी लोभ ।
२. कर्दमरागरक्त वस्त्र के समान कठिनाई से छूटने वाला अप्रत्याख्यानावरण लोभ ।
३. खञ्जनरागरक्त वस्त्र के समान स्वल्प कठिनाई से छूटने वाला प्रत्याख्यानावरण लोभ ।
४. हरिद्रारागरक्त वस्त्र के समान सरलता से छूटने वाला संज्वलन लोभ ।

१. कृमिरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव काल कर नारकों में उत्पन्न होता है ।
२. कर्दमरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव काल कर तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता है ।
३. खञ्जनरागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव काल कर मनुष्यों में उत्पन्न होता है ।
४. हरिद्रारागरक्त वस्त्र के समान लोभ में प्रवर्तमान जीव काल कर देवों में उत्पन्न होता है (२८४) ।

विवेचन—प्रकृत मान, माया और लोभ पद में दिये गये दृष्टान्तों के द्वारा अनन्तानुबन्धी आदि चारों जाति के मान, माया और लोभ कषायों के स्वभावों को और उनके फल को दिखाया गया है। क्रोध कषाय की चार जातियों का निरूपण आगे इसी स्थान के तीसरे उद्देश के प्रारम्भ में किया गया है। सूत्र संख्या २८३ में संज्वलन मान का उदाहरण तिणिसलया (तिनिशलता) के खम्भे का दिया गया है। टीकाकार ने इसका अर्थ वृक्षविशेष किया है, किन्तु 'पाइअसद्दमहण्णवो' में इसका अर्थ 'वेंत' किया है और कसायपाहुडसुत्त, प्राकृत पंचसंग्रह और गोम्मटसार के जीवकाण्ड में तिनिशलता के स्थान पर 'वेत्र'[1] पद का स्पष्ट उल्लेख है। अतः यहां भी इसका अर्थ वेंत किया गया है।

अनन्तानुवन्धी लोभ का उदाहरण कृमिरागरक्त वस्त्र का दिया है। इसके विषय में दो अभिमत मिलते हैं। प्रथम अभिमत यह है कि मनुष्य का रक्त लेकर और उसमें कुछ अन्य द्रव्य मिला कर किसी वर्तन में रख देते हैं। कुछ समय के पश्चात् उसमें कीड़े पड़ जाते हैं। वे हवा में आकर लाल रंग की लार छोड़ते हैं, उस लार को एकत्र कर जो वस्त्र वनाया जाता है, उसे कृमिरागरक्त कहा जाता है।

१. सेलट्ठिकट्ठवेत्ते णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारय-तिरिय-णरामरगईसुप्पायओ कममो ।। (गो० जीवकाण्ड गा० २८४)

दूसरा अभिमत यह है कि किसी भी जीव के एकत्र किये गये रक्त में जो कीड़े पैदा हो जाते हैं उन्हें मसलकर कचरा फेंक दिया जाता है और कुछ दूसरी वस्तुएं मिलाकर जो रंग बनाया जाता है, उसे कृमिराग कहते है।

किन्तु दिगम्बर शास्त्रों में 'किमिराय' का अर्थ 'किरमिजी रंग' किया गया है। उससे रंगे गये वस्त्र का रंग छूटता नहीं है।

उपर्युक्त दि० ग्रन्थों में अप्रत्याख्यानावरण लोभ का उदाहरण चक्रमल (गाड़ी के चाक का मल) जैसे दिया गया है और प्रत्याख्यानावरण लोभ का दृष्टान्त तनु-मल (शरीर का मैल) दिया गया है।[1]

संसार-सूत्र

२८५—चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा—णेरइयसंसारे, जाव (तिरिक्खजोणियसंसारे, मणुस्ससंसारे), देवसंसारे।

संसार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. नैरयिकसंसार, २. तिर्यग्योनिकसंसार, ३. मनुष्यसंसार और, ४. देवसंसार (२८५)।

२८६—चउव्विहे आउए पण्णत्ते, तं जहा—णेरइयआउए, जाव (तिरिक्खजोणियआउए, मणुस्साउए), देवाउए।

आयुष्य चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. नैरयिक-आयुष्य, २. तिर्यग्योनिक-आयुष्य, ३. मनुष्य आयुष्य, और ४. देव आयुष्य। (२८६)।

२८७—चउव्विहे भवे पण्णत्ते, तं जहा—णेरइयभवे, जाव (तिरिक्खजोणियभवे, मणुस्सभवे) देवभवे।

भव चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. नैरयिकभव, २ तिर्यग्योनिकभव, ३ मनुष्यभव, और ४. देवभव (२८७)।

आहार-सूत्र

२८८—चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

आहार चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. अशन—अन्न आदि। २. पान—कांजी, दुग्ध, छाछ आदि।
३. खादिम—फल, मेवा आदि। ४. स्वादिम—ताम्बूल, लवंग, इलायची आदि (२८८)।

१. किमिराय चक्कतणुमलहलिद्दराएण सरिसओ लोहो।
णारय-तिरिय-णरामर गईसुप्पायओ कमसो ॥ (गो० जीवकाण्ड गा० २८६)

२८९—चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—उवक्खरसंपण्णे, उवक्खडसंपण्णे, सभावसंपण्णे, परिजुसियसंपण्णे।

पुन: आहार चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. उपस्कार-सम्पन्न—घी तेल आदि के वघार से युक्त मसाले डालकर तैयार किया आहार।
२. उपस्कृत-सम्पन्न—पकाया हुआ भात आदि।
३. स्वभाव-सम्पन्न—स्वभाव से पके फल आदि।
४. पर्युषित-सम्पन्न—रात-वासी रखने से तैयार हुआ आहार, जैसे—कांजी-रस में रक्खा आम्रफल (२८९)।

कर्मावस्था-सूत्र

२९०—चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिबंधे, ठितिबंधे, अणुभावबंधे, पदेसबंधे।

बन्ध चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

१. प्रकृतिबन्ध—बन्धनेवाले कर्म-पुद्गलों में ज्ञानादि के रोकने का स्वभाव उत्पन्न होना।
२. स्थितिबन्ध—बंधनेवाले कर्म-पुद्गलों की काल-मर्यादा का नियत होना।
३. अनुभावबन्ध—बंधनेवाले कर्म-पुद्गलों में फल देने की तीव्र-मन्द आदि शक्ति का उत्पन्न होना।
४. प्रदेशबन्ध—वंधनेवाले कर्म-पुद्गलों के प्रदेशों का समूह (२९०)।

२९१—चउव्विहे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—बंधणोवक्कमे, उदीरणोवक्कमे, उवसमणोवक्कमे, विप्परिणामणोवक्कमे।

उपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. बन्धनोपक्रम—कर्म-बन्धन में कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न।
२. उदीरणोपक्रम—कर्मों की उदीरणा में कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न।
३. उपशामनोपक्रम—कर्मों के उपशमन में कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न।
४. विपरिणामनोपक्रम—कर्मों की एक अवस्था से दूसरी अवस्था रूप परिणमन कराने में कारणभूत जीव के वीर्य विशेष का प्रयत्न (२९१)।

२९२—बंधणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिबंधणोवक्कमे, ठितिबंधणोवक्कमे, अणुभावबंधणोवक्कमे, पदेसबंधणोवक्कमे।

बन्धनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृतिवन्धनोपक्रम, २. स्थितिवन्धनोपक्रम, ३. अनुभाववन्धनोपक्रम और ४. प्रदेशवन्धनोपक्रम।

२९३—उदीरणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिउदीरणोवक्कमे, ठितिउदीरणोवक्कमे, अणुभावउदीरणोवक्कमे, पदेसउदीरणोवक्कमे।

उदीरणोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृति-उदीरणोपक्रम, २. स्थिति-उदीरणोपक्रम,
३. अनुभाव-उदीरणोपक्रम, ४. प्रदेश-उदीरणोपक्रम (२९३)।

२९४—उवसामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिउवसामणोवक्कमे, ठितिउवसामणोवक्कमे, अणुभावउवसामणोवक्कमे, पदेसउवसामणोवक्कमे।

उपशामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृति-उपशामनोपक्रम, २. स्थिति-उपशामनोपक्रम,
३. अनुभाव -उपशामनोपक्रम, ४. प्रदेश-उपशामनोमपक्रम। (२९४)

२९५—विप्परिणामणोवक्कमे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिविप्परिणामणोवक्कमे, ठितिविप्परिणामणोवक्कमे, अणुभावविप्परिणामणोवक्कमे, पएसविप्परिणामणोवक्कमे।

विपरिणामनोपक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृति-विपरिणामनोपक्रम, २. स्थिति-विपरिणापनोक्रम।
३. अनुभाव-विपरिणामनोपक्रम, ४. प्रदेश- विपरिणामनोपक्रम (२९५)।

२९६—चउव्विहे अप्पाबहुए पण्णत्ते, तं जहा—पगतिअप्पाबहुए, ठितिअप्पाबहुए, अणुभावअप्पाबहुए, पएसअप्पाबहुए।

अल्पबहुत्व चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृति-अल्पबहुत्व, २. स्थिति-अल्पबहुत्व,
३. अनुभाव-अल्पबहुत्व ४. प्रदेश-अल्पबहुत्व (२९६)।

२९७—चउव्विहे संकमे पण्णत्ते, तं जहा—पगतिसंकमे, ठितिसंकमे, अणुभावसंकमे, पएससंकमे।

संक्रम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृति-संक्रम, २. स्थिति-संक्रम
३. अनुभाव-संक्रम, ४. प्रदेश-संक्रम। (२९७)

२९८—चउव्विहे णिधत्ते पण्णत्ते, तं जहा—पगतिणिधत्ते, ढितिणिधत्ते, अणुभावणिधत्ते, पएसणिधत्ते।

निधत्त चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृति-निधत्त २. स्थिति-निधत्त,
३. अनुभाव-निधत्त, ४. प्रदेश-निधत्त। (२९८)

२९९—चउव्विहे णिकायिते पण्णत्ते, तं जहा—पगतिणिकायिते, ठितिणिकायिते, अणुभावणिकायिते, पएसणिकायिते।

निकाचित चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृति-निकाचित
२. स्थिति-निकाचित,
३. अनुभाव-निकाचित,
४. प्रदेश-निकाचित। (२९९)

विवेचन—सूत्र २९० से लेकर २९९ तक के १० सूत्रों में कर्मों की अनेक अवस्थाओं का निरूपण किया गया है। कर्मशास्त्र में कर्मों की १० अवस्थाएं बतलाई गई हैं—१, बन्ध, २. उदय ३. सत्त्व, ४. उदीरणा, ५. उद्वर्तन या उत्कर्षण, ६. अपवर्तन या अपकर्षण, ७. संक्रम, ८. उपशम, ९. निधत्ति और १०. निकाचित। इसमें से उदय और सत्त्व को छोड़कर शेष आठ की 'करण' संज्ञा है। क्योंकि उनके सम्पादन के लिए जीव को अपनी योग-संज्ञक वीर्य-शक्ति का विशेष उपक्रम करना पड़ता है। उक्त १० अवस्थाओं का स्वरूप इस प्रकार है—

१. बन्ध—जीव और कर्म-पुद्गलों के गाढ़ संयोग को बन्ध कहते हैं।
२. उदय—बन्धे हुए कर्म-पुद्गलों के यथासमय फल देने को उदय कहते हैं।
३. सत्त्व—बंधे कर्मों का जीव में उदय आने तक अवस्थित रहना सत्त्व कहलाता है।
४. उदीरणा—बंधे कर्मों का उदयकाल आने के पूर्व ही अपवर्तन करके उदय में लाने को उदीरणा कहते हैं।
५. उद्वर्तन—बंधे कर्मों की स्थिति और अनुभाव-शक्ति के बढ़ाने को उद्वर्तन कहते हैं।
६. अपवर्तन—बंधे कर्मों की स्थिति और अनुभाग-शक्ति के घटाने को अपवर्तन कहते हैं।
७. संक्रम—एक कर्म-प्रकृति के सजातीय अन्य प्रकृति में परिणमन होने को संक्रम कहते हैं।
८. उपशम—बंधे हुए कर्म को उदय—उदीरणा के अयोग्य करना उपशम कहलाता है।
९. निधत्ति—बंधे हुए जिस कर्म को उदय में भी न लाया जा सके और उद्वर्तन, अपवर्तन एवं संक्रम भी न किया जा सके, ऐसी अवस्था-विशेषको निधत्ति कहते हैं।
१०. निकाचित—बंधे हुए जिस कर्मका उपशम, उदीरणा, उद्वर्तना, अपवर्तना और संक्रम आदि कुछ भी न किया जा सके, ऐसी अवस्था-विशेष को निकाचित कहते हैं।

उक्त दशों ही प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेश के भेद से चार-चार प्रकार के होते हैं। उनमें से बन्ध, उदीरणा, उपशम, संक्रम, निधत्त और निकाचित के चार-चार भेदों का वर्णन सूत्रों में किया ही गया है। शेष उद्वर्तना और अपवर्तना का समावेश विपरिणामनोपक्रमण में किया गया है।

सूत्र २९६ में अल्प-बहुत्व का निरूपण किया गया है। कर्मों की प्रकृति, स्थिति, अनुभाव और प्रदेशों की हीनाधिकता को अल्प-बहुत्व कहते हैं।

संख्या-सूत्र

३००—चत्तारि एक्का पण्णत्ता, तं जहा—दविएक्कए, माउएक्कए, पज्जवेक्कए, संगहेक्कए।

'एक' संख्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. द्रव्यैक—द्रव्यत्व गुण की अपेक्षा सभी द्रव्य एक हैं।
२. मातृकैक—'उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' अर्थात् प्रत्येक पदार्थ नवीन पर्याय की अपेक्षा उत्पन्न होता है, पूर्वपर्याय की अपेक्षा नष्ट होता है और द्रव्य की अपेक्षा ध्रुव रहता है, यह मातृका पद कहलाता है। यह सभी नयों का बीजभूत मातृका पद एक है।
३. पर्यायैक—पर्यायत्व सामान्य की अपेक्षा सर्व पर्याय एक हैं।
४. संग्रहैक—समुदाय-सामान्य की अपेक्षा बहुत से भी पदार्थों का संग्रह एक है।

३०१—चत्तारि कती पण्णत्ता, तं जहा—दवियकती, माउयकती, पज्जवकती, संगहकती।

संख्या-वाचक 'कति' चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. द्रव्यकति—द्रव्य विशेषों की अपेक्षा द्रव्य अनेक हैं।
२. मातृकाकति—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य की अपेक्षा मातृका अनेक हैं।
३. पर्यायकति—विभिन्न पर्यायों की अपेक्षा पर्याय अनेक हैं।
४. संग्रहकति—अवान्तर जातियों की अपेक्षा संग्रह अनेक हैं (३०१)।

३०२—चत्तारि सव्वा पण्णत्ता, तं जहा—णामसव्वए, ठवणसव्वए, आएससव्वए, णिरवसेससव्वए।

'सर्व' चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. नामसर्व—नाम निक्षेप की अपेक्षा जिसका 'सर्व' यह नाम रखा जाय, वह नामसर्व है।
२. स्थापनासर्व—स्थापना निक्षेप की अपेक्षा जिस व्यक्ति में 'सर्व' का आरोप किया जाय, वह स्थापनासर्व है।
३. आदेशसर्व—अधिक की मुख्यता से और अल्प की गौणता से कहा जाने वाला आपेक्षिक सर्व 'आदेश सर्व' कहलाता है। जैसे—बहुभाग पुरुषों के चले जाने पर और कुछ के शेष रहने पर भी कह दिया जाता है कि 'सर्व ग्राम गया'।
४. निरवशेषसर्व—सम्पूर्ण व्यक्तियों के आश्रय से कहा जाने वाला 'सर्व' निरवशेष सर्व कहलाता है। जैसे—सर्व देव अनिमिष (नेत्र-टिमिकार-रहित) होते हैं, क्योंकि एक भी देव नेत्र-टिमिकार-सहित नहीं होता (३०२)।

कूट-सूत्र

३०३—माणुसुत्तरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिं चत्तारि कूडा पण्णत्ता, तं जहा—रयणे रतणुच्चए, सव्वरयणे, रतणसंचए।

मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं में चार कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. रत्नकूट—यह दक्षिण-पूर्व आग्नेय दिशा में अवस्थित है।
२. रत्नोच्चयकूट—यह दक्षिण-पश्चिम नैऋत्य दिशा में अवस्थित है।
३. सर्वरत्नकूट—यह पूर्व-उत्तर ईशान दिशा में अवस्थित है।
४. रत्नसंचयकूट—यह पश्चिम-उत्तर वायव्य दिशा में अवस्थित है (३०३)।

कालचक्र-सूत्र

३०४—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो हुत्था ।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अतीत उत्सर्पिणी के 'सुषम-सुषमा' नामक आरे का काल-प्रमाण चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम था (३०४)।

३०५—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो ।

जम्बूद्वीपक नामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में इस अवसर्पिणी के 'सुषम-सुषमा' नामक आरे का काल-प्रमाण चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम था (३०५)।

३०६—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवतेसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो भविस्सइ ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों में आगामी उत्सर्पिणी के 'सुषम-सुषमा' नामक आरे का काल-प्रमाण चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम होगा (३०६)।

३०७—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरुउत्तरकुरुवज्जाओ चत्तारि अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते, हेरण्णवते, हरिवरिसे, रम्मगवरिसे ।

चत्तारि वट्टवेयड्डपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—सद्दावाती, वियडावाती, गंधावाती, मालवंतपरियाते ।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—साती, पभासे, अरुणे, पउमे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर चार अकर्मभूमियां कही गई हैं। जैसे—१. हैमवत, २. हैरण्यवत, ३. हरिवर्ष, ४. रम्यकवर्ष।

उनमें चार वैताढ्य पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. शब्दापाती, २. विकटापाती, ३. गन्धापाती, ४. माल्यवत्पर्याय।

उन पर पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्द्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१. स्वाति, २. प्रभास, ३. अरुण, ४. पद्म (३०७)।

महाविदेह-सूत्र

३०८—जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा उत्तरकुरा ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में महाविदेह क्षेत्र चार प्रकार का अर्थात् चार भागों में विभक्त कहा गया है। जैसे—

१. पूर्वविदेह, २. अपरविदेह, ३. देवकुरु, ४. उत्तरकुरु (३०८)।

पर्वत-सूत्र

३०९—सव्वे वि णं णिसढणीलवंतवासहरपव्वता चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि गाउसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वत ऊपर ऊंचाई से चार सौ योजन और भूमि-गत गहराई से चार सौ कोश कहे गये हैं (३०९)।

३१०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में सीता महानदी के उत्तरी किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. चित्रकूट, २. पद्मकूट, ३. नलिनकूट, ४. एक शैलकूट (३१०)।

३११—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मातंजणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में सीता महानदी के दक्षिणी किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. त्रिकूट, २. वैश्रवणकूट, ३. अंजनकूट, ४. मातांजनकूट (३११)।

३१२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए दाहिणकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग में सीतोदा महानदी के दक्षिणी किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. अंकावती, २. पक्ष्मावती, ३. आशीविष, ४. सुखावह (३१२)।

३१३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए उत्तरकूले चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चंदपव्वते, सूरपव्वते, देवपव्वते णागपव्वते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग में सीतोदा महानदी के उत्तरी किनारे पर चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. चन्द्रपर्वत, २, सूर्यपर्वत, ३. देवपर्वत, ४. नागपर्वत (३१३)।

३१४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स चउसु विदिसासु चत्तारि वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—सोमणसे, विज्जुप्पभे, गंधमायणे, मालवंते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत की चारों विदिशाओं में चार वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. सौमनस, २. विद्युत्प्रभ, ३. गन्धमादन, ४. माल्यवान् (३१४)।

शलाका-पुरुष-सूत्र

३१५—जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे जहण्णपए चत्तारि अरहंता चत्तारि चक्कवट्टी चत्तारि वलदेवा चत्तारि वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में कम से कम चार अर्हन्त, चार चक्रवर्ती, चार वलदेव और चार वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (३१५)।

मन्दर-पर्वत-सूत्र

३१६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वते चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—भद्दसालवणे, णंदणवणे, सोमणसवणे, पंडगवणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत पर चार वन कहे गये हैं। जैसे—

१. भद्रशाल वन, २. नन्दन वन, ३. सौमनस वन, ४. पण्डक वन (३१६)।

३१७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वते पंडगवणे चत्तारि अभिसेगसिलाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पंडुकंबलसिला, अइपंडुकंबलसिला, रत्तकंबलसिला, अतिरत्तकंबलसिला।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत पर पण्डक वन में चार अभिषेकशिलाएं कही गई हैं। जैसे—

१. पाण्डुकम्वल शिला, २. अतिपाण्डुकम्वल शिला, ३. रक्तकम्बल शिला, ४. अतिरक्त-कम्वल शिला (३१७)।

३१८—मंदरचूलिया णं उवरिं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

मन्दर पर्वत की चूलिका का ऊपरी विष्कम्भ (विस्तार) चार योजन कहा गया है।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-सूत्र

३१९—एवं धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धेवि कालं आदिं करेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति। एवं जाव पुक्खरवरदीवपच्चत्थिमद्धे जाव मंदरचूलियत्ति।

संग्रहणी-गाथा

जंबुद्दीवगआवस्सगं तु कालाओ चूलिया जाव।
धायइसंडे पुक्खरवरे य पुव्वावरे पासे ॥१॥

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी काल-पद (सूत्र ३०४) से लेकर यावत् मन्दरचूलिका (सूत्र ३१८) तक का सर्व कथन जानना चाहिए।

इसी प्रकार (अर्ध) पुष्करवर द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी कालपद से लेकर यावत् मन्दर चूलिका तक का सर्व कथन जानना चाहिए (३१९)।

काल-पद से लेकर मन्दर चूलिका तक जम्बूद्वीप में किया गया सभी वर्णन धातकीषण्ड द्वीप के और अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के पूर्व-अपर पार्श्वभाग में भी कहा गया है।

द्वार-सूत्र

३२०—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते। ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं पण्णत्ता।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्डिया जाव पलिग्रोवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के चार द्वार हैं। जैसे—

१. विजय द्वार, २. वैजयन्त द्वार, ३. जयन्त द्वार, ४. अपराजित द्वार।

वे द्वार विष्कम्भ (विस्तार) की अपेक्षा चार योजन और प्रवेश (मुख) की अपेक्षा भी चार योजन के कहे गये हैं।

उन द्वारों पर पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१. विजयदेव, २. वैजयन्तदेव, २. जयन्तदेव, ४. अपाराजितदेव (३२०)।

अन्तरद्वीप-सूत्र

३२१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिण्णि-तिण्णि जोयणसयाइं श्रोगाहित्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगूरुयदीवे, आभासियदीवे, वेसाणियदीवे णंगोलियदीवे।

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—एगूरुया, आभासिया, वेसाणिया, णंगोलिया।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में क्षुल्लक हिमवान् वर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र के भीतर तीन-तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। यथा—

१. एकोरुक द्वीप, २. आभाषिक द्वीप, ३. वैषाणिक द्वीप, ४, लांगुलिक द्वीप।

उन द्वीपों पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१. एकोरुक २. आभाषिक ३. वैषाणिक ४. लांगुलिक (३२१)।

विवेचन—अन्तर्द्वीपों में रहने वाले मनुष्यों के जो प्रकार यहां बतलाए गए हैं, उनके विषय में टीकाकार ने लिखा है—'द्वीपनामतः पुरुषाणां नामान्येव ते तु सर्वाङ्गोपाङ्गसुन्दराः, दर्शने मनोरमाः स्वरूपतो, नैकोरुकादय एवेति।' अर्थात् पुरुषों के जो नाम कहे गए हैं वे द्वीपों के नाम से ही हैं। वे तो समस्त अंगों और उपांगों से सुन्दर हैं, देखने में स्वरूप से मनोरम हैं। वे एकोरुक—एक पुरुष जांघ वाले आदि नहीं है। तात्पर्य यह कि उनके नामों का अर्थ उनमें घटित नहीं होता। मुनि श्री नथमलजी ने 'ठाणं' में जो अर्थ किया है वह टीकाकार के मन्तव्य से विरुद्ध एवं चिन्तनीय है।

३२२—तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—हयकण्णदीवे, गयकण्णदीवे, गोकण्णदीवे, सक्कुलिकण्णदीवे।

तेसु णं दीवेसु चउव्विधा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—हयकण्णा, गयकण्णा, गोकण्णा, सक्कुलिकण्णा।

उन उपर्युक्त अन्तर्द्वीपों की चारों विदिशाओं से लवण समुद्र के भीतर चार-चार सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१. हयकर्ण द्वीप, २. गजकर्ण द्वीप, ३. गोकर्ण द्वीप, ४. शष्कुलीकर्ण द्वीप।

उन अन्तर्द्वीपों पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१. हयकर्ण, २. गजकर्ण, ३. गोकर्ण, ४. शष्कुलीकर्ण (३२२)।

३२३—तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं पंच-पंच जोयणसयाइं ओगाहित्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—आयंसमुहदीवे, मेंढमुहदीवे, अओमुहदीवे, गोमुहदीवे।

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा। [परिवसंति, तं जहा—आयंसमुहा, मेंढमुहा, अओमुहा गोमुहा]।

उन अन्तर्द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र के भीतर पांच-पांच सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१. आदर्शमुख द्वीप, २. मेषमुख द्वीप, ३. अयोमुख द्वीप, ४. गोमुख द्वीप।

उन द्वीपों पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१. आदर्शमुख, २. मेषमुख, ३. अयोमुख,[1] ४. गोमुख (३२३)।

३२४—तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं छ-छ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—आसमुहदीवे, हत्थिमुहदीवे, सीहमुहदीवे, वग्घमुहदीवे।

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा [परिवसंति, तं जहा—आसमुहा, हत्थिमुहा, सीहमुहा, वग्घमुहा]।

उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र के भीतर छह-छह सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं जैसे—

१. अश्वमुख द्वीप २. हस्तिमुख द्वीप ३. सिंहमुख द्वीप ४. व्याघ्रमुख द्वीप।

उन द्वीपों पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१. अश्वमुख २. हस्तिमुख ३. सिंहमुख ४. व्याघ्रमुख (३२४)।

३२५—तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं सत्त-सत्त जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा, पण्णत्ता, तं जहा—आसकण्णदीवे, हत्थिकण्णदीवे, अकण्णदीवे, कण्णपाउरणदीवे।

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा [परिवसंति, तं जहा—आसकण्णा, हत्थिकण्णा, अकण्णा, कण्णपाउरणा]।

---

१. अओमुहा के स्थान पर अआमुह (अजामुख) पाठ भी है।

उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र के भीतर सात-सात सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१. अश्वकर्ण द्वीप २. हस्तिकर्ण द्वीप ३. अकर्ण द्वीप ४. कर्णप्रावरण द्वीप।

उन द्वीपों पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१. अश्वकर्ण २. हस्तिकर्ण ३. अकर्ण ४. कर्णप्रावरण (३२५)।

३२६—तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणमुद्दं अट्ठट्ठ जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—उक्कामुहदीवे, मेहमुहदीवे, विज्जुमुहदीवे, विज्जुदंतदीवे।

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा भाणियव्वा। [परिवसंति, तं जहा—उक्कामुहा, मेहमुहा, विज्जुमुहा, विज्जुदंता]।

उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र के भीतर आठ-आठ सौ योजना जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१. उल्कामुख द्वीप २. मेघमुख द्वीप ३. विद्युन्मुख द्वीप ४. विद्युद्दन्त द्वीप।

उन द्वीपों पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१. उल्कामुख २. मेघमुख ३. विद्युन्मुख ४. विद्युद्दन्त (३२६)।

३२७—तेसि णं दीवाणं चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं णव-णव जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—घणदंतदीवे, लट्ठदंतदीवे, गूढदंतदीवे, सुद्धदंतदीवे।

तेसु णं दीवेसु चउव्विहा मणुस्सा परिवसंति, तं जहा—घणदंता, लट्ठदंता, गूढदंता, सुद्धदंता।

उन द्वीपों की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र के भीतर नौ-नौ सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१. घनदन्त द्वीप २. लष्टदन्त द्वीप ३. गूढदन्त द्वीप ४. शुद्धदन्त द्वीप।

उन द्वीपों पर चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। जैसे—

१. घनदन्त २. लष्टदन्त ३. गूढदन्त ४. शुद्धदन्त (३२७)।

३२८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं तिण्णि-तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चत्तारि अंतरदीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगूरुयदीवे, सेसं तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव सुद्धदंता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं में लवण समुद्र के भीतर तीन-तीन सौ योजन जाने पर चार अन्तर्द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१. एकोरुक द्वीप २. आभाषिक द्वीप ३. वैषाणिक द्वीप ४. लांगुलिक द्वीप।

इस प्रकार जैसे क्षुल्लक हिमवान् वर्षधर पर्वत की चारों विदिशाओं में लवण-समुद्र के भीतर जितने अन्तर्द्वीप और जितने प्रकार के मनुष्य कहे गये हैं वह सर्व वर्णन यहां पर भी शुद्धदन्त मनुष्य पर्यन्त मन्दर पर्वत के उत्तर में जानना चाहिए (३२८)।

महापाताल-सूत्र

३२९—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउदिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं महतिमहालया महालंजरसंठाणसंठिता चत्तारि महापायाला पण्णत्ता, तं जहा—वलयामुहे, केउए, जूवए, ईसरे।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—काले, महाकाले, वेलंबे, पभंजणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप को बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिशाओं में लवण समुद्र के भीतर पंचानवे हजार योजन जाने पर चार महापाताल अवस्थित हैं, जो बहुत विशाल एवं बड़े भारी घड़े के समान आकार वाले हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. वड़वामुख (पूर्व में) २. केतुक (दक्षिण में)
३. यूपक (पश्चिम में) ४. ईश्वर (उत्तर में)।

उनमें पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१. काल २. महाकाल ३. वेलम्ब ४. प्रभंजन (३२९)।

आवास-पर्वत-सूत्र

३३०—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं बायालीसं-बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चउण्हं वेलंधरणागराईणं चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—गोथूभे, उदओभासे, संखे, दगसीमे।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—गोथूभे, सिवए, संखे, मणोसिलाए।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिशाओं में लवण-समुद्र के भीतर बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर वेलंधर नागराजों के चार आवास-पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. गोस्तूप २. उदावभास ३. शंख ४. दकसीम।

उनमें पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१. गोस्तूप २. शिवक ३. शंख ४. मनःशिलाक (३३०)।

३३१—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं बायालीसं-बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चउण्हं अणुवेलंधरणागराईणं चत्तारि आवासपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—ककोडए, विज्जुप्पभे, केलासे, अरुणप्पभे।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—ककोडए, कद्दमए, केलासे, अरुणप्पभे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की बाहरो वेदिका के अन्तिम भाग से चारों विदिशाओं में लवणसमुद्र

के भीतर बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर अनुवेलन्धर नागराजों के चार आवास-पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. कर्कोटक २. विद्युत्प्रभ ३. कैलाश ४. अरुणप्रभ।

उनमें पल्योपम की स्थिति वाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१. कर्कोटक २. कर्दमक ३. कैलाश ४. अरुणप्रभ (३३१)।

ज्योतिष-सूत्र

३३२—लवणे णं समुद्दे चत्तारि चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा पभासिस्संति वा। चत्तारि सूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति वा। चत्तारि कित्तियाओ जाव चत्तारि भरणीओ।

लवण समुद्र में चार चन्द्रमा प्रकाश करते थे, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करते रहेंगे।

चार सूर्य आताप करते थे, आताप करते हैं और आताप करते रहेंगे।

चार कृतिका यावत् चार भरणी तक के सभी नक्षत्रों ने चन्द्र के साथ योग किया था, करते हैं और करते रहेंगे (३३२)।

३३३—चत्तारि अग्गी जाव चत्तारि जमा।

नक्षत्रों के अग्नि से लेकर यम तक चार-चार देव कहे गये हैं (३३३)।

३३४—चत्तारि अंगारा जाव चत्तारि भावकेऊ।

चार अंगारक यावत् चार भावकेतु तक के सभी ग्रहों ने चार (भ्रमण) किया था, चार करते हैं और चार करते रहेंगे (३३४)।

द्वार-सूत्र

३३५—लवणस्स णं समुद्दस्स चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिते। ते णं दारा चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं पण्णत्ता।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठितीया परिवसंति, तं जहा—विजए, वेजयंते, जयंते, अपराजिए।

लवण समुद्र के चार द्वार कहे गये हैं। जैसे—

१. विजय २. वैजयन्त ३. जयन्त ४. अपराजित।

वे द्वार चार योजन विस्तृत और चार योजन प्रवेश (मुख) वाले कहे गये हैं। उनमें पल्योपम की स्थितिवाले यावत् महर्धिक चार देव रहते हैं। जैसे—

१. विजयदेव २. वैजयन्तदेव ३. जयन्तदेव ४. अपराजित देव (३३५)।

धातकीषण्डपुष्करवर-सूत्र

३३६—धायइसंडे णं दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते।

धातकीषण्ड द्वीप का चक्रवाल विष्कम्भ (वलय का विस्तार) चार लाख योजन कहा गया है।

३३७—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बहिया चत्तारि भरहाइं, चत्तारि एरवयाइं। एवं जहा सद्दुद्देसए तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव चत्तारि मंदरा चत्तारि मंदरचूलियाओ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के बाहर (धातकीषण्ड और पुष्करवर द्वीप में) चार भरत क्षेत्र और चार ऐरवत क्षेत्र हैं।

इस प्रकार जैसे शब्दोद्देशक (दूसरे स्थान के तीसरे उद्देशक) में जो बतलाया गया है, वह सब पूर्ण रूप से यहां जान लेना चाहिए। (वहां जो दो-दो की संख्या में बतलाये गये हैं, वे यहां चार-चार जानना चाहिए। धातकीषण्ड में दो मन्दर और दो मन्दरचूलिका, तथा पुष्करवर द्वीप में भी दो मन्दर और दो मन्दरचूलिका, इस प्रकार जम्बूद्वीप के बाहर चार मन्दर और चार मन्दर-चूलिका कही गई है (३३७)।

नन्दीश्वर-वर द्वीप-सूत्र

३३८—णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवाल-विक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउद्दिसिं चत्तारि अंजणगपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, दाहिणिल्ले अंजणगपव्वते, पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, उत्तरिल्ले अंजणगपव्वते। ते णं अंजणगपव्वता चउरासीतिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसहस्सं उव्वेहेणं, मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, तदणंतरं च णं मायाए-मायाए परिहायमाणा-परिहायमाणा उवरिमेगं जोयणसहस्सं विक्खंभेणं पण्णत्ता। मूले इक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं, उवरिं तिण्णि-तिण्णि जोयणसहस्साइं एगं च बावट्ठं जोयणसतं परिक्खेवेणं। मूले विच्छिण्णा मज्झे संखित्ता उप्पिं तणुया गोपुच्छसंठाणसंठिता सव्वअंजणमया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकड-च्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा।

नन्दीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल-विष्कम्भ के बहुमध्य देशभाग में (ठीक बीचों-बीच) चारों दिशाओं में चार अंजन पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्वी अंजन पर्वत, २. दक्षिणी अंजन पर्वत
३. पश्चिमी अंजन पर्वत ४. उत्तरी अंजन पर्वत।

उनकी ऊर्ध्व ऊंचाई चौरासी हजार योजन और गहराई भूमितल में एक हजार योजन कही गई है। मूल में उनका विस्तार दश हजार योजन है। तदनन्तर थोड़ी-थोड़ी मात्रा से हीन-हीन होता हुआ ऊपरी भाग में एक हजार योजन विस्तार कहा गया है।

मूल में उन अंजनपर्वतों की परिधि इकतीस हजार छह सौ तेईस योजन और ऊपरी भाग में तीन हजार एक सौ बासठ योजन की है।

वे मूल में विस्तृत, मध्य में संक्षिप्त और अन्त में तनुक (और अधिक संक्षिप्त) हैं। वे गोपुच्छ के आकार वाले हैं। वे सभी ऊपर से नीचे अंजनरत्नमयी हैं, स्फटिक के समान स्वच्छ पारदर्शी, चिकने, चमकदार, शाण पर घिसे हुए से, प्रमार्जनी से साफ किये हुए सरीखे, रज-रहित, निर्मल, निष्पंक, निष्कण्टक छाया वाले, प्रभा-युक्त, रश्मि-युक्त, उद्योत-सहित, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय हैं (३३८)।

३३६—तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पण्णत्ता। ते णं सिद्धायतणा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।

तेसि णं सिद्धायतणाणं चउदिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—देवदारे, असुरदारे, णागदारे, सुवण्णदारे।

तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परिवसंति, तं जहा—देवा, असुरा, णागा, सुवण्णा।
तेसि णं दाराणं पुरओ चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता।
तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता।
तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता।
तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपेढियातो पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढिताणं उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता।
तेसि णं सीहासणाणं उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता।
तेसि णं विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता।

तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु चत्तारि कुंभिका मुत्तादामा पण्णत्ता। ते णं कुंभिका मुत्तादामा पत्तेयं-पत्तेयं अण्णेहिं तदद्धउच्चत्तपमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता।

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि-चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता।
तेसि णं चेइयथूभाणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ संपलियंकणिसण्णाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठंति, तं जहा—रिसभा, वद्धमाणा, चंदाणणा, वारिसेणा।
तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता।
तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता।
तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ।

तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं-पत्तेयं चउदिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—पुरत्थिमे णं, दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं।

संग्रहणी-गाथा

पुव्वे णं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं।
अवरे णं चंपगवणं, चूतवणं उत्तरे पासे ॥१॥

उन अंजन पर्वतों का ऊपरी भूमिभाग अति समतल और रमणीय कहा गया है।

उनके बहु-सम रमणीय भूमिभागों के बहुमध्य देश भाग में (बीचोंबीच) चार सिद्धायतन कहे गये हैं।

वे सिद्धायतन एक सौ योजन लम्बाई वाले, पचास योजन चौड़ाई वाले और बहत्तर योजन ऊपरी ऊंचाई वाले हैं।

उन सिद्धायतनों के चारों दिशाओं में चार द्वार कहे गये हैं। जैसे—

१. देवद्वार २. असुरद्वार ३. नागद्वार ४. सुपर्णद्वार।

उन द्वारों पर चार प्रकार के देव रहते हैं। जैसे—

१. देव २. असुर ३. नाग ४. सुपर्ण।

उन द्वारों के आगे चार मुख-मण्डप कह गये हैं। उन मुख-मण्डपों के आगे चार प्रेक्षागृह-मण्डप कह गये हैं। उन प्रेक्षागृह मण्डपों के बहुमध्य देश भाग में चार वज्रमय अक्षवाटक (दर्शकों के लिए बैठने के आसन) कहे गये हैं। उन वज्रमय अक्षवाटकों के बहुमध्य देशभाग में चार मणिपीठिकाएं कही गई हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार सिंहासन कहे गये हैं। उन सिंहासनों के ऊपर चार विजयदूष्य (चन्दोवा) कहे गये हैं। उन विजयदूष्यों के बहुमध्य देश भाग में चार वज्रमय अकुश कहे गये हैं। उन वज्रमय अंकुशों के ऊपर चार कुम्भिक मुक्तामालाएं लटकती हैं।

उन कुम्भिक मुक्तामालाओं से प्रत्येक माला पर उनकी ऊंचाई से आधी ऊंचाई वाली चार अर्धकुम्भिक मुक्तामालाएं सर्व ओर से लिपटी हुई हैं (३३९)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने आगम प्रमाण को उद्धृत करके कुम्भ का प्रमाण इस प्रकार कहा है—दो असती = एक पसती। दो पसती = एक सेतिका। दो सेतिका = १ कुडव। ४ कुडव = एक प्रस्थ। चार प्रस्थ = एक आढक। ४ आढक = १ द्रोण। ६० आढक = एक जघन्य कुम्भ। ८० आढक = एक मध्यम कुम्भ। १०० आढक = एक उत्कृष्ट कुम्भ। इस प्राचीन माप के अनुसार ४० मन का एक कुम्भ होता है। इस कुम्भ प्रमाण मोतियों से बनी माला को कुम्भिक मुक्तादाम कहा जाता है। अर्ध-कुम्भ का प्रमाण २० मन जानना चाहिए।

उन प्रेक्षागृह-मण्डपों के आगे चार मणिपीठिकाएं कही गई हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार चैत्यस्तूप हैं। उन चैत्यस्तूपों में से प्रत्येक-प्रत्येक पर चारों दिशाओं में चार-चार मणिपीठिकाएं हैं। उन मणिपीठिकाओं पर सर्वरत्नमय, पर्यङ्कासन जिन-प्रतिमाएं अवस्थित हैं और उनका मुख स्तूप के सामने है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. ऋषभा, २. वर्धमाना, ३. चन्द्रानना, ४. वारिषेणा।

उन चैत्यस्तूपों के आगे मणिपीठिकाएं हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार चैत्यवृक्ष हैं। उन चैत्यवृक्षों के आगे चार मणिपीठिकाएं हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार महेन्द्रध्वज हैं। उन महेन्द्रध्वजों के आगे चार नन्दा पुष्करिणियां हैं। उन पुष्करिणियों में से प्रत्येक के आगे चारों दिशाओं में चार वनषण्ड कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ववनषण्ड, २. दक्षिणवनषण्ड, ३. पश्चिम वनषण्ड, ४. उत्तरवनषण्ड।

१. पूर्व में अशोकवन, २. दक्षिण में सप्तपर्णवन, ३. पश्चिम में चम्पकवन और ४. उत्तर में आम्रवन कहा गया है।

३३९—तेसि णं अंजणगपव्वयाणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि सिद्धायतणा पण्णत्ता। ते णं सिद्धायतणा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्डं उच्चत्तेणं।

तेसिं णं सिद्धायतणाणं चउदिसिं चत्तारि दारा पण्णत्ता, तं जहा—देवदारे, असुरदारे, णागदारे, सुवण्णदारे।

तेसु णं दारेसु चउव्विहा देवा परिवसंति, तं जहा—देवा, असुरा, णागा, सुवण्णा।
तेसि णं दाराणं पुरओ चत्तारि मुहमंडवा पण्णत्ता।
तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ चत्तारि पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता।
तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अक्खाडगा पण्णत्ता।
तेसि णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि मणिपेढियातो पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढिताणं उवरिं चत्तारि सीहासणा पण्णत्ता।
तेसि णं सीहासणाणं उवरिं चत्तारि विजयदूसा पण्णत्ता।
तेसि णं विजयदूसगाणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि वइरामया अंकुसा पण्णत्ता।

तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु चत्तारि कुंभिका मुत्तादामा पण्णत्ता। ते णं कुंभिका मुत्तादामा पत्तेयं-पत्तेयं अण्णेहिं तदद्धउच्चत्तपमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वतो समंता संपरिक्खित्ता।

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि-चत्तारि चेइयथूभा पण्णत्ता।
तेसि णं चेइयथूभाणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ सव्वरयणामईओ संपलियंकणिसण्णाओ थूभाभिमुहाओ चिट्ठंति, तं जहा—रिसभा, वद्धमाणा, चंदाणणा, वारिसेणा।

तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि चेइयरुक्खा पण्णत्ता।
तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ।
तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि महिंदज्झया पण्णत्ता।
तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ।

तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं-पत्तेयं चउदिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—पुरत्थिमे णं, दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं।

संग्रहणी-गाथा

पुव्वे णं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं।
अवरे णं चंपगवणं, चूतवणं उत्तरे पासे ॥१॥

उन अंजन पर्वतों का ऊपरी भूमिभाग अति समतल और रमणीय कहा गया है।

उनके बहु-सम रमणीय भूमिभागों के बहुमध्य देश भाग में (बीचोंबीच) चार सिद्धायतन कहे गये हैं।

वे सिद्धायतन एक सौ योजन लम्बाई वाले, पचास योजन चौड़ाई वाले और बहत्तर योजन ऊपरी ऊंचाई वाले हैं।

उन सिद्धायतनों के चारों दिशाओं में चार द्वार कहे गये हैं। जैसे—

१. देवद्वार २. असुरद्वार ३. नागद्वार ४. सुपर्णद्वार।

उन द्वारों पर चार प्रकार के देव रहते हैं। जैसे—

१. देव २. असुर ३. नाग ४. सुपर्ण।

उन द्वारों के आगे चार मुख-मण्डप कहे गये हैं। उन मुख-मण्डपों के आगे चार प्रेक्षागृह-मण्डप कहे गये हैं। उन प्रेक्षागृह मण्डपों के बहुमध्य देश भाग में चार वज्रमय अक्षवाटक (दर्शकों के लिए बैठने के आसन) कहे गये हैं। उन वज्रमय अक्षवाटकों के बहुमध्य देशभाग में चार मणिपीठिकाएं कही गई हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार सिंहासन कहे गये हैं। उन सिंहासनों के ऊपर चार विजयदूष्य (चन्दोवा) कहे गये हैं। उन विजयदूष्यों के बहुमध्य देश भाग में चार वज्रमय अंकुश कहे गये हैं। उन वज्रमय अंकुशों के ऊपर चार कुम्भिक मुक्तामालाएं लटकती हैं।

उन कुम्भिक मुक्तामालाओं से प्रत्येक माला पर उनकी ऊंचाई से आधी ऊंचाई वाली चार अर्धकुम्भिक मुक्तामालाएं सर्व ओर से लिपटी हुई हैं (३३९)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने आगम प्रमाण को उद्धृत करके कुम्भ का प्रमाण इस प्रकार कहा है—दो असती = एक पसती। दो पसती = एक सेतिका। दो सेतिका = १ कुडव। ४ कुडव = एक प्रस्थ। चार प्रस्थ = एक आढक। ४ आढक = १ द्रोण। ६० आढक = एक जघन्य कुम्भ। ८० आढक = एक मध्यम कुम्भ। १०० आढक = एक उत्कृष्ट कुम्भ। इस प्राचीन माप के अनुसार ४० मन का एक कुम्भ होता है। इस कुम्भ प्रमाण मोतियों से बनी माला को कुम्भिक मुक्तादाम कहा जाता है। अर्ध-कुम्भ का प्रमाण २० मन जानना चाहिए।

उन प्रेक्षागृह-मण्डपों के आगे चार मणिपीठिकाएं कही गई हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार चैत्यस्तूप हैं। उन चैत्यस्तूपों में से प्रत्येक-प्रत्येक पर चारों दिशाओं में चार-चार मणिपीठिकाएं हैं। उन मणिपीठिकाओं पर सर्वरत्नमय, पर्यङ्कासन जिन-प्रतिमाएं अवस्थित हैं और उनका मुख स्तूप के सामने है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. ऋषभा, २. वर्धमाना, ३. चन्द्रानना, ४. वारिषेणा।

उन चैत्यस्तूपों के आगे मणिपीठिकाएं हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार चैत्यवृक्ष हैं। उन चैत्यवृक्षों के आगे चार मणिपीठिकाएं हैं। उन मणिपीठिकाओं के ऊपर चार महेन्द्रध्वज हैं। उन महेन्द्रध्वजों के आगे चार नन्दा पुष्करिणियां हैं। उन पुष्करिणियों में से प्रत्येक के आगे चारों दिशाओं में चार वनषण्ड कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ववनषण्ड, २. दक्षिणवनषण्ड, ३. पश्चिम वनषण्ड, ४. उत्तरवनषण्ड।

१. पूर्व में अशोकवन, २. दक्षिण में सप्तपर्णवन, ३. पश्चिम में चम्पकवन और ४. उत्तर में आम्रवन कहा गया है।

३४०—तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णंदुत्तरा, णंदा, आणंदा, णंदिवद्धणा। ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं आयामेणं, पण्णासं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, दसजोयणसताइं उव्वेहेणं।

तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता।

तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं पुरतो चत्तारि तोरणा पण्णत्ता, तं जहा—पुरत्थिमे णं, दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं, उत्तरे णं।

तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—पुरतो, दाहिणे णं, पच्चत्थिमे णं उत्तरे णं।

संग्रहणी-गाथा

पुव्वे णं असोगवणं, दाहिणओ होइ सत्तवण्णवणं।
अवरे णं चंपगवणं, चूयवणं उत्तरे पासे ॥१॥

तासि णं पुक्खरिणीणं बहुमज्झदेसभागे चत्तारि दधिमुहगपव्वया पण्णत्ता। ते णं दधिमुहगपव्वया चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगं जोयणसहस्सं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं; सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसि णं दधिमुहगपव्वताणं उवरिं बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता। सेसं जहेव अंजणगपव्वताणं तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव चूतवणं उत्तरे पासे।

उन पूर्वोक्त चार अंजन पर्वतों में से जो पूर्व दिशा का अंजन पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार नन्दा (आनन्द-दायिनी) पुष्करिणियां कही गई हैं। जैसे—

१. नन्दोत्तरा, २. नन्दा, ३, आनन्दा, ४. नन्दिवर्धना।

वे नन्दा पुष्करिणियाँ एक लाख योजन लम्बी, पचास हजार योजन चौड़ी और दश सौ (एक हजार) योजन गहरी हैं।

उन नन्दा पुष्करिणियों में से चारों दिशाओं में तीन-तीन सोपान (सीढ़ी) वाली चार सोपान-पंक्तियां कही गई हैं। उन त्रि-सोपान पंक्तियों के आगे चार तोरण कहे गये है। जैसे—पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में।

उन नन्दा पुष्करिणियों में से प्रत्येक के चारों दिशाओं में चार वनषण्ड हैं। जैसे—पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में।

१. पूर्व में अशोकवन, २. दक्षिण में सप्तपर्णवन, ३. पश्चिम में चम्पकवन और उत्तर में आम्रवन कहा गया है।

समान विस्तार वाले हैं। उनका आकार अन्न भरने के पल्यक (कोठी) के समान गोल है। वे दश हजार योजन विस्तार वाले हैं। उनकी परिधि इकतीस हजार छह सौ तेईस (३१६२३) योजन है। वे सब रत्नमय यावत् रमणीय हैं।

उन दधिमुखपर्वतों के ऊपर बहुसम, रमणीय भूमिभाग है। शेष वर्णन जैसा अंजनपर्वतों का कहा गया है उसी प्रकार यावत् आम्रवन तक सम्पूर्णरूप से जानना चाहिए (३४०)।

३४१—तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउदिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा, विसाला, कुमुदा, पोंडरीगिणी। ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं, सेसं तं चेव जाव दधिमुहगपव्वता जाव वणसंडा।

उन चार अंजन पर्वतों में जो दक्षिण दिशा वाला अंजन पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियां कही गई हैं। जैसे—

१. भद्रा, २. विशाला, ३. कुमुदा, ४. पौंडरीकिणी।

वे नन्दा पुष्करिणियां एक लाख योजन विस्तृत हैं। शेष सर्व वर्णन यावत् दधिमुख पर्वत और यावत् वनषण्ड तक पूर्वदिशा के समान जाननी चाहिए (३४१)।

३४२—तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णंदिसेणा, अमोहा, गोथूभा, सुदंसणा। सेसं तं चेव, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसंडा।

उन चार अंजन पर्वतों में जो पश्चिम दिशा वाला अंजन पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियां कही गई हैं। जैसे—

१. नन्दिषेणा, २, अमोघा, ३. गोस्तूपा, ४. सुदर्शना।

इनका विस्तार आदि शेष सर्व वर्णन पूर्व दिशा के समान है, उसी प्रकार दधिमुख पर्वत हैं, और तथैव सिद्धायतन यावत् वनषण्ड जानना चाहिए (३४२)।

३४३—तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले अंजणगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं चत्तारि णंदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विजया, वेजयंती, जयंती, अपराजिता। ताओ णं णंदाओ पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयसहस्सं सेसं तं चेव पमाणं, तहेव दधिमुहगपव्वता, तहेव सिद्धाययणा जाव वणसंडा।

उन चार अंजन पर्वतों में जो उत्तरदिशा वाला अंजन पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में चार नन्दा पुष्करिणियाँ कही गई हैं। जैसे—

१. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता।

वे नन्दा पुष्करिणियां एक लाख योजन विस्तृत हैं, शेष सर्व पूर्व के समान प्रमाण वाला है। उसी प्रकार के दधिमुख पर्वत हैं, उसी प्रकार के सिद्धायतन यावत् वनषण्ड जानना चाहिए (३४३)।

३४४—णंदीसरवरस्स णं दीवस्स चक्कवाल-विक्खंभस्स बहुमज्झदेसभागे चउसु विदिसासु चत्तारि रतिकरगपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, दाहिणपुरत्थिमिल्ले

रतिकरगपव्वए, दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वए, उत्तरपच्चत्थिमिले रतिकरगपव्वए। ते णं रतिकरगपव्वता दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा झल्लरि-संठाणसंठिता; दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसते परिक्खेवेणं; सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

नन्दीश्वरवर द्वीप के चक्रवाल विष्कम्भ के बहुमध्यदेश भाग में चारों विदिशाओं में चार रतिकर पर्वत हैं। जैसे।

१. उत्तर-पूर्व दिशा का रतिकर पर्वत। २. दक्षिण-पूर्वदिशा का रतिकर पर्वत। ३. दक्षिण-पश्चिमदिशा का रतिकर पर्वत। ४. उत्तर पश्चिम दिशा का रतिकर पर्वत।

वे रतिकर पर्वत एक हजार योजन ऊंचे और एक हजार कोस गहरे हैं। ऊपर, मध्य और अधोभाग में सर्वत्र समान विस्तार वाले हैं। वे झालर के आकार से अवस्थित हैं, अर्थात् गोलाकार हैं। उनका विस्तार दश हजार योजन और परिधि इकतीस हजार छह सौ तेईस (३१६२३) योजन है। वे सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् रमणीय हैं (३४४)।

३४५—तत्थ णं जे से उत्तरपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णंदुत्तरा, णंदा, उत्तरकुरा, देवकुरा। कण्हाए, कण्हराईए, रामाए, रामरक्खियाए।

उन चार रतिकरों में जो उत्तर-पूर्व दिशा का रतिकर पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में देवराज ईशान देवेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाण वाली—एक लाख योजन विस्तृत चार राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. कृष्णा अग्रमहिषी की राजधानी नन्दोत्तरा।
२. कृष्णराजिका अग्रमहिषी की राजधानी नन्दा।
३. रामा अग्रमहिषी की राजधानी उत्तरकुरा।
४. रामरक्षिता अग्रमहिषी की राजधानी देवकुरा (३४५)।

३४६—तत्थ णं जे से दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणाओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—समणा, सोमणसा, अच्चिमाली, मणोरमा। पउमाए, सिवाए, सतीए, अंजूए।

उन चारों रतिकरों में जो दक्षिण-पूर्व दिशा का रतिकर पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में देवराज शक्र देवेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाणवाली चार राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

३४७—तत्थ णं जे से दाहिणपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवपमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भूता, भूतवडेंसा, गोथूभा, सुदंसणा। अमलाए, अच्छराए, णवमियाए, रोहिणीए।

उन चारों रतिकरों में जो दक्षिण-पश्चिम दिशा का रतिकर पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में देवराज शक्र देवेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाणवाली चार राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. अमला अग्रमहिषी की राजधानी भूता।
२. अप्सरा अग्रमहिषी की राजधानी भूतावतंसा।
३. नवमिका अग्रमहिषी की राजधानी गोस्तूपा।
४. रोहिणी अग्रमहिषी की राजधानी सुदर्शना (३४७)।

३४८—तत्थ णं जे से उत्तरपच्चत्थिमिल्ले रतिकरगपव्वते, तस्स णं चउद्दिसिमीसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो चउण्हमग्गमहिसीणं जंबुद्दीवप्पमाणमेत्ताओ चत्तारि रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणा, रतणुच्चया, सव्वरतणा, रतणसंचया। वसूए, वसुगुत्ताए, वसुमित्ताए, वसुंधराए।

उन चारों रतिकरों में जो उत्तर-पश्चिम दिशा का रतिकर पर्वत है, उसकी चारों दिशाओं में देवराज ईशान देवेन्द्र की चार अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप प्रमाणवाली चार राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. वसु अग्रमहिषी की राजधानी रत्ना।
२. वसुगुप्ता अग्रमहिषी की राजधानी रत्नोच्चया।
३. वसुमित्रा अग्रमहिषी की राजधानी सर्वरत्ना।
४. वसुन्धरा अग्रमहिषी की राजधानी रत्नसंचया (३४८)।

सत्य-सूत्र

३४९—चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—णामसच्चे, ठवणसच्चे, दव्वसच्चे, भावसच्चे।

सत्य चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. नामसत्य—नाम निक्षेप की अपेक्षा किसी व्यक्ति का रखा गया 'सत्य' ऐसा नाम।
२. स्थापनासत्य—किसी वस्तु में आरोपित सत्य या सत्य की संकल्पित मूर्ति।
३. द्रव्यसत्य—सत्य का ज्ञायक, किन्तु अनुपयुक्त (सत्य संबंधी उपयोग से रहित) पुरुष।
४. भावसत्य—सत्य का ज्ञाता और उपयुक्त (सत्यविषयक उपयोग से युक्त) पुरुष (३४९)।

आजीविक तप-सूत्र

३५०—आजीवियाणं चउव्विहे तवे पण्णत्ते, तं जहा—उग्गतवे, घोरतवे, रसणिज्जहणता, जिब्भिंदियपडिसंलीणता।

आजीविकों (गोशलक के शिष्यों) का तप चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उग्रतप—षष्ठभक्त, (उपवास) वेला, तेला आदि करना।

२. घोरतप—सूर्य-आतापनादि के साथ उपवासादि करना।
३. रस-निर्यूहणतप—घृत आदि रसों का परित्याग करना।
४. जिह्वेन्द्रिय-प्रतिसंलीनता तप—मनोज्ञ और अमनोज्ञ भक्त-पानादि में राग-द्वेष रहित होकर जिह्वेन्द्रिय को वश करना (३५०)।

संयमादि-सूत्र

३५१—चउव्विहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—मणसंजमे, वइसंजमे, कायसंजमे, उवगरणसंजमे।

संयम चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. मनः-संयम, २. वाक्-संयम, ३. काय-संयम ४. उपकरण-संयम (३५१)।

३५२—चउव्विधे चियाए पण्णत्ते, तं जहा—मणचियाए, वइचियाए, कायचियाए, उवगरण-चियाए।

त्याग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१ मनः-त्याग, २. वाक्-त्याग, ३. काय-त्याग, ४. उपकरण-त्याग (३५२)।

विवेचन—मन आदि के अप्रशस्त व्यापार का त्याग अथवा मन आदि द्वारा मुनियों को आहार आदि प्रदान करना त्याग कहलाता है।

३५३—चउव्विहा अकिंचणता पण्णत्ता, तं जहा—मणअकिंचणता, वइअकिंचणता, कायअकिंचणता, उवगरणअकिंचणता।

अकिंचनता चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. मन-अकिंचनता, २. वचन-अकिंचनता, ३. काय-अकिंचनता, ४. उपकरण-अकिंचनता (३५३)।

विवेचन—संयम के चार प्रकारों के द्वारा समिति रूप प्रवृत्ति की, त्याग के चार प्रकारों के द्वारा गुप्तिरूप प्रवृत्ति की और चार प्रकार की अकिंचनता के द्वारा महाव्रत रूप प्रवृत्ति का संकेत किया गया प्रतीत होता है।

॥ चतुर्थ स्थान का द्वितीय उद्देश समाप्त ॥

चतुर्थ स्थान

तृतीय उद्देश

क्रोध-सूत्र

३५४—चत्तारि राईश्रो पण्णत्ताश्रो, तं जहा—पव्वयराई, पुढविराई, वालुयराई, उदगराई।

एवामेव चउव्विहे कोहे पण्णत्ते, तं जहा—पव्वयराइसमाणे, पुढविराइसमाणे, वालुयराइ समाणे, उदगराइसमाणे।

१. पव्वयराइसमाणं कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जति।
२. पुढविराइसमाणं कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति।
३. वालुयराइसमाणं कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति।
४. उदगराइसमाणं कोहमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, देवेसु उववज्जति।

राजि (रेखा) चार प्रकार की होती है। जैसे—

१. पर्वतराजि, २. पृथिवीराजि, ३. वालुकाराजि, ४. उदकराजि।

इसी प्रकार क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पर्वतराजि समान—अनन्तानुबन्धी क्रोध।
२. पृथिवीराजि-समान—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध।
३. वालुकाराजि-समान—प्रत्याख्यानावरण क्रोध।
४. उदकराजि-समान—संज्वलन क्रोध।

१. पर्वत-राजि समान क्रोध में प्रवर्तमान जीव काल करे तो नारकों में उत्पन्न होता है।
२. पृथिवी-राजि समान क्रोध में प्रवर्तमान जीव काल करे तो तिर्यग्योनिक जीवों में उत्पन्न होता है।
३. वालुका-राजिसमान क्रोध में प्रवर्तमान जीव काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
४. उदक-राजिसमान क्रोध में प्रवर्तमान जीव काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है (३५४)।

विवेचन—उदक (जल) की रेखा जैसे तुरन्त मिट जाती है, उसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त के भीतर उपशान्त होनेवाले क्रोध को संज्वलन क्रोध कहा गया है। वालु में बनी रेखा जैसे वायु आदि के द्वारा एक पक्ष के भीतर मिट जाती है, इसी प्रकार पाक्षिक प्रतिक्रमण के समय तक शान्त हो जाने वाले क्रोध को प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहा गया है। पृथ्वी की ग्रीष्म ऋतु में हुई रेखा वर्षा होने पर मिट जाती है, इसी प्रकार अधिक से अधिक जिस क्रोध का संस्कार एक वर्ष तक रहे और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करते हुए शान्त हो जाय, वह अप्रत्याख्यानावरण क्रोध कहा गया है। जिस क्रोध का संस्कार एक वर्ष के बाद भी दीर्घकाल तक बना रहे, उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध कहा गया है। यही काल चारों जाति के मान, माया और लोभ के विषय में जानना चाहिए।

यहां यह विशेष ज्ञातव्य है कि उक्त प्रकार के संस्कार को वासनाकाल कहा जाता है। अर्थात् उक्त कषायों की वासना (संस्कार) इतने समय तक रहता है। गोम्मटसार में अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उत्कृष्ट वासनाकाल छह मास कहा गया है[1]।

भाव-सूत्र

३५५—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—कद्दमोदए, खंजणोदए, वालुओदए, सेलोदए।

एवामेव चउव्विहे भावे पण्णत्ते, तं जहा—कद्दमोदगसमाणे, खंजणोदगसमाणे, वालुओदगसमाणे, सेलोदगसमाणे।

१. कद्दमोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, णेरइएसु उववज्जति। एवं जाव--
२. [खंजणोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति।
३. वालुओदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, मणुस्सेसु उववज्जति]।
४. सेलोदगसमाणं भावमणुपविट्ठे जीवे कालं करेइ, देवेसु उववज्जति।

उदक (जल) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कर्दमोदक—कीचड़ वाला जल। २. खंजनोदक—काजलयुक्त जल।
३. वालुकोदक—वालु-युक्त जल। ४. शैलोदक—पर्वतीय जल।

इसी प्रकार जीवों के भाव (राग-द्वेष रूप परिणाम) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कर्दमोदक-समान— अत्यन्त मलिन भाव।
२. खंजनोदक-समान—मलिन भाव।
३. वालुकोदक-समान—अल्प मलिन भाव।
४. शैलोदक-समान—अत्यल्प मलिन या निर्मल भाव।
१. कर्दमोदक-समान भाव में प्रवर्तमान जीव काल करे तो नारकों में उत्पन्न होता है।
२. खंजनोदक-समान भाव में प्रवर्तमान जीव काल करे तो तिर्यग्योनिक जीवों में उत्पन्न होता है।
३. वालुकोदक-समान भाव में प्रवर्तमान जीव काल करे तो मनुष्यों में उत्पन्न होता है।
४. शैलोदक-समान भाव में प्रवर्तमान जीव काल करे तो देवों में उत्पन्न होता है (३५५)।

रुत-रूप-सूत्र

३५६—चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—रुतसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो रुतसंपण्णे, एगे रुतसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो रुतसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रुतसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो रुतसंपण्णे, एगे रुतसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो रुतसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

चार प्रकार के पक्षी होते हैं। जैसे—

१. रुत-सम्पन्न, रूप-सम्पन्न नहीं—कोई पक्षी स्वर-सम्पन्न (मधुर स्वर वाला) होता है, किन्तु रूप-सम्पन्न (देखने में सुन्दर) नहीं होता, जैसे कोयल।

---

१. अंतोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संखऽसंखणंतभवं।
संजलणादीयाणं वासणकालो दु णियमेण॥ (गो० कर्मकाण्डगाथा)

२. रूप-सम्पन्न, रुत-सम्पन्न नहीं—कोई पक्षी रूप-सम्पन्न होता है, किन्तु स्वर-सम्पन्न नहीं होता, जैसे तोता।
३. रुत-सम्पन्न भी, रूप सम्पन्न भी—कोई पक्षी स्वर-सम्पन्न भी होता है और रूप-सम्पन्न भी, जैसे मोर।
४. न रुत-सम्पन्न, न रूप-सम्पन्न—कोई पक्षी न स्वर-सम्पन्न होता है और न रूप-सम्पन्न जैसे काक (कौआ)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रुत-सम्पन्न, रूप-सम्पन्न नहीं—कोई पुरुष मधुर स्वर से सम्पन्न होता है, किन्तु सुन्दर रूप से सम्पन्न नहीं होता।
२. रूप-सम्पन्न, रुत-सम्पन्न नहीं—कोई पुरुष सुन्दर रूप से सम्पन्न होता है, किन्तु मधुर स्वर से सम्पन्न नहीं होता है।
३. रुत-सम्पन्न भी, रूप-सम्पन्न भी—कोई पुरुष स्वर से भी सम्पन्न होता है और रूप से भी सम्पन्न होता है।
४. न रुत-सम्पन्न, न रूप-सम्पन्न—कोई पुरुष न स्वर से ही सम्पन्न होता है और न रूप से ही सम्पन्न होता है (३५६)।

प्रीतिक-अप्रीतिक-सूत्र

३५७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पत्तियं करेमीतेगे पत्तियं करेति, पत्तियं करेमीतेगे अप्पत्तियं करेति, अप्पत्तियं करेमीतेगे पत्तियं करेति, अप्पत्तियं करेमीतेगे अप्पत्तियं करेति।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्रीति करूं, प्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ प्रीति करूं' (अथवा अमुक की प्रतीति करूं) ऐसा विचार कर प्रीति (प्रतीति) करता है।
२. प्रीति करूं, अप्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ प्रीति करूं', ऐसा विचार कर भी अप्रीति करता है।
३. अप्रीति करूं, प्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ अप्रीति करूं', ऐसा विचार कर भी प्रीति करता है।
४. अप्रीति करूं, अप्रीतिकर—कोई पुरुष 'मैं अमुक व्यक्ति के साथ अप्रीति करूं', ऐसा विचार कर अप्रीति ही करता है (३५७)।

३५८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे पत्तियं करेति णो परस्स, परस्स णाममेगे पत्तियं करेति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि पत्तियं करेति परस्सवि, एगे णो अप्पणो पत्तियं करेति णो परस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आत्म-प्रीतिकर, पर-प्रीतिकर नहीं—कोई पुरुष अपने आप से प्रीति करता है, किन्तु दूसरे से प्रीति नहीं करता है।

२. पर-प्रीतिकर, आत्म-प्रीतिकर नहीं—कोई पुरुष पर से प्रीति करता है, किन्तु अपने आप से प्रीति नहीं करता है।
३. आत्म-प्रीतिकर भी, पर-प्रीतिकर भी—कोई पुरुष अपने से भी प्रीति करता है और पर से भी प्रीति करता है।
४. न आत्म-प्रीतिकर न पर-प्रीतिकर—कोई पुरुष न अपने आप से प्रीति करता है और न पर से भी प्रीति करता है (३५८)।

३५९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पत्तियं पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेति, पत्तियं पवेसामीतेगे अप्पत्तियं पवेसेति, अप्पत्तियं पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेति, अप्पत्तियं पवेसामीतेगे अप्पत्तियं पवेसेति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. प्रीति-प्रवेशेच्छु, प्रीति प्रवेशक—कोई पुरुष 'दूसरे के मन में प्रीति उत्पन्न करूं', ऐसा विचार कर प्रीति उत्पन्न करता है।
२. प्रीति-प्रवेशेच्छु, अप्रीति-प्रवेशक—कोई पुरुष 'दूसरे के मन में प्रीति उत्पन्न करूं' ऐसा विचार कर भी अप्रीति उत्पन्न करता है।
३. अप्रीति-प्रवेशेच्छु, प्रीति-प्रवेशक—कोई पुरुष 'दूसरे के मन में अप्रीति उत्पन्न करूं' ऐसा विचार कर भी प्रीति उत्पन्न करता है।
४. अप्रीति-प्रवेशेच्छु, अप्रीति-प्रवेशक—कोई पुरुष 'दूसरे के मन में अप्रीति उत्पन्न करूं' ऐसा विचार कर अप्रीति उत्पन्न करता है (३५९)।

३६०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अप्पणो णाममेगे पत्तियं पवेसेति णो परस्स, परस्स णाममेगे पत्तियं पवेसेति णो अप्पणो, एगे अप्पणोवि पत्तियं पवेसेति परस्सवि, एगे णो अप्पणो पत्तियं पवेसेति णो परस्स।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. आत्म-प्रीति-प्रवेशक, पर-प्रीति-प्रवेशक नहीं—कोई पुरुष अपने मन में प्रीति (अथवा प्रतीति) का प्रवेश कर लेते हैं किन्तु दूसरे के मन में प्रीति का प्रवेश नहीं कर पाते।
२. पर-प्रीति-प्रवेशक, आत्म-प्रीति-प्रवेशक नहीं—कोई पुरुष दूसरे के मन में प्रीति का प्रवेश कर देते हैं, किन्तु अपने मन में प्रीति का प्रवेश नहीं कर पाते।
३. आत्म-प्रीति-प्रवेशक भी, पर-प्रीति-प्रवेशक भी—कोई पुरुष अपने मन में भी प्रीति का प्रवेश कर पाता है और पर के मन में भी प्रीति का प्रवेश कर देता है।
४. न आत्म-प्रीति-प्रवेशक, न पर-प्रीति-प्रवेशक—कोई पुरुष न अपने मन में प्रीति का प्रवेश कर पाता है और न पर के मन में प्रीति का प्रवेश कर पाता है (३६०)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने 'पत्तियं' इस प्राकृत पद के दो अर्थ किये हैं—एक—स्वार्थ में 'क' प्रत्यय मानकर प्रीति अर्थ किया है और दूसरा—'प्रत्यय' अर्थात् प्रतीति या विश्वास अर्थ भी किया है। जैसे प्रथम अर्थ के अनुसार उक्त चारों सूत्रों को व्याख्या की गई है, उसी प्रकार प्रतीति

अर्थ को दृष्टि में रखकर उक्त सूत्रों के चारों अंगों की व्याख्या करनी चाहिए। जैसे कोई पुरुष अपनी प्रतीति करता है, दूसरे की नहीं इत्यादि।

जो पुरुष दूसरे के मन में प्रीति या प्रतीति उत्पन्न करना चाहते हैं और प्रीति या प्रतीति उत्पन्न कर देते हैं, उनकी ऐसी प्रवृत्ति के तीन कारण टीकाकार ने बतलाये हैं—स्थिर-परिणामक होना, उचित सन्मान करने की निपुणता और सौभाग्यशालिता। जिस पुरुष में ये तीनों गुण होते हैं, वह सहज में ही दूसरे के मन में प्रीति या प्रतीति उत्पन्न कर देता है किन्तु जिसमें ये गुण नहीं होते हैं, वह वैसा नहीं कर पाता।

जो पुरुष दूसरे के मन में अप्रीति या अप्रतीति उत्पन्न करना चाहता है, किन्तु उत्पन्न नहीं कर पाता, ऐसी मनोवृत्ति की व्याख्या भी टीकाकार ने दो प्रकार से की है—

१. अप्रीति या अप्रतीति उत्पन्न करने के पूर्वकालिक भाव उत्तरकाल में दूर हो जाने पर दूसरे के मन में अप्रीति या अप्रतीति उत्पन्न नहीं कर पाता।
२. अप्रीति या अप्रतीतिजनक कारण के होने पर भी सामने वाले व्यक्ति का स्वभाव प्रीति या प्रतीति के योग्य होने से मनुष्य उससे अप्रीति या अप्रतीति नहीं कर पाता है।

'पत्तियं पवेसामीतेगे पत्तियं पवेसेति' इत्यादि का अर्थ टीकाकार के संकेतानुसार इस प्रकार भी किया जा सकता है—

१. कोई पुरुष दूसरे के मन में 'यह प्रीति या प्रतीति करता है', ऐसी छाप जमाना चाहता है और जमा भी देता है।
२. कोई पुरुष दूसरे के मन में 'यह प्रीति या प्रतीति करता है' ऐसी छाप जमाना चाहता है, किन्तु जमा नहीं पाता।
३. कोई पुरुष दूसरे के मन में 'यह अप्रीति या अप्रतीति करता है' ऐसी छाप जमाना चाहता है और जमा भी देता है।
४. कोई पुरुष दूसरे के मन में 'यह अप्रीति या अप्रतीति करता है' ऐसी छाप जमाना चाहता है और जमा नहीं पाता।

इसी प्रकार सामने वाले व्यक्ति के आत्म-साधक या मूर्ख पुरुष की अपेक्षा भी चारों भंगों की व्याख्या की जा सकती है।

उपकार-सूत्र

३६१—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—पत्तोवए, पुप्फोवए, फलोवए, छायोवए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पत्तोवारुक्खसमाणे, पुप्फोवारुक्खसमाणे, फलोवारुक्खसमाणे, छायोवारुक्खसमाणे।

वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पत्रोपग—कोई वृक्ष पत्तों से सम्पन्न होता है।
२. पुष्पोपग—कोई वृक्ष फूलों से सम्पन्न होता है।
२. फलोपग—कोई वृक्ष फलों से सम्पन्न होता है।

४. छायोपग—कोई वृक्ष छाया से सम्पन्न होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पत्रोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष पत्तों वाले वृक्ष के समान स्वयं सम्पन्न रहता है किन्तु दूसरों को कुछ नहीं देता।
२. पुष्पोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष फूलों वाले वृक्ष के समान अपनी सुगन्ध दूसरों को देता है।
३. फलोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष फलों वाले वृक्ष के समान अपना धनादि दूसरों को देता है।
४. छायोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष छाया वाले वृक्षों के समान अपनी शीतल छाया में दूसरों को आश्रय देता है (३६१)।

विवेचन—उक्त अर्थ लौकिक पुरुषों की अपेक्षा से किया गया है। लोकोत्तर पुरुषों की अपेक्षा चारों भंगों का अर्थ इस प्रकार करना चाहिए—

१. कोई गुरु पत्तों वाले वृक्ष के समान अपनी श्रुत-सम्पदा अपने तक ही सीमित रखता है।
२. कोई गुरु फूल वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्र-पाठ की वाचना देता है।
३. कोई गुरु फल वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्र के अर्थ की वाचना देता है।
४. कोई गुरु छाया वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्रार्थ का परावर्तन एवं अपाय-संरक्षण आदि के द्वारा निरन्तर आश्रय देता है।

आश्वास-सूत्र

३६२—भारण्णं वहमाणस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—

१. जत्थ णं अंसाओ अंसं साहरइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
२. जत्थवि य णं उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
३. जत्थवि य णं णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
४. जत्थवि य णं आवकहाए चिट्ठति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

एवामेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—

१. जत्थवि य णं सीलव्वत-गुणव्वत-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं पडिवज्जति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
२. जत्थवि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
३. जत्थवि य णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
४. जत्थवि य णं अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाण-पडियाइक्खिते पाओवगते कालमणवकंखमाणे विहरति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

भार को वहन करने वाले पुरुष के लिए चार आश्वास (श्वास लेने के स्थान या विश्राम) कहे गये हैं। जैसे—

१. जहां वह अपने भार को एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर रखता है, वह उसका पहला आश्वास कहा गया है।
२. जहां वह अपना भार भूमि पर रख कर मल-मूत्र का विसर्जन करता है, वह उसका दूसरा आश्वास कहा गया है।
३. जहां वह किसी नागकुमारावास या सुपर्णकुमारावास आदि देवस्थान पर रात्रि में वसता है, वह तीसरा आश्वास कहा गया है।
४. जहां वह भार-वहन से मुक्त होकर यावज्जीवन (स्थायी रूप से) रहता है, वह चौथा आश्वास कहा गया है।

इसी प्रकार श्रमणोपासक (श्रावक) के चार आश्वास कहे गये हैं। जैसे—

१. जिस समय वह शीलव्रत, गुणव्रत, पाप-विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार करता है, तब वह उसका पहला आश्वास होता है।
२. जिस समय वह सामायिक और देशावकाशिक व्रत का सम्यक् प्रकार से परिपालन करता है, तव वह उसका दूसरा आश्वास है।
३. जिस समय वह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णमासी के दिन परिपूर्ण पोषध का सम्यक् प्रकार परिपालन करता है, तब वह उसका तीसरा आश्वास कहा गया है।
४. जिस समय वह जीवन के अन्त में अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना से युक्त होकर भक्त-पान का त्याग कर पादोपगमन संन्यास को स्वीकार कर मरण की आकांक्षा नहीं करता हुआ समय व्यतीत करता है, वह उसका चौथा आश्वास कहा गया है (३६२)।

उदित-अस्तमित-सूत्र

३६३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उदितोदिते णाममेगे, उदितत्थमिते णाममेगे, अत्थमितोदिते णाममेगे, अत्थमितत्थमिते णाममेगे।

भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी णं उदितोदिते, बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी उदितत्थमिते, हरिएसबले णं अणगारे अत्थमितोदिते, काले णं सोयरिये अत्थमितत्थमिते।

पुरुष चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. उदितोदित—कोई पुरुष प्रारम्भ में उदित (उन्नत) होता है और अन्त तक उन्नत रहता है। जैसे चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा।
२. उदितास्तमित—कोई पुरुष प्रारभ्भ से उन्नत होता है, किन्तु अन्त में अस्तमित होता है। अर्थात् सर्वसमृद्धि से भ्रष्ट होकर दुर्गति का पात्र होता है जैसे—चातुरन्त चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त राजा।
३. अस्तमितोदित—कोई पुरुष: प्रारम्भ में सम्पदा-विहीन होता है, किन्तु जीवन के अन्त में उन्नति को प्राप्त करता है। जैसे—हरिकेशवल अनगार।
४. अस्तमितास्तमित—कोई पुरुप प्रारम्भ में भी सुकुलादि से भ्रष्ट और जीवन के अन्त में भी दुर्गति का पात्र होता है। जैसे कालशौकरिक (३६३)।

४. छायोपग—कोई वृक्ष छाया से सम्पन्न होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पत्रोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष पत्तों वाले वृक्ष के समान स्वयं सम्पन्न रहता है किन्तु दूसरों को कुछ नहीं देता।
२. पुष्पोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष फूलों वाले वृक्ष के समान अपनी सुगन्ध दूसरों को देता है।
३. फलोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष फलों वाले वृक्ष के समान अपना धनादि दूसरों को देता है।
४. छायोपग वृक्ष-समान—कोई पुरुष छाया वाले वृक्षों के समान अपनी शीतल छाया में दूसरों को आश्रय देता है (३६१)।

विवेचन—उक्त अर्थ लौकिक पुरुषों की अपेक्षा से किया गया है। लोकोत्तर पुरुषों की अपेक्षा चारों भंगों का अर्थ इस प्रकार करना चाहिए—

१. कोई गुरु पत्तों वाले वृक्ष के समान अपनी श्रुत-सम्पदा अपने तक ही सीमित रखता है।
२. कोई गुरु फूल वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्र-पाठ की वाचना देता है।
३. कोई गुरु फल वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्र के अर्थ की वाचना देता है।
४. कोई गुरु छाया वाले वृक्ष के समान शिष्यों को सूत्रार्थ का परावर्तन एवं अपाय-संरक्षण आदि के द्वारा निरन्तर आश्रय देता है।

आश्वास-सूत्र

३६२—भारण्णं वहमाणस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—

१. जत्थ णं अंसाओ अंसं साहरइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
२. जत्थवि य णं उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
३. जत्थवि य णं णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवेति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
४. जत्थवि य णं आवकहाए चिट्ठति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

एवामेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पण्णत्ता, तं जहा—

१. जत्थवि य णं सीलव्वत-गुणव्वत-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं पडिवज्जति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
२. जत्थवि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
३. जत्थवि य णं चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।
४. जत्थवि य णं अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा-झूसिते भत्तपाण-पडियाइक्खिते पाओवगते कालमणवकंखमाणे विहरति, तत्थवि य से एगे आसासे पण्णत्ते।

भार को वहन करने वाले पुरुष के लिए चार आश्वास (श्वास लेने के स्थान या विश्राम) कहे गये हैं। जैसे—

१. जहां वह अपने भार को एक कन्धे से दूसरे कन्धे पर रखता है, वह उसका पहला आश्वास कहा गया है।
२. जहां वह अपना भार भूमि पर रख कर मल-मूत्र का विसर्जन करता है, वह उसका दूसरा आश्वास कहा गया है।
३. जहां वह किसी नागकुमारावास या सुपर्णकुमारावास आदि देवस्थान पर रात्रि में बसता है, वह तीसरा आश्वास कहा गया है।
४. जहां वह भार-वहन से मुक्त होकर यावज्जीवन (स्थायी रूप से) रहता है, वह चौथा आश्वास कहा गया है।

इसी प्रकार श्रमणोपासक (श्रावक) के चार आश्वास कहे गये हैं। जैसे—

१. जिस समय वह शीलव्रत, गुणव्रत, पाप-विरमण, प्रत्याख्यान और पोषधोपवास को स्वीकार करता है, तब वह उसका पहला आश्वास होता है।
२. जिस समय वह सामायिक और देशावकाशिक व्रत का सम्यक् प्रकार से परिपालन करता है, तब वह उसका दूसरा आश्वास है।
३. जिस समय वह अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णमासी के दिन परिपूर्ण पोषध का सम्यक् प्रकार परिपालन करता है, तब वह उसका तीसरा आश्वास कहा गया है।
४. जिस समय वह जीवन के अन्त में अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना से युक्त होकर भक्त-पान का त्याग कर पादोपगमन संन्यास को स्वीकार कर मरण की आकांक्षा नहीं करता हुआ समय व्यतीत करता है, वह उसका चौथा आश्वास कहा गया है (३६२)।

उदित-अस्तमित-सूत्र

३६३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उदितोदिते णाममेगे, उदितत्थमिते णाममेगे, अत्थमितोदिते णाममेगे, अत्थमितत्थमिते णाममेगे।

भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी णं उदितोदिते, बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी उदितत्थमिते, हरिएसबले णं अणगारे अत्थमितोदिते, काले णं सोयरिये अत्थमितत्थमिते।

पुरुष चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. उदितोदित—कोई पुरुष प्रारम्भ में उदित (उन्नत) होता है और अन्त तक उन्नत रहता है। जैसे चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा।
२. उदितास्तमित—कोई पुरुष प्रारभ्भ से उन्नत होता है, किन्तु अन्त में अस्तमित होता है। अर्थात् सर्वसमृद्धि से भ्रष्ट होकर दुर्गति का पात्र होता है जैसे—चातुरन्त चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त राजा।
३. अस्तमितोदित—कोई पुरुष: प्रारम्भ में सम्पदा-विहीन होता है, किन्तु जीवन के अन्त में उन्नति को प्राप्त करता है। जैसे—हरिकेशबल अनगार।
४. अस्तमितास्तमित—कोई पुरुष प्रारम्भ में भी सुकुलादि से भ्रष्ट और जीवन के अन्त में भी दुर्गति का पात्र होता है। जैसे कालशौकरिक (३६३)।

युग्म-सूत्र

३६४—चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे, तेयोए, दावरजुम्मे, कलिओए।

युग्म (राशि-विशेष) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कृतयुग्म—जिस राशि में चार का भाग देने पर शेष कुछ न रहे, वह कृतयुग्म राशि है। जैसे—१६ का अंक।
२. त्र्योज—जिस राशि में चार का भाग देने पर तीन शेष रहें वह त्र्योज राशि है। जैसे—१५ का अंक।
३. द्वापरयुग्म—जिस राशि में चार का भाग देने पर दो शेष रहें, वह द्वापरयुग्म राशि है। जैसे—१४ का अंक।
४. कल्योज—जिस राशि में चार का भाग देने पर एक शेष रहे, वह कल्योज राशि है। जैसे—१३ का अंक (३६४)।

३६५—णेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे, तेओए, दावरजुम्मे, कलिओए।

नारक जीव चारों प्रकार के युग्मवाले कहे गये हैं। जैसे—

१. कृतयुग्म, २. त्र्योज, ३. द्वापरयुग्म, ४. कल्योज (३६५)।

३६६—एवं—असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं। एवं—पुढविकाइयाणं आउ-तेउ-वाउ-वणस्सतिकाइयाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं मणुस्साणं वाणमंतर-जोइसियाणं वेमाणियाणं—सव्वेसिं जहा णेरइयाणं।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक, इसी प्रकार पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पतिकायिकों के, द्वीन्द्रियों के, त्रीन्द्रियों के, चतुरिन्द्रियों के, पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों के, मनुष्यों के, वानव्यन्तरों के, ज्योतिष्कों के और वैमानिकों के सभी के नारकियों के समान चारों युग्म कहे गये हैं (३६६)।

विवेचन—सभी दण्डकों में चारों युग्मराशियों के जीव पाये जाने का कारण यह है कि जन्म और मरण की अपेक्षा इनकी राशि में हीनाधिकता होती रहती है, इसलिए किसी समय विवक्षित-राशि कृतयुग्म पाई जाती है, तो किसी समय त्र्योज आदि राशि पाई जाती है।

शूर-सूत्र

३६७—चत्तारि सूरा पण्णत्ता, तं जहा—तवसूरे, खंतिसूरे, दाणसूरे, जुद्धसूरे।
खंतिसूरा अरहंता, तवसूरा अणगारा, दाणसूरे वेसमणे, जुद्धसूरे वासुदेवे।

शूर चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षान्ति या शान्ति शूर, २. तपःशूर, ३. दानशूर, ४. युद्धशूर।

१. अर्हन्त भगवन्त क्षान्तिशूर होते हैं। २. अनगार साधु तपःशूर होते हैं। ३. वैश्रवण देव दानशूर होते हैं। ४. वासुदेव युद्धशूर होते हैं (३६७)।

उच्च-नीच-सूत्र

३६८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उच्चे णाममेगे उच्चच्छंदे, उच्चे णाममेगे णीयच्छंदे, णीए णाममेगे उच्चच्छंदे, णीए णाममेगे णीयच्छंदे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उच्च और उच्चच्छन्द—कोई पुरुष कुल, वैभव आदि से उच्च होता है और उच्च-विस्तार, उदारता आदि से भी उच्च होता है।
२. उच्च, किन्तु नीचच्छन्द—कोई पुरुष कुल, वैभव आदि से उच्च होता है, किन्तु नीच विचार, कृपणता आदि से नीच होता है।
३. नीच, किन्तु उच्चच्छन्द—कोई पुरुष जाति-कुलादि से नीच होता है, किन्तु उच्च-विचार, उदारता आदि से उच्च होता है।
४. नीच और नीचच्छन्द—कोई पुरुष जाति-कुलादि से भी नीच होता है और विचार, कृपणता आदि से भी नीच होता है (३६८)।

लेश्या-सूत्र

३६९—असुरकुमाराणं चत्तारि लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा।

असुरकुमारों में चार लेश्याएं कही गई हैं। जैसे—

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या (३६९)।

३७०—एवं जाव थणियकुमाराणं। एवं—पुढविकाइयाणं आउ-वणस्सइकाइयाणं वाणमंतराणं—सव्वेसिं जहा असुरकुमाराणं।

इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों के, इसी प्रकार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पति-कायिक जीवों के और वानव्यन्तर देवों के, इन सब के असुरकुमारों के समान चार-चार लेश्याएं होती हैं (३७०)।

युक्त-अयुक्त-सूत्र

३७१—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

यान चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त—कोई यान (सवारी का वाहन गाड़ी आदि) युक्त (बैल आदि से संयुक्त) और युक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित) होता है।

युग्म-सूत्र

३६४—चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे, तेयोए, दावरजुम्मे, कलिग्रोए ।

युग्म (राशि-विशेष) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कृतयुग्म—जिस राशि में चार का भाग देने पर शेष कुछ न रहे, वह कृतयुग्म राशि है। जैसे—१६ का अंक।
२. त्र्योज—जिस राशि में चार का भाग देने पर तीन शेष रहें वह त्र्योज राशि है। जैसे—१५ का अंक।
३. द्वापरयुग्म—जिस राशि में चार का भाग देने पर दो शेष रहें, वह द्वापरयुग्म राशि है। जैसे—१४ का अंक।
४. कल्योज—जिस राशि में चार का भाग देने पर एक शेष रहे, वह कल्योज राशि है। जैसे—१३ का अंक (३६४)।

३६५—णेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे, तेग्रोए, दावरजुम्मे, कलिग्रोए ।

नारक जीव चारों प्रकार के युग्मवाले कहे गये हैं। जैसे—

१. कृतयुग्म, २. त्र्योज, ३. द्वापरयुग्म, ४. कल्योज (३६५)।

३६६—एवं—असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं। एवं—पुढविकाइयाणं आउ-तेउ-वाउ-वणस्सतिकाइयाणं बेंदियाणं तेंदियाणं चउरिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियाणं मणुस्साणं वाणमंतर-जोइसियाणं वेमाणियाणं—सव्वेसिं जहा णेरइयाणं ।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक, इसी प्रकार पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पतिकायिकों के, द्वीन्द्रियों के, त्रीन्द्रियों के, चतुरिन्द्रियों के, पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों के, मनुष्यों के, वानव्यन्तरों के, ज्योतिष्कों के और वैमानिकों के सभी के नारकियों के समान चारों युग्म कहे गये हैं (३६६)।

विवेचन—सभी दण्डकों में चारों युग्मराशियों के जीव पाये जाने का कारण यह है कि जन्म और मरण की अपेक्षा इनकी राशि में हीनाधिकता होती रहती है, इसलिए किसी समय विवक्षित-राशि कृतयुग्म पाई जाती है, तो किसी समय त्र्योज आदि राशि पाई जाती है।

शूर-सूत्र

३६७—चत्तारि सूरा पण्णत्ता, तं जहा—तवसूरे, खंतिसूरे, दाणसूरे, जुद्धसूरे।
खंतिसूरा अरहंता, तवसूरा अणगारा, दाणसूरे वेसमणे, जुद्धसूरे वासुदेवे ।

शूर चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षान्ति या शान्ति शूर, २. तपःशूर, ३. दानशूर, ४. युद्धशूर।

१. अर्हन्त भगवन्त क्षान्तिशूर होते हैं। २. अनगार साधु तपःशूर होते हैं। ३. वैश्रवण देव दानशूर होते हैं। ४. वासुदेव युद्धशूर होते हैं (३६७)।

उच्च-नीच-सूत्र

३६८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उच्चे णाममेगे उच्चच्छंदे, उच्चे णाममेगे णीयच्छंदे, णीए णाममेगे उच्चच्छंदे, णीए णाममेगे णीयच्छंदे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उच्च और उच्चच्छन्द—कोई पुरुष कुल, वैभव आदि से उच्च होता है और उच्च-विस्तार, उदारता आदि से भी उच्च होता है।
२. उच्च, किन्तु नीचच्छन्द—कोई पुरुष कुल, वैभव आदि से उच्च होता है, किन्तु नीच विचार, कृपणता आदि से नीच होता है।
३. नीच, किन्तु उच्चच्छन्द—कोई पुरुष जाति-कुलादि से नीच होता है, किन्तु उच्च-विचार, उदारता आदि से उच्च होता है।
४. नीच और नीचच्छन्द—कोई पुरुष जाति-कुलादि से भी नीच होता है और विचार, कृपणता आदि से भी नीच होता है (३६८)।

लेश्या-सूत्र

३६९—असुरकुमाराणं चत्तारि लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा।

असुरकुमारों में चार लेश्याएं कही गई हैं। जैसे—

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या (३६९)।

३७०—एवं जाव थणियकुमाराणं। एवं—पुढविकाइयाणं आउ-वणस्सइकाइयाणं वाणमंतराणं—सव्वेसिं जहा असुरकुमाराणं।

इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों के, इसी प्रकार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक जीवों के और वानव्यन्तर देवों के, इन सब के असुरकुमारों के समान चार-चार लेश्याएं होती हैं (३७०)।

युक्त-अयुक्त-सूत्र

३७१—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

यान चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त—कोई यान (सवारी का वाहन गाड़ी आदि) युक्त (बैल आदि से संयुक्त) और युक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित) होता है।

२. युक्त और अयुक्त—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) होने पर भी अयुक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित नहीं) होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई यान अयुक्त (बैल आदि से असंयुक्त) होने पर भी युक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित) होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई यान न बैल आदि से ही संयुक्त होता है और न वस्त्रादि से ही सुसज्जित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त और योग्य आचार आदि से, तथा योग्य वेष-भूषा से भी संयुक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष-भूषादि से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त नहीं होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष-भूषादि से संयुक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न धनादि से ही युक्त होता है और न योग्य आचार और वेष-भूषादि से ही युक्त होता है (३७१)।

३७२—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

पुनः यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) और युक्त-परिणत (पहले योग्य सामग्री से युक्त न होने पर भी) बाद में सामग्री के भाव से परिणत हो जाता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई यान बैल आदि से युक्त होने पर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई यान बैल आदि से अयुक्त होने पर भी युक्त-परिणत होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई यान न तो बैल आदि से युक्त ही होता है और न युक्त-परिणत ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त और युक्त-परिणत होता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त न होने पर भी युक्त-परिणत जैसा होता है।

४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष न सत्कार्य से युक्त होता है और न युक्त-परिणत ही होता है (३७२)।

३७३—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

पुन: यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्त-रूप—कोई यान बैल आदि से युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई यान न बैल आदि से युक्त होता है और न युक्तरूप वाला ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से भी युक्त होता है और रूप से (वेष आदि से) भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से युक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से अयुक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त रूप—कोई पुरुष न गुणों से ही युक्त होता है और न रूप से ही युक्त होता है (३७३)।

३७४—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, जजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

पुन: यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से भी युक्त होता है और वस्त्राभरणादि की शोभा से भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से तो युक्त होता है, किन्तु शोभा से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्त शोभ—कोई यान बैल आदि से युक्त नहीं होता, किन्तु शोभा से युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान न बैलादि से युक्त होता है और न शोभा से ही युक्त होता है।

२. युक्त और अयुक्त—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) होने पर भी अयुक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित नहीं) होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई यान अयुक्त (बैल आदि से असंयुक्त) होने पर भी युक्त (वस्त्रादि से सुसज्जित) होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई यान न बैल आदि से ही संयुक्त होता है और न वस्त्रादि से ही सुसज्जित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त और योग्य आचार आदि से, तथा योग्य वेष-भूषा से भी संयुक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष-भूषादि से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष धनादि से संयुक्त नहीं होने पर भी योग्य आचार और योग्य वेष-भूषादि से संयुक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न धनादि से ही युक्त होता है और न योग्य आचार और वेष-भूषादि से ही युक्त होता है (३७१)।

३७२—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्त-परिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

पुन: यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई यान युक्त (बैल आदि से संयुक्त) और युक्त-परिणत (पहले योग्य सामग्री से युक्त न होने पर भी) बाद में सामग्री के भाव से परिणत हो जाता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई यान बैल आदि से युक्त होने पर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई यान बैल आदि से अयुक्त होने पर भी युक्त-परिणत होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई यान न तो बैल आदि से युक्त ही होता है और न युक्त-परिणत ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त और युक्त-परिणत होता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष सत्कार्य से युक्त न होने पर भी युक्त-परिणत जैसा होता है।

४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष न सत्कार्य से युक्त होता है और न युक्त-परिणत ही होता है (३७२)।

३७३—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

पुनः यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्त-रूप—कोई यान बैल आदि से युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई यान बैल आदि से अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई यान न बैल आदि से युक्त होता है और न युक्तरूप वाला ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से भी युक्त होता है और रूप से (वेष आदि से) भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से युक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष गुणों से अयुक्त होता है, किन्तु रूप से युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त रूप—कोई पुरुष न गुणों से ही युक्त होता है और न रूप से ही युक्त होता है (३७३)।

३७४—चत्तारि जाणा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, जजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

पुनः यान चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से भी युक्त होता है और वस्त्राभरणादि की शोभा से भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान बैल आदि से तो युक्त होता है, किन्तु शोभा से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्त शोभ—कोई यान बैल आदि से युक्त नहीं होता, किन्तु शोभा से युक्त होता है।

अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई यान न बैलादि से युक्त होता है और न शोभा से ही युक्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष गुणों से युक्त होता है और उचित शोभा से भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्त-शोभ—कोई पुरुष गुणों से युक्त होता है, किन्तु शोभा से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष गुणों से तो युक्त नहीं होता है, किन्तु शोभा से युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-शोभ—कोई पुरुष न गुणों से युक्त होता है और न शोभा से ही युक्त होता है (३७४)।

३७५—चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

चार प्रकार के युग्य (घोड़ा आदि अथवा गोल्ल देश में प्रसिद्ध दो हाथ का चौकोर यान-विशेष) कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त—कोई युग्य उपकरणों (काठी आदि) से भी युक्त होता है और उत्तम गति (चाल) से भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई युग्य उपकरणों से तो युक्त होता है, किन्तु उत्तम गति से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई युग्य उपकरणों से तो युक्त नहीं होता, किन्तु उत्तम गति से युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई युग्य न उपकरणों से युक्त होता है और न उत्तम गति से युक्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त—कोई पुरुष सम्पत्ति से भी युक्त होता है और सदाचार से भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष सम्पत्ति से तो युक्त होता है, किन्तु सदाचार से युक्त नहीं होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष सम्पत्ति से तो युक्त नहीं होता, किन्तु सदाचार से युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न सम्पत्ति से ही युक्त होता है और न सदाचार से ही युक्त होता है (३७५)।

३७६—चत्तारि आलावगा, तथा जुग्गेण वि, पडिवक्खो, तहेव पुरिसजाया जाव सोभेत्ति।

एवं जहा जाणेण [चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते]।

पुनः युग्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई युग्य युक्त और युक्त-परिणत होता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई युग्य युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई युग्य अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई युग्य न युक्त ही होता है और न युक्त-परिणत ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं—

१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष गुणों से भी युक्त होता है और योग्य परिणतिवाला भी होता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष गुणों से तो युक्त होता है, किन्तु योग्य परिणति-वाला नहीं होता।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष गुणों से युक्त नहीं होता, किन्तु योग्य परिणति वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष न गुणों से ही युक्त होता है और न योग्य परिणति वाला होता है (३७६)।

३७७—[चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे]।

पुनः युग्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त रूप—कोई युग्य युक्त और योग्य रूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्त रूप—कोई युग्य युक्त, किन्तु अयोग्य रूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्त रूप—कोई युग्य अयुक्त, किन्तु योग्य रूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त रूप—कोई युग्य अयुक्त और अयुक्त रूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष युक्त और योग्य रूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयोग्य रूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु योग्य रूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त और अयोग्य रूप वाला होता है (३७७)।

३७८—[चत्तारि जुग्गा पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे]।

पुनः युग्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त-शोभ—कोई युग्य युक्त और युक्त शोभा वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्त-शोभ—कोई युग्य युक्त, किन्तु अयुक्त शोभा वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्त-शोभ—कोई युग्य अयुक्त, किन्तु युक्त शोभा वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-शोभ—कोई युग्य अयुक्त और अयुक्त शोभा वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष युक्त और युक्त शोभा वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्त-शोभ—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयुक्त शोभा वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्त-शोभ—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु युक्त शोभा वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-शोभ—कोई पुरुष अयुक्त और अयुक्त शोभा वाला होता है (३७८)।

सारथि-सूत्र

३७९—चत्तारि सारही पण्णत्ता, तं जहा—जोयावइत्ता णामं एगे णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णाममेगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्तावि विजोयावइत्तावि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जोयावइत्ता णामं एगे णो विजोयावइत्ता, विजोयावइत्ता णामं एगे णो जोयावइत्ता, एगे जोयावइत्तावि विजोयावइत्तावि, एगे णो जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता।

सारथि (रथ-वाहक) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. योजयिता, न वियोजयिता—कोई सारथि घोड़े आदि को रथ में जोड़ने वाला होता है, किन्तु उन्हें मुक्त करने वाला नहीं होता।
२. वियोजयिता, न योजयिता—कोई सारथि घोड़े आदि को रथ से मुक्त करने वाला होता है, किन्तु उन्हें रथ में जोड़ने वाला नहीं होता।
३. योजयिता भी, वियोजयिता भी—कोई सारथि घोड़े आदि को रथ में जोड़ने वाला भी होता है और उन्हें रथ से मुक्त करने वाला भी होता है।
४. न योजयिता, न वियोजयिता—कोई सारथि न रथ में घोड़े आदि को जोड़ता ही है और न उन्हें रथ से मुक्त ही करता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. योजयिता, न वियोजयिता—कोई पुरुष दूसरों को उत्तम कार्यों से युक्त तो करता है किन्तु अनुचित कार्यों से उन्हें वियुक्त नहीं करता।

२. वियोजयिता, न योजयिता—कोई पुरुष दूसरों को अयोग्य कार्यों से वियुक्त तो करता है, किन्तु उत्तम कार्यों में युक्त नहीं करता।
३. योजयिता भी, वियोजयिता भी—कोई पुरुष दूसरों को उत्तम कार्यों में युक्त भी करता है और अनुचित कार्यों से वियुक्त भी करता है।
४. न योजयिता, न वियोजयिता—कोई दूसरों को उत्तम कार्यों में न युक्त ही करता है और न अनुचित कार्यों से वियुक्त ही करता है (३७९)।

युक्त-अयुक्त-सूत्र

३८०—चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त—कोई घोड़ा जीन-पलान-से युक्त होता है और वेग से भी युक्त होता है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई घोड़ा जीन-पलान से युक्त तो होता है, किन्तु वेग से युक्त नहीं होता।
३. अयुक्त और युक्त—कोई घोड़ा जीन-पलान से अयुक्त होकर भी वेग से युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई घोड़ा न जीन-पलान से युक्त होता है और न वेग से ही युक्त होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण से युक्त है और उत्साह आदि गुणों से भी युक्त है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण से तो युक्त है, किन्तु उत्साह आदि गुणों से युक्त नहीं है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष वस्त्राभरण से अयुक्त है, किन्तु उत्साह आदि गुणों से युक्त है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष न वस्त्राभरण से युक्त है और न उत्साह आदि गुणों से युक्त है (३८०)।

३८१—एवं जुत्तपरिणते, जुत्तरूवे, जुत्तसोभे, सव्वेसिं पडिवक्खो पुरिसजाता। चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई घोड़ा युक्त भी होता है और युक्त-परिणत भी होता है।

२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई घोड़ा युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई घोड़ा अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई घोड़ा अयुक्त भी होता है और अयुक्त-परिणत भी होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर युक्त-परिणत होता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर युक्त-परिणत होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होता है (३८१)।

३८२—एवं जहा हयाणं तहा गयाण वि भाणियव्वं, पडिवक्खे तहेव पुरिसजाया। [चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।]

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे]।

पुन: घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई घोड़ा युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तरूप—कोई घोड़ा युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई घोड़ा अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई घोड़ा अयुक्त और अयुक्तरूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष युक्त और युक्तरूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयुक्तरूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु युक्तरूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त और अयुक्तरूप वाला होता है (३८२)।

३८३—[चत्तारि हया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे]।

पुन: घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तशोभ—कोई घोड़ा युक्त और युक्तशोभा वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तशोभ—कोई घोड़ा युक्त, किन्तु अयुक्तशोभा वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तशोभ—कोई घोड़ा अयुक्त, किन्तु युक्तशोभा वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई घोड़ा अयुक्त और अयुक्तशोभा वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त और युक्तशोभा वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त, किन्तु अयुक्तशोभा वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त, किन्तु युक्तशोभा वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त और अयुक्तशोभा वाला होता है (३८३)।

३८४—[चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते]।

हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त—कोई हाथी युक्त होकर युक्त ही होता है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्त होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई हाथी अयुक्त होकर अयुक्त ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त—कोई पुरुष युक्त होकर युक्त ही होता है।
२. युक्त और अयुक्त—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त होता है।
३. अयुक्त और युक्त—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त ही होता है (३८४)।

३८५—[चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणते, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणते]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई हाथी युक्त होकर युक्त-परिणत होता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर युक्त-परिणत होता है।
२. युक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्त-परिणत होता है।
३. अयुक्त और युक्त-परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्त-परिणत होता है।
४. अयुक्त और अयुक्त-परिणत—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्त-परिणत होता है (३८५)।

३८६—[**चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे।**

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई हाथी युक्त होकर युक्तरूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तरूप—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्तरूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्तरूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई हाथी अयुक्त होकर अयुक्तरूप वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष युक्त होकर युक्तरूप वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्तरूप वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्तरूप वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तरूप—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्तरूप वाला होता है (३८६)।

३८७—[**चत्तारि गया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे।**

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, जुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे जुत्तसोभे, अजुत्ते णाममेगे अजुत्तसोभे]।

पुनः हाथी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तशोभ—कोई हाथी युक्त होकर युक्त शोभा वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तशोभ—कोई हाथी युक्त होकर भी अयुक्तशोभा वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तशोभ—कोई हाथी अयुक्त होकर भी युक्तशोभा वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई हाथी अयुक्त होकर अयुक्तशोभा वाला होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. युक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त होकर युक्तशोभा वाला होता है।
२. युक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष युक्त होकर भी अयुक्तशोभा वाला होता है।
३. अयुक्त और युक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त होकर भी युक्तशोभा वाला होता है।
४. अयुक्त और अयुक्तशोभ—कोई पुरुष अयुक्त होकर अयुक्तशोभा वाला होता है (३८७)।

पथ-उत्पथ-सूत्र

३८८—**चत्तारि जुग्गारिता पण्णत्ता, तं जहा—पंथजाई णाममेगे णो उप्पहजाई, उप्पहजाई णाममेगे णो पंथजाई, एगे पंजाईवि उप्पहजाईवि, एगे णो पंथजाई णो उप्पहजाई।**

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पंथजाई णाममेगे णो उप्पहजाई, उप्पहजाई णाममेगे णो पंथजाई, एगे पंथजाईवि उप्पहजाईवि, एगे णो पंथजाई णो उप्पहजाई।

युग्य (जोते जानेवाले घोड़े आदि) का ऋत (गमन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पथयायी, न उत्पथयायी—कोई युग्य मार्गगामी होता है, किन्तु उन्मार्गगामी नहीं होता।
२. उत्पथयायी, न पथयायी—कोई युग्य उन्मार्गगामी होता है, किन्तु मार्गगामी नहीं होता।
३. पथयायी-उत्पथयायी—कोई युग्य मार्गगामी भी होता है और उन्मार्गगामी भी होता है।
४. न पथयायी, न उत्पथयायी—कोई युग्य न मार्गगामी होता है और न उन्मार्गगामी होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पथयायी, न उत्पथयायी—कोई पुरुष मार्गगामी होता है, किन्तु उन्मार्गगामी नहीं होता।
२. उत्पथयायी, न पथयायी—कोई पुरुष उन्मार्गगामी होता है, किन्तु मार्गगामी नहीं होता।
३. पथयायी भी, उत्पथयायी भी—कोई पुरुष मार्गगामी भी होता है और उन्मार्गगामी भी होता है।
४. न पथयायी, न उत्पथयायी—कोई पुरुष न मार्गगामी होता है और न उन्मार्गगामी होता है (३८८)।

रूप-शील-सूत्र

३८९—चत्तारि पुप्फा पण्णत्ता, तं जहा—रूवसंपण्णे णाममेगे णो गंधसंपण्णे, गंधसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णेवि गंधसंपण्णेवि, एगे णो रूवसंपण्णे णो गंधसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णेवि सीलसंपण्णेवि, एगे णो रूवसंपण्णे णो सीलसंपण्णे।

पुष्प चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रूपसम्पन्न, न गन्धसम्पन्न—कोई फूल रूपसम्पन्न होता है, किन्तु गन्धसम्पन्न नहीं होता। जैसे—आकुलि का फूल।
२. गन्धसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई फूल गन्धसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता। जैसे—बकुल का फूल।
३. रूपसम्पन्न भी, गन्धसम्पन्न भी—कोई फूल रूपसम्पन्न भी होता है और गन्धसम्पन्न भी होता है। जैसे—जुही का फूल।
४. न रूपसम्पन्न, न गन्धसम्पन्न—कोई फूल न रूपसम्पन्न होता है और न गन्धसम्पन्न ही होता है। जैसे—बदरी (बोरड़ी) का फूल।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रूपसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता।
२. शीलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।

३. रूपसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी--कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है।
४. न रूपसम्पन्न, न शीलसम्पन्न--कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (३८९)।

जाति-सूत्र

३९०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, कुलसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि कुलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो कुलसंपण्णे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे--

१. जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न--कोई पुरुष जातिसम्पन्न (उत्तम मातृपक्षवाला) होता है, किन्तु कुलसम्पन्न (उत्तम पितृपक्षवाला) नहीं होता।
२. कुलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न--कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, कुलसम्पन्न भी--कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और कुलसम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न--कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न कुलसम्पन्न ही होता है (३९०)।

३९१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो बलसंपण्णे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे--

१. जातिसम्पन्न, बलसम्पन्न न--कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. बलसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न बल सम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (३९१)।

३९२—एवं जातीए य, रूवेण य, चत्तारि आलावगा, एवं जातीए य, सुएण य, एवं जातीए य, सीलेण य, एवं जातीए य, चरित्तेण य, एवं कुलेण य, बलेण य, एवं कुलेण य, रूवेण य, कुलेण य, सुत्तेण य, कुलेण य, सीलेण य, कुलेण य चरित्तेण य. [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो रूवसंपण्णे]।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (३९२)।

३९३—[**चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे, सुयसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णे वि सुयसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो सुयसंपण्णे।**]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. जातिसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता।
२. श्रुतसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और श्रुतसम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न श्रुतसम्पन्न ही होता है (३९३)।

३९४—[**चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि सीलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो सीलसंपण्णे।**]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. जातिसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता।
२. शीलसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है शीलसम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (३९४)।

३९५—[**चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि चरित्तसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे।**]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नहीं होता।
२. चरित्रसम्पन्न, जातिसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और चरित्र-सम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न चरित्र-सम्पन्न ही होता है (३९५)।

३९६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो बलसंपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. बलसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (३९६)।

३९७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. कुलसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (३९७)।

३९८—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे, सुयसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि सुयसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो सुयसंपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. कुलसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता।
२. श्रुतसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और श्रुतसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न श्रुतसम्पन्न ही होता है (३९८)।

३९९—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सील-संपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि सीलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो सीलसंपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता।
२. शीलसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (३९९)।

४००—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि चरित्तसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्र-सम्पन्न नहीं होता।
२. चरित्रसम्पन्न, कुलसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्र सम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और चरित्र-सम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४००)।

बल-सूत्र

४०१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. बलसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता ।
२. रूपसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता ।
३. बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है ।
४. न बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४०१) ।

४०२—एवं बलेण य, सुत्तेण य, एवं बलेण य, सीलेण य, एवं बलेण य, चरित्तेण य, [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे, सुयसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि सुयसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो सुयसंपण्णे] ।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. बलसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता ।
२. श्रुतसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता ।
३. बलसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और श्रुतसम्पन्न भी होता है ।
४. न बलसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न श्रुतसम्पन्न ही होता है (४०२) ।

४०३—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि सीलसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो सीलसंपण्णे ।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. बलसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता ।
२. शीलसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता ।
३. बलसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है ।

४. न बलसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (४०३)।

४०४—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि चरित्तसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. बलसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नहीं होता।
२. चरित्रसम्पन्न, बलसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
३. बलसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और चरित्रसम्पन्न भी होता है।
४. न बलसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४०४)।

रूप-सूत्र

४०५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे एवं रूवेण य सीलेण य, रूवेण य चरित्तेण य, सुयसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णेवि सुयसंपण्णेवि, एगे णो रूवसंपण्णे णो सुयसंपण्णे।]

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रूपसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता।
२. श्रुतसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु रूप-सम्पन्न नहीं होता।
३. रूपसम्पन्न भी, श्रुतसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है, और श्रुतसम्पन्न भी होता है।
४. न रूपसम्पन्न, न श्रुतसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है, और न श्रुतसम्पन्न ही होता है (४०५)।

४०६—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णेवि सीलसंपण्णेवि, एगे णो रूवसंपण्णे णो सीलसंपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रूपसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता।

२. शीलसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
३. रूपसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है।
४. न रूपसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (४०६)।

४०७—[चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवसंपण्णे णाममेगे णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णेवि चरित्तसंपण्णेवि, एगे णो रूवसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे।]

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रूपसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नहीं होता।
२. चरित्रसम्पन्न, रूपसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
३. रूपसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और चरित्रसम्पन्न भी होता है।
४. न रूपसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४०७)।

श्रुत-सूत्र

४०८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुयसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, सीलसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे, एगे सुयसंपण्णेवि सीलसंपण्णेवि, एगे णो सुयसंपण्णे णो सीलसंपण्णे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. श्रुतसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता।
२. शीलसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता।
३. श्रुतसम्पन्न भी, शीलसम्पन्न भी—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न भी होता है और शीलसम्पन्न भी होता है।
४. न श्रुतसम्पन्न, न शीलसम्पन्न—कोई पुरुष न श्रुतसम्पन्न होता है और न शीलसम्पन्न ही होता है (४०८)।

४०९—एवं सुएण य चरित्तेण य [चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुयसंपण्णे णाममेगे

णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे णो सुयसंपण्णे, एगे सुयसंपण्णेवि चरित्तसंपण्णेवि, एगे णो सुयसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे ।]

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. श्रुतसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्रसम्पन्न नहीं होता ।
२. चरित्रसम्पन्न, श्रुतसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं होता ।
३. श्रुतसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष श्रुतसम्पन्न भी होता है और चरित्र-सम्पन्न भी होता है ।
४. न श्रुतसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न श्रुतसम्पन्न होता है और न चरित्रसम्पन्न ही होता है (४०९) ।

शील-सूत्र

४१०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सीलसंपण्णे णाममेगे णो चरित्तसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे णाममेगे णो सीलसंपण्णे, एगे सीलसंपण्णेवि चरित्तसंपण्णेवि, एगे णो सीलसंपण्णे णो चरित्तसंपण्णे । एते एक्कवीसं भंगा भाणियव्वा ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. शीलसम्पन्न, चरित्रसम्पन्न न—कोई पुरुष शीलसम्पन्न होता है, किन्तु चरित्र से सम्पन्न नहीं होता ।
२. चरित्रसम्पन्न, शीलसम्पन्न न—कोई पुरुष चरित्रसम्पन्न होता है, किन्तु शीलसम्पन्न नहीं होता ।
३. शीलसम्पन्न भी, चरित्रसम्पन्न भी—कोई पुरुष शीलसम्पन्न भी होता है और चरित्रसम्पन्न भी होता है ।
४. न शीलसम्पन्न, न चरित्रसम्पन्न—कोई पुरुष न शीलसम्पन्न होता है और न चरित्र-सम्पन्न ही होता है (४१०) ।

आचार्य-सूत्र

४११—चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा—आमलगमहुरे, मुद्दियामहुरे, खीरमहुरे, खंडमहुरे ।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—आमलगमहुरफलसमाणे, जाव [मुद्दियामहुर-फलसमाणे, खीरमहुरफलसमाणे] खंडमहुरफलसमाणे ।

चार प्रकार के फल कहे गये हैं । जैसे—

१. आमलक-मधुर—आंवले के समान मधुर ।
२. मृद्वीका-मधुर—द्राक्षा के समान मधुर ।
३. क्षीर-मधुर—दूध के समान मधुर ।
४. खण्ड-मधुर—खांड-शक्कर के समान मधुर ।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आमलकमधुर फल समान—कोई आचार्य आंवले के फल समान अल्पमधुर होते हैं।
२. मृद्वीकामधुर फल समान—कोई आचार्य दाख के फल समान मधुर होते हैं।
३. क्षीरमधुर फल समान—कोई आचार्य दूध-मधुर फल समान अधिक मधुर होते हैं।
४. खण्ड मधुरफल समान—कोई आचार्य खांड-मधुर फल समान बहुत अधिक मधुर होते हैं (४११)।

विवेचन—जैसे आंवले से अंगूर आदि फल उत्तरोत्तर मधुर या मीठे होते हैं, उसी प्रकार आचार्यों के स्वभाव में भी तर-तम-भाव को लिए हुए मधुरता पाई जाती है, अतः उनके भी चार प्रकार कहे गये हैं।

वैयावृत्य-सूत्र

४१२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आतवेयावच्चकरे णाममेगे णो परवेयावच्चकरे, परवेयावच्चकरे णाममेगे णो आतवेयावच्चकरे, एगे आतवेयावच्चकरेवि परवेयावच्चकरेवि, एगे णो आतवेयावच्चकरे णो परवेयावच्चकरे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आत्म-वैयावृत्यकर, न पर-वैयावृत्यकर—कोई पुरुष अपनी वैयावृत्य (सेवा-टहल) करता है, किन्तु दूसरों की वैयावृत्य नहीं करता।
२. पर-वैयावृत्यकर, न आत्म-वैयावृत्यकर—कोई पुरुष दूसरों की वैयावृत्य करता है, किन्तु अपनी वैयावृत्य नहीं करता।
३. आत्म-वैयावृत्यकर, पर-वैयावृत्यकर—कोई मनुष्य अपनी भी वैयावृत्य करता है और दूसरों की भी वैयावृत्य करता है।
४. न आत्म-वैयावृत्यकर, न पर-वैयावृत्यकर—कोई पुरुष न अपनी वैयावृत्य ही करता है और न दूसरों की ही वैयावृत्य करता है (४१२)।

विवेचन—स्वार्थी मनुष्य अपनी सेवा-टहल करता है, पर दूसरों की नहीं। निःस्वार्थी मनुष्य दूसरों की सेवा करता है, अपनी नहीं। श्रावक अपनी भी सेवा करता है और दूसरों की भी सेवा करता है। आलसी, मूर्ख और पादोपगमन संथारावाला या जिनकल्पी साधु न अपनी सेवा करता है और न दूसरों की ही सेवा करता है।

४१३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—करेति णाममेगे वेयावच्चं णो पडिच्छइ, पडिच्छइ णाममेगे वेयावच्चं णो करेति, एगे करेतिवि वेयावच्चं पडिच्छइवि, एगे णो करेति वेयावच्चं णो पडिच्छइ।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष दूसरों की वैयावृत्य करता है, किन्तु दूसरों से अपनी वैयावृत्य नहीं कराता।
२. कोई पुरुष दूसरों से अपनी वैयावृत्य कराता है, किन्तु दूसरों की नहीं करता।

३. कोई पुरुष दूसरों की भी वैयावृत्त्य करता है और अपनी भी वैयावृत्त्य दूसरों से कराता है।
४. कोई पुरुष न दूसरों की वैयावृत्त्य करता है और न दूसरों से अपनी कराता है (४१३)।

अर्थ-मान-सूत्र

४१४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो अट्ठकरे, एगे अट्ठकरेवि माणकरेवि, एगे णो अट्ठकरे णो माणकरे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. अर्थकर, न मानकर—कोई पुरुष अर्थकर होता है, किन्तु अभिमान नहीं करता।
२. मानकर, न अर्थकर—कोई पुरुष अभिमान करता है, किन्तु अर्थकर नहीं होता।
३. अर्थकर भी, मानकर भी—कोई पुरुष अर्थकर भी होता है और अभिमान भी करता है।
४. न अर्थकर, न मानकर—कोई पुरुष न अर्थकर होता है और न अभिमान ही करता है (४१४)।

विवेचन—'अर्थ' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। प्रकृत में इसका अर्थ 'इष्ट या प्रयोजन-भूत कार्य को करना और अनिष्ट या अप्रयोजनभूत कार्य का निषेध करना' ग्राह्य है। राजा के मंत्री या पुरोहित आदि प्रथम भंग की श्रेणी में आते हैं। वे समय-समय पर अपने स्वामी को इष्ट कार्य सुझाने और अनिष्ट कार्य करने का निषेध करते रहते हैं। किन्तु वे यह अभिमान नहीं करते कि स्वामी ने हम से इस विषय में कुछ नहीं पूछा है तो हम बिना पूछे यह कार्य कैसे करें। कर्मचारी-वर्ग भी इस प्रथम श्रेणी में आता है। अर्थ का दूसरा अर्थ धन भी होता है। घर का कोई प्रधान संचालक धन कमाता है और घर भर का खर्च चलाता है, किन्तु वह यह अभिमान नहीं करता कि मैं धन कमाकर सब का भरण-पोषण करता हूं। दूसरी श्रेणी में वे पुरुष आते हैं जो वय, विद्या आदि में बढ़े-चढ़े होने से अभिमान तो करते हैं, किन्तु न प्रयोजनभूत कोई कार्य ही करते हैं और न धनादि ही कमाते हैं। तीसरी श्रेणी में मध्य वर्ग के गृहस्थ आते हैं और चौथी श्रेणी में दरिद्र, मूर्ख और आलसी पुरुष परिगणनीय हैं। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले सूत्रों का भी विवेचन करना चाहिए।

४१५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गणट्ठकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणट्ठकरे, एगे गणट्ठकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणट्ठकरे णो माणकरे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. गणार्थकर, न मानकर—कोई पुरुष गण के लिए कार्य करता है, किन्तु अभिमान नहीं करता।
२. मानकर न गणार्थकर—कोई पुरुष अभिमान करता है, किन्तु गण के लिए कार्य नहीं करता।
३. गणार्थकर भी, मानकर भी—कोई पुरुष गण के लिए कार्य भी करता है और अभिमान भी करता है।
४. न गणार्थकर, न मानकर—कोई पुरुष न गण के लिए कार्य ही करता है और न अभिमान ही करता है (४१५)।

विवेचन—यहां 'गण' पद से साधु-संघ और श्रावक-संघ ये दोनों अर्थ ग्रहण करना चाहिए। यत: शास्त्रों के रचयिता साधुजन रहे हैं, अत: उन्होंने साधुगण को लक्ष्य कर के ही इसकी व्याख्या की है। फिर भी श्रावक-गण को भी 'गण' के भीतर गिना जा सकता है। यदि इनका ग्रहण अभीष्ट न होता, तो सूत्र में 'पुरुषजात' इस सामान्य पद का प्रयोग न किया गया होता।

४१६—**चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गणसंगहकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसंगहकरे, एगे गणसंगहकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणसंगहकरे णो माणकरे।**

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गणसंग्रहकर, न मानकर—कोई पुरुष गण के लिये संग्रह करता है, किन्तु अभिमान नहीं करता।
२. मानकर, न गणसंग्रहकर—कोई पुरुष अभिमान करता है, किन्तु गण के लिए संग्रह नहीं करता।
३. गणसंग्रहकर भी, मानकर भी—कोई पुरुष गण के लिए संग्रह भी करता है और अभिमान भी करता है।
४. न गणसंग्रहकर, न मानकर—कोई पुरुष न गण के लिए संग्रह ही करता है और न अभिमान ही करता है। (४१६)

४१७—**चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गणसोभकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसोभकरे, एगे गणसोभकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणसोभकरे णो माणकरे।**

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गणशोभाकर, न मानकर—कोई पुरुष अपने विद्यातिशय आदि से गण की शोभा बढ़ाता है, किन्तु अभिमान नहीं करता।
२. मानकर, न गणशोभकर—कोई पुरुष अभिमान तो करता है, किन्तु गण की कोई शोभा नहीं बढ़ाता।
३. गणशोभाकर, मानकर—कोई पुरुष गण की शोभा भी बढ़ाता है और अभिमान भी करता है।
४. न गणशोभाकर, न मानकर—कोई पुरुष न गण की शोभा ही बढ़ाता है और न अभिमान ही करता है (४१७)।

४१८—**चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गणसोहिकरे णाममेगे णो माणकरे, माणकरे णाममेगे णो गणसोहिकरे, एगे गणसोहिकरेवि माणकरेवि, एगे णो गणसोहिकरे णो माणकरे।**

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गणशोधिकर न मानकर—कोई पुरुष गण की प्रायश्चित्त आदि के द्वारा शुद्धि करता है, किन्तु अभिमान नहीं करता।
२. मानकर, न गणशोधिकर—कोई पुरुष अभिमान करता है, किन्तु गण की शुद्धि नहीं करता।

३. गण-शोधिकर भी, अभिमानकर भी—कोई पुरुप गण की शुद्धि भी करता है और अभिमान भी करता है।
४. न गण-शोधिकर, न मानकर—कोई पुरुष न गण की शुद्धि ही करता है और न अभिमान ही करता है (४१८)।

धर्म-सूत्र

४१९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवं णाममेगे जहति णो धम्मं, धम्मं णाममेगे जहति णो रूवं, एगे रूवंपि जहति धम्मंपि, एगे णो रूवं जहति णो धम्मं।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. रूप-जही, न धर्म-जही—कोई पुरुप वेष का त्याग कर देता है, किन्तु धर्म का त्याग नहीं करता।
२. धर्म-जही, न रूप-जही—कोई पुरुष धर्म का त्याग कर देता है, किन्तु वेष का त्याग नहीं करता।
३. रूप-जही, धर्म-जही—कोई पुरुष वेष का भी त्याग कर देता है और धर्म का भी त्याग कर देता है।
४. न रूप-जही, न धर्म-जही—कोई पुरुष न वेष का ही त्याग करता है और न धर्म का ही त्याग करता है (४१९)।

४२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मं णाममेगे जहति णो गणसंठिति, गणसंठिति णाममेगे जहति णो धम्मं, एगे धम्मंवि जहति गणसंठितिंवि, एगे णो धम्मं जहति णो गणसंठितिं।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. धर्म-जही न गणसंस्थिति-जही—कोई पुरुष धर्म का त्याग कर देता है, किन्तु गण का निवास और मर्यादा नहीं त्यागता है।
२. गणसंस्थिति जही, न धर्म-जही—कोई पुरुष गण का निवास और मर्यादा का त्याग कर देता है, किन्तु धर्म का त्याग नहीं करता।
३. धर्म-जही, गणसंस्थिति-जही—कोई पुरुष धर्म का भी त्याग कर देता है और गण का निवास और मर्यादा का भी त्याग कर देता है।
४. न धर्म-जही न गणसंस्थिति-जही—कोई पुरुष न धर्म का ही त्याग करता है और न गण का निवास और मर्यादा का ही त्याग करता है (४२०)।

४२१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पियधम्मे णाममेगे णो दढधम्मे, दढधम्मे णाममेगे णो पियधम्मे, एगे पियधम्मेवि दढधम्मेवि, एगे णो पियधम्मे णो दढधम्मे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. प्रियधर्मा, न दृढधर्मा—किसी पुरुष को धर्म तो प्रिय होता है, किन्तु वह धर्म में दृढ नहीं रहता।

२. दृढ़धर्मा, न प्रियधर्मा—कोई पुरुष स्वीकृत धर्म के पालन में दृढ़ तो होता है, किन्तु अन्तरंग से उसे वह धर्म प्रिय नहीं होता।
३. प्रियधर्मा, दृढ़धर्मा—किसी पुरुष को धर्म प्रिय भी होता है और वह उसके पालन में भी दृढ़ होता है।
४. न प्रियधर्मा, न दृढ़धर्मा—किसी पुरुष को न धर्म प्रिय होता है और न उसके पालन में ही दृढ़ होता है (४२१)।

आचार्य-सूत्र

४२२—चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—पव्वावणारिए णाममेगे णो उवट्ठावणायरिए, उवट्ठावणायरिए णाममेगे णो पव्वावणायरिए, एगे पव्वावणायरिएवि उवट्ठावणायरिए वि, एगे णो पव्वावणायरिए णो उवट्ठावणायरिए—धम्मायरिए।

आचार्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्रव्राजनाचार्य, न उपस्थापनाचार्य—कोई आचार्य प्रव्रज्या (दीक्षा) देने वाले होते हैं, किन्तु उपस्थापना (महाव्रतों की आरोपणा करने वाले) नहीं होते।
२. उपस्थापनाचार्य, न प्रव्राजनाचार्य—कोई आचार्य महाव्रतों की उपस्थापना करने वाले होते हैं, किन्तु प्रव्राजनाचार्य नहीं होते।
३. प्रव्राजनाचार्य, उपस्थापनाचार्य—कोई आचार्य दीक्षा देने वाले भी होते हैं, और उपस्थापना करने वाले भी होते हैं।
४. न प्रव्राजनाचार्य, न उपस्थापनाचार्य—कोई आचार्य न दीक्षा देने वाले ही होते हैं और न उपस्थापना करने वाले ही होते हैं, किन्तु धर्म के प्रतिबोधक होते हैं, वह चाहे गृहस्थ हो चाहे साधु (४२२)।

४२३—चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—उद्देसणायरिए णाममेगे णो वायणायरिए, वायणायरिए णाममेगे णो उद्देसणायरिए, एगे उद्देसणायरिएवि वायणायरिएवि, एगे णो उद्देसणायरिए णो वायणायरिए—धम्मायरिए।

पुनः आचार्य चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. उद्देशनाचार्य, न वाचनाचार्य—कोई आचार्य शिष्यों को अंगसूत्रों के पढ़ने का आदेश देने वाले होते हैं, किन्तु वाचना देने वाले नहीं होते।
२. वाचनाचार्य, न उद्देशनाचार्य—कोई आचार्य वाचना देने वाले होते हैं, किन्तु पठन-पाठन का आदेश देने वाले नहीं होते।
३. उद्देशनाचार्य, वाचनाचार्य—कोई आचार्य पठन-पाठन का आदेश भी देते हैं और वाचना देने वाले भी होते हैं।
४. न उद्देशनाचार्य, न वाचनाचार्य—कोई आचार्य न पठन-पाठन का आदेश देने वाले होते हैं और न वाचना देने वाले ही होते हैं। किन्तु धर्म का प्रतिबोध देने वाले होते हैं (४२३)।

अंतेवासी-सूत्र

४२४—चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—पव्वावणंतेवासी णाममेगे णो उवट्ठावणंतेवासी, उवट्ठावणंतेवासी णाममेगे णो पव्वावणंतेवासी, एगे पव्वावणंतेवासीवि उवट्ठावणंतेवासीवि, एगे णो पव्वावणंतेवासी णो उवट्ठावणंतेवासी—धम्मंतेवासी।

अन्तेवासी (समीप रहने वाले अर्थात् शिष्य) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्रव्राजनान्तेवासी, न उपस्थापनान्तेवासी—कोई शिष्य प्रव्राजना अन्तेवासी होता है अर्थात् दीक्षा देने वाले आचार्य का दीक्षादान की दृष्टि से ही शिष्य होता है, किन्तु उपस्थापना की दृष्टि से अन्तेवासी नहीं होता।
२. उपस्थापनान्तेवासी, न प्रव्राजनान्तेवासी—कोई शिष्य उपस्थापना की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है, किन्तु प्रव्राजना की अपेक्षा से अन्तेवासी नहीं होता।
३. प्रव्राजनान्तेवासी, उपास्थापनान्तेवासी—कोई शिष्य प्रव्राजना-अन्तेवासी भी होता है और उपस्थापना-अन्तेवासी भी होता है (जिसने एक ही आचार्य से दीक्षा और उपस्थापना ग्रहण की हो)।
४. न प्रव्राजनान्तेवासी, न उपस्थापनान्तेवासी—कोई शिष्य न प्रव्राजना की अपेक्षा अन्तेवासी होता है और न उपस्थापना की दृष्टि से ही अन्तेवासी होता है, किन्तु मात्र धर्मोपदेश की अपेक्षा अन्तेवासी होता है अथवा अन्य आचार्य द्वारा दीक्षित एवं उपस्थापित होकर जो किसी अन्य आचार्य का शिष्यत्व स्वीकार करता है (४२४)।

४२५—चत्तारि अंतेवासी पण्णत्ता, तं जहा—उद्देसणंतेवासी णाममेगे णो वायणंतेवासी, वायणंतेवासी णाममेगे णो उद्देसणंतेवासी, एगे उद्देसणंतेवासीवि वायणंतेवासीवि, एगे णो उद्देसणंतेवासी णो वायणंतेवासी—धम्मंतेवासी।

पुनः अन्तेवासी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उद्देशनान्तेवासी, न वाचनान्तेवासी—कोई शिष्य उद्देशना की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है, किन्तु वाचना की अपेक्षा से अन्तेवासी नहीं होता।
२. वाचनान्तेवासी, न उद्देशनान्तेवासी—कोई शिष्य वाचना की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है, किन्तु उद्देशना की अपेक्षा से अन्तेवासी नहीं होता।
३. उद्देशनान्तेवासी, वाचनान्तेवासी—कोई शिष्य उद्देशन की अपेक्षासे भी अन्तेवासी होता है और वाचना की अपेक्षा से भी अन्तेवासी होता है।
४. न उद्देशनान्तेवासी, न वाचनान्तेवासी—कोई शिष्य न उद्देशन से ही अन्तेवासी होता है और न वाचना की अपेक्षा से ही अन्तेवासी होता है। मात्र धर्म प्रतिबोध पाने की अपेक्षा से अन्तेवासी होता है (४२५)।

महत्कर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थ-सूत्र

४२६—चत्तारि णिग्गंथा पण्णत्ता, तं जहा—

१. रातिणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति।

२ रातिणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति ।
३. ओमरातिणिए समणे णिग्गंथे महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति ।
४. ओमरातिणिए समणे णिग्गंथे अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति ।

निर्ग्रन्थ चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—
१. कोई श्रमण निर्ग्रन्थ रात्निक (दीक्षापर्याय में ज्येष्ठ) होकर भी महाकर्मा, महाक्रिय, (महाक्रियावाला) अनातापी (अतपस्वी) और असमित (समिति-रहित) होने के कारण धर्म का अनाराधक होता है ।
२. कोई रात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय (अल्पक्रियावाला) आतापी (तपस्वी) और समित (समितिवाला) होने के कारण धर्म का आराधक होता है ।
३. कोई निर्ग्रन्थ श्रमण अवमरात्निक (दीक्षापर्याय में छोटा) होकर महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और असमित होने के कारण धर्म का अनाराधक होता है ।
४. कोई अवमरात्निक श्रमण निर्ग्रन्थ अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और समित होने के कारण धर्म का आराधक होता है (४२६) ।

महाकर्म-अल्पकर्म-निर्ग्रन्थी-सूत्र

४२७—चत्तारि णिग्गंथीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
१. रातिणिया समणी णिग्गंथी एवं चेव ४ । [महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति] ।
२. [रातिणिया समणी णिग्गंथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति ।]
३. [ओमरातिणिया समणी णिग्गंथी महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति ।]
४. [ओमरातिणिया समणी णिग्गंथी अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति ।]

निर्ग्रन्थियां चार प्रकार की कही गई हैं । जैसे—
१. कोई रात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थी, महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धर्म की अनाराधिका होती है ।
२. कोई रात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थी अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने कारण धर्म की आराधिका होती है ।
३. कोई अवमरात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थी महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धर्म की अनाराधिका होती है ।
४. कोई अवमरात्निक श्रमणी निर्ग्रन्थी अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने के कारण धर्म की आराधिका होती है (४२७) ।

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासक-सूत्र

४२८—चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—

१. राइणिए समणोवासए महाकम्मे तहेव ४। [महाकिरिए अणायावी असमिते धम्मस्स अणाराधए भवति]।
२. [राइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिए धम्मस्स आराहए भवति।]
३. [ओमराइणिए समणोवासए महाकम्मे महाकिरिए अणातावी असमिते धम्मस्स अणाराहए भवति।]
४. [ओमराइणिए समणोवासए अप्पकम्मे अप्पकिरिए आतावी समिते धम्मस्स आराहए भवति।]

कोई श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई रात्निक (दीर्घ श्रावकपर्यायवाला) श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और असमित होने के कारण धर्म का अनाराधक होता है।
२. कोई रात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और समित होने के कारण धर्म का आराधक होता है।
३. कोई अवमरात्निक (अल्पकालिक श्रावकपर्यायवाला) श्रमणोपासक महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापी और असमित होने के कारण धर्म का अनाराधक होता है।
४. कोई अवमरात्निक श्रमणोपासक अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापी और समित होने के कारण धर्म का आराधक होता है (४२८)।

महाकर्म-अल्पकर्म-श्रमणोपासिका-सूत्र

४२९—चत्तारि समणोवासियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. राइणिया समणोवासिता महाकम्मा तहेव चत्तारि गमा। [महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति]।
२. [राइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति।]
३. [ओमराइणिया समणोवासिता महाकम्मा महाकिरिया अणायावी असमिता धम्मस्स अणाराधिया भवति।]
४. [ओमराइणिया समणोवासिता अप्पकम्मा अप्पकिरिया आतावी समिता धम्मस्स आराहिया भवति।]

श्रमणोपासिकाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. कोई रात्निक श्रमणोपासिका महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धर्म की अनाराधिका होती है।
२. कोई रात्निक श्रमणोपासिका अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने के कारण धर्म की आराधिका होती है।

३. कोई अवमरात्निक श्रमणोपासिका महाकर्मा, महाक्रिय, अनातापिनी और असमित होने के कारण धर्म की अनाराधिका होती है।

४. कोई अवमरात्निक श्रमणोपासिका अल्पकर्मा, अल्पक्रिय, आतापिनी और समित होने के कारण धर्म की आराधिका होती है (४२९)।

श्रमणोपासक-सूत्र

४३०—चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—अम्मापितिसमाणे, भातिसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्तिसमाणे।

श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. माता-पिता के समान, २. भाई के समान, ३. मित्र के समान, ४. सपत्नी के समान (४३०)।

विवेचन—श्रमण-निर्ग्रन्थ साधुओं की उपासना-आराधना करने वाले गृहस्थ श्रावकों को श्रमणोपासक कहते हैं। जिन श्रमणोपासकों में श्रमणों के प्रति अत्यन्त स्नेह, वात्सल्य और श्रद्धा का भाव निरन्तर प्रवहमान रहता है उनकी तुलना माता-पिता से की गई है। वे तात्त्विक-विचार और जीवन-निर्वाह—दोनों ही अवसरों पर प्रगाढ़ वात्सल्य और भक्ति-भाव का परिचय देते हैं।

जिन श्रमणोपासकों में श्रमणों के प्रति यथावसर वात्सल्य और यथावसर उग्रभाव दोनों होते हैं, उनकी तुलना भाई से की गई है, वे तत्त्व-विचार आदि के समय कदाचित् उग्रता प्रकट कर देते हैं, किन्तु जीवन-निर्वाह के प्रसंग में उनका हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण रहता है।

जिन श्रमणोपासकों में श्रमणों के प्रति कारणवश प्रीति और कारण विशेष से अप्रीति दोनों पाई जाती है, उनकी तुलना मित्र से की गई है, ऐसे श्रमणोपासक अनुकूलता के समय प्रीति रखते हैं और प्रतिकूलता के समय अप्रीति या उपेक्षा करने लगते हैं।

जो केवल नाम से ही श्रमणोपासक कहलाते हैं, किन्तु जिनके भीतर श्रमणों के प्रति वात्सल्य या भक्तिभाव नहीं होता, प्रत्युत जो छिद्रान्वेषण ही करते रहते हैं, उनकी तुलना सपत्नी (सौत) से की गई है।

इस प्रकार श्रद्धा, भक्ति-भाव और वात्सल्य की हीनाधिकता के आधार पर श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं।

४३१—चत्तारि समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा—अद्दागसमाणे, पडागसमाणे, खाणुसमाणे, खरकंटयसमाणे।

पुनः श्रमणोपासक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आदर्शसमान, २. पताकासमान, ३. स्थाणुसमान, ४. खरकण्टकसमान (४३१)।

विवेचन—जो श्रमणोपासक आदर्श (दर्पण) के समान निर्मलचित्त होता है, वह साधु जनों के द्वारा प्रतिपादित उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्ग के आपेक्षिक कथन को यथावत् स्वीकार करता है, वह आदर्श के समान कहा गया है।

जो श्रमणोपासक पताका (ध्वजा) के समान अस्थिरचित्त होता है, वह विभिन्न प्रकार की देशना रूप वायु से प्रेरित होने के कारण किसी एक निश्चित तत्त्व पर स्थिर नहीं रह पाता, उसे पताका के समान कहा गया है।

जो श्रमणोपासक स्थाणु (सूखे वृक्ष के ठूंठ) के समान नमन-स्वभाव से रहित होता है, अपने कदाग्रह को समझाये जाने पर भी नहीं छोड़ता है, वह स्थाणु-समान कहा गया है।

जो श्रमणोपासक महाकदाग्रही होता है, उसको दूर करने के लिए यदि कोई सन्त पुरुष प्रयत्न करता है तो वह तीक्ष्ण दुर्वचन रूप कण्टकों से उसे भी विद्ध कर देता है, उसे खर कण्टक समान कहा गया है।

इस प्रकार चित्त की निर्मलता, अस्थिरता, अनम्रता और कलुषता की अपेक्षा चार भेद कहे गये हैं।

४३२—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स समणोवासगाणं सोधम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

सौधर्म कल्प में अरुणाभ विमान में उत्पन्न हुए श्रमण भगवान् महावीर के श्रमणोपासकों की स्थिति चार पल्योपम कही गई है (४३२)।

अधुनोपपन्न-देव-सूत्र

४३३—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, से णं माणुस्सए कामभोगे णो आढाइ, णो परियाणाति, णो अट्ठं बंधइ, णो णियाणं पगरेति, णो ठितिपगप्पं पगरेति।

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए पेमे वोच्छिण्णे दिव्वे संकंते भवति।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—इण्हिं गच्छं मुहुत्तेणं गच्छं, तेणं कालेणमप्पाउया मणुस्सा कालधम्मुणा संजुत्ता भवंति।

४. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु मुच्छिते गिद्धे गढिते अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवति, उड्ढंपि य णं माणुस्सए गंधे जाव चत्तारि पंच जोयणसताइं हव्वमागच्छति।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता। जैसे—

१. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित (बद्ध) और अध्युपपन्न (आसक्त) होकर मनुष्यों के काम-भोगों का आदर नहीं करता है, उन्हें अच्छा नहीं जानता है, उनसे प्रयोजन नहीं रखता है, उन्हें पाने का निदान (संकल्प) नहीं करता है और न स्थिति-प्रकल्प (उनके मध्य में रहने की इच्छा) करता है।

२. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो जाता है, अतः उसका मनुष्य-सम्बन्धी प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है और उसके भीतर दिव्य प्रेम संक्रान्त हो जाता है।

३. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो जाता है, तब उसका ऐसा विचार होता है—अभी जाता हूँ, थोड़ी देर में जाता हूं। इतने काल में अल्प आयु के धारक मनुष्य कालधर्म से संयुक्त हो जाते हैं।

४. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव दिव्य काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो जाता है, तब उसे मनुष्यलोक की गन्ध प्रतिकूल (दिव्य सुगन्ध से विपरीत दुर्गन्ध रूप) तथा प्रतिलोम (इन्द्रिय और मन को अप्रिय) लगने लगती है, क्योंकि मनुष्यलोक की दुर्गन्ध ऊपर चार-पांच सौ योजन तक फैलती रहती है। (एकान्त सुषमा आदि कालों में चार योजन और दूसरे कालों में पांच योजन ऊपर तक दुर्गन्ध फैलती है।)

इन चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है, किन्तु शीघ्र आने में समर्थ नहीं होता (४३३)।

४३४—चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, संचाएति हव्वमागच्छित्तए, तं जहा—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते जाव [अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णं एवं भवति—अत्थि खलु मम माणुस्सए भवे आयरिएति वा उवज्झाएति वा पवत्तीति वा थेरेति वा गणीति वा गणधरेति वा गणावच्छेदेति वा, जेसिं पभावेणं मए इमा एतारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती [दिव्वे देवाणुभावे ?] लद्धा पत्ता अभिसमण्णागता तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि जाव [णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं] पज्जुवासामि।

२. अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—एस णं माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति वा अइदुक्कर-दुक्करकारगे, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि जाव [णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं] पज्जुवासामि।

३. अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे माताति वा जाव [पियाति वा भायाति वा भगिणीति वा भज्जाति वा पुत्ताति वा धूयाति वा] सुण्हाति वा, तं गच्छामि णं तेसिमंतियं पाउब्भवामि, पासंतु ता मे इममेतारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं [दिव्वं देवाणुभावं ?] लद्धं पत्तं अभिसमण्णागतं।

४. अहुणोववण्णे देवे देवलोगेसु जाव [दिव्वेसु कामभोगेसु अमुच्छिते अगिद्धे अगढिते] अणज्झोववण्णे, तस्स णमेवं भवति—अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मित्तेति वा सहीति वा सुहीति वा सहाएति वा संगइएति वा, तेसिं च णं अम्हे अण्णमण्णस्स संगारे पडिसुते भवति—जो मे पुव्विं चयति से संबोहेतव्वे।

इच्चेतेहिं जाव [चउहिं ठाणेहिं अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए] संचाएति हव्वमागच्छित्तए।

चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है और शीघ्र आने के लिए समर्थ भी होता है। जैसे—

१. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव को ऐसा विचार होता है—मनुष्यलोक में मेरे मनुष्यभव के आचार्य हैं या उपाध्याय हैं या प्रवर्तक हैं या स्थविर हैं या गणी हैं या गणधर हैं या गणावच्छेदक हैं; जिनके प्रभाव से मैंने यह इस प्रकार की दिव्य देवर्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत (भोगने के योग्य दशा को प्राप्त) किया है, अतः मैं जाऊं—उन भगवन्तों की वन्दना करूं, नमस्कार करूं, उनका सत्कार, सन्मान करूं, और कल्याणरूप, मंगलमय देव चैत्यस्वरूप की पर्युपासना करूं।

२. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव ऐसा विचार करता है—इस मनुष्यभव में ज्ञानी हैं, तपस्वी हैं, अतिदुष्कर घोर तपस्या-कारक हैं, अतः मैं जाऊं—उन भगवन्तों को वन्दना करूं, नमस्कार करूं, उनका सत्कार करूं, सन्मान करूं और कल्याणरूप, मंगलमय देव एवं चैत्यस्वरूप की पर्युपासना करूं।

३. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भागों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव को ऐसा विचार होता है—मेरे मनुष्य भव के माता हैं, या पिता हैं, या भाई हैं, या बहिन हैं, या स्त्री है, या पुत्र है, या पुत्री है, या पुत्र-वधू है, अतः मैं जाऊं, उनके सम्मुख प्रकट होऊं, जिससे वे मेरी, इस प्रकार की, दिव्य देवर्धि, दिव्य देव-द्युति, और दिव्य देव-प्रभाव को—जो मुझे मिला है, प्राप्त हुआ है और अभिसमन्वागत हुआ है, देखें।

४. देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ, दिव्य काम-भोगों में अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त देव को ऐसा विचार होता है—मनुष्यलोक में मेरे मनुष्य भव के मित्र हैं, या सखा हैं, या सुहृत् हैं, या सहायक हैं, या संगतिक हैं, उनका हमारे साथ परस्पर संगार (संकेतरूप प्रतिज्ञा) स्वीकृत है कि जो मेरे पहले मरणप्राप्त हो, वह दूसरे को संबोधित करे।

इन चार कारणों से देवलोक में तत्काल उत्पन्न हुआ देव शीघ्र मनुष्यलोक में आने की इच्छा करता है और शीघ्र आने के लिए समर्थ होता है (४३४)।

विवेचन—इस सूत्र में आये हुए आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, गणी आदि पदों की व्याख्या तीसरे स्थान के सूत्र ३६२ में की जा चुकी है। मित्र आदि पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. मित्र—जीवन के किसी प्रसंग-विशेष से जिसके साथ स्नेह हुआ हो।
२. सखा—वाल-काल में साथ खेलने-कूदने वाला।

३. सुहृत्—सुन्दर मनोवृत्तिवाला हितैषी, सज्जन पुरुष।
४. सहायक—संकट के समय सहायता करने वाला, निःस्वार्थ व्यक्ति।
५. संगतिक—जिसके साथ सदा संगति—उठना-बैठना आदि होता रहता है।

ऐसे मित्रादिकों से भी मिलने के लिए देव आने की इच्छा करते हैं और आते भी हैं। तथा जिनके साथ पूर्वभव में यह प्रतिज्ञा हुई हो कि जो पहले स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य हो और यदि वह काम-भोगों में लिप्त होकर संयम को धारण करना भूल जावे तो उसे संवोधने के लिए स्वर्गस्थ देव को आकर उसे प्रबोध देना चाहिए या जो पहले देवलोक में उत्पन्न हो वह दूसरे को प्रतिबोध दे, ऐसा प्रतिज्ञाबद्ध देव भी अपने सांगरिक पुरुष को संवोधना करने के लिए मनुष्यलोक में आता है।

अन्धकार-उद्योतादि-सूत्र

४३५—चउहिं ठाणेहिं लोगंधगारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे, जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चार कारणों से मनुष्यलोक में अन्धकार होता है। जैसे—

१. अर्हन्तों-तीर्थंकरों के विच्छेद हो जाने पर,
२. तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित धर्म के विच्छेद होने पर,
३. पूर्वगत श्रुत के विच्छेद हो जाने पर,
४. जाततेजस् (अग्नि) के विच्छेद हो जाने पर।

इन चार कारणों से मनुष्यलोक में (भाव से, द्रव्य से अथवा द्रव्य-भाव दोनों से) अन्धकार हो जाता है (४३५)।

४३६—चउहिं ठाणेहिं लोउज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिनिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से मनुष्यलोक में उद्योत (प्रकाश) होता है। जैसे—

१. अर्हन्तों-तीर्थंकरों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित (दीक्षित) होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों को केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणों से मनुष्यलोक में उद्योत होता है।

४३७—एवं देवंधगारे, देवुज्जोते, देवसण्णिवाते, देवुक्कलियाए, देवकहकहए, [चउहिं ठाणेहिं देवंधगारे सिया, तं जहा—अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहि, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगते वोच्छिज्जमाणे, जायतेजे वोच्छिज्जमाणे।

चार कारणों से देवलोक में अन्धकार होता है। जैसे—

१. अर्हन्तों के व्युच्छेद हो जाने पर,

२. अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म के व्युच्छेद हो जाने पर,
३. पूर्वगत श्रुत के व्युच्छेद हो जाने पर,
४. अग्नि के व्युच्छेद हो जाने पर।
इन चार कारणों से देवलोक में (क्षण भर के लिए) अन्धकार हो जाता है (४३७)।

४३८—चउहिं ठाणेहिं देवुज्जोते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देवलोक में उद्योत होता है। जैसे—
१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।
इन चार कारणों से देवलोक में उद्योत होता है (४३८)।

४३९—चउहिं ठाणेहिं देवसण्णिवाते सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देव-सन्निपात (देवों का मनुष्यलोक में आगमन) होता है। जैसे—
१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर।
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।
इन चार कारणों से देवों का मनुष्यलोक में आगमन होता है (४३९)।

४४०—चउहिं ठाणेहिं देवुक्कलिया सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देवोत्कलिका (देव-लहरी—देवों का जमघट) होती है। जैसे—
१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।
इन चार कारणों से देवोत्कलिका होती है (४४०)।

विवेचन—उत्कलिका का अर्थ तरंग या लहर है। जैसे पानी में पवन के निमित्त से एक के बाद एक तरंग या लहर उठती है, उसी प्रकार से तीर्थकरों के जन्मकल्याणक आदि के अवसरों पर एक देव-पंक्ति के बाद पीछे से दूसरी देवपंक्ति आती रहती है। यही आती हुई देव-पंक्ति की परस्परा देवोत्कलिका कहलाती है।

४४१—चउहिं ठाणेहिं देवकहकहए सिया, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देव-कहकहा (देवों का प्रमोदजनित कल-कल शब्द) होता है। जैसे—
१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।
इन चार कारणों से देव-कहकहा होता है (४४१)।

४४२—चउहिं ठाणेहिं देविंदा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, एवं जहा तिठाणे जाव लोगंतिया देवा माणुस्सं लोगं हव्वमागच्छेज्जा। तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देवेन्द्र तत्काल मनुष्यलोक में आते हैं। जैसे—
१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।
इन चार कारणों से देवेन्द्र तत्काल मनुष्यलोक में आते हैं (४४२)।

४४३—एवं—सामाणिया, तायत्तीसगा, लोगपाला देवा, अग्गमहिसीओ देवीओ, परिसोववण्णगा देवा, अणियाहिवई देवा, आयरक्खा देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छंति, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

इसी प्रकार सामानिक, त्रायत्रिंशत्क, लोकपाल देव, उनकी अग्रमहिषियाँ, पारिषद्यदेव, अनीकाधिपति (सेनापति) देव और आत्मरक्षक देव, उक्त चार कारणों से तत्काल मनुष्यलोक में आते हैं। जैसे—
१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।
इन चार कारणों से उपर्युक्त सर्व देव तत्काल मनुष्यलोक में आते हैं (४४३)।

४४४—चउहिं ठाणेहिं देवा अब्भुट्ठिज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वामहिमासु।

चार कारणों से देव अपने सिंहासन से उठते हैं। जैसे—
१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,

२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणों से देव अपने सिंहासन से उठते हैं (४४४)।

४४५—चउहिं ठाणेहिं देवाणं आसणाइं चलेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देवों के आसन चलायमान होते हैं। जैसे—

१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणों से देवों के आसन चलायमान होते हैं (४४५)।

४४६—चउहिं ठाणेहिं देवा सीहणायं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देव सिंहनाद करते हैं। जैसे—

१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणों से देव सिंहनाद करते हैं (४४६)।

४४७—चउहिं ठाणेहिं देवा चेलुक्खेवं करेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से देव चेलोत्क्षेप (वस्त्र का ऊपर फेंकना) करते हैं। जैसे—

१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाणकल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणों से देव चेलोत्क्षेप करते हैं (४४७)।

४४८—चउहिं ठाणेहिं देवाणं चेइयरुक्खा चलेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।]

चार कारणों से देवों के चैत्यवृक्ष चलायमान होते हैं। जैसे—

१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणों से देवों के चैत्यवृक्ष चलायमान होते हैं (४४८)।

४४९—चउहिं ठाणेहिं लोगंतिया देवा माणुसं लोगं हव्वमागच्छेज्जा, तं जहा—अरहंतेहिं जायमाणेहिं, अरहंतेहिं पव्वयमाणेहिं, अरहंताणं णाणुप्पायमहिमासु, अरहंताणं परिणिव्वाणमहिमासु।

चार कारणों से लोकान्तिक देव मनुष्यलोक में तत्काल आते हैं। जैसे—

१. अर्हन्तों के उत्पन्न होने पर,
२. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर,
३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने की महिमा के अवसर पर,
४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण कल्याण की महिमा के अवसर पर।

इन चार कारणों से लोकान्तिक देव मनुष्यलोक में तत्काल आते हैं (४४९)।

दुःखशय्या-सूत्र

४५०—चत्तारि दुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थ खलु इमा पढमा दुहसेज्जा—से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छिते भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएइ, णिग्गंथं पावयणं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे मणं उच्चावयं णियच्छति, विणिघातमावज्जति—पढमा दुहसेज्जा।

२. अहावरा दोच्चा दुहसेज्जा—से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ जाव [अणगारियं] पव्वइए सएणं लाभेणं णो तुस्सति, परस्स लाभमासाएति पीहेति पत्थेति अभिलसति, परस्स लाभमासाएमाणे जाव [पीहेमाणे पत्थेमाणे] अभिलसमाणे मणं उच्चावयं णियच्छइ, विणिघातमावज्जति—दोच्चा दुहसेज्जा।

३. अहावरा तच्चा दुहसेज्जा—से णं मुंडे भवित्ता जाव [अगाराओ अणगारियं] पव्वइए दिव्वे माणुस्सए कामभोगे आसाइए जाव [पीहेति पत्थेति] अभिलसति, दिव्वे माणुस्सए कामभोगे आसाएमाणे जाव [पीहेमाणे पत्थेमाणे] अभिलसमाणे मणं उच्चावयं णियच्छति, विणिघातमावज्जति—तच्चा दुहसेज्जा।

४. अहावरा चउत्था दुहसेज्जा—से णं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए, तस्स णं एवं भवति—जया णं अहमगारवासमावसामि तदा णमहं संवाहण-परिमद्दण-गातब्भंग-गातुच्छोलणाइं लभामि, जप्पभिइं च णं अहं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए तप्पभिइं च णं अहं संवाहण जाव [परिमद्दण-गातब्भंग] गातुच्छो-

लणाइं णो लभामि। से णं संवाहण जाव [परिमद्दण-गातब्भंग] गातुच्छोलणाइं आसाएति जाव [पीहेति पत्थेति] अभिलसति, से णं संवाहण जाव [परिमद्दण-गातब्भंग] गातुच्छोलाणाइं आसाएमाणे जाव [पीहेमाणे पत्थेमाणे अभिलसमाणे] मणं उच्चावयं णियच्छति, विणिघातमावज्जति—चउत्था दुहसेज्जा।

चार दुःखशय्याएं कही गई हैं। जैसे—

१. उनमें पहली दुःखशय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो निर्ग्रन्थ-प्रवचन में शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न होकर निर्ग्रन्थप्रवचन में श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं करता। वह निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर अश्रद्धा करता हुआ, अप्रतीति करता हुआ, अरुचि करता हुआ, मन को ऊंचा-नीचा करता है और विनिघात (धर्म-भ्रंशता) को प्राप्त होता है। यह उसकी पहली दुःखशय्या है।

२. दूसरी दुःखशय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो, अपने लाभ से (भिक्षा में प्राप्त भक्त-पानादि से) सन्तुष्ट नहीं होता है, किन्तु दूसरे को प्राप्त हुए लाभ का आस्वाद करता है, इच्छा करता है, प्रार्थना करता है और अभिलाषा करता है। वह दूसरे के लाभ का आस्वाद करता हुआ, इच्छा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ और अभिलाषा करता हुआ मन को ऊंचा-नीचा करता है और विनिघात को प्राप्त होता है। यह उसकी दूसरी दुःखशय्या है।

३. तीसरी दुःखशय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो देवों के और मनुष्यों के काम-भोगों का आस्वाद करता है, इच्छा करता है, प्रार्थना करता है, अभिलाषा करता है। वह देवों के और मनुष्यों के काम-भोगों का आस्वाद करता हुआ, इच्छा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ और अभिलाषा करता हुआ मन को ऊंचा-नीचा करता है और विनिघात को प्राप्त होता है। यह उसकी तीसरी दुःखशय्या है।

४. चौथी दुःखशय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुआ। उसको ऐसा विचार होता है—जब मैं गृहवास में रहता था, तब मैं संबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यंग और गात्रोत्क्षालन करता था। परन्तु जबसे मैं मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुआ हूं, तब से मैं संबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यंग और गात्रप्रक्षालन नहीं कर पा रहा हूं। ऐसा विचार कर वह संबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यंग और गात्रप्रक्षालन का आस्वाद करता है, इच्छा करता है, प्रार्थना करता है और अभिलाषा करता है। संबाधन, परिमर्दन, गात्राभ्यंग और गात्रोत्क्षालन का आस्वाद करता हुआ, इच्छा करता हुआ, प्रार्थना करता हुआ और अभिलाषा करता हुआ वह अपने मन को ऊंचा-नीचा करता है और विनिघात को प्राप्त होता है। यह उस मुनि की चौथी दुःखशय्या है (४५०)।

विवेचन—चौथी दुःखशय्या में आये हुए कुछ विशिष्ट पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. संबाधन—शरीर की हड़-फूटन मिटाकर उनमें सुख पैदा करने वाली मालिश करना।
२. परिमर्दन—वेसन-तेल मिश्रित पीठी से शरीर का मर्दन करना।
३. गात्राभ्यंग—तेल आदि से शरीर की मालिश करना।

४. गात्रोत्क्षालन—वस्त्र से शरीर को रगड़ते हुए जल से स्नान करना।

इन की इच्छा करना भी संयम का विघातक है।

सुखशय्या-सूत्र

४५१—चत्तारि सुहसेज्जाओ पण्णत्ताओं, तं जहा—

१. तत्थ खलु इमा पढमा सुहसेज्जा—से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिते णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिए णो भेदसमावण्णे णो कलुस-समावण्णे णिग्गंथं पावयणं सद्दहइ पत्तियइ रोएति, णिग्गंथं पावयणं सद्दहमाणे पत्तियमाणे रोएमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—पढमा सुहसेज्जा।

२. अहावरा दोच्चा सुहसेज्जा—से णं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए सएणं लाभेणं तुस्सति परस्स लाभं णो आसाएति णो पीहेति णो पत्थेति णो अभिलसति, परस्स लाभमणासाएमाणे जाव [अपीहेमाणे अपत्थेमाणे] अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—दोच्चा सुहसेज्जा।

३. अहावरा तच्चा सुहसेज्जा—से णं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए दिव्वमाणुस्सए कामभोगे णो आसाएति जाव [णो पीहेति णो पत्थेति] णो अभिलसति, दिव्वमाणुस्सए कामभोगे अणासाएमाणे जाव [अपीहेमाणे अपत्थेमाणे] अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—तच्चा सुहसेज्जा।

४. अहावरा चउत्था सुहसेज्जा—से णं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए तस्स णं एवं भवति—जइ ताव अरहंता भगवंतो हट्ठा अरोगा बलिया कल्लसरीरा अण्णयराइं ओरालाइं कल्लाणाइं विउलाइं पयताइं पग्गहिताइं महाणुभागाइं कम्मक्खय-कारणाइं तवोकम्माइं पडिवज्जंति, किमंग पुण अहं अब्भोवगमिओवक्कमियं वेयणं णो सम्मं सहामि खमामि तितिक्खेमि अहियासेमि ?

ममं च णं अब्भोवगमिओवक्कमियं [वेयणं ?] सम्ममसहमाणस्स अक्खममाणस्स अतितिक्खे-माणस्स अणहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जति।

ममं च णं अब्भोवगमिओ जाव (विक्कमियं [वेयणं ?]) सम्मं सहमाणस्स जाव [खममाणस्स तितिक्खेमाणस्स] अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगंतसो मे णिज्जरा कज्जति—चउत्था सुहसेज्जा।

चार सुख-शय्याएं कही गई हैं—

१. उनमें पहली सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो, निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सित, अभेद-समापन्न, औरअकलुष-समापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है और रुचि करता है। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ, मन को ऊँचा-नीचा नहीं करता है,

(किन्तु समता को धारण करता है), वह धर्म के विनिघात को नहीं प्राप्त होता है (किन्तु धर्म में स्थिर रहता है)। यह उसकी पहली सुखशय्या है।

२. दूसरी सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार त्यागकर अनगारिता में प्रव्रजित हो, अपने (भिक्षा-) लाभ से संतुष्ट रहता है, दूसरे के लाभ का आस्वाद नहीं करता, इच्छा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता है। वह दूसरे के लाभ का आस्वाद नहीं करता हुआ, इच्छा नहीं करता हुआ, प्रार्थना नहीं करता हुआ, और अभिलाषा नहीं करता हुआ मन को ऊंचा-नीचा नहीं करता है। वह धर्म के विनिघात को नहीं प्राप्त होता है। यह उसकी दूसरी सुख-शय्या है।

३. तीसरी सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार त्यागकर अनगारिता में प्रव्रजित होकर देवों के और मनुष्यों के काम-भोगों का आस्वाद नहीं करता, इच्छा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता है। वह उनका आस्वाद नहीं करता हुआ, इच्छा नहीं करता हुआ, प्रार्थना नहीं करता हुआ और अभिलाषा नहीं करता हुआ मन को ऊंचा-नीचा नहीं करता है। वह धर्म के विनिघात को नहीं प्राप्त होता है। यह उसकी तीसरी सुख-शय्या है।

४. चौथी सुखशय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुआ। तब उसको ऐसा विचार होता है—जब यदि अर्हन्त भगवन्त हृष्ट-पुष्ट, नीरोग, बलशाली और स्वस्थ शरीर वाले होकर भी कर्मों का क्षय करने के लिए उदार, कल्याण, विपुल, प्रयत, प्रगृहीत, महानुभाय, कर्म-क्षय करने वाले अनेक प्रकार के तपःकर्मों में से अन्यतर तपों को स्वीकार करते हैं, तब मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को क्यों न सम्यक् प्रकार से सहूं? क्यों न क्षमा धारण करूं? और क्यों न वीरता-पूर्वक वेदना में स्थिर रहूं? यदि मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करूंगा, क्षमा धारण नहीं करूंगा और वीरता-पूर्वक वेदना में स्थिर नहीं रहूंगा, तो मुझे क्या होगा? मुझे एकान्त रूप से पाप कर्म होगा? यदि मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को सम्यक् प्रकार से सहन करूंगा, क्षमा धारण करूंगा, और वीरता-पूर्वक वेदना में स्थिर रहूंगा, तो मुझे क्या होगा? एकान्त रूप से मेरे कर्मों की निर्जरा होगी। यह उसकी चौथी सुखशय्या है (४५१)।

विवेचन—दुःख-शय्या और सुख-शय्या के सूत्रों में आये कुछ विशिष्ट पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. शंकित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन में शंका-शील रहना यह सम्यग्दर्शन का प्रथम दोष है और निःशंकित रहना यह सम्यग्दर्शन का प्रथम गुण है।
२. कांक्षित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन को स्वीकार कर फिर किसी भी प्रकार की आकांक्षा करना सम्यक्त्व का दूसरा दोष है और निष्कांक्षित रहना उसका दूसरा गुण है।
३. विचिकित्सित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन को स्वीकार कर किसी भी प्रकार की ग्लानि करना सम्यक्त्व का तीसरा दोष है और निर्विचिकित्सित भाव रखना उसका तीसरा गुण है।
४. भेद-समापन्न होना सम्यक्त्व का अस्थिरता नामक दोष है और अभेदसमापन्न होना यह उसका स्थिरता नामक गुण है।
५. कलुषसमापन्न होना यह सम्यक्त्व का एक विपरीत धारणा रूप दोष है और अकलुष-समापन्न रहना यह सम्यक्त्व का गुण है।

४. गात्रोत्क्षालन—वस्त्र से शरीर को रगड़ते हुए जल से स्नान करना।

इन की इच्छा करना भी संयम का विघातक है।

सुखशय्या-सूत्र

४५१—चत्तारि सुहसेज्जाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. तत्थ खलु इमा पढमा सुहसेज्जा—से णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिते णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छिए णो भेदसमावण्णे णो कलुस-समावण्णे णिग्गंथं पावयणं सद्दहइ पत्तियइ रोएति, णिग्गंथं पावयणं सद्दहमाणे पत्तियमाणे रोएमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—पढमा सुहसेज्जा।

२. अहावरा दोच्चा सुहसेज्जा—से णं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए सएणं लाभेणं तुस्सति परस्स लाभं णो आसाएति णो पीहेति णो पत्थेति णो अभिलसति, परस्स लाभमणासाएमाणे जाव [अपीहेमाणे अपत्थेमाणे] अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—दोच्चा सुहसेज्जा।

३. अहावरा तच्चा सुहसेज्जा—से णं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए दिव्वमाणुस्सए कामभोगे णो आसाएति जाव [णो पीहेति णो पत्थेति] णो अभिलसति, दिव्वमाणुस्सए कामभोगे अणासाएमाणे जाव [अपीहेमाणे अपत्थेमाणे] अणभिलसमाणे णो मणं उच्चावयं णियच्छति, णो विणिघातमावज्जति—तच्चा सुहसेज्जा।

४. अहावरा चउत्था सुहसेज्जा—से णं मुंडे जाव [भवित्ता अगाराओ अणगारियं] पव्वइए तस्स णं एवं भवति—जइ ताव अरहंता भगवंतो हट्ठा अरोगा बलिया कल्लसरीरा अण्णयराइं ओरालाइं कल्लाणाइं विउलाइं पयताइं पग्गहिताइं महाणुभागाइं कम्मक्खय-कारणाइं तवोकम्माइं पडिवज्जंति, किमंग पुण अहं अब्भोवगमिओवक्कमियं वेयणं णो सम्मं सहामि खमामि तितिक्खेमि अहियासेमि ?

ममं च णं अब्भोवगमिओवक्कमियं [वेयणं ?] सम्ममसहमाणस्स अक्खममाणस्स अतितिक्खे-माणस्स अणहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जति।

ममं च णं अब्भोवगमिओ जाव (विक्कमियं [वेयणं ?]) सम्मं सहमाणस्स जाव [खममाणस्स तितिक्खेमाणस्स] अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ?

एगंतसो मे णिज्जरा कज्जति—चउत्था सुहसेज्जा।

चार सुख-शय्याएं कही गई हैं—

१. उनमें पहली सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो, निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंकित, निष्कांक्षित, निर्विचिकित्सित, अभेद-समापन्न, औरअकलुष-समापन्न होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है और रुचि करता है। वह निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि करता हुआ, मन को ऊँचा-नीचा नहीं करता है,

(किन्तु समता को धारण करता है), वह धर्म के विनिघात को नहीं प्राप्त होता है (किन्तु धर्म में स्थिर रहता है)। यह उसकी पहली सुखशय्या है।

२. दूसरी सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार त्यागकर अनगारिता में प्रव्रजित हो, अपने (भिक्षा-) लाभ से संतुष्ट रहता है, दूसरे के लाभ का आस्वाद नहीं करता, इच्छा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता है। वह दूसरे के लाभ का आस्वाद नहीं करता हुआ, इच्छा नहीं करता हुआ, प्रार्थना नहीं करता हुआ, और अभिलाषा नहीं करता हुआ मन को ऊंचा-नीचा नहीं करता है। वह धर्म के विनिघात को नहीं प्राप्त होता है। यह उसकी दूसरी सुख-शय्या है।

३. तीसरी सुख-शय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार त्यागकर अनगारिता में प्रव्रजित होकर देवों के और मनुष्यों के काम-भोगों का आस्वाद नहीं करता, इच्छा नहीं करता, प्रार्थना नहीं करता और अभिलाषा नहीं करता है। वह उनका आस्वाद नहीं करता हुआ, इच्छा नहीं करता हुआ, प्रार्थना नहीं करता हुआ और अभिलाषा नहीं करता हुआ मन को ऊंचा-नीचा नहीं करता है। वह धर्म के विनिघात को नहीं प्राप्त होता है। यह उसकी तीसरी सुख-शय्या है।

४. चौथी सुखशय्या यह है—कोई पुरुष मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुआ। तब उसको ऐसा विचार होता है—जब यदि अर्हन्त भगवन्त हृष्ट-पुष्ट, नीरोग, बलशाली और स्वस्थ शरीर वाले होकर भी कर्मों का क्षय करने के लिए उदार, कल्याण, विपुल, प्रयत, प्रगृहीत, महानुभाय, कर्म-क्षय करने वाले अनेक प्रकार के तपःकर्मों में से अन्यतर तपों को स्वीकार करते हैं, तब मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को क्यों न सम्यक् प्रकार से सहूं? क्यों न क्षमा धारण करूं? और क्यों न वीरता-पूर्वक वेदना में स्थिर रहूं? यदि मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करूंगा, क्षमा धारण नहीं करूंगा और वीरता-पूर्वक वेदना में स्थिर नहीं रहूंगा, तो मुझे क्या होगा? मुझे एकान्त रूप से पाप कर्म होगा? यदि मैं आभ्युपगमिकी और औपक्रमिकी वेदना को सम्यक् प्रकार से सहन करूंगा, क्षमा धारण करूंगा, और वीरता-पूर्वक वेदना में स्थिर रहूंगा, तो मुझे क्या होगा? एकान्त रूप से मेरे कर्मों की निर्जरा होगी। यह उसकी चौथी सुखशय्या है (४५१)।

विवेचन—दुःख-शय्या और सुख-शय्या के सूत्रों में आये कुछ विशिष्ट पदों का अर्थ इस प्रकार है—

१. शंकित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन में शंका-शील रहना यह सम्यग्दर्शन का प्रथम दोष है और निःशंकित रहना यह सम्यग्दर्शन का प्रथम गुण है।
२. कांक्षित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन को स्वीकार कर फिर किसी भी प्रकार की आकांक्षा करना सम्यक्त्व का दूसरा दोष है और निष्कांक्षित रहना उसका दूसरा गुण है।
३. विचिकित्सित—निर्ग्रन्थ-प्रवचन को स्वीकार कर किसी भी प्रकार की ग्लानि करना सम्यक्त्व का तीसरा दोष है और निर्विचिकित्सित भाव रखना उसका तीसरा गुण है।
४. भेद-समापन्न होना सम्यक्त्व का अस्थिरता नामक दोष है और अभेदसमापन्न होना यह उसका स्थिरता नामक गुण है।
५. कलुषसमापन्न होना यह सम्यक्त्व का एक विपरीत धारणा रूप दोष है और अकलुष-समापन्न रहना यह सम्यक्त्व का गुण है।

६. उदार तपःकर्म—आशंसा-प्रशंसा आदि की अपेक्षा न करके तपस्या करना।
७. कल्याण तपःकर्म—आत्मा को पापों से मुक्त कर मंगल करने वाली तपस्या करना।
८. विपुल तपःकर्म—बहुत दिनों तक की जाने वाली तपस्या।
९. प्रयत तपःकर्म—उत्कृष्ट संयम से युक्त तपस्या।
१०. प्रगृहीत तपःकर्म—आदरपूर्वक स्वीकार की गई तपस्या।
११. महानुभाग तपःकर्म—अचिन्त्य शक्तियुक्त ऋद्धियों को प्राप्त कराने वाली तपस्या।
१२. आभ्युपगमिकी वेदना—स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की गई वेदना।
१३. औपक्रमिकी वेदना—सहसा आई हुई प्राण-घातक वेदना।

दुःखशय्याओं में पड़ा हुआ साधक वर्तमान में भी दुःख पाता है और आगे के लिए अपना संसार बढ़ाता है।

इसके विपरीत सुख-शय्या पर शयन करने वाला साधक प्रतिक्षण कर्मों की निर्जरा करता है और संसार का अन्त कर सिद्धपद पाकर अनन्त सुख भोगता है।

अवाचनीय-वाचनीय-सूत्र

४५२—चत्तारि अवायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—अविणीए, विगइपडिबद्धे, अविओसवितपाहुडे, माई।

चार अवाचनीय (वाचना देने के अयोग्य) कहे गये हैं। जैसे—

१. अविनीत—जो विनय-रहित हो, उद्दण्ड और अभिमानी हो।
२. विकृति-प्रतिबद्ध—जो दूध-घृतादि के खाने में आसक्त हो।
३. अव्यवशमित-प्राभृत—जिसका कलह और क्रोध शान्त न हुआ हो।
४. मायावी—मायाचार करने का स्वभाव वाला (४५२)।

विवेचन—उक्त चार प्रकार के व्यक्ति सूत्र और अर्थ की वाचना देने के अयोग्य कहे गये हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को वाचना देना निष्फल ही नहीं होता प्रत्युत कभी-कभी दुष्फल-कारक भी होता है।

४५३—चत्तारि वायणिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—विणीते, अविगतिपडिबद्धे, विओसवितपाहुडे, अमाई।

चार वाचनीय (वाचना देने के योग्य) कहे गये हैं। जैसे—

१. विनीत—जो अहंकार से रहित एवं विनय से संयुक्त हो।
२. विकृति-अप्रतिबद्ध— जो दूध-घृतादि विकृतियों में आसक्त न हो।
३. व्यवशमित-प्राभृत—जिसका कलह-भाव शान्त हो गया हो।
४. अमायावी—जो मायाचार से रहित हो (४५३)।

आत्म-पर-सूत्र

४५४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आतंभरे णाममेगे णो परंभरे, परंभरे णाममेगे णो आतंभरे, एगे आतंभरेवि परंभरेवि, एगे णो आतंभरे णो परंभरे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आत्मंभर, न परंभर—कोई पुरुष अपना ही भरण-पोषण करता है, दूसरों का नहीं।
२. परंभर, न आत्मंभर—कोई पुरुष दूसरों का भरण-पोषण करता है, अपना नहीं।
३. आत्मंभर भी, परंभर भी—कोई पुरुष अपना भरण-पोषण करता है और दूसरों का भी।
४. न आत्मंभर, न परंभर—कोई पुरुष न अपना ही भरण-पोषण करता है और न दूसरों का ही (४५४)।

दुर्गत-सुगत-सूत्र

४५५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दुग्गए णाममेगे दुग्गए, दुग्गए णाममेगे सुग्गए, सुग्गए णाममेगे दुग्गए, सुग्गए, णाममेगे सुग्गए।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. दुर्गत और दुर्गत—कोई पुरुष धन से भी दुर्गत (दरिद्र) होता है और ज्ञान से भी दुर्गत होता है।
२. दुर्गत और सुगत—कोई पुरुष धन से दुर्गत होता है, किन्तु ज्ञान से सुगत (सम्पन्न) होता है।
३. सुगत और दुर्गत—कोई पुरुष धन से सुगत होता है, किन्तु ज्ञान से दुर्गत होता है।
४. सुगत और सुगत—कोई पुरुष धन से भी सुगत होता है और ज्ञान से भी सुगत होता है (४५५)।

४५६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता तं जहा—दुग्गए णाममेगे दुव्वए, दुग्गए णाममेगे सुव्वए, सुग्गए णाममेगे दुव्वए, सुग्गए णाममेगे सुव्वए।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. दुर्गत और दुर्व्रत—कोई पुरुष दुर्गत और दुर्व्रत (खोटे व्रतवाला) होता है।
२. दुर्गत और सुव्रत—कोई पुरुष दुर्गत किन्तु सुव्रत (उत्तम व्रतवाला) होता है।
३. सुगत और दुर्व्रत—कोई पुरुष सुगत, किन्तु दुर्व्रत होता है।
४. सुगत और सुव्रत—कोई पुरुष सुगत और सुव्रत होता है।

विवेचन—सूत्र-पठित 'दुव्वए' और 'सुव्वए' इन प्राकृत पदों का टीकाकार ने 'दुर्व्रत' और 'सुव्रत' संस्कृत रूप देने के अतिरिक्त 'दुर्व्यय' और 'सुव्यय' संस्कृत रूप भी दिये हैं। तदनुसार चारों भंगों का अर्थ इस प्रकार किया है—

१. दुर्गत और दुर्व्यय—कोई पुरुष धन से दरिद्र होता है और प्राप्त धन का दुर्व्यय करता है, अर्थात् अनुचित व्यय करता है, अथवा आय से अधिक व्यय करता है।
२. दुर्गत और सुव्यय—कोई पुरुष दरिद्र होकर भी प्राप्त धन का सद्-व्यय करता है।
३. सुगत और दुर्व्यय—कोई पुरुष धन-सम्पन्न होकर धन का दुर्व्यय करता है।
४. सुगत और सुव्यय—कोई पुरुष धन-सम्पन्न होकर धन का सद्-व्यय करता है (४५६)।

४५७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणंदे, दुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणंदे ४। [सुग्गए णाममेगे दुप्पडिताणंदे, सुग्गए णाममेगे सुप्पडिताणंदे]।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. दुर्गत और दुष्प्रत्यानन्द—कोई पुरुष दुर्गत और दुष्प्रत्यानन्द (कृतघ्न) होता है।
२. दुर्गत और सुप्रत्यानन्द—कोई पुरुष दुर्गत होकर भी सुप्रत्यानन्द (कृतज्ञ) होता है।
३. सुगत और दुष्प्रत्यानन्द—कोई पुरुष सुगत होकर भी दुष्प्रत्यानन्द (कृतघ्न) होता है।
४. सुगत और सुप्रत्यानन्द—कोई पुरुष सुगत और सुप्रत्यानन्द (कृतज्ञ) होता है (४५७)।

विवेचन—जो पुरुष दूसरे के द्वारा किये गये उपकार को नहीं मानता है, उसे दुष्प्रत्यानन्द या कृतघ्न कहते हैं और जो दूसरे के द्वारा किये गये उपकार को मानता है, उसे सुप्रत्यानन्द या कृतज्ञ कहते हैं।

४५८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी, दुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी। [सुग्गए णाममेगे दुग्गतिगामी, सुग्गए णाममेगे सुग्गतिगामी] ४।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. दुर्गत और दुर्गतिगामी—कोई पुरुष दुर्गत (दरिद्र) और (खोटे कार्य करके) दुर्गतिगामी होता है।
२. दुर्गत और सुगतिगामी—कोई पुरुष दुर्गत और (उत्तम कार्य करके) सुगतिगामी होता है।
३. सुगत और दुर्गतिगामी—कोई पुरुष सुगत (सम्पन्न) और दुर्गतिगामी होता है।
४. सुगत और सुगतिगामी—कोई पुरुष सुगत और सुगतिगामी होता है (४५८)।

४५९—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—दुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते, दुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते। [सुग्गए णाममेगे दुग्गतिं गते, सुग्गए णाममेगे सुग्गतिं गते] ४।

पुन: पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. दुर्गत और दुर्गति-गत—कोई पुरुष दुर्गत होकर दुर्गति को प्राप्त हुआ है।
२. दुर्गत और सुगति-गत—कोई पुरुष दुर्गत होकर भी सुगति को प्राप्त हुआ है।
३. सुगत और दुर्गति-गत—कोई पुरुष सुगत होकर भी दुर्गति को प्राप्त हुआ है।
४. सुगत और सुगति-गत—कोई पुरुष सुगत होकर सुगति को ही प्राप्त हुआ है (४५९)।

तमः-ज्योति-सूत्र

४६०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—तमे णाममेगे तमे, तमे णाममेगे जोती, जोती णाममेगे तमे, जोती णाममेगे जोती।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. तम और तम—कोई पुरुष पहले भी तम (अज्ञानी) होता है और पीछे भी तम (अज्ञानी) होता है।

२. तम और ज्योति—कोई पुरुष पहले तम (अज्ञानी) होता है, किन्तु पीछे ज्योति (ज्ञानी) हो जाता है।
३. ज्योति और तम—कोई पुरुष पहले ज्योति (ज्ञानी) होता है, किन्तु पीछे तम (अज्ञानी) हो जाता है।
४. ज्योति और ज्योति—कोई पुरुष पहले भी ज्योति (ज्ञानी) होता है और पीछे भी ज्योति (ज्ञानी) ही रहता है (४६०)।

४६१—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—तमे णाममेगे तमबले, तमे णाममेगे जोतिबले, जोती णाममेगे तमबले, जोती णाममेगे जोतिबले।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. तम और तमोबल—कोई पुरुष तम (अज्ञानी और मलिन स्वभावी) होता है और तमोबल (अंधकार, अज्ञान और असदाचार ही उसका बल) होता है।
२. तम और ज्योतिर्बल—कोई पुरुष तम (अज्ञानी) होता है, किन्तु ज्योतिर्बल (प्रकाश, ज्ञान और सदाचार ही उसका बल) होता है।
३. ज्योति और तमोबल—कोई पुरुष ज्योति (ज्ञानी) होकर भी तमोबल (असदाचार) वाला होता है।
४. ज्योति और ज्योतिर्बल—कोई पुरुष ज्योति (ज्ञानी) होकर ज्योतिर्बल (सदाचारी) होता है (४६१)।

४६२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—तमे णाममेगे तमबलपलज्जणे, तमे णाममेगे जोतिबलपलज्जणे ४। [जोती णाममेगे तमबलपलज्जणे, जोती णाममेगे जोतिबलपलज्जणे]।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. तम और तमोबलप्ररंजन—कोई पुरुष तम और तमोबल में रति करने वाला होता है।
२. तम और ज्योतिर्बलप्ररंजन—कोई पुरुष तम किन्तु ज्योतिर्बल में रति करने वाला होता है।
२. ज्योति और तमोबलप्ररंजन—कोई पुरुष ज्योति, किन्तु तमोबल में रति करने वाला होता है।
४. ज्योति और ज्योतिर्बलप्ररंजन—कोई पुरुष ज्योति और ज्योतिर्बल में रति करने वाला होता है (४६२)।

परिज्ञात-अपरिज्ञात-सूत्र

४६३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—परिण्णातकम्मे णाममेगे णो परिण्णातसण्णे, परिण्णातसण्णे णाममेगे णो परिण्णातकम्मे, एगे परिण्णातकम्मेवि। [परिण्णातसण्णेवि, एगे णो परिण्णातकम्मे णो परिण्णातसण्णे] ४।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातसंज्ञ—कोई पुरुष कृषि आदि कर्मों का परित्यागी—सावद्य कर्म से विरत होता है, किन्तु आहारादि संज्ञाओं का परित्यागी (अनासक्त) नहीं होता।
२. परिज्ञातसंज्ञ, न परिज्ञातकर्मा—कोई पुरुष आहारादि संज्ञाओं का परित्यागी होता है, किन्तु कृषि आदि कर्मों का परित्यागी नहीं होता।
३. परिज्ञातकर्मा भी, परिज्ञातसंज्ञ भी—कोई पुरुष कृषि आदि कर्मों का भी परित्यागी होता है और आहारादि संज्ञाओं का भी परित्यागी होता है।
४. न परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातसंज्ञ—कोई पुरुष न कृषि आदि कर्मों का ही परित्यागी होता है और न आहारादि संज्ञाओं का ही परित्यागी होता है (४६३)।

४६४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—परिण्णातकम्मे णाममेगे णो परिण्णातगिहावासे, परिण्णातगिहावासे णाममेगे णो परिण्णातकम्मे, । [एगे परिणातकम्मेवि परिण्णातगिहावासेवि, एगे णो परिण्णातकम्मे णो परिण्णातगिहावासे] ४।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष परिज्ञातकर्मा (सावद्यकर्म का त्यागी) तो होता है, किन्तु गृहावास का परित्यागी नहीं होता।
२. परिज्ञातगृहावास, न परिज्ञातकर्मा—कोई पुरुष गृहावास का परित्यागी तो होता है, किन्तु परिज्ञातकर्मा नहीं होता।
३. परिज्ञातकर्मा भी, परिज्ञातगृहावास भी—कोई पुरुष परिज्ञातकर्मा भी होता है और परिज्ञातगृहावास भी होता है।
४. न परिज्ञातकर्मा, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष न तो परिज्ञातकर्मा ही होता है और न परिज्ञातगृहावास ही होता है (४६४)।

४६५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—परिण्णातसण्णे णाममेगे णो परिण्णातगिहावासे, परिण्णातगिहावासे णाममेगे। [णो परिण्णातसण्णे, एगे परिण्णातसण्णेवि परिण्णातगिहावासेवि, एगे णो परिण्णातसण्णे णो परिण्णातगिहावासे] ४।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. परिज्ञातसंज्ञ, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष आहारादि संज्ञाओं का परित्यागी तो होता है, किन्तु गृहावास का परित्यागी नहीं होता।
२. परिज्ञातगृहावास, न परिज्ञातसंज्ञ—कोई पुरुष परिज्ञातगृहावास तो होता है, किन्तु परिज्ञातसंज्ञ नहीं होता।
३. परिज्ञातसंज्ञ भी, परिज्ञातगृहावास भी—कोई पुरुष परिज्ञातसंज्ञ भी होता है और परिज्ञातगृहावास भी होता है।
४. न परिज्ञातसंज्ञ, न परिज्ञातगृहावास—कोई पुरुष न परिज्ञातसंज्ञ ही होता है और न परिज्ञातगृहावास ही होता है (४६५)।

इहार्थ-परार्थ-सूत्र

४६६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—इहत्थे णाममेगे णो परत्थे, परत्थे णाममेगे णो इहत्थे। [एगे इहत्थेवि परत्थेवि, एगे णो इहत्थे णो परत्थे] ४।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. इहार्थ, न परार्थ—कोई पुरुष इहार्थ (इस लोक सम्बन्धी प्रयोजनवाला) होता है, किन्तु परार्थ (परलोक सम्बन्धी प्रयोजनवाला) नहीं होता।
२. परार्थ, न इहार्थ—कोई पुरुष परार्थ होता है किन्तु इहार्थ नहीं होता।
३. इहार्थ भी, परार्थ भी—कोई पुरुष इहार्थ भी होता है और परार्थ भी होता है।
४. न इहार्थ, न परार्थ—कोई पुरुष न इहार्थ ही होता है और न परार्थ ही होता है (४६६)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने सूत्र-पठित 'इहत्थ' और 'परत्थ' इन प्राकृत पदों के क्रमश: 'इहास्थ' और 'परास्थ' ऐसे भी संस्कृत रूप दिये हैं। तदनुसार 'इहास्थ' का अर्थ इस लोक सम्बन्धी कार्यों में जिसकी आस्था है, वह 'इहास्थ' पुरुष है और जिसकी परलोक सम्बन्धी कार्यों में आस्था है, वह 'परास्थ' पुरुष है। अतः इस अर्थ के अनुसार चारों भंग इस प्रकार होंगे—

१. कोई पुरुष इस लोक में आस्था (विश्वास) रखता है, परलोक में आस्था नहीं रखता।
२. कोई पुरुष परलोक में आस्था रखता है, इस लोक में आस्था नहीं रखता।
३. कोई पुरुष इस लोक में भी आस्था रखता है और परलोक में भी आस्था रखता है।
४. कोई पुरुष न इस लोक में आस्था रखता है और न परलोक में ही आस्था रखता है।

हानि-वृद्धि-सूत्र

४६७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—एगेणं णाममेगे वड्ढति एगेणं हायति, एगेणं णाममेगे वड्ढति दोहिं हायति, दोहिं णाममेगे वड्ढति एगेणं हायति, दोहिं णाममेगे वड्ढति दोहिं हायति।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. एक से बढ़ने वाला, एक से हीन होने वाला—कोई पुरुष एक-शास्त्राभ्यास से बढ़ता है और एक-सम्यग्दर्शन से हीन होता है।
२. एक से बढ़ने वाला, दो से हीन होने वाला—कोई पुरुष एक शास्त्राभ्यास से बढ़ता है, किन्तु सम्यग्दर्शन और विनय इन दो से हीन होता है।
३. दो से बढ़ने वाला, एक से हीन होने वाला—कोई पुरुष शास्त्राभ्यास और चारित्र इन दो से बढ़ता है और एक-सम्यग्दर्शन से हीन होता है।
४. दो से बढ़ने वाला, दो से हीन होने वाला—कोई पुरुष शास्त्राभ्यास और चारित्र इन दो से बढ़ता है और सम्यग्दर्शन एवं विनय इन दो से हीन होता है (४६७)।

विवेचन—सूत्र-पठित 'एक', और-'दो' इन सामान्य पदों के आश्रय से उक्त व्याख्या के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार से व्याख्या की है; जो कि इस प्रकार है—

१. कोई पुरुष एक-ज्ञान से बढ़ता है और एक-राग से हीन होता है।

२. कोई पुरुष एक-ज्ञान से बढ़ता है और राग-द्वेष इन दो से हीन होता है।
३. कोई पुरुष ज्ञान और संयम इन दो से बढ़ता है और एक-राग से हीन होता है।
४. कोई पुरुष ज्ञान और संयम इन दो से बढ़ता है और राग-द्वेष इन दो से हीन होता है।

अथवा—

१. कोई पुरुष एक-क्रोध से बढ़ता है और एक-माया से हीन होता है।
२. कोई पुरुष एक-क्रोध से बढ़ता है और माया एवं लोभ इन दो से हीन होता है।
३. कोई पुरुष क्रोध और मान इन दो से बढ़ता है, तथा माया से हीन होता है।
४. कोई पुरुष क्रोध और मान इन दो से बढ़ता है, तथा माया और लोभ इन दो से हीन होता है।

इसी प्रकार अन्य अनेक विवक्षाओं से भी इस सूत्र की व्याख्या की जा सकती है। जैसे—

१. कोई पुरुष तृष्णा से बढ़ता है और आयु से हीन होता है।
२. कोई पुरुष एक तृष्णा से बढ़ता है, किन्तु वात्सल्य और कारुण्य इन दो से हीन होता है।
३. कोई पुरुष ईर्ष्या और क्रूरता से बढ़ता है और वात्सल्य से हीन होता है।
४. कोई पुरुष वात्सल्य और कारुण्य से बढ़ता है और ईर्ष्या तथा क्रूरता से हीन होता है।

अथवा—

१. कोई पुरुष बुद्धि से बढ़ता है और हृदय से हीन होता है।
२. कोई पुरुष बुद्धि से बढ़ता है, किन्तु हृदय और आचार इन दो से हीन होता है।
३. कोई पुरुष बुद्धि और हृदय इन दो से बढ़ता है और अनाचार से हीन होता है।
४. कोई पुरुष बुद्धि और हृदय इन दो से बढ़ता है, तथा अनाचार और अश्रद्धा इन दो से हीन होता है।

अथवा—

१. कोई पुरुष सन्देह से बढ़ता है और मैत्री से हीन होता है।
२. कोई पुरुष सन्देह से बढ़ता है, और मैत्री तथा प्रमोद से हीन होता है।
३. कोई पुरुष मैत्री और प्रमोद से बढ़ता है और सन्देह से हीन होता है।
४. कोई पुरुष मैत्री और प्रमोद से बढ़ता है, तथा सन्देह और क्रूरता से हीन होता है।

अथवा—

१. कोई पुरुष सरागता से बढ़ता है और वीतरागता से हीन होता है।
२. कोई पुरुष सरागता से बढ़ता है तथा वीतरागता और विज्ञान से हीन होता है।
३. कोई पुरुष वीतरागता और विज्ञान से बढ़ता है तथा सरागता से हीन होता है।
४. कोई पुरुष वीतरागता और विज्ञान से बढ़ता है तथा सरागता और छद्मस्थता से हीन होता है।

इसी प्रक्रिया से इस सूत्र के चारों भंगों की और भी अनेक प्रकार से व्याख्या की जा सकती है।

आकीर्ण-खलुंक-सूत्र

४६८—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णे, आइण्णे णाममेगे खलुंके, खलुंके णाममेगे आइण्णे, खलुंके णाममेगे खलुंके।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णे चउभंगो [आइण्णे णाममेगे खलुंके, खलुंके णाममेगे आइण्णे, खलुंके णाममेगे खलुंके]।

प्रकन्थक—घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आकीर्ण और आकीर्ण—कोई घोड़ा पहले भी आकीर्ण (वेग वाला) होता है और पीछे भी आकीर्ण रहता है।
२. आकीर्ण और खलुंक—कोई घोड़ा पहले आकीर्ण होता है, किन्तु बाद में खलुंक (मन्दगति और अड़ियल) होता जाता है।
३. खलुंक और आकीर्ण—कोई घोड़ा पहले खलुंक होता है, किन्तु बाद में आकीर्ण हो जाता है।
४. खलुंक और खलुंक—कोई घोड़ा पहले भी खलुंक होता है और पीछे भी खलुंक ही रहता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आकीर्ण और आकीर्ण—कोई पुरुष पहले भी आकीर्ण—तीव्रबुद्धि—होता है और पीछे भी तीव्रबुद्धि ही रहता है।
२. आकीर्ण और खलुंक—कोई पुरुष पहले तो तीव्रबुद्धि होता है, किन्तु पीछे मन्दबुद्धि हो जाता है।
३. खलुंक और आकीर्ण—कोई पुरुष पहले तो मन्दबुद्धि होता है, किन्तु पीछे तीव्रबुद्धि हो जाता है।
४. खलुंक और खलुंक—कोई पुरुष पहले भी मन्दबुद्धि होता है और पीछे भी मन्दबुद्धि ही रहता है (४६८)।

४६९—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति, आइण्णे णाममेगे खलुंकताए वहति। [खलुंके णाममेगे आइण्णताए वहति, खलुंके णाममेगे खलुंकताए वहति] ४।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आइण्णे णाममेगे आइण्णताए वहति चउभंगो [आइण्णे णाममेगे खलुंकताए वहति, खलुंके णाममेगे आइण्णताए वहति, खलुंके णाममेगे खलुंकताए वहति]।

पुनः प्रकन्थक—घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आकीर्ण और आकीर्णविहारी—कोई घोड़ा आकीर्ण होता है और आकीर्णविहारी भी होता है, अर्थात् आरोही पुरुष को उत्तम रीति से ले जाता है।

२. आकीर्ण और खलुंकविहारी—कोई घोड़ा आकीर्ण होकर भी खलुंकविहारी होता है, अर्थात् आरोही को मार्ग में अड़-अड़ कर परेशान करता है।
३. खलुंक और आकीर्णविहारी—कोई घोड़ा पहले खलुंक होता है, किन्तु पीछे आकीर्ण-विहारी हो जाता है।
४. खलुंक और खलुंकविहारी—कोई घोड़ा खलुंक भी होता है और खलुंकविहारी भी होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आकीर्ण और आकीर्णविहारी—कोई पुरुष बुद्धिमान् होता है और बुद्धिमानों के समान व्यवहार करता है।
२. आकीर्ण और खलुंकविहारी—कोई पुरुष बुद्धिमान् तो होता है, किन्तु मूर्खों के समान व्यवहार करता है।
३. खलुंक और आकीर्णविहारी—कोई पुरुष मन्दबुद्धि होता है, किन्तु बुद्धिमानों के समान व्यवहार करता है।
४. खलुंक और खलुंकविहारी—कोई पुरुष मूर्ख होता है और मूर्खों के समान ही व्यवहार करता है (४६९)।

जाति-सूत्र

४७०—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे ४। [कुल-संपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि कुलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो कुलसंपण्णे]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे चउभंगो। [णो कुल-संपण्णे, कुलसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि कुलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो कुलसंपण्णे]।

घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न (उत्तम मातृपक्षवाला) तो होता है, किन्तु कुलसम्पन्न (उत्तम पितृपक्षवाला) नहीं होता।
२. कुलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, कुलसम्पन्न भी—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न भी होता है और कुल-सम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोड़ा न जातिसम्पन्न ही होता है और न कुल-सम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न तो होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।

२. कुलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष कुल सम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, कुलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और कुल-सम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न होता है और न कुल-सम्पन्न ही होता है (४७०)।

४७१—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे ४। [बल-संपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो बलसंपण्णे]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे ४। [बलसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो बलसंपण्णे]।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. बलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोड़ा बलसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न भी होता है और बल-सम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा न जातिसम्पन्न ही होता है और न बल-सम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न तो होता है किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. बलसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी बलसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न ही होता है और न बल-सम्पन्न ही होता है (४७१)।

४७२—चत्तारि [प ?] कंथगा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे ४। [रूवसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो रूवसंपण्णे]।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे ४।

[रूवसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो रूवसंपण्णे] ।

पुन: घोड़े चार प्रकार के कहे गये है । जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न— कोई घोड़ा जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता ।
२. रूपसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोड़ा रूपसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता ।
३. जातिसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है ।
४. न जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा न जातिसम्पन्न ही होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता ।
२. रूपसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता ।
३. जातिसम्पन्न भी और रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है ।
४. न जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न ही होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४७२) ।

४७३—चत्तारि [प ?] कंथगा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे ४ । [जयसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो जयसंपण्णे] ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे ४ । [णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो जयसंपण्णे ।]

पुन: घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता । (युद्ध में विजय नहीं पाता ।)
२. जयसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोड़ा जयसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता ।
३. जातिसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है ।

४. न जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा न जातिसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।
२. जयसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७३)।

कुल-सूत्र

४७४—एवं कुलसंपण्णेण य बलसंपण्णेण य, कुलसंपण्णेण य रूवसंपण्णेण य, कुलसंपण्णेण य जयसंपण्णेण य, एवं बलसंपण्णेण य रूवसंपण्णेण य, बलसंपण्णेण जयसंपण्णेण ४ सव्वत्थ पुरिसजाया पडिवक्खो (चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो बलसंपण्णे।)

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो बलसंपण्णे।

घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बससम्पन्न नहीं होता।
२. बलसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोड़ा बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, वलसम्पन्न भी—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न वलसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. वलसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष वलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, वलसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और वलसम्पन्न भी होता है।

[रूवसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो रूवसंपण्णे] ।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न— कोई घोड़ा जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोड़ा रूपसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न भी होता है और रूप-सम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा न जातिसम्पन्न ही होता है और न रूप-सम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी और रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और रूप-सम्पन्न भी होता है।
४. न जातिसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न ही होता है और न रूप-सम्पन्न ही होता है (४७२)।

४७३—**चत्तारि [प ?] कंथगा पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे ४। [जयसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो जयसंपण्णे] ।**

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—जातिसंपण्णे ४। [णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो जातिसंपण्णे, एगे जातिसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो जातिसंपण्णे णो जयसंपण्णे।]

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता। (युद्ध में विजय नहीं पाता।)
२. जयसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई घोड़ा जयसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोड़ा जातिसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।

४. न जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा न जातिसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष जातिसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।
२. जयसम्पन्न, न जातिसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न तो होता है, किन्तु जातिसम्पन्न नहीं होता।
३. जातिसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष जातिसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४ न जातिसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न जातिसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७३)।

कुल-सूत्र

४७४—एवं कुलसंपण्णेण य बलसंपण्णेण य, कुलसंपण्णेण य रूवसंपण्णेण य, कुलसंपण्णेण य जयसंपण्णेण य, एवं बलसंपण्णेण य रूवसंपण्णेण य, बलसंपण्णेण जयसंपण्णेण ४ सव्वत्थ पुरिसजाया पडिवक्खो (चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो बलसंपण्णे।)

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, बलसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि बलसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो बलसंपण्णे।

घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बससम्पन्न नहीं होता।
२. बलसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोड़ा बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
२. बलसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, बलसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और बलसम्पन्न भी होता है।

४. न कुलसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न बलसम्पन्न ही होता है (४७४)।

४७५—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोड़ा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४७५)।

४७६—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो जयसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कुलसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो कुलसंपण्णे, एगे कुलसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो कुलसंपण्णे णो जयसंपण्णे।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।
२. जयसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई घोड़ा जयसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।

३. कुलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोड़ा कुलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा न कुलसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष कुलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।
२. जयसम्पन्न, न कुलसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु कुलसम्पन्न नहीं होता।
३. कुलसम्पन्न भी जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष कुलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४. न कुलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न कुलसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७६)।

बल-सूत्र

४७७—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, रूवसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि रूवसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो रूवसंपण्णे।

घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
३. बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई घोड़ा बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।
४. न बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा न बलसम्पन्न होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
२. रूपसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
३. बलसम्पन्न भी, रूपसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और रूपसम्पन्न भी होता है।

४. न बलसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न ही होता है और न रूपसम्पन्न ही होता है (४७७)।

४७८—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो जयसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बलसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो बलसंपण्णे, एगे बलसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो बलसंपण्णे णो जयसंपण्णे।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा बलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।
२. जयसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई घोड़ा जयसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
३. बलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोड़ा बलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४. न बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा न बलसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष बलसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।
२. जयसम्पन्न, न बलसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं होता।
३. बलसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष बलसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४. न बलसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न बलसम्पन्न ही होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७८)।

रूप-सूत्र

४७९—चत्तारि पकंथगा पण्णत्ता, तं जहा—रूवसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे ४। (जयसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णेवि, जयसंपण्णेवि, एगे णो रूवसंपण्णे णो जयसंपण्णे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—रूवसंपण्णे णाममेगे णो जयसंपण्णे, जयसंपण्णे णाममेगे णो रूवसंपण्णे, एगे रूवसंपण्णेवि जयसंपण्णेवि, एगे णो रूवसंपण्णे णो जयसंपण्णे।

पुनः घोड़े चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।

२ जयसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई घोड़ा जयसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
३. रूपसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई घोड़ा रूपसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४. न रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई घोड़ा न रूपसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष रूपसम्पन्न होता है, किन्तु जयसम्पन्न नहीं होता।
२. जयसम्पन्न, न रूपसम्पन्न—कोई पुरुष जयसम्पन्न होता है, किन्तु रूपसम्पन्न नहीं होता।
३. रूपसम्पन्न भी, जयसम्पन्न भी—कोई पुरुष रूपसम्पन्न भी होता है और जयसम्पन्न भी होता है।
४. न रूपसम्पन्न, न जयसम्पन्न—कोई पुरुष न रूपसम्पन्न होता है और न जयसम्पन्न ही होता है (४७९)।

सिंह-शृगाल-सूत्र

४८०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ, सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीयालत्ताए विहरइ, सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीहत्ताए विहरइ, सीयालत्ताए णाममेगे णिक्खंते सीयालत्ताए विहरइ।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रान्त (प्रव्रजित) होता है और सिंहवृत्ति से ही विचरता है अर्थात् संयम का दृढ़ता से पालन करता है।
२. कोई पुरुष सिंहवृत्ति से निष्क्रान्त होता है, किन्तु शृगालवृत्ति से विचरता है, अर्थात् दीनवृत्ति से संयम का पालन करता है।
३. कोई पुरुष शृगालवृत्ति से निष्क्रान्त होता है, किन्तु सिंहवृत्ति से विचरता है।
४. कोई पुरुष शृगालवृत्ति से निष्क्रान्त होता है और शृगालवृत्ति से ही विचरता है (४८०)।

सम-सूत्र

४८१—चत्तारि लोगे समा पण्णत्ता, तं जहा—अपइट्ठाणे णरए, जंबुद्दीवे दीवे, पालए जाणविमाणे, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे।

लोक में चार स्थान समान कहे गये हैं। जैसे—

१. अप्रतिष्ठान नरक—सातवें नरक के पाँच नारकावासों में से मध्यवर्त्ती नारकावास।
२. जम्बूद्वीप नामक मध्यलोक का सर्वमध्यवर्ती द्वीप।
३. पालकयान-विमान—सौधर्मेन्द्र का यात्रा-विमान।

४. सर्वार्थसिद्ध महाविमान—पंच अनुत्तर विमानों में मध्यवर्ती विमान।
ये चारों ही एक लाख योजन विस्तार वाले हैं (४८१)।

४८२—चत्तारि लोगे समा सपक्खि सपडिदिसिं पण्णत्ता, तं जहा—सीमंतए णरए, समयक्खेत्ते, उडुविमाणे, इसीपब्भारा पुढवी।

लोक में चार सम (समान विस्तारवाले), सपक्ष (समान पार्श्ववाले), और सप्रतिदिश (समान दिशा और विदिशा वाले) कहे गये हैं। जैसे—

१. सीमन्तक नरक—पहले नरक का मध्यवर्ती प्रथम नारकावास।
२. समयक्षेत्र—काल के व्यवहार से संयुक्त मनुष्य क्षेत्र—अढाई द्वीप।
३. उडुविमान—सौधर्म कल्प के प्रथम प्रस्तट का मध्यवर्त्ती विमान।
४. ईषत्प्राग्भार-पृथ्वी—लोक के अग्रभाग पर अवस्थित भूमि, (सिद्धालय—जहाँ पर सिद्ध जीव निवास करते हैं।)

ये चारों ही पैंतालीस लाख योजन विस्तार वाले हैं।

विवेचन—दिगम्बर शास्त्रों में ईषत्प्राग्भार पृथ्वी को एक रज्जू चौड़ी, सात रज्जू लम्बी और आठ योजन मोटी कहा गया है। हां, उसके मध्य में स्थित छत्राकार गोल और मनुष्य-क्षेत्र के समान पैंतालीस लाख योजन विस्तार वाला, सिद्धक्षेत्र बताया गया है, जहाँ पर कि सिद्ध जीव अनन्त सुख भोगते हुए रहते हैं[1]।

द्विशरीर-सूत्र

४८३—उड्ढलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।

ऊर्ध्वलोक में चार द्विशरीरी (दो शरीर वाले) कहे गये हैं। जैसे—
१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. वनस्पतिकायिक, ४. उदार त्रस प्राणी (४८३)।

४८४—अहोलोगे णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—एवं चेव, (पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा।

अधोलोक में चार द्विशरीरी कहे गये हैं। जैसे—
१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. वनस्पतिकायिक ४. उदार त्रस प्राणी (४८४)।

---

१. तिहुवणमुड्ढारूढा ईसिपभारा धरट्ठमी रुंदा।
दिग्घा इगि सगरज्जू अडजोयणपमिद बाहल्ला ॥५५६॥
तम्मज्झे रुप्पमयं छत्तायारं मणुस्समहिवासं।
सिद्धक्खेत्तं मज्झडवेहं कमहीण वेहुलयं ॥५५७॥
उत्ताणट्ठियमंते पत्तं व तणु तदुवरि तणूवादे।
अट्ठगुणड्ढा सिद्धा चिट्ठंति अणंतसुहतित्ता ॥५५८॥
—त्रिलोकसार, वैमानिक लोकाधिकार

४८५—एवं तिरियलोगे वि (णं चत्तारि बिसरीरा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वणस्सइकाइया, उराला तसा पाणा)।

तिर्यक् लोक में चार द्विशरीरी कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ६. वनस्पतिकायिक, ४. उदार त्रस प्राणी (४८५)।

विवेचन—छह कायिक जीवों में से उक्त तीनों सूत्रों में अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों को छोड़ दिया है, क्योंकि वे मर कर मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते हैं और इसीलिए वे दूसरे भव में सिद्ध नहीं हो सकते। छहों कायों में जो सूक्ष्म जीव हैं, वे भी मर कर अगले भव में मनुष्य न हो सकने के कारण मुक्त नहीं हो सकते। त्रस पद के पूर्व जो 'उदार' विशेषण दिया गया है, उससे यह सूचित किया गया है कि विकलेन्द्रिय त्रस प्राणी भी अगले भव में सिद्ध नहीं हो सकते। अतः यह अर्थ फलित होता है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रस जीवों को 'उदार त्रस प्राणी' पद से ग्रहण करना चाहिए।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि सूत्रोक्त सभी प्राणी अगले भव में मनुष्य होकर सिद्ध नहीं होंगे। किन्तु उनमें जो आसन्न या अतिनिकट भव्य जीव हैं, उनमें भी जिसको एक ही नवीन भव धारण करके सिद्ध होना है, उनका ही प्रकृत सूत्रों में वर्णन किया गया है और उनकी अपेक्षा से एक वर्तमान शरीर और एक अगले भव का मनुष्य शरीर ऐसे दो शरीर उक्त प्राणियों के बतलाये गये हैं।

सत्त्व-सूत्र

४८६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते, थिरसत्ते।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. ह्रीसत्त्व—किसी भी परिस्थिति में लज्जावश कायर न होने वाला पुरुष।
२. ह्रीमनःसत्त्व—शरीर में रोमांच, कम्पनादि होने पर भी मन में दृढ़ता रखने वाला पुरुष।
३. चलसत्त्व—परीषहादि आने पर विचलित हो जाने वाला पुरुष।
४. स्थिरसत्त्व—उग्र से उग्र परीषह और उपसर्ग आने पर भी स्थिर रहने वाला पुरुष (४८६)।

विवेचन—ह्रीसत्त्व और ह्रीमनःसत्त्व वाले पुरुषों में यह अन्तर है कि ह्रीसत्त्व व्यक्ति तो विकट परिस्थितियों में भय-ग्रस्त होने पर भी लज्जावश शरीर और मन दोनों में ही भय के चिह्न प्रकट नहीं होने देता। किन्तु जो ह्रीमनःसत्त्व व्यक्ति होता है वह मन में तो सत्त्व (हिम्मत) को बनाये रखता है, किन्तु उसके शरीर में भय के चिह्न रोमांच-कम्प आदि प्रकट हो जाते हैं।

प्रतिमा-सूत्र

४८७—चत्तारि सेज्जपडिमाओ पण्णत्ताओ।

चार शय्या-प्रतिमाएं (शय्या विषयक अभिग्रह या प्रतिज्ञाएं) कही गई हैं (४८७)।

४८८—चत्तारि वत्थपडिमाओ पण्णत्ताओ।

चार वस्त्र-प्रतिमाएं (वस्त्र-विषयक-प्रतिज्ञाएं) कही गई हैं (४८८)।

४८९—चत्तारि पायपडिमाओ पण्णत्ताओ ।

चार पात्र-प्रतिमाएं (पात्र-विषयक-प्रतिज्ञाएं) कही गई हैं (४८९) ।

४९०—चत्तारि ठाणपडिमाओ पण्णत्ताओ ।

चार स्थान-प्रतिमाएं (स्थान विषयक-प्रतिज्ञाएं) कही गई हैं (४९०) ।

विवेचन—मूल सूत्रों में उक्त प्रतिमाओं के चार-चार प्रकारों का उल्लेख नहीं किया गया है, पर आयारचूला के आधार पर संस्कृत टीकाकार ने चारों प्रतिमाओं के चारों प्रकारों का वर्णन इस प्रकार किया है—

(१) शय्या-प्रतिमा के चार प्रकार—

१. मेरे लिए उद्दिष्ट (नाम-निर्देश-पूर्वक संकलिपत) शय्या (काष्ठ-फलक आदि शयन करने की वस्तु) मिलेगी तो ग्रहण करूंगा, अन्य अनुद्दिष्ट शय्या को नहीं ग्रहण करूंगा। यह पहली शय्या-प्रतिमा है ।
२. मेरे लिए उद्दिष्ट शय्या को यदि मैं देखूंगा, तो उसे ही ग्रहण करूंगा, अन्य अनुद्दिष्ट और अदृष्ट को नहीं ग्रहण करूंगा । यह दूसरी शय्याप्रतिमा है ।
३. मेरे लिए उद्दिष्ट शय्या यदि शय्यातर के घर में होगी तो उसे ही ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं । यह तीसरी शय्याप्रतिमा है ।
४. मेरे लिए उद्दिष्ट शय्या यदि यथासंसृत (सहज बिछी हुई) मिलेगी तो उसे ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं । यह चौथी शय्याप्रतिमा है ।

(२) वस्त्र-प्रतिमा के चार प्रकार—

१. मेरे लिए उद्दिष्ट और 'यह कपास-निर्मित है, या ऊन-निर्मित हो इस प्रकार से घोषित वस्त्र की ही मैं याचना करूंगा, अन्य की नहीं । यह पहली वस्त्रप्रतिमा है ।
२. मेरे लिए उद्दिष्ट और सूती-ऊनी आदि नाम से घोषित वस्त्र यदि देखूंगा, तो उसकी ही याचना करूंगा, अन्य की नहीं । यह दूसरी वस्त्रप्रतिमा है ।
३. मेरे लिए उद्दिष्ट और घोषित वस्त्र यदि शय्यातर के द्वारा उपभुक्त—उपयोग में लाया हुआ हो तो उनकी याचना करूंगा, अन्य की नहीं । यह तीसरी वस्त्रप्रतिमा है ।
४. मेरे लिए उद्दिष्ट और घोषित वस्त्र यदि शय्यातर के द्वारा फैंक देने योग्य हो तो उसकी याचना करूंगा, अन्य की नहीं । यह चौथी वस्त्रप्रतिमा है ।

(३) पात्र-प्रतिमा के चार प्रकार—

१. मेरे लिए उद्दिष्ट काष्ठ-पात्र आदि की मैं याचना करूंगा, अन्य की नहीं, यह पहली पात्र-प्रतिमा है ।
२. मेरे लिए उद्दिष्ट पात्र यदि मैं देखूंगा, तो उसकी मैं याचना करूंगा, अन्य की नहीं । यह दूसरी पात्र-प्रतिमा है ।
३. मेरे लिए उद्दिष्ट पात्र यदि दाता का निजी है और उसके द्वारा उपभुक्त है, तो मैं याचना करूंगा, अन्यथा नहीं । यह तीसरी पात्र-प्रतिमा है ।

४. मेरे लिए उद्दिष्ट पात्र यदि दाता का निजी है, उपभुक्त है और उसके द्वारा छोड़ने-त्याग देने के योग्य है, तो मैं याचना करूंगा, अन्य नहीं। यह चौथी पात्र-प्रतिमा है।

(४) स्थान-प्रतिमा के चार प्रकार—

१. कायोत्सर्ग, ध्यान और अध्ययन के लिए मैं जिस अचित्त स्थान का आश्रय लूंगा, वहां पर ही मैं हाथ-पैर पसारूंगा, वहीं पर अल्प पाद-विचरण करूंगा, और भित्ति आदि का सहारा लूंगा, अन्यथा नहीं। यह पहली स्थानप्रतिमा है।

२. स्वीकृत स्थान में भी मैं पाद-विचरण नहीं करूंगा, यह दूसरी स्थानप्रतिमा है।

३. स्वीकृत स्थान में भी मैं भित्ति आदि का सहारा नहीं लूंगा, यह तीसरी स्थान-प्रतिमा है।

४. स्वीकृत स्थान में भी मैं न हाथ-पैर पसारूंगा, न भित्ति आदि का सहारा लूंगा, न पाद-विचरण करूंगा। किन्तु जैसा कायोत्सर्ग, पद्मासन या अन्य आसन से अवस्थित होऊंगा, नियत काल तक तथैव अवस्थित रहूंगा। यह चौथी स्थानप्रतिमा है।

शरीर-सूत्र

४६१—चत्तारि सरीरगा जीवफुडा पण्णत्ता, तं जहा—वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए।

चार शरीर जीव-स्पृष्ट कहे गये हैं। जैसे—

१. वैक्रियशरीर, २. आहारकशरीर, ३. तैजस शरीर, ४. कार्मण शरीर (४६१)।

४६२—चत्तारि सरीरगा कम्मुम्मीसगा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए।

चार शरीर कार्मणशरीर से संयुक्त कहे गये हैं।

१. औदारिक शरीर, २. वैक्रिय शरीर, ३. आहारक शरीर, ४. तैजस शरीर (४६२)।

विवेचन—वैक्रिय आदि चार शरीरों को जीव-स्पृष्ट कहा गया है, इसका अभिप्राय यह है कि ये चारों शरीर सदा जीव से व्याप्त ही मिलेंगे। जीव से रहित वैक्रिय आदि शरीरों की सत्ता त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है अर्थात् जीव द्वारा त्यक्त वैक्रिय आदि शरीर पृथक् रूप से कभी नहीं मिलेंगे। जीव के बहिर्गमन करते ही वैक्रिय आदि शरीरों के पुद्‌गल-परमाणु तत्काल बिखर जाते हैं किन्तु औदारिक शरीर की स्थिति उक्त चारों शरीरों से भिन्न है। जीव के बहिर्गमन करने के बाद भी निर्जीव या मुर्दा औदारिक शरीर अमुक काल तक ज्यों का त्यों पड़ा रहता है, उसके परमाणुओं का वैक्रियादि शरीरों के समान तत्काल विघटन नहीं होता है।

चार शरीरों को कार्मणशरीर से संयुक्त कहा गया है, उसका अर्थ यह है कि अकेला कार्मण-शरीर कभी नहीं पाया जाता है। जब भी और जिस किसी भी गति में वह मिलेगा, तब वह औदारिकादि चार शरीरों में से किसी एक, दो या तीन के साथ सम्मिश्र, संपृक्त या संयुक्त ही मिलेगा। इसी कारण से जीव-युक्त चार शरीरों को कार्मण शरीर-संयुक्त कहा गया है।

स्पृष्ट-सूत्र

४९३—चउहिं अत्थिकाएहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, तं जहा—धम्मत्थिकाएणं, अधम्मत्थिकाएणं, जीवत्थिकाएणं, पुग्गलत्थिकाएणं।

चार अस्तिकायों से यह सर्व लोक स्पृष्ट (व्याप्त) है। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय से, २. अधर्मास्तिकाय से, ३. जीवास्तिकाय से और ४. पुद्गलास्तिकाय से। (४९३)।

४९४—चउहिं बादरकाएहिं उववज्जमाणेहिं लोगे फुडे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइएहिं, आउकाइएहिं, वाउकाइएहिं, वणस्सइकाइएहिं।

निरन्तर उत्पन्न होने वाले चार अपर्याप्तक बादरकायिक जीवों के द्वारा यह सर्वलोक स्पृष्ट कहा गया है। जैसे—

१. बादर पृथवीकायिक जीवों से, २. बादर अप्कायिक जीवों से, ३. बादर वायुकायिक जीवों से, ४. बादर वनस्पतिकायिक जीवों से (४९४)।

विवेचन—इस सूत्र में बादर तेजस्कायिकजीवों का नामोल्लेख नहीं करने का कारण यह है कि वे सर्व लोक में नहीं पाये जाते हैं, किन्तु केवल मनुष्य क्षेत्र में ही उनका सद्भाव पाया जाता है। हां, सूक्ष्मतेजस्कायिक जीव सर्व लोक में व्याप्त पाये जाते हैं, किन्तु 'बादरकाय' इस सूत्र-पठित पद से उनका ग्रहण नहीं होता है। बादर पृथ्वीकायिकादि चारों कायों के जीव निरन्तर मरते रहते हैं, अतः उनकी उत्पत्ति भी निरन्तर होती रहती है।

तुल्य-प्रदेश-सूत्र

४९५—चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे।

चार अस्तिकाय द्रव्य प्रदेशाग्र (प्रदेशों के परिमाण) की अपेक्षा से तुल्य कहे गये हैं। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. लोकाकाश, ४. एकजीव।

इन चारों के असंख्यात प्रदेश होते हैं और वे बराबर-बराबर हैं (४९५)।

नो सुपश्य-सूत्र

४९६—चउण्हमेगं सरीरं णो सुपस्सं भवइ, तं जहा—पुढविकाइयाणं, आउकाइयाणं, तेउकाइयाणं, वणस्सइकाइयाणं।

चार काय के जीवों का एक शरीर सुपश्य (सहज दृश्य) नहीं होता है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक जीवों का, २. अप्-कायिक जीवों का, ३. तैजस-कायिक जीवों का, ४. साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का (४९६)।

विवेचन—प्रकृत में 'सुपश्य नहीं' का अर्थ आंखों से दिखाई नहीं देता, यह समझना चाहिए,

क्योंकि इन चारों ही कायों के जीवों में एक-एक जीव के शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग कहीं गई है। इतने छोटे शरीर का दिखना नेत्रों से सम्भव नहीं है। हां, अनुमानादि प्रमाणों से उनका जानना सम्भव है।

इन्द्रियार्थ-सूत्र

४६७—चत्तारि इंदियत्था पुट्ठा वेदेंति, तं जहा—सोइंदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे, फासिंदियत्थे।

चार इन्द्रियों के अर्थ (विषय) स्पृष्ट होने पर ही अर्थात् इन विषयों का उनकी ग्राहक इन्द्रिय के साथ संयोग होने पर ही ज्ञान होता है जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय का विषय—शब्द, २. घ्राणेन्द्रिय का विषय—गन्ध, ३. रसनेन्द्रिय का विषय—रस, और ४. स्पर्शनेन्द्रिय का विषय—स्पर्श। (चक्षु-इन्द्रिय रूप के साथ संयोग हुए विना ही अपने विषय-रूप को देखती है) (४६७)।

अलोक-अगमन--सूत्र

४६८—चउहिं ठाणेहिं जीवा य पोग्गला य णो संचाएंति बहिया लोगंता गमणयाए, तं जहा—गतिअभावेणं, णिरुवग्गहयाए, लुक्खताए, लोगाणुभावेणं।

चार कारणों से जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर गमन करने के लिए समर्थ नहीं हैं। जैसे—

१. गति के अभाव से—लोकान्त से आगे इनका गति करने का स्वभाव नहीं होने से।
२. निरुपग्रहता से—धर्मास्तिकाय रूप उपग्रह या निमित्त कारण का अभाव होने से।
३. रूक्ष होने से—लोकान्त में स्निग्ध पुद्गल भी रूक्ष रूप से परिणत हो जाते हैं, जिससे उनका आगे गमन सम्भव नहीं। तथा कर्म-पुद्गलों के भी रूक्ष रूप से परिणत हो जाने के कारण संसारी जीवों का भी गमन सम्भव नहीं रहता। सिद्ध जीव धर्मास्तिकाय का अभाव होने से लोकान्त से आगे नहीं जाते।
४. लोकानुभाव से—लोक की स्वाभाविक मर्यादा ऐसी है कि जीव और पुद्गल लोकान्त से आगे नहीं जा सकते (४६८)।

ज्ञात-सूत्र

४६९—चउव्विहे णाते पण्णत्ते, तं जहा—आहरणे, आहरणतद्देसे, आहरणतद्दोसे, उवण्णासोवणए।

ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आहरण—सामान्य दृष्टान्त।
२. आहरण तद्देश—एक देशीय दृष्टान्त।
३. आहरण तद्दोष—साध्यविकल आदि दृष्टान्त।

४. उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा किये गये उपन्यास के विघटन (खंडन) के लिए प्रतिवादी के द्वारा दिया गया विरुद्धार्थक उपनय (४९९)।

५००—आहरणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अवाए, उवाए, ठवणाकम्मे, पडुप्पण्णविणासी।

आहरण रूप ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अपाय-आहरण—हेयधर्म का ज्ञापक दृष्टान्त।
२. उपाय-आहरण—उपादेय वस्तु का उपाय बताने वाला दृष्टान्त।
३. स्थापनाकर्म-आहरण—अभीष्ट की स्थापना के लिए प्रयुक्त दृष्टान्त।
४. प्रत्युत्पन्नविनाशी-आहरण—उत्पन्न दूषण का परिहार करने के लिए दिया जाने वाला दृष्टान्त (५००)।

५०१—आहरणतद्देसे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अणुसिट्ठी, उवालंभे, पुच्छा, णिस्सावयणे।

आहरण-तद्देश ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अनुशिष्टि-आहरणतद्देश—प्रतिवादी के मन्तव्य का अनुचित अंश स्वीकार कर अनुचित अंश का निराकरण करना।
२. उपालम्भ-आहरण-तद्देश—दूसरे के मत को उसी की मान्यता से दूषित करना।
३. पृच्छा-आहरण-तद्देश—प्रश्नों-प्रतिप्रश्नों के द्वारा पर-मत को असिद्ध करना।
४. निःश्रावचन-आहरण-तद्देश—एक के माध्यम से दूसरे को शिक्षा देना (५०१)।

५०२—आहरणतद्दोसे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अधम्मजुत्ते, पडिलोमे, अत्तोवणीते, दुरुवणीते।

आहरण-तद्दोष ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अधर्म-युक्त-आहरण-तद्दोष—अधर्म बुद्धि को उत्पन्न करने वाला दृष्टान्त।
२. प्रतिलोम-आहरण-तद्दोष—अपसिद्धान्त का प्रतिपादक दृष्टान्त, अथवा प्रतिकूल आचरण की शिक्षा देने वाला दृष्टान्त।
३. आत्मोपनीत-आहरण-तद्दोष—पर-मत में दोष दिखाने के लिए प्रयुक्त किया गया, किन्तु स्वमत का दूषक दृष्टान्त।
४. दुरुपनीत-आहरण-तद्दोष—दोष-युक्त निगमन वाला दृष्टान्त (५०२)।

५०३—उवण्णासोवणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—तव्वत्थुते, तदण्णवत्थुते, पडिणिभे, हेतू।

उपन्यासोपनय-ज्ञात (दृष्टान्त) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. तद्-वस्तुक उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा उपन्यास किये गये हेतु से उसका ही निराकरण करना।
२. तदन्यवस्तुक-उपन्यासोपनय—उपन्यास की गई वस्तु से भिन्न भी वस्तु में प्रतिवादी की बात को पकड़ कर उसे हराना।

३. प्रतिनिभ-उपन्यासोपनय—वादी-द्वारा प्रयुक्त हेतु के सदृश दूसरा हेतु प्रयोग करके उसके हेतु को असिद्ध करना।

४. हेतु-उपन्यासोपनय—हेतु बता कर अन्य के प्रश्न का समाधान कर देना (५०३)।

विवेचन—संस्कृत टीका में 'ज्ञात' पद के चार अर्थ किये हैं—

१. दृष्टान्त, २. आख्यानक, ३. उपमान मात्र और ४. उपपत्ति मात्र।

१. दृष्टान्त—न्यायशास्त्र के अनुसार साधन का सद्भाव होने पर साध्य का नियम से सद्-भाव और साध्य के अभाव में साधन का नियम से अभाव जहां दिखाया जावे, उसे दृष्टान्त कहते हैं। जैसे धूम देखकर अग्नि का सद्भाव बताने के लिए रसोईघर को बताना, अर्थात् जहां धूम होता है वहां अग्नि होती है, जैसे रसोईघर। यहां रसोईघर दृष्टान्त है।

आख्यानक का अर्थ कथानक है। यह दो प्रकार का होता है—चरित और कल्पित। निदान का दुष्फल बताने के लिए ब्रह्मदत्त का दृष्टान्त देना चरित-आख्यानक है। कल्पना के द्वारा किसी तथ्य को प्रकट करना कल्पित आख्यानक है। जैसे—पीपल के पके पत्ते को गिरता देखकर नव किसलय हंसा, उसे हंसता देखकर पका पत्ता बोला—एक दिन तुम्हारा भी यही हाल होगा। यह दृष्टान्त यद्यपि कल्पित है, तो भी शरीरादि की अनित्यता का बोधक है।

सूत्राङ्क ४९९ में ज्ञात के चार भेद बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. आहरण-ज्ञात—अप्रतीत अर्थ को प्रतीत कराने वाला दृष्टान्त आहरण-ज्ञात कहलाता है। जैसे—पाप दुःख देने वाला होता है, ब्रह्मदत्त के समान।

२. आहरणतद्देश-ज्ञात—दृष्टान्तार्थ के एक देश से दार्ष्टान्तिक अर्थ का कहना, जैसे—'इसका मुख चन्द्र जैसा है' यहाँ चन्द्र की सौम्यता और कान्ति मात्र ही विवक्षित है, चन्द्र का कलंक आदि नहीं। अतः यह एकदेशीय दृष्टान्त है।

३. आहरणतद्दोष-ज्ञात—उदाहरण के साध्यविकल आदि दोषों से युक्त दृष्टान्त को आहरणतद्दोष ज्ञात कहते हैं। जैसे—शब्द नित्य है, क्योंकि वह अमूर्त्त है, जैसे घट। यह दृष्टान्त साध्य-साधन-विकलता दोष से युक्त है, क्योंकि घट मनुष्य के द्वारा बनाया जाता है, इसलिए वह नित्य नहीं है और रूपादि से युक्त है अतः अमूर्त्त भी नहीं है।

४. उपन्यासोपनय ज्ञात—वादी अपने अभीष्ट मत की सिद्धि के लिए दृष्टान्त का उपन्यास करता है—आत्मा अकर्ता है, क्योंकि वह अमूर्त्त है। जैसे—आकाश। प्रतिवादी उसका खण्डन करने के लिए कहता है—यदि आत्मा आकाश के समान अकर्ता है तो वह आकाश के समान अभोक्ता भी होना चाहिए।

ज्ञात के प्रथम भेद आहरण के भी सूत्राङ्क ५०० में चार भेद बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. अपाय-आहरण—हेयधर्म के ज्ञान कराने वाले दृष्टान्त को अपाय-आहरण कहते हैं। टीकाकार ने इसके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार भेद करके कथानकों द्वारा उनका विस्तृत वर्णन किया है।

२. उपाय-आहरण—इष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए उपाय बतानेवाले दृष्टान्त को उपाय-आहरण कहते हैं। टीका में इसके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा चार भेद करके उनका विस्तृत वर्णन किया गया है।

३. स्थापनाकर्म-आहरण—जिस दृष्टान्त के द्वारा पर-मत के दूषणों का निर्देश कर स्व-मत की स्थापना की जाय अथवा प्रतिवादी द्वारा बताये गये दोष का निराकरण कर अपने मत की स्थापना की जाय, उसे स्थापनाकर्म-आहरण कहते हैं। शास्त्रार्थ के समय सहसा व्यभिचारी हेतु को प्रस्तुत कर उसके समर्थन में जो दृष्टान्त दिया जाता है, उसे भी स्थापनाकर्म कहते हैं।

४. प्रत्युत्पन्नविनाशी आहरण—तत्काल उत्पन्न किसी दोष के निराकरण के लिए प्रत्युत्पन्न बुद्धि से उपस्थित किये जाने वाले दृष्टान्त को प्रत्युत्पन्नविनाशी आहरण कहते हैं।

सूत्राङ्क ५०१ में आहरणतद्देश के चार भेद बताये गये हैं। उनका विवेचन इस प्रकार है—

१. अनुशिष्टि-आहरणतद्देश—सद्-गुणों के कथन से किसी वस्तु के पुष्ट करने को अनुशिष्टि कहते हैं। अनुशासन प्रकट करने वाला दृष्टान्त अनुशिष्टि-आहरणतद्देश है।

२. उपालम्भ-आहरणतद्देश—अपराध करने वालों को उलाहना देना उपालम्भ कहलाता है। किसी अपराधी का दृष्टान्त देकर उलाहना देना उपालम्भ आहरणतद्देश है।

३. पृच्छा-आहरणतद्देश—जिस दृष्टान्त से 'यह किसने किया, क्यों किया' इत्यादि अनेक प्रश्नों का समावेश हो, उसे पृच्छा-आहरणतद्देश कहते हैं।

४. निश्रावचन-आहरणतद्देश—किसी दृष्टान्त के बहाने से दूसरों को प्रबोध देना निश्रा-वचन-आहरणतद्देश कहलाता है।

सूत्राङ्क ५०२ में आहरणतद्दोष के चार भेद बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. अधर्मयुक्त-आहरणतद्दोष—जिस दृष्टान्त के सुनने से दूसरे के मन में अधर्मबुद्धि पैदा हो, उसे अधर्मयुक्त आहरणतद्दोष कहते हैं।

२. प्रतिलोम-आहरणतद्दोष—जिस दृष्टान्त के सुनने से श्रोता के मन में प्रतिकूल आचरण करने का भाव जागृत हो, उस दृष्टान्त को प्रतिलोम आहरणतद्दोष कहते हैं।

३. आत्मोपनीत-आहरणतद्दोष—जो दृष्टान्त पर-मत को दूषित करने के लिए दिया जाय, किन्तु वह अपने ही इष्ट मत को दूषित कर दे, उसे आत्मोपनीत-आहरणतद्दोष कहते हैं।

४. दुरुपनीत-आहरणतद्दोष—जिस दृष्टान्त का निगमन या उपसंहार दोष युक्त हो, अथवा जो दृष्टान्त साध्य की सिद्धि के लिए अनुपयोगी और अपने ही मत को दूषित करनेवाला हो, उसे दुरुपनीत-आहरणतद्दोष कहते हैं।

सूत्राङ्क ५०३ में उपन्यासोपनय के चार भेद बताये गये हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. तद्-वस्तुक-उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा उपन्यस्त दृष्टान्त को पकड़कर उसका विघटन करना तद्-वस्तुक उपन्यासोपनय कहलाता है।

२. तदन्यवस्तुक-उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा उपन्यस्त दृष्टान्त को परिवर्तन कर वादी के मत का खण्डन करना तदन्यवस्तुक-उपन्यासोपनय है।

३. प्रतिनिभ-उपन्यासोपनय—वादी के द्वारा दिये गये हेतु के समान ही दूसरा हेतु प्रयोग कर उसके हेतु को असिद्ध करना प्रतिनिभ-उपन्यासोपनय है।

४. हेतु-उपन्यासोपनय—हेतु का उपन्यास करके अन्य के प्रश्न का समाधान करना हेतु-उपन्यासोपनय है। जैसे—किसी ने पूछा—तुम क्यों दीक्षा ले रहे हो? उसने उत्तर दिया—क्योंकि विना उसके मोक्ष नहीं मिलता है।

हेतु-सूत्र

५०४—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—जावए, थावए, वंसए, लूसए।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पच्चक्खे, अणुमाणे, ओवम्मे, आगमे।

अहवा—हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, अत्थित्तं णत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं णत्थि सो हेऊ।

हेतु (साध्य का साधक साधन-वचन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. यापक हेतु—जिसे प्रतिवादी शीघ्र न समझ सके ऐसा समय बिताने वाला विशेषण-बहुल हेतु।
२. स्थापक हेतु—साध्य को शीघ्र स्थापित (सिद्ध) करने वाली व्याप्ति से युक्त हेतु।
३. व्यंसक हेतु—प्रतिवादी को छल में डालनेवाला हेतु।
४. लूषक हेतु—व्यंसक हेतु के द्वारा प्राप्त आपत्ति को दूर करने वाला हेतु।

अथवा—हेतु चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान ३. औपम्य, ४. आगम।

अथवा—हेतु चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. 'अस्तित्व है' इस प्रकार से विधि-साधक विधि-हेतु।
२. 'अस्तित्व नहीं है' इस प्रकार से विधि-साधक निषेध-हेतु।
३. 'नास्तित्व है' इस प्रकार से निषेध-साधक विधि-हेतु।
४. 'नास्तित्व नहीं है' इस प्रकार से निषेध-साधक निषेध-हेतु (५०४)।

विवेचन—साध्य की सिद्धि करने वाले वचन को हेतु कहते हैं। उसके जो यापक आदि चार भेद बताये गये हैं, उनका प्रयोग वादि-प्रतिवादी शास्त्रार्थ के समय करते हैं। 'अथवा कह कर' जो प्रत्यक्ष आदि चार भेद कहे हैं, वे वस्तुतः प्रमाण के भेद हैं और हेतु उन चार में से अनुमान-प्रमाण का अंग है। वस्तु का यथार्थ बोध कराने में कारण होने से शेष प्रत्यक्षादि तीन प्रमाणों को भी हेतु रूप से कह दिया गया है।

हेतु के वास्तव में दो भेद हैं—विधि-रूप और निषेध-रूप। विधि-रूप को उपलब्धि-हेतु और निषेध-रूप को अनुपलब्धि-हेतु कहते हैं। इन दोनों के भी अविरुद्ध और विरुद्ध की अपेक्षा दो-दो भेद होते हैं। जैसे—

१. विधि-साधक—उपलब्धि हेतु।
२. निषेध-साधक—उपलब्धि हेतु।

३. निषेध-साधक—अनुपलब्धि हेतु ।
४. विधि-साधक—अनुपलब्धि हेतु ।

इनमें से प्रथम के ६ भेद, द्वितीय के ७ भेद, तीसरे के ७ भेद और चौथे के ५ भेद न्यायशास्त्र में बताये गये हैं ।[1]

संख्यान-सूत्र

५०५—चउव्विहे संखाणे पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मं, ववहारे, रज्जू, रासी ।

संख्यान (गणित) चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. परिकर्म-संख्यान—जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि गणित ।
२. व्यवहार-संख्यान—लघुतम, महत्तम, भिन्न, मिश्र आदि गणित ।
३. रज्जु-संख्यान—राजुरूप क्षेत्रगणित ।
४. राशि-संख्यान—त्रैराशिक, पंचराशिक आदि गणित (५०५) ।

अन्धकार-उद्योत-सूत्र

५०६—अहोलोगे णं चत्तारि अंधगारं करेंति, तं जहा—णरगा, णेरइया, पावाइं कम्माइं, असुभा पोग्गला ।

अधोलोक में चार पदार्थ अन्धकार करते हैं । जैसे—
१. नरक, २. नैरयिक, ३. पापकर्म, ४. अशुभ पुद्‌गल (५०६) ।

५०७—तिरियलोग णं चत्तारि उज्जोतं करेंति, तं जहा—चंदा, सूरा, मणी, जोती ।

तिर्यक् लोक में चार पदार्थ उद्योत करते हैं । जैसे—
१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. मणि, ४. ज्योति (अग्नि) (५०७) ।

५०८—उड्ढलोग णं चत्तारि उज्जोतं करेंति, तं जहा—देवा, देवीओ, विमाणा, आभरणा ।

ऊर्ध्वलोक में चार पदार्थ उद्योत करते हैं । जैसे—
१. देव, २. देवियां, ३. विमान ४. देव-देवियों के आभरण (आभूषण) (५०८) ।

।। चतुर्थ स्थान का तृतीय उद्देश समाप्त ।।

---

१. देखिए प्रमाणनयतत्त्वालोक, परिच्छेद ३.

चतुर्थ स्थान

चतुर्थ उद्देश

प्रसर्पक-सूत्र

५०९—चत्तारि पसप्पगा पण्णत्ता, तं जहा—अणुप्पण्णाणं भोगाणं उप्पाएत्ता एगे पसप्पए, पुव्वुप्पण्णाणं भोगाणं अविप्पओगेणं एगे पसप्पए, अणुप्पण्णाणं सोक्खाणं उप्पाइत्ता एगे पसप्पए, पुव्वुप्पण्णाणं सोक्खाणं अविप्पओगेणं एगे पसप्पए।

प्रसर्पक (भोगोपभोग और सुख आदि के लिए देश-विदेश में भटकने वाले अथवा प्रसर्पणशील या विस्तार-स्वभाव वाले) जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई प्रसर्पक अनुत्पन्न या अप्राप्त भोगों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है।
२. कोई प्रसर्पक उत्पन्न या प्राप्त भोगों के संरक्षण के लिए प्रयत्न करता है।
३. कोई प्रसर्पक अप्राप्त सुखों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है।
४. कोई प्रसर्पक प्राप्त सुखों के संरक्षण के लिए प्रयत्न करता है (५०९)।

आहार-सूत्र

५१०—णेरइयाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—इंगालोवमे, मुम्मुरोवमे, सीतले, हिमसीतले।

नारकी जीवों का आहार चार प्रकार का होता है। जैसे—

१. अंगारोपम—अंगार के समान अल्पकालीन दाहवाला आहार।
२. मुर्मुरोपम—मुर्मुर अग्नि के समान दीर्घकालीन दाहवाला आहार।
३. शीतल—शीत वेदना उत्पन्न करने वाला आहार।
४. हिमशीतल—अत्यन्त शीत वेदना उत्पन्न करने वाला आहार (५१०)।

विवेचन—जिन नरकों में उष्णवेदना निरन्तर रहती है, वहां के नारकी अंगोरोपम और मुर्मुरोपम मृत्तिका का आहार करते हैं और जिन नरकों में शीतवेदना निरन्तर रहती है वहां के नारक शीतल और हिमशीतल मृत्तिका का आहार करते हैं। पहले नरक से लेकर पाँचवे नरक के $\frac{1}{3}$ भाग तक उष्णवेदना और पाँचवे नरक के $\frac{1}{3}$ भाग से लेकर सातवें नरक तक शीतवेदना उत्तरोत्तर अधिक-अधिक पाई जाती है।

५११—तिरिक्खजोणियाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—कंकोवमे, बिलोवमे, पाणमंसोवमे, पुत्तमंसोवमे।

तिर्यग्योनिक जीवों का आहार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कंकोपम—कंक पक्षी के आहार के समान सुगमता से खाने और पचने के योग्य आहार।

२. बिलोपम—बिना चबाये निगला जाने वाला आहार।
३. पाण-मांसोपम—चण्डाल के मांस-सदृश घृणित आहार।
४. पुत्र-मांसोपम—पुत्र के मांस-सदृश निन्द्य और दुःख-भक्ष्य आहार (५११)।

विवेचन—उक्त चारों प्रकार के आहार क्रम से शुभ, शुभ-तर, अशुभ और अशुभतर होते हैं।

५१२—मणुस्साणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—असणे, पाणे, खाइमे, साइमे।

मनुष्यों का आहार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. अशन, २. पान, ३. खाद्य, ४. स्वाद्य (५१२)।

५१३—देवाणं चउव्विहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—वण्णमंते, गंधमंते, रसमंते, फासमंते।

देवों का आहार चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. वर्णवान्—उत्तम वर्णवाला,
२. गन्धवान्—उत्तम सुगन्धवाला,
३. रसवान्—उत्तम मधुर रसवाला,
४. स्पर्शवान्—मृदु और स्निग्ध स्पर्शवाला आहार (५१३)।

आशीविष-सूत्र

५१४—चत्तारि जातिआसीविसा पण्णत्ता, तं जहा—विच्छुयजातिआसीविसे, मंडुक्कजातिआसीविसे, उरगजातिआसीविसे, मणुस्सजातिआसीविसे।

विच्छुयजातिआसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?

पभू णं विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणयं विसट्टमाणिं करित्तए। विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा।

मंडुक्कजातिआसीविसस्स (णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते)?

पभू णं मंडुक्कजातिआसीविसे 'भरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणयं विसट्टमाणिं' (करित्तए। विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा) करिस्संति वा।

उरगजाति (आसीविसस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते)?

पभू णं उरगजातिआसीविसे जंबुद्दीवपमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं (विसपरिणयं विसट्टमाणिं करित्तए। विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा) करिस्संति वा।

मणुस्सजाति (आसीविरस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते)?

पभू णं मणुस्सजातिआसीविसे समयखेत्तपमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणतं विसट्टमाणिं करेत्तए। विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं (संपत्तीए करेंसु वा करेंति वा) करिस्संति वा।

जाति (जन्म) से आशीविष जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. जाति-आशीविष वृश्चिक, २. जाति आशीविष मेंढक।
३. जाति-आशीविष सर्प, ४. जाति-आशीविष मनुष्य (५१४)।

विवेचन—आशी का अर्थ दाढ़ है। जाति अर्थात् जन्म से ही जिनकी दाढ़ों में विष होता है, उन्हें जाति-आशीविष कहा जाता है। यद्यपि वृश्चिक (बिच्छू) की पूंछ में विष होता है, किन्तु जन्म-जात विषवाला होने से उसकी भी गणना जाति-आशीविषों के साथ की गई है।

प्रश्न—भगवन्! जाति-आशीविष वृश्चिक के विष में कितना सामर्थ्य होता है?

उत्तर—गौतम! जाति-आशीविष वृश्चिक अपने विष के प्रभाव से अर्ध भरतक्षेत्र-प्रमाण (लगभग दो सौ तिरेसठ योजन वाले) शरीर को विष-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विष का सामर्थ्य है। किन्तु न कभी उसने अपने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल में किया है, न वर्तमान में करता है और न भविष्य में कभी करेगा।

प्रश्न—भगवन्! जाति-आशीविष मेंढक के विष में कितना सामर्थ्य है?

उत्तर—गौतम! जाति-आशीविष मेंढक अपने विष के प्रभाव से भरत क्षेत्र प्रमाण शरीर को विष-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विष का सामर्थ्य है। किन्तु न कभी उसने अपने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल में किया है, न वर्तमान में करता है और न भविष्य में करेगा।

प्रश्न—भगवन्! जाति-आशीविष सर्प के विष का कितना सामर्थ्य है?

उत्तर—गौतम! जाति-आशीविष सर्प अपने विष के प्रभाव से जम्बूद्वीप प्रमाण (एक लाख योजन वाले) शरीर को विष-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विष का सामर्थ्य मात्र है। किन्तु न कभी उसने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल में किया है, न वर्तमान में करता है और न भविष्य में कभी करेगा।

प्रश्न—भगवन्! जाति-आशीविष मनुष्य के विष का कितना सामर्थ्य है?

उत्तर—गौतम! जाति-आशीविष मनुष्य अपने विष के प्रभाव से समय क्षेत्र-प्रमाण (पैंतालीस लाख योजन वाले) शरीर को विष-परिणत और विदलित करने के लिए समर्थ है। इतना उसके विष का सामर्थ्य है, किन्तु न कभी उसने इस सामर्थ्य का उपयोग भूतकाल में किया है, न वर्तमान में करता है और न भविष्य में कभी करेगा।

विवेचन—प्रकृत सूत्र में जिन चार प्रकार के आशीविष जीवों के विष के सामर्थ्य का निरूपण किया गया है, वे सभी जीव आगम-प्ररूपित उत्कृष्ट शरीरावगाहना वाले जानने चाहिए। मध्यम या जघन्य अवगाहना वालों के विष में इतना सामर्थ्य नहीं होता।

व्याधि-चिकित्सा-सूत्र

५१५—चउव्विहे वाही पण्णत्ते, तं जहा—वातिए, पित्तिए, सिंभिए, सण्णिवातिए।

व्याधियाँ चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. वातिक—वायु के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।
२. पैत्तिक—पित्त के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।
३. श्लैष्मिक—कफ के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।

४. सान्निपातिक—वात, पित्त और कफ के सम्मिलित विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि (५१५)।

५१६—चउव्विहा तिगिच्छा पण्णत्ता, तं जहा—विज्जो, ओसधाइं, आउरे, परियारए।

चिकित्सा के चार अंग होते हैं। जैसे—
१. वैद्य, २. औषध, ३. आतुर (रोगी), ४. परिचारक (परिचर्या करने वाला) (५१६)।

५१७—चत्तारि तिगिच्छगा पण्णत्ता, तं जहा—आततिगिच्छए णाममेगे णो परतिगिच्छए, परतिगिच्छए णाममेगे णो आततिगिच्छए, एगे आततिगिच्छएवि परतिगिच्छएवि, एगे णो आततिगिच्छए णो परतिगिच्छए।

चिकित्सक (वैद्य) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आत्म-चिकित्सक, न परचिकित्सक—कोई वैद्य अपना इलाज करता है, किन्तु दूसरे का इलाज नहीं करता।
२. पर-चिकित्सक, न आत्म-चिकित्सक—कोई वैद्य दूसरे का इलाज करता है, किन्तु अपना इलाज नहीं करता।
३. आत्म-चिकित्सक भी, पर-चिकित्सक भी—कोई वैद्य अपना भी इलाज करता है और दूसरे का भी इलाज करता है।
४. न आत्म-चिकित्सक, न पर-चिकित्सक—कोई वैद्य न अपना इलाज करता है और न दूसरे का ही इलाज करता है (५१७)।

वणकर-सूत्र

५१८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वणकरे णाममेगे णो वणपरिमासी, वणपरिमासी णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरेवि वणपरिमासीवि, एगे णो वणकरे णो वणपरिमासी।

व्रणकर [घाव करने वाले] पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. व्रणकर, न व्रण-परामर्शी—कोई पुरुष रक्त, राध आदि निकालने के लिए व्रण (घाव) करता है, किन्तु उसका परिमर्श (सफाई, धोना आदि) नहीं करता।
२. व्रण-परामर्शी, न व्रणकर—कोई पुरुष व्रण का परिमर्श करता है, किन्तु व्रण नहीं करता।
३. व्रणकर भी, व्रण-परामर्शी भी—कोई पुरुष व्रणकर भी होता है और व्रण-परिमर्शी भी होता है।
४. न व्रणकर, न व्रण-परामर्शी—कोई पुरुष न व्रणकर ही होता है और न व्रण-परामर्शी ही होता है[1] (५१८)।

---

१. व्रण के दो भेद हैं—द्रव्य व्रण—शरीर सम्बन्धी घाव और भाव व्रण—स्वीकृत व्रत में होने वाला अतिचार। भावपक्ष में परामर्शी का है—स्मरण करने वाला। इत्यादि व्याख्या यथायोग्य समझ लेनी चाहिये।

५१६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वणकरे णाममेगे णो वणसारक्खी, वणसारक्खी णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरेवि वणसारक्खीवि, एगे णो वणकरे णो वणसारक्खी ।

पुनः [व्रणकर] पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. व्रणकर, न व्रणसंरोही—कोई पुरुष व्रण करता है, किन्तु व्रण को पट्टी आदि बाँध कर उसका संरक्षण नहीं करता ।
२. व्रणसंरक्षी, न व्रणकर—कोई पुरुष व्रण का संरक्षण करता है, किन्तु व्रण नहीं करता ।
३. व्रणकर भी, व्रणसंरक्षी भी—कोई पुरुष व्रण करता भी है और उसका संरक्षण भी करता है ।
४. न व्रणकर, न व्रणसंरक्षी—कोई पुरुष न व्रण करता ही है और न उसका संरक्षण ही करता है (५१६) ।

५२०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वणकरे णाममेगे णो वणसंरोही, वणसंरोही णाममेगे णो वणकरे, एगे वणकरेवि वणसंरोहीवि, एगे णो वणकरे णो वणसंरोही ।

पुनः [व्रणकर] पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. व्रणकर, न व्रणसंरोही—कोई पुरुष व्रण करता है, किन्तु व्रणसंरोही नहीं होता । (उसमें औषधि लगाकर उसे भरता नहीं है) ।
२. व्रणसंरोही, न व्रणकर—कोई पुरुष व्रणसंरोही होता है, किन्तु व्रणकर नहीं होता ।
३. व्रणकर भी, व्रणसंरोही भी—कोई पुरुष व्रणकर भी होता है और व्रणसंरोही भी होता है ।
४. न व्रणकर, न व्रणसंरोही —कोई पुरुष न व्रणकर होता है, न व्रणसंरोही ही होता है (५२०) ।

अन्तर्बहिर्व्रण-सूत्र

५२१—चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—अंतोसल्ले णाममेगे णो बाहिंसल्ले, बाहिंसल्ले णाममेगे णो अंतोसल्ले, एगे अंतोसल्लेवि बाहिंसल्लेवि, एगे णो अंतोसल्ले णो बाहिंसल्ले ।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अंतोसल्ले णाममेगे णो बाहिंसल्ले, बाहिंसल्ले णाममेगे णो अंतोसल्ले, एगे अंतोसल्लेवि बाहिंसल्लेवि, एगे णो अंतोसल्ले णो बाहिंसल्ले ।

व्रण चार प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. अन्तःशल्य, न बहिःशल्य—कोई व्रण अन्तःशल्य (भीतरी घाव वाला) होता है, बहिःशल्य (बाहरी घाव वाला) नहीं होता ।
२. बहिःशल्य, न अन्तःशल्य—कोई व्रण बहिःशल्य होता है, अन्तः शल्य नहीं होता ।
३. अन्तःशल्य भी, बहिःशल्य भी—कोई व्रण अन्तःशल्य भी होता है और बहिःशल्य भी होता है ।
४. न अन्तःशल्य, न बहिःशल्य—कोई व्रण न अन्तःशल्य होता है और न बहिःशल्य ही होता है ।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अन्त:शल्य, न बहि:शल्य—कोई पुरुष भीतरी शल्यवाला होता है, बाहरी शल्य वाला नहीं।
२. बहि:शल्य, न अन्त:शल्य—कोई पुरुष बाहरी शल्यवाला होता है, भीतरी शल्यवाला नहीं।
३. अन्त:शल्य भी, बहि:शल्य भी—कोई पुरुष भीतरी शल्यवाला भी होता है और बाहरी शल्यवाला भी होता है।
४. न अन्त: शल्य, न बहि:शल्य—कोई पुरुष न भीतरी शल्यवाला होता है और न बाहरी शल्य वाला ही होता है (५२१)।

५२२—चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—अंतोदुट्ठे णाममेगे णो बाहिंदुट्ठे, बाहिंदुट्ठे णाममेगे णो अंतोदुट्ठे, एगे अंतोदुट्ठे वि बाहिंदुट्ठे वि, एगे णो अंतोदुट्ठे णो बाहिंदुट्ठे।

एवमेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अंतोदुट्ठे णाममेगे णो बाहिंदुट्ठे, बाहिंदुट्ठे णाममेगे णो अंतोदुट्ठे, एगे अंतोदुट्ठे वि बाहिंदुट्ठे वि, एगे णो अंतोदुट्ठे णो बाहिंदुट्ठे।

पुन: व्रण चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई व्रण भीतर से दुष्ट (विकृत) होता है, बाहर से दुष्ट नहीं होता।
२. बहिर्दुष्ट, न अन्तर्दुष्ट—कोई व्रण बाहर से दुष्ट होता है, भीतर से दुष्ट नहीं होता।
३. अन्तर्दुष्ट भी, बहिर्दुष्ट भी—कोई व्रण भीतर से भी दुष्ट होता है और बाहर से भी दुष्ट होता है।
४. न अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई व्रण न भीतर से दुष्ट होता है और न बाहर से ही दुष्ट होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई पुरुष अन्दर से दुष्ट होता है, बाहर से दुष्ट नहीं होता।
२. बहिर्दुष्ट, न अन्तर्दुष्ट—कोई पुरुष बाहर से दुष्ट होता है, भीतर से दुष्ट नहीं होता।
३. अन्तर्दुष्ट भी, बहिर्दुष्ट भी—कोई पुरुष अन्दर से भी दुष्ट होता है और बाहर से भी दुष्ट होता है।
४. न अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई पुरुष न अन्दर से दुष्ट होता है और न बाहर से दुष्ट होता है (५२२)।

श्रेयस्-पापीयस्-सूत्र

५२३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसे, सेयंसे णाममेगे पावंसे, पावंसे णाममेगे सेयंसे, पावंसे णाममेगे पावंसे।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। जैसे—

१. श्रेयान् और श्रेयान्—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान्-(अति प्रशंसनीय) होता है और सदाचार की अपेक्षा भी श्रेयान् होता है।

२. श्रेयान् और पापीयान्—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा तो श्रेयान् होता है, किन्तु कदाचार की अपेक्षा पापीयान् (अत्यन्त पापी) होता है।
३. पापीयान् और श्रेयान्—कोई पुरुष कु-ज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा श्रेयान् होता है।
४. पापीयान् और पापीयान्—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा भी पापीयान् होता है और कदाचार की अपेक्षा भी पापीयान् होता है। (५२३)

५२४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए, पावंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. श्रेयान् और श्रेयान्सदृश—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से श्रेयान् के सदृश है, भाव से नहीं।
२. श्रेयान् और पापीयान्सदृश—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से पापीयान् के सदृश होता है, भाव से नहीं।
३. पापीयान् और श्रेयान्सदृश—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से श्रेयान्-सदृश होता है, भाव से नहीं।
४. पापीयान् और पापीयान् सदृश—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है और कदाचार की अपेक्षा द्रव्य से पापीयान् सदृश होता है, भाव से नहीं। (५२४)

५२५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्ति मण्णति, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्ति मण्णति, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्ति मण्णति, पावंसे णाममेगे पावंसेत्ति मण्णति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. श्रेयान् और श्रेयान्मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है और अपने आपको श्रेयान् मानता है।
२. श्रेयान् और पापीयान्-मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है, किन्तु अपने आपको पापीयान् मानता है।
३. पापीयान् और श्रेयान्मन्य—कोई पुरुष पापीयान् होता है, किन्तु अपने आपको श्रेयान् मानता है।
४. पापीयान् और पापीयान्मन्य—कोई पुरुष पापीयान् होता है और अपने आपको पापीयान् ही मानता है। (५२५)

५२६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए मण्णति, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए मण्णति, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए मण्णति, पावंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए मण्णति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. श्रेयान् और श्रेयान्-सदृशम्मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है और अपने आपको श्रेयान् के सदृश मानता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अन्त:शल्य, न बहि:शल्य—कोई पुरुष भीतरी शल्यवाला होता है, बाहरी शल्य वाला नहीं।
२. बहि:शल्य, न अन्त:शल्य—कोई पुरुष बाहरी शल्यवाला होता है, भीतरी शल्यवाला नहीं।
३. अन्त:शल्य भी, बहि:शल्य भी—कोई पुरुष भीतरी शल्यवाला भी होता है और बाहरी शल्यवाला भी होता है।
४. न अन्त: शल्य, न बहि:शल्य—कोई पुरुष न भीतरी शल्यवाला होता है और न बाहरी शल्य वाला ही होता है (५२१)।

५२२—चत्तारि वणा पण्णत्ता, तं जहा—अंतोदुट्ठे णाममेगे णो बाहिंदुट्ठे, बाहिंदुट्ठे णाममेगे णो अंतोदुट्ठे, एगे अंतोदुट्ठे वि बाहिंदुट्ठे वि, एगे णो अंतोदुट्ठे णो बाहिंदुट्ठे।

एवमेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अंतोदुट्ठे णाममेगे णो बाहिंदुट्ठे, बाहिंदुट्ठे णाममेगे णो अंतोदुट्ठे, एगे अंतोदुट्ठे वि बाहिंदुट्ठे वि, एगे णो अंतोदुट्ठे णो बाहिंदुट्ठे।

पुन: व्रण चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई व्रण भीतर से दुष्ट (विकृत) होता है, बाहर से दुष्ट नहीं होता।
२. बहिर्दुष्ट, न अन्तर्दुष्ट—कोई व्रण बाहर से दुष्ट होता है, भीतर से दुष्ट नहीं होता।
३. अन्तर्दुष्ट भी, बहिर्दुष्ट भी—कोई व्रण भीतर से भी दुष्ट होता है और बाहर से भी दुष्ट होता है।
४. न अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई व्रण न भीतर से दुष्ट होता है और न बाहर से ही दुष्ट होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई पुरुष अन्दर से दुष्ट होता है, बाहर से दुष्ट नहीं होता।
२. बहिर्दुष्ट, न अन्तर्दुष्ट—कोई पुरुष बाहर से दुष्ट होता है, भीतर से दुष्ट नहीं होता।
३. अन्तर्दुष्ट भी, बहिर्दुष्ट भी—कोई पुरुष अन्दर से भी दुष्ट होता है और बाहर से भी दुष्ट होता है।
४. न अन्तर्दुष्ट, न बहिर्दुष्ट—कोई पुरुष न अन्दर से दुष्ट होता है और न बाहर से दुष्ट होता है (५२२)।

श्रेयस्-पापीयस्-सूत्र

५२३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसे, सेयंसे णाममेगे पावंसे, पावंसे णाममेगे सेयंसे, पावंसे णाममेगे पावंसे।

चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं। जैसे—

१. श्रेयान् और श्रेयान्—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान्-(अति प्रशंसनीय) होता है और सदाचार की अपेक्षा भी श्रेयान् होता है।

२. श्रेयान् और पापीयान्—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा तो श्रेयान् होता है, किन्तु कदाचार की अपेक्षा पापीयान् (अत्यन्त पापी) होता है।
३. पापीयान् और श्रेयान्—कोई पुरुष कु-ज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा श्रेयान् होता है।
४. पापीयान् और पापीयान्—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा भी पापीयान् होता है और कदाचार की अपेक्षा भी पापीयान् होता है। (५२३)

५२४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए, पावंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. श्रेयान् और श्रेयान्सदृश—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से श्रेयान् के सदृश है, भाव से नहीं।
२. श्रेयान् और पापीयान्सदृश—कोई पुरुष सद्-ज्ञान की अपेक्षा श्रेयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से पापीयान् के सदृश होता है, भाव से नहीं।
३. पापीयान् और श्रेयान्सदृश—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है, किन्तु सदाचार की अपेक्षा द्रव्य से श्रेयान्-सदृश होता है, भाव से नहीं।
४. पापीयान् और पापीयान् सदृश—कोई पुरुष कुज्ञान की अपेक्षा पापीयान् होता है और कदाचार की अपेक्षा द्रव्य से पापीयान् सदृश होता है, भाव से नहीं। (५२४)

५२५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्ति मण्णति, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्ति मण्णति, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्ति मण्णति, पावंसे णाममेगे पावंसेत्ति मण्णति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. श्रेयान् और श्रेयान्मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है और अपने आपको श्रेयान् मानता है।
२. श्रेयान् और पापीयान्-मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है, किन्तु अपने आपको पापीयान् मानता है।
३. पापीयान् और श्रेयान्मन्य—कोई पुरुष पापीयान् होता हैं, किन्तु अपने आपको श्रेयान् मानता है।
४. पापीयान् और पापीयान्मन्य—कोई पुरुष पापीयान् होता है और अपने आपको पापीयान् ही मानता है। (५२५)

५२६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सेयंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए मण्णति, सेयंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए मण्णति, पावंसे णाममेगे सेयंसेत्तिसालिसए मण्णति, पावंसे णाममेगे पावंसेत्तिसालिसए मण्णति।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. श्रेयान् और श्रेयान्-सदृशम्मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है और अपने आपको श्रेयान् के सदृश मानता है।

२. श्रेयान् और पापीयान्-सदृशम्मन्य—कोई पुरुष श्रेयान् होता है, किन्तु अपने आपको पापीयान् के सदृश मानता है।
३. पापीयान् और श्रेयान्-सदृशम्मन्य—कोई पुरुष पापीयान् होता है, किन्तु अपने आपको श्रेयान् के सदृश मानता है।
४. पापीयान् और पापीयान्-सदृशम्मन्य—कोई पुरुष पापीयान् होता है, और अपने आपको पापीयान् सदृश मानता है। (५२६)

आख्यापन-सूत्र

५२७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आघवइत्ता णाममेगे णो पविभावइत्ता, पविभावइत्ता णाममेगे णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि पविभावइत्तावि, एगे णो आघवइत्ता णो पविभावइत्ता।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. आख्यायक, न प्रभावक—कोई पुरुष प्रवचन का प्रज्ञापक (पढ़ाने वाला) तो होता है, किन्तु प्रभावक (शासन की प्रभावना करने वाला) नहीं होता है।
२. प्रभावक, न आख्यायक—कोई पुरुष प्रभावक तो होता है, किन्तु आख्यायक नहीं।
३. आख्यायक भी, और प्रभावक भी—कोई पुरुष आख्यायक भी होता है और प्रभावक भी होता है।
४. न आख्यायक, न प्रभावक—कोई पुरुष न आख्यायक ही होता है, और न प्रभावक ही होता है। (५२७)

५२८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आघवइत्ता णाममेगे णो उंछजीविसंपण्णे, उंछजीविसंपण्णे णाममेगे णो आघवइत्ता, एगे आघवइत्तावि उंछजीविसंपण्णेवि, एगे णो आघवइत्ता णो उंछजीविसंपण्णे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. आख्यायक, न उञ्छजीविकासम्पन्न—कोई पुरुष आख्यायक तो होता है, किन्तु उञ्छजीविकासम्पन्न नहीं होता।
२. उञ्छजीविकासम्पन्न, न आख्यायक—कोई पुरुष उञ्छजीविकासम्पन्न होता है, किन्तु आख्यायक नहीं होता।
३. आख्यायक भी, उञ्छजीविकासम्पन्न भी—कोई पुरुष आख्यायक भी होता है और उञ्छजीविकासम्पन्न भी होता है।
४. न आख्यायक, न उञ्छजीविकासम्पन्न—कोई पुरुष न आख्यायक ही होता है, और न उञ्छजीविकासम्पन्न ही होता है (५२८)।

विवेचन—अनेक घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा के ग्रहण करने को उञ्छ[1] जीविका कहते हैं।

१. 'उञ्छः कणश आदाने' इति यादवः।

माधुकरीवृत्ति या गोचरी प्रभृत्ति भी इसी के दूसरे नाम हैं। जो व्यक्ति उञ्छजीविका या माधुकरी-वृत्ति से अपने भक्त-पान की गवेषणा करता है, उसे उञ्छजीविकासम्पन्न कहा जाता है।

वृक्ष-विक्रिया-सूत्र

५२९—चउव्विहा रुक्खविगुव्वणा पण्णत्ता, तं जहा—पवालत्ताए, पत्तत्ताए, पुप्फत्ताए, फलत्ताए।

वृक्षों की विकरणरूप विक्रिया चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. प्रवाल (कोंपल) के रूप से. २. पत्र के रूप से, ३. पुष्प के रूप से ४. फल के रूप से। (५२९)

वादि-समवसरण-सूत्र

५३०—चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, तं जहा—किरियावादी, अकिरियावादी, अण्णाणियावादी वेणइयावादी।

वादियों के चार समवसरण (सम्मेलन या समुदाय) कहे गये हैं। जैसे—

१. क्रियावादि-समवसरण—पुण्य-पाप रूप क्रियाओं को मानने वाले आस्तिकों का समवसरण।
२. अक्रियावादि-समवसरण—पुण्य-पापरूप रूप क्रियाओं को नहीं मानने वाले नास्तिकों का समवसरण।
३. अज्ञानवादि-समवसरण—अज्ञान को ही शान्ति या सुख का कारण माननेवालों का समवसरण।
४. विनयवादि-समवसरण—सभी जीवों की विनय करने से मुक्ति मानने वालों का समवसरण।

५३१—णेरइयाणं चत्तारि वादिसमोसरणा पण्णत्ता, तं जहा—किरियावादी, जाव (अकिरियावादी, अण्णाणियावादी) वेणइयावादी।

नारकों के चार समवसरण कहे गये हैं। जैसे—

१. क्रियावादि-समवसरण, २. अक्रियावादि-समवसरण, ३. अज्ञानवादि-समवसरण, ४. विनयवादि-समवरण। (५३१)

५३२—एवमसुरकुमाराणवि जाव थणियकुमाराणं। एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक चार-चार वादिसमवसरण कहे गये हैं। इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सभी दण्डकों के चार-चार समवसरण जानना चाहिए।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार ने 'समवसरण' की निरुक्ति इस प्रकार से की है—'वादिनः-तीर्थिकाः समवसरन्ति-अवतरन्ति येषु इति समवसरणानि' अर्थात् जिस स्थान पर सर्व ओर से आकर वादी जन या विभिन्नमत वाले मिलें—एकत्र हों, उस स्थान को समवसरण कहते हैं। भगवान् महावीर के समय में सूत्रोक्त चारों प्रकार के वादियों के समवसरण थे और उनके भी अनेक उत्तर भेद थे, जिनकी संख्या एक प्राचीन गाथा को उद्धृत करके इस प्रकार बतलाई गई है—

१. क्रियावादियों के १८० उत्तरभेद, २. अक्रियावदियों के ८४ उत्तरभेद, ३ अज्ञान वादियों के ६७ उत्तरभेद, ४. विनयवादियों के ३२ उत्तरभेद।

इस प्रकार (१८० + ८४ + ६७ + ३२ = ३६३) तीन सौ तिरेसठ वादियों के भ० महावीर के समय में होने का उल्लेख श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय के शास्त्रों में पाया जाता है।

यहां यह बात खास तौर से विचारणीय है कि सूत्र ५३१ में नारकों के और सूत्र ५३२ में विकलेन्द्रियों को छोड़कर शेष दण्डक वाले जीवों के उक्त चारों समवसरणों का उल्लेख किया गया है। इसका कारण यह है कि विकलेन्द्रिय जीव असंज्ञी होते हैं, अतः उनमें ये चारों भेद नहीं घटित हो सकते, किन्तु नारक आदि संज्ञी हैं, अतः उनमें यह चारों विकल्प घटित हो सकते हैं।

मेघ-सूत्र

५३३—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता, वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि वासित्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो वासित्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता, वासित्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि वासित्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो वासित्ता।

मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गर्जक, न वर्षक—कोई मेघ गरजता है, किन्तु बरसता नहीं है।
२. वर्षक, न गर्जक—कोई मेघ बरसता है, किन्तु गरजता नहीं है।
३. गर्जक भी, वर्षक भी —कोई मेघ गरजता भी है और बरसता भी है।
४. न गर्जक, न वर्षक—कोई मेघ न गरजता है और न बरसता ही है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गर्जक, न वर्षक—कोई पुरुष गरजता है, किन्तु बरसता नहीं। अर्थात् बड़े-बड़े कामों को करने की उद्घोषणा करता है, किन्तु उन कामों को करता नहीं है।
२. वर्षक, न गर्जक—कोई पुरुष कार्यों का सम्पादन करता है किन्तु उद्घोषणा नहीं करता, गरजता नहीं है।
३. गर्जक भी, वर्षक भी—कोई पुरुष कार्यों को करने की गर्जना भी करता है और उन्हें सम्पादन भी करता है।
४. न गर्जक, न वर्षक—कोई पुरुष कार्यों को करने की न गर्जना ही करता है और न कार्यों को करता ही है (५३३)।

५३४—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो विज्जुयाइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—गज्जित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो गज्जित्ता णो विज्जुयाइत्ता।

पुन: मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

१. गर्जक, न विद्योतक—कोई मेघ गरजता है, किन्तु विद्युत्कर्त्ता नहीं—चमकता नहीं है।
२. विद्योतक, न गर्जक—कोई मेघ चमकता है, किन्तु गरजता नहीं है।
३. गर्जक भी, विद्योतक भी—कोई मेघ गरजता भी है और चमकता भी है।
४. न गर्जक, न विद्योतक—कोई मेघ न गरजता ही है और न चमकता ही है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गर्जक, न विद्योतक—कोई पुरुष दानादि करने की गर्जना (घोषणा) तो करता है, किन्तु चमकता नहीं अर्थात् उसे देता नहीं है।
२. विद्योतक, न गर्जक—कोई पुरुष दानादि देकर चमकता तो है, किन्तु उसकी गर्जना या घोषणा नहीं करता।
३. गर्जक भी, विद्योतक भी—कोई पुरुष दानादि की गर्जना भी करता है और देकर के चमकता भी है।
४. न गर्जक, न विद्योतक—कोई पुरुष न दानादि की गर्जना ही करता है और न देकर के चमकता ही है। (५३४)

५३५—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—वासित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो वासित्ता, एगे वासित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता णो विज्जुयाइत्ता।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—वासित्ता णाममेगे णो विज्जुयाइत्ता, विज्जुयाइत्ता णाममेगे णो वासित्ता, एगे वासित्तावि विज्जुयाइत्तावि, एगे णो वासित्ता णो विज्जुयाइत्ता।

पुन: मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. वर्षक, न विद्योतक—कोई मेघ बरसता है, किन्तु चमकता नहीं है।
२. विद्योतक, न वर्षक—कोई मेघ चमकता है, किन्तु बरसता नहीं है।
३. वर्षक भी, विद्योतक भी—कोई मेघ बरसता भी है और चमकता भी है।
४. न वर्षक, न विद्योतक—कोई मेघ न बरसता है और न चमकता ही है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. वर्षक, न विद्योतक—कोई पुरुष दानादि देता तो है, किन्तु दिखावा कर चमकता नहीं है।
२. विद्योतक, न वर्षक—कोई पुरुष दानादि देने का आडम्बर या प्रदर्शन कर चमकता तो है, किन्तु बरसता (देता) नहीं है।

३. वर्षक भी, विद्योतक भी—कोई पुरुष दानादि की वर्षा भी करता है और उसका दिखावा कर चमकता भी है।
४. न वर्षक, न विद्योतक—कोई पुरुष न दानादि की वर्षा ही करता है और न देकर के चमकता ही है। (५३५)

५३६—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—कालवासी णाममेगे णो अकालवासी, अकालवासी णाममेगे णो कालवासी, एगे कालवासीवि अकालवासीवि, एगे णो कालवासी णो अकालवासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—कालवासी णाममेगे णो अकालवासी, अकालवासी णाममेगे णो कालवासी, एगे कालवासीवि अकालवासीवि, एगे णो कालवासी णो अकालवासी।

पुनः मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई मेघ समय पर बरसता है, असमय में नहीं बरसता।
२. अकालवर्षी, न कालवर्षी—कोई मेघ असमय में बरसता है, समय पर नहीं बरसता।
३. कालवर्षी भी, अकालवर्षी भी—कोई मेघ समय पर भी बरसता है और असमय में भी बरसता है।
४. न कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई मेघ न समय पर ही बरसता है और न असमय में ही बरसता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई पुरुष समय पर दानादि देता है, असमय में नहीं देता।
२. अकालवर्षी, न कालवर्षी—कोई पुरुष असमय में दानादि देता है, समय पर नहीं देता।
३. कालवर्षी भी, अकालवर्षी भी—कोई पुरुष समय पर भी दानादि देता है और असमय में भी दानादि देता है।
४. न कालवर्षी, न अकालवर्षी—कोई पुरुष न समय पर ही दानादि देता है और न असमय में ही देता है।

५३७—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि अखेत्तवासीवि, एगे णो खेत्तवासी णो अखेत्तवासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी, अखेत्तवासी णाममेगे णो खेत्तवासी, एगे खेत्तवासीवि अखेत्तवासीवि, एगे णो खेत्तवासी णो अखेत्तवासी।

पुनः मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. क्षेत्रवर्षी, न अक्षेत्रवर्षी—कोई मेघ क्षेत्र (उर्वरा भूमि) पर बरसता है, अक्षेत्र (ऊसरभूमि) पर नहीं बरसता है।
२. अक्षेत्रवर्षी, न क्षेत्रवर्षी—कोई मेघ अक्षेत्र पर बरसता है, क्षेत्र पर नहीं बरसता है।

३. क्षेत्रवर्षी भी, अक्षेत्रवर्षी भी—कोई मेघ क्षेत्र पर भी बरसता है और अक्षेत्र पर भी बरसता है।
४. न क्षेत्रवर्षी, न अक्षेत्रवर्षी—कोई मेघ न क्षेत्र पर बरसता है और न अक्षेत्र पर बरसता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षेत्रवर्षी, न अक्षेत्रवर्षी—कोई पुरुष धर्मक्षेत्र (धर्मस्थान—दया और धर्म के पात्र) पर बरसता (दान देता है), अक्षेत्र (अधर्मस्थान) पर नहीं बरसता।
२. अक्षेत्रवर्षी, न क्षेत्रवर्षी—कोई पुरुष अक्षेत्र पर बरसता है, क्षेत्र पर नहीं बरसता है।
३. क्षेत्रवर्षी भी, अक्षेत्रवर्षी भी—कोई पुरुष क्षेत्र पर भी बरसता है और अक्षेत्र पर भी बरसता है।
४. न क्षेत्रवर्षी, न अक्षेत्रवर्षी—कोई पुरुष न क्षेत्र पर बरसता है और न अक्षेत्र पर बरसता है (५३७)।

अम्बा-पितृ-सूत्र

५३८—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—जणइत्ता णाममेगे णो णिम्मवइत्ता, णिम्मवइत्ता णाममेगे णो जणइत्ता, एगे जणइत्तावि णिम्मवइत्तावि, एगे णो जणइत्ता णो णिम्मवइत्ता।

एवामेव चत्तारि अम्मापियरो पण्णत्ता, तं जहा—जणइत्ता णाममेगे णो णिम्मवइत्ता, णिम्मवइत्ता णाममेगे णो जणइत्ता, एगे जणइत्तावि णिम्मवइत्तावि, एगे णो जणइत्ता णो णिम्मवइत्ता।

मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जनक, न निर्मापक—कोई मेघ अन्न का जनक (उगाने वाला-उत्पन्न करने वाला) होता है, निर्मापक (निर्माण कर फसल देने वाला) नहीं होता।
२. निर्मापक, न जनक—कोई मेघ अन्न का निर्मापक होता है, जनक नहीं होता।
३. जनक भी, निर्मापक भी—कोई मेघ अन्न का जनक भी होता है और निर्मापक भी होता है।
४. न जनक, न निर्मापक—कोई मेघ अन्न का न जनक होता है, न निर्मापक ही होता है।

इसी प्रकार माता-पिता भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जनक, न निर्मापक—कोई माता-पिता सन्तान के जनक (जन्म देने वाले) होते हैं, किन्तु निर्मापक (भरण-पोषणादि कर उनका निर्माण करने वाले) नहीं होते।
२. निर्मापक, न जनक—कोई माता-पिता सन्तान के निर्मापक होते हैं, किन्तु जनक नहीं होते।
३. जनक भी, निर्मापक भी—कोई माता-पिता सन्तान के जनक भी होते हैं और निर्मापक भी होते हैं।
४. न जनक, न निर्मापक—कोई माता-पिता सन्तान के न जनक ही होते हैं और न निर्मापक ही होते हैं (५३८)।

राज-सूत्र

५३९—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—देसवासी णाममेगे णो सव्ववासी, सव्ववासी णाममेगे णो देसवासी, एगे देसवासीवि सव्ववासीवि, एगे णो देसवासी णो सव्ववासी।

एवामेव चत्तारि रायाणो पण्णत्ता, तं जहा—देसाधिवती णाममेगे णो सव्वाधिवती, सव्वाधिवती णाममेगे णो देसाधिवती, एगे देसाधिवतीवि सव्वाधिवतीवि, एगे णो देसाधिवती णो सव्वाधिवती।

पुनः मेघ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. देशवर्षी, न सर्ववर्षी—कोई मेघ किसी एक देश में बरसता है, सब देशों में नहीं बरसता।
२. सर्ववर्षी, न देशवर्षी—कोई मेघ सब देशों में बरसता है, किसी एक देश में नहीं बरसता।
३. देशवर्षी भी, सर्ववर्षी भी—कोई मेघ किसी एक देश में भी बरसता है और सब देशों में भी बरसता है।
४. न देशवर्षी, न सर्ववर्षी—कोई मेघ न किसी एक देश में बरसता है, न सब देशों में ही बरसता है।

इसी प्रकार राजा भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. देशाधिपति, सर्वाधिपति—कोई राजा किसी एक देश का ही स्वामी होता है, सब देशों का स्वामी नहीं होता।
२. सर्वाधिपति, न देशाधिपति—कोई राजा सब देशों का स्वामी होता है, किसी एक देश का स्वामी नहीं होता।
३. देशाधिपति भी, सर्वाधिपति भी—कोई राजा किसी एक देश का भी स्वामी होता है और सब देशों का भी स्वामी होता है।
४. न देशाधिपति और न सर्वाधिपति—कोई राजा न किसी एक देश का स्वामी होता है और न सब देशों का ही स्वामी होता है, जैसे राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा (५३९)।

मेघ-सूत्र

५४०—चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा—पुक्खलसंवट्टए, पज्जुण्णे, जीमूते, जिम्मे।

पुक्खलसंवट्टए णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवाससहस्साइं भावेति। पज्जुण्णे णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवाससयाइं भावेति। जीमूते णं महामेहे एगेणं वासेणं दसवासाइं भावेति। जिम्मे णं महामेहे बहूहिं वासेहिं एगं वासं भावेति वा णं वा भावेति।

मेघ चार प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. पुष्कलावर्तमेघ, २. प्रद्युम्नमेघ, ३. जीमूतमेघ, ४. जिम्हमेघ।

१. पुष्कलावर्त महामेघ एक वर्षा से दश हजार वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध (उपजाऊ) कर देता है।
२. प्रद्युम्न महामेघ एक वर्षा से दश सौ (एक हजार) वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध कर देता है।

३. जोमूत महामेघ एक वर्षा से दश वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध कर देता है।
४. जिम्ह महामेघ बहुत वार बरस कर एक वर्ष तक भूमि को जल से स्निग्ध करता है, और नहीं भी करता है (५४०)।

विवेचन—यद्यपि मूल-सूत्र में पुष्कलावर्त आदि मेघों के समान चार प्रकार के पुरुषों का कोई उल्लेख नहीं है, तथापि टीकाकार ने उक्त चारों प्रकार के मेघों के समान पुरुषों के स्वयं जान लेने की सूचना अवश्य की है, जिसे इस प्रकार से जानना चाहिए—

१. कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष पुष्कलावर्त मेघ के समान अपने एक वार के दान से या उपदेश से बहुत लम्बे काल तक अर्थी—याचकों को और जिज्ञासुओं को तृप्त कर देता है।
२. कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष प्रद्युम्न मेघ के समान बहुत काल तक अपने दान या उपदेश से अर्थी और जिज्ञासुओं को तृप्त कर देता है।
३. कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष जीमूत मेघ के समान कुछ वर्षों के लिए अपने दान या उपदेश से अर्थी और जिज्ञासुओं को तृप्त करता है।
४. कोई दानी या उपदेष्टा पुरुष अपने अनेक वार दिये गये दान या उपदेश से अर्थी और जिज्ञासु जनों को एक वर्ष के लिए तृप्त करता है और कभी तृप्त कर भी नहीं पाता है।

भावार्थ—जैसे चारों प्रकार के मेघों का प्रभाव उत्तरोत्तर अल्प होता जाता है उसी प्रकार दानी या उपदेष्टा के दान या उपदेश की मात्रा और प्रभाव उत्तरोत्तर अल्प होता जाता है।

आचार्य-सूत्र

५४१—चत्तारि करंडगा पण्णत्ता, तं जहा—सोवागकरंडए, वेसियाकरंडए, गाहावतिकरंडए, रायकरंडए।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—सोवागकरंडगसमाणे, वेसियाकरंडगसमाणे, गाहावतिकरंडगसमाणे, रायकरंडगसमाणे।

करण्डक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. श्वपाक-करण्डक, २. वेश्याकरण्डक, ३. गृहपतिकरण्डक, ४. राजकरण्डक।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. श्वपाक-करण्डक समान २. वेश्या-करण्डक समान,
३. गृहपति-करण्डकसमान, ४. राज-करण्डकसमान (५४१)।

विवेचन—करण्डक का अर्थ पिटारा या पिटारी है। आज भी यह वांस की शलाकाओं से बनाया जाता है। किन्तु प्राचीन काल में जब आज के समान लोहे और स्टील से निर्मित सन्दूक-पेटी आदि का विकास नहीं हुआ था तब सभी वर्गों के लोग वांस से बने करण्डकों में ही अपना सामान रखते थे। उक्त चारों प्रकार के करण्डकों और उनके समान बताये गये आचार्यों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१. जैसे श्वपाक (चाण्डाल, चर्मकार) आदि के करण्डक में चमड़े को छीलने-काटने आदि के उपकरणों और चमड़े के टुकड़ों आदि के रखे रहने से वह असार या निकृष्ट कोटि का

माना जाता है, उसी प्रकार जो आचार्य केवल षट्काय-प्रज्ञापक गाथादिरूप अल्पसूत्र का धारक और विशिष्ट क्रियाओं से रहित होता है, वह आचार्य श्वपाक-करण्डक के समान है।

२. जैसे वेश्या का करण्डक लाख भरे सोने के दिखाऊ आभूषणों से भरा होता है, वह श्वपाक-करण्डक से अच्छा है, वैसे ही जो आचार्य अल्पश्रुत होने पर भी अपने वचन-चातुर्य से मुग्धजनों को आकर्षित करते हैं, उनको वेश्या-करण्डक के समान कहा गया है। ऐसा आचार्य श्वपाक-करण्डक-समान आचार्य से अच्छा है।
३. जैसे किसी गृहपति या सम्पन्न गृहस्थ का करण्डक सोने-मोती आदि के आभूषणों से भरा रहता है, वैसे ही जो आचार्य स्व-समय पर-समय के ज्ञाता और चारित्रसम्पन्न होते हैं, उन्हे गृहपति-करण्डक के समान कहा गया है।
४. जैसे राजा का करण्डक मणि-माणिक आदि बहुमूल्य रत्नों से भरा होता है, उसी प्रकार जो आचार्य अपने पद के योग्य सर्वगुणों से सम्पन्न होते हैं, उन्हें राज-करण्डक के समान कहा गया है।

उक्त चारों प्रकार के करण्डकों के समान चारों प्रकार के आचार्य क्रमशः असार, अल्पसार, सारवान् और सर्वश्रेष्ठ सारवान् जानना चाहिए।

५४२—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—साले णाममेगे सालपरियाए, साले णाममेगे एरंडपरियाए, एरंडे णाममेगे सालपरियाए, एरंडे णाममेगे एरंडपरियाए।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—साले णाममेगे सालपरियाए, साले णाममेगे एरंडपरियाए, एरंडे णाममेगे सालपरियाए, एरंडे णाममेगे एरंडपरियाए।

चार प्रकार के वृक्ष कहे गये हैं। जैसे—

१. शाल और शाल-पर्याय—कोई वृक्ष शाल जाति का होता है और शाल-पर्याय (विशाल छाया वाला, आश्रयणीयता आदि धर्मों वाला) होता है।
२. शाल और एरण्ड-पर्याय—कोई वृक्ष शाल जाति का होता है, किन्तु एरण्ड-पर्याय (एरण्ड के वृक्ष-समान अल्प छाया वाला) होता है।
३. एरण्ड और शाल-पर्याय—कोई वृक्ष एरण्ड के समान छोटा, किन्तु शाल के समान विशाल छाया वाला होता है।
४. एरण्ड और एरण्ड-पर्याय—कोई वृक्ष एरण्ड के समान छोटा और उसी के समान अल्प छाया वाला होता है।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. शाल और शालपर्याय—कोई आचार्य शाल के समान उत्तम जाति वाले और उसी के समान धर्म वाले—ज्ञान, आचार और प्रभावशाली होते हैं।
२. शाल और एरण्डपर्याय—कोई आचार्य शाल के समान उत्तम जाति वाले, किन्तु ज्ञान, आचार और प्रभाव से रहित होते हैं।

३. एरण्ड और शालपर्याय—कोई आचार्य जाति से एरण्ड के समान हीन किन्तु ज्ञान, आचार और प्रभावशाली होने से शालपर्याय होते हैं।
४. एरण्ड और एरण्डपर्याय—कोई आचार्य एरण्ड के समान हीन जाति वाले और उसी के समान ज्ञान, आचार और प्रभाव से भी हीन होते हैं (५४२)।

५४३—चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—साले णाममेगे सालपरिवारे, साले णाममेगे एरंडपरिवारे, एरंडे णाममेगे सालपरिवारे, एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—साले णाममेगे सालपरिवारे, साले णाममेगे एरंडपरिवारे, एरंडे णाममेगे सालपरिवारे, एरंडे णाममेगे एरंडपरिवारे।

संग्रहणी-गाथा

सालदुममज्झयारे, जह साले णाम होइ दुमराया।
इय सुंदरआयरिए, सुंदरसीसे मुणेयव्वे ॥१॥
एरंडमज्झयारे, जह साले णाम होइ दुमराया।
इय सुंदरआयरिए, मंगुलसीसे मुणेयव्वे ॥२॥
सालदुममज्झयारे, एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुलआयरिए, सुंदरसीसे मुणेयव्वे ॥३॥
एरंडमज्झयारे, एरंडे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुलआयरिए, मंगुलसीसे मुणेयव्वे ॥४॥

पुनः वृक्ष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. शाल और शालपरिवार—कोई वृक्ष शाल जाति और शालपरिवार वाला होता है।
२. शाल और एरण्डपरिवार—कोई वृक्ष शाल जाति किन्तु एरण्डपरिवार वाला होता है।
३. एरण्ड और शालपरिवार—कोई वृक्ष जाति से एरण्ड किन्तु शालपरिवार वाला होता है।
४. एरण्ड और एरण्डपरिवार—कोई वृक्ष जाति से एरण्ड और एरण्डपरिवार वाला होता है।

इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. शाल और शालपरिवार—कोई आचार्य शाल के समान जातिमान् और शालपरिवार के समान उत्तम शिष्यपरिवार वाले होते हैं।
२. शाल और एरण्डपरिवार—कोई आचार्य शाल के समान जातिमान्, किन्तु एरण्डपरिवार के समान अयोग्य शिष्य-परिवार वाले होते हैं।
३. एरण्ड और शालपरिवार—कोई आचार्य एरण्ड के समान हीन जाति वाले, किन्तु शाल के समान उत्तम शिष्य-परिवार वाले होते हैं।
४. एरण्ड और एरण्डपरिवार—कोई आचार्य एरण्ड के समान हीन जाति वाले और एरण्ड परिवार के समान अयोग्य शिष्यपरिवार वाले होते हैं।

१. जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष शालवृक्षों के मध्य में वृक्षराज होता है, उसी प्रकार उत्तम आचार्य उत्तम शिष्यों के परिवार वाला आचार्यराज जानना चाहिए।

२. जिस प्रकार शाल नाम का वृक्ष एरण्ड वृक्षों के मध्य में वृक्षराज होता है, उसी प्रकार उत्तम आचार्य मंगुल (अधम-असुन्दर) शिष्यों के परिवार वाला जानना चाहिए।
३. जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष शाल वृक्षों के मध्य में वृक्षराज होता है, उसी प्रकार सुन्दर शिष्यों के परिवार वाला मंगुल आचार्य जानना चाहिए।
४. जिस प्रकार एरण्ड नाम का वृक्ष एरण्ड वृक्षों के मध्य में वृक्षराज होता है, उसी प्रकार मंगुल शिष्यों के परिवार वाला मंगुल आचार्य जानना चाहिए (५४३)।

भिक्षाक-सूत्र

५४४—चत्तारि मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोयचारी, पडिसोयचारी, अंतचारी, मज्झचारी।

मत्स्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अनुस्रोतचारी—जल-प्रवाह के अनुकूल चलने वाला मत्स्य।
२. प्रतिस्रोतचारी—जल-प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाला मत्स्य।
३. अन्तचारी—जल-प्रवाह के किनारे-किनारे चलने वाला मत्स्य।
४. मध्यचारी—जल-प्रवाह के मध्य में चलने वाला मत्स्य।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अनुस्रोतचारी—उपाश्रय से लगाकर सीधी गली में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।
२. प्रतिस्रोतचारी—गली के अन्त से लगा कर उपाश्रय तक स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।
३. अन्तचारी—नगर-ग्रामादि के अन्त भाग में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।
४. मध्यचारी—नगर-ग्रामादि के मध्य में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।

साधु उक्त चार प्रकार के अभिग्रहों में से किसी एक प्रकार का अभिग्रह लेकर भिक्षा लेने के लिए निकलते हैं और अपने अभिग्रह के अनुसार ही भिक्षा ग्रहण करते हैं (५४४)।

गोल-सूत्र

५४५—चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—मधुसित्थगोले, जउगोले, दारुगोले, मट्टियागोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मधुसित्थगोलसमाणे, जउगोलसमाणे, दारुगोलसमाणे, मट्टियागोलसमाणे।

गोले चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मधुसिक्थगोला, २. जतुगोला, ३. दारुगोला, ४. मृत्तिकागोला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मधुसिक्थगोलासमान—मधुसिक्थ (मोम) के बने गोले के समान कोमल हृदयवाला पुरुष।
२. जतुगोला समान—लाख के गोले के समान किंचित् कठिन हृदय वाला, किन्तु जैसे अग्नि के सान्निध्य से जतुगोला शीघ्र पिघल जाता है, इसी प्रकार गुरु-उपदेशादि से शीघ्र कोमल होने वाला पुरुष।
३. दारुगोला समान—जैसे लाख के गोले से लकड़ी का गोला अधिक कठिन होता है, उसी प्रकार कठिनतर हृदय वाला पुरुष।
४. मृत्तिकागोला समान—जैसे मिट्टी का गोला (आग में पकने पर) लकड़ी से भी अधिक कठिन होता है, उसी प्रकार कठिनतम हृदय वाला पुरुष (५४५)।

५४६—चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—अयगोले, तउगोले, तंबगोले, सीसगोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—अयगोलसमाणे, जाव (तउगोलसमाणे, तंबगोलसमाणे), सीसगोलसमाणे।

पुनः गोले चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अयोगोल (लोहे का गोला)। २. त्रपुगोल (रांगे का गोला)।
३. ताम्रगोल (तांबे का गोला)। ४. शीशगोल (सीसे का गोला)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अयोगोलसमान—लोहे के गोले के समान गुरु (भारी) कर्म वाला पुरुष।
२. त्रपुगोलसमान—रांगे के गोले के समान गुरुतर कर्म वाला पुरुष।
३. ताम्रगोलसमान—तांबे के गोले के समान गुरुतम कर्म वाला पुरुष।
४. शीशगोलसमान—सीसे के गोले के समान अत्यधिक गुरु कर्म वाला पुरुष।

विवेचन—अयोगोल आदि के समान चार प्रकार के पुरुषों की उक्त व्याख्या मन्द, तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम कषायों के द्वारा उपार्जित कर्म-भार की उत्तरोत्तर अधिकता से की गई है। टीकाकार ने पिता, माता, पुत्र और स्त्री-सम्बन्धी स्नेह भार से भी करने की सूचना की है। पुरुष का स्नेह पिता की अपेक्षा माता से अधिक होता है, माता की अपेक्षा पुत्र से और भी अधिक होता है तथा स्त्री से और भी अधिक होता है। इस स्नेह-भार की अपेक्षा पुरुष चार प्रकार के होते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना चाहिए। अथवा पिता आदि परिवार के प्रति राग की मन्दता-तीव्रता की अपेक्षा यह कथन समझना चाहिए (५४६)।

५४७—चत्तारि गोला पण्णत्ता, तं जहा—हिरण्णगोले, सुवण्णगोले, रयणगोले, वयरगोले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हिरण्णगोलसमाणे, जाव (सुवण्णगोलसमाणे रयणगोलसमाणे), वयरगोलसमाणे।

पुनः गोले चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. हिरण्य-(चाँदी)-गोला, २. सुवर्ण-गोला, ३. रत्न-गोला, ४. वज्रगोला।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. हिरण्यगोल समान, २. सुवर्णगोल समान, ३. रत्नगोल समान, ४. वज्रगोल समान।

विवेचन—इस सूत्र की व्याख्या अनेक प्रकार से करने का निर्देश टीकाकार ने किया है। जैसे—चाँदी के गोले से तत्सम आकार वाला सोने का गोला अधिक मूल्य और भार वाला, उससे भी रत्न और वज्र (हीरा) का गोला उत्तरोत्तर अधिक मूल्य एवं भार वाला होता है, वैसे ही चारों गोलों के समान पुरुष भी गुणों की उत्तरोत्तर अधिकता वाले होते हैं, समृद्धि की अपेक्षा भी उत्तरोत्तर अधिक सम्पन्न होते हैं, हृदय की निर्मलता की अपेक्षा भी उत्तरोत्तर अधिक निर्मल हृदय वाले होते हैं और पूज्यता—बहुसन्मान आदि की अपेक्षा भी उत्तरोत्तर पूज्य और सम्माननीय होते हैं। इसी प्रकार आचरण आदि की अपेक्षा से भी पुरुषों के चार प्रकार जानना चाहिए (५४७)।

पत्र-सूत्र

५४८—चत्तारि पत्ता पण्णत्ता, तं जहा—असिपत्ते, करपत्ते, खुरपत्ते, कलंबचीरियापत्ते।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—असिपत्तसमाणे, जाव (करपत्तसमाणे, खुरपत्तसमाणे), कलंबचीरियापत्तसमाणे।

पत्र (धार वाले फलक) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. असिपत्र (तलवार का पतला भाग-पत्र) २. करपत्र (लकड़ी चीरने वाली करोत का पत्र)

३. क्षुरपत्र (छुरा का पत्र) ४. कदम्बचीरिका पत्र।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. असिपत्र समान, २. करपत्र समान, ३. क्षुरपत्र समान, ४. कदम्बचीरिका पत्र समान।

विवेचन—इस सूत्र की व्याख्या इस प्रकार जानना चाहिए—

१. जैसे—असिपत्र (तलवार) एक ही प्रहार से शत्रु का शिरच्छेदन कर देता है, उसी प्रकार जो पुरुष एक बार ही कुटुम्बादि से स्नेह का छेदन कर देता है, वह असिपत्र-समान पुरुष है।
२. जैसे—करपत्र (करोंत) बार-बार इधर से उधर आ-जाकर काठ का छेदन करता है, उसी प्रकार बार-बार की भावना से जो क्रमशः स्नेह का छेदन करता है, वह करपत्र के समान पुरुष है।
३. जैसे—क्षुरपत्र-(छुरा) शिर के बाल धीरे-धीरे अल्प-अल्प मात्रा में काट पाता है, उसी प्रकार जो कुटुम्ब का स्नेह धीरे-धीरे छेदन कर पाता है, वह क्षुरपत्र के समान पुरुष है।
४. कदम्बचीरिका का अर्थ एक विशिष्ट शस्त्र या तीखी नोक वाला एक प्रकार का घास है। उसकी धार के समान धार वाला कोई पुरुष होता है। वह धीरे-धीरे बहुत धीमी गति से अत्यल्प मात्रा में कुटुम्ब का स्नेह-छेदन करता है, वह पुरुष कदम्बचीरिका-पत्र समान कहा गया है (५४८)।

कट-सूत्र

५४९—चत्तारि कडा पण्णत्ता, तं जहा—सुंबकडे, विदलकडे, चम्मकडे, कंबलकडे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सुंबकडसमाणे, जाव (विदलकडसमाणे, चम्मकडसमाणे) कंबलकडसमाणे।

कट (चटाई) चार प्रकार का है। जैसे—

१. शुम्वकट—खजूर से बनी चटाई या घास से बना आसन।
२. विदलकट—बांस की पतली खपच्चियों से बनी चटाई।
३. चर्मकट—चमड़े की पतली धारियों से बनी चटाई या आसन।
४. कम्वलकट—बालों से बना बैठने या बिछाने का वस्त्र।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. शुम्वकट समान, २. विदलकट समान, ३. चर्मकट समान, ४. कम्वलकट समान।

विवेचन—शुम्बकट (खजूर या घास-निर्मित बैठने का आसन) अत्यल्प मूल्य वाला होता है, अतः उसमें रागभाव कम होता है। उसी प्रकार जिसका पुत्रादि में राग या मोह अत्यल्प होता है, वह पुरुष शुम्वकट के समान कहा जाता है। शुम्बकट की अपेक्षा विदलकट अधिक मूल्यवाला होता है अतः उसमें रागभाव अधिक होता है। इसी प्रकार जिसका रागभाव पुत्रादि में कुछ अधिक हो, वह विदलकट के समान पुरुष कहा गया है। विदलकट से चर्मकट और भी अधिक मूल्यवान् होने से उसमें रागभाव भी और अधिक होता है। इसी प्रकार जिसका रागभाव पुत्रादि में गाढ़तर हो, उसे चर्मकट-समान जानना चाहिए। तथा जैसे चर्मकट से कम्बलकट अधिक मूल्यवाला होता है, अतः उसमें रागभाव भी अधिक होता है। इसी प्रकार पुत्रादि में गाढ़तम रागभाव वाले पुरुष को कम्वलकट समान जानना चाहिए (५४९)।

तिर्यक्-सूत्र

५५०—चउव्विहा चउप्पया पण्णत्ता, तं जहा—एगखुरा, दुखुरा, गंडीपदा, सणप्फया।

चतुष्पद (चार पैर वाले) तिर्यच जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. एक खुर वाले—घोड़े, गधे आदि।
२. दो खुर वाले—गाय, भैंस आदि।
३. गण्डीपद—कठोर चर्ममय गोल पैर वाले हाथी, ऊंट आदि।
४. स-नख-पद—लम्बे तीक्ष्ण नाखून वाले शेर, चीता, कुत्ता, बिल्ली आदि।

५५१—चउव्विहा पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—चम्मपक्खी, लोमपक्खी, समुग्गपक्खी, विततपक्खी।

पक्षी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. चर्मपक्षी—चमड़े के पांखों वाले चमगीदड़ आदि।
२. रोमपक्षी—रोममय पांखों वाले हंस आदि।
३. समुद्गपक्षी—जिसके पंख पेटी के समान खुलते और वन्द होते हैं।
४. विततपक्षी—जिसके पंख फैले रहते हैं (५५१)।

विवेचन—चर्म पक्षी और रोम पक्षी तो मनुष्य क्षेत्र में पाये जाते हैं, किन्तु समुद्ग पक्षी और विततपक्षी मनुष्यक्षेत्र से बाहरी द्वीपों और समुद्रों में ही पाये जाते हैं।

५५२—चउव्विहा खुड्डपाणा पण्णत्ता, तं जहा—बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, संमुच्छिम-पंचिंदियतिरिक्खजोणिया।

क्षुद्र प्राणी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. द्वीन्द्रिय जीव, २. त्रीन्द्रिय जीव, ३. चतुरिन्द्रिय जीव,
४. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव (५५२)।

विवेचन—जिनकी अग्रिम भव में मुक्ति संभव नहीं, ऐसे प्राणी क्षुद्र कहलाते हैं।

भिक्षुक-सूत्र

५५३—चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—णिवतित्ता णाममेगे णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता णो परिवइत्ता।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—णिवतित्ता णाममेगे णो परिवइत्ता, परिवइत्ता णाममेगे णो णिवतित्ता, एगे णिवतित्तावि परिवइत्तावि, एगे णो णिवतित्ता णो परिवइत्ता।

पक्षी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. निपतिता, न परिव्रजिता—कोई पक्षी अपने घोंसले से नीचे उतर सकता है, किन्तु (बच्चा होने से) उड़ नहीं सकता।
२. परिव्रजिता, न निपतिता—कोई पक्षी अपने घोंसले से उड़ सकता है, किन्तु (भीरु होने से) नीचे नहीं उतर सकता।
३. निपतिता भी, परिव्रजिता भी—कोई समर्थ पक्षी अपने घोंसले से नीचे भी उड़ सकता है और ऊपर भी उड़ सकता है।
४. न निपतिता, न परिव्रजिता—कोई पक्षी (अतीव बालावस्था वाला होने के कारण) अपने घोंसले से न नीचे ही उतर सकता है और न ऊपर ही उड़ सकता है (५५३)।

इसी प्रकार भिक्षुक भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. निपतिता, न परिव्रजिता—कोई भिक्षुक भिक्षा के लिए निकलता है, किन्तु रुग्ण होने आदि के कारण अधिक घूम नहीं सकता।
२. परिव्रजिता, न निपतिता—कोई भिक्षुक भिक्षा के लिए घूम सकता है, किन्तु स्वाध्यायादि में संलग्न रहने से भिक्षा के लिए निकल नहीं सकता।
३. निपतिता भी, परिव्रजिता भी—कोई समर्थ भिक्षुक भिक्षा के लिए निकलता भी है और घूमता भी है।
४. न निपतिता, न परिव्रजिता—कोई नवदीक्षित अल्पवयस्क भिक्षुक भिक्षा के लिए न निकलता है और न घूमता ही है।

कृश-अकृश-सूत्र

५५४—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठे, अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. निष्कृष्ट और निष्कृष्ट—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है और कषाय से भी कृश होता है।
२. निष्कृष्ट और अनिष्कृष्ट—को पुरुष शरीर से कृश होता है, किन्तु कषाय से कृश नहीं होता।
३. अनिष्कृष्ट और निष्कृष्ट—कोई पुरुष शरीर से कृश नहीं होता, किन्तु कषाय से कृश होता है।
४. अनिष्कृष्ट और अनिष्कृष्ट—कोई पुरुष न शरीर से कृश होता है और न कषाय से ही कृश होता है (५५४)।

५५५—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—णिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा, णिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा, अणिक्कट्ठे णाममेगे णिक्कट्ठप्पा, अणिक्कट्ठे णाममेगे अणिक्कट्ठप्पा।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. निष्कृष्ट और निष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से कृश होता है और कषायों का निर्मथन कर देने से निर्मल-आत्मा होता है।
२. निष्कृष्ट और अनिष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से तो कृश होता है, किन्तु कषायों की प्रबलता से अनिर्मल-आत्मा होता है।
३. अनिष्कृष्ट और निष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से अकृश (स्थूल) किन्तु कषायों के अभाव से निर्मल-आत्मा होता है।
४. अनिष्कृष्ट और अनिष्कृष्टात्मा—कोई पुरुष शरीर से अनिष्कृष्ट (अकृश) होता है और आत्मा से भी अनिष्कृष्ट (अकृश या अनिर्मल) होता है (५५५)।

बुध-अबुध-सूत्र

५५६—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बुहे णाममेगे बुहे, णाममेगे अबुहे, अबुहे णाममेगे बुहे, अबुहे णाममेगे अबुहे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. बुध और बुध—कोई पुरुष ज्ञान से भी बुध (विवेकी) होता है और आचरण से भी बुध (विवेकी) होता है।
२. बुध और अबुध—कोई पुरुष ज्ञान से तो बुध होता है, किन्तु आचरण से अबुध (अविवेकी) होता है।
३. अबुध और बुध—कोई पुरुष ज्ञान से अबुध होता है, किन्तु आचरण से बुध होता है।

४. अबुध और अबुध—कोई पुरुष ज्ञान से भी अबुध होता है और आचरण से भी अबुध होता है (५५६)।

५५७—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—बुधे णाममेगे बुधहियए, बुधे णाममेगे अबुधहियए, अबुधे णाममेगे बुधहियए, अबुधे णाममेगे अबुधहियए।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. बुध और बुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से बुध (सत्-क्रिया वाला) होता है और हृदय से भी बुध (विवेकशील) होता है।
२. बुध और अबुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से बुध होता है, किन्तु हृदय से अबुध (अविवेकी) होता है।
३. अबुध और बुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से अबुध होता है, किन्तु हृदय से बुध होता है।
४. अबुध और अबुधहृदय—कोई पुरुष आचरण से भी अबुध होता है और हृदय से भी अबुध होता है (५५७)।

अनुकम्पक-सूत्र

५५८—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—आयाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकंपए, पराणुकंपए णाममेगे णो आयाणुकंपए, एगे आयाणुकंपएवि पराणुकंपएवि, एगे णो आयाणुकंपए णो पराणुकंपए।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आत्मानुकम्पक, न परानुकम्पक—कोई पुरुष अपनी आत्मा पर अनुकम्पा (दया) करता है, किन्तु दूसरे पर अनुकम्पा नहीं करता। (जिनकल्पी, प्रत्येकबुद्ध या निर्दय कोई अन्य पुरुष)
२. परानुकम्पक, न आत्मानुकम्पक—कोई पुरुष दूसरे पर तो अनुकम्पा करता है, किन्तु मेतार्य मुनि के समान अपने ऊपर अनुकम्पा नहीं करता।
३. आत्मानुकम्पक भी, परानुकम्पक भी—कोई पुरुष आत्मानुकम्पक भी होता है और परानुकम्पक भी होता है, (स्थविरकल्पी साधु)।
४. न आत्मानुकम्पक, न परानुकम्पक—कोई पुरुष न आत्मानुकम्पक ही होता है और न परानुकम्पक ही होता है। (कालशौकरिक के समान) (५५८)।

संवास-सूत्र

५५९—चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—दिव्वे, आसुरे, रक्खसे, माणुसे।

संवास (स्त्री-पुरुष का सहवास) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. दिव्य-संवास, २. आसुर-संवास, ३. राक्षस-संवास, ४. मानुष-संवास (५५९)।

विवेचन—वैमानिक देवों के संवास को दिव्यसंवास कहते हैं। असुरकुमार भवनवासी देवों के संवास को आसुरसंवास कहते हैं। राक्षस व्यन्तर देवों के संवास को राक्षस-संवास कहते हैं और मनुष्यों के संवास को मानुषसंवास कहते हैं।

५६०—चउव्विहे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, देवे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति।

पुनः संवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कोई देव देवियों के साथ संवास करता है।
२. कोई देव असुरियों के साथ संवास करता है।
३. कोई असुर देवियों के साथ संवास करता है।
४. कोई असुर असुरियों के साथ संवास करता है (५६०)।

५६१—चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, देवे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गज्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति।

पुनः संवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कोई देव देवियों के साथ संवास करता है।
२. कोई देव राक्षसियों के साथ संवास करता है।
३. कोई राक्षस देवियों के साथ संवास करता है।
४. कोई राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करता है (५६१)।

५६२—चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—देवे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, देवे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति।

पुनः संवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कोई देव देवी के साथ संवास करता है।
२. कोई देव मानुषी के साथ संवास करता है।
३. कोई मनुष्य देवी के साथ संवास करता है।
४. कोई मनुष्य मानुषी स्त्री के साथ संवास करता है (५६२)।

५६३—चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति।

पुनः संवास चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कोई असुर असुरियों के साथ संवास करता है।

२. कोई असुर राक्षसियों के साथ संवास करता है ।
३. कोई राक्षस असुरियों के साथ संवास करता है ।
४. कोई राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करता है (५६३) ।

५६४—चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—असुरे णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, असुरे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे असुरीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति ।

पुन: संवास चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. कोई असुर असुरियों के साथ संवास करता है ।
२. कोई असुर मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है ।
३. कोई मनुष्य असुरियों के साथ संवास करता है ।
४. कोई मनुष्य मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है (५६४) ।

५६५—चउव्विधे संवासे पण्णत्ते, तं जहा—रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, रक्खसे णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति, मणुस्से णाममेगे मणुस्सीए सद्धिं संवासं गच्छति ।

पुन: संवास चार प्रकार का कहा गया है । जैसे —

१. कोई राक्षस राक्षसियों के साथ संवास करता है ।
२. कोई राक्षस मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है ।
३. कोई मनुष्य राक्षसियों के साथ संवास करता है ।
४. कोई मनुष्य मानुषी स्त्रियों के साथ संवास करता है (५६५) ।

अपध्वंस-सूत्र

५६६—चउव्विहे अवद्धंसे पण्णत्ते, तं जहा—आसुरे, आभिओगे, संमोहे, देवकिब्बिसे ।

अपध्वंस (चारित्र का विनाश) चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. आसुर-अपध्वंस, २, आभियोग-अपध्वंस, ३. सम्मोह-अपध्वंस, ४. देवकिल्विष-अपध्वंस (५६६) ।

विवेचन—शुद्ध तपस्या का फल निर्वाण-प्राप्ति है, शुभ तपस्या का फल स्वर्ग-प्राप्ति है । किन्तु जिस तपस्या में किसी जाति की आकांक्षा या फल-प्राप्ति की वांछा संलग्न रहती है, वह तप: साधना के फल से देवयोनि में तो उत्पन्न होता है, किन्तु आकांक्षा करने से नीच जाति के भवनवासी आदि देवों में उत्पन्न होता है । जिन अनुष्ठानों या क्रियाविशेषों को करने से साधक असुरत्व का उपार्जन करता है, वह आसुरी भावना कही गयी है । जिन अनुष्ठानों से साधक आभियोग जाति के देवों में उत्पन्न होता है, वह आभियोग-भावना है, जिन अनुष्ठानों से साधक सम्मोहक देवों में उत्पन्न होता है, वह सम्मोही भावना है और जिन अनुष्ठानों से साधक किल्विष देवों में उत्पन्न होता है, वह देवकिल्विषी भावना है । वस्तुत: ये चारों ही भावनाएं चारित्र के अपध्वंस (विनाशरूप) हैं, अत:

अपध्वंस के चार प्रकार बताये गये हैं। चारित्र का पालन करते हुए भी व्यक्ति जिस प्रकार की हीन भावना में निरत रहता है, वह उस प्रकार के हीन देवों में उत्पन्न हो जाता है।

५६७—चउहिं ठाणेहिं जीवा आसुरत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—कोवसीलताए, पाहुड-सीलताए, संसत्ततवोकम्मेणं णिमित्ताजीवयाए।

चार स्थानों से जीव असुरत्व कर्म (असुरों में जन्म लेने योग्य कर्म) का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. कोपशीलता से—चारित्र का पालन करते हुए क्रोधयुक्त प्रवृत्ति से।
२. प्राभृतशीलता से—चारित्र का पालन करते हुए कलह-स्वभावी होने से।
३. संसक्त तपःकर्म से—आहार, पात्रादि की प्राप्ति के लिए तपश्चरण करने से।
४. निमित्ताजीविता से—हानि-लाभ आदि-विषयक निमित्त बताकर आहारादि प्राप्त करने से (५६७)।

५६८—चउहिं ठाणेहिं जीवा आभिओगत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—अत्तुक्कोसेणं, परपरि-वाएणं, भूतिकम्मेणं, कोउयकरणेणं।

चार स्थानों से जीव आभियोगत्व कर्म का उपार्जन करते है। जैसे—

१. आत्मोत्कर्ष से—अपने गुणों का अभिमान करने तथा आत्मप्रशंसा करने से।
२. पर-परिवाद से—दूसरों की निन्दा करने और दोष कहने से।
३. भूतिकर्म से—ज्वर, भूतावेश आदि को दूर करने के लिए भस्म आदि देने से।
४. कौतुक करने से—सौभाग्यवृद्धि आदि के लिए मन्त्रित जलादि के क्षेपण करने से (५६८)।

५६९—चउहिं ठाणेहिं जीवा सम्मोहत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—उम्मग्गदेसणाए, मग्गंतराएणं, कामासंसप्पओगेणं, भिज्जाणियाणकरणेणं।

चार स्थानों से जीव सम्मोहत्व कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. उन्मार्गदेशना से—जिन-वचनों से विरुद्ध मिथ्या मार्ग का उपदेश देने से।
२. मार्गान्तराय से—मुक्ति के मार्ग में प्रवृत्त व्यक्ति के लिए अन्तराय करने से।
३. कामाशंसाप्रयोग से—तपश्चरण करते हुए काम-भोगों की अभिलाषा रखने से।
४. भिध्यानिन्दानकरण से—तीव्र भोगों की लालसा-वश निदान करने से (५६९)।

५७०—चउहिं ठाणेहिं जीवा देवकिब्बिसियत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—अरहंताणं अवण्णं वदमाणे, अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे, आयरियउवज्झायाणमवण्णं वदमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे।

चार स्थानों से जीव देवकिल्विषिकत्व कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. अर्हन्तों का अवर्णवाद (असद्-दोषोद्भाव) करने से।
२. अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करने से।

३. आचार्य और उपाध्याय का अवर्णवाद करने से ।
४. चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करने से (५७०) ।

प्रव्रज्या-सूत्र

५७१—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहओ-लोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा ।

प्रव्रज्या (निर्ग्रन्थ दीक्षा) चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१. इहलोकप्रतिबद्धा—इस लोक-सम्बन्धी सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
२. परलोकप्रतिबद्धा—परलोक-सम्बन्धी सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
३. लोकद्वयप्रतिबद्धा—दोनों लोकों में सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
४. अप्रतिबद्धा—किसी भी प्रकार के सांसारिक सुख की कामना से रहित कर्म-विनाशार्थ ली जाने वाली प्रव्रज्या (५७१) ।

५७२—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—पुरओपडिबद्धा, मग्गओपडिबद्धा, दुहओपडि-बद्धा, अप्पडिबद्धा ।

पुन: प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१. पुरत: प्रतिबद्धा—प्रव्रजित होने पर आहारादि अथवा शिष्यपरिवारादि की कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
२. मार्गत: (पृष्ठत:) प्रतिबद्धा—मेरी प्रव्रज्या से मेरे वंश, कुल और कुटुम्बादि की प्रतिष्ठा बढ़ेगी । इस कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
३. द्वयप्रतिबद्धा—पुरत: और पृष्ठत: उक्त इन दोनों प्रकार की कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या ।
४. अप्रतिबद्धा—उक्त दोनों प्रकार की कामनाओं से रहित कर्मक्षयार्थ ली जाने वाली प्रव्रज्या (५७२) ।

५७३—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ओवायपव्वज्जा, अक्खातपव्वज्जा, संगार-पव्वज्जा, विहगगइपव्वज्जा ।

पुन: प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१. अवपात प्रव्रज्या—सद्-गुरुओं की सेवा से प्राप्त होने वाली दीक्षा ।
२. आख्यात प्रव्रज्या—दूसरों के कहने से ली जाने वाली दीक्षा ।
३. संगर प्रव्रज्या—तुम दीक्षा लोगे तो मैं भी दीक्षा लूंगा, इस प्रकार परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होने से ली जाने वाली दीक्षा ।
४. विहगगति प्रव्रज्या—परिवारादि से अलग होकर और एकाकी देशान्तर में जाकर ली जाने वाली दीक्षा (५७३) ।

५७४—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, बुआवइत्ता, परिपुयावइत्ता।

पुनः प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. तोदयित्वा प्रव्रज्या—कष्ट देकर दी जाने वाली दीक्षा।
२. प्लावयित्वा प्रव्रज्या—अन्यत्र ले जाकर दी जाने वाली दीक्षा।
३. वाचयित्वा प्रव्रज्या—बातचीत करके दी जाने वाली दीक्षा।
४. परिप्लुतयित्वा प्रव्रज्या—स्निग्ध, मिष्ट भोजन कराकर या मिष्ट आहार मिलने का प्रलोभन देकर दी जाने वाली दीक्षा (५७४)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार के सम्मुख 'तुयावइत्ता' के स्थान पर 'उयावइत्ता' भी पाठ उपस्थित था, उसका संस्कृत रूप 'ओजयित्वा' होता है। तदनुसार 'शारीरिक या विद्यादि-सम्बन्धी बल दिखाकर दी जाने वाली दीक्षा' ऐसा अर्थ किया है। इसी प्रकार 'पुयावइत्ता' के संस्कृत रूप प्लावयित्वा के स्थान पर अथवा कहकर 'पूतयित्वा' संस्कृत रूप देकर यह अर्थ किया है कि जो दीक्षा किसी के ऊपर लगे दूषण को दूर कर दी जाती है, वह पूतयित्वा-प्रव्रज्या है। यह अर्थ भी संगत है और आज भी ऐसी दीक्षाएँ होती हुई देखी जाती हैं। तीसरी 'बुआवइत्ता' 'वाचयित्वा' प्रव्रज्या के स्थान पर टीकाकार के सम्मुख 'मोयावइत्ता' भी पाठ रहा है। इसका संस्कृतरूप 'मोचयित्वा' होता है, तदनुसार यह अर्थ होता है कि किसी ऋण-ग्रस्त व्यक्ति को ऋण से मुक्त कराके, या अन्य प्रकार की आपत्ति से पीड़ित व्यक्ति को उससे छुड़ाकर जो दीक्षा दी जाती है, वह 'मोचयित्वा प्रव्रज्या' कहलाती है। यह अर्थ भी संगत है। इस तीसरे प्रकार की प्रव्रज्या में टीकाकार ने गौतम स्वामी के द्वारा वार्तालाप कर प्रबोधित कृषक का उल्लेख किया है। तदनन्तर 'वचनं वा' आदि लिखकर यह भी प्रकट किया है कि दो व्यक्तियों के वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) में जो हार जायगा, उसे जीतने वाले के मत में प्रव्रजित होना पड़ेगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा से गृहीत प्रव्रज्या को 'बुआवइत्ता' वचनं वा प्रतिज्ञावचनं कारयित्वा प्रव्रज्या' कहा है।

५७५—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—णडखइया, भडखइया, सीहखइया, सियालखइया।

पुनः प्रव्रज्या चार प्रकार की गई है। जैसे—

१. नटखादिता—संवेग-वैराग्य से रहित धर्मकथा कह कर भोजनादि प्राप्त करने के लिए ली गई प्रव्रज्या।
२. भटखादिता—सुभट के समान बल-प्रदर्शन कर भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या।
३. सिंहखादिता—सिंह के समान दूसरों को भयभीत कर भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या।
४. शृगालखादिता—सियाल के समान दीन-वृत्ति से भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या (५७५)।

५७६—चउव्विहा किसी पण्णत्ता, तं जहा—वाविया, परिवाविया, णिंदिता, परिणिंदिता।

३. आचार्य और उपाध्याय का अवर्णवाद करने से।
४. चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करने से (५७०)।

प्रव्रज्या-सूत्र

५७१—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहओलोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

प्रव्रज्या (निर्ग्रन्थ दीक्षा) चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. इहलोकप्रतिबद्धा—इस लोक-सम्बन्धी सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या।
२. परलोकप्रतिबद्धा—परलोक-सम्बन्धी सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या।
३. लोकद्वयप्रतिबद्धा—दोनों लोकों में सुख-कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या।
४. अप्रतिबद्धा—किसी भी प्रकार के सांसारिक सुख की कामना से रहित कर्म-विनाशार्थ ली जाने वाली प्रव्रज्या (५७१)।

५७२—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—पुरओपडिबद्धा, मग्गओपडिबद्धा, दुहओपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

पुनः प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. पुरतः प्रतिबद्धा—प्रव्रजित होने पर आहारादि अथवा शिष्यपरिवारादि की कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या।
२. मार्गतः (पृष्ठतः) प्रतिबद्धा—मेरी प्रव्रज्या से मेरे वंश, कुल और कुटुम्बादि की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। इस कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या।
३. द्वयप्रतिबद्धा—पुरतः और पृष्ठतः उक्त इन दोनों प्रकार की कामना से ली जाने वाली प्रव्रज्या।
४. अप्रतिबद्धा—उक्त दोनों प्रकार की कामनाओं से रहित कर्मक्षयार्थ ली जाने वाली प्रव्रज्या (५७२)।

५७३—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ओवायपव्वज्जा, अक्खातपव्वज्जा, संगारपव्वज्जा, विहगगइपव्वज्जा।

पुनः प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. अवपात प्रव्रज्या—सद्-गुरुओं की सेवा से प्राप्त होने वाली दीक्षा।
२. आख्यात प्रव्रज्या—दूसरों के कहने से ली जाने वाली दीक्षा।
३. संगर प्रव्रज्या—तुम दीक्षा लोगे तो मैं भी दीक्षा लूंगा, इस प्रकार परस्पर प्रतिज्ञावद्ध होने से ली जाने वाली दीक्षा।
४. विहगगति प्रव्रज्या—परिवारादि से अलग होकर और एकाकी देशान्तर में जाकर ली जाने वाली दीक्षा (५७३)।

५७४—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—तुयावइत्ता, पुयावइत्ता, बुआवइत्ता, परिपुयावइत्ता।

पुनः प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. तोदयित्वा प्रव्रज्या—कष्ट देकर दी जाने वाली दीक्षा।
२. प्लावयित्वा प्रव्रज्या—अन्यत्र ले जाकर दी जाने वाली दीक्षा।
३. वाचयित्वा प्रव्रज्या—बातचीत करके दी जाने वाली दीक्षा।
४. परिप्लुतयित्वा प्रव्रज्या—स्निग्ध, मिष्ट भोजन कराकर या मिष्ट आहार मिलने का प्रलोभन देकर दी जाने वाली दीक्षा (५७४)।

विवेचन—संस्कृत टीकाकार के सम्मुख 'तुयावइत्ता' के स्थान पर 'उयावइत्ता' भी पाठ उपस्थित था, उसका संस्कृत रूप 'ओजयित्वा' होता है। तदनुसार 'शारीरिक या विद्यादि-सम्बन्धी बल दिखाकर दी जाने वाली दीक्षा' ऐसा अर्थ किया है। इसी प्रकार 'पुयावइत्ता' के संस्कृत रूप प्लावयित्वा के स्थान पर अथवा कहकर 'पूतयित्वा' संस्कृत रूप देकर यह अर्थ किया है कि जो दीक्षा किसी के ऊपर लगे दूषण को दूर कर दी जाती है, वह पूतयित्वा-प्रव्रज्या है। यह अर्थ भी संगत है और आज भी ऐसी दीक्षाएँ होती हुई देखी जाती हैं। तीसरी 'बुआवइत्ता' 'वाचयित्वा' प्रव्रज्या के स्थान पर टीकाकार के सम्मुख 'मोयावइत्ता' भी पाठ रहा है। इसका संस्कृतरूप 'मोचयित्वा' होता है, तदनुसार यह अर्थ होता है कि किसी ऋण-ग्रस्त व्यक्ति को ऋण से मुक्त कराके, या अन्य प्रकार की आपत्ति से पीड़ित व्यक्ति को उससे छुड़ाकर जो दीक्षा दी जाती है, वह 'मोचयित्वा प्रव्रज्या' कहलाती है। यह अर्थ भी संगत है। इस तीसरे प्रकार की प्रव्रज्या में टीकाकार ने गौतम स्वामी के द्वारा वार्तालाप कर प्रबोधित कृषक का उल्लेख किया है। तदनन्तर 'वचनं वा' आदि लिखकर यह भी प्रकट किया है कि दो व्यक्तियों के वाद-विवाद (शास्त्रार्थ) में जो हार जायगा, उसे जीतने वाले के मत में प्रव्रजित होना पड़ेगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा से गृहीत प्रव्रज्या को 'बुआवइत्ता' वचनं वा प्रतिज्ञावचनं कारयित्वा प्रव्रज्या' कहा है।

५७५—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—णडखइया, भडखइया, सीहखइया, सियालखइया।

पुनः प्रव्रज्या चार प्रकार की गई है। जैसे—

१. नटखादिता—संवेग-वैराग्य से रहित धर्मकथा कह कर भोजनादि प्राप्त करने के लिए ली गई प्रव्रज्या।
२. भटखादिता—सुभट के समान बल-प्रदर्शन कर भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या।
३. सिंहखादिता—सिंह के समान दूसरों को भयभीत कर भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या।
४. शृगालखादिता—सियाल के समान दीन-वृत्ति से भोजनादि प्राप्त कराने वाली प्रव्रज्या (५७५)।

५७६—चउव्विहा किसी पण्णत्ता, तं जहा—वाविया, परिवाविया, णिंदिता, परिणिंदिता।

एवामेव चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा— वाविता, परिवाविता, णिंदिता, परिणिंदिता।

कृषि (खेती) चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. वापिता—एक बार बोयी गई गेहूँ आदि की कृषि।
२. परिवापिता—एक बार बोने पर उगे हुए धान्य को उखाड़कर अन्य स्थान पर रोपण की जाने वाली कृषि।
३. निदाता—बोये गये धान्य के साथ उगी हुई विजातीय घास को नींद कर तैयार होने वाली कृषि।
४. परिनिदाता—बोये गये धान्यादि के साथ उगी हुई घास आदि को अनेक बार नींदने से होने वाली कृषि।

इसी प्रकार प्रव्रज्या भी चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. वापिता प्रव्रज्या—सामायिक चारित्र में आरोपित करना (छोटी दीक्षा)।
२. परिवापिता प्रव्रज्या—महाव्रतों में आरोपित करना (बड़ी दीक्षा)।
३. निदाता प्रव्रज्या—एक बार आलोचना वाली दीक्षा।
४. परिनिदाता प्रव्रज्या—बार-बार आलोचना वाली दीक्षा (५७६)।

५७७—चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—धण्णपुंजितसमाणा धण्णविरल्लितसमाणा, धण्णविक्खित्तसमाणा, धण्णसंकट्टितसमाणा।

पुनः प्रव्रज्या चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. पुंजितधान्यसमाना—साफ किये गये खलिहान में रखे धान्य-पुंज के समान निर्दोष प्रव्रज्या।
२. विसरितधान्यसमाना—साफ किये गये, किन्तु खलिहान में बिखरे हुए धान्य के समान अल्प-अतिचार वाली प्रव्रज्या।
३. विक्षिप्तधान्यसमाना—खलिहान में बैलों आदि के द्वारा कुचले गए धान्य के समान बहु-अतिचार वाली प्रव्रज्या।
४. संकर्षितधान्यसमाना—खेत से काट कर खलिहान में लाए गए धान्य-पूलों के समान बहुतर अतिचार वाली प्रव्रज्या (५७७)।

संज्ञा-सूत्र

५७८—चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा।

संज्ञाएं चार प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. आहारसंज्ञा, २. भयसंज्ञा, ३. मैथुनसंज्ञा, ४. परिग्रहसंज्ञा।

५७९—चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—ओमकोट्ठताए, छुहावेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

चार कारणों से आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है। जैसे--

१. पेट के खाली होने से, २. क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से,
३. आहार संबंधी बातें सुनने से उत्पन्न होने वाली आहार की बुद्धि से
४. आहार संबंधी उपयोग-चिन्तन से (५७८)।

५८०—चउहिं ठाणेहिं भयसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—हीणसत्तताए, भयवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

भयसंज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है। जैसे—

१. सत्त्व (शक्ति) की हीनता से, २. भयवेदनीय कर्म के उदय से,
३. भय की बात सुनने से, ४. भय का सोच-विचार करते रहने से (५८०)।

५८१—चउहिं ठाणेहिं मेहुणसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—चितमंससोणिययाए, मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

मैथुनसंज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है। जैसे—

१. शरीर में अधिक मांस, रक्त, वीर्य का संचय होने से,
२. [वेद] मोहनीय कर्म के उदय से,
३. मैथुन की बात सुनने से, ४. मैथुन में उपयोग लगाने से (५८१)।

५८२—चउहिं ठाणेहिं परिग्गहसण्णा समुप्पज्जति, तं जहा—अविमुत्तयाए, लोभवेयणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदट्ठोवओगेणं।

परिग्रहसंज्ञा चार कारणों से उत्पन्न होती है। जैसे—

१. परिग्रह का त्याग न होने से, २. [लोभ] मोहनीय कर्म के उदय से,
३. परिग्रह को देखने से उत्पन्न होने वाली तद्‌विषयक बुद्धि से,
४. परिग्रह संबंधी विचार करते रहने से (५८२)।

विवेचन—उक्त चारों सूत्रों में चारों संज्ञा की उत्पत्ति के चार-चार कारण बताये गये हैं। इनमें से क्षुधा या असाता वेदनीय कर्म का उदय आहार संज्ञा के उत्पन्न होने में अन्तरंग कारण है, भय वेदनीय कर्म का उदय भय संज्ञा के उत्पन्न होने में अन्तरंग कारण है। इसी प्रकार वेदमोहनीय कर्म का उदय मैथुन संज्ञा का और लोभमोहनीय का उदय परिग्रह संज्ञा का अन्तरंग कारण है। शेष तीन-तीन उक्त संज्ञाओं के उत्पन्न होने में बहिरंग कारण हैं। गोम्मटसार जीवकाण्ड में भी प्रत्येक संज्ञा के उत्पन्न होने में इन्हीं कारणों का निर्देश किया गया है। वहाँ उदय के स्थान पर उदीरणा का कथन है जो यहाँ भी समझा जा सकता है। तथा यहाँ चारों संज्ञाओं के उत्पन्न होने का तीसरा कारण 'मति' अर्थात् इन्द्रिय प्रत्यक्ष मतिज्ञान कहा है। गो० जीवकाण्ड में इसके स्थान पर आहार-दर्शन, अतिभीमदर्शन, प्रणीत (पौष्टिक) रस भोजन और उपकरण-दर्शन को क्रमशः चारों संज्ञाओं का कारण माना गया है (५८२)।[1]

१. गो० जीवकाण्ड गाथा १३४-१३७.

काम-सूत्र

५८३—चउव्विहा कामा पण्णत्ता, तं जहा—सिंगारा, कलुणा, बीभच्छा, रोद्दा। सिंगारा कामा देवाणं, कलुणा कामा मणुयाणं, बीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाणं, रोद्दा कामा णेरइयाणं।

काम-भोग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रृंगार काम, २. करुण काम, ३. बीभत्स काम, ४. रौद्र काम।

१. देवों का काम श्रृंगार-रस-प्रधान होता है।

२. मनुष्यों का काम करुण-रस-प्रधान होता है।

३. तिर्यग्योनिक जीवों का काम बीभत्स-रस-प्रधान होता है।

४. नारक जीवों का काम रौद्र-रस-प्रधान होता है (५८३)।

उत्ताण-गंभीर-सूत्र

५८४—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदए, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहिदए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहिदए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणहिदए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहिदए।

उदक (जल) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानोदक—कोई जल छिछला-अल्प किन्तु स्वच्छ होता है—उसका भीतरी भाग दिखाई देता है।

२. उत्तान और गम्भीरोदक—कोई जल अल्प किन्तु गम्भीर (गहरा) होता है अर्थात् मलीन होने से इसका भीतरी भाग दिखाई नहीं देता।

३. गम्भीर और उत्तानोदक—कोई जल गम्भीर (गहरा) किन्तु स्वच्छ होता है।

४. गम्भीर और गम्भीरोदक—कोई जल गम्भीर और मलिन होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) दिखता है और हृदय से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) होता है।

२. उत्तान और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से अगम्भीर दिखता है, किन्तु भीतर से गम्भीर हृदय होता है।

३. गम्भीर और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से गम्भीर दिखता है, किन्तु भीतर से अगम्भीर हृदय वाला होता है

४. गम्भीर और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी गम्भीर होता है और भीतर से भी गंभीर हृदय वाला होता है (५८४)।

५८५—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

पुनः उदक चार प्रकार के गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानावभासी—कोई जल उथला होता है और उथला जैसा ही प्रतिभासित होता है।
२. उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई जल उथला होता है किन्तु स्थान की विशेषता से गहरा प्रतिभासित होता है।
३. गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई जल गहरा होता है, किन्तु स्थान की विशेषता से उथला जैसा प्रतिभासित होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई जल गहरा होता है और गहरा ही प्रतिभासित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानावभासी—कोई पुरुष उथला (तुच्छ) होता है और उसी प्रकार के तुच्छ कार्य करने से उथला ही प्रतिभासित होता है।
२. उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष उथला होता है, किन्तु गम्भीर जैसे दिखाऊ कार्य करने से गम्भीर प्रतिभासित होता है।
३. गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है, किन्तु तुच्छ कार्य करने से उथला जैसा प्रतिभासित होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है और तुच्छता प्रदर्शित न करने से गम्भीर ही प्रतिभासित होता है (५८५)।

५८६—चत्तारि उदही पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदही, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदही, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदही, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदही।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणहियए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए।

समुद्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले भी उथला होता है और वाद में भी उथला होता है क्योंकि अढ़ाई द्वीप से बाहर के समुद्रों में ज्वार नहीं आता।
२. उत्तान और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले तो उथला होता है, किन्तु वाद में ज्वार आने पर गहरा हो जाता है।
३. गम्भीर और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले गहरा होता है, किन्तु वाद में ज्वार न रहने पर उथला हो जाता है।
४. गम्भीर और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले भी गहरा होता है और वाद में भी गहरा होता है।

काम-सूत्र

५८३—चउव्विहा कामा पण्णत्ता, तं जहा—सिंगारा, कलुणा, बीभच्छा, रोद्दा। सिंगारा कामा देवाणं, कलुणा कामा मणुयाणं, बीभच्छा कामा तिरिक्खजोणियाणं, रोद्दा कामा णेरइयाणं।

काम-भोग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रृंगार काम, २. करुण काम, ३. बीभत्स काम, ४. रौद्र काम।

१. देवों का काम श्रृंगार-रस-प्रधान होता है।
२. मनुष्यों का काम करुण-रस-प्रधान होता है।
३. तिर्यग्योनिक जीवों का काम बीभत्स-रस-प्रधान होता है।
४. नारक जीवों का काम रौद्र-रस-प्रधान होता है (५८३)।

उत्ताण-गंभीर-सूत्र

५८४—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदए, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदए।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहिदए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहिदए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणहिदए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहिदए।

उदक (जल) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानोदक—कोई जल छिछला-अल्प किन्तु स्वच्छ होता है—उसका भीतरी भाग दिखाई देता है।
२. उत्तान और गम्भीरोदक—कोई जल अल्प किन्तु गम्भीर (गहरा) होता है अर्थात् मलीन होने से इसका भीतरी भाग दिखाई नहीं देता।
३. गम्भीर और उत्तानोदक—कोई जल गम्भीर (गहरा) किन्तु स्वच्छ होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरोदक—कोई जल गम्भीर और मलिन होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) दिखता है और हृदय से भी अगम्भीर (उथला या तुच्छ) होता है।
२. उत्तान और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से अगम्भीर दिखता है, किन्तु भीतर से गम्भीर हृदय होता है।
३. गम्भीर और उत्तानहृदय—कोई पुरुष बाहर से गम्भीर दिखता है, किन्तु भीतर से अगम्भीर हृदय वाला होता है
४. गम्भीर और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष बाहर से भी गम्भीर होता है और भीतर से भी गंभीर हृदय वाला होता है (५८४)।

५८५—चत्तारि उदगा पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

पुनः उदक चार प्रकार के गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानावभासी—कोई जल उथला होता है और उथला जैसा ही प्रतिभासित होता है।
२. उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई जल उथला होता है किन्तु स्थान की विशेषता से गहरा प्रतिभासित होता है।
३. गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई जल गहरा होता है, किन्तु स्थान की विशेषता से उथला जैसा प्रतिभासित होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई जल गहरा होता है और गहरा ही प्रतिभासित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानावभासी—कोई पुरुष उथला (तुच्छ) होता है और उसी प्रकार के तुच्छ कार्य करने से उथला ही प्रतिभासित होता है।
२. उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष उथला होता है, किन्तु गम्भीर जैसे दिखाऊ कार्य करने से गम्भीर प्रतिभासित होता है।
३. गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है, किन्तु तुच्छ कार्य करने से उथला जैसा प्रतिभासित होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है और तुच्छता प्रदर्शित न करने से गम्भीर ही प्रतिभासित होता है (५८५)।

५८६—चत्तारि उदही पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोदही, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोदही, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोदही, गंभीरे णाममेगे गंभीरोदही।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणहियए, उत्ताणे णाममेगे गंभीरहियए, गंभीरे णाममेगे उत्ताणहियए, गंभीरे णाममेगे गंभीरहियए।

समुद्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले भी उथला होता है और बाद में भी उथला होता है क्योंकि अढ़ाई द्वीप से बाहर के समुद्रों में ज्वार नहीं आता।
२. उत्तान और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले तो उथला होता है, किन्तु बाद में ज्वार आने पर गहरा हो जाता है।
३. गम्भीर और उत्तानोदधि—कोई समुद्र पहले गहरा होता है, किन्तु बाद में ज्वार न रहने पर उथला हो जाता है।
४. गम्भीर और गम्भीरोदधि—कोई समुद्र पहले भी गहरा होता है और बाद में भी गहरा होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानहृदय—कोई पुरुष अनुदार या उथला होता है और उसका हृदय भी अनुदार या उथला होता है।
२. उत्तान और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष अनुदार या उथला होता है, किन्तु उसका हृदय गम्भीर या उदार होता है।
३. गम्भीर और उत्तानहृदय—कोई पुरुष गम्भीर किन्तु अनुदार या उथले हृदय वाला होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरहृदय—कोई पुरुष गम्भीर और गम्भीरहृदय वाला होता है (५८६)।

५८७—चत्तारि उदही पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—उत्ताणे णाममेगे उत्ताणोभासी, उत्ताणे णाममेगे गंभीरोभासी, गंभीरे णाममेगे उत्ताणोभासी, गंभीरे णाममेगे गंभीरोभासी।

पुनः समुद्र चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानावभासी—कोई समुद्र उथला होता है और उथला ही प्रतिभासित होता है।
२. उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई समुद्र उथला होता है, किन्तु गहरा प्रतिभासित होता है।
३. गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई समुद्र गम्भीर होता है किन्तु उथला प्रतिभासित होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई समुद्र गम्भीर होता है और गम्भीर ही प्रतिभासित होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्तान और उत्तानावभासी—कोई पुरुष उथला होता है और उथला ही प्रतिभासित होता है।
२. उत्तान और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष उथला होता है, किन्तु गम्भीर प्रतिभासित होता है।
३. गम्भीर और उत्तानावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है, किन्तु उथला प्रतिभासित होता है।
४. गम्भीर और गम्भीरावभासी—कोई पुरुष गम्भीर होता है और गम्भीर ही प्रतिभासित होता है (५८७)।

तरक-सूत्र

५८८—चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा—समुद्दं तरामीतेगे समुद्दं तरति, समुद्दं तरामीतेगे गोप्पयं तरति, गोप्पयं तरामीतेगे समुद्दं तरति, गोप्पयं तरामीतेगे गोप्पयं तरति।

तैराक (तैरने वाले पुरुष) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई तैराक समुद्र को तैरने का संकल्प करता है और समुद्र को तैर भी जाता है।
२. कोई तैराक समुद्र को तैरने का संकल्प करता है, किन्तु गोष्पद (गौ के पैर रखने से बने गड़हे जैसे अल्पजलवाले स्थान) को तैरता है।
३. कोई तैराक गोष्पद को तैरने का संकल्प करता है और समुद्र को तैर जाता है।
४. कोई तैराक गोष्पद को तैरने का संकल्प करता है और गोष्पद को ही तैरता है।

विवेचन—यद्यपि इसका दार्ष्टान्तिक-प्रतिपादक सूत्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु परम्परा के अनुसार टीकाकार ने इस प्रकार से भाव-तैराक का निरूपण किया है—

१. कोई पुरुष भव-समुद्र पार करने के लिए सर्वविरति को धारण करने का संकल्प करता है और उसे धारण करके भव-समुद्र को पार भी कर लेता है।
२. कोई पुरुष सर्वविरति को धारण करने का संकल्प करके देशविरति को ही धारण करता है।
३. कोई पुरुष देशविरति को धारण करने का संकल्प करके सर्वविरति को धारण करता है।
४. कोई पुरुष देशविरति को धारण करने का संकल्प करके देशविरति को ही धारण करता है (५८८)।

५८९—चत्तारि तरगा पण्णत्ता, तं जहा—समुद्दं तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, समुद्दं तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति, गोप्पयं तरेत्ता णाममेगे समुद्दे विसीयति, गोप्पयं तरेत्ता णाममेगे गोप्पए विसीयति।

पुनः तैराक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई तैराक समुद्र को पार करके पुनः समुद्र को पार करने में अर्थात् समुद्र तिरने के समान एक महान् कार्य करके दूसरे महान् कार्य को करने में विषाद को प्राप्त होता है।
२. कोई तैराक समुद्र को पार करके (महान् कार्य करके) गोष्पद को पार करने में (सामान्य कार्य करने में) विषाद को प्राप्त होता है।
३. कोई तैराक गोष्पद को पार करके समुद्र को पार करने में विषाद को प्राप्त होता है।
४. कोई तैराक गोष्पद को पार करके पुनः गोष्पद को पार करने में विवाद को प्राप्त होता है (५८९)।

पूर्ण-तुच्छ-सूत्र

५९०—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णे, पुण्णे णाममेगे तुच्छे, तुच्छे णाममेगे पुण्णे, तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णे, पुण्णे णाममेगे तुच्छे, तुच्छे णाममेगे पुण्णे, तुच्छे णाममेगे तुच्छे।

कुम्भ (घट) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और पूर्ण—कोई कुम्भ आकार से परिपूर्ण होता है और घी आदि द्रव्य से भी परिपूर्ण होता है।
२. पूर्ण और तुच्छ—कोई कुम्भ आकार से तो परिपूर्ण होता है, किन्तु घी आदि द्रव्य से तुच्छ (रिक्त) होता है।
३. तुच्छ और पूर्ण—कोई कुम्भ आकार से अपूर्ण किन्तु घृतादि द्रव्यों से परिपूर्ण होता है।
४. तुच्छ और तुच्छ—कोई कुम्भ घी आदि से भी तुच्छ (रिक्त) होता है और आकार से भी तुच्छ (अपूर्ण) होता है।

इस प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और पूर्ण—कोई पुरुष आकार से और जाति-कुलादि से पूर्ण होता है और ज्ञानादि गुणों से भी पूर्ण होता है।
२. पूर्ण और तुच्छ—कोई पुरुष आकार और जाति-कुलादि से पूर्ण होता है, किन्तु ज्ञानादि-गुणों से तुच्छ (रिक्त) होता है।
३. तुच्छ और पूर्ण—कोई पुरुष आकार और जाति आदि से तुच्छ होता है, किन्तु ज्ञानादि गुणों से पूर्ण होता है।
४. तुच्छ और तुच्छ—कोई पुरुष आकार और जाति आदि से भी तुच्छ होता है और ज्ञानादि गुणों से भी तुच्छ होता है। (५९०)

५९१—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी, पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी, तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी, तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णोभासी, पुण्णे णाममेगे तुच्छोभासी, तुच्छे णाममेगे पुण्णोभासी, तुच्छे णाममेगे तुच्छोभासी।

पुनः कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और पूर्णावभासी—कोई कुम्भ आकार से पूर्ण होता है और पूर्ण ही दिखता है।
२. पूर्ण और तुच्छावभासी—कोई कुम्भ आकार से पूर्ण होता है, किन्तु अपूर्ण सा दिखता है।
३. तुच्छ और पूर्णावभासी—कोई कुम्भ आकार से अपूर्ण होता है, किन्तु पूर्ण सा दिखता है।
४. तुच्छ और तुच्छावभासी—कोई कुम्भ आकार से अपूर्ण होता है और अपूर्ण ही दिखता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

२. पूर्ण और पूर्णावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से पूर्ण होता है और उसके यथोचित सदुपयोग करने से पूर्ण ही दिखता है।
२. पूर्ण और तुच्छावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से पूर्ण होता है, किन्तु उसका यथोचित सदुपयोग न करने से अपूर्ण सा दिखता है।

३. तुच्छ और पूर्णावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से अपूर्ण होता है, किन्तु प्राप्त यत्किंचित् सम्पत्ति-श्रुतादि का उपयोग करने से पूर्ण सा दिखता है।
४. तुच्छ और तुच्छावभासी—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से अपूर्ण होता है और प्राप्त का उपयोग न करने से अपूर्ण ही दिखता है। (५६१)

५६२—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे, पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे, तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे, तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णे णाममेगे पुण्णरूवे, पुण्णे णाममेगे तुच्छरूवे, तुच्छे णाममेगे पुण्णरूवे, तुच्छे णाममेगे तुच्छरूवे।

पुनः कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और पूर्णरूप—कोई कुम्भ जल आदि से पूर्ण होता है और उसका रूप (आकार) भी पूर्ण होता है।
२. पूर्ण और तुच्छरूप—कोई कुम्भ जल आदि से पूर्ण होता है, किन्तु उसका रूप पूर्ण नहीं होता है।
३. तुच्छ और पूर्णरूप—कोई कुम्भ जल आदि से अपूर्ण होता है, किन्तु उसका रूप पूर्ण होता है।
४. तुच्छ और तुच्छरूप—कोई कुम्भ जल आदि से भी अपूर्ण होता है और उसका रूप भी अपूर्ण होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और पूर्णरूप—कोई पुरुष धन-श्रुत आदि से भी पूर्ण होता है और वेषभूषादि रूप से भी पूर्ण होता है।
२. पूर्ण और तुच्छरूप—कोई पुरुष धन-श्रुत आदि से पूर्ण होता है, किन्तु वेषभूषादि रूप से अपूर्ण होता है।
३. तुच्छ और पूर्णरूप—कोई पुरुष धन-श्रुत आदि से भी अपूर्ण होता है किन्तु वेष-भूषादि रूप से पूर्ण होता है।
४. तुच्छ और तुच्छरूप—कोई पुरुष धन-श्रुतादि से भी अपूर्ण होता है और वेष-भूषादि रूप से भी अपूर्ण होता है।

५६३—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे पियट्ठे, पुण्णेवि एगे अवदले, तुच्छेवि एगे पियट्ठे, तुच्छेवि एगे अवदले।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे पियट्ठे, पुण्णेवि एगे अवदले, तुच्छेवि एगे पियट्ठे, तुच्छेवि एगे अवदले।

पुनः कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और प्रियार्थ—कोई कुम्भ जल आदि से पूर्ण होता है और सुवर्णादि-निर्मित होने के कारण प्रियार्थ (प्रीतिजनक) होता है।

२. पूर्ण और अपदल—कोई कुम्भ जल आदि से पूर्ण होने पर भी अपदल (पूर्ण पक्व न होने के कारण असार) होता है।
३. तुच्छ और प्रियार्थ—कोई कुम्भ जलादि से अपूर्ण होने पर भी प्रियार्थ होता है।
४. तुच्छ और अपदल—कोई कुम्भ जलादि से भी अपूर्ण होता है और अपदल (अपूर्ण पक्व न होने के कारण असार) होता है (५८३)।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और प्रियार्थ—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से भी पूर्ण होता है और प्रियार्थ (परोपकारी होने से प्रिय) भी होता है।
२. पूर्ण और अपदल—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से पूर्ण होता है, किन्तु अपदल (परोपकारादि न करने से असार) होता है।
३. तुच्छ और प्रियार्थ—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से अपूर्ण होने पर भी परोपकारादि करने से प्रियार्थ होता है।
४. तुच्छ और अपदल—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुत आदि से भी अपूर्ण होता है और परोपकारादि न करने से अपदल (असार) भी होता है (५९३)।

५९४—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे विस्संदति, पुण्णेवि एगे णो विस्संदति, तुच्छेवि एगे विस्संदति, तुच्छेवि एगे णो विस्संदति।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—पुण्णेवि एगे विस्संदति, (पुण्णेवि एगे णो विस्संदति, तुच्छेवि एगे विस्संदति, तुच्छेवि एगे णो विस्संदति।)

पुनः कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और विष्यन्दक—कोई कुम्भ जल से पूर्ण होता है और झरता भी है।
२. पूर्ण और अविष्यन्दक—कोई कुम्भ जल से पूर्ण होता है और झरता भी नहीं है।
३. तुच्छ, विष्यन्दक—कोई कुम्भ अपूर्ण भी होता है और झरता भी है।
४. तुच्छ और अविष्यन्दक—कोई कुम्भ अपूर्ण होता है और झरता भी नहीं है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्ण और विष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुतादि से पूर्ण होता है और उपकारादि करने से विष्यन्दक भी होता है।
२. पूर्ण और अविष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुतादि से पूर्ण होने पर भी उसका उपकारादि में उपयोग न करने से अविष्यन्दक होता है।
३. तुच्छ, विष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुतादि से अपूर्ण होने पर भी प्राप्त अर्थ को उपकारादि में लगाने से विष्यन्दक भी होता है।
४. तुच्छ, अविष्यन्दक—कोई पुरुष सम्पत्ति-श्रुतादि से अपूर्ण होता है और अविष्यन्दक भी होता है (५९४)।

चारित्र-सूत्र

५९५—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—भिण्णे, जज्जरिए, परिस्साई, अपरिस्साई।

एवामेव चउव्विहे चरित्ते पण्णत्ते, तं जहा—भिण्णे, (जज्जरिए, परिस्साई), अपरिस्साई।

कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. भिन्न (फूटा) कुम्भ, २. जर्जरित (पुराना) कुम्भ, ३. परिस्रावी (झरने वाला) कुम्भ, ४. अपरिस्रावी (नहीं झरने वाला) कुम्भ।

इसी प्रकार चारित्र भी चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. भिन्न चारित्र—मूल प्रायश्चित्त के योग्य।
२. जर्जरित चारित्र—छेद प्रायश्चित्त के योग्य।
३. परिस्रावी चारित्र—सूक्ष्म अतिचार वाला।
४. अपरिस्रावी चारित्र—निरतिचार-सर्वथा निर्दोष चारित्र (५९५)।

मधु-विष-सूत्र

५९६—चत्तारि कुंभा पण्णत्ता, तं जहा—महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—महुकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, महुकुंभे णाममेगे विसपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे महुपिहाणे, विसकुंभे णाममेगे विसपिहाणे।

संग्रहणी-गाथाएं

हिययमपावमकलुसं, जीहाऽवि य महुरभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकुंभे मधुपिहाणे॥१॥
हिययमपावमकलुसं, जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से मधुकुंभे विसपिहाणे॥२॥
जं हिययं कलुसमयं, जीहाऽवि य मधुरभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से विसकुंभे महुपिहाणे॥३॥
जं हिययं कलुसमयं, जीहाऽवि य कडुयभासिणी णिच्चं।
जम्मि पुरिसम्मि विज्जति, से विसकुंभे विसपिहाणे॥४॥

कुम्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मधु कुम्भ, मधुपिधान—कोई कुम्भ मधु से भरा होता है और उसका पिधान (ढक्कन) भी मधु का ही होता है।
२. मधु कुम्भ, विषपिधान—कोई कुम्भ मधु से भरा होता है, किन्तु उसका ढक्कन विष का होता है।
३. विष कुम्भ-मधुपिधान—कोई कुम्भ विष से भरा होता है, किन्तु उसका ढक्कन मधु का होता है।

४. विषकुम्भ-विषपिधान—कोई कुम्भ विष से भरा होता है और उसका ढक्कन भी विष का ही होता है।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मधुकुम्भ, मधुपिधान—कोई पुरुष हृदय से मधु जैसा मिष्ट होता है और उसकी जिह्वा भी मिष्टभाषिणी होती है।
२. मधुकुम्भ, विषपिधान—कोई पुरुष हृदय से तो मधु जैसा मिष्ट होता है, किन्तु उसकी जिह्वा विष जैसी कटु-भाषिणी होती है।
३. विषकुम्भ-मधु-पिधान—किसी पुरुष के हृदय में तो विष भरा होता है, किन्तु उसकी जिह्वा मिष्टभाषिणी होती है।
४. विष कुम्भ, विषपिधान—किसी पुरुष के हृदय में विष भरा होता है और उसकी जिह्वा भी विष जैसी कटु-भाषिणी होती है।

१. जिस पुरुष का हृदय पाप से रहित होता है और कलुषता से रहित होता है, तथा जिस की जिह्वा भी सदा मधुरभाषिणी होती है, वह पुरुष मधु से भरे और मधु के ढक्कन वाले कुम्भ के समान कहा गया है।
२. जिस पुरुष का हृदय पाप-रहित और कलुषता-रहित होता है, किन्तु जिस की जिह्वा सदा कटु-भाषिणी होती है, वह पुरुष मधुभृत, किन्तु विषपिधान वाले कुम्भ के समान कहा गया है।
३. जिस पुरुष का हृदय कलुषता से भरा है, किन्तु जिसकी जिह्वा सदा मधुरभाषिणी है, वह पुरुष विष-भृत और मधु-पिधान वाले कुम्भ के समान है।
४. जिस पुरुष का हृदय कलुषता से भरा है और जिसकी जिह्वा भी सदा कटुभाषिणी है, वह पुरुष विष-भृत और विष-पिधान वाले कुम्भ के समान है (५९६)।

उपसर्ग-सूत्र

५९७—चउव्विहा उवसग्गा पण्णत्ता, तं जहा—दिव्वा, माणुसा, तिरिक्खजोणिया, आयसंचेयणिज्जा।

उपसर्ग चार प्रकार का होता है। जैसे—

१. दिव्य-उपसर्ग—देव के द्वारा किया जाने वाला उपसर्ग।
२. मानुष-उपसर्ग—मनुष्यों के द्वारा किया जाने वाला उपसर्ग।
३. तिर्यग्योनिक उपसर्ग—तिर्यंच योनि के जीवों के द्वारा किया जाने वाला उपसर्ग।
४. आत्मसंचेतनीय उपसर्ग—स्वयं अपने द्वारा किया गया उपसर्ग (५९७)।

विवेचन—संयम से गिराने वाली और चित्त को चलायमान करने वाली बाधा को उपसर्ग कहते हैं। ऐसी बाधाएं देव, मनुष्य और तिर्यंचकृत तो होती ही हैं, कभी-कभी आकस्मिक भी होती हैं, उनको यहां आत्म-संचेतनीय कहा गया है। दिगम्बर ग्रन्थ मूलाचार में इसके स्थान पर 'अचेतनकृत

उपसर्ग' का उल्लेख है, जो विजली गिरने—उल्कापात, भूकम्प, भित्ति-पतन आदि जनित पीड़ाएं होती हैं, उनको अचेतनकृत उपसर्ग कहा गया है।[1]

५९८—दिव्वा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—हासा, पाओसा, वीमंसा, पुढोवेमाता।

दिव्य उपसर्ग चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. हास्य-जनित—कुतूहल-वश हँसी से किया गया उपसर्ग।
२. प्रद्वेष-जनित—पूर्व भव के वैर से किया गया उपसर्ग।
३. विमर्श-जनित—परीक्षा लेने के लिए किया गया उपसर्ग।
४. पृथग्-विमात्र—हास्य, प्रद्वेषादि अनेक मिले-जुले कारणों से किया गया उपसर्ग (५९८)।

५९९—माणुसा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—हासा, पाओसा, वीमंसा, कुसील-पडिसेवणया।

मानुष उपसर्ग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. हास्य-जनित उपसर्ग, २. प्रद्वेष-जनित उपसर्ग,
३. विमर्श-जनित उपसर्ग, ४. कुशील प्रतिसेवन के लिए किया गया उपसर्ग (५९९)।

६००—तिरिक्खजोणिया उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—भया, पदोसा, आहारहेउं अवच्चलेण-सारक्खणया।

तिर्यंचों के द्वारा किया जाने उपसर्ग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. भय-जनित उपसर्ग, २. प्रद्वेष-जनित उपसर्ग,
३. आहार के लिए किया गया उपसर्ग।
४. अपने वच्चों के एवं आवास-स्थान के संरक्षणार्थ किया गया उपसर्ग (६००)।

६०१—आयसंचेयणिज्जा उवसग्गा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—घट्टणता, पवडणता, थंभणता, लेसणता।

आत्मसंचेतनीय उपसर्ग चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. घट्टनता-जनित—आंख में रज-कण चले जाने पर उसे मलने से होने वाला कष्ट।
२. प्रपतन-जनित—मार्ग में चलते हुए असावधानी से गिर पड़ने का कष्ट।
३. स्तम्भन-जनित—हस्त-पाद आदि के शून्य हो जाने से उत्पन्न हुआ कष्ट।
४. श्लेषणता-जनित—सन्धिस्थलों के जुड़ जाने से होने वाला कष्ट (६०१)।

---

१. जे केई उवसग्गा देव-माणुस-तिरिक्खऽचेदणिया। (गा० ७, १५८ पूर्वार्ध)
टीका—ये केचनोपसर्गा देव-मनुष्य-तिर्यक्-कृता; अचेतना विद्युदश-न्यादयस्तान् सर्वान् अध्यासे।

कर्म-सूत्र

६०२—चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुभे णाममेगे सुभे, सुभे णाममेगे असुभे, असुभे णाममेगे सुभे, असुभे णाममेगे असुभे।

कर्म चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. शुभ और शुभ—कोई पुण्यकर्म शुभप्रकृति वाला होता है और शुभानुबंधी भी होता है।
२. शुभ और अशुभ—कोई पुण्यकर्म शुभप्रकृति वाला किन्तु अशुभानुबंधी होता है।
३. अशुभ और शुभ—कोई पापकर्म अशुभ प्रकृति वाला, किन्तु शुभानुबन्धी होता है।
४. अशुभ और अशुभ—कोई पापकर्म अशुभ प्रकृतिवाला और अशुभानुवन्धी होता है (६०२)।

विवेचन—कर्मों के मूल भेद आठ हैं, उनमें चार घातिकर्म तो अशुभ या पापरूप ही कहे गये हैं। शेष चार अघातिकर्मों के दो विभाग हैं। उनमें सातावेदनीय, शुभ आयु, उच्च गोत्र और पंचेन्द्रिय जाति, उत्तम संस्थान, स्थिर, सुभग, यश:कीर्त्ति आदि नाम कर्म की ६८ प्रकृतियां पुण्य रूप और शेष पापरूप कही गई हैं। प्रकृत में शुभ और पुण्य को, तथा अशुभ और पाप को एकार्थ जानना चाहिए।

सूत्र में जो चार भंग कहे गये हैं, उनका खुलासा इस प्रकार है—

१. कोई पुण्यकर्म वर्तमान में भी उत्तम फल देता है और शुभानुबन्धी होने से आगे भी सुख देने वाला होता है। जैसे भरत चक्रवर्ती आदि का पुण्यकर्म।
२. कोई पुण्यकर्म वर्तमान में तो उत्तम फल देता है, किन्तु पापानुन्बधी होने से आगे दु:ख देने वाला होता है। जैसे-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि का पुण्यकर्म।
३. कोई पापकर्म वर्तमान में तो दु:ख देता है. किन्तु आगे सुखानुवन्धी होता है। जैसे दुखित अकामनिर्जरा करनेवाले जीवों का नवीन उपार्जित पुण्य कर्म।
४. कोई पापकर्म वर्तमान में भी दु:ख देता है और पापानुबन्धी होने से आगे भी दु:ख देता है। जैसे—मछली मारने वाले धीवरादि का पापकर्म।

६०३—चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुभे णाममेगे सुभविवागे, सुभे णाममेगे असुभविवागे, असुभे णाममेगे सुभविवागे, असुभे णाममेगे असुभविवागे।

पुन: कर्म चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. शुभ और शुभविपाक—कोई कर्म शुभ होता है और उसका विपाक भी शुभ होता है।
२. शुभ और अशुभविपाक—कोई कर्म शुभ होता है, किन्तु उसका विपाक अशुभ होता है।
३. अशुभ और शुभविपाक—कोई कर्म अशुभ होता है, किन्तु उसका विपाक शुभ होता है।
४. अशुभ और अशुभविपाक—कोई कर्म अशुभ होता है और उसका विपाक भी अशुभ ही होता है (६०३)।

६०४—चउव्विहे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—पगडीकम्मे, ठितीकम्मे, अणुभावकम्मे, पदेसकम्मे।

विवेचन—उक्त चारों भंगों का खुलासा इस प्रकार है—

१. कोई जीव सातावेदनीय आदि पुण्यकर्म को बांधता है और उसका विपाक रूप शुभ फल—सुख को भोगता है।

२. कोई जीव पहले सातावेदनीय आदि शुभकर्म को बांधता है और पीछे तीव्र कषाय से प्रेरित होकर असातावेदनीय आदि अशुभकर्म का तीव्र बन्ध करता है, तो उसका पूर्व-बद्ध साता-वेदनीयादि शुभकर्म भी असातावेदनीयादि पापकर्म में संक्रान्त (परिणत) हो जाता है, अतः वह अशुभ विपाक को देता है।

३. कोई जीव पहले असातावेदनीय आदि अशुभकर्म को बांधता है, किन्तु पीछे शुभ परिणामों की प्रवलता से सातावेदनीय आदि उत्तम अनुभाग वाले कर्म को बांधता है। ऐसे जीव का पूर्व-बद्ध अशुभ कर्म भी शुभ कर्म के रूप में संक्रान्त या परिणत हो जाता है, अतएव वह शुभ विपाक को देता है।

४. कोई जीव पहले पापकर्म को बांधता है, पीछे उसके विपाक रूप अशुभफल को ही भोगता है।

उक्त चार प्रकारों में प्रथम और चतुर्थ प्रकार तो बन्धानुसारी विपाक वाले हैं। तथा द्वितीय और तृतीय प्रकार संक्रमण-जनित परिणाम वाले हैं। कर्म-सिद्धान्त के अनुसार मूल कर्म, चारों आयु कर्म, दर्शन मोह और चारित्रमोह का अन्य प्रकृति रूप संक्रमण नहीं होता। शेष सभी पुण्य-पाप रूप कर्मों का अपनी मूल प्रकृति के अन्तर्गत परस्पर में परिवर्तन रूप संक्रमण हो जाता है।

पुनः कर्म चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. प्रकृतिकर्म—ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों को रोकने का स्वभाव।
२. स्थितिकर्म—बंधे हुए कर्मों की काल-मर्यादा।
३. अनुभावकर्म—बंधे हुए कर्मों की फलदायक शक्ति।
४. प्रदेशकर्म—कर्म-परमाणुओं का संचय (६०४)।

संघ-सूत्र

६०५—चउव्विहे संघे पण्णत्ते, तं जहा—समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

संघ चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रमण संघ, २. श्रमणी संघ, ३. श्रावक संघ, ४. श्राविका संघ (६०५)।

बुद्धि-सूत्र

६०६—चउव्विहा बुद्धी पण्णत्ता, तं जहा—उप्पत्तिया, वेणइया, कम्मिया, परिणामिया।

मति चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. औत्पत्तिकी मति—पूर्व अदृष्ट, अश्रुत और अज्ञात तत्त्व को तत्काल जानने वाली प्रत्युत्पन्न मति या अतिशायिनी प्रतिभा।
२. वैनयिकी मति—गुरुजनों की विनय और सेवा शुश्रूषा से उत्पन्न बुद्धि।

३. कार्मिकी मति—कार्य करते-करते बढ़ने वाली बुद्धि—कुशलता।
४. पारिणामिकी मति—अवस्था—उम्र बढ़ने के साथ बढ़ने वाली बुद्धि (६०६)।

मति-सूत्र

६०७—चउव्विहा मई पण्णत्ता, तं जहा—उग्गहमती, ईहामती, अवायमती, धारणामती।

अहवा—चउव्विहा मती पण्णत्ता, तं जहा—अरंजरोदगसमाणा, वियरोदगसमाणा, सरोदगसमाणा, सागरोदगसमाणा।

पुन: मति चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. अवग्रहमति—वस्तु के सामान्य धर्म-स्वरूप को जानना।
२. ईहामति—अवग्रह से गृहीत वस्तु के विशेष धर्म को जानने की इच्छा करना।
३. अवायमति—उक्त वस्तु के विशेष स्वरूप का निश्चय होना।
४. धारणामति—कालान्तर में भी उस वस्तु का विस्मरण न होना।

अथवा—मति चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. अरंजरोदकसमाना—अरंजर (घट) के पानी के समान अल्प बुद्धि।
२. विदरोदकसमाना—विदर (गड्ढा, खंसी) के पानी के समान अधिक बुद्धि।
३. सर-उदकसमाना—सरोवर के पानी के समान बहुत अधिक बुद्धि।
४. सागरोदकसमाना—समुद्र के पानी के समान असीम विस्तीर्ण बुद्धि (६०७)

जीव-सूत्र

६०८—चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा।

संसारी जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. नारक २. तिर्यग्योनिक ३. मनुष्य ४. देव (६०८)

६०९—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी, अजोगी।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थिवेयगा, पुरिसवेयगा, णपुंसकवेयगा, अवेयगा।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, ओहिदंसणी, केवलदंसणी।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—संजया, असंजया, संजयासंजया, णोसंजया णोअसंजया।

सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मनोयोगी २. वचनयोगी ३. काययोगी ४. अयोगी जीव

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. स्त्रीवेदी, २. पुरुषवेदी, ३. नपुंसकवेदी, ४. अवेदीजीव।

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. चक्षुदर्शनी, २. अचक्षुदर्शनी, ३. अवधिदर्शनी, ४. केवलदर्शनी जीव।

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. संयत, २. असंयत, ३. संयतासंयत, ४. नोसंयत, नोअसंयत जीव (६०९)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में प्रतिपादित चौथे भेद का अर्थ इस प्रकार है—

१. अयोगी जीव—चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध जीव।
२. अवेदी जीव—नौवें गुणस्थान के अवेदभाग से ऊपर के सभी गुणस्थान वाले और सिद्ध जीव।
३. नोसंयत, नोअसंयत जीव—सिद्ध जीव।

मित्र-अमित्र-सूत्र

६१०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मित्ते णाममेगे मित्ते, मित्ते णाममेगे अमित्ते, अमित्ते णाममेगे मित्ते, अमित्ते णाममेगे अमित्ते।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मित्र और मित्र—कोई पुरुष व्यवहार से भी मित्र होता है और हृदय से भी मित्र होता है।
२. मित्र और अमित्र—कोई पुरुष व्यवहार से मित्र होता है, किन्तु हृदय से मित्र नहीं होता।
३. अमित्र और मित्र—कोई पुरुष व्यवहार से मित्र नहीं होता, किन्तु हृदय से मित्र होता है।
४. अमित्र और अमित्र—कोई पुरुष न व्यवहार से मित्र होता है और न हृदय से मित्र होता है।

विवेचन—इस सूत्र द्वारा प्रतिपादित चारों प्रकार के मित्रों की व्याख्या अनेक प्रकार से की जा सकती है। जैसे—

१. कोई पुरुष इस लोक का उपकारी होने से मित्र है और परलोक का भी उपकारी होने से मित्र है। जैसे—सद्गुरु आदि।
२. कोई इस लोक का उपकारी होने से मित्र है, किन्तु परलोक के साधक संयमादि का पालन न करने देने से अमित्र है। जैसे पत्नी आदि।
३. कोई प्रतिकूल व्यवहार करने से अमित्र है, किन्तु वैराग्य-उत्पादक होने से मित्र है। जैसे कलहकारिणी स्त्री आदि।
४. कोई प्रतिकूल व्यवहार करने से अमित्र है और संक्लेश पैदा करने से दुर्गति का भी कारण होता है अतः फिर भी अमित्र है।

पूर्वकाल और उत्तरकाल की अपेक्षा से भी चारों भंग घटित हो सकते हैं। जैसे—

३. कार्मिकी मति—कार्य करते-करते बढ़ने वाली बुद्धि—कुशलता।
४. पारिणामिकी मति—अवस्था—उम्र बढ़ने के साथ बढ़ने वाली बुद्धि (६०६)।

मति-सूत्र

६०७—चउव्विहा मई पण्णत्ता, तं जहा—उग्गहमती, ईहामती, अवायमती, धारणामती।

अहवा—चउव्विहा मती पण्णत्ता, तं जहा—अरंजरोदगसमाणा, वियरोदगसमाणा, सरोदगसमाणा, सागरोदगसमाणा।

पुनः मति चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. अवग्रहमति—वस्तु के सामान्य धर्म-स्वरूप को जानना।
२. ईहामति—अवग्रह से गृहीत वस्तु के विशेष धर्म को जानने की इच्छा करना।
३. अवायमति—उक्त वस्तु के विशेष स्वरूप का निश्चय होना।
४. धारणामति—कालान्तर में भी उस वस्तु का विस्मरण न होना।

अथवा—मति चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. अरंजरोदकसमाना—अरंजर (घट) के पानी के समान अल्प बुद्धि।
२. विदरोदकसमाना—विदर (गड्ढा, खंसी) के पानी के समान अधिक बुद्धि।
३. सर-उदकसमाना—सरोवर के पानी के समान बहुत अधिक बुद्धि।
४. सागरोदकसमाना—समुद्र के पानी के समान असीम विस्तीर्ण बुद्धि (६०७)

जीव-सूत्र

६०८—चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा।

संसारी जीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. नारक २. तिर्यग्योनिक ३. मनुष्य ४. देव (६०८)

६०९—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी, अजोगी।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थिवेयगा, पुरिसवेयगा, णपुंसकवेयगा, अवेयगा।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, ओहिदंसणी, केवलदंसणी।

अहवा—चउव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—संजया, असंजया, संजयासंजया, णोसंजया णोअसंजया।

सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मनोयोगी २. वचनयोगी ३. काययोगी ४. अयोगी जीव

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. स्त्रीवेदी, २. पुरुषवेदी, ३. नपुंसकवेदी, ४. अवेदीजीव।

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. चक्षुदर्शनी, २. अचक्षुदर्शनी, ३. अवधिदर्शनी, ४. केवलदर्शनी जीव।

अथवा सर्वजीव चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. संयत, २. असंयत, ३. संयतासंयत, ४. नोसंयत, नोअसंयत जीव (६०९)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में प्रतिपादित चौथे भेद का अर्थ इस प्रकार है—

१. अयोगी जीव—चौदहवें गुणस्थानवर्ती और सिद्ध जीव।
२. अवेदी जीव—नौवें गुणस्थान के अवेदभाग से ऊपर के सभी गुणस्थान वाले और सिद्ध जीव।
३. नोसंयत, नोअसंयत जीव—सिद्ध जीव।

मित्र-अमित्र-सूत्र

६१०—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मित्ते णाममेगे मित्ते, मित्ते णाममेगे अमित्ते, अमित्ते णाममेगे मित्ते, अमित्ते णाममेगे अमित्ते।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मित्र और मित्र—कोई पुरुष व्यवहार से भी मित्र होता है और हृदय से भी मित्र होता है।
२. मित्र और अमित्र—कोई पुरुष व्यवहार से मित्र होता है, किन्तु हृदय से मित्र नहीं होता।
३. अमित्र और मित्र—कोई पुरुष व्यवहार से मित्र नहीं होता, किन्तु हृदय से मित्र होता है।
४. अमित्र और अमित्र—कोई पुरुष न व्यवहार से मित्र होता है और न हृदय से मित्र होता है।

विवेचन—इस सूत्र द्वारा प्रतिपादित चारों प्रकार के मित्रों की व्याख्या अनेक प्रकार से की जा सकती है। जैसे—

१. कोई पुरुष इस लोक का उपकारी होने से मित्र है और परलोक का भी उपकारी होने से मित्र है। जैसे—सद्गुरु आदि।
२. कोई इस लोक का उपकारी होने से मित्र है, किन्तु परलोक के साधक संयमादि का पालन न करने देने से अमित्र है। जैसे पत्नी आदि।
३. कोई प्रतिकूल व्यवहार करने से अमित्र है, किन्तु वैराग्य-उत्पादक होने से मित्र है। जैसे कलहकारिणी स्त्री आदि।
४. कोई प्रतिकूल व्यवहार करने से अमित्र है और संक्लेश पैदा करने से दुर्गति का भी कारण होता है अतः फिर भी अमित्र है।

पूर्वकाल और उत्तरकाल की अपेक्षा से भी चारों भंग घटित हो सकते हैं। जैसे—

१. कोई पूर्वकाल में भी मित्र था और आगे भी मित्र रहेगा।
२. कोई पूर्वकाल में तो मित्र था, वर्तमान में भी मित्र है, किन्तु आगे अमित्र हो जायगा।
३. कोई वर्तमान में अमित्र है, किन्तु आगे मित्र हो जायगा।
४. कोई वर्तमान में भी अमित्र है और आगे भी अमित्र रहेगा (६१०)।

६११—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मित्ते णाममेगे मित्तरूवे, मित्ते णाममेगे अमित्तरूवे, अमित्ते णाममेगे मित्तरूवे, अमित्ते णाममेगे अमित्तरूवे।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मित्र और मित्ररूप—कोई पुरुष मित्र होता है और उसका व्यवहार भी मित्र के समान होता है।
२. मित्र और अमित्ररूप—कोई पुरुष मित्र होता है, किन्तु उसका व्यवहार अमित्र के समान होता है।
३, अमित्र और मित्ररूप—कोई पुरुष अमित्र होता है, किन्तु उसका व्यवहार मित्र के समान होता है।
४. अमित्र और अमित्ररूप—कोई पुरुष अमित्र होता है और उसका व्यवहार भी अमित्र के समान होता है (६११)।

मुक्त-अमुक्त-सूत्र

६१२—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मुत्ते णाममेगे मुत्ते, मुत्ते णाममेगे अमुत्ते, अमुत्ते णाममेगे मुत्ते, अमुत्ते णाममेगे अमुत्ते।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मुक्त और मुक्त—कोई साधु पुरुष परिग्रह का त्यागी होने से द्रव्य से भी मुक्त होता है और परिग्रहादि में आसक्ति का अभाव होने से भाव से भी मुक्त होता है।
२. मुक्त और अमुक्त—कोई दरिद्र पुरुष परिग्रह से रहित होने के कारण द्रव्य से मुक्त है, किन्तु उसकी लालसा बनी रहने से अमुक्त है।
३, अमुक्त और मुक्त—कोई पुरुष द्रव्य से अमुक्त होता है, किन्तु भाव से भरतचक्री के समान मुक्त होता है।
४. अमुक्त और अमुक्त—कोई पुरुष न द्रव्य से ही मुक्त होता है और न भाव से ही मुक्त होता है, जैसे—लोभी श्रीमन्त (६१२)।

६१३—चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—मुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे, मुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे, अमुत्ते णाममेगे मुत्तरूवे, अमुत्ते णाममेगे अमुत्तरूवे।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं—

१. मुक्त और मुक्त रूप—कोई पुरुष परिग्रहादि से मुक्त होता है और उसका रूप—बाह्य-स्वरूप भी मुक्तवत् होता है। जैसे—वह सुसाधु जिसकी मुखमुद्रा से वैराग्य झलकता हो।

२. मुक्त और अमुक्तरूप—कोई पुरुष परिग्रहादि से मुक्त होता है, किन्तु उसका रूप अमुक्त के समान होता है, जैसे गृहस्थ-दशा में महावीर स्वामी ।
३. अमुक्त और मुक्तरूप—कोई पुरुष परिग्रहादि से अमुक्त होकर के भी मुक्त के समान बाह्य रूपवाला होता है, जैसे धूर्त्त साधु ।
४. अमुक्त और अमुक्तरूप—कोई पुरुष अमुक्त होता है और अमुक्त के समान ही रूपवाला होता है, जैसे गृहस्थ (६१३) ।

गति-आगति-सूत्र

६१४—पंचिंदियतिरिक्खजोणिया चउगइया चउआगइया पण्णत्ता, तं जहा—पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणे णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वा उववज्जेज्जा ।

से चेव णं से पंचिंदियतिरिक्खजोणिए पंचिंदियतिरिक्खजोणियत्तं विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, जाव (तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा), देवत्ताए वा गच्छेज्जा ।

पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव (मर कर) चारों गतियों में जाने वाले और चारों गतियों से आने (जन्म लेने) वाले कहे गये हैं । जैसे—

१. पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों में उत्पन्न होता हुआ नारकियों से या तिर्यग्योनिकों से, या मनुष्यों से या देवों से आकर उत्पन्न होता है ।
२. पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनि को छोड़ता हुआ (मर कर) नारकियों में, तिर्यग्योनिकों में, मनुष्यों में या देवों में जाता (उत्पन्न होता है) (६१४) ।

६१५—मणुस्सा चउगइआ चउआगइआ (पण्णत्ता, तं जहा—मणुस्से मणुस्सेसु उववज्जमाणे णेरइएहिंतो वा, तिरिक्खजोणिएहिंतो वा, मणुस्सेहिंतो वा, देवेहिंतो वाउववज्जेज्जा ।

से चेव णं से मणुस्से मणुस्सत्तं विप्पजहमाणे णेरइयत्ताए वा, तिरिक्खजोणियत्ताए वा, मणुस्सत्ताए वा, देवत्ताए वा गच्छेज्जा) ।

मनुष्य चारों गतियों में जाने वाले और चारों गतियों में आने वाले कहे गये हैं । जैसे—

१, मनुष्य मनुष्यों में उत्पन्न होता हुआ नारकियों से, या तिर्यग्योनिको से, या मनुष्यों से, या देवों से आकर उत्पन्न होता है ।
२. मनुष्य मनुष्यपर्याय को छोड़ता हुआ नारकियों में, या तिर्यग्योनिकों में, या मनुष्यों में, या देवों में उत्पन्न होता है (६१५) ।

संयम-असंयम-सूत्र

६१६—बेइंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स चउव्विहे संजमे कज्जति, तं जहा—जिब्भामयातो सोक्खातो अववरोवित्ता भवति, जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति, फासामयातो सोक्खातो रोवेत्ता भवति, फासामएणं दुक्खेणं असंजोगित्ता भवति ।

द्वीन्द्रिय जीवों को नहीं मारने वाले पुरुष के चार प्रकार का संयम होता है, जैसे—

१. द्वीन्द्रिय जीवों के जिह्वामय सुख का घात नहीं करता, यह पहला संयम है।
२. द्वीन्द्रिय जीवों के जिह्वामय दुःख का संयोग नहीं करता, यह दूसरा संयम है।
३. द्वीन्द्रिय जीवों के स्पर्शमय सुख का घात नहीं करता, यह तीसरा संयम है।
४. द्वीन्द्रिय जीवों के स्पर्शमय दुःख का संयोग नहीं करता, यह चौथा संयम है (६१६)।

६१७—बेइंदिया णं जीवा समारभमाणस्स चउविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—जिब्भामयातो सोक्खातो ववरोवित्ता भवति, जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगित्ता भवति, फासामयातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति, (फासामएणं दुक्खेणं संजोगित्ता भवति)।

द्वीन्द्रिय जीवों का घात करने वाले पुरुष के चार प्रकार का असंयम होता है। जैसे—

१. द्वीन्द्रिय जीवों के जिह्वामय सुख का घात करता है, यह पहला असंयम है।
२. द्वीन्द्रिय जीवों के जिह्वामय दुःख का संयोग करता है, यह दूसरा असंयम है।
३. द्वीन्द्रिय जीवों के स्पर्शमय सुख का घात करता है, यह तीसरा असंयम है।
४. द्वीन्द्रिय जीवों के स्पर्शमय दुःख का संयोग करता है, यह चौथा असंयम है (६१७)।

क्रिया-सूत्र

६१८—सम्मद्दिट्ठियाणं णेरइयाणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया।

सम्यदृष्टि नारकियों में चार क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. आरम्भिकी क्रिया, २. पारिग्रहिकी क्रिया,
३. मायाप्रत्ययिकी क्रिया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया (६१८)।

६१९—सम्मद्दिट्ठियाणमसुरकुमाराणं चत्तारि किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया)।

सम्यग्दृष्टि असुरकुमारों में चार क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. आरम्भिकीक्रिया, २. पारिग्रहिकी क्रिया,
३. मायाप्रत्ययिकी क्रिया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया (६१९)।

६२०—एवं—विगलिंदियवज्जं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार विकलेन्द्रियों को छोड़कर सभी सम्यग्दृष्टिसम्पन्न दण्डकों में चार-चार क्रियाएं जाननी चाहिए। (विकलेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि होने से उनमें पांचवीं मिथ्या-दर्शनक्रिया नियम से होती है, अतः उनका वर्जन किया गया है) (६२०)।

गुण-सूत्र

६२१—चउहिं ठाणेहिं संते गुणे णासेज्जा, तं जहा—कोहेणं, पडिणिवेसेणं, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेणं।

चार कारणों से पुरुष दूसरों के विद्यमान गुणों का भी विनाश (अपलाप) करता है। जैसे—

१. क्रोध से, २. प्रतिनिवेश से—दूसरों की पूजा-प्रतिष्ठा न देख सकने से।
३. अकृतज्ञता से (कृतघ्न होने से) ४. मिथ्याभिनिवेश (दुराग्रह) से (६२१)।

६२२—चउहिं ठाणेहिं असंते गुणे दीवेज्जा, तं जहा—अब्भासवत्तियं, परच्छंदाणुवत्तियं, कज्जहेउं, कतपडिकतेति वा।

चार कारणों से पुरुष दूसरों के अविद्यमान गुणों का भी दीपन (प्रकाशन) करता है। जैसे—

१. अभ्यासवृत्ति से—गुण-ग्रहण का स्वभाव होने से।
२. परच्छन्दानुवृत्ति से—दूसरों के अभिप्राय का अनुकरण करने से।
३. कार्य हेतु से—अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए दूसरों को अनुकूल बनाने के लिए।
४. कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित करने से (६२२)।

शरीर-सूत्र

६२३—णेरइयाणं चउहिं ठाणेहिं सरीरुप्पत्ती सिया, तं जहा—कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं।

चार कारणों से नारक जीवों के शरीर की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१. क्रोध से, २. मान से, ३. माया से, ४. लोभ से (६२३)।

६२४—एवं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिकपर्यन्त सभी दण्डकों के जीवों के शरीरों की उत्पत्ति चार-चार कारणों से होती है (६२४)।

६२५—णेरइयाणं चउट्ठाणणिव्वत्तिते सरीरे पण्णत्ते, तं जहा—कोहणिव्वत्तिए, जाव (माणणिव्वत्तिए, मायाणिव्वत्तिए), लोभणिव्वत्तिए।

नारक जीवों के शरीर चार कारणों से निर्वृत्त (निष्पन्न) होते हैं। जैसे—

१. क्रोध-जनित कर्म से, २. मान-जनित कर्म से,
३. माया-जनित कर्म से, ४. लोभ-जनित कर्म से (६२५)।

६२६—एवं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों के शरीरों की निर्वृति या निष्पत्ति चार कारणों से होती है (६२६)।

विवेचन—क्रोधादि कषाय कर्म-बन्ध के कारण हैं और कर्म शरीर की उत्पत्ति का कारण है, इस प्रकार कारण के कारण में कारण का उपचार कर क्रोधादि को शरीर की उत्पत्ति का कारण कहा

गया है। पूर्व के दो सूत्रों में उत्पत्ति का अर्थ शरीर का प्रारम्भ करने से है। तथा तीसरे व चौथे सूत्र में कहे गये निर्वृत्ति पद का अभिप्राय शरीर की निष्पत्ति या पूर्णता से है।

धर्मद्वार-सूत्र

६२७—चत्तारि धम्मदारा पण्णत्ता, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।

धर्म के चार द्वार कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षान्ति (क्षमाभाव)
२. मुक्ति (निर्लोभिता)
३. आर्जव (सरलता)
४. मार्दव (मृदुता) (६२७)।

आयुर्बन्ध-सूत्र

६२८—चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयाउयत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—महारंभताए, महापरिग्गहयाए, पंचिंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं।

चार कारणों से जीव नारकायुष्क योग्य कर्म उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. महा आरम्भ से,
२. महा परिग्रह से,
३. पंचेन्द्रिय जीवों का वध करने से,
४. कुणप आहार से (मांसभक्षण करने से) (६२८)।

६२९—चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणिय [आउय ?]त्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—माइल्लताए, णियडिल्लताए, अलियवयणेणं, कूडतुलकूडमाणेणं।

चार कारणों से जीव तिर्यगायुष्क कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. मायाचार से,
२. निकृतिमत्ता से अर्थात् दूसरों को ठगने से),
३. असत्य वचन से,
४. कूटतुला—कूट-मान से(घट-बढ़ तोलने-नापने से) (६२९)।

६३०—चउहिं ठाणेहिं जीवा मणुस्साउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—पगतिभद्दताए, पगतिविणीययाए, साणुक्कोसयाए, अमच्छरिताए।

चार कारणों से जीव मनुष्यायष्क कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. प्रकृति-भद्रता से, २. प्रकृति-विनीतता से, ३. सानुक्रोशता से (दयालुता और सहृदयता से) ४. अमत्सरित्व से (मत्सर-भाव न रखने से) (६३०)।

६३१—चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए।

चार कारणों से जीव देवायुष्क कर्म का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. सरागसंयम से,
२. संयमासंयम से,
३. बाल तप करने से,
४. अकामनिर्जरा से (६३१)।

विवेचन—हिंसादि पांचों पापों के सर्वथा त्याग करने को संयम कहते हैं। उसके दो भेद हैं—सरागसंयम और वीतरागसंयम। जहाँ तक सूक्ष्म राग भी रहता है—ऐसे दशवें गुणस्थान तक का संयम सरागसंयम कहलाता है और उसके उपरिम गुण-स्थानों का संयम वीतरागसंयम कहा जाता है। यत: वीतरागसंयम से देवायुष्क कर्म का भी बन्ध या उपार्जन नहीं होता है, अत: यहाँ पर सरागसंयम को देवायु के बन्ध का कारण कहा गया है। यद्यपि सरागसंयम छठे गुणस्थान से लेकर दशवें गुणस्थान तक होता है, किन्तु सातवें गुण स्थान से ऊपर के संयमी देवायु का बन्ध नहीं करते हैं, क्योंकि वहाँ आयु का बन्ध ही नहीं होता। अत: छठे-सातवें गुणस्थान का सरागसंयम ही देवायु के बन्ध का कारण होता है।

श्रावक के अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप एकदेशसंयम को संयमासंयम कहते हैं। यह पंचम गुणस्थान में होता है। त्रसजीवों की हिंसा के त्याग की अपेक्षा पंचम गुणस्थानवर्ती के संयम हैं और स्थावरजीवों की हिंसा का त्याग न होने से असंयम है, अत: उसके आंशिक या एक-देशसंयम को संयमासंयम कहा जाता है।

मिथ्यात्वी जीवों के तप को बालतप कहते हैं। पराधीन होने से भूख-प्यास के कष्ट सहन करना, पर-वश ब्रह्मचर्य पालना, इच्छा के विना कर्म-निर्जरा के कारणभूत कार्यों को करना अकाम-निर्जरा कहलाती है। इन चार कारणों में से आदि के दो कारण अर्थात् सराग-संयम और संयमासंयम वैमानिक-देवायु के कारण हैं और अन्तिम दो कारण भवनत्रिक—(भवनपति, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क) देवों में उत्पत्ति के कारण जानना चाहिए।

यहाँ इतना और विशेष ज्ञातव्य है कि यदि जीव के आयुर्बन्ध के त्रिभाग का अवसर है, तो उक्त कार्यों को करने से उस-उस आयुष्क-कर्म का बन्ध होगा। यदि त्रिभाग का अवसर नहीं है तो उक्त कार्यों के द्वारा उस-उस गति नामकर्म का बन्ध होगा।

वाद्य-नृत्यादि-सूत्र

६३२—चउव्विहे वज्जे पण्णत्ते, तं जहा—तते, वितते, घणे, झुसिरे।

वाद्य (बाजे) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. तत (वीणा आदि)
२. वितत (ढोल आदि)
३. घन (कांस्य ताल आदि)
४. शुषिर (बांसुरी आदि) (६३२)।

६३३—चउव्विहे णट्टे पण्णत्ते, तं जहा—अंचिए, रिभिए, आरभडे, भसोले।

नाटय (नृत्य) चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अंचित नाटय—ठहर-ठहर कर या रुक-रुक कर नाचना।
२. रिभित नाटय—संगीत के साथ नाचना।
३. आरभट नाटय—संकेतों से भावाभिव्यक्ति करते हुए नाचना।
४. भषोल नाटय—झुक कर या लेट कर नाचना (६३३)।

६३४—चउव्विहे गेए पण्णत्ते, तं जहा—उक्खित्तए, पत्तए, मंदए, रोविंदए, ।

गेय (गायन) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उत्क्षिप्तक गेय—नाचते हुए गायन करना।
२. पत्रक गेय—पद्य-छन्दों का गायन करना, उत्तम स्वर से छन्द बोलना।
३. मन्द्रक गेय—मन्द-मन्द स्वर से गायन करना।
४. रोविन्दक गेय—शनैः शनैः स्वर को तेज करते हुए गायन करना (६३४)।

६३५—चउव्विहे मल्ले पण्णत्ते, तं जहा—गंथिमे, वेढिमे, पूरिमे, संघातिमे।

माल्य (माला) चार प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. ग्रन्थिममाल्य—सूत के धागे से गूंथ कर बनाई जाने वाली माला।
२. वेष्टिममाल्य—चारों ओर फूलों को लपेट कर बनाई गई माला।
३. पूरिममाल्य—फूल भर कर बनाई जाने वाली माला।
४. संघातिममाल्य—एक फूल की नाल आदि से दूसरे फूल आदि को जोड़कर बनाई गई माला (६३५)।

६३६—चउव्विहे अलंकारे पण्णत्ते, तं जहा—केसालंकारे, वत्थालंकारे, मल्लालंकारे, आभरणालंकारे।

अलंकार चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. केशालंकार—शिर के बालों को सजाना।
२. वस्त्रालंकार—सुन्दर वस्त्रों को धारण करना।
३. माल्यालंकार—मालाओं को धारण करना।
४. आभरणालंकार—सुवर्ण-रत्नादि के आभूषणों को धारण करना (६३६)।

६३७—चउव्विहे अभिणए पण्णत्ते, तं जहा—दिट्ठंतिए, पाडिसुते, सामण्णओविणिवाइयं, लोगमज्झावसिते।

अभिनय (नाटक) चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. दार्ष्टान्तिक—किसी घटना-विशेष का अभिनय करना।
२. प्रातिश्रुत—रामायण, महाभारत आदि का अभिनय करना।
३. सामान्यतोविनिपातिक—राजा-मन्त्री आदि का अभिनय करना।
४. लोकमध्यावसित—मानवजीवन की विभिन्न अवस्थाओं का अभिनय करना (६३७)।

विमान-सूत्र

६३८—सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा चउवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में विमान चार वर्ण वाले कहे गये हैं। जैसे—

१. नीलवर्ण वाले,
२. लोहित (रक्त) वर्ण वाले,
३. हारिद्र (पीत) वर्ण वाले,
४. शुक्ल (श्वेत) वर्ण वाले (६३८)।

देव-सूत्र

६३९—महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं चत्तारि रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में देवों के भवधारणीय (जन्म से मृत्यु तक रहने वाला मूल) शरीर उत्कृष्ट ऊंचाई से चार रत्नि-प्रमाण (चार हाथ के) कहे गये हैं (६३९)।

गर्भ-सूत्र

६४०—चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, तं जहा—उस्सा, महिया, सीता, उसिणा।

उदक के चार गर्भ (जल वर्षा के कारण) कहे गये हैं। जैसे—

१. अवश्याय (ओस)
२. मिहिका (कुहरा, धूंवर)
३. अतिशीतलता
४. अतिउष्णता (६४०)।

६४१—चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, तं जहा—हेमगा, अब्भसंथडा, सीतोसिणा, पंचरूविया।

संग्रहणी-गाथा

माहे उ हेमगा गब्भा, फग्गुणे अब्भसंथडा।
सीतोसिणा उ चित्ते, वइसाहे पंचरूविया॥१॥

पुनः उदक के चार गर्भ कहे गये हैं। जैसे—

१. हिमपात,
२. मेघों से आकाश का आच्छादित होना,
३. अति शीतोष्णता,
४. पंचरूपिता (वायु, बादल, गरज, बिजली और जल इन पांच का मिलना) (६४१)।

१. माघ मास में हिमपात से उदक-गर्भ रहता है। फाल्गुन मास में आकाश के बादलों से आच्छादित रहने से उदक-गर्भ रहता है। चैत्र मास में अतिशीत और अतिउष्णता से उदक-गर्भ रहता है। वैशाख मास में पंचरूपिता से उदक-गर्भ रहता है।

६४२—चत्तारि मणुस्सीगब्भा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थित्ताए, पुरिसत्ताए, णपुंसगत्ताते, बिबत्ताए।

संग्रहणी-गाथाएं

अप्पं सुक्कं बहुं ओयं, इत्थी तत्थ पजायति।
अप्पं ओयं बहुं सुक्कं, पुरिसो तत्थ जायति॥१॥
दोण्हंपि रत्तसुक्काणं, तुल्लभावे णपुंसओ।
इत्थी-ओय-समायोगे, बिंबं तत्थ पजायति॥२॥

मनुष्यनी स्त्री के गर्भ चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. स्त्री के रूप में, २. पुरुष के रूप में,
३. नपुंसक के रूप में, ४. विम्व रूप से (६४२)।

१. जब गर्भ-काल में शुक्र (वीर्य) अल्प और ओज (रज) अधिक होता है, तब उस गर्भ से स्त्री उत्पन्न होती है। यदि ओज अल्प और शुक्र अधिक होता है, तो उस गर्भ से पुरुष उत्पन्न होता है।

२. जब रक्त (रज) और शुक्र इन दोनों की समान मात्रा होती है, तब नपुंसक उत्पन्न होता है। वायु विकार के कारण स्त्री के ओज (रक्त) के समायोग से (जम जाने से) विम्ब उत्पन्न होता है।

विवेचन—पुरुष-संयोग के विना स्त्री का रज वायु-विकार से पिण्ड रूप में गर्भ-स्थित होकर बढ़ने लगता है, वह गर्भ के समान बढ़ने से बिम्ब या प्रतिविम्बरूप गर्भ कहा जाता है। पर उससे सन्तान का जन्म नहीं होता। किन्तु एक गोल-पिण्ड निकल कर फूट जाता है।

पूर्ववस्तु-सूत्र

६४३—उप्पायपुव्वस्स णं चत्तारि चलवत्थू पण्णत्ता।

उत्पाद पूर्व (चतुर्दश पूर्वगत श्रुतके प्रथम भेद के) चूलावस्तु नामक चार अधिकार कहे गये है, अर्थात् उसमें चार चूलाएं थीं (६४३)।

काव्य-सूत्र

६४४—चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते, तं जहा—गज्जे, पज्जे, कत्थे, गेए।

काव्य चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गद्य-काव्य, २. पद्य-काव्य, ३. कथ्य-काव्य, ४. गेय-काव्य (६४४)।

विवेचन—छन्द-रहित रचना-विशेष को गद्यकाव्य कहते हैं। छन्द वाली रचना को पद्यकाव्य कहते हैं। कथा रूप से कही जाने वाली रचना को कथ्यकाव्य कहते हैं। गाने के योग्य रचना को गेय-काव्य कहते हैं।

समुद्घात-सूत्र

६४५—णेरइयाणं चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाते, कसायसमुग्घाते, मारणंतियसमुग्घाते, वेउव्वियसमुग्घाते।

नारक जीवों के चार समुद्घात कहे गये हैं। जैसे—

१. वेदना-समुद्घात, २. कषाय-समुद्घात,
३. मारणान्तिक-समुद्घात, ४. वैक्रिय-समुद्घात (६४५)।

६४६—एवं—वाउक्काइयाणवि ।

इसी प्रकार वायुकायिक जीवों के भी चार समुद्घात होते हैं ।

विवेचन—मूल शरीर को नहीं छोड़ते हुए किसी कारण-विशेष से जीव के कुछ प्रदेशों के बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं[1] । समुद्घात के सात भेद आगे सातवें स्थान के सूत्र १३८ में कहे गये हैं । उनमें से नारक और वायुकायिक जीवों के केवल चार ही समुद्घात होते हैं । उनका अर्थ इस प्रकार है—

१. वेदना की तीव्रता से जीव के कुछ प्रदेशों का बाहर निकलना वेदनासमुद्घात है ।
२. कषाय की तीव्रता से जीव के कुछ प्रदेशों का बाहर निकलना कषायसमुद्घात है ।
३. मारणान्तिक दशा में मरण के अन्तर्मुहूर्त पूर्व जीव के कुछ प्रदेश निकल कर जहां उत्पन्न होना है, वहां तक फैलते चले जाते हैं और उस स्थान का स्पर्श कर वापिस शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं । इसे मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं । इसके कुछ क्षण के बाद जीव का मरण होता है ।
४. वैक्रिय समुद्घात—शरीर के छोटे-बड़े आकारादि के बनाने को वैक्रिय समुद्घात कहते हैं ।

नारक जीवों के समान वायुकायिक जीवों के भी निमित्तविशेष से शरीर छोटे-बड़े रूप में संकुचित-विस्तृत होते रहते हैं अतः उनके वैक्रिय समुद्घात कहा गया है (६४६) ।

चतुर्दशपूर्वि-सूत्र

६४७—अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स चत्तारि सया चोद्दसपुव्वीणमजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खरसण्णिवाईणं जिणो [जिणाणं ?] इव अवितथं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्विसंपया हुत्था ।

अरहन्त अरिष्टनेमि के चतुर्दश-पूर्व-वेत्ता मुनियों की संख्या चार सौ थी । वे जिन नहीं होते हुए भी जिन के समान सर्वाक्षरसन्निपाती (सभी अक्षरों के संयोग से बने संयुक्त पदों के और उनसे निर्मित बीजाक्षरों के ज्ञाता) थे, तथा जिन के समान ही अवितथ—(यथार्थ-) भाषी थे । यह अरिष्ट-नेमि के चौदह पूर्वियों की उत्कृष्ट सम्पदा थी (६४७) ।

वादि-सूत्र

६४८—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं उक्कोसिता वादिसंपया हुत्था ।

श्रमण भगवान् महावीर के वादी मुनियों की संख्या चार सौ थी । वे देव-परिषद्, मनुज-परिषद् और असुर-परिषद् में अपराजित थे । अर्थात् उन्हें कोई भी देव, मनुष्य या असुर जीत नहीं सकता था । यह उनके वादी-शिष्यों की उत्कृष्ट सम्पदा थी (६४८) ।

कल्प-सूत्र

६४९—हेट्ठिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे, ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे ।

---

१. मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घाद णामं तु ॥ ६६७ ॥ गो० जीवकाण्ड ।

अधस्तन (नीचे के) चार कल्प अर्धचन्द्र आकार से स्थित हैं। जैसे—

१. सौधर्मकल्प, २. ईशानकल्प, ३. सनत्कुमारकल्प, ४. माहेन्द्रकल्प।

६५०—मज्झिल्ला चत्तारि कप्पा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—बंभलोगे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे।

मध्यवर्ती चार कल्प परिपूर्ण चन्द्र के आकार से स्थित कहे गये हैं। जैसे—

१. ब्रह्मलोककल्प, २. लान्तककल्प, ३. महाशुक्रकल्प, ४. सहस्रारकल्प (६५०)।

६५१—उवरिल्ला चत्तारि कप्पा अद्धचंदसंठाणसंठिया पण्णत्ता, तं जहा—आणते, पाणते, आरणे, अच्चुते।

उपरिम चार कल्प अर्ध चन्द्र के आकार से स्थित कहे गये हैं। जैसे—

१. आनतकल्प, २. प्राणतकल्प, ३. आरणकल्प, ४. अच्युतकल्प (६५१)।

समुद्र-सूत्र

६५२—चत्तारि समुद्दा पत्तेयरसा पण्णत्ता, तं जहा—लवणोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घतोदे।

चार समुद्र प्रत्येक रस (भिन्न-भिन्न रस) वाले कहे गये हैं। जैसे—

१. लवणोदक—लवण-रस के समान खारे पानी वाला।
२. वरुणोदक—मदिरा-रस के समान पानी वाला।
३. क्षीरोदक—दुग्ध-रस के समान पानी वाला।
४. घृतोदक—घृत-रस के समान पानी वाला (६५२)।

कषाय-सूत्र

६५३—चत्तारि आवत्ता पण्णत्ता, तं जहा—खरावत्ते, उण्णतावत्ते, गूढावत्ते, आमिसावत्ते।

एवामेव चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—खरावत्तसमाणे कोहे, उण्णतावत्तसमाणे माणे, गूढावत्तसमाणा माया, आमिसावत्तसमाणे लोभे।

१. खरावत्तसमाणं कोहं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।
२. (उण्णतावत्तसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।
३. गूढावत्तसमाणं मायं अणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति)।
४. आमिसावत्तसमाणं लोभमणुपविट्ठे जीवे कालं करेति, णेरइएसु उववज्जति।

चार आवर्त (गोलाकार घुमाव) कहे गये हैं। जैसे—

१. खरावर्त—अतिवेगवाली जल-तरंगों के मध्य होने वाली गोलाकार भंवर।
२. उन्नतावर्त—पर्वत-शिखर पर चढ़ने का घुमावदार मार्ग, या वायु का गोलाकार ववंडर।
३. गूढावर्त—गेंद के समान सर्व ओर से गोलाकार आवर्त।
४. आमिषावर्त—मांस के लिए गिद्ध आदि पक्षियों का चक्कर वाला परिभ्रमण (६५३)।

इसी प्रकार कषाय भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. खरावर्त-समान—क्रोध कषाय
२. उन्नतावर्त-समान—मान कषाय।
३. गूढावर्त-समान—माया कषाय
४. आमिषावर्त-समान—लोभ कषाय।

खरावर्त-समान क्रोध में वर्तमान जीव काल करता है तो नारकों में उत्पन्न होता है। उन्नतावर्त-समान मान में वर्तमान जीव काल करता है तो नारकों में उत्पन्न होता है। गूढावर्त-समान माया में वर्तमान जीव काल करता है तो नारकों में उत्पन्न होता है। आमिषावर्त-समान लोभ में वर्तमान जीव काल करता है तो नारकों में उत्पन्न होता है।

नक्षत्र-सूत्र

६५४—अणुराहाणक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते।

अनुराधा नक्षत्र चार तारे वाला कहा गया है (६५४)।

६५५—पुव्वासाढा (णक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते)।

पूर्वाषाढा नक्षत्र चार तारे वाला कहा गया है (६५५)।

६५६—एवं चेव उत्तरासाढा (णक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते)।

इसी प्रकार उत्तराषाढा नक्षत्र चार तारे वाला कहा गया है (६५६)।

पापकर्म-सूत्र

६५७—जीवा णं चउट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा—णेरइयणिव्वत्तिते, तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते, मणुस्सणिव्वत्तिते, देवणिव्वत्तिते।

जीवों ने चार कारणों से निर्वर्त्तित (उपार्जित) कर्म-पुद्‌गलों को पाप कर्म रूप से भूतकाल में संचित किया है, वर्तमानकाल में संचित कर रहे हैं और भविष्यकाल में संचित करेंगे। जैसे—

१. नैरयिक निर्वर्तित कर्मपुद्‌गल,
२. तिर्यग्योनिक निर्वर्तित कर्मपुद्‌गल,
३. मनुष्य निर्वर्तित कर्मपुद्‌गल,
४. देवनिर्वर्तित कर्मपुद्‌गल (६५७)।

६५८—एवं—उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा।

एवं—चिण-उवचिण-बंध-उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

इसी प्रकार जीवों ने चतुःस्थान निर्वर्तित कर्म पुद्‌गलों का उपचय, बंध, उदीरण, वेदन और निर्जरण भूतकाल में किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्यकाल में करेंगे (६५८)।

पुद्‌गल-सूत्र

६५९—चउपदेसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

चार प्रदेश वाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त हैं (६५९)।

६६०—चउपदेसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

आकाश के चार प्रदेशों में अवगाहना वाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (६६०)।

६६१—चउसमयट्ठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

चार समय की स्थिति वाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (६६१)।

६६२—चउगुणकालगा पोग्गला अणंता जाव चउगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता ।

चार काले गुण वाले पुद्‌गल अनन्त कहे गये हैं (६६२)।

इसी प्रकार सभी वर्ण, सभी गन्ध, सभी रस और सभी स्पर्शों के चार-चार गुण वाले पुद्‌गल अनन्त अनन्त कहे गये हैं।

॥ चतुर्थ उद्देश का चतुर्थ स्थान समाप्त ॥

पंचम स्थान

सार : संक्षेप

इस स्थान में पांच की संख्या से सम्बन्धित विषय संकलित किये गये है। जिनमें सैद्धान्तिक, तात्त्विक, दार्शनिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक, ज्योतिष्क, और योग आदि अनेक विषयों का वर्णन है। जैसे—

१. सद्धान्तिक प्रकरण में—इन्द्रियों के विषय, शरीरों का वर्णन, तीर्थभेद, आर्जवस्थान, देवों की स्थिति, क्रियाओं का वर्णन, कर्म-रज का आदान-वमन, तृण-वनस्पति, अस्ति-काय शरीरवगाहनादि अनेक सैद्धान्तिक विषयों का वर्णन है।

२. चारित्र-सम्बन्धी चर्चा में पांच अणुव्रत-महाव्रत, पांच प्रतिमा, पांच अतिशेष ज्ञान-दर्शन, गोचरी के भेद, वर्षावास, राजान्तःपुर-प्रवेश, निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी का एकत्र-वास, पांच प्रकार की परिज्ञाएं, भक्त-पान-दत्ति, पांच प्रकार के निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-अवलम्बनादि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन है।

३. तात्त्विक चर्चा में कर्मनिर्जरा के कारण, आस्रव-संवर के द्वार, पांच प्रकार के दण्ड, संवर-असंवर, संयम-असंयम, ज्ञान, सूत्र, बन्ध आदि पदों के द्वारा अनेक विषयों का तात्त्विक वर्णन है।

प्रायश्चित्त चर्चा में—विसंभोग, पाराञ्चित, अव्युद्-ग्रहस्थान, अनुद्-घात्य, व्यवहार, उपघात-विशोधि, आचार-प्रकल्प, आरोपणा, प्रत्याख्यान और प्रतिक्रमण आदि पदों के द्वारा प्रायश्चित्त का वर्णन किया गया है।

भौगोलिक चर्चा में—महानदी, वक्षस्कार-पर्वत, महाद्रह, जम्बूद्वीपादि अढ़ाईद्वीप, महानरक, महाविमान आदि का वर्णन किया गया है।

ऐतिहासिक चर्चा में—राजचिह्न, पंचकल्याणक, ऋद्धिमान् पुरुष, कुमारावस्था में प्रव्रजित तीर्थंकर, आदि का वर्णन किया गया है।

ज्योतिष से संबद्ध चर्चा में ज्योतिष्क देवों के भेद, पांच प्रकार के संवत्सर, पांच तारा वाले नक्षत्र, एवं एक-एक ही नक्षत्र में पांच-पांच कल्याणकों आदि का वर्णन किया गया है।

योग-साधना के वर्णन में बताया गया है कि अपने मन वचनकाययोग को स्थिर नहीं रखने वाला पुरुष प्राप्त होते हुए अवधिज्ञान आदि से वंचित रह जाता है और योग-साधना में स्थिर रहने वाला पुरुष किस प्रकार से अतिशय-सम्पन्न ज्ञान-दर्शनादि को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त गेहूँ, चने आदि धान्यों की कब तक उत्पादनशक्ति रहती है, स्त्री-पुरुषों की प्रवीचारणा कितने प्रकार की होती है, देवों की सेना और उसके सेनापतियों के नाम, गर्भ-धारण के प्रकार, गर्भ के अयोग्य स्त्रियों का निरूपण, सुप्त-जागृत संयमी-असंयमी का अन्तर और सुलभ-दुर्लभ वोधि का विवेचन किया गया है।

दार्शनिक चर्चा में पांच प्रकार से हेतु और पांच प्रकार के अहेतुओं का अपूर्व वर्णन किया गया है।



पंचम स्थान

प्रथम उद्देश

महाव्रत-अणुव्रत-सूत्र

१—पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा—सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं जाव (सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओं वेरमणं), सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

महाव्रत पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. सर्व प्रकार के प्राणातिपात (जीव-घात) से विरमण।
२. सर्व प्रकार के मृषावाद (असत्य-भाषण) से विरमण।
३. सर्व प्रकार के अदत्तादान (चोरी) से विरमण।
४. सर्व प्रकार के मैथुन (कुशील-सेवन) से विरमण।
५. सर्व प्रकार के परिग्रह से विरमण (१)।

२—पंचाणुव्वया पण्णत्ता, तं जहा—थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सदारसंतोसे, इच्छापरिमाणे।

अणुव्रत पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. स्थूल प्राणातिपात (त्रस जीव-घात) से विरमण।
२. स्थूल मृषावाद (धर्म-घातक, लोक विरुद्ध असत्य भाषण) से विरमण।
३. स्थूल अदत्तादान (राज-दण्ड, लोक-दण्ड देने वाली चोरी) से विरमण।
४. स्वदारसन्तोष (पर-स्त्री सेवन से विरमण)।
५. इच्छापरिमाण (इच्छा—परिग्रह का परिमाण करना) (२)।

इन्द्रिय-विषय-सूत्र

३—पंच वण्णा पण्णत्ता, तं जहा—किण्हा, णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।

वर्ण पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. कृष्ण वर्ण, २. नील वर्ण, ३. लोहित (लाल) वर्ण, ४. हारिद्र (पीला) वर्ण, ५. शुक्ल वर्ण (३)।

४—पंच रसा पण्णत्ता, तं जहा—तित्ता (कडुया, कसाया, अंबिला), मधुरा।

रस पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. तिक्त रस, २, कटु रस, ३. कषाय रस, ४. आम्ल रस, ५. मधुर रस (४)।

५—पंच कामगुणा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा।

कामगुण पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. शब्द, २. रूप, ३. गन्ध, ४, रस, ५. स्पर्श (५)।

६—पंचहिं ठाणेहिं जीवा सज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं।

पांच स्थानों में जीव आसक्त होते हैं। जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (६)।

७—एवं रज्जंति मुच्छंति गिज्झंति अज्झोववज्जंति। (पंचहिं ठाणेहिं जीवा रज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, जाव (रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं), फासेहिं। ८—पंचहिं ठाणेहिं जीवा मुच्छंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं। ९—पंचहिं ठाणेहिं जीवा गिज्झंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं। १०—पंचहिं ठाणेहिं जीवा अज्झोववज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं।

पांच स्थानों में जीव अनुरक्त होते हैं। जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (७)।

पांच स्थानों में जीव मूर्च्छित होते हैं। जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (८)।

पांच स्थानों में जीव गृद्ध होते हैं। जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (९)।

पांच स्थानों में जीव अध्युपपन्न (अत्यासक्त) होते हैं। जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (१०)।

११—पंचहिं ठाणेहिं जीवा विणिघायमावज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, जाव (रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं), फासेहिं।

पांच स्थानों से जीव विनिघात (विनाश) को प्राप्त होते हैं। जैसे—

१. शब्दों से, २. रूपों से, ३. गन्धों से, ४. रसों से, ५. स्पर्शों से, अर्थात् २. लोलुपता के कारण जीव विघात को प्राप्त होते हैं (११)।

१२—पंच ठाणा अपरिण्णाता जीवाणं अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेस्साए मियत्ताए भवंति, तं जहा—सद्दा जाव (रूवा, गंधा, रसा), फासा।

अपरिज्ञात (अज्ञात और अप्रत्याख्यात) पांच स्थान जीवों के अहित के लिए, अशुभ के लिए, अक्षमता (असामर्थ्य) के लिए, अनिःश्रेयस् (अकल्याण) के लिए और अननुगामिता (अमोक्ष वास) के लिए होते हैं। जैसे—

प्रथम उद्देश

महाव्रत-अणुव्रत-सूत्र

१—पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा—सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं जाव (सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओं अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओं वेरमणं), सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

महाव्रत पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. सर्व प्रकार के प्राणातिपात (जीव-घात) से विरमण।
२. सर्व प्रकार के मृषावाद (असत्य-भाषण) से विरमण।
३. सर्व प्रकार के अदत्तादान (चोरी) से विरमण।
४. सर्व प्रकार के मैथुन (कुशील-सेवन) से विरमण।
५. सर्व प्रकार के परिग्रह से विरमण (१)।

२—पंचाणुव्वया पण्णत्ता, तं जहा—थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सदारसंतोसे, इच्छापरिमाणे।

अणुव्रत पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. स्थूल प्राणातिपात (त्रस जीव-घात) से विरमण।
२. स्थूल मृषावाद (धर्म-घातक, लोक विरुद्ध असत्य भाषण) से विरमण।
३. स्थूल अदत्तादान (राज-दण्ड, लोक-दण्ड देने वाली चोरी) से विरमण।
४. स्वदारसन्तोष (पर-स्त्री सेवन से विरमण)।
५. इच्छापरिमाण (इच्छा—परिग्रह का परिमाण करना) (२)।

इन्द्रिय-विषय-सूत्र

३—पंच वण्णा पण्णत्ता, तं जहा—किण्हा, णीला, लोहिता, हालिद्दा, सुक्किल्ला।

वर्ण पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. कृष्ण वर्ण, २. नील वर्ण, ३. लोहित (लाल) वर्ण, ४. हारिद्र (पीला) वर्ण, ५. शुक्ल वर्ण (३)।

४—पंच रसा पण्णत्ता, तं जहा—तित्ता (कडुया, कसाया, अंबिला), मधुरा।

रस पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. तिक्त रस, २, कटु रस, ३. कषाय रस, ४. आम्ल रस, ५. मधुर रस (४)।

५—पंच कामगुणा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा ।

कामगुण पांच कहे गये हैं । जैसे—

१. शब्द, २. रूप, ३. गन्ध, ४, रस, ५. स्पर्श (५) ।

६—पंचहिं ठाणेहिं जीवा सज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं ।

पांच स्थानों में जीव आसक्त होते हैं । जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (६) ।

७—एवं रज्जंति मुच्छंति गिज्झंति अज्झोववज्जंति । (पंचहिं ठाणेहिं जीवा रज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, जाव (रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं), फासेहिं । ८—पंचहिं ठाणेहिं जीवा मुच्छंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं । ९—पंचहिं ठाणेहिं जीवा गिज्झंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं । १०—पंचहिं ठाणेहिं जीवा अज्झोववज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, रूवेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं ।

पांच स्थानों में जीव अनुरक्त होते हैं । जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (७) ।

पांच स्थानों में जीव मूर्च्छित होते हैं । जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (८) ।

पांच स्थानों में जीव गृद्ध होते हैं । जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (९) ।

पांच स्थानों में जीव अध्युपपन्न (अत्यासक्त) होते हैं । जैसे—

१. शब्दों में, २. रूपों में, ३. गन्धों में, ४. रसों में, ५. स्पर्शों में (१०) ।

११—पंचहिं ठाणेहिं जीवा विणिघायमावज्जंति, तं जहा—सद्देहिं, जाव (रूवेहिं, गंधेहिं रसेहिं), फासेहिं ।

पांच स्थानों से जीव विनिघात (विनाश) को प्राप्त होते हैं । जैसे—

१. शब्दों से, २. रूपों से, ३. गन्धों से, ४. रसों से, ५. स्पर्शों से, अर्थात् इनकी अति लोलुपता के कारण जीव विघात को प्राप्त होते हैं (११) ।

१२—पंच ठाणा अपरिण्णाता जीवाणं अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेस्साए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—सद्दा जाव (रूवा, गंधा, रसा), फासा ।

अपरिज्ञात (अज्ञात और अप्रत्याख्यात) पांच स्थान जीवों के अहित के लिए, अशुभ के लिए, अक्षमता (असामर्थ्य) के लिए, अनिःश्रेयस् (अकल्याण) के लिए और अननुगामिता (अमोक्ष—संसार-वास) के लिए होते हैं । जैसे—

१. शब्द, २. रूप, ३. गन्ध, ४. रस, ५. स्पर्श (१२)।

१३—पंच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाणं हिताए सुभाए, जाव (खमाए णिस्सेस्साए) आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—सद्दा, जाव (रूवा, गंधा, रसा), फासा।

सुपरिज्ञात (सुज्ञात और प्रत्याख्यात) पांच स्थान जीवों के हित के लिए, शुभ के लिए, क्षम (सामर्थ्य) के लिए, निःश्रेयस् (कल्याण) के लिए और अनुगामिता (मोक्ष) के लिए होते हैं। जैसे—

१, शब्द, २. रूप, ३. गन्ध, ४. रस, ५ स्पर्श (१३)।

१४—पंच ठाणा अपरिण्णाता जीवाणं दुग्गतिगमणाए भवंति, तं जहा—सद्दा, जाव (रूवा, गंधा, रसा), फासा।

अपरिज्ञात (अज्ञात और अप्रत्याख्यात) पांच स्थान जीवों के दुर्गतिगमन के लिए कारण होते हैं। जैसे—

१. शब्द, २. रूप, ३. गन्ध, ४. रस, ५. स्पर्श (१४)।

१५—पंच ठाणा सुपरिण्णाता जीवाणं सुग्गतिगमणाए भवंति, तं जहा—सद्दा, जाव (रूवा, गंधा, रसा), फासा।

सुपरिज्ञात (सुज्ञात और प्रत्याख्यात) पूर्वोक्त पांच स्थान जीवों के सुगतिगमन के लिए कारण होते हैं (१५)।

आस्रव-संवर-सूत्र

१६—पंचहिं ठाणेहिं जीवा दोग्गतिं गच्छंति, तं जहा—पाणातिवातेणं जाव (मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं, मेहुणेणं), परिग्गहेणं।

पांच कारणों से जीव दुर्गति में जाते हैं। जैसे—

१. प्राणातिपात से, २. मृषावाद से, ३. अदत्तादान से, ४. मैथुन से, ५. परिग्रह से (१६)।

१७—पंचहिं ठाणेहिं जीवा सोगतिं गच्छंति, तं जहा—पाणातिवातवेरमणेणं जाव (मुसावायवेरमणेणं, अदिण्णादाणवेरमणेणं, मेहुणवेरमणेणं), परिग्गहवेरमणेणं।

पांच कारणों से जीव सुगति में जाते हैं। जैसे—

१. प्राणातिपात के विरमण से, २. मृषावाद के विरमण से, ३. अदत्तादान के विरमण से,
४. मैथुन के विरमण से, ५. परिग्रह के विरमण से (१७)।

प्रतिमा-सूत्र

१८—पंच पडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—भद्दा, सुभद्दा, महाभद्दा, सव्वतोभद्दा, भद्दुत्तरपडिमा।

प्रतिमाएं पांच कही गई हैं जैसे—

१. भद्रा प्रतिमा, २. सुभद्रा प्रतिमा, ३. महाभद्रा प्रतिमा,
४. सर्वतोभद्रा प्रतिमा, ५. भद्रोत्तर प्रतिमा (१८)।

इनका विवेचन दूसरे स्थान में किया जा चुका है।

स्थावरकाय-सूत्र

१९—पंच थावरकाया पण्णत्ता, तं जहा—इंदे थावरकाए, बंभे थावरकाए, सिप्पे थावरकाए, सम्मति थावरकाए, पायावच्चे थावरकाए।

पांच स्थावरकाय कहे गये हैं। जैसे—

१. इन्द्रस्थावरकाय-पृथ्वीकाय, २. ब्रह्मस्थावरकाय-अप्काय, ३. शिल्पस्थावरकाय-तेजसकाय, ४. सम्मतिस्थावरकाय-वायुकाय, ५. प्राजापत्यस्थावरकाय-वनस्पतिकाय (१९)।

२०—पंच थावरकायाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—इंदे थावरकायाधिपती, जाव (बंभे थावरकायाधिपती, सिप्पे थावरकायाधिपती, सम्मती थावरकायाधिपती), पागावच्चे थावरकायाधिपती।

पांच स्थावरकायों के अधिपति कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथ्वी-स्थावरकायाधिपति—इन्द्र।
२. अप्-स्थावरकायाधिपति—ब्रह्मा।
३. तेजस-स्थावरकायाधिपति—शिल्प।
४. वायु-स्थावरकायाधिपति—सम्मति।
५. वनस्पति-स्थावरकायाधिपति—प्राजापत्य (२०)।

विवेचन—उक्त दो सूत्रों में स्थावरकाय और उनके अधिपति (स्वामी) बताये गये हैं। जिस प्रकार दिशाओं के अधिपति इन्द्र, अग्नि आदि हैं, नक्षत्रों के अधिपति अश्वि, यम आदि हैं, उसी प्रकार पांचों स्थावरकायों के अधिपति भी यहाँ पर (२० वें सूत्र में) बताये गये हैं और उनके सम्बन्ध से पृथ्वी आदि को भी इन्द्रस्थावरकाय आदि के नामों से उल्लेख किया गया है।

अतिशेषज्ञान-दर्शन-सूत्र

२१—पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुप्पज्जिउकामेवि तप्पढमयाए खंभाएज्जा, तं जहा—

१. अप्पभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा।
२. कुंथुरासिभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा।
३. महतिमहालयं वा महोरगसरीरं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा।
४. देवं वा महिड्ढियं जाव (महज्जुइयं महाणुभागं महायसं महाबलं) महासोक्खं पासित्त तप्पढमयाए खंभाएज्जा।
५. पुरेसु वा पोराणाइं उरालाइं महतिमहालयाइं महाणिहाणाइं पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगुत्तागाराइं उच्छिण्णसामियाइं उच्छिण्णसेउयाइं उच्छिण्णगुत्तागाराइं जाइ

इमाइं गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुहपट्टणासम-संबाह-सण्णिवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु णगर-णिद्धमणेसु सुसाण-सुण्णागार-गिरिकंदर-संति-सेलोवट्ठावण-भवण-गिहेसु संणिक्खित्ताइ चिट्ठंति, ताइं वा पासित्ता तप्पढमताए खंभाएज्जा।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए खंभाएज्जा।

पांच कारणों से अवधि-[ज्ञान-] दर्शन उत्पन्न होता हुआ भी अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित (क्षुब्ध या चलायमान) हो जाता है। जैसे—

१. पृथ्वी को छोटी या अल्पजीव वाली देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।
२. कुंथु जैसे क्षुद्र-जीवराशि से भरी हुई पृथ्वी को देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।
३. बड़े-बड़े महोरगों—(सांपों) के शरीरों को देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।
४. महर्धिक, महाद्युतिक, महानुभाग, महान् यशस्वी, महान् बलशाली और महान् सुख वाले देवों को देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणो में ही स्तम्भित हो जाता है।
५. पुरों में, ग्रामों में, आकरों में, नगरों में, खेटों में, कर्वटों में, मडम्बों में, द्रोणमुखों में, पत्तनों में, आश्रमों में, संबाधों में, सन्निवेशों में, नगरों के शृंगाटकों, तिराहों, चौकों, चौराहों, चौमुहानों और छोटे-बड़े मार्गों में, गलियों में, श्मशानों में, शून्य गृहों में, गिरि-कन्दराओं में, शान्ति गृहों में, शैलगृहों में, उपस्थानगृहों और भवन-गृहों में दबे हुए एक से एक बड़े महानिधानों को (धन के भण्डारों या खजानों को) जिनके कि स्वामी, मर चुके हैं, जिनके मार्ग प्रायः नष्ट हो चुके हैं, जिनके नाम और संकेत विस्मृत-प्रायः हो चुके हैं और जिनके उत्तराधिकारी कोई नहीं हैं—देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।

इन पाँच कारणों से उत्पन्न होता हुआ अवधि-[ज्ञान-]-दर्शन अपने प्राथमिक क्षणों में ही स्तम्भित हो जाता है।

विवेचन—विशिष्ट ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति या विभिन्न ऋद्धियों की प्राप्ति एकान्त में ध्याना-वस्थित साधु को होती है। उस अवस्था में सिद्ध या प्राप्त ऋद्धि का तो पता उसे तत्काल नहीं चलता है, किन्तु विशिष्ट ज्ञान-दर्शन के उत्पन्न होते ही सूत्रोक्त पांच कारणों में से सर्वप्रथम पहला ही कारण उसके सामने उपस्थित होता है। ध्यानावस्थित व्यक्ति की नासाग्र-दृष्टि रहती है, अतः उसे सर्वप्रथम पृथ्वीगत जीव ही दृष्टिगोचर होते हैं। तदनन्तर पृथ्वी पर विचरने वाले कुन्थु आदि छोटे-छोटे जन्तु विपुल परिमाण में दिखाई देते हैं। तत्पश्चात् भूमिगत बिलों आदि में बैठे सांपराज-नागराज आदि दिखाई देते हैं। यदि उसके अवधिज्ञानावरण-अवधिदर्शनावरण कर्म का और भी विशिष्ट क्षयोपशम हो रहा है तो उसे महावैभवशाली देव दृष्टिगोचर होते हैं और ग्राम-नगरादि की भूमि में दबे हुए खजाने भी दिखने लगते हैं। इन सब को देख कर सर्वप्रथम उसे विस्मय होता है, कि यह मैं क्या देख रहा हूँ! पुनः जीवों से व्याप्त पृथ्वी को देख कर करुणाभाव भी जागृत हो सकता है। बड़े-बड़े सांपों

को देखने से भयभीत भी हो सकता है और भूमिगत खजानों को देखकर के वह लोभ मे भी अभिभूत हो सकता है। इन में से किसी एक-दो या सभी कारणों के सहसा उपस्थित होने पर ध्यानावस्थित व्यक्ति का चित्त चलायमान होना स्वाभाविक है।

यदि-वह उस समय चल-विचल न हो तो तत्काल उसके विशिष्ट अतिशय सम्पन्न ज्ञान-दर्शनादि उत्पन्न हो जाते हैं। और यदि वह उस समय विस्मयादि कारणों में से किसी भी एक-दो, या सभी के निमित्त से चल-विचल हो जाता है, तो वे उत्पन्न होते हुए भी रुक जाते हैं—उत्पन्न नहीं होते।

यही बात आगे के सूत्र में केवल ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति के विषय में भी जानना चाहिए।

सूत्रोक्त ग्राम-नगरादि का अर्थ दूसरे स्थान के सूत्र ३९० के विवेचन में किया जा चुका है। जो शृंगाटक आदि नवीन शब्द आये हैं। उनका अर्थ और आकार इस प्रकार है—

१. शृंगाटक—सिंघाड़े के आकार वाला तीन मार्गों का मध्य भाग △।
२. त्रिकपथ-तिराहा, तिगड्डा—जहां पर तीन मार्ग मिलते हैं ⊤।
३. चतुष्कपथ-चौराहा, चौक—जहां पर चार मार्ग मिलते हैं +।
४. चतुर्मुख-चौमुहानी—जहां पर चारों दिशाओं के मार्ग निकलते हैं ⁺ ।
५. पथ—मार्ग, गली आदि।
६. महापथ—राजमार्ग—चौड़ा रास्ता, मेन रोड।
७. नगर-निर्द्धमन—नगर की नाली, नाला आदि।
८. शान्तिगृह—शान्ति, हवन आदि करने का घर।
९. शैलगृह—पर्वत को काट कर या खोद कर बनाया मकान।
१०. उपस्थान गृह—सभामंडप।
११. भवनगृह—नौकर-चाकरों के रहने का मकान।

कहीं-कहीं चतुर्मुख का अर्थ चार द्वार वाले देवमन्दिर आदि भी किया गया है। इसी प्रकार अन्य शब्दों के अर्थ में भी कुछ व्याख्या-भेद पाया जाता है। प्रकृत में मूल अभिप्राय इतना ही है कि अवधि ज्ञान-दर्शन जितने क्षेत्र की सीमा वाला होता है, उतने क्षेत्र के भीतर की रूपी वस्तुओं का उसे प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

२२—पंचहिं ठाणेहिं केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा, तं जहा—

१. अप्पभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा। २. सेसं तहेव जाव (कुंथुरासिभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा। ३. महतिमहालयं वा महोरगसरीरं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा। ४. देवं वा महिड्ढियं महज्जुइयं महाणुभागं महायसं महाबलं महासोक्खं पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा। ५. (पुरेसु वा पोराणाइं उरालाइं महतिमहालयाइं महाणिहाणाइं पहीणसामियाइं पहीणसेउयाइं पहीणगुत्तागाराइं उच्छिण्णसामियाइं उच्छिण्णसेउयाइं उच्छिण्णगुत्तागाराइं जाइं इमाइं गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सण्णिवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु णगर-णिद्धमणेसु सुसाण-सुण्णागार-गिरिकंदर-संति-सेलोवट्ठावण) भवण-गिहेसु सण्णिक्खित्ताइं चिट्ठंति, ताइं वा पासित्ता तप्पढमयाए णो खंभाएज्जा।

सेसं तहेव । इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं जाव (केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे तप्पढमयाए) जाव णो खंभाएज्जा ।

पांच कारणों से उत्पन्न होता हुआ केवलवर-ज्ञान-दर्शन अपने प्राथमिक क्षणों में स्तम्भित नहीं होता । जैसे—

१. पृथ्वी को छोटी या अल्पजीव वाली देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणों में स्तम्भित नहीं होता ।
२. कुंथु आदि क्षुद्र जीव-राशि से भरी हुई पृथ्वी को देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणों में स्तम्भित नहीं होता ।
३. बड़े-बड़े महोरगों के शरीरों को देखकर वह अपने प्राथमिक क्षणों में स्तम्भित नहीं होता ।
४. महर्धिक, महाद्युतिक, महानुभाव, महान् यशस्वी, महान् बलशाली और महान् सुख वाले देवों को देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणों में स्तम्भित नहीं होता ।
५. पुरों में, ग्रामों में, आकरों में, नगरों में, खेटों में, कर्वटों में, मडम्बों में, द्रोणमुखों में, पत्तनों में, आश्रमों में, संबाधों में, संनिवेशों में, शृंगाटकों, तिराहों, चौकों, चौराहों, चौमुहानों और छोटे-बड़े मार्गों में, गलियों में, नालियों में, श्मशानों में, शून्य गृहों में, गिरिकन्दराओं में, शान्ति-गृहों में, शैल-गृहों में, उपस्थान-गृहों में और भवन-गृहों में दबे हुए एक से एक बड़े महानिधानों को—जिनके कि मार्ग प्रायः नष्ट हो चुके हैं, जिनके नाम और संकेत विस्मृतप्रायः हो चुके हैं, और जिनके उत्तराधिकारी कोई नहीं हैं—देख कर वह अपने प्राथमिक क्षणों में विचलित नहीं होता (२२) ।

इन पांच कारणों से उत्पन्न होता हुआ केवल वर-ज्ञान-दर्शन अपने प्राथमिक क्षणों में स्तम्भित नहीं होता ।

विवेचन—पूर्व सूत्र में जो पांच कारण अवधि ज्ञान-दर्शन के उत्पन्न होते-होते स्तम्भित होने के बताये गये थे, वे ही पांच कारण यहां केवल ज्ञान-दर्शन के उत्पन्न होने में बाधक नहीं होते । इसका कारण यह है कि अवधि ज्ञान तो हीन संहनन और हीन सामर्थ्य वाले मनुष्यों को भी उत्पन्न हो सकता है, अतः वे उक्त पांच कारणों में से किसी एक भी कारण के उपस्थित होने पर अपने उपयोग से चल-विचल हो सकते हैं । किन्तु केवल ज्ञान और केवल दर्शन तो वज्रर्षभनाराचसंहनन के, उसमें भी जो घोरातिघोर परीषह और उपसर्गों से भी चलायमान नहीं होता और जिसका मोहनीय कर्म दशवें गुण-स्थान में ही क्षय हो चुका है, अतः जिसके विस्मय, भय और लोभ का कोई कारण ही शेष नहीं रहा है, ऐसे परमवीतरागी क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान वाले पुरुष को उत्पन्न होता है, अतः ऐसे परम धीर-वीर महान् साधक के उक्त पांच कारण तो क्या, यदि एक से एक बढ़ चढ़कर सहस्रों विघ्न-बाधाओं वाले कारण एक साथ उपस्थित हो जावें, तो भी उत्पन्न होते हुए केवलज्ञान और केवलदर्शन को नहीं रोक सकते हैं ।

शरीर-सूत्र

२३—णेरइयाणं सरीरगा पंचवण्णा पंचरसा पण्णत्ता, तं जहा—किण्हा जाव (णीला, लोहिता, हालिद्दा), सुक्किल्ला । तित्ता, जाव (कडुया, कसाया, अंबिला), मधुरा ।

नारकी जीवों के शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाले कहे गये हैं। जैसे—

१. कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाले।
२. तथा तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाले (२३)।

२४—एवं—णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों वाले जीवों के शरीर पांचों वर्ण और पांचों रस वाले जानना चाहिए (२४)।

विवेचन—व्यवहार से शरीरों के बाहिरी वर्ण नारकी और देवादिकों से कृष्ण या नीलादि एक ही वर्ण वाले होते हैं। किन्तु निश्चय से शरीर के विभिन्न अवयव पांचों वर्ण वाले होते हैं। इसी प्रकार रसों के विषय में भी जानना चाहिए। यों आगम में नारकी जीवों के शरीर अशुभ वर्ण और अशुभ रस वाले तथा देवों के शरीर शुभ वर्ण और शुभ रस वाले कहे गये हैं, यह व्यवहारनय का कथन है।

२५—पंच सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए।

शरीर पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. औदारिकशरीर, २. वैक्रियशरीर, ३. आहारकशरीर,
४. तैजसशरीर, ५. कार्मणशरीर (२५)।

२६—ओरालियसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—किण्हे, जाव (णीले, लोहिते, हालिद्दे), सुक्किल्ले। तित्ते, जाव (कडुए, कसाए, अंबिले), महुरे। २७—एवं जाव कम्मगसरीरे। [वेउव्वियसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते, कडुए कसाए, अंबिले, महुरे। २८—आहारयसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे। २९—तेययसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे। ३०—कम्मगसरीरे पंचवण्णे पंचरसे पण्णत्ते, तं जहा—किण्हे, णीले, लोहिते, हालिद्दे, सुक्किल्ले। तित्ते, कडुए, कसाए, अंबिले, महुरे।]

औदारिक शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाला कहा गया है। जैसे—

१. कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाला।
२. तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२६)।

वैक्रियशरीर पांच वर्ण और पांच रस वाला कहा गया है। जैसे—

१. कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेतवर्ण वाला।
२. तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२७)।

आहारक शरीर पांच वर्ण, पांच रस वाला कहा गया है। जैसे—

१. कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाला।
२. तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२८)।

तैजस शरीर पांच वर्ण, पांच रस वाला कहा गया है। जैसे—

१. कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाला।
२. तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (२९)।

कार्मण शरीर पांच वर्ण और पांच रस वाला कहा गया है। जैसे—

१. कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र और श्वेत वर्ण वाला।
२. तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर रस वाला (३०)।

३१—सव्वेवि णं बादरबोंदिधरा कलेवरा पंचवण्णा पंचरसा दुगंधा अट्ठफासा।

सभी बादर (स्थूल) शरीर के धारक कलेवर पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले कहे गये हैं (३१)।

विवेचन—उदार या स्थूल पुद्‌गलों से निर्मित, रस, रक्तादि सप्त धातुमय शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। यह मनुष्य और तिर्यग्गति के जीवों के ही होता है। नाना प्रकार के रूप बनाने में समर्थ शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं। यह देव और नारकी जीवों के होता है। तथा विक्रियालब्धि को प्राप्त करने वाले मनुष्य, तिर्यंचों और वायुकायिक जीवों के भी होता है। तपस्याविशेष से चतुर्दश पूर्वधर महामुनि के आहारकलब्धि के प्रभाव से आहारकशरीर उत्पन्न होता है। जब उक्त मुनि को सूक्ष्म तत्व में कोई शंका उत्पन्न होती है, और वहाँ पर सर्वज्ञ का अभाव होता है, तब उक्त शरीर का निर्माण होकर उसके मस्तक से एक हाथ का पुतला निकल कर सर्वज्ञ के समीप पहुँचता है और उनसे शंका का समाधान पाकर वापिस आकर के मुनि के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। इस शरीर का निर्माण, निर्गमन और वापिस प्रवेश एक मुहूर्त के भीतर ही हो जाता है। जिस शरीर के निमित्त से शरीर में तेज, दीप्ति और भोजन-पाचन की शक्ति प्राप्त होती है, उसे तैजसशरीर कहते है। यह दो प्रकार को होता है—१. निस्सरणात्मक (बाहर निकलने वाला) और २. अनिस्सरणात्मक (बाहर न निकलने वाला)। निस्सरणात्मक तैजस शरीर तो तेजोलब्धिसम्पन्न मुनि के प्रकट होता है, और वह शाप और अनुग्रह करने में समर्थ होता है। अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर सभी संसारी जीवों के होता है। कर्मों के बीजभूत उत्पादक शरीर को, या आठों कर्मों के समुदाय को कार्मण शरीर कहते हैं।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि औदारिक शरीर से आगे के शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते हैं, किन्तु उनके प्रदेशों की संख्या आहारक शरीर तक असंख्यातगुणित और आगे के दोनों शरीरों के प्रदेश अनन्त गुणित होते हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के सर्वदा ही पाये जाते हैं। केवल ये दोनों शरीर विग्रहगति में ही पाये जाते हैं। शेष समय में उनके साथ औदारिक शरीर मनुष्य-तिर्यंचों में, तथा वैक्रिय शरीर देव-नारकों में, इस प्रकार तीन-तीन शरीर पाये जाते हैं। विक्रियालब्धि-सम्पन्न मनुष्य तिर्यंचों के, या आहारकलब्धिसम्पन्न मनुष्यों के चार शरीर एक साथ पाये जाते हैं।

किन्तु पांचों शरीर एक साथ कभी भी किसी जीव के नहीं पाये जाते क्योंकि वैक्रिय और आहारक शरीर एक जीव के एक साथ नहीं होते हैं।

तीर्थभेद-सूत्र

३२—पंचहिं ठाणेहिं पुरिम-पच्छिमगाणं जिणाणं दुग्गमं भवति, तं जहा—दुआइक्खं, दुव्विभज्जं, दुपस्सं, दुतितिक्खं, दुरणुचरं।

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर जिनों के शासन में पांच स्थान दुर्गम (दुर्बोध्य) होते हैं। जैसे—

१. दुराख्येय—धर्मतत्त्व का व्याख्यान करना दुर्गम होता है।
२. दुर्विभाज्य—तत्त्व का नय-विभाग से समझाना दुर्गम होता है।
३. दुर्दर्श—तत्त्व का युक्तिपूर्वक निदर्शन करना दुर्गम होता है।
४. दुस्तितिक्ष—उपसर्ग-परीषहादि का सहन करना दुर्गम होता है।
५. दुरनुचर—धर्म का आचरण करना दुर्गम होता है (३२)।

विवेचन—प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु (सरल) और जड़ (अल्प या मन्दज्ञानी) होते हैं, इसलिए उनको धर्म का व्याख्यान करना, समझाना आदि बड़ा दुर्गम (कठिन) होता है। अन्तिम तीर्थंकर के समय के साधु वक्र (कुटिल) और जड़ होते हैं, इसलिए उनको भी तत्त्व का समझाना आदि दुर्गम होता है। जब धर्म या तत्त्व समझेंगे ही नहीं, तब उसका आचरण क्या करेंगे? प्रथम तीर्थंकर के समय के पुरुष अधिक सुकुमार होते हैं, अतः उन्हें परीषहादि का सहना कठिन होता है और अन्तिम तीर्थंकर के समय के पुरुष चंचल मनोवृत्ति वाले होते हैं। और चित्त की एकाग्रता के बिना न परीषहादि सहन किये जा सकते हैं और न धर्म का आचरण या परिपालन ही ठीक हो सकता है।

३३—पंचहिं ठाणेहिं मज्झिमगाणं जिणाणं सुग्गमं भवति, तं जहा—सुआइक्खं, सुविभज्जं, सुपस्सं, सुतितिक्खं, सुरणुचरं।

मध्यवर्ती (बाईस) तीर्थंकरों के शासन में पांच स्थान सुगम (सुबोध्य) होते हैं। जैसे—

१. स्वाख्येय—धर्मतत्त्व का व्याख्यान करना सुगम होता है।
२. सुविभाज्य—तत्त्व का नय-विभाग से समझाना सुगम होता है।
३. सुदर्श—तत्त्व का युक्तिपूर्वक निदर्शन करना सुगम होता है।
४. सुतितिक्ष—उपसर्ग-परीषहादि का सहन करना सुगम होता है।
५. स्वनुचर—धर्म का आचरण करना सुगम होता है।

विवेचन—मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के समय के पुरुष ऋजु (सरल) और प्राज्ञ (बुद्धिमान्) होते हैं, अतः उनको धर्मतत्त्व का समझाना भी सरल होता है और परीषहादि का सहन करना और धर्म का पालन करना भी आसान होता है (३३)।

अभ्यनुज्ञात-सूत्र

३४—पंच ठाणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चमब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. क्षान्ति (क्षमा) २. मुक्ति (निर्लोभता), ३. आर्जव (सरलता) ४. मार्दव (मृदुता) और लाघव (लघुता) (३४)।

३५—पंच ठाणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं जाव (समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये है। जैसे—

१. सत्य, २. संयम, ३. तप, ४. त्याग और ५. ब्रह्मचर्य (३५)।

विवेचन—यति-धर्म नाम से प्रसिद्ध दश धर्मों का निर्देश यहाँ पर दो सूत्रों में किया गया है और दशवें स्थान में उनका वर्णन श्रमणधर्म के रूप में किया गया है। दोनों ही स्थानों के क्रम में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु तत्त्वार्थसूत्र-वर्णित दश धर्मों के क्रम में तथा नामों में भी कुछ अन्तर है। जो इस प्रकार है—

स्थानाङ्ग-सम्मत-दश श्रमण धर्म	तत्त्वार्थ सूत्रोक्त दशधर्म
१. क्षान्ति	१. क्षमा
२. मुक्ति	२. मार्दव
३. आर्जव	३. आर्जव
४. मार्दव	४. शौच
५. लाघव	५. सत्य
६. सत्य	६. संयम
७. संयम	७. तप
८. तप	८. त्याग
९. त्याग	९. आकिंचन्य
१०. ब्रह्मचर्यवास	१०. ब्रह्मचर्य

नाम और क्रम में किंचित् अन्तर होने पर भी अर्थ में कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

३६—पंच ठाणाइं समणेणं जाव (भगवता, महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—उक्खित्त-चरए, णिक्खित्तचरए, अंतचरए, पंतचरए, लूहचरए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. उत्क्षिप्तचरक—रांधने के पात्र में से पहले ही बाहर निकाला हुआ आहार ग्रहण करूंगा ऐसा अभिग्रह करने वाला मुनि।
२. निक्षिप्तचरक—यदि गृहस्थ रांधने के पात्र में से आहार दे तो मैं ग्रहण करूं, ऐसा अभिग्रह करने वाला मुनि।
३. अन्तचरक—गृहस्थ-परिवार के भोजन करने के पश्चात् बचा हुआ यदि अनुच्छिष्ट आहार मिले, तो मैं ग्रहण करूं, ऐसा अभिग्रह करने वाला मुनि।
४. प्रान्तचरक—तुच्छ या बासी आहार लेने का अभिग्रह करने वाला मुनि।
५. रूक्षचरक—सर्व प्रकार के रसों से रहित रूखे आहार के ग्रहण करने का अभिग्रह करने वाला मुनि (३६)।

३७—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—अण्णातचरए, अण्णइलायचरए, मोणचरए, संसट्ठकप्पिए, तज्जातसंसट्ठकप्पिए ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पाँच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्त्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. अज्ञातचरक—अपनी जाति-कुलादि को बताये बिना भिक्षा लेने वाला मुनि।
२. अन्यग्लायक चरक—दूसरे रोगी मुनि के लिए भिक्षा लाने वाला मुनि।
३. मौनचरक—बिना बोले मौनपूर्वक भिक्षा लाने वाला मुनि।
४. संसृष्टकल्पिक—भोजन से लिप्त हाथ या कड़छी आदि से भिक्षा लेने वाला मुनि।
५. तज्जात-संसृष्टकल्पिक—देय द्रव्य से लिप्त हाथ आदि से भिक्षा लेने वाला मुनि (३७)।

३८—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—उवणिहिए, सुद्धेसणिए, संखादत्तिए, दिट्ठलाभिए, पुट्ठलाभिए ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्त्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१ औपनिधिक—अन्य स्थान से लाये और समीप रखे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
२. शुद्धैषणिक—निर्दोष आहार की गवेषणा करने वाला भिक्षुक।
३. संख्यादत्तिक—सीमित संख्या में दत्तियों का नियम करके आहार लेने वाला भिक्षुक।

४. दृष्टलाभिक—सामने दीखने वाले आहार-पान को लेने वाला भिक्षुक।
५. पृष्टलाभिक—'क्या भिक्षा लोगे' ? यह पूछे जाने पर ही भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३८)।

३९—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—आयंबिलिए, णिव्विइए, पुरिमड्ढिए, परिमितपिंडवातिए, भिण्णपिंडवातिए ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीत्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं, और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. आचाम्लिक—'आयंबिल' करने वाला भिक्षुक।
२. निर्विकृतिक—घी आदि विकृतियों का त्याग करने वाला भिक्षुक।
३. पूर्वार्धिक—दिन के पूर्वार्ध में भोजन नहीं करने के नियम वाला भिक्षुक।
४. परिमितपिण्डपातिक—परिमित अन्न-पिंडों या वस्तुओं की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक।
५. भिन्नपिण्डपातिक—खंड-खंड किये अन्न-पिण्ड की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३९)।

४०—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—अरसाहारे, विरसाहारे, अंताहारे, पंताहारे, लूहाहारे ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. अरसाहार—हींग आदि के वघार से रहित भोजन लेने वाला भिक्षुक।
२. विरसाहार—पुराने धान्य का भोजन करने वाला भिक्षुक।
३. अन्त्याहार—बचे-खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४. प्रान्ताहार—तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५. रूक्षाहार—रूखा-सूखा आहार करने वाला भिक्षुक (४०)।

४१—पंच ठाणाइं (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, पंतजीवी, लूहजीवी ।।

पुनः श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीत्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. अरसजीवी—जीवन भर रस-रहित आहार करने वाला भिक्षुक।
२. विरसजीवी—जीवन भर विरस हुए पुराने धान्य का भात आदि लेने वाला भिक्षुक।
३. अन्त्यजीवी—जीवन भर बचे-खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४. प्रान्तजीवी—जीवन भर तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५. रूक्षजीवी—जीवन भर रूखे-सूखे आहार को लेने वाला भिक्षुक (४१)।

४२—पंच ठाणाइं (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं अब्भणुण्णाताइं) भवंति, तं जहा—ठाणातिए, उक्कुडुआसणिए, पडिमट्ठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किये है, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. स्थानायतिक—दोनों भुजाओं को नीचे घुटनों तक लंबाकर कायोत्सर्ग मुद्रा से खड़े रहने वाला मुनि।
२. उत्कुटुकासनिक—उकड़ू बैठने वाला मुनि।
३. प्रतिमास्थायी—प्रतिमा-मूर्त्ति के समान पद्मासन से बैठने वाला मुनि। अथवा एकरात्रिक आदि भिक्षुप्रतिमा को धारण करने वाला मुनि।
४. वीरासनिक—वीरासन ने बैठने वाला मुनि।
५. नैषद्यिक—पालथी लगाकर बैठने वाला मुनि।

विवेचन—भूमि पर पैर रखके सिंहासन या कुर्सी पर बैठने से शरीर की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति में सिंहासन या कुर्सी के निकाल देने पर स्थित रहने को वीरासन कहते हैं। इस आसन से वीर पुरुष ही अवस्थित रह सकता है, इसीलिए यह वीरासन कहलाता है। निषद्या शब्द का सामान्य अर्थ बैठना है आगे इसी स्थान के सूत्र ५० में इसके पांच भेदों का विशेष वर्णन किया जायगा।

४३—पंच ठाणाइं (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं अब्भणुण्णाताइं) भवंति, तं जहा—दंडायतिए, लगंडसाई, आतावए, अवाउडए, अकंडूयए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्त्तित किये हैं; व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. दण्डायतिक—काठ के दंड के समान सीधे पैर पसार कर चित सोने वाला मुनि।
२. लगंडशायी—एक करवट से या जिसमें मस्तक और एड़ी भूमि में लगे और पीठ भूमि में न लगे, ऊपर उठी रहे, इस प्रकार से सोने वाला मुनि।
३. आतापक—शीत-ताप आदि को सहने वाला मुनि।
४. अपावृतक—वस्त्र-रहित होकर रहने वाला मुनि।
५. अकण्डूयक—शरीर को नहीं खुजाने वाला मुनि (४३)।

महानिर्ज्जर-सूत्र

४४—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—अगिलाए आयरियवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए उवज्झायवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए थेरवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए तवस्सिवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए गिलाणवेयावच्चं करेमाणे।

पांच स्थानों से श्रमण-निर्ग्रन्थ महान् कर्म-निर्जरा करने वाला और महापर्यवसान (संसार का सर्वथा उच्छेद या जन्म-मरण का अन्त करने वाला) होता है। जैसे—

४. दृष्टलाभिक—सामने दीखने वाले आहार-पान को लेने वाला भिक्षुक।
५. पृष्टलाभिक—'क्या भिक्षा लोगे' ? यह पूछे जाने पर ही भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३८)।

३९—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—आयंबिलिए, णिव्विइए, पुरिमड्ढिए, परिमितपिंडवातिए, भिण्णपिंडवातिए ।।

पुन: श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्त्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं, और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. आचाम्लिक—'आयंबिल' करने वाला भिक्षुक।
२. निर्विकृतिक—घी आदि विकृतियों का त्याग करने वाला भिक्षुक।
३. पूर्वार्धिक—दिन के पूर्वार्ध में भोजन नहीं करने के नियम वाला भिक्षुक।
४. परिमितपिण्डपातिक—परिमित अन्न-पिंडों या वस्तुओं की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक।
५. भिन्नपिण्डपातिक—खंड-खंड किये अन्न-पिण्ड की भिक्षा लेने वाला भिक्षुक (३९)।

४०—पंच ठाणाइं जाव (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—अरसाहारे, विरसाहारे, अंताहारे, पंताहारे, लूहाहारे ।।

पुन: श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. अरसाहार—हींग आदि के बघार से रहित भोजन लेने वाला भिक्षुक।
२. विरसाहार—पुराने धान्य का भोजन करने वाला भिक्षुक।
३. अन्त्याहार—बचे-खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४. प्रान्ताहार—तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५. रूक्षाहार—रूखा-सूखा आहार करने वाला भिक्षुक (४०)।

४१—पंच ठाणाइं (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं) अब्भणुण्णाताइं भवंति, तं जहा—अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, पंतजीवी, लूहजीवी ।।

पुन: श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच (अभिग्रह) स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्त्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं। जैसे—

१. अरसजीवी—जीवन भर रस-रहित आहार करने वाला भिक्षुक।
२. विरसजीवी—जीवन भर विरस हुए पुराने धान्य का भात आदि लेने वाला भिक्षुक।
३. अन्त्यजीवी—जीवन भर बचे-खुचे आहार को लेने वाला भिक्षुक।
४. प्रान्तजीवी—जीवन भर तुच्छ आहार को लेने वाला भिक्षुक।
५. रूक्षजीवी—जीवन भर रूखे-सूखे आहार को लेने वाला भिक्षुक (४१)।

४२—पंच ठाणाइं (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं अब्भणुण्णाताइं) भवंति, तं जहा—ठाणातिए, उक्कुडुआसणिए, पडिमट्ठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्तित किये हैं, व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जैसे—

१. स्थानायतिक—दोनों भुजाओं को नीचे घुटनों तक लंबाकर कायोत्सर्ग मुद्रा से खड़े रहने वाला मुनि ।
२. उत्कुटुकासनिक—उकड़ू बैठने वाला मुनि ।
३. प्रतिमास्थायी—प्रतिमा-मूर्त्ति के समान पद्मासन से बैठने वाला मुनि । अथवा एकरात्रिक आदि भिक्षुप्रतिमा को धारण करने वाला मुनि ।
४. वीरासनिक—वीरासन से बैठने वाला मुनि ।
५. नैषद्यिक—पालथी लगाकर बैठने वाला मुनि ।

विवेचन—भूमि पर पैर रखके सिंहासन या कुर्सी पर बैठने से शरीर की जो स्थिति होती है, उसी स्थिति में सिंहासन या कुर्सी के निकाल देने पर स्थित रहने को वीरासन कहते हैं । इस आसन से वीर पुरुष ही अवस्थित रह सकता है, इसीलिए यह वीरासन कहलाता है । निषद्या शब्द का सामान्य अर्थ बैठना है आगे इसी स्थान के सूत्र ५० में इसके पांच भेदों का विशेष वर्णन किया जायगा ।

४३—पंच ठाणाइं (समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चं अब्भणुण्णाताइं) भवंति, तं जहा—दंडायतिए, लगंडसाई, आतावए, अवाउडए, अकंडूयए ।।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निग्रन्थों के लिए पांच स्थान सदा वर्णित किये हैं, कीर्त्तित किये हैं; व्यक्त किये हैं, प्रशंसित किये हैं और अभ्यनुज्ञात किये हैं । जैसे—

१. दण्डायतिक—काठ के दंड के समान सीधे पैर पसार कर चित सोने वाला मुनि ।
२. लगंडशायी—एक करवट से या जिसमें मस्तक और एड़ी भूमि में लगे और पीठ भूमि में न लगे, ऊपर उठी रहे, इस प्रकार से सोने वाला मुनि ।
३. आतापक—शीत-ताप आदि को सहने वाला मुनि ।
४. अपावृतक—वस्त्र-रहित होकर रहने वाला मुनि ।
५. अकण्डूयक—शरीर को नहीं खुजाने वाला मुनि (४३) ।

महानिर्ज्जर-सूत्र

४४—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—अगिलाए आयरियवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए उवज्झायवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए थेरवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए तवस्सिवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए गिलाणवेयावच्चं करेमाणे ।

पांच स्थानों से श्रमण-निर्ग्रन्थ महान् कर्म-निर्जरा करने वाला और महापर्यवसान (संसार का सर्वथा उच्छेद या जन्म-मरण का अन्त करने वाला) होता है । जैसे—

१. ग्लानि-रहित होकर आचार्य की वैयावृत्त्य करता हुआ।
२. ग्लानि-रहित होकर उपाध्याय की वैयावृत्त्य करता हुआ।
३. ग्लानि-रहित होकर स्थविर की वैयावृत्त्य करता हुआ।
४. ग्लानि-रहित होकर तपस्वी की वैयावृत्त्य करता हुआ।
५. ग्लानि-रहित होकर ग्लान (रोगी मुनि) की वैयावृत्त्य करता हुआ (४४)।

४५—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—अगिलाए सेहवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए कुलवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए गणवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए संघवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए साहम्मियवेयावच्चं करेमाणे।

पांच स्थानों से श्रमण-निर्ग्रन्थ महान् कर्म-निर्जरा और पर्यवसान वाला होता है। जैसे—

१. ग्लानि-रहित होकर शैक्ष (नवदीक्षित मुनि) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
२. ग्लानि-रहित होकर कुल (एक आचार्य के शिष्य-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
३. ग्लानि-रहित होकर गण (अनेक कुल-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
४. ग्लानि-रहित होकर संघ (अनेक गण-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
५. ग्लानि-रहित होकर साधर्मिक (समान समाचारी वाले) की वैयावृत्त्य करता हुआ (४५)।

विसंभोग-सूत्र

४६—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—१. सकिरियट्ठाणं पडिसेवित्ता भवति। २. पडिसेवित्ता णो आलोएइ। ३. आलोइत्ता णो पट्ठवेति। ४. पट्ठवेत्ता णो णिव्विसति। ५. जाइं इमाइं थेराणं ठितिपकप्पाइं भवंति ताइं अतियंचिय-अतियंचिय पडिसेवेति, से हंदऽहं पडिसेवामि किं मं थेरा करेस्संति ?

पांच स्थानों (कारणों) से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने साधर्मिक साम्भोगिक को विसंभोगिक करे तो भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता। जैसे—

१. जो सक्रिय स्थान (अशुभ कर्म का बन्ध करने वाले अकृत्य कार्य) का प्रतिसेवन करता है।
२. जो आलोचना करने योग्य दोष का प्रतिसेवन कर आलोचना नहीं करता है।
३. जो आलोचना कर प्रस्थापन (गुरु-प्रदत्त प्रायश्चित्त का प्रारम्भ) नहीं करता है।
४. जो प्रस्थापन कर निर्वेशन (पूरे प्रायश्चित का सेवन) नहीं करता।
५. जो स्थविरों के स्थितिकल्प होते हैं, उनमें से एक के बाद दूसरे का अतिक्रमण कर प्रतिसेवना करता है, तथा दूसरों के समझाने पर कहता है—लो, मैं दोष का प्रतिसेवन करता हूँ, स्थविर मेरा क्या करेंगे ? (४६)।

विवेचन—साधु-मण्डली में एक साथ बैठ कर भोजन और स्वाध्याय आदि के करने वाले साधुओं को 'साम्भोगिक' कहते हैं। जब कोई साम्भोगिक साधु सूत्रोक्त पांच कारणों में से किसी एक-दो, या सब ही स्थानों को प्रतिसेवन करता है, तब उसे आचार्य साधु-मण्डली से पृथक् कर देते हैं। ऐसे साधु को 'विसम्भोगिक' कहते हैं। उसे विसंभोगिक करते हुए आचार्य जिन-आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता, प्रत्युत पालन ही करता है।

पारंचित-सूत्र

४७—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं पारंचितं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—१. कुले वसति कुलस्स भेदाए अब्भुट्ठिता भवति। २. गणे वसति गणस्स भेदाए अब्भुट्ठेत्ता भवति। ३. हिंसप्पेही। ४. छिद्दप्पेही। ५. अभिक्खणं अभिक्खणं पसिणायतणाइं पउंजित्ता भवति।

पांच कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ अपने साधर्मिक को पाराञ्चित करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१. जो साधु जिस कुल में रहता है, उसी में भेद डालने का प्रयत्न करता है।
२. जो साधु जिस गण में रहता है, उसी में भेद डालने का प्रयत्न करता है।
३. जो हिंसाप्रेक्षी होता है (कुल या गण के साधु का घात करना चाहता है)।
४. जो कुल या गण के सदस्यों का एवं अन्य जनों का छिद्रान्वेषण करता है।
५. जो बार-बार प्रश्नायतनों का प्रयोग करता है (४७)।

विवेचन—अंगुष्ठ, भुजा आदि में देवता को बुलाकर लोगों के प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें चमत्कृत करना, सावद्य अनुष्ठान के प्रश्नों का उत्तर देना और असंयम के आयतनों (स्थानों) का प्रति सेवन करना प्रश्नायतन कहलाता है। सूत्रोक्त पांच कारणों से साधु का वेष छुड़ा कर उसे संघ से पृथक् करना पाराञ्चित प्रायश्चित कहलाता है। उक्त पांच कारणों में से किसी एक-दो, या सभी कारणों से साधु को पाराञ्चित करने की भगवान् की आज्ञा है।

व्युद्ग्रहस्थान-सूत्र

४८—आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच वुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
२. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए कितिकम्मं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
३. आयरियउवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।
४. आयरियउवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं णो सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति।
५. आयरियउवज्झाए णं गणंसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण में पांच व्युद्-ग्रहस्थान (विग्रहस्थान) कहे गये हैं। जैसे—

१. आचार्य और उपाध्याय गण में आज्ञा तथा धारणा का सम्यक् प्रयोग न करें।
२. आचार्य और उपाध्याय गण में यथारात्निक कृतिकर्म का सम्यक् प्रयोग न करें।
३. आचार्य और उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातों (सूत्र के अर्थ-प्रकारों) को धारण करते हैं—जानते हैं उनकी समय-समय पर गण को सम्यक् वाचना न दें।
४. आचार्य और उपाध्याय गण में रोगी और नवदीक्षित साधुओं की वैयावृत्य करने के लिए सम्यक् प्रकार सावधान न रहें, समुचित व्यवस्था न करें।
५. आचार्य और उपाध्याय गण को पूछे विना ही अन्यत्र विहार आदि करें, पूछ कर न करें (४८)।

१. ग्लानि-रहित होकर आचार्य की वैयावृत्त्य करता हुआ।
२. ग्लानि-रहित होकर उपाध्याय की वैयावृत्त्य करता हुआ।
३. ग्लानि-रहित होकर स्थविर की वैयावृत्त्य करता हुआ।
४. ग्लानि-रहित होकर तपस्वी की वैयावृत्त्य करता हुआ।
५. ग्लानि-रहित होकर ग्लान (रोगी मुनि) की वैयावृत्त्य करता हुआ (४४)।

४५—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति, तं जहा—अगिलाए सेहवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए कुलवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए गणवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए संघवेयावच्चं करेमाणे, अगिलाए साहम्मियवेयावच्चं करेमाणे।

पांच स्थानों से श्रमण-निर्ग्रन्थ महान् कर्म-निर्जरा और पर्यवसान वाला होता है। जैसे—

१. ग्लानि-रहित होकर शैक्ष (नवदीक्षित मुनि) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
२. ग्लानि-रहित होकर कुल (एक आचार्य के शिष्य-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
३. ग्लानि-रहित होकर गण (अनेक कुल-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
४. ग्लानि-रहित होकर संघ (अनेक गण-समूह) की वैयावृत्त्य करता हुआ।
५. ग्लानि-रहित होकर साधर्मिक (समान समाचारी वाले) की वैयावृत्त्य करता हुआ (४५)।

विसंभोग-सूत्र

४६—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—१. सकिरियट्ठाणं पडिसेवित्ता भवति। २. पडिसेवित्ता णो आलोएइ। ३. आलोइत्ता णो पट्ठवेति। ४. पट्ठवेत्ता णो णिव्विसति। ५. जाइं इमाइं थेराणं ठितिपकप्पाइं भवंति ताइं अतियंचिय-अतियंचिय पडिसेवेति, से हंदऽहं पडिसेवामि किं मं थेरा करेस्संति ?

पांच स्थानों (कारणों) से श्रमण निर्ग्रन्थ अपने साधर्मिक साम्भोगिक को विसंभोगिक करे तो भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता। जैसे—

१. जो सक्रिय स्थान (अशुभ कर्म का बन्ध करने वाले अकृत्य कार्य) का प्रतिसेवन करता है।
२. जो आलोचना करने योग्य दोष का प्रतिसेवन कर आलोचना नहीं करता है।
३. जो आलोचना कर प्रस्थापन (गुरु-प्रदत्त प्रायश्चित्त का प्रारम्भ) नहीं करता है।
४. जो प्रस्थापन कर निर्वेशन (पूरे प्रायश्चित का सेवन) नहीं करता।
५. जो स्थविरों के स्थितिकल्प होते हैं, उनमें से एक के बाद दूसरे का अतिक्रमण कर प्रतिसेवना करता है, तथा दूसरों के समझाने पर कहता है—लो, मैं दोष का प्रतिसेवन करता हूँ, स्थविर मेरा क्या करेंगे ? (४६)।

विवेचन—साधु-मण्डली में एक साथ बैठ कर भोजन और स्वाध्याय आदि के करने वाले साधुओं को 'साम्भोगिक' कहते हैं। जब कोई साम्भोगिक साधु सूत्रोक्त पांच कारणों में से किसी एक-दो, या सब ही स्थानों को प्रतिसेवन करता है, तब उसे आचार्य साधु-मण्डली से पृथक् कर देते हैं। ऐसे साधु को 'विसम्भोगिक' कहते हैं। उसे विसंभोगिक करते हुए आचार्य जिन-आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता, प्रत्युत पालन ही करता है।

पारंचित-सूत्र

४७—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मियं पारंचितं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—१. कुले वसति कुलस्स भेदाए अब्भुट्ठिता भवति। २. गणे वसति गणस्स भेदाए अब्भुट्ठेत्ता भवति। ३. हिंसप्पेही। ४. छिद्दप्पेही। ५. अभिक्खणं अभिक्खणं पसिणायतणाइं पउंजित्ता भवति।

पांच कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ अपने साधर्मिक को पाराञ्चित करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१. जो साधु जिस कुल में रहता है, उसी में भेद डालने का प्रयत्न करता है।
२. जो साधु जिस गण में रहता है, उसी में भेद डालने का प्रयत्न करता है।
३. जो हिंसाप्रेक्षी होता है (कुल या गण के साधु का घात करना चाहता है)।
४. जो कुल या गण के सदस्यों का एवं अन्य जनों का छिद्रान्वेषण करता है।
५. जो बार-बार प्रश्नायतनों का प्रयोग करता है (४७)।

विवेचन—अंगुष्ठ, भुजा आदि में देवता को बुलाकर लोगों के प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें चमत्कृत करना, सावद्य अनुष्ठान के प्रश्नों का उत्तर देना और असंयम के आयतनों (स्थानों) का प्रतिसेवन करना प्रश्नायतन कहलाता है। सूत्रोक्त पांच कारणों से साधु का वेष छुड़ा कर उसे संघ से पृथक् करना पाराञ्चित प्रायश्चित कहलाता है। उक्त पांच कारणों में से किसी एक-दो, या सभी कारणों से साधु को पाराञ्चित करने की भगवान् की आज्ञा है।

व्युद्ग्रहस्थान-सूत्र

४८—आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंच वुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
२. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए कितिकम्मं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
३. आयरियउवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।
४. आयरियउवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं णो सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति।
५. आयरियउवज्झाए णं गणंसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण में पांच व्युद्-ग्रहस्थान (विग्रहस्थान) कहे गये हैं। जैसे—

१. आचार्य और उपाध्याय गण में आज्ञा तथा धारणा का सम्यक् प्रयोग न करें।
२. आचार्य और उपाध्याय गण में यथारात्निक कृतिकर्म का सम्यक् प्रयोग न करें।
३. आचार्य और उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातों (सूत्र के अर्थ-प्रकारों) को धारण करते हैं—जानते हैं उनकी समय-समय पर गण को सम्यक् वाचना न दें।
४. आचार्य और उपाध्याय गण में रोगी और नवदीक्षित साधुओं की वैयावृत्य करने के लिए सम्यक् प्रकार सावधान न रहें, समुचित व्यवस्था न करें।
५. आचार्य और उपाध्याय गण को पूछे विना ही अन्यत्र विहार आदि करें, पूछ कर न करें (४८)।

विवेचन—कलह के कारण को व्युद्-ग्रहस्थान अथवा विग्रहस्थान कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में बतलाये गये पांच स्थान आचार्य या उपाध्याय के लिए कलह के कारण होते हैं। सूत्र-पठित कुछ विशिष्ट शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—

१. **आज्ञा** — 'हे साधो ! आपको यह करना चाहिए' इस प्रकार के विधेयात्मक आदेश देने को आज्ञा कहते हैं। अथवा—कोई गीतार्थ साधु देशान्तर गया हुआ है। दूसरा गीतार्थ साधु अपने दोष की आलोचना करना चाहता है। वह अगीतार्थ साधु के सामने आलोचना कर नहीं सकता। तब वह अगीतार्थ साधु के साथ गूढ अर्थ वाले वाक्यों-द्वारा अपने दोष का निवेदन देशान्तरवासी गीतार्थ साधु के पास कराता है। ऐसा करने को भी टीकाकार ने 'आज्ञा' कहा है।

२. **धारणा**—'हे साधो ! आपको ऐसा नहीं करना चाहिए', इस प्रकार निषेधात्मक आदेश को धारणा कहते हैं। अथवा—बार-बार आलोचना के द्वारा प्राप्त प्रायश्चित्त-विशेष के अवधारण करने को भी टीकाकार ने धारणा कहा है।

२. **यथारात्निक कृतिकर्म**—दीक्षा-पर्याय में छोटे-बड़े साधुओं के क्रम से वन्दनादि कर्त्तव्यों के निर्देश करने को यथारात्निक कृतिकर्म कहते हैं।

आचार्य या उपाध्याय अपने गण के साधुओं को उचित कार्यों के करने का विधान और अनुचित कार्यों का निषेध न करें, तो संघ में कलह उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार यथारात्निक साधुओं के विनय-वन्दनादि का संघस्थ साधुओं को निर्देश करना भी उनका आवश्यक कर्त्तव्य है। उसका उल्लंघन होने पर भी कलह हो सकता है।

कलह का तीसरा कारण सूत्र-पर्यवजातों की यथाकाल वाचना न देने का है। आगम-सूत्रों की वाचना देने का यह क्रम है—तीन वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले को आचार-प्रकल्प की, चार वर्ष के दीक्षित को सूत्रकृत की, पांच वर्ष के दीक्षित को दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प और व्यवहार-सूत्र की, आठ वर्ष के दीक्षित को स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग की, दश वर्ष के दीक्षित को व्याख्या-प्रज्ञप्ति (भगवती) सूत्र की, ग्यारह वर्ष के दीक्षित को क्षुल्लकविमानप्रविभक्ति आदि पांच अध्ययनों की, बारह वर्ष के दीक्षित को अरुणोपपात आदि पांच अध्ययनों की, तेरह वर्ष के दीक्षित को उत्थानश्रुत आदि चार अध्ययनों की, चौदह वर्ष के दीक्षित को आशीविष-भावना की, पन्द्रह वर्ष के दीक्षित को दृष्टिविषभावना की, सोलह वर्ष के दीक्षित को चारण-भावना की, सत्रह वर्ष के दीक्षित को महास्वप्न भावना की, अट्ठारह वर्ष के दीक्षित को तेजोनिसर्ग की, उन्नीस वर्ष के दीक्षित को बारहवें दृष्टिवाद अंग की और बीस वर्ष के दीक्षित को सर्वाक्षरसंनिपाती श्रुत की वाचना देने का विधान है। जो आचार्य या उपाध्याय जितने भी श्रुत का पाठी है, उसकी दीक्षा-पर्याय के अनुसार अपने शिष्यों को यथाकाल वाचना देनी चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता है, या व्युत्क्रम से वाचना देता है तो उसके ऊपर पक्षपात का दोषारोपण कर कलह हो सकता है।

कलह का चौथा कारण ग्लान और शैक्ष की यथोचित वैयावृत्त्य की सुव्यवस्था न करना है। इससे संघ में अव्यवस्था होती है और पक्षपात का दोषारोपण भी संभव है।

पांचवाँ कारण साधु-संघ से पूछे विना अन्यत्र चले जाना आदि है। इससे भी संघ में कलह हो सकता है।

अत: आचार्य और उपाध्याय को इन पांच कारणों के प्रति सदा जागरूक रहना चाहिए।

अव्युद्ग्रहस्थान-सूत्र

४९—आयरियउवज्झायस्स णं गणंसि पंचावुग्गहट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आयरियउवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवति।

२. एवमाधारातिणिताए (आयरियउवज्झाए णं गणंसि) आधारातिणिताए सम्मं किइकम्मं पउंजित्ता भवति।

३. आयरियउवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले सम्मं अणुपवाइत्ता भवति।

४. आयरियउवज्झाए गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं सम्मं अब्भुट्ठित्ता भवति।

५. आयरियउवज्झाए गणंसि आपुच्छियचारी यावि भवति, णो अणापुच्छियचारी।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण में पाँच अव्युद्-ग्रहस्थान (कलह न होने के कारण) कहे गये हैं। जैसे—

१. आचार्य और उपाध्याय गण में आज्ञा तथा धारणा का सम्यक् प्रयोग करें।

२. आचार्य और उपाध्याय गण में यथारात्निक कृतिकर्म का प्रयोग करें।

३. आचार्य और उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातों को धारण करते हैं, उनकी यथा-समय गण को सम्यक् वाचना दें।

४. आचार्य और उपाध्याय गण में रोगी तथा नवदीक्षित साधुओं की वैयावृत्त्य कराने के लिए सम्यक् प्रकार से सावधान रहें।

५. आचार्य और उपाध्याय गण को पूछकर अन्यत्र विहार आदि करें, बिना पूछे न करें।

उक्त पांच स्थानों का पालन करने वाले आचार्य या उपाध्याय के गण में कभी कलह उत्पन्न नहीं होता है (४९)।

निषद्या-सूत्र

५०—पंच णिसिज्जाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उक्कुडुया, गोदोहिया, समपायपुता, पलियंका, अद्धपलियंका।

निषद्या पांच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. उत्कुटुका-निषद्या—उत्कुटासन से बैठना (उकड़ूं बैठना)।

२. गोदोहिका-निषद्या—गाय को दुहने के आसन से बैठना।

३. समपाद-पुता-निषद्या—दोनों पैरों और पुतों (पुठ्ठों) से भूमि का स्पर्श करके बैठना।

४. पर्यंका-निषद्या—पद्मासन से बैठना।

५. अर्ध-पर्यंका-निषद्या—अर्धपद्मासन से बैठना (५०)।

आर्जवस्थान-सूत्र

५१—पंच अज्जवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—साधुअज्जवं, साधुमद्दवं, साधुलाघवं, साधुखंती, साधुमुत्ती ।

पांच आर्जव स्थान कहे गये हैं । जैसे—

१. साधु-आर्जव—मायाचार का सर्वथा निग्रह करना ।
२. साधु-मार्दव—अभिमान का सर्वथा निग्रह करना ।
३. साधु-लाघव—गौरव का सर्वथा निग्रह करना ।
४. साधु-क्षान्ति—क्रोध का सर्वथा निग्रह करना ।
५. साधु-मुक्ति—लोभ का सर्वथा निग्रह करना ।

विवेचन—राग-द्वेष की वक्रता से रहित सामायिक संयमी साधु के कर्म या भाव को आर्जव अर्थात् संवर कहते हैं । संवर अर्थात्, अशुभ कर्मों के आस्रव को रोकने के पांच कारणों का प्रकृत सूत्र में निरूपण किया गया है । इनमें से लोभकषाय के निग्रह से लाघव और मुक्ति ये दो संवर होते हैं । शेष तीन संवर तीन कषायों के निग्रह से उत्पन्न होते हैं । प्रत्येक आर्जवस्थान के साथ साधु-पद लगाने का अर्थ है—कि यदि ये पांचों कारण सम्यग्दर्शन पूर्वक होते हैं, तो वे संवर के कारण हैं, अन्यथा नहीं । 'साधु' शब्द यहाँ सम्यक् या समीचीन अर्थ का वाचक समझना चाहिए (५१) ।

ज्योतिष्क-सूत्र

५२—पंचविहा जोइसिया पण्णत्ता, तं जहा—चंदा, सूरा, गहा, णक्खत्ता, ताराओ ।

ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. ग्रह, ४. नक्षत्र, ५. तारा (५२) ।

देव-सूत्र

५३—पंचविहा देवा पण्णत्ता, तं जहा—भवियदव्वदेवा, णरदेवा, धम्मदेवा, देवातिदेवा, भावदेवा ।

देव पांच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. भव्य-द्रव्य-देव—भविष्य में होने वाला देव ।
२. नर-देव—राजा, महाराजा यावत् चक्रवर्ती ।
३. धर्म-देव—आचार्य, उपाध्याय आदि ।
४, देवाधिदेव—अर्हन्त तीर्थंकर ।
५. भावदेव—देव-पर्याय में वर्तमान देव (५३) ।

परिचारणा-सूत्र

५४—पंचविहा परियारणा पण्णत्ता, तं जहा—कायपरियारणा, फासपरियारणा, रूवपरियारणा, सद्दपरियारणा, मणपरियारणा ।

परिचारणा (मैथुन या कुशील-सेवना) पांच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. काय-परिचारणा—मनुष्यों के समान मैथुन सेवन करना।
२. स्पर्श-परिचारणा—स्त्री-पुरुष का परस्पर शरीरालिंगन करना।
३. रूप-परिचारणा—स्त्री-पुरुष का काम-भाव से परस्पर रूप देखना।
४. शब्द-परिचारणा—स्त्री-पुरुष के काम-भाव से परस्पर गीतादि सुनना।
५. मनःपरिचारणा—स्त्री-पुरुष का काम-भाव से परस्पर चिन्तन करना (५४)।

अग्रमहिषी-सूत्र

५५—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कालो, राती, रयणी, विज्जू, मेहा।

असुरकुमारराज चमर असुरेन्द्र की पांच अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—
१. काली, २. रात्री, ३. रजनी, ४. विद्युत्, ५. मेघा (५५)।

५६—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो पंच अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सुंभा, णिसुंभा, रंभा, णिरंभा, मदणा।

वैरोचनराज बलि वैरोचनेन्द्र की पाँच अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—
१. शुम्भा, २. निशुम्भा, ३. रम्भा, ४. निरंभा, ५, मदना (५६)।

अनीक-अनीकाधिपति-सूत्र

५७—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो पंच संगामिया अणिया, पंच संगामिया अणियाधिवती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, महिसाणिए, रहाणिए।

दुमे पायत्ताणियाधिवती, सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, कुंथू हत्थिराया कुंजराणियाधिवती, लोहितक्खे महिसाणियाधिवती, किण्णरे रधाणियाधिवती।

असुरकुमारराज चमर असुरेन्द्र के संग्राम (युद्ध) करने वाले पांच अनीक (सेनाएं) और पांच अनीकाधिपति (सेनापति) कहे गये हैं। जैसे—

१. पादातानीक—पैदल चलने वाली सेना।
२. पीठानीक—अश्वारोही सेना।
३. कुंजरानीक—गजारोही सेना।
४. महिषानीक—महिषारोही (भैंसा-पाड़ा पर बैठने वाली) सेना।
५. रथानीक—रथारोही सेना (५७)।

इनके सेनापति इस प्रकार हैं—

१. द्रुम—पादातानीक का अधिपति।
२. अश्वराज सुदामा—पीठानीक का अधिपति।
३. हस्तिराज कुन्थु—कुंजरानीक का अधिपति।
४. लोहिताक्ष—महिषानीक का अधिपति।
५ किन्नर—रथानीक का अधिपति।

५८—बलिस्स णं वइरोणिंदस्स वइरोयणरण्णो पंच संगामियाणिया, पंच संगामियाणियाधिवती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए, (पीढाणिए, कुंजराणिए, महिसाणिए), रधाणिए।

महद्दुमे पायत्ताणियाधिवती, महासोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, मालंकारे हत्थिराया कुंजराणियाधिपती, महालोहिअक्खे महिसाणियाधिपती, किंपुरिसे रधाणियाधिपती।

वैरोचनराज बलि वैरोचनेन्द्र के संग्राम करने वाले पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१. पादातानीक, २. पीठानीक, ३. कुंजरानीक, ४. महिषानीक, ५. रथानीक।

अनीकाधिपति—

१. महाद्रुम—पायातानीक-अधिपति।
२. अश्वराज महासुदामा—पीठानीक-अधिपति।
३. हस्तिराज मालंकार—कुंजरानीक-अधिपति।
४. महालोहिताक्ष—महिषानीक-अधिपति।
५. किंपुरुष—रथानीक-अधिपति (५८)।

५९—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पंच संगामिया अणिया, पंच संगामियाणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव रहाणिए।

भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती, जसोधरे आसराया पीढाणियाधिपती, सुदंसणे हत्थिराया कुंजराणियाधिपती, णीलकंठे महिसाणियाधिपती, आणंदे रहाणियाहिवई।

नागकुमारराज, नागकुमारेन्द्र धरण के संग्राम करने वाले पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१. पादातानीक, २. पीठानीक, ३. कुंजरानीक, ४. महिषानीक, ५. रथानीक।

अनीकाधिपति— १. भद्रसेन—पादातानीक-अधिपति।
२. अश्वराज-यशोधर—पीठानीक-अधिपति।
३. हस्तिराज-सुदर्शन—कुंजरानीक-अधिपति।
४. नीलकण्ठ—महिषानीक-अधिपति।
५. आनन्द—रथानीक-अधिपति (५९)।

६०—भूयाणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो पंच संगामियाणिया, पंच संगामियाणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव रहाणिए।

दक्खे पायत्ताणियाहिवई, सुग्गीवे आसराया पीढाणियाहिवई, सुविक्कमे हत्थिराया कुंजराणियाहिवई, सेयकंठे महिसाणियाहिवई, णंदुत्तरे रहाणियाहिवई।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द के संग्राम करने वाले पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१. पादातानीक, २. पीठानीक, ३. कुंजरानीक, ४. महिषानीक, ५. रथानीक।

अनीकाधिपति— १. दक्ष—पादातानीक-अधिपति ।
२. सुग्रीव अश्वराज—पीठानीक-अधिपति ।
३. सुविक्रम हस्तिराज—कुंजरानीक-अधिपति ।
४. श्वेतकण्ठ—महिषानीक अधिपति ।
५. नन्दोत्तर—रथानीक-अधिपति (६०) ।

६१—वेणुदेवस्स णं सुवण्णिदस्स सुवण्णकुमाररण्णो पंच संगामियाणिया, पंच संगामियाणियाहिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए, एवं जधा धरणस्स तधा वेणुदेवस्सवि । वेणुदालियस्स जहा भूताणंदस्स ।

सुपर्णकुमारराज सुपर्णेन्द्र वेणुदेव के संग्राम करने वाले पांच अनीक और अनीकाधिकपति धरण के समान कहे गये हैं । जैसे—

अनीक—१. पादातानीक, २. पीठानीक, ३. कुंजरानीक, ४. महिषानीक, ५. रथानीक ।

अनीकाधिपति— १. भद्रसेन—पादातानीक-अधिपति ।
२. अश्वराज यशोधर—पीठानीक-अधिपति ।
३. हस्तिराज सुदर्शन—कुंजरानीक-अधिपति ।
४. नीलकण्ठ—महिषानीक-अधिपति ।
५. आनन्द—रथानीक-अधिपति (६१) ।

जैसे भूतानन्द के पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार नागकुमारराज, नागकुमारेन्द्र वेणुदालि के भी पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं ।

६२—जधा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स ।

जिस प्रकार धरण के पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार सभी दक्षिणदिशाधिपति शेष भवनपतियों के इन्द्र—हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष के भी संग्राम करने वाले पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति क्रमशः— भद्रसेन, अश्वराज यशोधर, हस्तिराज सुदर्शन, नीलकण्ठ और आनन्द जानना चाहिये ।

६३—जधा भूताणंदस्स तधा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स ।

जिस प्रकार भूतानन्द के पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार उत्तरदिशाधिपति शेष सभी भवनपतियों के अर्थात् वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष के पांच-पांच अनीक और पांच-पांच अनीकाधिपति उन्हीं नामवाले जानना चाहिये (६३) ।

६४—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणिया, पंच संगामियाणियाधिवती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए, (पीढाणिए, कुंजराणिए), उसभाणिए, रधाणिए ।

हरिणेगमेसी पायत्ताणियाधिवती, वाऊ आसराया पीढाणियाधिवती, एरावणे हत्थिराया कुंजराणियाधिपती, दामड्ढी उसभाणियाधिपती, माढरे रधाणियाधिपती ।

देवराज देवेन्द्र शक्र के संग्राम करने वाले पांच अनीक और पाँच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१. पादातानीक, २. पीठानीक, ३, कुंजरानीक ४. वृषभानीक, ५. रथानीक।

अनीकाधिपति— १. हरिनैगमेषी—पादातानीक-अधिपति।
२. अश्वराज वायु—पीठानीक-अधिपति।
३. हस्तिराज ऐरावण—कुंजरानीक-अधिपति।
४. दामर्धि—वृषभानीक-अधिपति।
५. माठर—रथानीक-अधिपति (६४)।

६५—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो पंच संगामिया अणिया जाव पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, उसभाणिए, रधाणिए।

लहुपरक्कमे पायत्ताणियाधिवती, महावाऊ आसराया पीढाणियाहिवती, पुप्फदंते हत्थिराया कुंजराणियाहिवती, महादामड्ढी उसभाणियाहिवती महामाढरे रधाणियाहिवती।

देवराज देवेन्द्र ईशान के संग्राम करने वाले पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं। जैसे—

अनीक—१. पादातानीक, १. पीठानीक, ३. कुंजरानीक, ४. वृषभानीक, ५. रथानीक।

अनीकाधिपति— १. लघुपराक्रम—पादातानीक-अधिपति।
२. अश्वराज महावायु—पीठानीक-अधिपति।
३. हस्तिराज पुष्पदन्त—कुंजरानीक-अधिपति।
४. महादामर्धि—वृषभानीक-अधिपति।
५. महामाठर—रथानीक-अधिपति (६५)।

६६—जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव आरणस्स।

जिस प्रकार देवराज देवेन्द्र शक्र के पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार आरणकल्प तक के सभी दक्षिणेन्द्रों के भी संग्राम करने वाले पांच-पांच अनीक और पांच पांच अनीकाधिपति जानना चाहिए (६६)।

६७—जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव अच्चुतस्स।

जिस प्रकार देवराज देवेन्द्र ईशान के पांच अनीक और पांच अनीकाधिपति कहे गये हैं, उसी प्रकार अच्युतकल्प तक के सभी उत्तरेन्द्रों के भी संग्राम करनेवाले पांच-पांच अनीक और पांच-पांच अनीकाधिपति जानना चाहिए (६७)।

देवस्थिति-सूत्र

६८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भंतरपरिसाए देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र शक्र की अन्तरंग परिषद् के परिषद्-देवों की स्थिति पांच पल्योपम कही गई है (६८)।

६९—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भंतरपरिसाए देवीणं पंच पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र ईशान की अन्तरंग परिषद् की देवियों की स्थिति पांच पल्योपम कही गई है (६९)।

प्रतिघात-सूत्र

७०—पंचविहा पडिहा पण्णत्ता, तं जहा—गतिपडिहा, ठितिपडिहा, बंधणपडिहा, भोगपडिहा, बल-वीरिय-पुरिसयार-परक्कमपडिहा।

प्रतिघात (अवरोध या स्खलन) पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. गति-प्रतिघात—अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा शुभगति का अवरोध।
२. स्थिति-प्रतिघात—उदीरणा के द्वारा कर्मस्थिति का अल्पीकरण।
३. बन्धन-प्रतिघात—शुभ औदारिक शरीर-बन्धनादि की प्राप्ति का अवरोध।
४. भोग-प्रतिघात—भोग्य सामग्री के भोगने का अवरोध।
५. बल, वीर्य, पुरस्कार और पराक्रम की प्राप्ति का अवरोध (७०)।

आजीव-सूत्र

७१—पंचविधे आजीवे पण्णत्ते, तं जहा—जातिआजीवे, कुलाजीवे, कम्माजीवे, सिप्पाजीवे, लिंगाजीवे।

आजीवक (आजीविका करने वाले पुरुष) पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जात्याजीवक—अपनी ब्राह्मणादि जाति बताकर आजीविका करने वाला।
२. कुलाजीवक—अपना उग्रकुल आदि बताकर आजीविका करने वाला।
३. कर्माजीवक—कृषि आदि से आजीविका करने वाला।
४. शिल्पाजीवक—शिल्प आदि कला से आजीविका करने वाला।
५. लिंगाजीवक—साधुवेष आदि धारण कर आजीविका करने वाला (७१)।

राजचिह्न-सूत्र

७२—पंच रायककुधा पण्णत्ता, तं जहा—खग्गं, छत्तं, उप्फेसं, पाणहाओ, वालवीअणे।

राज-चिह्न पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. खड्ग, १. छत्र, ३. उष्णीष (मुकुट), ४. उपानह (पाद-रक्षक, जूते) ५. बाल-व्यजन (चंवर) (७२)।

उदीर्णपरीषहोपसर्ग-सूत्र

७३—पंचहिं ठाणेहिं छउमत्थे णं उदिण्णे परिस्सहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अहियासेज्जा, तं जहा—

१. उदिण्णकम्मे खलु अयं पुरिसे उम्मत्तगभूते। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा अवहरति वा।

२. जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा तहेव जाव अवहरति (अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

३. ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा तहेव जाव अवहरति (अवहसति वा णिच्छोडति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिंदति वा विच्छिंदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

४. ममं च णं सम्ममसहमाणस्स अखममाणस्स अतितिक्खमाणस्स अणधियासमाणस्स किं मण्णे कज्जति ? एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जति।

५. ममं च णं सम्मं सहमाणस्स जाव (खममाणस्स तितिक्खमाणस्स) अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जति ? एगंतसो मे णिज्जरा कज्जति।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं छउमत्थे उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव (खमेज्जा तितिक्खेज्जा) अहियासेज्जा।

पांच कारणों से छद्मस्थ पुरुष उदीर्ण (उदय या उदीरणा को प्राप्त) परीषहों और उपसर्गों को सम्यक्-अविचल भाव से सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है, और उनसे प्रभावित नहीं होता है। जैसे—

१. यह पुरुष निश्चय से उदीर्णकर्मा है, इसलिए यह उन्मत्तक (पागल) जैसा हो रहा है। और इसी कारण यह मुझ पर आक्रोश करता है या मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, या मेरी निर्भत्सना करता है, या मुझे बांधता है, या रोकता है, या छविच्छेद (अंग का छेदन) करता है, या पमार (मूर्च्छित) करता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोंछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

२. यह पुरुष निश्चय से यक्षाविष्ट (भूत-प्रेतादि से प्रेरित) है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, या मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, या मेरी निर्भत्सना करता है, या मुझे बांधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या मूर्च्छित करता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोंछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

३. मेरे इस भव में वेदन करने के योग्य कर्म उदय में आ रहा है, इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी

देता है, या मेरी निर्भत्सना करता है, या बांधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या मूर्छित करता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल, या पादप्रोंछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

४. यदि मैं इन्हें सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन नहीं करूंगा, क्षान्ति नहीं रखूंगा, तितिक्षा नहीं रखूंगा और उनसे प्रभावित होऊंगा, तो मुझे क्या होगा ? मुझे एकान्त रूप से पाप-कर्म का संचय होगा।

५. यदि मैं इन्हें सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन करूंगा, क्षान्ति रखूंगा, तितिक्षा रखूंगा, और उनसे प्रभावित नहीं होऊंगा, तो मुझे क्या होगा ? एकान्त रूप से कर्म-निर्जरा होगी।

इन पांच कारणों से छद्मस्थ पुरुष उदयागत परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहता है, क्षान्ति रखता है, तितिक्षा रखता है, और उनसे प्रभावित नहीं होता है।

७४—पंचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव (खमेज्जा तितिक्खेज्जा) अहियासेज्जा, तं जहा—

१. खित्तचित्ते खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे अक्कोसति वा तहेव जाव (अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

२. दित्तचित्ते खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे जाव (अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

३. जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे। तेण मे एस पुरिसे जाव (अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

४. ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवति। तेण मे एस पुरिसे जाव (अक्कोसति वा अवहसति वा णिच्छोडेति वा णिब्भंछेति वा बंधेति वा रुंभति वा छविच्छेदं करेति वा, पमारं वा णेति, उद्दवेइ वा, वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणमच्छिदति वा विच्छिदति वा भिंदति वा) अवहरति वा।

५. ममं च णं सम्मं सहमाणं खममाणं तितिक्खमाणं अहियासेमाणं पासेत्ता बहवे अण्णे छउमत्था समणा णिग्गंथा उदिण्णे-उदिण्णे परीसहोवसग्गे एवं सम्मं सहिस्संति जाव (खमिस्संति तितिक्खिस्संति) अहियासिस्संति।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं केवली उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव (खमेज्जा तितिक्खेज्जा) अहियासेज्जा।

पांच कारणों से केवली उदयागत परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहते हैं, क्षान्ति रखते हैं, तितिक्षा रखते हैं, और उनसे प्रभावित नहीं होते हैं। जैसे—

१. यह पुरुष निश्चय से विक्षिप्तचित्त है—शोक आदि से बेभान है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है या मेरी निर्भर्त्सना करता है या मुझे बांधता है या रोकता है या छविच्छेद करता है या वध-स्थान में ले जाता है या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोंछन का छेदन करता है या विच्छेदन करता है या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

२. यह पुरुष निश्चय से दृप्तचित्त (उन्माद-युक्त) है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है या मेरा उपहास करता है या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है या मेरी निर्भर्त्सना करता है या मुझे बांधता है या रोकता है या छविच्छेदन करता है या वधस्थान में ले जाता है या उपद्रुत करता है, वस्त्र या पात्र या कम्बल या पादप्रोंछन का छेदन करता है या भेदन करता है या अपहरण करता है।

३. यह पुरुष निश्चय से यक्षाविष्ट (यक्ष से प्रेरित) है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, मेरी निर्भर्त्सना करता है, या मुझे बांधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या वधस्थान में ले जाता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र, या पात्र, या कम्बल, या पादप्रोंछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

४. मेरे इस भव में वेदन करने योग्य कर्म उदय में आरहा है, इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है—मुझे गाली देता है, या मेरा उपहास करता है, या मुझे बाहर निकालने की धमकी देता है, या मेरी निर्भर्त्सना करता है, या मुझे बांधता है, या रोकता है, या छविच्छेद करता है, या वधस्थान में ले जाता है, या उपद्रुत करता है, वस्त्र, या पात्र, या कम्बल, या पादप्रोंछन का छेदन करता है, या विच्छेदन करता है, या भेदन करता है, या अपहरण करता है।

५. मुझे सम्यक् प्रकार अविचल भाव से परीषहों और उपसर्गों को सहन करते हुए, क्षान्ति रखते हुए, तितिक्षा रखते हुए, और प्रभावित नहीं होते हुए देखकर बहुत से अन्य छद्मस्थ श्रमण-निर्ग्रन्थ उदयागत परीषहों और उदयागत उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन करेंगे, क्षान्ति रखेंगे, तितिक्षा रखेंगे और उनसे प्रभावित नहीं होंगे।

इन पांच कारणों से केवली उदयागत परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार अविचल भाव से सहन करते हैं, क्षान्ति रखते हैं, तितिक्षा रखते हैं और उनसे प्रभावित नहीं होते हैं।

हेतु-सूत्र

७५—पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—हेउं ण जाणति, हेउं ण पासति, हेउं ण बुज्झति, हेउं णाभिगच्छति, हेउं अण्णाणमरणं मरति।

हेतु पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. हेतु को (सम्यक्) नहीं जानता है।

२. हेतु को (सम्यक्) नहीं देखता है।
३. हेतु को (सम्यक्) नहीं समझता है—श्रद्धा नहीं करता है।
४. हेतु को (सम्यक् रूप से) प्राप्त नहीं करता है।
५ हेतु-पूर्वक अज्ञानमरण से मरता है (७५)।

७६—पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—हेउणा ण जाणति, जाव (हेउणा ण पासति, हेउणा ण बुज्झति, हेउणा णाभिगच्छति), हेउणा अण्णाणमरणं मरति।

पुनः हेतु पांच कहे गये हैं। जैसे—

१. हेतु से असम्यक् जानता है।
२. हेतु से असम्यक् देखता है।
३. हेतु से असम्यक् समझता है, असम्यक् श्रद्धा करता है।
४. हेतु से असम्यक् प्राप्त करता है।
५. सहेतुक अज्ञानमरण से मरता है (७६)।

७७—पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—हेउं जाणइ, जाव (हेउं पासइ, हेउं बुज्झइ, हेउं अभिगच्छइ), हेउं छउमत्थमरणं मरति।

पुनः पांच हेतु कहे गये हैं। जैसे—

१. हेतु को (सम्यक्) जानता है।
२. हेतु को (सम्यक्) देखता है।
३. हेतु की (सम्यक्) श्रद्धा करता है।
४. हेतु को (सम्यक्) प्राप्त करता है।
५. हेतु-पूर्वक छद्मस्थमरण मरता है (७७)।

७८—पंच हेऊ पण्णत्ता, तं जहा—हेउणा जाणइ जाव (हेउणा पासइ, हेउणा बुज्झइ, हेउणा अभिगच्छइ), हेउणा छउमत्थमरणं मरइ।

पुनः पांच हेतु कहे गये हैं। जैसे—

१. हेतु से (सम्यक्) जानता है।
२. हेतु से (सम्यक्) देखता है।
३. हेतु से (सम्यक्) श्रद्धा करता है।
४. हेतु से (सम्यक्) प्राप्त करता है।
५. हेतु से (सम्यक्) छद्मस्थमरण मरता है (७८)।

अहेतु-सूत्र

७९—पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउं ण जाणति, जाव (अहेउं ण पासति, अहेउं ण बुज्झति, अहेउं णाभिगच्छति), अहेउं छउमत्थमरणं मरति।

पांच अहेतु कहे गये हैं। जैसे—

१. अहेतु को नहीं जानता है।
२. अहेतु को नहीं देखता है।
३. अहेतु की श्रद्धा नहीं करता है।
४ अहेतु को प्राप्त नहीं करता है।
५. अहेतुक छद्मस्थमरण मरता है (७९)।

८०—पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउणा ण जाणति, जाव (अहेउणा ण पासति, अहेउणा ण बुज्झति, अहेउणा णाभिगच्छति), अहेउणा छउमत्थमरणं मरति।

पुनः पांच अहेतु कहे गये हैं। जैसे—

१. अहेतु से नहीं जानता है।
२. अहेतु से नहीं देखता है।
३. अहेतु से श्रद्धा नहीं करता है।
४. अहेतु से प्राप्त नहीं करता है।
५. अहेतुक छद्मस्थमरण मरता है (८०)।

८१—पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउं जाणति, जाव (अहेउं पासति, अहेउं बुज्झति, अहेउं अभिगच्छति), अहेउं केवलिमरणं मरति।

पुनः पांच अहेतु कहे गये हैं। जैसे—

१. अहेतु को जानता है।
२. अहेतु को देखता है।
३. अहेतु की श्रद्धा करता है।
४. अहेतु को प्राप्त करता है।
५. अहेतुक केवलि-मरण मरता है (८१)।

८२—पंच अहेऊ पण्णत्ता, तं जहा—अहेउणा जाणति, जाव (अहेउणा पासति, अहेउणा बुज्झति, अहेउणा अभिगच्छति), अहेउणा केवलिमरणं मरति।

पुनः पांच अहेतु कहे गये हैं। जैसे—

१. अहेतु से जानता है।
२. अहेतु से देखता है।
३. अहेतु से श्रद्धा करता है।
४. अहेतु से प्राप्त करता है।
५. अहेतुक केवलि-मरण मरता है (८२)।

विवेचन—उपर्युक्त आठ सूत्रों में से आरम्भ के चार सूत्र हेतु-विषयक हैं और अन्तिम चार सूत्र अहेतु-विषयक हैं। जिसका साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध निश्चित रूप से पाया जाता है,

ऐसे साधन को हेतु कहते हैं। जैसे—अग्नि के होने पर ही धूम होता है और अग्नि के अभाव में धूम नहीं होता है, अतः अग्नि और धूम का अविनाभाव सम्बन्ध है। जिस किसी अप्रत्यक्ष स्थान से धूम उठता हुआ दिखता है, तो निश्चित रूप से यह ज्ञात हो जाता है कि उस अप्रत्यक्ष स्थान पर अग्नि अवश्य है। यहां पर जैसे धूम अग्नि का साधक हेतु है, इसी प्रकार जिस किसी भी पदार्थ का जो भी अविनाभावी हेतु होता है, उसके द्वारा उस पदार्थ का ज्ञान नियम से होता है। इसे ही अनुमान-प्रमाण कहते हैं।

पदार्थ दो प्रकार के होते हैं—हेतुगम्य और अहेतुगम्य। दूर देश स्थित जो अप्रत्यक्ष पदार्थ हेतु से जाने जाते हैं, उन्हें हेतुगम्य कहते हैं। किन्तु जो पदार्थ सूक्ष्म हैं, देशान्तरित (सुमेरु आदि) और कालान्तरित (राम रावण आदि) हैं, जिसका हेतु से ज्ञान संभव नहीं है, जो केवल आप्त पुरुषों के वचनों से ही ज्ञात किये जाते हैं, उन्हें अहेतुगम्य अर्थात् आगमगम्य कहा जाता है। जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि अरूपी पदार्थ केवल आगम-गम्य हैं, हमारे लिए वे हेतुगम्य नहीं है।

प्रस्तुत सूत्रों में हेतु और हेतुवादी (हेतु का प्रयोग करने वाला) ये दोनों ही हेतु शब्द से विवक्षित हैं। जो हेतुवादी असम्यग्दर्शी या मिथ्यादृष्टि होता है, वह कार्य को जानता-देखता तो है, परन्तु उसके हेतु को नहीं जानता-देखता है। वह हेतु-गम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा नहीं जानता-देखता। किन्तु जो हेतुवादी सम्यग्दर्शी या सम्यग्दृष्टि होता है, वह कार्य के साथ-साथ उसके हेतु को भी जानता-देखता है। वह हेतु-गम्य पदार्थ को हेतु के द्वारा जानता-देखता है।

परोक्ष ज्ञानी जीव ही हेतु के द्वारा परोक्ष वस्तुओं को जानते-देखते हैं। किन्तु जो प्रत्यक्ष-ज्ञानी होते हैं, वे प्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं को जानते-देखते हैं। प्रत्यक्षज्ञानी भी दो प्रकार से होते हैं—देशप्रत्यक्षज्ञानी और सकलप्रत्यक्षज्ञानी। देशप्रत्यक्षज्ञानी धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों की अहेतुक या स्वाभाविक परिणतियों को आंशिकरूप से ही जानता-देखता है, पूर्णरूप से नहीं जानता-देखता। वह अहेतु (प्रत्यक्ष ज्ञान) के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थों को सर्वभावेन नहीं जानता-देखता। किन्तु जो सफल प्रत्यक्षज्ञानी सर्वज्ञकेवली होता है, वह धर्मास्तिकाय आदि अहेतुगम्य पदार्थों की अहेतुक या स्वाभाविक परिणतियों को सम्पूर्ण रूप से जानता-देखता है। वह प्रत्यक्षज्ञान के द्वारा अहेतुगम्य पदार्थों को सर्वभाव से जानता-देखता है।

उक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि प्रारम्भ के दो सूत्र असम्यग्दर्शी हेतुवादी की अपेक्षा से और तीसरा-चौथा सूत्र सम्यग्दर्शी हेतुवादी की अपेक्षा से कहे गये हैं। पांचवां-छठा सूत्र देशप्रत्यक्ष-ज्ञानी छद्मस्थ की अपेक्षा से और सातवां-आठवां सूत्र सकलप्रत्यक्षज्ञानी सर्वज्ञकेवली की अपेक्षा से कहे गये हैं।

उक्त आठों सूत्रों का पांचवां भेद मरण से सम्बन्ध रखता है। मरण दो प्रकार का कहा गया है—सहेतुक (सोपक्रम) और अहेतुक (निरुपक्रम)। शस्त्राघात आदि बाह्य हेतुओं से होने वाले मरण को सहेतुक, सोपक्रम या अकालमरण कहते हैं। जो मरण शस्त्राघात आदि बाह्य हेतुओं के विना आयुकर्म के पूर्ण होने पर होता है, वह अहेतुक, निरुपक्रम या यथाकाल मरण कहलाता है। असम्यग्दर्शी हेतुवादी का अहेतुक मरण अज्ञानमरण कहलाता है और सम्यग्दर्शी हेतुवादी का

सहेतुकमरण छद्मस्थमरण कहलाता है। देशप्रत्यक्षज्ञानी का सहेतुकमरण भी छद्मस्थमरण कहा जाता है। सकलप्रत्यक्षज्ञानी सर्वज्ञ का अहेतुक मरण केवलि-मरण कहा जाता है।

संस्कृत टीकाकार श्री अभयदेव सूरि कहते हैं कि हमने उक्त सूत्रों का यह अर्थ भगवती-सूत्र के पंचम शतक के सप्तम उद्देशक की चूर्णि के अनुसार लिखा है, जो कि सूत्रों के पदों की गमनिका मात्र है।[1] इन सूत्रों का वास्तविक अर्थ तो बहुश्रुत आचार्य ही जानते हैं।[2]

अनुत्तर-सूत्र

८३—केवलिस्स णं पंच अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए।

केवली के पांच स्थान अनुत्तर (सर्वोत्तम—अनुपम) कहे गये हैं। जैसे—

१. अनुत्तर ज्ञान, २. अनुत्तर दर्शन ३. अनुत्तर चारित्र,
४. अनुत्तर तप, ५. अनुत्तर वीर्य (८३)।

विवेचन—चार घातिकर्मों का क्षय करने वाले केवली होते हैं। इनमें से ज्ञानावरणकर्म के क्षय से अनुत्तर ज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से अनुत्तरदर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से अनुत्तर चरित्र और तप, तथा अन्तराय कर्म के क्षय से अनुत्तर वीर्य प्राप्त होता है।

पंच-कल्याण-सूत्र

८४—पउमप्पहे णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—१. चित्ताहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। २. चित्ताहिं जाते। ३. चित्ताहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइए। ४. चित्ताहिं अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे। ५. चित्ताहिं परिणिव्वुते।

पद्मप्रभ तीर्थंकर के पंच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये।
२. चित्रा नक्षत्र में जन्म हुआ।
३. चित्रा नक्षत्र में मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।
४. चित्रा नक्षत्र में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, सम्पूर्ण, परिपूर्ण केवलवर ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ।
५. चित्रा नक्षत्र में परिनिर्वृत हुए—निर्वाणपद पाया (८४)।

८५—पुप्फदंते णं अरहा पंचमूले हुत्था, तं जहा—मूलेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।

पुष्पदन्त तीर्थंकर के पांच कल्याणक मूल नक्षत्र में हुए। जैसे—

---

१. 'पंच हेऊ' इत्यादि सूत्रनवकम्। तत्र भगवतीपञ्चमशतसप्तमोद्देशकचूर्ण्यनुसारेण किमपि लिख्यते। (स्थानाङ्ग सटीक. पृ. २९१ A)

२. गमनिकामात्रमेतत्। तत्त्वं तु बहुश्रुता विदन्तीति। (स्थानाङ्ग सटीक, पृ. २९२ A)

१. मूल नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये।
२. मूल नक्षत्र में जन्म लिया।
३. मूल नक्षत्र में अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।
४. मूल नक्षत्र में अनुत्तर परिपूर्ण ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ।
५. मूल नक्षत्र में परिनिर्वृत्त हुए—निर्वाण पद पाया (८६)।

८६—एवं चेव एवमेतेणं अभिलावेणं इमातो गाहातो अणुगंतव्वातो—

पउमप्पभस्स चित्ता, मूले पुण होइ पुप्फदंतस्स।
पुव्वाइं आसाढा, सीयलस्सुत्तर विमलस्स भद्दवता ॥१॥
रेवतिता अणंतजिणो, पूसो धम्मस्स संतिणो भरणी।
कुंथुस्स कत्तियाओ, अरस्स तह रेवतीतो य ॥२॥
मुणिसुव्वयस्स सवणो, आसिणि णमिणो य णेमिणो चित्ता।
पासस्स विसाहाओ, पंच य हत्थुत्तरे वीरो ॥३॥

[सीयले णं अरहा पंचपुव्वासाढे हुत्था, तं जहा—पुव्वासाढाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।

शीतलनाथ तीर्थंकर के पांच कल्याणक पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (८६)।

८७—विमले णं अरहा पंचउत्तराभद्दवए हुत्था, तं जहा—उत्तराभद्दवयाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ८८—अणंते णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा—रेवतिहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ८९—धम्मे णं अरहा पंचपूसे हुत्था, तं जहा—पूसेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ९०—संती णं अरहा पंचभरणीए हुत्था, तं जहा—भरणीहि चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ९१—कुंथू णं णरहा पंचकत्तिए हुत्था, तं जहा—कत्तियाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ९२—अरे णं अरहा पंचरेवतिए हुत्था, तं जहा—रेवतिहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ९३—मुणिसुव्वए णं अरहा पंचसवणे हुत्था, तं जहा—सवणेणं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ९४—णेमी णं अरहा पंचआसिणीए हुत्था, तं जहा—आसिणीहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ९५—णेमी णं अरहा पंचचित्ते हुत्था, तं जहा—चित्ताहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। ९६—पासे णं अरहा पंचविसाहे हुत्था, तं जहा—विसाहाहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते।]

विमल तीर्थंकर के पांच कल्याणक उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (८७)

अनन्त तीर्थंकर के पांच कल्याणक रेवती नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. रेवती नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (८८)।

धर्म तीर्थंकर के पांच कल्याणक पुष्य नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. पुष्य नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (८९)।

शान्ति तीर्थंकर के पाँच कल्याणक भरणी नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. भरणी नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (९०)

कुन्थु तीर्थंकर के पाँच कल्याणक कृत्तिका नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. कृत्तिका नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (९१)।

अर तीर्थंकर के पाँच कल्याणक रेवती नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. रेवती नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (९२)।

मुनिसुव्रत तीर्थंकर के पाँच कल्याणक श्रवण नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. श्रवण नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (९३)।

नमि तीर्थंकर के पांच कल्याणक अश्विनी नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. अश्विनी नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (९४)।

नेमि तीर्थंकर के पंच कल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (९५)।

पार्श्व तीर्थंकर के पांच कल्याणक विशाखा नक्षत्र में हुए। जैसे—

१. विशाखा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये। इत्यादि (९६)।

९७—समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तं जहा—१. हत्थुत्तराहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते। २. हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिते। ३. हत्थुत्तराहिं जाते। ४. हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता जाव (अगाराओ अणगारितं) पव्वइए। ५. हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे जाव (णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे) केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे।

श्रमण भगवान् महावीर के पंच कल्याणक हस्तोत्तर (उत्तरा फाल्गुनी) नक्षत्र में हुए जैसे—

१. हस्तोत्तर नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हुए और च्युत होकर गर्भ में आये।

२. हस्तोत्तर नक्षत्र में देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में संहृत हुए।

३. हस्तोत्तर नक्षत्र में जन्म लिया।

४. हस्तोत्तर नक्षत्र में अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए।

५. हस्तोत्तर नक्षत्र में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, सम्पूर्ण, परिपूर्ण केवल वर ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ।

विवेचन—जिनसे त्रिलोकवर्ती जीवों का कल्याण हो, उन्हें कल्याणक कहते हैं। तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, निष्क्रमण (प्रव्रज्या) केवलज्ञानप्राप्ति और निर्वाण-प्राप्ति ये पाँचों ही अवसर जीवों को सुख-दायक हैं। यहां तक कि नरक के नारक जीवों को भी उक्त पांचों कल्याणकों के समय कुछ समय के लिए सुख की लहर प्राप्त हो जाती है। इसलिए तीर्थंकरों के गर्भ-जन्मादि को कल्याणक कहा जाता है। (भ० महावीर का निर्वाण स्वाति नक्षत्र में हुआ था)।

॥ पंचम स्थान का प्रथम उद्देश समाप्त हुआ ॥

पंचम स्थान

द्वितीय उद्देश

महानदी-उत्तरण-सूत्र

९८—णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पंच महण्णवाओ महाणदीओ अंतो मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, तं जहा—गंगा, जउणा, सरऊ, एरवती, मही।

पंचहिं ठाणेहिं कप्पति, तं जहा—१. भयंसि वा, २. दुब्भिक्खंसि वा, ३. पव्वहेज्ज वा णं कोई, ४. दओघंसि वा एज्जमाणंसि महता वा, ५. अणारिएसु।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को महानदी के रूप में उद्दिष्ट की गई, गिनती की गई, प्रसिद्ध और बहुत जलवाली ये पाँच महानदियाँ एक मास के भीतर दो वार या तीर वार से अधिक उतरना या नौका से पार करना नहीं कल्पता है। जैसे—

१. गंगा, ३. यमुना, ६. सरयू, ४. ऐरावती, ४. मही।

किन्तु पाँच कारणों से इन महानदियों का उतरना या नौका से पार करना कल्पता है। जैसे—

१. शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर।
२. दुर्भिक्ष होने पर।
३. किसी द्वारा व्यथित या प्रवाहित किये जाने पर।
४. बाढ़ आ जाने पर।
५. अनार्य पुरुषों द्वारा उपद्रव किये जाने पर (९८)।

विवेचन—सूत्र-निर्दिष्ट नदियों के लिए 'महार्णव और महानदी ये दो विशेषण दिये गये हैं। जो बहुत गहरी हो उसे महानदी कहते हैं और जो महार्णव—समुद्र के समान बहुत जल वाली या महार्णवगामिनी—समुद्र में मिलने वाली हो उसे महार्णव कहते हैं। गंगा आदि पांचों नदियां गहरी भी हैं और समुद्रगामिनी भी हैं, बहुत जल वाली भी हैं।

संस्कृत टीकाकार ने एक गाथा को उद्धृतकर नदियों में उतरने या पार करने के दोषों को बताया है—

१. इन नदियों में बड़े-बड़े मगरमच्छ रहते हैं, उनके द्वारा खाये जाने का भय रहता है।

२. इन नदियों में चोर-डाकू नौकाओं में घूमते रहते हैं, जो मनुष्यों को मार कर उनके वस्त्रादि लूट ले जाते हैं।

३. इसके अतिरिक्त स्वयं नदी पार करने में जलकायिक जीवों की तथा जल में रहनेवाले अन्य छोटे-छोटे जीव-जन्तुओं की विराधना होती है।

४. स्वयं के डूब जाने से आत्म-विराधना की भी संभावना रहती है।

गंगादि पांच ही महानदियों के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर के समय में निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों का विहार उत्तर भारत में ही हो रहा था, क्योंकि दक्षिण भारत में वहने वाली नर्मदा, गोदावरी, ताप्ती आदि किसी भी महानदी का उल्लेख प्रस्तुत सूत्र में नहीं है। हां, महानदी और महार्णव पद को उपलक्षण मानकर अन्य महानदियों का ग्रहण करना चाहिए।

प्रथम प्रावृष्-सूत्र

९९—णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पढमपाउसंसि गामाणुगामं दूइज्जित्तए।

पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा—१. भयंसि वा, २. दुब्भिक्खंसि वा, ३. (पव्वहेज्ज वा णं कोई, ४. दओघंसि वा एज्जमाणंसि), महता वा, अणारिएहिं।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिओं को प्रथम प्रावृष् में ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु पांच कारणों से विहार करना कल्पता है। जैसे—

१. शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर
२. दुर्भिक्ष होने पर
३. किसी के द्वारा व्यथित किये जाने पर, या ग्राम से निकाल दिये जाने पर।
४. बाढ़ आजाने पर
५. अनार्यों के द्वारा उपद्रव किये जाने पर। (९९)

वर्षावास-सूत्र

१००—वासावासं पज्जोसविताणं णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए।

पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं जहा—१. णाणट्ठयाए, २. दंसणट्ठयाए, ३. चरित्तट्ठयाए, ४. आयरिय-उवज्झाया वा से वीसुंभेज्जा, ५. आयरिय-उवज्झायाण वा बहिया वेआवच्च-करणयाए।

वर्षावास में पर्युषणाकल्प करने वाले निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को ग्रामानुग्राम विहार करना नहीं कल्पता है। किन्तु पांच कारणों से विहार करना कल्पता है। जैसे—

१. विशेष ज्ञान की प्राप्ति के लिए।
२. दर्शन-प्रभावक शास्त्र का अर्थ पाने के लिए।
३. चारित्र की रक्षा के लिए।
४. आचार्य या उपाध्याय की मृत्यु हो जाने पर अथवा उनका कोई अति महत्त्व कार्य करने के लिए।
५. वर्षाक्षेत्र से बाहर रहने वाले आचार्य या उपाध्याय की वैयावृत्त्य करने के लिए। (१००)

विवेचन—वर्षाकाल में एक स्थान पर रहने को वर्षावास कहते हैं। यह तीन प्रकार का कहा गया है—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट।

१. जघन्य वर्षावास—सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के दिन से लेकर कार्त्तिकी पूर्णमासी तक ७०

२. मध्यम वर्षावास—श्रावणकृष्णा प्रतिपदा से लेकर कार्त्तिकी पूर्णमासी तक चार मास या १२० दिन का होता है।

३. उत्कृष्ट वर्षावास—आषाढ़ से लेकर मगसिर तक छह मास का होता है।

प्रथम सूत्र के द्वारा प्रथम प्रावृष् में विहार का निषेध किया गया है और दूसरे सूत्र के द्वारा वर्षावास में विहार का निषेध किया गया है। दोनों सूत्रों की स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पर्युषणाकल्प को स्वीकार करने के पूर्व जो वर्षा का समय है उसे 'प्रथम प्रावृष्' पद से सूचित किया गया है। अतः प्रथम प्रावृट् का अर्थ आषाढ़ मास है। आषाढ़ मास में विहार करने का निषेध है। प्रावृट् का अर्थ वर्षाकाल लेने पर पूर्वप्रावृट् का अर्थ होगा—भाद्रपद शुक्ला पंचमी से कार्त्तिकी पूर्णिमा का समय। इस समय में विहार का निषेध किया गया है। तीन ऋतुओं की गणना में 'वर्षा' एक ऋतु है। किन्तु छह ऋतुओं की गणना में उसके दो भेद हो जाते हैं, जिसके अनुसार श्रावण और भाद्रपद ये दो मास प्रावृष् ऋतु में, तथा आश्विन और कार्त्तिक में दो मास वर्षा ऋतु में परिगणित होते हैं। इस प्रकार दोनों सूत्रों का सम्मिलित अर्थ है कि श्रावण से लेकर कार्त्तिक मास तक चार मासों में साधु और साध्वियों को विहार नहीं करना चाहिए। यह उत्सर्ग मार्ग है। हां, सूत्रोक्त कारण-विशेषों की अवस्था में विहार किया भी जा सकता है यह अपवाद मार्ग है।

उत्कृष्ट वर्षावास के छह मास काल का अभिप्राय यह है कि यदि आषाढ़ के प्रारम्भ से ही पानी बरसने लगे और मगसिर मास तक भी बरसता रहे तो छह मास का उत्कृष्ट वर्षावास होता है।

वर्षाकाल में जल की वर्षा से असंख्य त्रस जीव पैदा हो जाते हैं, उस समय विहार करने पर छह काया के जीवों की विराधना होती है। इसके सिवाय अन्य भी दोष वर्षाकाल में विहार करने पर बताये गये हैं, जिन्हें संस्कृतटीका से जानना चाहिए।

अनुद्घात्य-सूत्र

१०१—पंच अणुग्घातिया पण्णत्ता, तं जहा—हत्थकम्मं करेमाणे, मेहुणं पडिसेवेमाणे, रातीभोयणं भुंजेमाणे, सागारियपिंडं भुंजेमाणे, रायपिंडं भुंजेमाणे।

पाँच अनुद्घात्य (गुरुप्रायश्चित्त के योग्य) कहे गये हैं। जैसे—

१. हस्त-(मैथुन-) कर्म करने वाला।
२. मैथुन की प्रतिसेवना (स्त्री-संभोग) करने वाला।
३. रात्रि-भोजन करने वाला।
४. सागारिक-(शय्यातर-) पिण्ड को खाने वाला।
५. राज-पिण्ड को खाने वाला (१०१)।

विवेचन—प्रायश्चित्त शास्त्र में दोष की शुद्धि के लिए दो प्रकार के प्रायश्चित्त बताये गये हैं—लघु-प्रायश्चित्त और गुरु-प्रायश्चित्त। लघु-प्रायश्चित्त को उद्घातिक और गुरु-प्रायश्चित्त को अनुद्घातिक प्रायश्चित्त कहते हैं। सूत्रोक्त पाँच स्थानों के सेवन करने वाले को अनुद्घात प्रायश्चित्त देने का विधान है, उसे किसी भी दशा में कम नहीं किया जा सकता है। पाँच कारणों में से प्रारम्भ के तीन कारण तो स्पष्ट हैं। शेष दो का अर्थ इस प्रकार है—

१. सागारिक पिण्ड—गृहस्थ श्रावक को सागारिक कहते हैं। जो गृहस्थ साधु के ठहरने के लिए अपना मकान दे, उसे शय्यातर कहते हैं। शय्यातर के घर का भोजन, वस्त्र, पात्रादि लेना साधु के लिए निषिद्ध है, क्योंकि उसके ग्रहण करने पर तीर्थंकरों की आज्ञा का अतिक्रमण, परिचय के कारण अज्ञात-उंछका अभाव आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

२. राजपिण्ड—जिसका विधिवत् राज्याभिषेक किया गया हो, जो सेनापति, मंत्री, पुरोहित, श्रेष्ठी और सार्थवाह इन पाँच पदाधिकारियों के साथ राज्य करता हो, उसे राजा कहते हैं, उसके घर का भोजन राज-पिण्ड कहलाता है। राज-पिण्ड के ग्रहण करने में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। जैसे—तीर्थंकरों की आज्ञा का अतिक्रमण, राज्याधिकारियों के आने-जाने के समय होने वाला व्याघात, चोर आदि की आशंका, आदि। इनके अतिरिक्त राजाओं का भोजन प्राय: राजस और तामस होता है, ऐसा भोजन करने पर साधुको दर्प, कामोद्रेक आदि भी हो सकता है। इन कारणों से राजपिण्ड के ग्रहण करने का साधु के लिए निषेध किया गया है।

राजान्तःपुर-प्रवेश-सूत्र

१०२—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे रायंतेउरमणुपविसमाणे णाइक्कमति, तं जहा—

१. णगरे सिया सव्वतो समंता गुत्ते गुत्तदुवारे, बहवे समणमाहणा णो संचाएंति भत्ताए वा पाणाए वा णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, तेसिं विण्णवणट्ठयाए रायंतेउरमणुपविसेज्जा।

२. पाडिहारियं वा पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणमाणे रायंतेउरमणुपविसेज्जा।

३. हयस्स वा गयस्स वा दुट्ठस्स आगच्छमाणस्स भीते रायंतेउरमणुपविसेज्जा।

४. परो व णं सहसा वा बलसा वा बाहाए गहाय रायंतेउरमणुपवेसेज्जा।

५. बहिया व णं आरामगयं वा उज्जाणगयं वा रायंतेउरजणो सव्वतो समंता संपरिक्खिवित्ता णं सण्णिवेसिज्जा।

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे (रायंतेउरमणुपविसमाणे) णातिक्कमइ।

पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ राजा के अन्त:पुर (रणवास) में प्रवेश करता हुआ तीर्थंकरों की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१. यदि नगर सर्व ओर से परकोटे से घिरा हो, उसके द्वार बन्द कर दिये गये हों, बहुत-से श्रमण-माहन भक्त-पान के लिए नगर से बाहर न निकल सकें, या प्रवेश न कर सकें, तब उनका प्रयोजन बतलाने के लिए राजा के अन्त:पुर में प्रवेश कर सकता है।

२. प्रातिहारिक (वापिस करने को कहकर लाये गये) पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक को वापिस देने के लिए राजा के अन्त:पुर में प्रवेश कर सकता है।

३. दुष्ट घोड़े या हाथी के सामने आने पर भयभीत साधु राजा के अन्त:पुर में प्रवेश कर सकता है।

४. कोई अन्य व्यक्ति सहसा बल-पूर्वक बाहु पकड़कर ले जाये, तो राजा के अन्त:पुर में प्रवेश कर सकता है।

५. कोई साधु बाहर पुष्पोद्यान या वृक्षोद्यान में ठहरा हो और वहां (क्रीडा करने के लिए

राजा का अन्तःपुर आ जावे), राजपुरुष उस स्थान को सर्व ओर से घेर लें और निकलने के द्वार बन्द कर दें, तब वह वहां रह सकता है।

इन पाँच कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करता हुआ तीर्थंकरों की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है (१०२)।

गर्भ-धारण-सूत्र

१०३—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गब्भं धरेज्जा, तं जहा—१. इत्थी दुव्वियडा दुण्णिसण्णा सुक्कपोग्गले अधिट्ठिज्जा। २. सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे व से वत्थे अंतो जोणीए अणुपवेसेज्जा। ३. सइं वा से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा। ४. परो व से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा। ५. सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला अणुपवेसेज्जा—इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं (इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गब्भं) धरेज्जा।

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ संवास नहीं करती हुई भी गर्भ को धारण कर सकती है। जैसे—

१. अनावृत (नग्न) और दुर्निषण्ण (विवृत योनिमुख) रूप से बैठी अर्थात् पुरुष-वीर्य से संसृष्ट स्थान को आक्रान्त कर बैठी हुई स्त्री शुक्र-पुद्‌गलों को आकर्षित कर लेवे।
२. शुक्र-पुद्‌गलों से संसृष्ट वस्त्र स्त्री की योनि में प्रविष्ट हो जावे।
३. स्वयं ही स्त्री शुक्र-पुद्‌गलों को योनि में प्रविष्ट करले।
४. दूसरा कोई शुक्र-पुद्‌गलों को उसकी योनि में प्रविष्ट कर दे।
५. शीतल जल वाले नदी-तालाब आदि में स्नान करती हुई स्त्री की योनि में यदि (बह कर आये) शुक्र-पुद्‌गल प्रवेश कर जावें।

इन पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ संवास नहीं करती हुई भी गर्भ धारण कर सकती है (१०३)।

१०४—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं णो धरेज्जा, तं जहा—१. अप्पत्तजोव्वणा। २. अतिकंतजोव्वणा। ३. जातिवंझा। ४. गेलण्णपुट्ठा। ५. दोमणंसिया—इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं (इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं) णो धरेज्जा।

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ संवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती। जैसे—

१. अप्राप्तयौवना—युवावस्था को अप्राप्त, अरजस्क बालिका।
२. अतिक्रान्तयौवना—जिसकी युवावस्था बीत गई है, ऐसी अरजस्क वृद्धा।
३. जातिबन्ध्या—जन्म से ही मासिक धर्म रहित बाँझ स्त्री।
४. ग्लानस्पृष्टा—रोग से पीड़ित स्त्री।
५. दौर्मनस्यिका—शोकादि से व्याप्त चित्त वाली स्त्री।

इन पाँच कारणों से पुरुष के साथ संवास करती हुई भी स्त्री गर्भ को धारण नहीं करती है (१०४)।

१०५—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरसेण सद्धिं संवसमाणीवि णो गब्भं धरेज्जा, तं जहा—१. णिच्चोउया। २. अणोउया। ३. वावण्णसोया। ४. वाविद्धसोया। ५. अणंगपडिसेवणी—इच्चेतेहिं (पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं) णो धरेज्जा।

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ संवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती। जैसे—

१. नित्यर्तुका—सदा ऋतुमती (रजस्वला) रहने वाली स्त्री।
२. अनृतुका—कभी भी ऋतुमती न होने वाली स्त्री।
३. व्यापन्नश्रोता—नष्ट गर्भाशयवाली स्त्री।
४. व्याविद्धश्रोता—क्षीण शक्ति गर्भाशयवाली स्त्री।
५. अनंगप्रतिषेविणी—अनंग-क्रीडा करने वाली स्त्री।

इन पाँच कारणों से पुरुष के साथ संवास करती हुई भी स्त्री गर्भ को धारण नहीं करती है (१०५)।

१०६—पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं णो धरेज्जा, तं जहा—१. उउंमि णो णिगामपडिसेविणी यावि भवति। २. समागता वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धंसंति। ३. उदिण्णे वा से पित्तसोणिते। ४. पुरा वा देवकम्मणा। ५. पुत्तफले वा णो णिव्विट्ठे भवति—इच्चेतेहिं (पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणीवि गब्भं) णो धरेज्जा।

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष के साथ संवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती। जैसे—

१. जो स्त्री ऋतुकाल में वीर्यपात होने तक पुरुष का सेवन नहीं करती है।
२. जिसकी योनि में आये शुक्र-पुद्गल विनष्ट हो जाते हैं।
३. जिसका पित्त-प्रधान शोणित (रक्त-रज) उदीर्ण हो गया है।
४. देव-कर्म से (देव के द्वारा शापादि देने से) जो गर्भधारण के योग्य नहीं रही है।
५. जिसने पुत्र-फल देने वाला कर्म उपार्जित नहीं किया है।

इन पाँच कारणों से पुरुष के साथ संवास करती हुई भी स्त्री गर्भ को धारण नहीं करती है।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी-एकत्र-वास-सूत्र

१०७—पंचहिं ठाणेहिं णिग्गंथा णिग्गंथीओ य एगतओ ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा णातिक्कमंति, तं जहा—

१. अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य एगं महं अगामियं छिण्णावायं दीहमद्धमडविमणुपविट्ठा, तत्थेगयतो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा णातिक्कमंति।
२. अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य गामंसि वा णगरंसि वा (खेडंसि वा कव्वडंसि वा मडंबंसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहंसि वा आगरंसि वा णिगमंसि वा आसमंसि वा सण्णिवेसंसि वा) रायहाणिंसि वा वासं उवागता, एगतिया जत्थ उवस्सयं लभंति, एगतिया णो लभंति, तत्थेगतो ठाणं वा (सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा) णातिक्कमंति।
अत्थेगइया णिग्गंथा य णिग्गंथीओ य णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवागता, तत्थेगओ (ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा) णातिक्कमंति।

४. **आमोसगा दीसंति, ते इच्छंति णिग्गंथीओ चीवरपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाणं वा (सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा) णातिक्कमंति ।**

५. **जुवाणा दीसंति, ते इच्छंति णिग्गंथीओ मेहुणपडियाए पडिगाहित्तए, तत्थेगओ ठाणं वा (सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेमाणा) णातिक्कमंति ।**

इच्चेतेहिं पंचहिं ठाणेहिं (णिग्गंथा णिग्गंथीओ य एगतओ ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेतेमाणा) णातिक्कमंति ।

पाँच कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं । जैसे—

१. यदि कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ किसी बड़ी भारी, ग्राम-शून्य, आवागमन-रहित, लम्बे मार्ग वाली अटवी (वनस्थली) में अनुप्रविष्ट हो जावें, तो वहाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं ।

२. यदि कुछ निर्ग्रन्थ या निग्रन्थियाँ किसी ग्राम में, नगर में, खेट में, कर्वट में, मडम्ब में, पत्तन में, आकर में, द्रोणमुख में, निगम में, आश्रम में, सन्निवेश में अथवा राजधानी में पहुंचें, वहाँ दोनों में से किसी एक वर्ग को उपाश्रय मिला और एक को नहीं मिला, तो वे एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं ।

३. यदि कदाचित् कुछ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ नागकुमार के आवास में या सुपर्णकुमार के (या किसी अन्य देव के) आवास में निवास के लिए एक साथ पहुंचे तो वहाँ अतिशून्यता से, या अति जनबहुलता आदि कारण से निर्ग्रन्थियों की रक्षा के लिए एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं ।

४. (यदि कहीं अरक्षित स्थान पर निर्ग्रन्थियाँ ठहरी हों, और वहाँ) चोर-लुटेरे दिखाई देवें, वे निर्ग्रन्थियों के वस्त्रों को चुराना चाहते हों तो वहाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं ।

५. (यदि किसी स्थान पर निर्ग्रन्थियाँ ठहरी हों, और वहाँ पर) गुंडे युवक दिखाई देवें, वे निर्ग्रन्थियों के साथ मैथुन की इच्छा से उन्हें पकड़ना चाहते हों, तो वहाँ निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं ।

इन पाँच कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ एक स्थान पर अवस्थान, शयन और स्वाध्याय करते हुए भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं (१०७) ।

१०८—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहि सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति, तं जहा—

१. **खित्तचित्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति ।**

२. (दित्तचित्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहि सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति ।
३. जक्खाइट्ठे समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति ।
४. उम्मायपत्ते समणे णिग्गंथे णिग्गंथेहिमविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति ।)
५. णिग्गंथीपव्वाइयए समणे णिग्गंथेहिं अविज्जमाणेहिं अचेलए सचेलियाहिं णिग्गंथीहिं सद्धिं संवसमाणे णातिक्कमति ।

पाँच कारणों से अचेलक श्रमण निर्ग्रन्थ सचेलक निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है । जैसे—

१. शोक आदि से विक्षिप्तचित्त कोई अचेलक श्रमण निर्ग्रन्थ अन्य निर्ग्रन्थों के नहीं होने पर सचेलक निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है ।
२. हर्षातिरेक से दृप्तचित्त कोई अचेलक श्रमण निर्ग्रन्थ अन्य निर्ग्रन्थों के नहीं होने पर सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है ।
३. यक्षाविष्ट कोई अचेलक श्रमण निर्ग्रन्थ अन्य निर्ग्रन्थों के नहीं होने पर सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है ।
४. वायु के प्रकोपादि से उन्माद को प्राप्त कोई अचेलक श्रमण निर्ग्रन्थ अन्य निर्ग्रन्थों के नहीं होने पर सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नही करता है ।
५. निर्ग्रन्थियों के द्वारा प्रव्राजित (दीक्षित) अचेलक श्रमण निर्ग्रन्थ अन्य निर्ग्रन्थों के नहीं होने पर सचेल निर्ग्रन्थियों के साथ रहता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है ।

आस्रव-सूत्र

१०९—पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं, अविरती, पमादो, कसाया, जोगा ।

आस्रव के पांच द्वार (कारण) कहे गये हैं—
१. मिथ्यात्व, २. अविरति, ३. प्रमाद, ४. कषाय, ५. योग (१०९) ।

११०—पंच संवरदारा पण्णत्ता, तं जहा—संमत्तं, विरती, अपमादो, अकसाइत्तं अजोगित्तं ।

संवर के पांच द्वार कहे गये हैं । जैसे—
१. सम्यक्त्व, २. विरति, ३. अप्रमाद, ४. अकषायिता, ५. अयोगिता (११०) ।

दंड-सूत्र

१११—पंच दंडा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठादंडे, अणट्ठादंडे, हिंसादंडे अकस्मादंडे, दिट्ठीविप्परियासियादंडे ।

दण्ड पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अर्थदण्ड—प्रयोजन-वश अपने या दूसरों के लिए जीव-घात करना।
२. अनर्थदण्ड—विना प्रयोजन जीव-घात करना।
३. हिंसादण्ड—'इसने मुझे मारा था, या मार रहा है, या मारेगा' इसलिए हिंसा करना।
४. अकस्माद् दण्ड—अकस्मात् जीव-घात हो जाना।
५. दृष्टिविपर्यास दण्ड—मित्र को शत्रु समझकर दण्डित करना (१११)।

क्रिया-सूत्र

११२—पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया।

क्रियाएं पांच कही गई हैं। जैसे—

१. आरम्भिकी क्रिया, २. पारिग्रहिकी क्रिया, ३. मायाप्रत्यया क्रिया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया, ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (११२)।

११३—मिच्छादिट्ठियाणं णेरइयाणं पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—(आरंभिया, पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया), मिच्छादंसणवत्तिया।

मिथ्यादृष्टि नारकों के पांच क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. आरम्भिकी क्रिया, २. पारिग्रहिकी क्रिया, ३. मायाप्रत्यया क्रिया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया, ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया (११३)।

११४—एवं—सव्वेसिं णिरंतरं जाव मिच्छद्दिट्ठियाणं वेमाणियाणं, णवरं—विगलिंदिया मिच्छद्दिट्ठी ण भण्णंति। सेसं तहेव।

इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि वैमानिकों तक सभी दण्डकों में पांचों क्रियाएं होती हैं। केवल विकलेन्द्रियों के साथ मिथ्यादृष्टि पद नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वे सभी मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अतः विशेषण लगाने की आवश्यकता ही नहीं है। शेष सर्व तथैव जानना चाहिए (११४)।

११५—पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—काइया, आहिगरणिया, पाओसिया, पारितावणिया, पाणातिवातकिरिया।

पुनः पांच क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. कायिकी क्रिया, २ आधिकरणिकी क्रिया, ३. प्रादोषिकी क्रिया, ४. पारितापनिकी क्रिया, ५. प्राणातिपातिकी क्रिया (११५)।

११६—णेरइयाणं पंच एवं चेव। एवं—णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

नारकी जीवों में ये ही पांच क्रियाएं होती हैं। इसी प्रकार वैमानिकों तक सभी दण्डकों में ये ही पांच क्रियाएं कही गई हैं (११६)।

११७—पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आरंभिया (पारिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाणकिरिया), मिच्छादंसणवत्तिया।

पुनः पांच क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. आरम्भिकी क्रिया, २. पारिग्रहिकी क्रिया, ३. मायाप्रत्यया क्रिया, ४. अप्रत्याख्यान क्रिया, ५. मिथ्यादर्शन क्रिया (११७)।

११८—णेरइयाणं पंच किरिया णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

नारकी जीवों से लेकर निरन्तर वैमानिक तक सभी दण्डकों में ये पांच क्रियाएं जाननी चाहिए (११८)।

११९—पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दिट्ठिया, पुट्ठिया, पाण्डुच्चिया, सामंतोवणिवाइया, साहत्थिया।

पुनः पांच क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. दृष्टिजा क्रिया, २. पृष्टिजाक्रिया, ३. प्रातीत्यिकी क्रिया, ४. सामन्तोपनिपातिकी क्रिया, ५. स्वाहस्तिकी क्रिया (११९)।

१२०—एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

नारकी जीवों से लेकर वैमानिक तक सभी दंडकों में ये पांच क्रियाएं जाननी चाहिए (१२०)।

१२१—पंच किरियाओं, तं जहा—णेसत्थिया, आणवणिया, वेयारणिया, अणाभोगवत्तिया, अणवकंखवत्तिया। एवं जाव वेमाणियाणं।

पुनः पांच क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. नैसृष्टिकी क्रिया, २. आज्ञापनिकी क्रिया, ३. वैदारणिका क्रिया, ४. अनाभोगप्रत्ययाक्रिया, ५. अनवकांक्षप्रत्यया क्रिया।

नारकों से लेकर वैमानिकों तक सभी दण्डकों में ये पांच क्रियाएं जाननी चाहिए (१२१)।

१२२—पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पेज्जवत्तिया, दोसवत्तिया, पओगकिरिया, समुदाणकिरिया, ईरियावहिया। एवं—मणुस्साणवि। सेसाणं णत्थि।

पुनः पांच क्रियाएं कही गई हैं। जैसे—

१. प्रेयःप्रत्यया क्रिया, २. द्वेषप्रत्यया क्रिया,, ३. प्रयोगक्रिया, ४. समुदानक्रिया ५. ईर्यापथिकी क्रिया।

ये पांचों क्रियाएं मनुष्यों में ही होती हैं। शेष दण्डकों में नहीं होती। (क्योंकि उनमें ईर्यापथिकी क्रिया संभव नहीं है, वह वीतरागी ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान वाले मनुष्यों के ही होती है।)

परिज्ञा-सूत्र

१२३—पंचविहा परिण्णा पण्णत्ता, तं जहा—उवहिपरिण्णा, उवस्सयपरिण्णा, कसाय-परिण्णा, जोगपरिण्णा, भत्तपाणपरिण्णा।

परिज्ञा पांच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. उपधिपरिज्ञा, २. उपाश्रयपरिज्ञा, ३. कषायपरिज्ञा, ४. योगपरिज्ञा, ५. भक्त-पान-परिज्ञा।

विवेचन—वस्तुस्वरूप के ज्ञानपूर्वक प्रत्याख्यान या परित्याग को परिज्ञा कहते हैं।

व्यवहार-सूत्र

१२४—पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा—आगमे, सुते, आणा, धारणा, जीते।

जहा से तत्थ आगमे सिया, आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ आगमे सिया जहा से तत्थ सुते सिया, सुतेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ सुते सिया (जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ आणा सिया जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा।
णो से तत्थ धारणा सिया) जहा से तत्थ जीते सिया, जीतेणं ववहारं पट्ठवेज्जा।
इच्चतेहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा—आगमेणं (सुतेणं आणाए धारणाए) जीतेणं।
जधा-जधा से तत्थ आगमे (सुते आणा धारणा) जीते तधा-तधा ववहारं पट्ठवेज्जा।
से किमाहु भंते! आगमबलिया समणा णिग्गंथा?

इच्चेतं पंचविधं ववहारं जया-जया जहिं-जहिं तया-तया तहिं-तहिं अणिस्सितोवस्सितं सम्मं ववहरमाणे समणे णिग्गंथे आणाए आराधए भवति।

व्यवहार पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आगमव्यवहार, २. श्रुतव्यवहार, ३. आज्ञाव्यवहार, ४. धारणाव्यवहार, ५. जीतव्यवहार (१२४)।

जहां आगम हो अर्थात् जहां आगम से विधि-निषेध का बोध होता हो वहां आगम से व्यवहार की प्रस्थापना करे।

जहां आगम न हो, श्रुत हो, वहां श्रुत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
जहां श्रुत न हो, आज्ञा हो, वहां आज्ञा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
जहां आज्ञा न हो, धारणा हो, वहां धारणा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।
जहां धारणा न हो, जीत हो, वहां जीत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।

इन पांचों से व्यवहार की प्रस्थापना करे—१. आगम से, २. श्रुत से, ३. आज्ञा से, ४. धारणा से, ५. जीत से।

जिस समय जहां आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत में से जो प्रधान हो, वहां उसीसे व्यवहार की प्रस्थापना करे।

प्रश्न—हे भगवन् ! आगम ही जिनका वल है ऐसे श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस विषय में क्या कहा है ?

उत्तर—हे आयुष्मान् श्रमणो ! इन पांचों व्यवहारों में जव-जव जिस-जिस विषय में जो व्यवहार हो, तब-तव वहां-वहाँ उसका अनिश्रितोपाश्रित—मध्यस्थ भाव से—सम्यक् व्यवहार करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है।

विवेचन—मुमुक्षु व्यक्ति को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ? इस प्रकार के प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप निर्देश-विशेष को व्यवहार कहते हैं। जिनसे यह व्यवहार चलता है वे व्यक्ति भी कार्य-कारण की अभेदविवक्षा से व्यवहार कहे जाते हैं। सूत्र-पठित पाँचों व्यवहारों का अर्थ इस प्रकार है—

१. आगमव्यवहार—'आगम्यन्ते परिच्छिद्यन्ते अर्था अनेनेत्यागमः' इस निरुक्ति के अनुसार जिस ज्ञानविशेष से पदार्थ जाने जावें, उसे आगम कहते हैं। प्रकृत में केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी और नवपूर्वी के व्यवहार को 'आगम व्यवहार' कहा गया है।

२. श्रुतव्यवहार—नवपूर्व से न्यून ज्ञानवाले आचार्यों के व्यवहार को श्रुत-व्यवहार कहते हैं।

३. आज्ञाव्यवहार—किसी साधु ने किसी दोष-विशेष की प्रतिसेवना की है; अथवा भक्त-पान का त्याग कर दिया है और समाधिमरण को धारण कर लिया है, वह अपने जीवनभर की आलोचना करना चाहता है। गीतार्थ साधु या आचार्य समीप प्रदेश में नहीं हैं, दूर हैं, और उनका आना भी संभव नहीं है। ऐसी दशा में उस साधु के दोषों को गूढ या संकेत पदों के द्वारा किसी अन्य साधु के साथ उन दूरवर्ती आचार्य या गीतार्थ साधु के समीप भेजा जाता है, तव वे उसके प्रायश्चित्त को गूढ पदों के द्वारा ही उसके साथ भेजते हैं। इस प्रकार गीतार्थ की आज्ञा से जो शुद्धि की जाती है, उसे आज्ञा-व्यवहार कहते हैं।

४. धारणाव्यवहार—गीतार्थ साधु ने पहले किसी को प्रायश्चित्त दिया हो, उसे जो धारण करे, अर्थात् याद रखे। पीछे उसी प्रकार का दोष किसी अन्य के द्वारा होने पर वैसा ही प्रायश्चित्त देना धारणा-व्यवहार है।

५. जीतव्यवहार—किसी समय किसी अपराध के लिए आगमादि चार व्यवहारों का अभाव हो, तब तात्कालिक आचार्यों के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार जो प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है, उसे जीतव्यवहार कहते हैं। अथवा जिस गच्छ में कारण-विशेष से सूत्रातिरिक्त जो प्रायश्चित्त देने का व्यवहार चल रहा है और जिसका अन्य अनेक महापुरुषों ने अनुसरण किया है, वह जीतव्यवहार कहलाता है।[1]

---

१. आगम्यन्ते परिच्छिद्यन्ते अर्था अनेनेत्यागमः—केवलमनःपर्यायावधिपूर्वचतुर्दशकदशकनवकरूपः १। तथा शेषं श्रुतं—आचारप्रकल्पादिश्रुतं। नवादिपूर्वाणां श्रुतत्वेऽप्यतीन्द्रियार्थज्ञानहेतुत्वेन सातिशयत्वादागमव्यपदेशः केवलवदिति २। यदगीतार्थस्य पुरतो गूढार्थपदैर्देशान्तरस्थगीतार्थनिवेदनायातिचारालोचनमितरस्यापि तथैव शुद्धिदानं साऽऽज्ञा ३। गीतार्थसंविग्नेन द्रव्याद्यपेक्षया यत्रापराधे यथा या विशुद्धिः कृता तामवधार्य यदन्यस्तत्रैव तथैव तामेव प्रयुङ्क्ते सा धारणा। वैयावृत्यकरादेर्वा गच्छोपग्रहकारिणो अशेषानुचितस्योचितप्रायश्चित्तपदानां प्रदर्शितानां धरणं धारणेति ४। तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावपुरुषप्रतिषेवानुवृत्त्या संहननधृत्यादिपरिहाणिमपेक्ष्य यत्प्रायश्चित्तदानं यो वा यत्र गच्छे सूत्रातिरिक्तः कारणतः प्रायश्चित्तव्यवहारः प्रवर्त्तितो वहुभिरन्यैश्चानुवर्तितस्तज्जीतमिति ५। (स्थानाङ्गसूत्रवृत्तिः, पत्र ३०२)

सुप्त-जागर-सूत्र

१२५—संजयमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, (रूवा, गंधा, रसा), फासा।

सोते हुए संयत मनुष्यों के पांच जागर कहे गये हैं। जैसे—
१. शब्द २. रूप ३. गन्ध ४. रस ५. स्पर्श (१२५)।

१२६—संजतमणुस्साणं जागराणं पंच सुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, (रूवा, गंधा, रसा), फासा।

जागते हुए संयत मनुष्यों के पांच सुप्त कहे गये हैं। जैसे—
१. शब्द २. रूप ३. गन्ध ४. रस ५. स्पर्श (१२६)।

१२७—असंजयमणुस्साणं सुत्ताणं वा जागराणं वा पंच जागरा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, (रूवा, गंधा, रसा), फासा।

सोते हुए या जागते हुए असंयत मनुष्यों के पांच जागर कहे गये हैं। जैसे—
१. शब्द २. रूप ३. गन्ध ४. रस ५. स्पर्श (१२७)।

विवेचन—सोते हुए संयमी मनुष्यों की पांचों इन्द्रियां अपने विषयभूत शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श में स्वतंत्र रूप से प्रवृत्त रहती हैं, अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ग्रहण करती रहती है—अपने विषय में जागृत रहती है, इसीलिए शब्दादिक को जागर कहा गया है। सोती दशा में संयत के प्रमाद का सद्भाव होने से वे शब्दादिक कर्म-बन्ध के कारण होते हैं। इसके विपरीत जागते हुए संयत मनुष्य के प्रमाद का अभाव होने से वे शब्दादिक कर्मबन्ध के कारण नहीं होते हैं, अतः जागते हुए संयत के शब्दादिक को सुप्त के समान होने से सुप्त कहा गया है। किन्तु असंयत मनुष्य चाहे सो रहा हो, चाहे जाग रहा हो, दोनों ही अवस्थाओं में प्रमाद का सद्भाव पाये जाने से उसके शब्दादिक को जागृत ही कहा गया है, क्योंकि दोनों ही दशा में उसके प्रमाद के कारण कर्मबन्ध होता रहता है।

रज-आदान-वमन-सूत्र

१२८—पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं आदिज्जंति, तं जहा—पाणातिवातेणं, (मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं मेहुणेणं), परिग्गहेणं।

पाँच कारणों से जीव कर्म-रज को ग्रहण करते हैं। जैसे—
१. प्राणातिपात से २. मृषावाद से ३. अदत्तादान से ४. मैथुनसेवन से
५. परिग्रह से (१२८)।

१२९—पंचहिं ठाणेहिं जीवा रयं वमंति, तं जहा—पाणातिवातवेरमणेणं, (मुसावायवेरमणेणं, अदिण्णादाणवेरमणेणं, मेहुणवेरमणेणं), परिग्गहवेरमणेणं।

पाँच कारणों से जीव कर्म-रज को वमन करते हैं। जैसे—
१. प्राणातिपात-विरमण से २. मृषावाद-विरमण से ३. अदत्तादान-विरमण से
४. मैथुन-विरमण से ५. परिग्रह-विरमण से (१२९)

दत्ति-सूत्र

१३०—पंचमासियं णं भिक्खुपडिमं पडिवण्णस्स अणगारस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोयणस्स पडिगाहेत्तए, पंच पाणगस्स।

पंचमासिकी भिक्षुप्रतिमा को धारण करने वाले अनगार को भोजन की पाँच दत्तियाँ और पानक की पांच दत्तियाँ ग्रहण करना कल्पती हैं (१३०)।

उवघात-विशोधि-सूत्र

१३१—पंचविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते, परिहरणोवघाते।

उपघात (अशुद्धि-दोष) पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उद्गमोपघात—आधाकर्मादि उद्गमदोषों से होने वाला चारित्र का घात।
२. उत्पादनोपघात—धात्री आदि उत्पादन दोषों से होने वाला चारित्र का घात।
३. एषणोपघात—शंकित आदि एषणा के दोषों से होने वाला चारित्र का घात।
४. परिकर्मोपघात—वस्त्र-पात्रादि के निमित्त से होने वाला चारित्र का घात।
५. परिहरणोपघात—अकल्प्य उपकरणों के उपभोग से होने वाला चारित्र का घात (१३१)।

१३२—पंचविहा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, एसणविसोही, परिकम्मविसोही, परिहरणविसोही।

विशोधि पाँच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. उद्गमविशोधि—आधाकर्मादि उद्गम-जनित दोषों की विशुद्धि।
२. उत्पादनविशोधि—धात्री आदि उत्पादन-जनित दोषों की विशुद्धि।
३. एषणाविशोधि—शंकित आदि एषणा-जनित दोषों की विशुद्धि।
४. परिकर्मविशोधि—वस्त्र-पात्रादि परिकर्म-जनित दोषों की विशुद्धि।
५. परिहरणविशोधि—अकल्प्य उपकरणों के उपभोग-जनित दोषों की विशुद्धि (१३२)।

दुर्लभ-सुलभ-बोधि-सूत्र

१३३—पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—अरहंताणं अवण्णं वदमाणे, अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे, आयरियउवज्झायाणं अवण्णं वदमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे, विवक्क-तव-बंभचेराणं देवाणं अवण्णं वदमाणे।

पाँच कारणों से जीव दुर्लभबोधि करने वाले (जिनधर्म की प्राप्ति को दुर्लभ बनाने वाले) मोहनीय आदि कर्मों का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. अर्हन्तों का अवर्णवाद (असद्-दोषोद्भावन—निन्दा) करता हुआ।
२. अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ।
३. आचार्य-उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ।
४. चतुर्वर्ण (चतुर्विध) संघ का अवर्णवाद करता हुआ।

५. तप और ब्रह्मचर्य के परिपाक से दिव्य गति को प्राप्त देवों का अवर्णवाद करता हुआ (१३३)।

१३४—पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—अरहंताणं वण्णं वदमाणे, (अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स वण्णं वदमाणे, आयरियउवज्झायाणं वण्णं वदमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स वण्णं वदमाणे), विवक्क-तव-बंभचेराणं देवाणं वण्णं वदमाणे।

पांच कारणों से जीव सुलभबोधि करने वाले कर्म का उपार्जन करता है। जैसे—

१. अर्हन्तों का वर्णवाद (सद्-गुणोद्भावन) करता हुआ।
२. अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का वर्णवाद करता हुआ।
३. आचार्य-उपाध्याय का वर्णवाद करता हुआ।
४. चतुर्वर्ण संघ का वर्णवाद करता हुआ।
५. तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्यगति को प्राप्त देवों का वर्णवाद करता हुआ (१३४)।

प्रतिसंलीन-अप्रतिसंलीन-सूत्र

१३५—पंच पडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियपडिसंलीणे, (चक्खिदियपडिसंलीणे, घाणिंदियपडिसंलीणे, जिब्भिदियपडिसंलीणे), फासिंदियपडिसंलीणे।

प्रतिसंलीन (इन्द्रिय-विषय-निग्रह करने वाला) पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-प्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ शब्दों में राग-द्वेष न करने वाला।
२. चक्षुरिन्द्रिय-प्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ रूपों में राग-द्वेष न करने वाला।
३. घ्राणेन्द्रिय-प्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ गन्ध में राग-द्वेष न करने वाला।
४. रसनेन्द्रिय-प्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ रसों में राग-द्वेष न करने वाला।
५. स्पर्शनेन्द्रिय-प्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ स्पर्शों में राग-द्वेष न करने वाला (१३५)।

१३६—पंच अपडिसंलीणा पण्णत्ता, तं जहा—सोतिंदियअपडिसंलीणे, (चक्खिदियअपडिसंलीणे, घाणिंदियअपडिसंलीणे, जिब्भिदियअपडिसंलीणे), फासिंदियअपडिसंलीणे।

अप्रतिसंलीन (इन्द्रिय-विषय-प्रवर्तक) पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-अप्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ शब्दों में राग-द्वेष करने वाला।
२. चक्षुरिन्द्रिय-अप्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ रूपों में राग-द्वेष करने वाला।
३. घ्राणेन्द्रिय-अप्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ गन्ध में राग-द्वेष करने वाला।
४. रसनेन्द्रिय-अप्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ रसों में राग-द्वेष करने वाला।
५. स्पर्शनेन्द्रिय-अप्रतिसंलीन—शुभ-अशुभ स्पर्शों में राग-द्वेष करने वाला (१३६)।

संवर-असंवर-सूत्र

१३७—पंचविधे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियसंवरे, (चक्खिदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिदियसंवरे), फासिंदियसंवरे।

संवर पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-संवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-संवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-संवर, ४. रसनेन्द्रिय-संवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-संवर (१३७)।

१३८—पंचविधे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसंवरे, (चक्खिंदियअसंवरे, घाणिंदिय-असंवरे, जिब्भिंदियअसंवरे), फासिंदियअसंवरे।

असंवर पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-असंवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-असंवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-असंवर ४. रसनेन्द्रिय-असंवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर (१३८)।

संजम-असंजम-सूत्र

१३९—पंचविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—सामाइयसंजमे, छेदोवट्ठावणियसंजमे, परिहार-विसुद्धियसंजमे, सुहुमसंपरागसंजमे, अहक्खायचरित्तसंजमे।

संयम पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. सामयिक-संयम—सर्व सावद्य कार्यों का त्याग करना।
२. छेदोपस्थानीय संयम—पंच महाव्रतों का पृथक्-पृथक् स्वीकार करना।
३. परिहारविशुद्धिक-संयम—तपस्या विशेष की साधना करना।
४. सूक्ष्मसांपरायसंयम—दशम गुणस्थान का संयम।
५. यथाख्यातचारित्रसंयम—ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर उपरिम सभी गुणस्थानवर्ती जीवों का वीतराग संयम (१३९)।

१४०—एगिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविधे संजमे कज्जति, तं जहा—पुढविकाइय-संजमे, (आउकाइयसंजमे, तेउकाइयसंजमे, वाउकाइयसंजमे), वणस्सतिकाइयसंजमे।

एकेन्द्रियजीवों का आरंभ-समारंभ नहीं करने वाले जीव को पांच प्रकार का संयम होता है। जैसे—
१. पृथिवीकायिक-संयम, २. अप्कायिक-संयम, ३. तेजस्कायिक-संयम, ४. वायुकायिक-संयम, ५. वनस्पतिकायिक-संयम (१४०)।

१४१—एगिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जति, तं जहा—पुढविकाइय-असंजमे, (आउकाइयअसंजमे, तेउकाइयअसंजमे, वाउकाइयअसंजमे), वणस्सतिकाइयअसंजमे।

एकेन्द्रिय जीवों का आरंभ करने वाले को पांच प्रकार असंयम होता है जैसे—
१. पृथिवीकायिक-असंयम, २. अप्कायिक-असंयम, ३. तेजस्कायिक-असंयम, ४. वायुकायिक-असंयम, ५. वनस्पतिकायिक-असंयम (१४१)।

१४२—पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जति, तं जहा—सोतिंदिय-संजमे, (चक्खिंदियसंजमे, घाणिंदियसंजमे, जिब्भिंदियसंजमे), फासिंदियसंजमे।

पंचेन्द्रिय जीवों का आरंभ-सभारंभ नहीं करने वाले को पांच प्रकार का संयम होता है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-संयम, २. चक्षुरिन्द्रिय-संयम, ३. घ्राणेन्द्रिय-संयम ४. रसनेन्द्रिय-संयम
५. स्पर्शनेन्द्रिय-संयम (क्योंकि वह पाँचों इन्द्रियों का व्याघात नहीं करता) (१४२)।

१४३—पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स पंचविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—सोतिंदिय-असंजमे, (चक्खिंदियअसंजमे, घाणिंदियअसंजमे, जिब्भिंदियअसंजमे), फासिंदियअसंजमे।

पंचेन्द्रिय जीवों का घात करने वाले को पाँच प्रकार का असंयम होता है जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-असंयम, २. चक्षुरिन्द्रिय-असंयम ३. घ्राणेन्द्रिय-असंयम
४. रसनेन्द्रिय असंयम, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-असंयम (१४३)।

१४४—सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं असमारभमाणस्स पंचविहे संजमे कज्जति, तं जहा—एगिंदियसंजमे, (बेइंदियसंजमे, तेइंदियसंजमे, चउरिंदियसंजमे), पंचिंदियसंजमे।

सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का घात नहीं करने करने को पाँच प्रकार का संयम होता है। जैसे—
१. एकेन्द्रिय-संयम, २. द्वीन्द्रिय-संयम, ३. त्रीन्द्रिय-संयम, ४. चतुरिन्द्रिय-संयम,
५. पंचेन्द्रिय-संयम (१४४)।

१४५—सव्वपाणभूयजीवसत्ता णं समारभमाणस्स पंचविहे असंजमे कज्जति, तं जहा—एगिंदियअसंजमे, (बेइंदियअसंजमे, तेइंदियअसंजमे, चउरिंदियअसंजमे), पंचिंदियअसंजमे।

सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्वों का घात करने वाले को पाँच प्रकार का असंयम होता है। जैसे—
१. एकेन्द्रिय-असंयम, २. द्वीन्द्रिय असंयम, ३. त्रीन्द्रिय-असंयम, ८. चतुरिन्द्रिय-असंयम
५. पंचेन्द्रिय असंयम (१४५)।

तृणवनस्पति-सूत्र

१४६—पंचविहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा।

तृणवनस्पतिकायिक जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. अग्रबीज—जिनका अग्रभाग ही बीजरूप होता है जैसे—कोरंट आदि।
२. मूलबीज—जिनका मूल भाग ही बीज रूप होता है जैसे—कमलकंद आदि।
३. पर्वबीज—जिनका पर्व (पोर, गांठ) ही बीजरूप होता है। जैसे—गन्ना आदि।
४. स्कन्धबीज—जिसका स्कन्ध ही बीजरूप होता है। जैसे—सल्लकी आदि।
४. बीजरूप—बीज से उगने वाले—गेहूं, चना आदि (१४६)।

आचार-सूत्र

१४७—पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे, दंसणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, वीरियायारे।

आचार पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. ज्ञानाचार, २. दर्शनाचार, ३. चारित्राचार, ४. तपाचार, ५. वीर्याचार (१४७)।

आचारप्रकल्प-सूत्र

१४८—पंचविहे आयारकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—मासिए उग्घातिए, मासिए अणुग्घातिए, चउमासिए उग्घातिए, चउमासिए अणुग्घातिए, आरोवणा।

आचारप्रकल्प (निशीथ सूत्रोक्त प्रायश्चित्त) पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. मासिक उद्-घातिक—लघु मासरूप प्रायश्चित्त।
२. मासिक अनुद्घातिक—गुरु मासरूप प्रायश्चित्त।
३. चातुर्मासिक उद्-घातिक—लघु चार मासरूप प्रायश्चित्त।
४. चातुर्मासिक अनुद्-घातिक—गुरु चार मासरूप प्रायश्चित्त।
५. आरोपणा—एक दोष से प्राप्त प्रायश्चित्त में दूसरे दोष के सेवन से प्राप्त प्रायश्चित का आरोपण करना (१४८)।

विवेचन—मासिक तपश्चर्या वाले प्रायश्चित्त में कुछ दिन कम करने को मासिक उद्-घातिक या लघुमास प्रायश्चित्त कहते हैं। तथा मासिक तपश्चर्या वाले प्रायश्चित्त में से कुछ भी अंश कम नहीं करने को मासिक अनुद्-घातिक या गुरुमास प्रायश्चित्त कहते हैं। यही अर्थ चातुर्मासिक उद्-घातिक और अनुद्-घातिक का भी जानना चाहिए। आरोपणा का विवेचन आगे के सूत्र में किया जा रहा है।

आरोपणा-सूत्र

१४९—आरोवणा पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—पट्ठविया, ठविया, कसिणा, अकसिणा, हाडहडा।

आरोपणा पाँच प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. प्रस्थापिता आरोपणा—प्रायश्चित्त में प्राप्त अनेक तपों में से किसी एक तप को प्रारम्भ करना।
२. स्थापिता आरोपणा—प्रायश्चित्त रूप से प्राप्त तपों को भविष्य के लिए स्थापित किये रखना, गुरुजनों की वैयावृत्य आदि किसी कारण से प्रारम्भ न करना।
३. कृत्स्ना आरोपणा—पूरे छह मास की तपस्या का प्रायश्चित्त देना, क्योंकि वर्तमान जिन-शासन में उत्कृष्ट तपस्या की सीमा छह मास की मानी गई है।
४. अकृत्स्ना आरोपणा—एक दोष के प्रायश्चित्त को करते हुए दूसरे दोष को करने पर, तथा उसके प्रायश्चित्त को करते हुए तीसरे दोष के करने पर यदि प्रायश्चित्त-तपस्या का काल छह मास से अधिक होता है, तो उसे छह मास में ही आरोपण कर दिया जाता है। अतः पूरा प्रायश्चित्त नहीं कर सकने के कारण उसे अकृत्स्ना आरोपणा कहते हैं।
५. हाडहडा-आरोपणा—जो प्रायश्चित्त प्राप्त हो, उसे शीघ्र ही देने को हाडहडा आरोपणा कहते हैं (१४९)।

वक्षस्कारपर्वत-सूत्र

१५०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणदीए उत्तरे णं पंच वक्खार-पव्वता पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में, सीता महानदी की उत्तर दिशा में पाँच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. माल्यवान्, २. चित्रकूट, ३. पक्ष्मकूट, ४. नलिनकूट, ५. एक शैल (१५०)।

१५१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणदीए दाहिणे णं पंच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे, सोमणसे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में सीता महानदी की दक्षिण दिशा में पाँच वक्षस्कार-पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. त्रिकूट, २. वैश्रमण कूट, ३. अंजन, ४. मातांजन, ५. सौमनस (१५१)।

१५२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए दाहिणे णं पंच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे, अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग में सीतोदा महानदी की दक्षिण दिशा में पाँच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. विद्युत्प्रभ, २. अंकावती, ३. पक्ष्मावती, ४. आशीविष, ५. सुखावह (१५२)।

१५३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए उत्तरे णं पंच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते, गंधमादणे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग में सीतोदा महानदी की उत्तर दिशा में पाँच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. चन्द्रपर्वत, २. सूर्यपर्वत, ३. नागपर्वत, ४. देवपर्वत, ५. गन्धमादन (१५३)।

महाद्रह-सूत्र

१५४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं देवकुराए कुराए पंच महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—णिसहदहे, देवकुरुदहे, सूरदहे, सुलसदहे, विज्जुप्पभदहे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में देवकुरु नामक कुरुक्षेत्र में पांच महाद्रह कहे गये हैं। जैसे—

१. निषधद्रह, २. देवकुरुद्रह, ३. सूर्यद्रह, ४. सुलसद्रह, ५. विद्युत्प्रभद्रह (१५४)।

१५५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं उत्तरकुराए कुराए पंच महादहा पण्णत्ता, तं जहा—णीलवंतदहे, उत्तरकुरुदहे, चंददहे, एरावणदहे, मालवंतदहे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में उत्तरकुरुनामक कुरुक्षेत्र में पाँच महाद्रह कहे गये हैं। जैसे—

१. नीलवत्द्रह २. उत्तरकुरुद्रह, ३. चन्द्रद्रह, ४. ऐरावणद्रह, ५. माल्यवत्द्रह (१५५)।

वक्षस्कारपर्वत-सूत्र

१५६—सव्वेवि णं वक्खारपव्वया सीया-सीओयाओ महाणईओ मंदरं वा पव्वतं पंच जोयण-सताइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचगाउसताइं उव्वेहेणं।

सभी वक्षस्कार पर्वत सीता-सीतोदा महानदी तथा मन्दर पर्वत की दिशा में पांच सौ योजन ऊंचे और पाँच सौ कोश गहरी नींव वाले हैं।

धातकीषंड-पुष्करवर-सूत्र

१५७—धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे णं मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणदीए उत्तरे णं पंच वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते, एवं जहा जंबुद्दीवे तहा जाव पुक्खरवरदीवड्ढ पच्चत्थिमद्धे वक्खारपव्वया दहा य उच्चत्तं भाणियव्वं।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत के पूर्व में, तथा सीता महानदी के उत्तर में पांच वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. माल्यवान्, २. चित्रकूट, ३. पक्ष्मकूट, ४. नलिन कूट, ५. एकशैल।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में, तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जम्बूद्वीप के समान पांच-पांच वक्षस्कार पर्वत, महानदियों-सम्बन्धी द्रह और वक्षस्कार पर्वतों की ऊंचाई-गहराई कहना चाहिए (१५७)।

समयक्षेत्र-सूत्र

१५८—समयक्खेत्ते णं पंच भरहाइं, पंच एरवताइं, एवं जहा चउट्ठाणे बितीयउद्देसे तहा एत्थवि भाणियव्वं जाव पंच मंदरा पंच मंदरचूलियाओ, णवरं—उसुयारा णत्थि।

समयक्षेत्र (अढ़ाई द्वीपों) में पांच भरत, पांच ऐरवत क्षेत्र हैं। इसी प्रकार जैसे चतुःस्थान के द्वितीय उद्देश में जिन-जिनका वर्णन किया गया है, वह यहां भी कहना चाहिए। यावत् पांच मन्दर, पाँच मंदर चूलिकाएं समयक्षेत्र में हैं। विशेष यह है कि वहां इषुकार पर्वत नहीं है।

अवगाहन-सूत्र

१५९—उसभे णं अरहा कोसलिए पंच धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

कौशलिक (कोशल देश में उत्पन्न हुए) अर्हन्त ऋषभदेव पांच सौ धनुष ऊंची अवगाहना-वाले थे।

१६०—भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंच धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा पांच सौ धनुष ऊंची अवगाहना वाले थे (१६०)।

१६१—बाहुबली णं अणगारे (पंच धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था)।

अनगार बाहुबली[1] पांच सौ धनुष ऊंची अवगाहना वाले थे (१६१)।

---

१. दि. शास्त्रों में बाहुबली की ऊंचाई ५२५ धनुष बताई गई है।

१६२—बंभी णं अज्जा (पंच धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था) ।

आर्या ब्राह्मी पांच सौ धनुष ऊंची अवगाहना वाली थीं (१६२) ।

१६३—(सुंदरी णं अज्जा पंच धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था) ।

आर्या सुन्दरी पांच सौ धनुष ऊंची अवगाहना वाली थीं (१६३) ।

विबोध-सूत्र

१६४—पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा, तं जहा—सद्देणं, फासेणं, भोयणपरिणामेणं, णिद्दक्खएणं, सुविणदंसणेणं ।

पांच कारणों से सोता हुआ मनुष्य जाग जाता है । जैसे—

१. शब्द से—किसी की आवाज को सुनकर ।
२. स्पर्श से—किसी का स्पर्श होने पर ।
३. भोजन परिणाम से—भूख लगने से ।
४. निद्राक्षय से—पूरी नींद सो लेने से ।
५. स्वप्नदर्शन से—स्वप्न देखने से ।

निर्ग्रन्थी-अवलंबन-सूत्र

१६५—पंचहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति, तं जहा—

१. **णिग्गंथिं च णं अण्णयरे पसुजातिए वा पक्खिजातिए वा ओहातेज्जा, तत्थ णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति ।**
२. **णिग्गंथे णिग्गंथिं दुग्गंसि वा विसमंसि वा पक्खलमर्माणं वा पवडमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति ।**
३. **णिग्गंथे णिग्गंथिं सेयंसि वा पंकंसि वा पणगंसि वा उदगंसि वा उक्कसमाणिं वा उबुज्जमाणिं वा गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति ।**
४. **णिग्गंथे णिग्गंथिं णावं आरुभमाणे वा ओरोहमाणे वा णातिक्कमति ।**
५. **खित्तचित्तं दित्तचित्तं जक्खाइट्ठं उम्मायपत्तं उवसग्गपत्तं साहिगरणं सपायच्छित्तं जाव भत्तपाणपडियाइक्खियं अट्ठजायं वा णिग्गंथे णिग्गंथिं गेण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णातिक्कमति ।**

पांच कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थी को पकड़े, या अवलम्बन दे तो भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है । जैसे—

१. कोई पशु जाति का या पक्षिजाति का प्राणी निर्ग्रन्थी को उपहत करे तो वहां निर्ग्रन्थी को ग्रहण करता या अवलम्बन (सहारा) देता हुआ निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है ।

२. दुर्गम या विषम स्थान में फिसलती हुई या गिरती हुई निर्ग्रन्थी को ग्रहण करता या अवलम्बन देता हुआ निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।
३. दल-दल में, या कीचड़ में, या काई में, या जल में फंसी हुई, या बहती हुई निर्ग्रन्थी को ग्रहण करता या अवलम्बन देता हुआ निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।
४. निर्ग्रन्थी को नाव में चढ़ाता हुआ या उतारता हुआ निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।
५. क्षिप्तचित्त या दृप्तचित्त या यक्षाविष्ट या उन्मादप्राप्त या उपसर्ग प्राप्त, या कलह-रत या प्रायश्चित्त से डरी हुई, या भक्त-पान-प्रत्याख्यात, (उपवासी) या अर्थजात (पति या किसी अन्य द्वारा संयम से च्युत की जाती हुई) निर्ग्रन्थी को ग्रहण करता या अवलम्बन देता निर्ग्रन्थ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है (१६५)।

विवेचन—यद्यपि निर्ग्रन्थ को निर्ग्रन्थी के स्पर्श करने का सर्वथा निषेध है। तथापि जिन परिस्थिति-विशेषों में वह निर्ग्रन्थी का हाथ आदि पकड़ कर उसको सहारा दे सकता है या उसकी और उसके संयम की रक्षा कर सकता है, उन पांच कारणों का प्रस्तुत सूत्र में निर्देश किया गया है और तदनुसार कार्य करते हुए वह जिन-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है।

प्रत्येक कारण में ग्रहण और अवलम्बन इन दो पदों का प्रयोग किया गया है। निर्ग्रन्थी को सर्वाङ्ग से पकड़ना ग्रहण कहलाता है और हाथ से उसके एक देश को पकड़ कर सहारा देना अवलम्बन कहलाता है [1]।

दूसरे कारण में 'दुर्ग' पद आया है। जहाँ कठिनाई से जाया जा सके ऐसे दुर्गम प्रदेश को दुर्ग कहते हैं। टीकाकारने तीन प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया है—१. वृक्षदुर्ग-सघन झाड़ी, २. श्वापददुर्ग—हिंसक पशुओं का निवासस्थान, ३. मनुष्यदुर्ग—म्लेच्छादि मनुष्यों की वस्ती। साधारणतः ऊबड़-खावड़ भूमि को भी दुर्गम कहा जाता है। ऐसे स्थानों में प्रस्खलन या प्रपतन करती-गिरती या पड़ती हुई निर्ग्रन्थी को सहारा दिया जा सकता है। पैर का फिसलना, या फिसलते हुए भूमिपर हाथ-घुटने टेकना प्रस्खलन है और भूमिपर धड़ाम से गिर पड़ना प्रपतन है[2]।

दल-दल आदि में फंसी हुई निर्ग्रन्थी के मरण की आशंका है, इसी प्रकार नाव में चढ़ते या उतरते हुए पानी में गिरने का भय संभव है, इन दोनों ही अवसरों पर उसकी रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य है।

पांचवें कारण में दिये गये क्षिप्तचित्त आदि का अर्थ इस प्रकार है—

१. क्षिप्तचित्त—राग, भय, या अपमानादि से जिसका चित्त विक्षिप्त हो।
२. दृप्तचित्त—सन्मान, लाभ, ऐश्वर्य आदि मद से या दुर्जय शत्रु को जीतने से जिसका चित्त दर्प को प्राप्त हो।
३. यक्षाविष्ट—पूर्वभव के वैर से, या रागादि से यक्ष के द्वारा आक्रांत हुई।

---

१. सव्वंगियं तु गहणं करेण अवलम्वणं तु देसम्मि। (सूत्रकृताङ्गटीका, पत्र ३११)
२. भूमीए असंपत्तं पत्तं वा हत्थजाणुगादीहिं। पक्खलणं नायव्वं पवडणभूमीए गतेहिं॥

४. उन्मादप्राप्त—पित्त-विकार से उन्मत्त या पागल हुई।
५. उपसर्गप्राप्त—देव, मनुष्य या तिर्यंच कृत उपद्रव से पीड़ित।
६. साधिकरणा—कलह करती हुई या लड़ने के लिए उद्यत।
७. सप्रायश्चित्त—प्रायश्चित्त के भय से पीड़ित या डरी हुई।
८. भक्त-पान-प्रत्याख्यात—जीवन भर के लिए अशन-पान का त्याग करने वाली।
९. अर्थजात—अर्थ-(प्रयोजन-) विशेष से, अथवा धनादि के लिए पति या चोर आदि के द्वारा संयम से चलायमान की जाती हुई।

उपर्युक्त सभी दशाओं में निर्ग्रन्थी की रक्षार्थ निर्ग्रन्थ उसे ग्रहण या अवलम्बन देते हुए जिन-आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता।

आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष-सूत्र

१६६—आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि पंच अतिसेसा पण्णत्ता, तं जहा—
१. आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स पाए णिगज्झिय-णिगज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जेमाणे वा णातिक्कमति।
२. आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंचमाणे वा विसोधेमाणे वा णातिक्कमति।
३. आयरिय-उवज्झाए पभू, इच्छा वेयावडियं करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा।
४. आयरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा एगगो वसमाण णातिक्कमति।
५. आयरिय-उवज्झाए बाहिं उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा [एगओ ?] वसमाणे णातिक्कमति।

गण में आचार्य और उपाध्याय के पांच अतिशेष (अतिशय) कहे गये हैं। जैसे—
१. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर पैरों की धूलि को सावधानी से झाड़ते हुए या फटकारते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
२. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर उच्चार (मल) और प्रस्रवण (मूत्र) का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
३. आचार्य और उपाध्याय की इच्छा हो तो वे दूसरे साधु की वैयावृत्त्य करें, इच्छा न हों तो न करें, इसके लिए वे प्रभु (स्वतंत्र) हैं।
४. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर एक रात्रि या दो रात्रि अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
५. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय से बाहर एक रात्रि या दो रात्रि अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं (१६६)।

विवेचन—सूत्र की वाचना देने वाले को उपाध्याय और अर्थ की वाचना देने वाले को आचार्य कहते हैं। साधारण साधुओं की अपेक्षा आचार्य और उपाध्याय को जो विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं, उन्हें अतिशेष या अतिशय कहते हैं।

आचार्य-उपाध्याय-गणापक्रमण-सूत्र

१६७—पंचहिं ठाणेहिं आयरिय-उवज्झायस्स गणावक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—
१. आयरिय-उवज्झाए गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
२. आयरिय-उवज्झाए गणंसि आधारायणियाए कितिकम्मं वेणइयं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
३. आयरिय-उवज्झाए गणंसि जे सुयपज्जवजाते धारेति, ते काले-काले णो सम्ममणुपवादेत्ता भवति।
४. आयरिय-उवज्झाए गणंसि सगणियाए वा परगणियाए वा णिग्गंथीए बहिल्लेसे भवति।
५. मित्ते णातिगणे वा से गणाओ अवक्कमेज्जा, तेसिं संगहोवग्गहट्ठयाए गणावक्कमणे पण्णत्ते।

पांच कारणों से आचार्य और उपाध्याय का गणापक्रमण (गण से बाहर निर्गमन) कहा गया है। जैसे—
१. यदि आचार्य या उपाध्याय गण में आज्ञा या धारणा के सम्यक् प्रयोक्ता नहीं हों।
२. यदि आचार्य और उपाध्याय गण में यथारात्निक कृतिकर्म (वन्दन और विनयादिक) के सम्यक् प्रयोक्ता नहीं हों।
३. यदि आचार्य और उपाध्याय जिन श्रुत-पर्यायों को धारण करते हैं, उनकी समय-समय पर गण को सम्यक् वाचना नहीं देवें।
४. यदि आचार्य या उपाध्याय अपने गण की, या पर-गण की निर्ग्रन्थी में बहिर्लेश्य (आसक्त) हो जावें।
५. आचार्य या उपाध्याय के मित्र ज्ञातिजन (कुटुम्बी आदि) गण से चले जायें तो उन्हें पुनः गण में संग्रह करने या उपग्रह करने के लिए गण से अपक्रमण करना कहा गया है (१६७)।

विवेचन—आचार्य और उपाध्याय गण के स्वामी और प्रधान होते हैं। उनका संघ या गण का सम्यक् प्रकार से संचालन करना कर्त्तव्य है। किन्तु जब वे यह अनुभव करते हैं कि गण में मेरी आज्ञा या धारणा की अवहेलना हो रही है, तो वे गण छोड़ कर चले जाते हैं।

दूसरा कारण वन्दन और विनय का सम्यक् प्रयोग न कर सकना है। यद्यपि आचार्य और उपाध्याय का गण में सर्वोपरि स्थान है, तथापि प्रतिक्रमण और क्षमा-याचना के समय दीक्षा-पर्याय में ज्येष्ठ और श्रुत के विशिष्ट ज्ञाता साधुओं का विशेष सम्मान करना चाहिए। यदि वे अपने पद के अभिमान से वैसा नहीं करते हैं, तो गण में असन्तोष या विग्रह खड़ा हो जाता है, ऐसी दशा में वे गण छोड़कर चले जाते हैं।

तीसरा कारण गणस्थ साधुओं को, स्वयं जानते हुए भी यथासमय सूत्र या अर्थ या उभय की की वाचना न देना है। इससे गण में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है और आचार्य या उपाध्याय पर पक्षपात का दोषारोपण होने लगता है। ऐसी दशा में उन्हें गण से चले जाने का विधान किया गया है।

चौथा कारण संघ की निन्दा होने या प्रतिष्ठा गिरने का है, अतः उनका स्वयं ही गण से बाहर चले जाना उचित माना गया है।

पांचवाँ कारण मित्र या ज्ञातिजन के गण से चले जाने पर पुनः संयम में स्थिर करने या गण में वापिस लाने के लिए गण से बाहर जाने का विधान किया गया है।

सब का सारांश यही है कि जैसा करने से गण या संघ की प्रतिष्ठा, मर्यादा और प्रख्याति बनी रहे और अप्रतिष्ठा, अमर्यादा और अपकीर्ति का अवसर न आवे—वही कार्य करना आचार्य और उपाध्याय का कर्त्तव्य है।

ऋद्धिमत्-सूत्र

१६७—पंचविहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, भावियप्पाणो अणगारा।

ऋद्धिमान् मनुष्य पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव, ४. वासुदेव, ५. भावितात्मा (१६८)।

विवेचन—वैभव, ऐश्वर्य और सम्पदा को ऋद्धि कहते हैं। भावितात्मा अनगार मध्यवर्ती तीन महापुरुषों की ऋद्धि पूर्वभव के पुण्य से उपार्जित होती है। अर्हन्तों की ऋद्धि पूर्वभवोपार्जित और वर्तमानभव में घातिकर्मक्षयोपार्जित होती है। भावितात्मा अनगार की ऋद्धियां वर्तमान भव की तपस्या-विशेष से प्राप्त होती हैं। जो कि बुद्धि, क्रिया, विक्रिया आदि के भेद से अनेक प्रकार की शास्त्रों में बतलाई गई हैं।

।। पंचम स्थान का द्वितीय उद्देश्य समाप्त ।।

पंचम स्थान

तृतीय उद्देश

अतिकाय-सूत्र

१६९—पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

पांच द्रव्य अस्तिकाय कहे गये हैं। जैसे—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय,
५. पुद्गलास्तिकाय। (१६९)

१७०—धम्मत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।
गुणओ गमणगुणे।

धर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अंशभूत द्रव्य है अर्थात् पंचास्तिकायमय लोक का एक अंश है।

वह संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा,
५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।

२. क्षेत्र की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है।

३. काल की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय-अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है। अर्थात् उसमें वर्ण गंध रस और स्पर्श नहीं हैं।

५. गुण की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय गमनगुणवाला है अर्थात् स्वयं गमन करते हुए जीवों और पुद्गलों के गमन करने में सहायक है। (१७०)

१७१—अधम्मत्थिकाए अवण्णे (अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

दव्वओ णं अधम्मत्थिकाए एगं दव्वं।

खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।

गुणओ ठाणगुणे।

अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप में पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।

२. क्षेत्र की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है।

३. काल की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है; ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

५. गुण की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवस्थान गुणवाला है। अर्थात् स्वयं ठह[illegible] जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहायक है। (१७१)

१७२—आगासत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे लोगालोगदव्वे।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ,

दव्वओ णं आगासत्थिकाए एगं दव्वं।

खेत्तओ लोगालोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भ[illegible] भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।

गुणओ अवगाहणागुणे।

आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोकालोक रूप द्रव्य है।

पंचम स्थान

तृतीय उद्देश

अतिकाय-सूत्र

१६९—पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

पांच द्रव्य अस्तिकाय कहे गये हैं। जैसे—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय, ५. पुद्‌गलास्तिकाय। (१६९)

१७०—धम्मत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।
गुणओ गमणगुणे।

धर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अंशभूत द्रव्य है अर्थात् पंचास्तिकायमय लोक का एक अंश है।

वह संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।
२. क्षेत्र की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है।
३. काल की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
४. भाव की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय-अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है। अर्थात् उसमें वर्ण गंध रस और स्पर्श नहीं हैं।
५. गुण की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय गमनगुणवाला है अर्थात् स्वयं गमन करते हुए जीवों और पुद्‌गलों के गमन करने में सहायक है। (१७०)

१७१—अधम्मत्थिकाए अवण्णे (अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे ।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ ।

दव्वओ णं अधम्मत्थिकाए एगं दव्वं ।

खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते ।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे ।

भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे ।

गुणओ ठाणगुणे ।

अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अंशभूत द्रव्य है ।

वह संक्षेप में पांच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा ।

१. द्रव्य की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है ।

२. क्षेत्र की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है ।

३. काल की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है; ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है । वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा । अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है ।

४. भाव की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है ।

५. गुण की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवस्थान गुणवाला है । अर्थात् स्वयं ठहरने वाले जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहायक है । (१७१)

१७२—आगासत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगालोगदव्वे ।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ ।

दव्वओ णं आगासत्थिकाए एगं दव्वं ।

खेत्तओ लोगालोगपमाणमेत्ते ।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे ।

भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे ।

गुणओ अवगाहणागुणे ।

आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोकालोक रूप द्रव्य है ।

तृतीय उद्देश

अतिकाय-सूत्र

१६९—पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए।

पांच द्रव्य अस्तिकाय कहे गये हैं। जैसे—
१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. जीवास्तिकाय,
५. पुद्गलास्तिकाय। (१६९)

१७०—धम्मत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।
से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।
दव्वओ णं धम्मत्थिकाए एगं दव्वं।
खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।
कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।
भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।
गुणओ गमणगुणे।

धर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अंशभूत द्रव्य है अर्थात् पंचास्तिकायमय लोक का एक अंश है।

वह संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा,
५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।
२. क्षेत्र की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है।
३. काल की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।
४. भाव की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय-अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है। अर्थात् उसमें वर्ण गंध रस और स्पर्श नहीं हैं।
५. गुण की अपेक्षा—धर्मास्तिकाय गमनगुणवाला है अर्थात् स्वयं गमन करते हुए जीवों और पुद्गलों के गमन करने में सहायक है। (१७०)

१७१—अधम्मत्थिकाए अवण्णे (अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

दव्वओ णं अधम्मत्थिकाए एगं दव्वं।

खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।

गुणओ ठाणगुणे।

अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप में पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।

२. क्षेत्र की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय लोकप्रमाण है।

३. काल की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है; ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

५. गुण की अपेक्षा—अधर्मास्तिकाय अवस्थान गुणवाला है। अर्थात् स्वयं ठहरने वाले जीव और पुद्गलों के ठहरने में सहायक है। (१७१)

१७२—आगासत्थिकाए अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोगालोगदव्वे।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

दव्वओ णं आगासत्थिकाए एगं दव्वं।

खेत्तओ लोगालोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।

गुणओ अवगाहणागुणे।

आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोकालोक रूप द्रव्य है।

वह संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय एक द्रव्य है।

२. क्षेत्र की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय लोक-अलोक प्रमाण सर्वव्यापक है।

३. काल की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है, ऐसा नहीं है; कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

भाव की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

गुण की अपेक्षा—आकाशास्तिकाय अवगाहन गुणवाला है।

१७३—जीवत्थिकाए णं अवण्णे अगंधे अरसे अफासे अरूवी जीवे सासए अवट्ठिए लोगदव्वे।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

दव्वओ णं जीवत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं।

खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासी, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ अवण्णे अगंधे अरसे अफासे।

गुणओ उवओगगुणे।

जीवास्तिकाय अवर्ण अगन्ध, अरस, अस्पर्श, अरूपी, जीव; शाश्वत, अवस्थित और लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा, ५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—जीवास्तिकाय अनन्त द्रव्य हैं।

२. क्षेत्र की अपेक्षा—जीवास्तिकाय लोकप्रमाण हैं, अर्थात् लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों के बराबर प्रदेशों वाला है।

३. काल की अपेक्षा—जीवास्तिकाय कभी नहीं था, ऐसा नहीं है; कभी नहीं है, ऐसा नहीं है; कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमानकाल में है और भविष्यकाल में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा—जीवास्तिकाय अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

५. गुण की अपेक्षा—जीवास्तिकाय उपयोग गुणवाला है। (१७३)

१७४—पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे रूवी अजीवे सासते अवट्ठिते लोगदव्वे।

से समासओ पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ, गुणओ।

दव्वओ णं पोग्गलत्थिकाए अणंताइं दव्वाइं।

खेत्तओ लोगपमाणमेत्ते।

कालओ ण कयाइ णासि, ण कयाइ ण भवति, ण कयाइ ण भविस्सइत्ति—भुविं च भवति य भविस्सति य, धुवे णिइए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिते णिच्चे।

भावओ वण्णमंते गंधमंते रसमंते फासमंते।

गुणओ गहणगुणे।

पुद्गलास्तिकाय पंच वर्ण, पंच रस, दो गन्ध, अष्ट स्पर्श वाला, रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित और लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप से पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. द्रव्य की अपेक्षा, २. क्षेत्र की अपेक्षा, ३. काल की अपेक्षा, ४. भाव की अपेक्षा ५. गुण की अपेक्षा।

१. द्रव्य की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य हैं।

२. क्षेत्र की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय लोक प्रमाण है, अर्थात् लोक में ही रहता है—बाहर नहीं।

३. काल की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय, कभी नहीं था, ऐसा नहीं है कभी नहीं; है, ऐसा भी नहीं है; कभी नहीं होगा, ऐसा भी नहीं है। वह भूतकाल में था, वर्तमानकाल में है और भविष्यकाल में रहेगा। अतः वह ध्रुव, निचित, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

४. भाव की अपेक्षा—पुद्गलास्तिकाय वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् और स्पर्शवान् है।

५. गुण की अपेक्षा—पुदुगलास्तिकाय ग्रहण गुणवाला है। अर्थात् औदारिक आदि शरीर रूप से ग्रहण किया जाता है और इन्द्रियों के द्वारा भी वह ग्राह्य है। अथवा पूरण-गलन गुणवाला—मिलने-विछुड़ने का स्वभाव वाला है। (१७४)

गति-सूत्र

१७५—पंच गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णिरयगती, तिरियगती, मणुयगती, देवगती, सिद्धिगती।

गतियां पाँच कही गई हैं। जैसे—

१. नरकगति, २. तिर्यंचगति, ३. मनुष्यगति, ४. देवगति ५. सिद्धगति। (१७५)

इन्द्रियार्थ-सूत्र

१७६—पंच इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—सोतिंदियत्थे, चक्खिदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिदियत्थे, फासिंदियत्थे।

इन्द्रियों के पाँच अर्थ (विषय) कहे गये हैं। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय का अर्थ शब्द, २. चक्षुरिन्द्रिय का अर्थ रूप, ३. घ्राणेन्द्रिय का अर्थ गन्ध, ४. रसनेन्द्रिय का अर्थ रस, ५. स्पर्शनेन्द्रिय का अर्थ स्पर्श। (१७६)

मुंड-सूत्र

१७७—पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—सोतिंदियमुंडे, चक्खिदियमुंडे, घाणिंदियमुंडे, जिब्भिदियमुंडे, फासिंदियमुंडे।

अहवा—पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—कोहमुंडे, माणमुंडे, मायामुंडे, लोभमुंडे, सिरमुंडे।

मुण्ड (इन्द्रियविषय-विजेता) पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ शब्दों में राग-द्वेष के विजेता।
२. चक्षुरिन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ रूपों में राग-द्वेष के विजेता।
३. घ्राणेन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ गन्ध में राग-द्वेष के विजेता।
४. रसनेन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ रसों में राग-द्वेष के विजेता।
५. स्पर्शनेन्द्रियमुण्ड—शुभ-अशुभ स्पर्शों में राग-द्वेष के विजेता।

अथवा मुण्ड पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्रोधमुण्ड—क्रोध कषाय के विजेता।
२. मानमुण्ड—मान कषाय के विजेता।
३. मायामुण्ड—माया कषाय के विजेता।
४. लोभमुण्ड—लोभ कषाय के विजेता।
५. शिरोमुण्ड—मुँडे शिरवाला। (१७७)

बादर-सूत्र

१७८—अहेलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, ओराला तसा पाणा।

अधोलोक में पाँच प्रकार के बादर जीव कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथिवीकायिक, २. अप्कायिक, ३. वायुकायिक, ४. वनस्पतिकायिक, ५. उदार त्रस (द्वीन्द्रियादि) प्राणी। (१७८)

१७९—उड्ढलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा—(पुढविकाइया, आउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, ओराला तसा पाणा)।

ऊर्ध्वलोक में पाँच प्रकार के बादर जीव कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथिवीकायिक, २. अप्कायिक, ३. वायुकायिक, ४. वनस्पतिकायिक, ५. उदारत्रस प्राणी। (१७९)

१८०—तिरियलोगे णं पंच बायरा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया, (बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया) पंचिंदिया।

तिर्यक्लोक में पाँच प्रकार के बादर जीव कहे गये हैं। जैसे—

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पंचेन्द्रिय। (१८०)

१८१—पंचविहा बायरतेउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—इंगाले, जाले, मुम्मुरे, अच्ची, अलाते।

बादर-तेजस्कायिक जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अंगार—धधकता हुआ अग्निपिण्ड।
२. ज्वाला—जलती हुई अग्नि की मूल से छिन्न शिखा।
३. मुर्मुर—भस्म-मिश्रित अग्निकण।
४. अर्चि—जलते काष्ठ आदि से अच्छिन्न ज्वाला।
५. अलात—जलता हुआ काष्ठ। (१८१)

१८२—पंचविधा बादरवाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, विदिसवाते।

बादर-वायुकायिक जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्राचीनवात—पूर्वदिशा का पवन।
२. प्रतीचीन वात—पश्चिम दिशा का पवन।
३. दक्षिणवात—दक्षिण दिशा का पवन।
४. उत्तरवात—उत्तरदिशा का पवन।
५. विदिग्वात—विदिशाओं के—ईशान, नैर्ऋत, आग्नेय, वायव्य, ऊर्ध्व और अधोदिशाओं के वायु। (१८२)

अचित्त-वायुकाय-सूत्र

१८३—पंचविधा अचित्ता वाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अक्कंते, धंते, पीलिए, सरीराणुगते, संमुच्छिमे।

अचित्त वायुकाय पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आक्रान्तवात—जोर-जोर से भूमि पर पैर पटकने से उत्पन्न वायु।
२. ध्मात वात—धौंकनी आदि के द्वारा धौंकने से उत्पन्न वायु।
३. पीड़ित वात—गीले वस्त्रादि के निचोड़ने आदि से उत्पन्न वायु।
४. शरीरानुगत वात—शरीर से उच्छ्वास, अपान और उद्गारादि से निकलने वाली वायु।
५. सम्मूर्च्छिमवात—पंखे के चलने-चलाने से उत्पन्न वायु।

विवेचन—सूत्रोक्त पाँचों प्रकार की वायु उत्पत्तिकाल में अचेतन होती है, किन्तु पीछे सचेतन भी हो सकती है।[1]

निर्ग्रन्थ-सूत्र

१८४—पंच णियंठा पण्णत्ता, तं जहा—पुलाए, बउसे, कुसीले, णियंठे, सिणाते।

निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पुलाक—निःसार धान्य कणों के समान निःसार चारित्र के धारक (मूल गुणों में भी दोष लगाने वाले) निर्ग्रन्थ।
२. बकुश—उत्तर गुणों में दोष लगाने वाले निर्ग्रन्थ।

---

१. एते च पूर्वमचेतनास्ततः सचेतना अपि भवन्तीति। (स्थानाङ्गसूत्रटीका, पत्र ३१९ A)

३. कुशील—ब्रह्मचर्य रूप शील का अखंड पालन करते हुए भी शील के अठारह हजार भेदों में से किसी शील में दोष लगाने वाले निर्ग्रन्थ।
४. निर्ग्रन्थ—मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय करने वाले वीतराग निर्ग्रन्थ, ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थानवर्ती साधु।
५. स्नातक—चार घातिकर्मों का क्षय करके तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती जिन (१८४)।

१८५—पुलाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणपुलाए, दंसणपुलाए, चरित्तपुलाए, लिंगपुलाए, अहासुहुमपुलाए णामं पंचमे।

पुलाक निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. ज्ञानपुलाक—ज्ञान के स्खलित, मिलित आदि अतिचारों का सेवन करने वाला।
२. दर्शनपुलाक—शंका, कांक्षा आदि सम्यक्त्व के अतिचारों का सेवन करने वाला।
३. चारित्रपुलाक—मूल गुणों और उत्तर-गुणों में दोष लगाने वाला।
४. लिंगपुलाक—शास्त्रोक्त उपकरणों से अधिक उपकरण रखने वाला, जैनलिंग से भिन्न लिंग या वेष को कभी-कभी धारण करने वाला।
५. यथासूक्ष्मपुलाक—प्रमादवश अकल्पनीय वस्तु को ग्रहण करने का मन में विचार करने वाला (१८५)।

१८६—बउसे पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगबउसे, अणाभोगबउसे, संवुडबउसे, असंवुडबउसे, अहासुहुमबउसे णामं पंचमे।

बकुश निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. आभोगबकुश—जान-बूझ कर शरीर को विभूषित करने वाला।
२. अनाभोगबकुश—अनजान में शरीर को विभूषित करने वाला।
३. संवृतबकुश—लुक-छिप कर शरीर को विभूषित करने वाला।
४. असंवृतबकुश—प्रकट रूप से शरीर को विभूषित करने वाला।
५. यथासूक्ष्मबकुश—प्रकट या अप्रकट रूप से शरीर आदि की सूक्ष्म विभूषा करने वाला (१८६)।

१८७—कुसीले पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—णाणकुसीले, दंसणकुसीले, चरित्तकुसीले, लिंगकुसीले, अहासुहुमकुसीले णामं पंचमे।

कुशील निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. ज्ञानकुशील—काल, विनय, उपधान आदि ज्ञानाचार को नहीं पालने वाला।
२. दर्शनकुशील—निःकांक्षित, निःशंकित आदि दर्शनाचार को नहीं पालने वाला।
३. चारित्रकुशील—कौतुक, भूतिकर्म, निमित्त, मंत्र आदि का प्रयोग करने वाला।
४. लिंगकुशील—साधुलिंग से आजीविका करने वाला।
५. यथासूक्ष्मकुशील—दूसरे के द्वारा तपस्वी, ज्ञानी आदि कहे जाने पर हर्ष को प्राप्त होने वाला (१८७)।

१८८—णियंठे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयणियंठे, अपढमसमयणियंठे, चरिमसमयणियंठे, अचरिमसमयणियंठे, अहासुहुमणियंठे णामं पंचमे।

निर्ग्रन्थ नामक निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्रथमसमयनिर्ग्रन्थ—निर्ग्रन्थ दशा को प्राप्त प्रथमसमयवर्ती निर्ग्रन्थ।
२. अप्रथमसमयनिर्ग्रंथ—निर्ग्रन्थ दशा को प्राप्त द्वितीयादिसमयवर्ती निर्ग्रंथ।
३. चरमसमयवर्तीनिर्ग्रंथ—निर्ग्रन्थ दशा के अन्तिम समय वाला निर्ग्रन्थ।
४. अचरमसमयवर्ती निर्ग्रन्थ—अन्तिम समय के सिवाय शेष समयवर्ती निर्ग्रन्थ।
५. यथासूक्ष्मनिर्ग्रन्थ—निर्ग्रन्थ दशा के अन्तर्मुहूर्तकाल में प्रथम या चरम आदि की विवक्षा न करके सभी समयों में वर्तमान निर्ग्रन्थ (१८८)।

१८९—सिणाते पंचविधे पण्णत्ते, तं जहा—अच्छवी, असबले, अकम्मंसे, संसुद्धणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली, अपरिस्साई।

स्नातक निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अच्छविस्नातक—काय योग का निरोध करने वाला स्नातक।
२. अशबलस्नातक—निर्दोष चारित्र का धारक स्नातक।
३. अकर्मांशस्नातक—कर्मों का सर्वथा विनाश करने वाला।
४. संशुद्धज्ञान-दर्शनधरस्नातक—विमल केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक अर्हन्त केवली-जिन।
५. अपरिश्रावी स्नातक—सम्पूर्ण काययोग का निरोध करने वाले अयोगी जिन (१८९)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रों में पुलाक आदि निर्ग्रन्थों के सामान्य रूप से पाँच-पाँच भेद बताये गये हैं, किन्तु भगवती सूत्र में, तत्त्वार्थसूत्र की दि० श्वे० टीकाओं में तथा प्रस्तुत स्थानाङ्गसूत्र की संस्कृत टीका में आदि के तीन निर्ग्रन्थों के दो-दो भेद और बताये गये हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१. पुलाक के दो भेद हैं—लब्धिपुलाक और प्रतिसेवनापुलाक। तपस्या-विशेष से प्राप्त लब्धि का संघ की सुरक्षा के लिए प्रयोग करने वाले पुलाक साधु को लब्धिपुलाक कहते हैं। ज्ञान-दर्शनादि की विराधना करनेवाले को प्रतिसेवनापुलाक कहते हैं।

२. बकुश के भी दो भेद हैं—शरीर-बकुश और उपकरण-बकुश। अपने शरीर के हाथ, पैर, मुख आदि को पानी से धो-धोकर स्वच्छ रखने वाले, कान, आँख, नाक आदि का कान-खुरचनी, अंगुली आदि से मल निकालने वाले, दांतों को साफ रखने और केशों का संस्कार करने वाले साधु को शरीर-बकुश कहते हैं। पात्र, वस्त्र, राजोहरण आदि को अकाल में ही धोने वाले, पात्रों पर तेल, लेप आदि कर-कर के उन्हें सुन्दर बनाने वाले साधु को उपकरण-बकुश कहते हैं।

३. कुशील निर्ग्रन्थ के भी दो भेद हैं—प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील। उत्तर गुणों में अर्थात्—पिण्डविशुद्धि, समिति, भावना, तप, प्रतिमा और अभिग्रह आदि में दोष लगाने वाले साधु को प्रतिसेवनाकुशील कहते हैं। संज्वलन-कषाय के उदय-वश क्रोधादि कषायों से अभिभूत होने वाले साधु को कषायकुशील कहते हैं।

४. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थ के भी दो भेद हैं—उपशान्तमोहनिर्ग्रन्थ और क्षीणमोहनिर्ग्रन्थ। जो उपशमश्रेणी पर आरूढ होकर सम्पूर्णमोहकर्म का उपशम कर ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग हैं, उन्हें उपशान्तमोह निर्ग्रन्थ कहते हैं। तथा जो क्षपकश्रेणी करके मोहकर्म का सर्वथा क्षय करके बारहवें गुणस्थानवर्ती वीतराग हैं और लघु अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही शेष तीन घातिकर्मों का क्षय करने वाले हैं, उन्हें क्षीणमोह निर्ग्रन्थ कहते हैं।

५. स्नातक-निर्ग्रन्थ के भी दो भेद हैं—संयोगीस्नातक जिन और अयोगीस्नातक जिन। सयोगी जिन का काल आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि वर्ष है। इतने काल तक वे भव्य जीवों को धर्म-देशना करते हुए विचरते रहते हैं। जब उनका आयुष्क केवल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण रह जाता है, तब वे मनोयोग, वचनयोग और काययोग का निरोध कर के अयोगी स्नातक जिन बनते हैं। अयोगी स्नातक का समय अ, इ, उ, ऋ, ऌ, इन पंच ह्रस्वाक्षरों के उच्चारण-काल-प्रमाण है। इतने ही समय के भीतर वे चारों अघातिकर्मों का क्षय करके अजर-अमर सिद्ध हो जाते हैं।

उपधि-सूत्र

१९०—कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, तं जहा—जंगिए, भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए णामं पंचमए।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को पाँच प्रकार के वस्त्र रखने और पहनने के लिए कल्पते हैं। जैसे—

१. जांगमिक—जंगम जीवों के बालों से बनने वाले कम्बल आदि।
२. भांगिक—अतसी (अलसी) की छाल से बनने वाले वस्त्र।
३. सानिक—सन से बनने वाले वस्त्र।
४. पोतक—कपास बोंडी (रुई) से बनने वाले वस्त्र।
५. तिरीटपट्ट—लोध की छाल से बनने वाले वस्त्र (१९०)।

१९१—कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहरेत्तए वा, तं जहा—उण्णिए, उट्टिए, साणए, पच्चापिच्चिए, मुंजापिच्चिए णामं पंचमए।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को पाँच प्रकार के रजोहरण रखने और धारण करने के लिए कल्पते हैं। जैसे—

१. और्णिक—भेड़ की ऊन से बने रजोहरण।
२. औष्ट्रिक—ऊंट के बालों से बने रजोहरण।
३. सानिक—सन से बने रजोहरण।
४. पच्चापिच्चिय—वल्वज नाम की मोटी घास को कूटकर बनाया रजोहरण।
५. मुंजापिच्चिय—मूंज को कूटकर बनाया रजोहरण।

निश्रास्थान-सूत्र

१९२—धम्मण्णं चरमाणस्स पंच णिस्साट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—छक्काया, गणे, राया, गाहावती, सरीरं।

धर्म का आचरण करने वाले साधु के लिए पाँच निश्रा (आलम्बन) स्थान कहे हैं। जैसे—

१ षट्काय २. गण (श्रमण-संघ) ३. राजा, ४. गृहपति, ५. शरीर। (१९२)

विवेचन—आलम्बन या आश्रय देने वाले उपकारक को निश्रास्थान कहते हैं। षट्काय को भी निश्रास्थान कहने का खुलासा इस प्रकार है—

१. पृथिवी की निश्रा—भूमि पर ठहरना, बैठना, सोना, मल-मूत्र-विसर्जन आदि।

२. जल की निश्रा—वस्त्र-पक्षालन, तृषा-निवारण, शरीर-शौच आदि।

३. अग्नि की निश्रा—भोजन-पाचन, पानक, आचाम आदि।

४ वायु की निश्रा—अचित्त वायु का ग्रहण, श्वासोच्छ्वास आदि।

५. वनस्पति की निश्रा—संस्तारक, पाट, फलक, वस्त्र औषधि, वृक्ष की छाया आदि।

६. त्रस की निश्रा—दूध, दही आदि।

दूसरा निश्रास्थान गण है। गुरु के परिवार को गण कहते हैं। गण की निश्रा में रहने वाले के सारण—वारण—सत्कार्य में प्रवर्तन और असत्कार्य-निवारण के द्वारा कर्म-निर्जरा होती है, संयम की रक्षा होती है और धर्म की वृद्धि होती है।

तीसरा निश्रास्थान राजा है। वह दुष्टों का निग्रह और साधुओं का अनुग्रह करके धर्म के पालन में आलम्बन होता है।

चौथा निश्रास्थान गृहपति है। गृहस्थ ठहरने को स्थान एवं भोजन-पान देकर साधुजनों का आलम्बन होता है।

पाँचवाँ निश्रास्थान शरीर है। वह धर्म का आद्य या प्रधान साधन कहा गया है।

निधि-सूत्र

१९३—पंच णिही पण्णत्ता, तं जहा—पुत्तणिही, मित्तणिही, सिप्पणिही, धणणिही, धण्णणिही।

निधियां पाँच प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. पुत्रनिधि, २. मित्रनिधि, ३. शिल्पनिधि, ४. धननिधि, ५. धान्यनिधि (१९३)।

विवेचन—धन आदि के निधान या भंडार को निधि कहते हैं। जैसे संचित निधि समय पर काम आती है, उसी प्रकार पुत्र वृद्धावस्था में माता-पिता की रक्षा, सेवा-शुश्रूषा करता है। मित्र समय-समय पर उत्तम परामर्श देकर सहायता करता है। शिल्पकला आजीविका का साधन है। धन और धान्य तो साक्षात् सदा ही उपकारक और निर्वाह के कारण हैं। इसलिए इन पाँचों को निधि कहा गया है।

शौच-सूत्र

१९४—पंचविहे सोए पण्णत्ते, तं जहा—पुढविसोए, आउसोए, तेउसोए, मंतसोए, बंभसोए।

शौच पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पृथ्वीशौच, २. जलशौच, ३. तेज:शौच, ४. मंत्रशौच, ५. ब्रह्मशौच (१९४)।

विवेचन—शुद्धि के साधन को शौच कहते हैं। मिट्टी, जल, अग्नि की राख आदि से शुद्धि की जाती है। अत: ये तीनों द्रव्य शौच हैं। मंत्र बोलकर मन: शुद्धि की जाती है और ब्रह्मचर्य को धारण

करना ब्रह्मशौच कहलाता है। कहा भी है—'ब्रह्मचारी सदा शुचिः'। अर्थात् ब्रह्मचारी मनुष्य सदा पवित्र है। इस प्रकार मंत्रशौच और ब्रह्मशौच को भावशौच जानना चाहिए।

छद्मस्थ-केवली-सूत्र

१९५—पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं।

एयाणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, (अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं जीवं असरीरपडिबद्धं), परमाणुपोग्गलं।

छद्मस्थ मनुष्य पाँच स्थानों को सर्वथा न जानता है और न देखता है—

१. धर्मास्तिकाय को, २. अधर्मास्तिकाय को, ३. आकाशास्तिकाय को,
४. शरीर-रहित जीव को ५. और पुद्गल परमाणु को।

किन्तु जिनको सम्पूर्णज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो गया है, ऐसे अर्हन्त, जिन केवली इन पाँचों को ही सर्वभाव से जानते-देखते हैं। जैसे—

१. धर्मस्तिकाय को, २. अधर्मस्तिकाय को, ३. आकाशास्तिकाय को,
४. शरीर-रहित जीव को और ५. पुद्गल परमाणु को (१९५)।

विवेचन—जिनके ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म विद्यमान हैं, ऐसे बारहवें गुणस्थान तक के सभी जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्मस्थ जीव अरूपी चार अस्तिकायों को समस्त पर्यायों सहित पूर्ण रूप से—साक्षात् नहीं जान सकता, और न देख सकता है। चलते-फिरते शरीर-युक्त जीव तो दिखाई देते हैं, किन्तु शरीर-रहित जीव कभी नहीं दिखाई देता है। पुद्गल यद्यपि रूपी है, पर एक परमाणु रूप पुद्गल सूक्ष्म होने से छद्मस्थ के ज्ञान का अगोचर कहा गया है।

महानरक-सूत्र

१९६—अधेलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया पण्णत्ता, तं जहा—काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अप्पतिट्ठाणे।

अधोलोक में पाँच अनुत्तर महातिमहान् महानरक कहे गये हैं। जैसे—

१. काल, २. महाकाल, ३. रौरुक, ४. महारौरुक, और ५. अप्रतिष्ठान
ये पाँचों महानरक सातवीं नरकभूमि में हैं (१९६)।

महाविमान-सूत्र

१९७—उड्ढलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते, सव्वट्ठसिद्धे।

ऊर्ध्वलोक में पाँच अनुत्तर महातिमहान् महाविमान कहे गये हैं। जैसे—

१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध।
ये पाँचों महाविमान वैमानिक लोक के सर्व-उपरिम भाग में हैं। (१९७)।

सत्त्व-सूत्र

१९८—पंच पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते, थिरसत्ते, उदयणसत्ते।

पुरुष पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. ह्रीसत्त्व—लज्जावश हिम्मत रखने वाला।
२. ह्रीमनःसत्त्व—लज्जावश भी मन में ही हिम्मत लाने वाला, (देह में नहीं)।
३. चलसत्त्व—हिम्मत हारने वाला।
४. स्थिरसत्त्व—विकट परिस्थिति में भी हिम्मत को स्थिर रखने वाला।
५. उदयनसत्त्व—उत्तरोत्तर प्रवर्धमान सत्त्व या पराक्रम वाला (१९८)।

भिक्षाक-सूत्र

१९९—पंच मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोतचारी, पडिसोतचारी, अंतचारी, मज्झचारी, सव्वचारी।

एवामेव पंच भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोतचारी, (पडिसोतचारी, अंतचारी, मज्झचारी), सव्वचारी।

मत्स्य (मच्छ) पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अनुस्रोतचारी—जल-प्रवाह के अनुकूल चलने वाला।
२. प्रतिस्रोतचारी—जल-प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाला।
३. अन्तचारी—जल-प्रवाह के किनारे-किनारे चलने वाला।
४. मध्यचारी—जल-प्रवाह के मध्य में चलने वाला।
५. सर्वचारी—जल में सर्वत्र विचरण करने वाला।

इसी प्रकार भिक्षुक भी पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अनुस्रोतचारी—उपाश्रय से लेकर सीधी गृहपंक्ति से गोचरी लेने वाला।
२. प्रतिस्रोतचारी—गली के अन्तिम गृह से उपाश्रय तक घरों से गोचरी लेने वाला।
३. अन्तचारी—ग्राम के अन्तिम भाग में स्थित गृहों से गोचरी लेने वाला या उपाश्रय के पार्श्ववर्ती गृहों से गोचरी लेने वाला।
४. मध्यचारी—ग्राम के मध्य भाग से गोचरी लेने वाला।
५. सर्वचारी—ग्राम के सभी भागों से गोचरी लेने वाला (१९९)।

वनीपक-सूत्र

२००—पंच वणीमगा पण्णत्ता, तं जहा—अतिहिवणीमगे, किवणवणीमगे, माहणवणीमगे, साणवणीमगे, समणवणीमगे।

वनीपक (याचक) पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अतिथि-वनीपक—अतिथिदान की प्रशंसा कर भोजन मांगने वाला।
२. कृपण-वनीपक—कृपणदान की प्रशंसा करके भोजन माँगने वाला।

करना ब्रह्मशौच कहलाता है। कहा भी है—'ब्रह्मचारी सदा शुचिः'। अर्थात् ब्रह्मचारी मनुष्य सदा पवित्र है। इस प्रकार मंत्रशौच और ब्रह्मशौच को भावशौच जानना चाहिए।

छद्मस्थ-केवली-सूत्र

१९५—पंच ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं।

एयाणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, (अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं जीवं असरीरपडिबद्धं), परमाणुपोग्गलं।

छद्मस्थ मनुष्य पाँच स्थानों को सर्वथा न जानता है और न देखता है—

१. धर्मास्तिकाय को, २. अधर्मास्तिकाय को, ३. आकाशास्तिकाय को,
४. शरीर-रहित जीव को ५. और पुद्गल परमाणु को।

किन्तु जिनको सम्पूर्णज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो गया है, ऐसे अर्हन्त, जिन केवली इन पाँचों को ही सर्वभाव से जानते-देखते हैं। जैसे—

१. धर्मस्तिकाय को, २. अधर्मस्तिकाय को, ३. आकाशास्तिकाय को,
४. शरीर-रहित जीव को और ५. पुद्गल परमाणु को (१९५)।

विवेचन—जिनके ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म विद्यमान हैं, ऐसे बारहवें गुणस्थान तक के सभी जीव छद्मस्थ कहलाते हैं। छद्मस्थ जीव अरूपी चार अस्तिकायों को समस्त पर्यायों सहित पूर्ण रूप से—साक्षात् नहीं जान सकता, और न देख सकता है। चलते-फिरते शरीर-युक्त जीव तो दिखाई देते हैं, किन्तु शरीर-रहित जीव कभी नहीं दिखाई देता है। पुद्गल यद्यपि रूपी है, पर एक परमाणु रूप पुद्गल सूक्ष्म होने से छद्मस्थ के ज्ञान का अगोचर कहा गया है।

महानरक-सूत्र

१९६—अधेलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया पण्णत्ता, तं जहा—काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अप्पतिट्ठाणे।

अधोलोक में पाँच अनुत्तर महातिमहान् महानरक कहे गये हैं। जैसे—

१. काल, २. महाकाल, ३. रौरुक, ४. महारौरुक, और ५. अप्रतिष्ठान
ये पाँचों महानरक सातवीं नरकभूमि में हैं (१९६)।

महाविमान-सूत्र

१९७—उड्ढलोगे णं पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते, सव्वट्ठसिद्धे।

ऊर्ध्वलोक में पाँच अनुत्तर महातिमहान् महाविमान कहे गये हैं। जैसे—

१. विजय, २. वैजयन्त, ३. जयन्त, ४. अपराजित और ५. सर्वार्थसिद्ध।
ये पाँचों महाविमान वैमानिक लोक के सर्व-उपरिम भाग में हैं। (१९७)।

सत्त्व-सूत्र

१९८—पंच पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—हिरिसत्ते, हिरिमणसत्ते, चलसत्ते, थिरसत्ते, उदयणसत्ते।

पुरुष पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. ह्रीसत्त्व—लज्जावश हिम्मत रखने वाला।
२. ह्रीमन:सत्त्व—लज्जावश भी मन में ही हिम्मत लाने वाला, (देह में नहीं)।
३. चलसत्त्व—हिम्मत हारने वाला।
४. स्थिरसत्त्व—विकट परिस्थिति में भी हिम्मत को स्थिर रखने वाला।
५. उदयनसत्त्व—उत्तरोत्तर प्रवर्धमान सत्त्व या पराक्रम वाला (१९८)।

भिक्षाक-सूत्र

१९९—पंच मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोतचारी, पडिसोतचारी, अंतचारी, मज्झचारी, सव्वचारी।

एवामेव पंच भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—अणुसोतचारी, (पडिसोतचारी, अंतचारी, मज्झचारी), सव्वचारी।

मत्स्य (मच्छ) पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अनुस्रोतचारी—जल-प्रवाह के अनुकूल चलने वाला।
२. प्रतिस्रोतचारी—जल-प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाला।
३. अन्तचारी—जल-प्रवाह के किनारे-किनारे चलने वाला।
४. मध्यचारी—जल-प्रवाह के मध्य में चलने वाला।
५. सर्वचारी—जल में सर्वत्र विचरण करने वाला।

इसी प्रकार भिक्षुक भी पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अनुस्रोतचारी—उपाश्रय से लेकर सीधी गृहपंक्ति से गोचरी लेने वाला।
२. प्रतिस्रोतचारी—गली के अन्तिम गृह से उपाश्रय तक घरों से गोचरी लेने वाला।
३. अन्तचारी—ग्राम के अन्तिम भाग में स्थित गृहों से गोचरी लेने वाला या उपाश्रय के पार्श्ववर्ती गृहों से गोचरी लेने वाला।
४. मध्यचारी—ग्राम के मध्य भाग से गोचरी लेने वाला।
५. सर्वचारी—ग्राम के सभी भागों से गोचरी लेने वाला (१९९)।

वनीपक-सूत्र

२००—पंच वणीमगा पण्णत्ता, तं जहा—अतिहिवणीमगे, किवणवणीमगे, माहणवणीमगे, साणवणीमगे, समणवणीमगे।

वनीपक (याचक) पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अतिथि-वनीपक—अतिथिदान की प्रशंसा कर भोजन मांगने वाला।
२. कृपण-वनीपक—कृपणदान की प्रशंसा करके भोजन माँगने वाला।

३. माहन-वनीपक—ब्राह्मण-दान की प्रशंसा कर के भोजन मांगने वाला।
४. श्व-वनीपक—कुत्ते के दान की प्रशंसा कर के भोजन मांगने वाला।
५. श्रमण-वनीपक—श्रमणदान की प्रशंसा कर के भोजन मांगने वाला (२००)।

अचेल-सूत्र

२०१—पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवति, तं जहा—अप्पापडिलेहा, लाघविए पसत्थे, रूवे वेसासिए, तवे अणुण्णाते, विउले इंदियणिग्गहे।

पाँच कारणों से अचेलक प्रशस्त (प्रशंसा को प्राप्त) होता है। जैसे—

१. अचेलक की प्रतिलेखना अल्प होती है।
२. अचेलक का लाघव प्रशस्त होता है।
३. अचेलक का रूप विश्वास के योग्य होता है।
४. अचेलक का तप अनुज्ञात (जिन-अनुमत) होता है।
५. अचेलक का इन्द्रिय-निग्रह महान् होता है (२०१)।

उत्कल-सूत्र

२०२—पंच उक्कला पण्णत्ता, तं जहा—दंडुक्कले, रज्जुक्कले, तेणुक्कले, देसुक्कले, सव्वुक्कले।

पाँच उत्कल (उत्कट शक्ति-सम्पन्न) पुरुष कहे गये हैं। जैसे—

१. दण्डोत्कल—प्रबल दण्ड (आज्ञा या सैन्यशक्ति) वाला पुरुष।
२. राज्योत्कल—प्रबल राज्यशक्ति वाला पुरुष।
३. स्तेनोत्कल—प्रबल चोरों की शक्तिवाला पुरुष।
४. देशोत्कल—प्रबल जनपद की शक्तिवाला पुरुष।
५. सर्वोत्कल—उक्त सभी प्रकार की प्रबल शक्तिवाला पुरुष (२०२)।

समिति-सूत्र

२०३—पंच समितीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती, आयाणभंड-मत्त-णिक्खेवणासमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिठावणियसमिती।

समितियाँ पाँच कही गई हैं। जैसे—

१. ईर्यासमिति—गमन में सावधानी—युग-प्रमाण भूमि को शोधते हुए गमन करना।
२. भाषासमिति—बोलने में सावधानी—हित, मित, प्रिय वचन बोलना।
३. एषणासमिति—गोचरी में सावधानी—निर्दोष भिक्षा लेना।
४. आदान-भाण्ड-अमत्र-निक्षेपणासमिति—भोजनादि के भाण्ड-पात्र आदि को सावधानी पूर्वक देख-शोधकर लेना और रखना।
५. उच्चार (मल) प्रस्रवण—(मूत्र) श्लेष्म (कफ) जल्ल (शरीर का मैल) सिंघाड़ (नासिका का मल), इनका निर्जन्तु स्थान में विमोचन करना (२०३)।

जीव-सूत्र

२०४—पंचविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया ।

संसार-समापन्नक (संसारी) जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय और ५. पंचेन्द्रियजीव (२०४)।

गति-आगति-सूत्र

२०५—एगिंदिया पंचगतिया पंचागतिया पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिए एगिंदिएसु उववज्जमाणे एगिंदिएहिंतो वा, (बेइंदिएहिंतो वा. तेइंदिएहिंतो वा, चउरिंदिएहिंतो वा), पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेज्जा ।

से चेव णं से एगिंदिए एगिंदियत्तं विप्पजहमाणे एगिंदियत्ताए वा, (बेइंदियत्ताए वा, तेइंदियत्ताए वा, चउरिंदियत्ताए वा), पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा ।

एकेन्द्रिय जीव पाँच गतिक और पाँच आगतिक कहे गये हैं। जैसे—
१. एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता हुआ एकेन्द्रियों से, या द्वीन्द्रियों से, या त्रीन्द्रियों से, चतुरिन्द्रियों से, या पंचेन्द्रियों से आकर उत्पन्न होता है।
२. वही एकेन्द्रियजीव एकेन्द्रियपर्याय को छोड़ता हुआ एकेन्द्रियों में, या द्वीन्द्रियों में, या त्रीन्द्रियों में, या चतुरिन्द्रियों में, या पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होता है।

२०६—बेंदिया पंचगतिया पंचागतिया एवं चेव ।

२०७—एवं जाव पंचिंदिया पंचगतिया पंचागतिया पण्णत्ता, तं जहा—पंचिंदिए जाव गच्छेज्जा ।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय जीव भी पाँच गतिक और पाँच आगतिक जानना चाहिए। यावत् पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव पाँच गतिक और पाँच आगतिक कहे गये हैं। अर्थात् सभी त्रस जीव मर कर पाँचों ही प्रकार के जीवों में उत्पन्न हो सकते हैं (२०६-२०७)।

जीव-सूत्र

२०८—पंचविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—कोहकसाई, (माणकसाई, मायाकसाई), लोभकसाई, अकसाई ।

अहवा—पंचविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया, (तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा), देवा, सिद्धा ।

सर्व जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. क्रोधकषायी २. मानकषायी, ३. मायाकषायी, ४. लोभकषायी, ५. अकषायी।
अथवा-सर्वजीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. नारक २. तिर्यंच, ३. मनुष्य, ४. देव, ५. सिद्ध।

योनिस्थिति-सूत्र

२०९—अह भंते ! कल-मसूर-तिल-मुग्ग-मास-णिप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सतीण-पलिमंथगाणं—एतेसि णं धण्णाणं कुट्ठाउत्ताणं (पल्लाउत्ताणं मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं पिहिताणं) केवइयं कालं जोणी संचिट्ठति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पंच संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायति, तेण परं जोणी पविद्धंसति, तेण परं जोणी विद्धंसति, तेण परं वीए अबीए भवति), तेण परं जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते।

हे भगवन् ! मटर, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, निष्पाव (सेम) कुलथी, चवला, तूवर, और काला चना—इन धान्यों को कोठे में गुप्त (बन्द), पल्य में गुप्त, मचान में गुप्त और माल्य में गुप्त करके उनके द्वारों को ढंक देने पर, गोबर से लीप देने पर, चारों ओर से लीप देने पर, रेखाओं से लांछित कर देने पर, मिट्टी से मुद्रित कर देने पर और भलीभाँति से सुरक्षित रखने पर उनकी योनि (उत्पादक-शक्ति) कितने काल तक बनी रहती है ?

हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कृष्ट पाँच वर्ष तक उनकी उत्पादक शक्ति बनी रहती है। उसके पश्चात् उनकी योनि म्लान हो जाती है, उस के पश्चात् उनकी योनि विध्वस्त हो जाती है, उसके पश्चात् योनि क्षीण हो जाती है, उसके पश्चात् बीज अबीज हो जाता है, उसके पश्चात् योनि का विच्छेद हो जाता है (२०९)।

संवत्सर-सूत्र

२१०—पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा—णक्खत्तसंवच्छरे, जुगसंवच्छरे, पमाणसंवच्छरे, लक्खणसंवच्छरे, सणिचरसंवच्छरे।

संवत्सर (वर्ष) पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. नक्षत्र-संवत्सर, २. युगसंवत्सर, ३. प्रमाण-संवत्सर, ४. लक्षण-संवत्सर,
५. शनिश्चर संवत्सर (२१०)।

२११—जुगसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—चंदे, चंदे, अभिवड्ढिते, चंदे, अभिवड्ढिते चेव।

युगसंवत्सर पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. चन्द्र-संवत्सर, २. चन्द्र-संवत्सर, ३. अभिवर्धित संवत्सर, ४. चन्द्र-संवत्सर,
५. अभिवर्धित-संवत्सर (२११)।

२१२—पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—णक्खत्ते, चंदे, उऊ, आदिच्चे, अभिवड्ढिते।

प्रमाण-संवत्सर पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. नक्षत्र-संवत्सर, २. चन्द्र-संवत्सर, ३. ऋतु-संवत्सर, ४. आदित्य-संवत्सर,
५. अभिवर्धित-संवत्सर। (२१२)

२१३—लक्खणसंवच्छरे, पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाथाएँ

समगं णक्खत्ता जोगं जोयंति समगं उदू परिणमंति ।
णच्चुण्हं णातिसीतो, बहूदओ होति णक्खत्तो ।।१।।
ससिसगलपुण्णमासी, जोएइ विसमचारिणक्खत्ते ।
कडुओ बहूदओ वा, तमाहु संवच्छरं चंदं ।।२।।
विसमं पवालिणो परिणमंति अणुदूसु देंति पुप्फफलं ।
वासं ण सम्म वासति, तमाहु संवच्छरं कम्मं ।।३।।
पुढविदगाणं तु रसं, पुप्फफलाणं तु देइ आदिच्चो ।
अप्पेणवि वासेणं, सम्मं णिप्फज्जए सासं ।।४।।
आदिच्चतेयतविता, खणलवदिवसा उऊ परिणमंति ।
पुरिंति रेणु थलयाइं, तमाहु अभिवड्ढितं जाण ।।५।।

लक्षण-संवत्सर पाँच प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. नक्षत्र-संवत्सर, २. चन्द्र-संवत्सर, ३. कर्म-(ऋतु)संवत्सर, ४. आदित्य-संवत्सर,
५. अभिवर्धित-संवत्सर (२१३) ।

विवेचन—उपर्युक्त चार सूत्रों में अनेक प्रकार के संवत्सरों (वर्षों) का और उनके भेद-प्रभेदों का निरूपण किया गया है । संस्कृत टीकाकार के अनुसार उनका विवरण इस प्रकार है—

१. नक्षत्र-संवत्सर—जितने समय में चन्द्रमा नक्षत्र-मण्डल का एक वार परिभोग करता है, उतने काल को नक्षत्रमास कहते हैं । नक्षत्र २७ होते हैं, अतः नक्षत्र मास $२७\frac{२१}{६७}$ दिन का होता है । यतः १२ मास का संवत्सर (वर्ष) होता है, अतः नक्षत्र-संवत्सर में ($२७\frac{२१}{६७} \times १२ =$) $३२७\frac{५१}{६७}$ दिन होते हैं ।
२. युगसंवत्सर—पाँच संवत्सरों का एक युग माना जाता है । इसमें तीन चन्द्र-संवत्सर और दो अभिवर्धित संवत्सर होते हैं । यतः चन्द्रमास में $२९\frac{३२}{६२}$ दिन होते हैं, अतः चन्द्र संवत्सर में ($२९\frac{३२}{६२} \times १२ =$) $३५४\frac{१२}{६२}$ दिन होते हैं । अभिवर्धित मास में $३१\frac{१२१}{१२४}$ दिन होते हैं, इसलिए अभिवर्धित संवत्सर में $३१\frac{१२१}{१२४} \times १२ =$) $३८३\frac{४४}{६२}$ दिन होते हैं । अभिवर्धित संवत्सर में एक मास अधिक होता है ।
३. प्रमाण-संवत्सर—दिन, मास आदि के परिमाण वाले संवत्सर को प्रमाण-संवत्सर कहते हैं ।
४. लक्षण-संवत्सर—लक्षणों से ज्ञात होने वाले वर्ष को लक्षण-संवत्सर कहते हैं ।
५. शनिश्चर-संवत्सर—जितने समय में शनिश्चर ग्रह एक नक्षत्र अथवा बारह राशियों का भोग करता है उतने समय को शनिश्चर-संवत्सर कहते हैं ।
६. ऋतु-संवत्सर—दो मास-प्रमाणकाल की एक ऋतु होती है । और छह ऋतुओं का एक संवत्सर होता है । ऋतुमास में ३० दिन-रात होते हैं, अतः ऋतु-संवत्सर में ३६० दिन-रात होते हैं । इसे ही कर्म-संवत्सर कहते हैं ।
७. आदित्य-संवत्सर—आदित्य मास में साढ़े तीस दिन-रात होते हैं, अतः आदित्य-संवत्सर में ($३०\frac{१}{२} \times १२ =$) ३६६ दिन-रात होते हैं ।

१. जिस संवत्सर में जिस तिथि में जिस नक्षत्र का योग होना चाहिए, उस नक्षत्र का उसी तिथि में योग होता है, जिसमें ऋतुएं यथासमय परिणमन करती हैं, जिसमें न अति गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी ही पड़ती है और जिसमें वर्षा अच्छी होती है, वह नक्षत्र-संवत्सर कहलाता है।
२. जिस संवत्सर में चन्द्रमा सभी पूर्णिमाओं का स्पर्श करता है, जिसमें अन्य नक्षत्रों की विषम गति होती है, जिसमें सर्दी और गर्मी अधिक होती है, तथा वर्षा भी अधिक होती है, उसे चन्द्रसंवत्सर कहते हैं।
३. जिस संवत्सर में वृक्ष विषमरूप से—असमय में पत्र-पुष्प रूप से परिणत होते हैं, और विना ऋतु के फल देते हैं, जिस वर्ष में वर्षा भी ठीक नहीं बरसती है, उसे कर्मसंवत्सर या ऋतुसंवत्सर कहते हैं।
४. जिस संवत्सर में अल्प वर्षा से भी सूर्य पृथ्वी, जल, पुष्प और फलों को रस अच्छा देता है, और धान्य अच्छा उत्पन्न होता है, उसे आदित्य या सूर्यसंवत्सर कहते हैं।
५. जिस संवत्सर में सूर्य के तेज से संतप्त क्षण, लव, दिवस और ऋतु परिणत होते हैं, जिसमें भूमि-भाग धूलि से परिपूर्ण रहते हैं अर्थात् सदा धूलि उड़ती रहती है, उसे अभिवर्धित-संवत्सर जानना चाहिए।

जीवप्रदेश-निर्याण-मार्ग-सूत्र

२१४—पंचविधे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते, तं जहा—पाएहिं, ऊरूहिं, उरेणं, सिरेणं सव्वंगेहिं।

पाएहिं णिज्जायमाणे णिरयगामी भवति, ऊरूहिं णिज्जायमाणे तिरियगामी भवति, उरेणं णिज्जायमाणे मणुयगामी भवति, सिरेणं णिज्जायमाणे देवगामी भवति, सव्वंगेहिं णिज्जायमाणे सिद्धिगति-पज्जवसाणे पण्णत्ते।

जीव-प्रदेशों के शरीर से निकलने के मार्ग पाँच कहे गये हैं। जैसे—
१. पैर २. उरु, ३. हृदय, ४. शिर, ५. सर्वाङ्ग।
१. पैरों से निर्याण करने (निकलने) वाला जीव नरकगामी होता है।
२. उरु (जंघा) से निर्याण करने वाला जीव तिर्यंचगामी होता है।
३. हृदय से निर्याण करने वाला जीव मनुष्यगामी होता है।
४. शिर से निर्याण करने वाला जीव देवगामी होता है।
५. सर्वाङ्ग से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति-पर्यवसानवाला कहा गया है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है (२१४)।

छेदन-सूत्र

२१५—पंचविहे छेयणे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पाछेयणे, वियच्छेयणे, बंधच्छेयणे, पएसच्छेयणे, दोधारच्छेयणे।

छेदन (विभाग) पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. उत्पाद-छेदन—उत्पाद पर्याय के आधार पर विभाग करना।

२. व्यय-छेदन—विनाश पर्याय के आधार पर विभाग करना ।
३. बन्ध-छेदन—कर्म-बन्ध का छेदन, या पुद्गलस्कन्ध का विभाजन ।
४. प्रदेश-छेदन—निर्विभागी वस्तु के प्रदेश का बुद्धि से विभाजन ।
५. द्विधा-छेदन—किसी वस्तु के दो विभाग करना (२१५) ।

आनन्तर्य-सूत्र

२१६—पंचविहे आणंतरिए पण्णत्ते, तं जहा—उप्पायाणंतरिए, वियाणंतरिए, पएसाणंतरिए, समयाणंतरिए, सामण्णाणंतरिए ।

आनन्तर्य (विरह का अभाव) पाँच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. उत्पाद-आनन्तर्य—लगातार उत्पत्ति ।
२. व्यय-आनन्तर्य—लगातार विनाश ।
३. प्रदेश-आनन्तर्य—लगातार प्रदेशों की संलग्नता ।
४. समय-आनन्तर्य—समय की निरन्तरता ।
५. सामान्य-आनन्तर्य—किसी पर्याय विशेष की विवक्षा न करके सामान्य निरन्तरता ।

विवेचन—उपर्युक्त दोनों सूत्रों का उक्त सामान्य शब्दार्थ लिखकर संस्कृत टीकाकार ने एक दूसरा भी अर्थ किया है जो एक विशेष अर्थ का बोधक है । उसके अनुसार छेदन का अर्थ 'विरह-काल' और आनन्तर्य का अर्थ 'अविरहकाल' है । कोई जीव किसी विवक्षित पर्याय का त्याग कर अन्य पर्याय में कुछ काल तक रह कर पुनः उसी पूर्व पर्याय को जितने समय के पश्चात् प्राप्त करता है, उतने मध्यवर्ती काल का नाम विरहकाल है । यह एक जीव की अपेक्षा विरहकाल का कथन है । नाना जीवों की अपेक्षा—यदि नरक में लगातार कोई भी जीव उत्पन्न न हो, तो बारह मुहूर्त तक एक भी जीव वहाँ उत्पन्न नहीं होगा । अतः नरक में उत्पाद का छेदन अर्थात् विरहकाल बारह मुहूर्त का कहा जायगा । इसी प्रकार उत्पाद का आनन्तर्य अर्थात् लगातार उत्पत्ति को उत्पाद-आनन्तर्य या उत्पाद का अविरह-काल समझना चाहिए । जैसे—यदि नरकगति में लगातार नारकी जीव उत्पन्न होते रहें तो कितने काल तक उत्पन्न होते रहेंगे ? इसका उत्तर है कि नरक में लगातार जीव असंख्यात समय तक उत्पन्न होते रहेंगे । अतः नरक गति में उत्पाद का आनन्तर्य या अविरहकाल असंख्यात समय कहा जायगा ।

इसी प्रकार व्यय-च्छेदन का अर्थ विनाश का अविरहकाल और व्यय-आनन्तर्य का अर्थ व्यय का विरहकाल लेना चाहिए । अर्थात् नरक से मर करके बाहर निकलने वाले जीवों का विना व्यवच्छेद के लगातार निकलने का क्रम जितने समय तक जारी रहेगा—वह व्यय का अविरहकाल कहलायगा । तथा जितने समय तक नरकगति से एक भी जीव नहीं निकलेगा, वह नरक के व्यय का विरहकाल कहलायगा ।

कर्म का बन्ध लगातार जितने समय तक होता रहेगा, वह बंध का अविरहकाल है और जितने काल के लिए कर्म का बन्ध नहीं होगा, वह बन्ध का विरहकाल है । जैसे अभव्य के लगातार कर्मबन्ध होता ही रहेगा, कभी विरह नहीं होगा, अतः अभव्य के कर्मबन्ध का अविरहकाल अनन्त समय है । भव्यजीव उपशम श्रेणी पर चढ़कर ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंचता है, वहां पर एकमात्र साता-

१. जिस संवत्सर में जिस तिथि में जिस नक्षत्र का योग होना चाहिए, उस नक्षत्र का उसी तिथि में योग होता है, जिसमें ऋतुएं यथासमय परिणमन करती हैं, जिसमें न अति गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी ही पड़ती है और जिसमें वर्षा अच्छी होती है, वह नक्षत्र-संवत्सर कहलाता है।
२. जिस संवत्सर में चन्द्रमा सभी पूर्णिमाओं का स्पर्श करता है, जिसमें अन्य नक्षत्रों की विषम गति होती है, जिसमें सर्दी और गर्मी अधिक होती है, तथा वर्षा भी अधिक होती है, उसे चन्द्रसंवत्सर कहते हैं।
३. जिस संवत्सर में वृक्ष विषमरूप से—असमय में पत्र-पुष्प रूप से परिणत होते हैं, और विना ऋतु के फल देते हैं, जिस वर्ष में वर्षा भी ठीक नहीं बरसती है, उसे कर्मसंवत्सर या ऋतुसंवत्सर कहते हैं।
४. जिस संवत्सर में अल्प वर्षा से भी सूर्य पृथ्वी, जल, पुष्प और फलों को रस अच्छा देता है, और धान्य अच्छा उत्पन्न होता है, उसे आदित्य या सूर्यसंवत्सर कहते हैं।
५. जिस संवत्सर में सूर्य के तेज से संतप्त क्षण, लव, दिवस और ऋतु परिणत होते हैं, जिसमें भूमि-भाग धूलि से परिपूर्ण रहते हैं अर्थात् सदा धूलि उड़ती रहती है, उसे अभिवर्धित-संवत्सर जानना चाहिए।

जीवप्रदेश-निर्याण-मार्ग-सूत्र

२१४—पंचविधे जीवस्स णिज्जाणमग्गे पण्णत्ते, तं जहा—पाएहिं, ऊरूहिं, उरेणं, सिरेणं सव्वंगेहिं।

पाएहिं णिज्जायमाणे णिरयगामी भवति, ऊरूहिं णिज्जायमाणे तिरियगामी भवति, उरेणं णिज्जायमाणे मणुयगामी भवति, सिरेणं णिज्जायमाणे देवगामी भवति, सव्वंगेहिं णिज्जायमाणे सिद्धिगति-पज्जवसाणे पण्णत्ते।

जीव-प्रदेशों के शरीर से निकलने के मार्ग पाँच कहे गये हैं। जैसे—
१. पैर २. उरु, ३. हृदय, ४. शिर, ५. सर्वाङ्ग।
१. पैरों से निर्याण करने (निकलने) वाला जीव नरकगामी होता है।
२. उरु (जंघा) से निर्याण करने वाला जीव तिर्यंचगामी होता है।
३. हृदय से निर्याण करने वाला जीव मनुष्यगामी होता है।
४. शिर से निर्याण करने वाला जीव देवगामी होता है।
५. सर्वाङ्ग से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति-पर्यवसानवाला कहा गया है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करता है (२१४)।

छेदन-सूत्र

२१५—पंचविहे छेयणे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पाछेयणे, वियच्छेयणे, बंधच्छेयणे, पएसच्छेयणे, दोधारच्छेयणे।

छेदन (विभाग) पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. उत्पाद-छेदन—उत्पाद पर्याय के आधार पर विभाग करना।

२. व्यय-छेदन—विनाश पर्याय के आधार पर विभाग करना।
३. बन्ध-छेदन—कर्म-बन्ध का छेदन, या पुद्गलस्कन्ध का विभाजन।
४. प्रदेश-छेदन—निर्विभागी वस्तु के प्रदेश का बुद्धि से विभाजन।
५. द्विधा-छेदन—किसी वस्तु के दो विभाग करना (२१५)।

आनन्तर्य-सूत्र

२१६—पंचविहे आणंतरिए पण्णत्ते, तं जहा—उप्पायाणंतरिए, वियाणंतरिए, पएसाणंतरिए, समयाणंतरिए, सामण्णाणंतरिए।

आनन्तर्य (विरह का अभाव) पाँच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उत्पाद-आनन्तर्य—लगातार उत्पत्ति।
२. व्यय-आनन्तर्य—लगातार विनाश।
३. प्रदेश-आनन्तर्य—लगातार प्रदेशों की संलग्नता।
४. समय-आनन्तर्य—समय की निरन्तरता।
५. सामान्य-आनन्तर्य—किसी पर्याय विशेष की विवक्षा न करके सामान्य निरन्तरता।

विवेचन—उपर्युक्त दोनों सूत्रों का उक्त सामान्य शब्दार्थ लिखकर संस्कृत टीकाकार ने एक दूसरा भी अर्थ किया है जो एक विशेष अर्थ का बोधक है। उसके अनुसार छेदन का अर्थ 'विरह-काल' और आनन्तर्य का अर्थ 'अविरहकाल' है। कोई जीव किसी विवक्षित पर्याय का त्याग कर अन्य पर्याय में कुछ काल तक रह कर पुनः उसी पूर्व पर्याय को जितने समय के पश्चात् प्राप्त करता है, उतने मध्यवर्ती काल का नाम विरहकाल है। यह एक जीव की अपेक्षा विरहकाल का कथन है। नाना जीवों की अपेक्षा—यदि नरक में लगातार कोई भी जीव उत्पन्न न हो, तो बारह मुहूर्त तक एक भी जीव वहाँ उत्पन्न नहीं होगा। अतः नरक में उत्पाद का छेदन अर्थात् विरहकाल बारह मुहूर्त का कहा जायगा। इसी प्रकार उत्पाद का आनन्तर्य अर्थात् लगातार उत्पत्ति को उत्पाद-आनन्तर्य या उत्पाद का अविरह-काल समझना चाहिए। जैसे—यदि नरकगति में लगातार नारकी जीव उत्पन्न होते रहें तो कितने काल तक उत्पन्न होते रहेंगे? इसका उत्तर है कि नरक में लगातार जीव असंख्यात समय तक उत्पन्न होते रहेंगे। अतः नरक गति में उत्पाद का आनन्तर्य या अविरहकाल असंख्यात समय कहा जायगा।

इसी प्रकार व्यय-च्छेदन का अर्थ विनाश का अविरहकाल और व्यय-आनन्तर्य का अर्थ व्यय का विरहकाल लेना चाहिए। अर्थात् नरक से मर करके बाहर निकलने वाले जीवों का विना व्यवच्छेद के लगातार निकलने का क्रम जितने समय तक जारी रहेगा—वह व्यय का अविरहकाल कहलायगा। तथा जितने समय तक नरकगति से एक भी जीव नहीं निकलेगा, वह नरक के व्यय का विरहकाल कहलायगा।

कर्म का वन्ध लगातार जितने समय तक होता रहेगा, वह बंध का अविरहकाल है। जितने काल के लिए कर्म का बन्ध नहीं होगा, वह बन्ध का विरहकाल है। जैसे अभव्य के कर्मबन्ध होता ही रहेगा, कभी विरह नहीं होगा, अतः अभव्य के कर्मबन्ध का अविरहकाल अन है। भव्यजीव उपशम श्रेणी पर चढ़कर ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंचता है, वहां पर एकमात्र

वेदनीय कर्म का बन्ध होता है, शेष सात कर्मों का बन्ध नहीं होता । यतः ग्यारहवें गुणस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः उस जीव के सात कर्मों में बन्ध का विरहकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त है । इसी प्रकार अन्य जीवों के विषय में जानना चाहिए ।

कर्म-प्रदेशों के छेदन या विरह को प्रदेश-छेदन कहते हैं । जैसे कोई सम्यक्त्वी जीव अनन्तानुबन्धी कषायों का विसंयोजन अर्थात् अप्रत्याख्यानादिरूप में परिवर्तन कर देता है, जितने समय तक यह विसंयोजना रहेगी—उतने समय तक अनन्तानुबन्धी कषाय के प्रदेशों का विरह कहलायगा और उस जीव के सम्यक्त्व से च्युत होते ही पुनः अनन्तानुबन्धी कषाय का बन्ध प्रारम्भ होते ही संयोजन होने लगेगा, उतना मध्यवर्तीकाल अनन्तानुबन्धी का विरहकाल कहलायेगा ।

इसी प्रकार द्विधा-छेदन का अर्थ—मोहकर्म को प्राप्त कर्मप्रदेशों का दर्शनमोह और चारित्र-मोह में विभाजित होना आदि लेना चाहिए ।

काल के निरन्तर चलने वाले प्रवाह को समय-आनन्तर्य कहते हैं । सामान्य रूप से निरन्तर चलने वाले संसार-प्रवाह को सामान्य आनन्तर्य जानना चाहिए ।

अनन्त-सूत्र

२१७—पंचविधे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—णामाणंतए, ठवणाणंतए, दव्वाणंतए, गणणाणंतए पदेसाणंतए ।

अहवा—पंचविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—एगंतोऽणंतए, दुहओणंतए, देसवित्थाराणंतए, सव्ववित्थाराणंतए, सासयाणंतए ।

अनन्तक पांच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. नाम-अनन्तक—किसी व्यक्ति का 'अनन्त' यह नाम रख देना । जैसे आगमभाषा में वस्त्र का नाम अनन्तक है ।
२. स्थापना-अनन्तक—स्थापना निक्षेप के द्वारा किसी वस्तु में अनन्त की स्थापना कर देना स्थापना-अनन्तक है ।
३. द्रव्य-अनन्तक—जीव, पुद्गल परमाणु आदि द्रव्य-अनन्तक हैं ।
४. गणना-अनन्तक—जिस गणना का अन्त न हो, ऐसी संख्याविशेष को गणना-अनन्तक कहते हैं ।
५. प्रदेश-अनन्तक—जिसके प्रदेश अनन्त हों, जैसे आकाश के प्रदेश अनन्त हैं, यह प्रदेश-अनन्तक है ।

अथवा अनन्तक पांच प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. एकतः-अनन्तक—आकाश के एक श्रेणीगत आयत (लम्बाई में) अनन्त प्रदेश ।
२. द्विधा-अनन्तक—आयत और विस्तृत प्रतरक्षेत्र-गत अनन्त प्रदेश ।
३. देशविस्तार-अनन्तक—पूर्वादि किसी एक दिशासम्बन्धी देशविस्तारगत अनन्त प्रदेश ।
४. सर्व विस्तार-अनन्तक—सम्पूर्ण आकाश के अनन्त प्रदेश ।
५. शाश्वत-अनन्तक—त्रिकालवर्ती अनादि-अनन्त जीवादि द्रव्य या कालद्रव्य के अनन्त समय (२१७) ।

ज्ञान-सूत्र

२१८—पंचविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियणाणे, सुयणाणे, ओहिणाणे, मणपज्जवणाणे, केवलणाणे।

ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यवज्ञान, ५. केवलज्ञान (२१८)।

२१९—पंचविहे णाणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे, (सुयणाणावरणिज्जे, ओहिणाणावरणिज्जे, मणपज्जवणाणावरणिज्जे), केवलणाणावरणिज्जे।

ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, २. श्रुतज्ञानावरणीय, ३. अवधिज्ञानावरणीय, ४. मनःपर्यवज्ञानावरणीय, ५. केवलज्ञानावरणीय (२१९)।

२२०—पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—वायणा, पुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा।

स्वाध्याय पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. वाचना—पठन-पाठन करना। २. पृच्छना—संदिग्ध विषय को पूछना। ३. परिवर्तना—पठित विषय को फेरना। ४. अनुप्रेक्षा—वार-वार-चिन्तन करना। ५. धर्मकथा—धर्म-चर्चा करना (२२०)।

प्रत्याख्यान-सूत्र

२२१—पंचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—सद्दहणसुद्धे, विणयसुद्धे, अणुभासणासुद्धे, अणुपालणासुद्धे, भावसुद्धे।

प्रत्याख्यान पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रद्धानशुद्ध-प्रत्याख्यान—श्रद्धापूर्वक निर्दोष त्याग-प्रतिज्ञा।
२. विनयशुद्ध—प्रत्याख्यान—विनयपूर्वक निर्दोष त्याग-प्रतिज्ञा।
३. अनुभाषणाशुद्ध-प्रत्याख्यान—गुरु के बोलने के अनुसार प्रत्याख्यान-पाठ बोलना।
४. अनुपालनाशुद्ध-प्रत्याख्यान—विकट स्थिति में भी प्रत्याख्यान का निर्दोष पालन करना।
५. भावशुद्ध-प्रत्याख्यान—रागद्वेष से रहित होकर शुद्ध भाव से प्रत्याख्यान का पालन करना (२२१)।

प्रतिक्रमण-सूत्र

२२२—पंचविहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—आसवदारपडिक्कमणे, मिच्छत्तपडिक्कमणे, कसायपडिक्कमणे, जोगपडिक्कमणे, भावपडिक्कमणे।

प्रतिक्रमण पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. आस्रवद्वार-प्रतिक्रमण—कर्मास्रव के द्वार हिंसादि से निवर्तन।
२. मिथ्यात्व-प्रतिक्रमण—मिथ्यात्व से पुनःसम्यक्त्व में आना।
३. कषाय-प्रतिक्रमण—कषायों से निवृत्त होना।
४. योग-प्रतिक्रमण—मन वचन काय को अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना।
५. भाव-प्रतिक्रमण—मिथ्यात्व आदि का कृत, कारित, अनुमोदना से त्यागकर शुद्धभाव से सम्यक्त्व में स्थिर रहना (२२२)।

सूत्र-वाचना-सूत्र

२२३—पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं वाएज्जा, तं जहा—संगहट्ठयाए, उवग्गहट्ठयाए, णिज्जरट्ठयाए, सुत्ते वा मे पज्जवयाते भविस्सति, सुत्तस्स वा अवोच्छित्तिणयट्ठयाए।

पाँच कारणों से सूत्र की वाचना देनी चाहिये। जैसे—
१. संग्रह के लिए—शिष्यों को श्रुत-सम्पन्न बनाने के लिए।
२. उपग्रह के लिए—भक्त-पान और उपकरणादि प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त कराने के लिए।
३. निर्जरा के लिए—कर्मों की निर्जरा के लिए।
४. वाचना देने से मेरा श्रुत परिपुष्ट होगा, इस कारण से।
५. श्रुत के पठन-पाठन की परम्परा अविच्छिन्न रखने के लिए (२२३)।

२२४—पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खेज्जा, तं जहा—णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, वुग्गहविमोयणट्ठयाए, अहत्थे वा भावे जाणिस्सामीतिकट्टु।

पांच कारणों से सूत्र को सीखना चाहिए। जैसे—
१. ज्ञानार्थ—नये नये तत्त्वों के परिज्ञान के लिए।
२. दर्शनार्थ—श्रद्धान के उत्तरोत्तर पोषण के लिए।
३. चारित्रार्थ—चारित्र की निर्मलता के लिए।
४. व्युद्-ग्रहविमोचनार्थ—दूसरों के दुराग्रह को छुड़ाने के लिए।
५. यथार्थ-भाव-ज्ञानार्थ—सूत्रशिक्षण से मैं यथार्थ भावों को जानूंगा, इसलिए।
इन पांच कारणों से सूत्र को सीखना चाहिए (२२४)।

कल्प-सूत्र

२२५—सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता, तं जहा—किण्हा, (णीला, लोहिता, हालिद्दा), सुक्किल्ला।

सौधर्म और ईशान कल्प के विमान पांच वर्ण के कहे गये हैं। जैसे—
१. कृष्ण, २. नील, ३. लोहित, ४. हारिद्र, ५. शुक्ल (२२५)।

२२६—सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु विमाणा पंचजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में (ऐरवत क्षेत्र में) पाँच महानदियां रक्ता महानदी को समर्पित होती हैं (उसमें मिलती हैं)। जैसे—

१. कृष्णा, २. महाकृष्णा, ३. नीला, ४. महानीला, ५. महातीरा (२३२)।

२३३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रत्तावतिं महाणदिं पंच महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—इंदा, इंदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा, महाभोगा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में (ऐरवत क्षेत्र में) पाँच महानदियां रक्तावती महानदी को समर्पित होती हैं (उसमें मिलती हैं)। जैसे—

१. इन्द्रा, २. इन्द्रसेना, ३. सुषेणा, ४. वारिषेणा, ५. महाभोगा (२३३)।

तीर्थंकर-सूत्र

२३४—पंच तित्थगरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडा (भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइया, तं जहा—वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठणेमी, पासे, वीरे।

पाँच तीर्थंकर कुमार वास में रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए। जैसे—

१. वासुपूज्य, २. मल्ली, ३. अरिष्टनेमि, ४. पार्श्व और ५. महावीर (२३४)।

सभा-सूत्र

२३५—चमरचंचाए रायहाणीए पंच सभा पण्णत्ता, तं जहा—सभासुधम्मा, उववातसभा, अभिसेयसभा, अलंकारियसभा, ववसायसभा।

अमरचंचा राजधानी में पांच सभाएं कही गई हैं। जैसे—

१. सुधर्मासभा (शयनागार) २. उपपात सभा (उत्पत्ति स्थान) ३. अभिषेकसभा (राज्याभिषेक का स्थान) ४. अलंकारिक सभा (शरीर-सज्जा-भवन) ५. व्यवसाय सभा (अध्ययन या तत्त्व-निर्णय का स्थान) (२३५)।

२३६—एगमेगे णं इंदट्ठाणे पंच सभाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सभासुहम्मा, (उववातसभा, अभिसेयसभा, अलंकारियसभा), ववसायसभा।

इसी प्रकार एक-एक इन्द्रस्थान में पाँच-पाँच सभाएं कही गई हैं। जैसे—

१. सुधर्मा सभा, २. उपपात सभा, ३. अभिषेक सभा, ४. अलंकारिक सभा और ५. व्यवसाय सभा (२३६)।

नक्षत्र-सूत्र

२३७—पंच णक्खत्ता पंचतारा पण्णत्ता, तं जहा—धणिट्ठा, रोहिणी, पुणव्वसू, हत्थो, विसाहा।

पाँच नक्षत्र पाँच-पाँच तारावाले कहे गये हैं। जैसे—

१. धनिष्ठा, २. रोहिणी, ३. पुनर्वसु, ४. हस्त, ५. विशाखा (२३७)।

पापकर्म-सूत्र

२३८—जीवा णं पंचट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति, वा, तं जहा—एगिंदियणिव्वत्तिए, (बेइंदियणिव्वत्तिए, तेइंदियणिव्वत्तिए, चउरिंदिय-णिव्वत्तिए), पंचिंदियणिव्वत्तिए।

एवं—चिण-उवचिण-बंध-उदीर-वेद तह णिज्जरा चेव।

जीवों ने पाँच स्थानों से निर्वर्त्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप से संचय भूतकाल में किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे। जैसे—

१. एकेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का, २. द्वीन्द्रियनिर्वर्त्तित पुद्गलों का, ३. त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का, ४. चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का, ५. पंचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का (२३७)।

इसी प्रकार पाँच स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म रूप से उपचय, वन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण भूतकाल में किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे।

पुद्गल-सूत्र

२३९—पंचपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

पाँच प्रदेश वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (२३८)।

२४०—पंचपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव पंचगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

(आकाश के) पाँच प्रदेशों में अवगाढ पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। पाँच समय की स्थिति वाले पुद्गल-स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं। पाँच गुणवाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण, तथा सभी रस, गन्ध और स्पर्श वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं।

।। तृतीय उद्देश समाप्त ।।

।। पंचम स्थान समाप्त ।।

प्राचीन समय में वाद-विवाद या शास्त्रार्थ में वादी एवं प्रतिवादी किस प्रकार के दाव-पेंच खेलते थे, यह विवाद-पद से ज्ञात होगा।

इसके अतिरिक्त कौन-कौन से स्थान सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं हैं, किन्तु अतिदुर्लभ हैं? उनका जानना भी प्रत्येक मुमुक्षु एवं विज्ञ-पुरुष के लिए अत्यावश्यक है।

विष-परिणाम-पद से आयुर्वेद-विषयक भी ज्ञान प्राप्त होता है। पृष्ट-पद से अनेक प्रकार के प्रश्नों का, भोजन-परिणाम-पद से भोजन कैसा होना चाहिए आदि व्यावहारिक बातों का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

इस प्रकार यह स्थान अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों से समृद्ध है।

षष्ठ स्थान

सार : संक्षेप

प्रस्तुत स्थान में छह-छह संख्या से निबद्ध अनेक विषय संकलित हैं।

यद्यपि यह छठा स्थान अन्य स्थानों की अपेक्षा छोटा है और इसमें उद्देश-विभाग भी नहीं है, पर यह अनेक महत्त्वपूर्ण चर्चाओं से परिपूर्ण है जिन्हें साधु और साध्वियों को जानना अत्यावश्यक है।

सर्वप्रथम यह वताया गया है कि गण के धारक गणी, या आचार्य को कैसा होना चाहिए ? यदि वह श्रद्धावान्, सत्यवादी, मेधावी, बहुश्रुत, शक्तिमान् और अधिकरणविहीन है, तब वह गण-धारक के योग्य है। इसका दूसरा पहलू यह है कि जो उक्त गुणों से सम्पन्न नहीं है, वह गण-धारण के योग्य नहीं है।

साधुओं के कर्त्तव्यों को बताते हुए प्रमाद-युक्त और प्रमाद-मुक्त प्रतिलेखना से जिन छह-छह भेदों का वर्णन किया गया है, वे सर्व सभी साधुवर्ग के लिए ज्ञातव्य एवं आचरणीय हैं, गोचरी के छह भेद, प्रतिक्रमण के छह भेद, संयम-असंयम के छह भेद और प्रायश्चित्त का कल्प प्रस्तार तो साधु के लिए बड़ा ही उद्-बोधक है। इसी प्रकार साधु-आचार के घातक छह पलिमंथु, छह-प्रकार के अवचन और उन्माद के छह स्थानों का वर्णन साधु-साध्वी को उन से बचने की प्रेरणा देता है। अन्तकर्म-पद भी ज्ञातव्य है।

निर्ग्रन्थ साधु किस-किस अवस्था में निर्ग्रन्थी को हस्तावलम्बन और सहारा दे सकता है, कौन-कौन से स्थान साधु के लिए हित-कारक और अहित-कारक हैं, कब किन कारणों से साधु को आहार लेना चाहिए और किन कारणों से आहार का त्याग करना चाहिए, इसका भी बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है।

सैद्धान्तिक तत्त्वों के निरूपण में गति-आगति-पद, इन्द्रियार्थ-पद, संवर-असंवर पद, कालचक्र-पद, संहनन और संस्थान-पद, दिशा-पद, लेश्या-पद, मति-पद, आयुर्बन्ध-पद आदि पठनीय एवं महत्त्व-पूर्ण सन्दर्भ हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से मनुष्य-पद, आर्य-पद, इतिहास-पद दर्शनीय हैं।

ज्योतिष की दृष्टि से कालचक्र-पद, दिशा-पद, नक्षत्र-पद, ऋतु-पद, अवमरात्र और अतिरात्र-पद विशेष ज्ञानवर्धक हैं।

भौगोलिक दृष्टि से लोकस्थिति-पद, महानरक-पद, विमान-प्रस्तट-पद, महाद्रह-पद, नदी-पद द अवलोकनीय हैं।

प्राचीन समय में वाद-विवाद या शास्त्रार्थ में वादी एवं प्रतिवादी किस प्रकार के दाव-पेंच खेलते थे, यह विवाद-पद से ज्ञात होगा।

इसके अतिरिक्त कौन-कौन से स्थान सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं हैं, किन्तु अतिदुर्लभ हैं ? उनका जानना भी प्रत्येक मुमुक्षु एवं विज्ञ-पुरुष के लिए अत्यावश्यक है।

विष-परिणाम-पद से आयुर्वेद-विषयक भी ज्ञान प्राप्त होता है। पृष्ट-पद से अनेक प्रकार के प्रश्नों का, भोजन-परिणाम-पद से भोजन कैसा होना चाहिए आदि व्यावहारिक बातों का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

इस प्रकार यह स्थान अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों से समृद्ध है।

षष्ठ स्थान

गण-धारण-सूत्र

१—छहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति गणं धारित्तए, तं जहा—सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते, मेहावी पुरिसजाते, बहुस्सुते पुरिसजाते, सत्तिमं, अप्पाधिकरणे।

छह स्थानों से सम्पन्न अनगार गण धारण करने के योग्य होता है। जैसे—

१. श्रद्धावान् पुरुष, २. सत्यवादी पुरुष, ३. मेधावी पुरुष, ४. बहुश्रुत पुरुष,
५. शक्तिमान् पुरुष, ६. अल्पाधिकरण पुरुष।

विवेचन—गण या साधु-संघ को धारण करने वाले व्यक्ति को इन छह विशेषताओं से संयुक्त होना आवश्यक है, अन्यथा वह गण या संघ का सुचारु संचालन नहीं कर सकता।

उसे सर्वप्रथम श्रद्धावान् होना चाहिए। जिसे स्वयं ही जिन-प्रणीत मार्ग पर श्रद्धा नहीं होगी वह दूसरों को उसकी दृढ प्रतीति कैसे करायगा ?

दूसरा गुण सत्यवादी होना है। सत्यवादी पुरुष ही दूसरों को सत्यार्थ की प्रतीति करा सकता है और की हुई प्रतिज्ञा के निर्वाह करने में समर्थ हो सकता है।

तीसरा गुण मेधावी होना है। तीक्ष्ण या प्रखर बुद्धिशाली पुरुष स्वयं भी श्रुत-ग्रहण करने में समर्थ होता है और दूसरों को भी श्रुत-ग्रहण कराने में समर्थ हो सकता है।

चौथा गुण बहुश्रुत-शाली होना है। जो गणनायक बहुश्रुत-सम्पन्न नहीं होगा, वह अपने शिष्यों को कैसे श्रुत-सम्पन्न कर सकेगा !

पांचवाँ गुण शक्तिशाली होना है। समर्थ पुरुष को स्वस्थ एवं दृढ संहनन वाला होना आवश्यक है। साथ ही मंत्र-तंत्रादि की शक्ति से भी सम्पन्न होना चाहिए।

छठा गुण अल्पाधिकरण होना है। अधिकरण का अर्थ है—कलह या विग्रह और 'अल्प' शब्द यहाँ अभाव का वाचक है। जो पुरुष स्व-पक्ष या पर-पक्ष के साथ कलह करता है, उसके पास नवीन शिष्य दीक्षा-शिक्षा लेने से डरते हैं इसलिए गणनायक को कलहरहित होना चाहिए।

अतः उक्त छह गुणों से सम्पन्न साधु ही गणको धारण करने के योग्य कहा गया है। (१)

निर्ग्रन्थी-अवलंबन-सूत्र

२—छहिं ठाणेहिं णिग्गंथे णिग्गंथिं गिण्हमाणे वा अवलंबमाणे वा णाइक्कमइ, तं जहा—खित्तचित्तं, दित्तचित्तं जक्खाइट्ठं, उम्मायपत्तं, उवसग्गपत्तं, साहिकरणं।

छह कारणों से निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थी को ग्रहण और अवलम्बन देता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१. निर्ग्रन्थी के विक्षिप्तचित्त हो जाने पर, २. दृप्तचित्त हो जाने पर,

३. यक्षाविष्ट हो जाने पर, ४. उन्माद को प्राप्त हो जाने पर,
५. उपसर्ग प्राप्त हो जाने पर, ६. कलह का प्राप्त हो जाने पर। (२)

सार्धमिक-अन्तकर्म-सूत्र

३—छहिं ठाणेहिं णिग्गंथा णिग्गंथीश्रो य साहम्मियं कालगतं समायरमाणा णाइक्कमंति, तं जहा—श्रंतोहिंतो वा बाहिं णीणेमाणा, बाहीहिंतो वा णिब्बाहिं णीणेमाणा, उवेहेमाणा वा, उवासमाणा वा, श्रणुण्णवेमाणा वा, तुसिणीए वा संपव्वयमाणा।

छह कारणों से निर्ग्रन्थ श्रौर निर्ग्रन्थी (साथ-साथ) अपने काल-प्राप्त सार्धमिक का श्रन्त्यकर्म करते हुए भगवान् की श्राज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं। जैसे—

१. उसे उपाश्रय से बाहर लाते हुए।
२. वस्ती से बाहर लाते हुए।
३. उपेक्षा करते हुए।
४. शव के समीप रह कर रात्रि-जागरण करते हुए।
५. उसके स्वजन या गृहस्थों को जताते हुए।
६. उसे एकान्त में विसर्जित करने के लिए मौन भाव से जाते हुए।

विवेचन—पूर्वकाल में जब साधु श्रौर साध्वियों के संघ विशाल होते थे श्रौर वे प्रायः नगर के बाहर रहते थे—उस समय किसी साधु या साध्वी के कालगत होने पर उसकी श्रन्तक्रिया उन्हें करनी पड़ती थी। उसी का निर्देश प्रस्तुत सूत्र में किया गया है।

प्रथम दो कारणों से ज्ञात होता है कि जहाँ साधु या साध्वी कालगत हो, उस स्थान से बाहर निकालना श्रौर फिर उसे निर्दोष स्थण्डिल पर विसर्जित करने के लिए वस्ती से बाहर ले जाने का भी काम उनके साम्भोगिक साधु या साध्वी स्वयं ही करते थे।

तीसरे उपेक्षा कारण का श्रर्थ विचारणीय है। टीकाकार ने इसके दो भेद किये हैं—व्यापारोपेक्षा श्रौर श्रव्यापारोपेक्षा। व्यापारोपेक्षा का श्रर्थ किया है—मृतक के अंगच्छेदन- बंधनादि क्रियाश्रों को करना। तथा श्रव्यापारोपेक्षा का श्रर्थ किया है—मृतक के सम्बन्धियों-द्वारा सत्कार-संस्कार में उदासीन रहना। बृहत्कल्प भाष्य श्रौर दि. ग्रन्थ माने जाने मूलाराधना के निर्हरण-प्रकरण से ज्ञात होता है कि यदि कोई श्राराधक रात्रि में कालगत हो जावे तो उसमें कोई भूत-प्रेत श्रादि प्रवेश न कर जावे, इसके लिए उसकी अंगुली के मध्य पर्व का भाग छेद दिया जाता था, तथा हाथ-पैरों के अंगूठों को रस्सी से बांध दिया जाता था। श्रव्यापारोपेक्षा का जो श्रर्थ टीकाकार ने किया है, उससे ज्ञात होता है कि मृतक के सम्बन्धी श्राकर उसका मृत्यु-महोत्सव किसी विधि-विशेष से मनाते रहे होंगे, उसमें साधु या साध्वी को उदासीन रहना चाहिए।

चौथा कारण स्पष्ट है—यदि रात्रि में कोई श्राराधक कालगत हो श्रौर उसका तत्काल निर्हरण संभव न हो तो कालगत के साम्भोगिकों को उसके पास रात्रि-जागरण करते हुए रहना चाहिए।

पाँचवें कारण से ज्ञात होता है कि यदि कालगत श्राराधक के सम्बन्धी जनों को मरण होने की सूचना देने के लिए कह रखा हो तो उन्हें उसकी सूचना देना भी उनका कर्तव्य है।

छठे कारण से ज्ञात होता है कि कालगत आराधक को विसर्जित करने के लिए साधु या साध्वियों को जाना पड़े तो मौनपूर्वक जाना चाहिए।

इस निर्हरणरूप अन्त्यकर्म का विस्तृत विवेचन वृहत्कल्पभाष्य और मूलाराधना से जानना चाहिए।

छद्मस्थ-केवली-सूत्र

४—छ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आयासं, जीवमसरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं।

एताणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे (केवली) सव्वभावेणं जाणति पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं (अधम्मत्थिकायं आयासं, जीवमसरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं), सद्दं।

छद्मस्थ पुरुष छह स्थानों को सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीर रहित जीव, ५. पुद्गल परमाणु, ६. शब्द।

किन्तु जिनको विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, उनके धारण करने वाले अर्हन्त, जिन केवली सम्पूर्ण रूप से जानते और देखते हैं। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीर-रहित जीव, ५. पुद्गल परमाणु, ६. शब्द (४)।

असंभव-सूत्र

५—छहिं ठाणेहिं सव्वजीवाणं णत्थि इड्ढीति वा जुतीति वा जसेति वा बलेति वा वीरिएति वा पुरिसक्कार-परक्कमेति वा, तं जहा—१. जीवं वा अजीवं करणताए। २. अजीवं वा जीवं करणताए। ३. एगसमए णं वा दो भासाओ भासित्तए। ४. सयं कडं वा कम्मं वेदेमि वा मा वा वेदेमि। ५. परमाणुपोग्गलं वा छिंदित्तए वा भिंदित्तए वा अगणिकाएणं वा समोदहित्तए। ६. बहिता वा लोगंता गमणताए।

सभी जीवों में छह कार्य करने की न ऋद्धि है, न द्युति है, न यश है, न बल है, न वीर्य है, न पुरस्कार है और न पराक्रम है। जैसे—

१. जीव को अजीव करना।
२. अजीव को जीव करना।
३. एक समय में दो भाषा बोलना।
४. स्वयंकृत कर्म को वेदन करना या नहीं वेदन करना।
५. पुद्गल परमाणु का छेदन या भेदन करना, या अग्निकाय से जलाना।
६. लोकान्त से बाहर जाना (५)।

जीव-सूत्र

६—छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया) तसकाइया।

छह जीवनिकाय कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्ककायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पति-कायिक, ६. त्रसकायिक (६)।

७—छ तारग्गहा पण्णत्ता, तं जहा—सुक्के, बुहे, बहस्सती, अंगारए, सणिच्छरे, केतू।

छह ताराग्रह (तारों के आकार वाले ग्रह) कहे गये हैं। जैसे—

१. शुक्र, २. बुध, ३. बृहस्पति, ४. अंगारक (मंगल), ५. शनिश्चर ६. केतु (७)।

८—छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया), तसकाइया।

संसार-समापन्नक जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पति-कायिक, ६. त्रसकायिक (८)।

गति-आगति-सूत्र

९—पुढविकाइया छगतिया छआगतिया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा, (आउकाइएहिंतो वा, तेउकाइएहिंतो वा, वाउकाइएहिंतो वा, वणस्सइकाइएहिंतो वा), तसकाइएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकाइयत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा, (आउकाइयत्ताए वा, तेउकाइयत्ताए वा, वाउकाइयत्ताए वा, वणस्सइकाइयत्ताए वा) तसकाइयत्ताए वा गच्छेज्जा।

पृथिवीकायिक जीव षड्-गतिक और षड्-आगतिक कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होता हुआ पृथिवीकायिकों से, या अप्कायिकों से, या तेजस्कायिकों से, या वायुकायिकों से, या वनस्पतिकायिकों से, या त्रसकायिकों से आकर उत्पन्न होता है।

वही पृथिवीकायिक जीव पृथिवीकायिक पर्याय को छोड़ता हुआ पृथिवीकायिकों में, या अप्कायिकों में, या तेजस्कायिकों में, या वायुकायिकों में, या वनस्पतिकायिकों में, या त्रसकायिकों में जाकर उत्पन्न होता है (९)।

१०—आउकाइया छगतिया छआगतिया एवं चेव जाव तसकाइया।

इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव छह स्थानों में गति तथा छह स्थानों से आगति करने वाले कहे गये हैं।

जीव-सूत्र

११—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियणाणी, (सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी), केवलणाणी, अण्णाणी।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया, (बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,) पंचिंदिया, अणिंदिया ।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालियसरीरी, वेउव्वियसरीरी, आहारगसरीरी, तेअगसरीरी, कम्मगसरीरी, असरीरी ।

सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. आभिनिबोधिक ज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मन:पर्यवज्ञानी ५. केवलज्ञानी और ६. अज्ञानी (मिथ्याज्ञानी) ।

अथवा—सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पंचेन्द्रिय, ६. अनिन्द्रिय (सिद्ध) ।

अथवा—सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. औदारिकशरीरी, २. वैक्रियशरीरी, ३. आहारकशरीरी, ४. तैजसशरीरी, ५. कार्मणशरीरी और ६. अशरीरी (मुक्तात्मा) (११) ।

तृणवनस्पति-सूत्र

१२—छव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा, संमुच्छिमा ।

तृण-वनस्पतिकायिक जीव छह प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. अग्रबीज, २. मूलबीज, ३. पर्वबीज, ४. स्कन्धबीज, ५. बीजरुह और ६. सम्मूर्च्छिम (१२) ।

नो-सुलभ-सूत्र

१३—छट्ठाणाइं सव्वजीवाणं णो सुलभाइं भवंति, तं जहा—माणुस्सए भवे । आरिए खेत्ते जम्मं । सुकुले पच्चायाती । केवलीपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणता । सुतस्स वा सद्दहणता । सद्दहितस्स वा पत्तितस्स वा रोइतस्स वा सम्मं काएणं फासणता ।

छह स्थान सर्व जीवों के लिए सुलभ नहीं हैं । जैसे—

१. मनुष्य भव, २. आर्य क्षेत्र में जन्म, ३. सुकुल में आगमन, ४. केवलिप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण, ५. सुने हुए धर्म का श्रद्धान और ६. श्रद्धान किये, प्रतीति किये और रुचि किये गये धर्म का काय से सम्यक् स्पर्शन (आचरण) (१३) ।

इन्द्रियार्थ-सूत्र

१४—छ इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियत्थे, (चक्खिंदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे,) फासिंदियत्थे, णोइंदियत्थे ।

इन्द्रियों के छह अर्थ (विषय) कहे गये हैं । जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय का अर्थ—शब्द, २. चक्षुरिन्द्रिय का अर्थ—रूप,

३. घ्राणेन्द्रिय का अर्थ—गन्ध,   ४. रसनेन्द्रिय का अर्थ—रस,
५. स्पर्शनेन्द्रिय का अर्थ—स्पर्श   ६. नोइन्द्रिय (मन) का अर्थ—श्रुत (१४)।

विवेचन—पाँच इन्द्रियों के विषय तो नियत एवं सर्व-विदित हैं। किन्तु मन का विषय नियत नहीं है। वह सभी इन्द्रियों के द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करता है, अतः सर्वार्थ-ग्राही है। तत्त्वार्थ-सूत्र में भी उसका विषय श्रुत कहा गया है। और आचार्य अकलंक देव ने उसका अर्थ श्रुतज्ञान का विषयभूत पदार्थ किया है।[1] श्री अभयदेव सूरि ने लिखा है कि श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा मनोज्ञ शब्द सुनने से जो सुख होता है, वह तो श्रोत्रेन्द्रिय-जनित है। किन्तु इष्ट-चिन्तन से सुख होता है, वह नोइन्द्रिय-जनित है।[2]

संवर-असंवर-सूत्र

१५—छव्विहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियसंवरे, (चक्खिदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिदियसंवरे,) फासिंदियसंवरे, णोइंदियसंवरे।

संवर छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-संवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-संवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-संवर, ४. रसनेन्द्रिय-संवर,
५. स्पर्शनेन्द्रिय-संवर, ६. नोइन्द्रिय-संवर। (१५)

१६—छव्विहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसंवरे, (चक्खिदियअसंवरे, घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिदियअसंवरे), फासिंदियअसंवरे, णोइंदियअसंवरे।

असंवर छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-असंवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-असंवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-असंवर, ४. रसनेन्द्रिय-असंवर,
५. स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर, ६. नोइन्द्रिय-संवर। (१६)

सात-असात-सूत्र

१७—छव्विहे साते पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियसाते, (चक्खिदियसाते, घाणिंदियसाते, जिब्भिदियसाते, फासिंदियसाते), णोइंदियसाते।

सात (सुख) छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-सात, २. चक्षुरिन्द्रिय-सात, ३. घ्राणेन्द्रिय-सात, ४. रसनेन्द्रिय-सात,
५. स्पर्शनेन्द्रिय-सात ६. नोइन्द्रिय-सात। (१७)

१८—छव्विहे असाते पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसाते, (चक्खिदियअसाते, घाणिंदियअसाते, जिब्भिदियअसाते, फासिंदियअसाते), णोइंदियअसाते।

---

१. श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। विषयोऽनिन्द्रियस्य।....अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतम्। तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्, तत्पूर्वकत्वात्तस्य। (तत्त्वार्थवार्तिक, सू० २१ भाषा)

२. श्रोत्रेन्द्रियद्वारेण मनोज्ञशब्द-श्रवणतो यत्सातं-सुखं तच्छ्रोत्रेन्द्रियसातम्। तथा यदिष्टचिन्तनवतस्तन्नोइन्द्रियसात-मिति। सूत्रकृताङ्गटीका पत्र ३३८A)

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया, (बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया,) पंचिंदिया, अणिंदिया।

अहवा—छव्विहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालियसरीरी, वेउव्वियसरीरी, आहारगसरीरी, तेअगसरीरी, कम्मगसरीरी, असरीरी।

सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. आभिनिबोधिक ज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मनःपर्यवज्ञानी ५. केवलज्ञानी और ६. अज्ञानी (मिथ्याज्ञानी)।

अथवा—सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. पंचेन्द्रिय, ६. अनिन्द्रिय (सिद्ध)।

अथवा—सर्व जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. औदारिकशरीरी, २. वैक्रियशरीरी, ३. आहारकशरीरी, ४. तैजसशरीरी, ५. कार्मणशरीरी और ६. अशरीरी (मुक्तात्मा) (११)।

तृणवनस्पति-सूत्र

१२—छव्विहा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—अग्गबीया, मूलबीया, पोरबीया, खंधबीया, बीयरुहा, संमुच्छिमा।

तृण-वनस्पतिकायिक जीव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अग्रबीज, २. मूलबीज, ३. पर्वबीज, ४. स्कन्धबीज, ५. बीजरुह और ६. सम्मूर्च्छिम (१२)।

नो-सुलभ-सूत्र

१३—छट्ठाणाइं सव्वजीवाणं णो सुलभाइं भवंति, तं जहा—माणुस्सए भवे। आरिए खेत्ते जम्मं। सुकुले पच्चायाती। केवलीपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणता। सुतस्स वा सद्दहणता। सद्दहितस्स वा पत्तितस्स वा रोइतस्स वा सम्मं काएणं फासणता।

छह स्थान सर्व जीवों के लिए सुलभ नहीं हैं। जैसे—

१. मनुष्य भव, २. आर्य क्षेत्र में जन्म, ३. सुकुल में आगमन, ४. केवलिप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण, ५. सुने हुए धर्म का श्रद्धान और ६. श्रद्धान किये, प्रतीति किये और रुचि किये गये धर्म का काय से सम्यक् स्पर्शन (आचरण) (१३)।

इन्द्रियार्थ-सूत्र

१४—छ इंदियत्था पण्णत्ता, तं जहा—सोइंदियत्थे, (चक्खिदियत्थे, घाणिंदियत्थे, जिब्भिंदियत्थे,) फासिंदियत्थे, णोइंदियत्थे।

इन्द्रियों के छह अर्थ (विषय) कहे गये हैं। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय का अर्थ—शब्द, ३. चक्षुरिन्द्रिय का अर्थ—रूप,

३. घ्राणेन्द्रिय का अर्थ—गन्ध, ४. रसनेन्द्रिय का अर्थ—रस,
५. स्पर्शनेन्द्रिय का अर्थ—स्पर्श ६. नोइन्द्रिय (मन) का अर्थ—श्रुत (१४)।

विवेचन—पाँच इन्द्रियों के विषय तो नियत एवं सर्व-विदित हैं। किन्तु मन का विषय नियत नहीं है। वह सभी इन्द्रियों के द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करता है, अतः सर्वार्थ-ग्राही है। तत्त्वार्थ-सूत्र में भी उसका विषय श्रुत कहा गया है। और आचार्य अकलंक देव ने उसका अर्थ श्रुतज्ञान का विषयभूत पदार्थ किया है।[1] श्री अभयदेव सूरि ने लिखा है कि श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा मनोज्ञ शब्द सुनने से जो सुख होता है, वह तो श्रोत्रेन्द्रिय-जनित है। किन्तु इष्ट-चिन्तन से सुख होता है, वह नोइन्द्रिय-जनित है।[2]

संवर-असंवर-सूत्र

१५—छव्विहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियसंवरे, (चक्खिदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिदियसंवरे,) फासिंदियसंवरे, णोइंदियसंवरे।

संवर छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-संवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-संवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-संवर, ४. रसनेन्द्रिय-संवर,
५. स्पर्शनेन्द्रिय-संवर, ६. नोइन्द्रिय-संवर। (१५)

१६—छव्विहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसंवरे, (चक्खिदियअसंवरे, घाणिंदिय-असंवरे, जिब्भिदियअसंवरे), फासिंदियअसंवरे, णोइंदियअसंवरे।

असंवर छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-असंवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-असंवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-असंवर, ४. रसनेन्द्रिय-असंवर,
५. स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर, ६. नोइन्द्रिय-संवर। (१६)

सात-असात-सूत्र

१७—छव्विहे साते पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियसाते, (चक्खिदियसाते, घाणिंदियसाते, जिब्भिदियसाते, फासिंदियसाते), णोइंदियसाते।

सात (सुख) छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-सात, २. चक्षुरिन्द्रिय-सात, ३. घ्राणेन्द्रिय-सात, ४. रसनेन्द्रिय-सात,
५. स्पर्शनेन्द्रिय-सात ६. नोइन्द्रिय-सात। (१७)

१८—छव्विहे असाते पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसाते, (चक्खिदियअसाते, घाणिंदियअसाते, जिब्भिदियअसाते, फासिंदियअसाते), णोइंदियअसाते।

---

१. श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। विषयोऽनिन्द्रियस्य।····अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतम्। तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्, तत्पूर्वकत्वात्तस्य। (तत्त्वार्थवार्त्तिक, सू० २१ भाषा)

२. श्रोत्रेन्द्रियद्वारेण मनोज्ञशब्द-श्रवणतो यत्सातं-सुखं तच्छ्रोत्रेन्द्रियसातम्। तथा यदिष्टचिन्तनवतस्तन्नोइन्द्रियसात-मिति। सूत्रकृताङ्गटीका पत्र ३३८A)

असात (दुःख) छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-असात, २. चक्षुरिन्द्रिय-असात, ३. घ्राणेन्द्रिय-असात, ४. रसनेन्द्रिय-असात,
५. स्पर्शनेन्द्रिय-असात, ६. नोइन्द्रिय-असात। (१८)

प्रायश्चित्त-सूत्र

१९—छव्विहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे।

प्रायश्चित्त छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आलोचना-योग्य, २. प्रतिक्रमण-योग्य, ३. तदुभय-योग्य, ४. विवेक-योग्य,
५. व्युत्सर्ग-योग्य, ६. तप-योग्य। (१९)

विवेचन—यद्यपि तत्त्वार्थ सूत्र में प्रायश्चित के नौ तथा प्रायश्चित सूत्र आदि में दश भेद बताये गये हैं, किन्तु यहाँ छह का अधिकार होने से छह ही भेद कहे गये हैं। किसी साधारण दोष की शुद्धि गुरु के आगे निवेदन करने से—आलोचना मात्र से हो जाती है। इससे भी बड़ा दोष लगता है, तो प्रतिक्रमण से—मेरा दोष मिथ्या हो—(मिच्छा मि दुक्कडं) ऐसा बोलने से—उसकी शुद्धि हो जाती है। कोई दोष और भी बड़ा हो तो उसकी शुद्धि तदुभय से अर्थात् आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों से होती है। कोई और भी बड़ा दोष होता है, तो उसकी शुद्धि विवेक नामक प्रायश्चित्त से होती है। इस प्रायश्चित्त में दोषी व्यक्ति को अपने भक्त-पान और उपकरणादि के पृथक् विभाजन का दण्ड दिया जाता है। यदि इससे भी गुरुतर दोष होता है, तो नियत समय तक कायोत्सर्ग करनेरूप व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त से उसकी शुद्धि होती है। और यदि इससे भी गुरुतर अपराध होता है तो उसकी शुद्धि के लिए चतुर्थ भक्त—षष्ठभक्त आदि तप का प्रायश्चित्त दिया जाता है। सारांश यह है कि जैसा दोष होता है, उसके अनुरूप ही प्रायश्चित्त देने का विधान है। यह बात छहों पदों के साथ प्रयुक्त 'अर्हे' (योग्य) पद से सूचित की गई है।

मनुष्य-सूत्र

२०—छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—जंबूदीवगा, धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धगा, धायइसंडदीवपच्चत्थिमद्धगा, पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धगा, पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धगा, अंतरदीवगा।

अहवा—छव्विहा मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिममणुस्सा—कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा; गब्भवक्कंतिअमणुस्सा—कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा।

मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जम्बूद्वीप में उत्पन्न, २. धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्ध में उत्पन्न,
३. धातकीषण्ड के पश्चिमार्ध में उत्पन्न, ४. पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में उत्पन्न,
५. पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में उत्पन्न, ६. अन्तर्द्वीपों में उत्पन्न मनुष्य।

अथवा मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य,
२. अकर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य,
३. अन्तर्द्वीप में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्छिम मनुष्य,

४. कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले गर्भज मनुष्य,
५. अकर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले गर्भज मनुष्य,
६. अन्तर्द्वीप में उत्पन्न होने वाले गर्भज मनुष्य (२०)।

२१—छव्विहा इड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, चारणा, विज्जाहरा।

(विशिष्ट) ऋद्धि वाले मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१ अर्हन्त, २. चक्रवर्ती, ३. बलदेव, ४. वासुदेव, ५. चारण, ६. विद्याधर (२१)।

विवेचन—अर्हन्त, चक्रवर्ती, बलदेव, और वासुदेव की ऋद्धि तो पूर्वभवोपार्जित पुण्य के प्रभाव से होती है। वैताढ्यनिवासी विद्यधरों की ऋद्धि कुलक्रमागत भी होती है और इस भव में भी विद्याओं की साधना से प्राप्त होती है। किन्तु चारणऋद्धि महान् तपस्वी साधुओं की कठिन तपस्या से प्राप्त लब्धिजनित होती है। श्री अभयदेव सूरि ने 'चारण' के अर्थ में 'जंघाचारण और विद्याचारण' केवल इन दो नामों का उल्लेख किया है। जिन्हें तप के प्रभाव से भूमि का स्पर्श किये विना ही अधर गमनागमन की लब्धि प्राप्त होती है, वे जंघाचारण कहलाते हैं और विद्या की साधना से जिन्हें आकाश में गमनागमन की शक्ति प्राप्त होती है, वे विद्याचारण कहलाते हैं।

२२—छव्विहा अणिड्ढिमंता मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—हेमवतगा, हेरण्णवतगा, हरिवासगा, रम्मगवासगा, कुरुवासिणो, अंतरदीवगा।

तिलोयपण्णत्ती आदि में ऋद्धिप्राप्त आर्यों के आठ भेद बताये गये हैं—१. बुद्धिऋद्धि, २. क्रियाऋद्धि, ३. विक्रियाऋद्धि, ४. तपःऋद्धि, ५. बलऋद्धि, ६. औषधऋद्धि, ७. रसऋद्धि और ८. क्षेत्रऋद्धि। इनमें बुद्धिऋद्धि के केवलज्ञान आदि १८ भेद हैं। क्रियाऋद्धि के दो भेद हैं—चारणऋद्धि और आकाशगामी ऋद्धि। चारणऋद्धि के भी अनेक भेद वताये गये हैं। यथा—

१. जंघाचारण—भूमि से चार अंगुल ऊपर गमन करने वाले।
२. अग्निशिखाचारण—अग्नि की शिखा के ऊपर गमन करने वाले।
३. श्रेणिचारण—पर्वतश्रेणि आदि का स्पर्श किये बिना ऊपर गमन करने वाले।
४. फल-चारण—वृक्षों के फलों को स्पर्श किये विना ऊपर गमन करने वाले।
५. पुष्पचारण—वृक्षों के पुष्पों को स्पर्श किये विना ऊपर चलने वाले।
६. तन्तुचारण—मकड़ी के तन्तुओं को स्पर्श किये विना उनके ऊपर चलने वाले।
७. जलचारण—जल को स्पर्श किये विना उसके ऊपर चलने वाले।
८. अंकुरचारण—वनस्पति के अंकुरों का स्पर्श किये विना ऊपर चलने वाले।
९. बीजचारण—बीजों का स्पर्श किये विना उनके ऊपर चलने वाले।
१०. धूमचारण—धूम का स्पर्श किये विना उसकी गति के साथ चलने वाले।

इसी प्रकार वायुचारण, नीहारचारण, जलदचारण आदि अनेक प्रकार के चारणऋद्धि वालों की भी सूचना की गई है।

आकाशगामिऋद्धि—पर्यङ्कासन से बैठे हुए, या खड्गासन से अवस्थित रहते हुए पाद-निक्षेप के विना ही विविध आसनों से आकाश में विहार करने वालों को आकाशगामिऋद्धि वाला बताया गया है।

विक्रियाऋद्धि के अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व, अप्रतिघात, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदि अनेक भेद बताये गये हैं।

तपऋद्धि के उग्र, दीप्त, तप्त, महाघोर, तपोघोर, पराक्रमघोर और ब्रह्मचर्य ये सात भेद बताये गये हैं।

बलऋद्धि के मनोबली, वचनबली और कायबली ये तीन भेद हैं। औषधऋद्धि के आठ भेद हैं—आमर्श, खेल (श्लेष्म) जल्ल, मल, विट्, सर्वौषिध, आस्यनिर्विष, दृष्टिनिर्विष। रसऋद्धि के छह भेद हैं—क्षीरस्रवी, मधुस्रवी, सर्पि:स्रवी, अमृतस्रवी, आस्यनिर्विष और दृष्टिनिर्विष। क्षेत्रऋद्धि दो भेद हैं—अक्षीण महानस और अक्षीण महालय।

उक्त सभी ऋद्धियों का चामत्कारिक विस्तृत वर्णन तिलोयपण्णत्ती धवलाटीका और तत्वार्थ-राजवार्तिक में किया गया है। विशेषावश्यकभाष्य में २८ ऋद्धियों का वर्णन किया गया है।

कालचक्र-सूत्र

२३—छव्विहा ओसप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—सुसम-सुसमा, (सुसमा, सुसम-दूसमा, दूसम-सुसमा, दूसमा), दूसम-दूसमा।

अवसर्पिणी छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. सुषम-सुषमा, २. सुषमा, ३. सुषम-दुषमा, ४. दु:षम-सुषमा, ५. दुषमा, ६. दु:षम-दु:षमा (२३)।

२४—छव्विहा उस्सप्पिणी पण्णत्ता, तं जहा—दुस्सम-दुस्समा, दुस्समा, (दुस्सम-सुसमा, सुसम-दुस्समा, सुसमा, सुसम-सुसमा।

उत्सर्पिणी छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. दु:षम-दु:षमा, २. दु:षमा, ३. दु:षम-सुषमा, ४. सुषम-दु:षमा, ५. सुषमा, ६. सुषम-सुषमा (२४)।

२५—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेणं हुत्था, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयित्था।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत-ऐरवत क्षेत्र की अतीत उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष की थी और उनकी उत्कृष्ट आयु छह अर्ध पल्योपम अर्थात् तीन पल्योपम की थी (२५)।

२६—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए (मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालयित्था)।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत-ऐरवत क्षेत्र की इसी अवसर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष की थी और उनकी छह अर्धपल्योपम की उत्कृष्ट आयु थी (२६)।

२७—जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए (मणुया छ धणुसहस्साइं उड्ढमुच्चत्तेणं भविस्संति), छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालइस्संति।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में भरत-ऐरवत क्षेत्र की आगामी उत्सर्पिणी के सुषम-सुषमा काल में मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष होगी और वे छह अर्धपल्योपम (तीन पल्लोपम) उत्कृष्ट आयु का पालन करेंगे (२७)।

२८—जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु-उत्तरकुरुकुरासु मणुया छ धणुस्सहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता, छच्च अद्धपलिओवमाइं परमाउं पालेंति।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष की कही गई है और वे छह अर्धपल्योपम उत्कृष्ट आयु का पालन करते हैं (२८)।

२९—एवं धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे चत्तारि आलावगा।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध, तथा अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी मनुष्यों की ऊँचाई छह हजार धनुष और उत्कृष्ट आयु छह अर्धपल्योपम की जम्बूद्वीप के चारों आलापकों के समान जानना चाहिए (२९)।

संहनन-सूत्र

३०—छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, तं जहा—वइरोसभ-णाराय-संघयणे, उसभ-णाराय-संघयणे णाराय-संघयणे, अद्धणाराय-संघयणे, खीलिया-संघयणे, छेवट्टसंघयणे।

संहनन छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. वज्रर्षभनाराचसंहनन—जिस शरीर में हड्डियां, वज्रकीलिका, परिवेष्टनपट्ट और उभयपार्श्व मर्कटबन्ध से युक्त हों।
२. ऋषभनाराचसंहनन—जिस शरीर की हड्डियां वज्रकीलिका के विना शेष दो से युक्त हों।
३. नाराचसंहनन—जिस शरीर की हड्डियां दोनों ओर से केवल मर्कटबन्ध युक्त हों।
४. अर्धनाराचसंहनन—जिस शरीर की हड्डियां एक ओर मर्कट बन्धवाली और दूसरी ओर कीलिका वाली हों।
५. कीलिकासंहनन—जिस शरीर की हड्डियां केवल कीलिका से कीलित हों।
६. सेवार्तसंहनन—जिस शरीर की हड्डियां परस्पर मिली हों (३०)।

संस्थान-सूत्र

३१—छव्विहे संठाणे पण्णत्ते, तं जहा—समचउरंसे, णग्गोहपरिमंडले, साई, खुज्जे, वामणे, हुंडे।

संस्थान छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. समचतुरस्रसंस्थान—जिस शरीर के सभी अंग अपने-अपने प्रमाण के अनुसार हों और दोनों हाथों तथा दोनों पैरों के कोण पद्मासन से वैठने पर समान हों।

२. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान—न्यग्रोध का अर्थ वट वृक्ष है। जिस शरीर में नाभि से नीचे के अंग छोटे और ऊपर के अंग दीर्घ या विशाल हों।
३. सादिसंस्थान—जिस शरीर में नाभि के नीचे के भाग प्रमाणोपेत और ऊपर के भाग ह्रस्व हों।
४. कुब्जसंस्थान—जिस शरीर में पीठ या छाती पर कूबड़ निकली हो।
५. वामनसंस्थान—जिस शरीर में हाथ, पैर, शिर और ग्रीवा प्रमाणोपेत हो, किन्तु शेष अवयव प्रमाणोपेत न हों, किन्तु शरीर बौना हो।
६. हुण्डकसंस्थान—जिस शरीर में कोई अवयव प्रमाणयुक्त न हो (३१)।

विवेचन—दि० शास्त्रों में संहनन और संस्थान के भेदों के स्वरूप में कुछ भिन्नता है, जिसे तत्त्वार्थराजवार्त्तिक के आठवें अध्याय से जानना चाहिए।

अनात्मवत्-आत्मवत्-सूत्र

३२—छट्ठाणा अणत्तवओ अहिताए असुभाए अखमाए अणीसेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—परियाए, परियाले, सुते, तवे, लाभे, पूयासक्कारे।

अनात्मवान् के लिए छह स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस, अनानुगामिकता (अशुभानुबन्ध) के लिए होते हैं। जैसे—

१. पर्याय—अवस्था या दीक्षा में बड़ा होना, २. परिवार, ३. श्रुत, ४. तप, ५. लाभ, ६ पूजा-सत्कार (३२)।

३३—छट्ठाणा अत्तवतो हिताए (सुभाए खमाए णीसेसाए) आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—परियाए, परियाले, (सुते, तवे, लाभे), पूयासक्कारे।

आत्मवान् के लिए छह स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता (शुभानुबन्ध) के लिए होते हैं। जैसे—

१. पर्याय, २. परिवार, ३. श्रुत, ४. तप, ५. लाभ, ६. पूजा-सत्कार (३३)।

विवेचन—जिस व्यक्ति को अपनी आत्मा का भान हो गया है और जिसका अहंकार-ममकार दूर हो गया है, वह आत्मवान् है। इसके विपरीत जिसे अपनी आत्मा का भान नहीं हुआ है और जो अहंकार-ममकार से ग्रस्त है, वह अनात्मवान् कहलाता है।

अनात्मवान् व्यक्ति के लिए दीक्षा-पर्याय या अधिक अवस्था, शिष्य या कुटुम्ब परिवार, श्रुत, तप और पूजा-सत्कार की प्राप्ति से अहंकार और ममकार भाव उत्तरोत्तर बढ़ता है, उससे वह दूसरों को हीन अपने को महान् समझने लगता है। इस कारण से सब उत्तम योग भी उसके लिए पतन के कारण हो जाते हैं। किन्तु आत्मवान् के लिए सूत्र-प्रतिपादित छहों स्थान उत्थान और आत्म-विकास के कारण होते हैं, क्योंकि ज्यों-त्यों उसमें तप-श्रुत आदि की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों वह अधिक विनम्र एवं उदार होता जाता है।

आर्य-सूत्र

३४—छव्विहा जाइ-आरिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

अंबट्ठा य कलंदा य, वेदेहा वेदिगादिया।
हरिता चुंचुणा चेव, छप्पेता इब्भजातिओ ॥१॥

जाति से आर्यपुरुष छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अंबष्ठ, २. कलन्द, ३. वैदेह, ४. वैदिक, ५. हरित, ६. चुंचुण, ये छहों इभ्यजाति के मनुष्य हैं (३४)।

३५—छव्विहा कुलारिया मणुस्सा पण्णत्ता, तं जहा—उग्गा, भोगा, राइण्णा, इक्खागा, णाता, कोरव्वा।

कुल से आर्य मनुष्य छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उग्र, २. भोज, ३. राजन्य, ४. इक्ष्वाकु, ५. ज्ञात, ६. कौरव।

विवेचन—मातृ-पक्ष को जाति कहते हैं। जिन का मातृपक्ष निर्दोष और पवित्र है, वे पुरुष जात्यार्य कहलाते हैं। टीकाकार ने इनका कोई विवरण नहीं दिया है। अमर-कोष के अनुसार 'अम्बष्ठ' का अर्थ 'अम्बे तिष्ठति-अम्बष्ठ:' तथा 'अम्बष्ठी वैश्या-द्विजन्मनो:' अर्थात् वैश्य माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न हुई सन्तान को अम्बष्ठ कहते हैं। तथा ब्राह्मणी माता और वैश्य पिता से उत्पन्न हुई सन्तान वैदेह कहलाती है (ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतस्तस्यां वैदेहको विश:)। चुंचुण का कोषों में कोई उल्लेख नहीं हैं, यदि इसके स्थान पर 'कुंकुण' पद की कल्पना की जावे तो ये कोंकण देशवासी जाति है, जिनमें मातृपक्ष को आज भी प्रधानता है। कलंद और हरित जाति भी मातृपक्ष-प्रधान रही है (३५)।

संग्रहणी गाथा में इन छहों को 'इभ्यजातीय' कहा है। इभ का अर्थ हाथी होता है। टीकाकार के अनुसार जिसके पास धन-राशि इतनी ऊंची हो कि सूंड को ऊंची किया हुआ हाथी भी न दिख सके, उसे इभ्य कहा जाता था।[1] इभ्य की इस परिभाषा से इतना तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्रजातीय माता की वैश्य से उत्पन्न सन्तान से इन इभ्य जातियों के नाम पड़े हैं। क्योंकि व्यापार करने वाले वैश्य सदा से ही धन-सम्पन्न रहे हैं।

दूसरे सूत्र में कुछ आर्यों के छह भेद बताये गये हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

१. उग्र—भगवान् ऋषभदेव ने आरक्षक या कोट्टपाल के रूप में जिनकी नियुक्ति की थी, वे उग्र नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी सन्तान भी उग्रवंशीय कहलाने लगी।

२. भोज—गुरुस्थानीय क्षत्रियों के वंशज।

३. राजन्य—मित्रस्थानीय क्षत्रियों के वंशज।

४. इक्ष्वाकु—भगवान् ऋषभदेव के वंशज।

---

१. इभमर्हन्तीतीभ्या:। यद्-द्रव्यस्तूपान्तरित उच्छ्रितकन्दलिकादण्डो हस्ती न दृश्यते ते इभ्या इति श्रुति:। (स्थानाङ्ग सूत्रपत्र ३४० A) 'इभ्य आढयो धनी' इत्यमर:।

५. ज्ञात—भगवान् महावीर के वंशज ।
६. कौरव—कुरुवंश में उत्पन्न शान्तिनाथ तीर्थकर के वंशज ।
इन छहों कुलार्यों का सम्बन्ध क्षत्रियों से रहा है ।

लोकस्थिति-सूत्र

३६—छव्विहा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपतिट्ठिते वाए, वातपतिट्ठिते उदही, उदधिपतिट्ठिता पुढवी, पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा, अजीवा जीवपतिट्ठिता, जीवा कम्मपतिट्ठिता ।

लोक की स्थिति छह प्रकार की कही गई है । जैसे—
१. वात (तनु वायु) आकाश पर प्रतिष्ठित है ।
२. उदधि (घनोदधि) तनु वात पर प्रतिष्ठित है ।
३. पृथिवी घनोदधि पर प्रतिष्ठित है ।
४. त्रस-स्थावर प्राणी पृथिवी पर प्रतिष्ठित हैं ।
५. अजीव जीव पर प्रतिष्ठत है ।
६. जीव कर्मों पर प्रतिष्ठित हैं (३६) ।

दिशा-सूत्र

३७—छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पाईणा, पडीणा, दाहिणा, उदीणा, उड्ढा, अधा ।

दिशाएँ छह कही गई हैं । जैसे—
१. प्राची (पूर्व) २. प्रतीची (पश्चिम) ३. दक्षिण, ४. उत्तर, ५ ऊर्ध्व और ६. अधोदिशा (३७) ।

३८—छहिं दिसाहिं जीवाणं गती पवत्तति, तं जहा—पाईणाए, (पडीणाए, दाहिणाए, उदीणाए, उड्ढाए), अधाए ।

छहों दिशाओं में जीवों की गति होती है अर्थात् मरकर जीव छहों दिशाओं में जाकर उत्पन्न होते हैं । जैसे—
१. पूर्वदिशा में, २. पश्चिम दिशा में, ३. दक्षिण दिशा में, ४. उत्तर दिशा में, ५. ऊर्ध्व दिशा में और ६. अधोदिशा में (३८) ।

३९—(छहिं दिसाहिं जीवाणं)—आगई वक्कंती आहारे वुड्ढी णिवुड्ढी विगुव्वणा गतिपरियाए समुग्घाते कालसंजोगे दंसणाभिगमे णाणाभिगमे जीवाभिगमे अजीवाभिगमे (पण्णत्ते, तं जहा—पाईणाए, पडीणाए, दाहिणाए, उदीणाए, उड्ढाए अधाए) ।

छहों दिशाओं में जीवों की आगति, अवक्रान्ति, आहार, वृद्धि, निवृद्धि, विकरण, गतिपर्याय समुद्घात, कालसंयोग, दर्शनाभिगम, ज्ञानाभिगम, जीवाभिगम, और अजीवाभिगम कहा गया है । जैसे—
१. पूर्वदिशा में, २. पश्चिमदिशा में, ३. दक्षिणदिशा में, ४. उत्तरदिशा में,
५. ऊर्ध्वदिशा में और ६. अधोदिशा में ।

विवेचन—सूत्रोक्त पदों का विवरण इस प्रकार है—

१. आगति—पूर्वभव से मर कर वर्तमान भव में आना।
२. अवक्रान्ति—उत्पत्तिस्थान में जाकर उत्पन्न होना।
३. आहार—प्रथम समय में शरीर के योग्य पुद्गलों का ग्रहण करना।
४. वृद्धि—उत्पत्ति के पश्चात् शरीर का बढ़ना।
५. हानि—शरीर के पुद्गलों का ह्रास।
६. विक्रिया—शरीर के छोटे-बड़े आदि आकारों का निर्माण।
७. गति-पर्याय—गमन करना।
८. समुद्घात—कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना।
९. काल-संयोग—सूर्य-परिभ्रमण-जनित काल-विभाग।
१०. दर्शनाभिगम—अवधिदर्शन आदि के द्वारा वस्तु का अवलोकन।
११. ज्ञानाभिगम—अवधिज्ञान आदि के द्वारा वस्तु का परिज्ञान।
१२. जीवाभिगम—अवधिज्ञान आदि के द्वारा जीवों का परिज्ञान।
१३. अजीवाभिगम—अवधि आदि के द्वारा पुद्गलों का परिज्ञान।

उपर्युक्त गति-आगति आदि सभी कार्य छहों दिशाओं से सम्पन्न होते हैं।

४०—एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणवि, मणुस्साणवि।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिकों की और मनुष्यों की गति-आगति आदि छहों दिशा में होती है। (४०)

आहार-सूत्र

४१—छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारमाहारेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

वेयण-वेयावच्चे, ईरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥१॥

छह कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ आहार को ग्रहण करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१. वेदना—भूख की पीड़ा दूर करने के लिए।
२. गुरुजनों की वैयावृत्त्य करने के लिए।
३. ईर्यासमिति का पालन करने के लिए।
४. संयम की रक्षा के लिए।
५. प्राण-धारण करने के लिए।
६. धर्म का चिन्तन करने के लिए (४१)।

४२—छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारं वोच्छिदमाणे णातिक्कमति, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

आतंके उवसग्गे, तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीए।
पाणिदया-तवहेउं, सरीरवुच्छेयणट्ठाए ॥१॥

छह कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ आहार का परित्याग करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१. आतंक—ज्वर आदि आकस्मिक रोग हो जाने पर।
२. उपसर्ग—देव, मनुष्य, तिर्यंच कृत उपद्रव होने पर।
३. तितिक्षण—ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए।
४. प्राणियों की दया करने के लिए।
५. तप की वृद्धि के लिए।
६. (विशिष्ट कारण उपस्थित होने पर) शरीर का व्युत्सर्ग करने के लिए (४२)।

उन्माद-सूत्र

४३—छहिं ठाणेहिं आया उम्मायं पाउणेज्जा, तं जहा—अरहंताणं अवण्णं वदमाणे, अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे, आयरिय-उवज्झायाणं अवण्णं वदमाणे, चाउव्वण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे, जक्खावेसेण चेव, मोहणिज्जस्स चेव कम्मस्स उदएणं।

छह कारणों से आत्मा उन्माद (मिथ्यात्व) को प्राप्त होता है। जैसे—

१. अर्हन्तों का अवर्णवाद करता हुआ।
२. अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ।
३. आचार्य और उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ।
४. चतुर्वर्ण (चतुर्विध) संघ का अवर्णवाद करता हुआ।
५. यक्ष के शरीर में प्रवेश से।
६. मोहनीय कर्म के उदय से (४३)।

प्रमाद-सूत्र

४४—छव्विहे पमाए पण्णत्ते, तं जहा—मज्जपमाए, णिद्दपमाए, विसयपमाए, कसायपमाए, जूतपमाए, पडिलेहणापमाए।

प्रमाद (सत्-उपयोग का अभाव) छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. मद्य-प्रमाद, २. निद्रा-प्रमाद, ३. विषय-प्रमाद, ४. कषाय-प्रमाद, ५. द्यूत-प्रमाद,
६. प्रतिलेखना-प्रमाद (४४)।

प्रतिलेखना-सूत्र

४५—छव्विहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

आरभडा संमद्दा, वज्जेयव्वा य मोसली ततिया।
पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठी[1] ॥१॥

प्रमाद-पूर्वक की गई प्रतिलेखना छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. आरभटा—उतावल से वस्त्रादि को सम्यक् प्रकार से देखे विना प्रतिलेखना करना।
२. संमर्दा—मर्दन करके प्रतिलेखना करना।

१. उत्तराध्ययन सूत्र २६, पा. २६।

३. मोसली—वस्त्र के ऊपरी, नीचले या तिरछे भाग का प्रतिलेखन करते हुए परस्पर घट्टन करना।
४. प्रस्फोटना—वस्त्र की धूलि को झटकारते हुए प्रतिलेखना करना।
५. विक्षिप्ता—प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों के ऊपर रखना।
६. वेदिका—प्रतिलेखना करते समय विधिवत् न बैठकर यद्वा-तद्वा बैठकर प्रतिलेखना करना (४५)।

४६—छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

अणच्चावितं अवलितं अणाणुबंधि अमोसलिं चेव।
छप्पुरिमा णव खोडा, पाणीपाणविसोहणी[1] ॥१॥

प्रमाद-रहित प्रतिलेखना छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. अनर्तिता—शरीर या वस्त्र को न नचाते हुए प्रतिलेखना करना।
२. अवलिता—शरीर या वस्त्र को झुकाये विना प्रतिलेखना करना।
३. अनानुबन्धी—उतावल-रहित वस्त्र को झटकाये विना प्रतिलेखना करना।
४. अमोसली—वस्त्र के ऊपरी, नीचले आदि भागों को मसले विना प्रतिलेखना करना।

५. षट्पूर्वा-नवखोडा—प्रतिलेखन किये जाने वाले वस्त्र को पसारकर और आँखों से भली-भांति से देखकर उसके दोनों भागों को तीन-तीन वार खंखेरना षट्पूर्वा प्रतिलेखना है, वस्त्र को तीन-तीन वार पूंज कर तीन वार शोधना नवखोड हैं।

६. पाणिप्राण-विशोधिनी—हाथ के ऊपर वस्त्र-गत जीव को लेकर प्रासुक स्थान पर प्रस्थापन करना (४६)।

लेश्या-सूत्र

४७—छ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, (णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा), सुक्कलेसा।

लेश्याएं छह कही गई हैं। जैसे—

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या, ५. पद्मलेश्या ६. शुक्ल लेश्या (४७)।

४८—पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं छ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हलेसा, (णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा), सुक्कलेसा।

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों के छह लेश्याएं कही गई हैं। जैसे—

१. कृष्णलेश्या, २. नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या, ५. पद्मलेश्या, ६. शुक्ल-लेश्या (४८)।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र २६, पा. २५।

४९—एवं मणुस्स-देवाण वि।

इसी प्रकार मनुष्यों और देवों के भी छह-छह लेश्याएँ जाननी चाहिए (४९)।

अग्रमहिसी-सूत्र

५०—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल सोम महाराज की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं (५०)।

५१—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल यम महाराज की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं (५१)।

स्थिति-सूत्र

५२—ईसाणस्स णं देविंदस्स [देवरण्णो ?] मज्झिमपरिसाए देवाणं छ पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवराज देवेन्द्र ईशान की मध्यम परिषद् के देवों की स्थिति छह पल्योपम कही गई है (५२)।

महत्तरिका-सूत्र

५३—छ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रूवा, रूवंसा, सुरूवा, रूववती, रूवकंता, रूवप्पभा।

दिक्कुमारियों की छह महत्तरिकाएँ कही गई हैं। जैसे—
१. रूपा, २. रूपांशा, ३. सुरूपा, ४. रूपवती, ५. रूपकान्ता, ६. रूपप्रभा (५३)।

५४—छ विज्जुकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—अला, सक्का, सतेरा, सोतामणी इंदा, घणविज्जुया।

विद्युत्कुमारियों की छह महत्तरिकाएँ कही गई हैं। जैसे—
१. अला, २ शक्रा, ३. शतेरा, ४. सौदामिनी, ५. इन्द्रा, ६. घनविद्युत् (५४)।

अग्रमहिषी-सूत्र

५५—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—अला, सक्का, सतेरा, सोतामणी, इंदा, घणविज्जुया।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। जैसे—
१. अला (आला), २. शक्रा, ३. शतेरा, ४. सौदामिनी, ५. इन्द्रा, ६. घनविद्युत् (७५)।

५६—भूताणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रूवा, रूवंसा, सुरूवा, रूववती, रूवकंता, रूवप्पभा।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं। जैसे—
१. रूपा, २. रूपांशा, ३. सुरूपा, ४. रूपवती, ५. रूपकान्ता, ६. रूपप्रभा (५६)।

५७—जहा धरणस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स ।

जिस प्रकार धरण की छह अग्रमहिषियाँ कही गई हैं, उसी प्रकार भवनपति इन्द्र वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त, अमितगति, वेलम्ब और घोष इन सभी दक्षिणेन्द्रों की छह-छह अग्रमहिषियाँ जाननी चाहिए (५७) ।

५८—जहा भूताणंदस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स ।

जिस प्रकार भूतानन्द की छह अग्रमहिषियाँ कहीं गई हैं, उसी प्रकार भवनपति इन्द्र वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष इन सभी उत्तरेन्द्रों की छह-छह अग्रमहिषियाँ जाननी चाहिए (५८) ।

सामानिक-सूत्र

५९—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो छस्सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के छह हजार सामानिक देव कहे गये हैं (५९) ।

६०—एवं भूताणंदस्सवि जाव महाघोसस्स ।

इसी प्रकार नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानन्द, वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष के भी भूतानन्द के समान छह-छह हजार सामानिक देव जानना चाहिए (६०) ।

मति-सूत्र

६१—छव्विहा ओग्गहमती पण्णत्ता, तं जहा—खिप्पमोगिण्हति, बहुमोगिण्हति, बहुविधमोगिण्हति, धुवमोगिण्हति, अणिस्सियमोगिण्हति, असंदिद्धमोगिण्हति ।

अवग्रहमति के छह भेद कहे गये हैं । जैसे—

१. क्षिप्र-अवग्रहमति—शंख आदि के शब्द को शीघ्र ग्रहण करने वाली मति ।
२. बहु-अवग्रहमति—शख आदि अनेक प्रकार के शब्दों आदि को ग्रहण करने वाली मति ।
३. बहुविध-अवग्रहमति—बहुत प्रकार के बाजों के अनेक प्रकार के शब्दों आदि को ग्रहण करने वाली मति ।
४. ध्रुव-अवग्रहमति—एक वार ग्रहण की हुई वस्तु पुनः ग्रहण करने पर उसी प्रकार से जानने वाली मति ।
५. अनिश्रित-अवग्रह-मति—किसी लिंग-चिह्न का आश्रय लिए विना जानने वाली मति ।
६. असंदिग्ध-अवग्रहमति—सन्देह-रहित सामान्य रूप से ग्रहण करने वाली मति (६१) ।

६२—छव्विहा ईहामती पण्णत्ता, तं जहा—खिप्पमीहति, बहुमीहति, (बहुविधमीहति, धुवमीहति, अणिस्सियमीहति), असंदिद्धमीहति ।

ईहामति (अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विशेष जानने की इच्छा) छह प्रकार की कही गई हैं । जैसे—

१. क्षिप्र-ईहामति—क्षिप्रावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
२. बहु-ईहामति—बहु-अवग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
३. बहुविध-ईहामति—बहुविध अवग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
४. ध्रुव-ईहामति—ध्रुवावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
५. अनिश्रित-ईहामति—अनिश्रितावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति।
६. असंदिग्ध-ईहामति—असन्दिग्धावग्रह से गृहीत वस्तु की विशेष जिज्ञासावाली मति(६२)।

६३—छव्विधा अवायमती पण्णत्ता, तं जहा—खिप्पमवेति, (बहुमवेति, बहुविधमवेति, धुवमवेति, अणिस्सियमवेति), असंदिद्धमवेति।

अवाय-मति छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. क्षिप्रावाय-मति—क्षिप्र ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
२. बहु-अवायमति—बहु-ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
३. बहुविध-अवायमति—बहुविध ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
४. ध्रुव-अवायमति—ध्रुव-ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति।
५. अनिश्रित-अवायमति—अनिश्रित ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति,
६. असन्दिग्ध-अवायमति—असन्दिग्ध ईहा के विषयभूत पदार्थ का निश्चय करने वाली मति (६३)।

६४—छव्विहा धारणा [मती ?] पण्णत्ता, तं जहा—बहुं धरेति, बहुविहं धरेति, पोराणं धरेति, दुद्धरं धरेति, अणिस्सितं धरेति, असंदिद्धं धरेति।

धारण (कालान्तर में याद रखने वाली) मति छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. बहु-धारणामति—बहुअवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
२. बहुविध-धारणामति—बहुविध अवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
३. पुराण-धारणामति—पुराने पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
४. दुर्धर-धारणामति—दुर्धर-गहन पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
५. अनिश्रित-धारणामति—अनिश्रित अवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति।
६. असंदिध-धारणामति—असंदिग्ध अवाय से निर्णीत पदार्थ की धारणा रखने वाली मति (६४)।

तपः-सूत्र

६५—छव्विहे बाहिरए तवे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणं, ओमोदरिया, भिक्खायरिया, रस-परिच्चाए, कायकिलेसो, पडिसंलीणता।

बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अनशन, २. अवमोदरिका, ३. भिक्षाचर्या, ४. रसपरित्याग, ५. कायक्लेश,
६. प्रतिसंलीनता (६५)।

६६—छव्विहे अब्भंतरिए तवे पण्णत्ते, तं जहा—पायच्छित्तं, विणओ, वेयावच्चं, सज्झाओ, झाणं, विउस्सग्गो।

आभ्यन्तर तप छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. प्रायश्चित्त, २. विनय, ३. वैयावृत्य, ४. स्वाध्याय, ५. ध्यान, ६. व्युत्सर्ग (६६)।

विवाद-सूत्र

६७—छव्विहे विवादे पण्णत्ते, तं जहा—ओसक्कइत्ता, उस्सक्कइत्ता, अणुलोमइत्ता, पडिलोमइत्ता, भइत्ता, भेलइत्ता।

विवाद-शास्त्रार्थ छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. ओसक्कइत्ता—वादी के तर्क का उत्तर ध्यान में न आने पर समय विताने के लिए प्रकृत विषय से हट जाना।
२. उस्सक्कइत्ता—शास्त्रार्थ की पूर्ण तैयारी होते ही वादी को पराजित करने के लिए आगे आना।
३. अनुलोमइत्ता—विवादाध्यक्ष को अपने अनुकूल बना लेना, अथवा प्रतिवादी के पक्ष का एक बार समर्थन कर उसे अपने अनुकूल कर लेना।
४. पडिलोमइत्ता—शास्त्रार्थ की पूर्ण तैयारी होने पर विवादाध्यक्ष तथा प्रतिपक्षी की उपेक्षा कर देना।
५. भइत्ता—विवादाध्यक्ष की सेवा कर उसे अपने पक्ष में कर लेना।
६. भेलइत्ता—निर्णायकों में अपने समर्थकों का वहुमत कर लेना (६७)।

विवेचन—वाद-विवाद या शास्त्रार्थ के मूल में चार अंग होते हैं—वादी—पूर्वपक्ष स्थापन करने वाला, प्रतिवादी—वादी के पक्षका निराकारण कर अपना पक्ष सिद्ध करने वाला, अध्यक्ष—वादी-प्रतिवादी के द्वारा मनोनीत और वाद-विवाद के समय कलह न होने देकर शान्ति कायम रखने वाला, और सभ्य-निर्णायक। किन्तु यहाँ पर वास्तविक या यथार्थ शास्त्रार्थ से हट करके प्रतिवादी को हराने की भावना से उसके छह भेद किये गये हैं, यह उक्त छहों भेदों के स्वरूप से ही सिद्ध है कि जिस किसी भी प्रकार से वादी को हराना ही अभीष्ट है। जिस विवाद में वादी को हराने की ही भावना रहती है वह शास्त्रार्थ तत्त्व-निर्णायक न हो कर विजिगीषु वाद कहलाता है।

क्षुद्रप्राण-सूत्र

६८—छव्विहा खुड्डा पाणा पण्णत्ता, तं जहा—बेंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणिया, तेउकाइया, वाउकाइया।

क्षुद्र-प्राणी छह प्रकार के कहे गये है। जैसे—
१. द्वीन्द्रिय, २. त्रीन्द्रिय, ३. चतुरिन्द्रिय, ४. सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक,
५. तेजस्कायिक, ६. वायुकायिक (६८)।

गोचरचर्या-सूत्र

६९—छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, तं जहा—पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतंगवीहिया, संवुक्कावट्टा, गंतुंपच्चागता।

गोचर-चर्या छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. पेटा—गाँव के चार विभाग करके गोचरी करना।
२. अर्धपेटा—गाँव के दो विभाग करके गोचरी करना।
३. गोमूत्रिका—घरों की आमने-सामने वाली दो पंक्तियों में इधर से उधर आते-जाते गोचरी करना।
४. पतंगवीथिका—पतंगा की उड़ान के समान विना क्रम के एक घर से गोचरी लेकर एकदम दूरवर्ती घर से गोचरी लेना।
५. शम्बूकावर्त्ता—शंख के आवर्त (गोलाकार) के समान घरों का क्रम बनाकर गोचरी लेना।
६. गत्वा-प्रत्यागता—प्रथम पंक्ति के घरों में क्रम से आद्योपान्त गोचरी करके द्वितीय पंक्ति के घरों में क्रमशः गोचरी करते हुए वापिस आना (६९)।

महानरक-सूत्र

७०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वस्स दाहिणे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंत-महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—लोले, लोलुए, उद्दड्ढे, णिद्दड्ढे, जरए, पज्जरए।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में इस रत्नप्रभा पृथ्वी में छह अपक्रान्त (अतिनिकृष्ट) महानरक कहे गये हैं। जैसे—

१. लोल, २. लोलुप, ३. उद्दग्ध, ४. निर्दग्ध, ५. जरक, ६. प्रजरक (७०)।

७१—चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए छ अवक्कंतमहाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—आरे, वारे, मारे, रोरे, रोरुए, खाडखडे।

चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में छह अपक्रान्त महानरक कहे गये हैं। जैसे—

१. आर, २. वार, ३. मार, ४. रौर, ५. रौरुक, ६. खाडखड (७१)।

विमान-प्रस्तट-सूत्र

७२—बंभलोगे णं कप्पे छ विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—अरए, विरए, णीरए, णिम्मले, वितिमिरे, विसुद्धे।

ब्रह्मलोक कल्प में छह विमान प्रस्तट कहे गये हैं। जैसे—

१. अरजस्, २. विरजस्, ३. नीरजस्, ४. निर्मल, ५. वितिमिर, ६. विशुद्ध।

नक्षत्र-सूत्र

७३—चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता पुव्वंभागा समखेत्ता तीसतिमुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—पुव्वाभद्दवया, कत्तिया, महा, पुव्वफग्गुणी, मूलो, पुव्वासाढा।

ज्योतिषराज, ज्योतिषेन्द्र चन्द्र के पूर्वभागी, समक्षेत्री और तीस मुहूर्त तक भोग करने वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं। जैसे—

१ पूर्वभाद्रपद, २. कृत्तिका, ३. मघा, ४ पूर्वफाल्गुनी, ५. मूल, ६. पूर्वाषाढा (७३)।

७४—चंदस्स णं जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढक्खत्ता पण्णरस-मुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—सयभिसया, भरणी, भद्दा, अस्सेसा, साती, जेट्ठा।

ज्योतिष्कराज, ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के अपार्धक्षेत्री नक्तभागी (रात्रिभोगी) पन्द्रह मुहूर्त तक भोग करने वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं। जैसे—

१. शतभिषक्, २. भरणी, ३. भद्रा, ४. आश्लेषा, ५. स्वाति, ६. ज्येष्ठा (७४)।

७५—चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोतिसरण्णो छ णक्खत्ता उभयभागा दिवड्ढखेत्ता पणयालीस-मुहुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—रोहिणी, पुणव्वसू, उत्तराफग्गुणी, विसाहा, उत्तरासाढा, उत्तराभद्दवया।

ज्योतिष्कराज, ज्योतिष्केन्द्र चन्द्र के उभययोगी द्वयर्धयोगी और पैंतालीस मुहूर्त तक भोग करने वाले छह नक्षत्र कहे गये हैं। जैसे—

१. रोहिणी, २. पुनर्वसु, ३. उत्तरफाल्गुनी, ४. विशाखा, ५. उत्तराषाढ़ा, ६. उत्तराभाद्रपद। (७५)।

इतिहास-सूत्र

७६—अभिचंदे णं कुलकरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

अभिचन्द्र कुलकर छह सौ धनुष ऊँचे शरीर वाले थे (७६)।

७७—भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वसतसहस्साइं महाराया हुत्था।

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा छह लाख पूर्वों तक महाराज पद पर रहे (७७)।

७८—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स छ सता वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए अपराजियाणं संपया होत्था।

पुरुषादानीय (पुरुषप्रिय) अर्हत् पार्श्व के देवों, मनुष्यों और असुरों की सभा में छह सौ अपराजित वादी मुनियों की सम्पदा थी (७८)।

७९—वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिससतेहिं सद्धिं मुंडे (भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइए।

वासुपूज्य अर्हन् छह सौ पुरुषों के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए थे (७९)।

८०—चंदप्पभे णं अरहा छम्मासे छउमत्थे हुत्था।

चन्द्रप्रभ अर्हन् छह मास तक छद्मस्थ रहे (८०)।

यम-असंयम-सूत्र

८१—तेइंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स छव्विहे संजमे कज्जति, तं जहा—घाणामातो ोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति। जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति, (जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति। फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता वति। फासामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति)।

त्रीन्द्रिय जीवों का घात न करने वाले पुरुष को छह प्रकार का संयम प्राप्त होता है। जैसे—
१. घ्राण-जनित सुख का वियोग नहीं करने से।
२. घ्राण-जनित-दुःख का संयोग नहीं करने से।
३. रस-जनित सुख का वियोग नहीं करने से।
४. रस-जनित दुःख का संयोग नहीं करने से।
५. स्पर्श-जनित सुख का वियोग नहीं करने से।
६. स्पर्श-जनित दुःख का संयोग नहीं करने से (८१)।

८२—तेइंदिया णं जीवा समारभमाणस्स छव्विहे असंजमे कज्जति, तं जहा—घाणामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। (जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति) फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

त्रीन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के छह प्रकार का असंयम होता है। जैसे—
१. घ्राण-जनित सुख का वियोग करने से।
२. घ्राण-जनित दुःख का संयोग करने से।
३. रस-जनित दुःख का वियोग करने से।
४. रस-जनित दुःख का संयोग करने से।
५. स्पर्श-जनित सुख का वियोग करने से।
६. स्पर्श-जनित दुःख का संयोग करने से (८२)।

क्षेत्र-पर्वत-सूत्र

८३—जंबुद्दीवे दीवे छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह अकर्मभूमियां कही गई हैं। जैसे—
१. हैमवत, २. हैरण्यवत, ३. हरिवर्ष, ४. रम्यकवर्ष, ५. देवकुरु, ६. उत्तरकुरु (८३)।

८४—जंबुद्दीवे दीवे छव्वसा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवए, हरिवासे, रम्मगवासे।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में छह वर्ष (क्षेत्र) कहे रये हैं। जैसे—
१. भरत, २. ऐरवत, ३. हैमवत, ४. हैरण्यवत, ५. हरिवर्ष, ६. रम्यकवर्ष (८४)।

८५—जंबुद्दीवे दीवे छ वासाहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे—
१. क्षुद्र हिमवान्, २. महाहिमवान्, ३. निषध, ४. नीलवान्, ५. रुक्मी, ६. शिखरी (८५)।

८६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंत-कूडे, वेसमणकूडे, महाहिमवंतकूडे, वेरुलियकूडे, णिसढकूडे, रुयगकूडे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में छह कूट कहे गये हैं । जैसे—
१. क्षुद्र हिमवत्कूट, २. वैश्रमण कूट, ३. महाहिमवत्कूट, ४. वैडूर्यकूट, ६. रुचककूट (८६) ।

८७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—णीलवंतकूडे, उवदंसणकूडे, रुप्पिकूडे, मणिकंचणकूडे, सिहरिकूडे, तिगिंछिकूडे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में छह कूट कहे गये हैं । जैसे—
१. नीलवंतकूट, २. उपदर्शनकूट, ३. रुक्मिकूट, ४. मणिकांचनकूट, ५. शिखरी कूट, ६. तिगिंछिकूट (८७) ।

महाद्रह-सूत्र

८८—जंबुद्दीवे दीवे छ महद्दहा पण्णत्ता, तं जहा—पउमद्दहे, महापउमद्दहे, तिगिंछिद्दहे, केसरिद्दहे, महापोंडरीयद्दहे, पुंडरीयद्दहे ।

तत्थ णं छ देवयाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितियाओ परिवसंति, तं जहा—सिरी, हिरी, धिती, कित्ती, बुद्धी, लच्छी ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में छह महाद्रह कहे गये हैं । जैसे—
१. पद्मद्रह. २. महापद्मद्रह, ३. तिगिञ्छिद्रह, ४. केशरी द्रह. ५. महापुण्डरीक द्रह, ६. पुण्डरीक द्रह (८८) ।

उनमें महर्धिक, महाद्युति, महाशक्ति, महायश, महावल, महासुख वाली तथा पल्योपम की स्थिति वाली छह देवियाँ निवास करती हैं जैसे—
१. श्री देवी, २. ह्री देवी ३. धृति देवी, ४. कीर्ति देवी ५ बुद्धि देवी, ६. लक्ष्मी देवी ।

नदी-सूत्र

८९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ तं जहा—गंगा, सिंधू, रोहिया, रोहितंसा, हरी, हरिकंता ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण भाग में छह महानदियाँ कही गई हैं । जैसे—
१. गंगा, २. सिन्धु, ३. रोहिता, ४. रोहितांशा, ५. हरित, ६. हरिकान्ता (८९) ।

९०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं छ महाणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णरकंता, णारिकंता, सुवण्णकूला, रुप्पकूला, रत्ता, रत्तवती ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर भाग में छह महानदियाँ कही गई हैं । जैसे—
१. नरकान्ता, नारीकान्ता, ३. सुवर्ण कूला, ४. रूप्य कूला, ५. रक्ता, ६. रक्तवती (९०) ।

९१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उभयकूले छ अंतर-णदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—गाहावती, दहवती, पंकवती, तत्तयला, मत्तयला, उम्मत्तयला ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व भाग में सीता महानदी के दोनों कूलों में मिलने वाली छह अन्तर्नदियाँ कही गई हैं। जैसे—

१. ग्राहवती, २. द्रहवती, ४. पंकवती, ३. तप्तजला, ५. मत्तजला, ६. उन्मत्तजला (६१)।

९२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोदाए महाणदीए उभयकूले छ अंतरणदीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खीरोदा, सीहसोता, अंतोवाहिणी, उम्मिमालिणी, फेणमालिणी, गंभीरमालिणी।

जम्बूद्वीपनामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम भाग में सीतोदा महानदी के दोनों कूलों में मिलने वाली छह अन्तर्नदियाँ कही गई हैं। जैसे—

१. क्षीरोदा, २. सिंहस्रोता, ३. अन्तर्वाहिनी, ४. उर्मिमालिनी, ५. फेनमालिनी
६. गम्भीरमालिनी (९२)।

धातकीषण्ड-पुष्करवर-सूत्र

९३—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं छ अकम्मभूमीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हेमवए, (हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, देवकुरा, उत्तरकुरा)।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में छह अकर्मभूमियाँ कही गई हैं। जैसे—

१. हैमवत, २. हैरण्यवत, ३. हरिवर्ष, ४. रम्यकवर्ष, ५. देवकुरु, ६. उत्तरकुरु (९३)।

९४—एवं जहा जंबुद्दीवे दीवे जाव अंतरणदीओ जाव पुक्खरवरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे भाणितव्वं।

इसी प्रकार जैसे जम्बूद्वीप नामक द्वीप में वर्ष, वर्षधर, आदि से लेकर अन्तर्नदी तक का वर्णन किया गया है वैसा ही धातकीषण्ड द्वीप में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में तथा पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में भी जम्बूद्वीप के समान सर्व वर्णन जानना चाहिए (९४)।

ऋतु-सूत्र

९५—छ उदू पण्णत्ता, तं जहा—पाउसे, वरिसारत्ते, सरए, हेमंते, वसंते, गिम्हे।

ऋतुएँ छह कही गई हैं। जैसे—

१. प्रावृट् ऋतु—आषाढ़ और श्रावण मास।
२. वर्षा ऋतु—भाद्रपद और आश्विन मास।
३. शरद् ऋतु—कार्तिक और मृगशिर मास।
४. हेमन्त ऋतु—पौष और माघ मास।
६. वसन्त ऋतु—फाल्गुन और चैत्र मास।
६. ग्रीष्म ऋतु—वैशाख और ज्येष्ठ मास (९५)।

अवमरात्र-सूत्र

९६— छ ओमरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—ततिए पव्वे, सत्तमे पव्वे, एक्कारसमे पव्वे, पण्णरसमे पव्वे, एगूणवीसइमे पव्वे, तेवीसइमे पव्वे।

छह अवमरात्र (तिथि-क्षय) कहे गये हैं। जैसे—
१. तीसरा पर्व—आषाढ कृष्णपक्ष में।
२. सातवाँ पर्व—भाद्रपद कृष्णपक्ष में।
३. ग्यारहवाँ पर्व—कार्तिक कृष्णपक्ष में।
४. पन्द्रहवाँ पर्व—पौष कृष्णपक्ष में।
५. उन्नीसवाँ पर्व—फाल्गुन कृष्णपक्ष में।
६. तेईसवाँ पर्व—वैशाख कृष्णपक्ष में। (९६)

अतिरात्र-सूत्र

९७—छ अतिरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—चउत्थे पव्वे, अट्ठमे पव्वे, दुवालसमे पव्वे, सोलसमे पव्वे, वीसइमे पव्वे, चउवीसइमे पव्वे।

छह अतिरात्र (तिथिवृद्धि वाले पर्व) कहे गये हैं। जैसे—
१. चौथा पर्व—आषाढ़ शुक्लपक्ष में।
२. आठवाँ पर्व—भाद्रपद शुक्लपक्ष में।
२. बारहवाँ पर्व—कार्तिक शुक्लपक्ष में।
४. सोलहवां पर्व—पौष शुक्लपक्ष में।
५. वीसवाँ पर्व—फाल्गुन शुक्ल पक्ष में।
६. चौवीसवां पर्व—वैशाख शुक्लपक्ष में।

अर्थावग्रह-सूत्र

९८—आभिणिबोहियणाणस्स णं छव्विहे अत्थग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियत्थोग्गहे, (चक्खिदियत्थोग्गहे, घाणिंदियत्थोग्गहे, जिब्भिदियत्थोग्गहे, फासिंदियत्थोग्गहे), णोइंदियत्थोग्गहे।

आभिनिबोधिक (मतिज्ञान) ज्ञान का अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रह, २. चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह. ३. घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह,
४. रसनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ५, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह, ६. नोइन्द्रिय-अर्थावग्रह।

विवेचन—अवग्रह के दो भेद हैं—व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह। उपकरणेन्द्रिय और शब्दादि ग्राह्य विषय के संबंध को, व्यंजन कहते हैं। दोनों का संबंध होने पर अव्यक्त ज्ञान की किंचित् मात्रा उत्पन्न होती है। उसे व्यंजनावग्रह कहते हैं। यह चक्षु और मन से न होकर चार इन्द्रियों द्वारा ही होता है क्योंकि चार इन्द्रियों का ही अपने विषय के साथ संयोग होता है—चक्षु और मन का नहीं। अतएव व्यंजनावग्रह के चार प्रकार हैं। इसका काल असंख्यात समय है। व्यंजनावग्रह के पश्चात् अर्थावग्रह उत्पन्न होता है। उसका काल एक समय है। वह वस्तु के सामान्य धर्म को जानता है। इसके छह भेद यहाँ प्रतिपादित किए गए हैं।

अवधिज्ञान-सूत्र

९९—छव्विहे ओहिणाणे पण्णत्ते, तं जहा—आणुगामिए, अणाणुगामिए, वड्ढमाणए, हायमाणए, पडिवाती, अपडिवाती।

अवधिज्ञान छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. आनुगामिक, २. अनानुगामिक, ३. वर्धमान, ४. हीयमान, ५. प्रतिपाती, ६. अप्रतिपाती।

विवेचन—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अवधि, सीमा या मर्यादा को लिए हुए रूपी पदार्थों को इन्द्रियों और मन की सहायता के विना जानने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं। इसके छह भेद प्रस्तुत सूत्र में बताये गये हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. आनुगामिक—जो ज्ञान नेत्र की तरह अपने स्वामी का अनुगमन करता है, अर्थात् स्वामी (अवधिज्ञानी) जहाँ भी जावे उसके साथ रहता है, उसे आनुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान का स्वामी जहाँ भी जाता है, वह अवधिज्ञान के विषयभूत पदार्थों को जानता है।

२. अनानुगामिक—जो ज्ञान अपने स्वामी का अनुगमन नहीं करता, किन्तु जिस स्थान पर उत्पन्न होता है, उसी स्थान पर स्वामी के रहने पर अपने विषयभूत पदार्थों को जानता है, उसे अनानुगामिक अवधिज्ञान कहते हैं।

३. वर्धमान—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के बाद विशुद्धि की वृद्धि से बढ़ता रहता है, वह वर्धमान कहलाता है।

४. हीयमान—जो अवधिज्ञान जितने क्षेत्र को जानने वाला उत्पन्न होता है उसके पश्चात् संक्लेश की वृद्धि से उत्तरोत्तर घटता जाता है, वह हीयमान कहलाता है।

५. प्रतिपाती—जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है, वह प्रतिपाती कहलाता है।

६. जो अवधिज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् नष्ट नहीं होता, केवलज्ञान को प्राप्ति तक विद्यमान रहता है वह अप्रतिपाती कहलाता है (९९)।

अवचन-सूत्र

१००—णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा इमाइं छ अवयणाइं, वदित्तए, तं जहा—अलियवयणे, हीलियवयणे, खिंसितवयणे, फरुसवयणे, गारत्थियवयणे, विउसवितं वा पुणो उदीरित्तए।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को ये छह अवचन (गर्हित वचन) बोलना नहीं कल्पता है। जैसे—

१. अलीक वचन—असत्यवचन। २. हीलितवचन—अवहेलनायुक्त वचन।

३. खिंसितवचन—मर्मवेधी वचन। ४. परुषवचन—कठोर वचन।

५. अगारस्थितवचन—गृहस्थावस्था के सम्बन्ध सूचक वचन।

६. व्यवसित उदीरकवचन—उपशान्त कलह को उभाड़ने वाला वचन (१००)।

कल्प-प्रस्तार-सूत्र

१०१—छ कप्पस्स पत्थारा पण्णत्ता, तं जहा—पाणातिवायस्स वायं वयमाणे, मुसावायस्स वायं वयमाणे, अदिण्णादाणस्स वायं वयमाणे, अविरतिवायं वयमाणे, अपुरिसवायं वयमाणे, दासवायं वयमाणे—इच्चेते छ कप्पस्स पत्थारे पत्थारेत्ता सम्ममपडिपूरेमाणे तट्ठाणपत्ते।

८ कल्प (साधु-आचार) के छह प्रस्तार (प्रायश्चित्त-रचना के विकल्प) कहे गये हैं। जैसे—

१. प्राणातिपात-सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
२. मृषावाद-सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
३. अदत्तादान-सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
४. अब्रह्मचर्य-सम्बन्धी आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
५. पुरुषत्व-हीनता के आरोपात्मक वचन बोलने वाला।
६. दास होने का आरोपात्मक वचन बोलने वाला (१०१)।

कल्प के इन छह प्रस्तारों को स्थापित कर यदि कोई साधु उन्हें सम्यक् प्रकार से प्रमाणित न कर सके तो वह उस स्थान को प्राप्त होता है, अर्थात् आरोपित दोष के प्रायश्चित्त का भागी होता है (१०१)।

विवेचन—साधु के आचार को कल्प कहा जाता है। प्रायश्चित्त की उत्तरोत्तर वृद्धि को प्रस्तार कहते हैं। प्राणातिपात-विरमण आदि के सम्बन्ध में कोई साधु किसी साधु को झूठा दोष लगावे कि तुमने यह पाप किया है, वह गुरु के सामने यदि सिद्ध नहीं कर पाता है, तो वह प्रायश्चित्त का भागी होता है। पुनः वह अपने कथन को सिद्ध करने के लिए ज्यों-ज्यों असत् प्रयत्न करता है, त्यों-त्यों वह उत्तरोत्तर अधिक प्रायश्चित्त का भागी होता जाता है। संस्कृत टीकाकार ने इसे एक दृष्टान्त पूर्वक इस प्रकार से स्पष्ट किया है—

छोटे-बड़े दो साधु गोचरी के लिए नगर में जा रहे थे। मार्ग में किसी मरे हुए मेंढक पर बड़े साधु का पैर पड़ गया। छोटे साधु ने आरोप लगाते हुए कहा—आपने इस मेंढक को मार डाला! बड़े साधु ने कहा—नहीं, मैंने नहीं मारा है। तब छोटा साधु बोला—आप झूठ कहते हैं, अतः आप मृषाभाषी भी है। इसी प्रकार दोषारोपण करते हुए वह गोचरी से लौट कर गुरु के समीप आता है। उसके इस प्रकार दोषारोपण करने पर उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पहला प्रायश्चित्तस्थान है।

जब वह छोटा साधु गुरु से कहता है कि इन बड़े साधु ने मेंढक को मारा है, तब उसे गुरु मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह दूसरा प्रायश्चित्त स्थान है।

छोटे साधु के उक्त दोषारोपण करने पर गुरु ने बड़े साधु से पूछा—क्या तुमने मेंढक को मारा है? वह कहता है—नहीं! तब आरोप लगाने वाले को चतुर्लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह तीसरा प्रायश्चित्तस्थान है।

छोटा साधु पुनः अपनी बात को दोहराता है और बड़ा साधु पुनः यही कहता है कि मैंने मेंढक को नहीं मारा है। तब उसे चतुर्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह चौथा प्रायश्चित्त-स्थान है।

छोटा साधु गुरु से कहता है—यदि आपको मेरे कथन पर विश्वास न हो तो आप गृहस्थों से पूछ लें। गुरु अन्य विश्वस्त साधुओं को भेजकर पूछताछ कराते हैं। तब उस छोटे साधु को षट् लघु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह पाँचवाँ प्रायश्चित्तस्थान है।

उन भेजे गये साधुओं के पूछने पर गृहस्थ कहते हैं कि हमने उस साधु को मेंढक मारते नहीं देखा है, तब छोटे साधु को षड्गुरु प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह छठा प्रायश्चित्तस्थान है।

वे भेजे गये साधु वापस आकर गुरु से कहते हैं कि बड़े साधु ने मेंढक को नहीं मारा है। तब उस छोटे साधु को छेद प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह सातवाँ प्रायश्चित्त स्थान है।

फिर भी छोटा साधु कहता है—वे गृहस्थ सच या झूठ बोलते हैं, इसका क्या विश्वास है? ऐसा कहने पर वह मूल प्रायश्चित्त का भागी होता है। यह आठवाँ प्रायश्चित्त है।

फिर भी वह छोटा साधु कहे—ये साधु और गृहस्थ मिले हुए हैं, मैं अकेला रह गया हूँ। ऐसा कहने पर वह अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त का भागी होता है। यह नौवां प्रायश्चित्त है।

इतने पर भी यह छोटा साधु अपनी बात को पकड़े हुए कहे—आप सब जिन-शासन से बाहर हो, सब मिले हुए हो! तब वह पारांचिक प्रायश्चित्त को प्राप्त होता है। यह दशवां प्रायश्चित्त स्थान है।

इस प्रकार वह ज्यों-ज्यों अपने झूठे दोषारोपण को सत्य सिद्ध करने का असत् प्रयास करता है, त्यों-त्यों उसका प्रायश्चित्त बढ़ता जाता है।

प्राणातिपात के दोषारोपण पर प्रायश्चित्त-वृद्धि का जो क्रम है वही मृषावाद, अदत्तादान आदि के दोषारोपण पर भी जानना चाहिए।

पलिमन्थु-सूत्र

१०२—छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता, तं जहा—कोकुइते संजमस्स पलिमंथू, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू, चक्खुलोलुए ईरियावहियाए पलिमंथू, तितिणिए एसणागोयरस्स पलिमंथू, इच्छालोभिते मोत्तिमग्गस्स पलिमंथू, भिज्जाणिदाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू, सव्वत्थ भगवता अणिदाणता पसत्था।

कल्प (साधु-आचार) के छह पलिमन्थु (विघातक) कहे गये हैं। जैसे—

१. कौकुचित—चपलता करने वाला संयम का पलिमन्थु है।
२. मौखरिक—मुखरता या बकवाद करने वाला सत्यवचन का पलिमन्थु है।
३. चक्षुर्लोलुप—नेत्र के विषय में आसक्त ईर्यापथिक का पलिमन्थु है।
४. तितिणक—चिड़चिड़े स्वभाव वाला एषणा-गोचरी का पलिमन्थु है।
५. इच्छालोभिक—अतिलोभी निष्परिग्रह रूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु है।
६. मिथ्या निदानकरण—चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के भोगों का निदान करने वाला मोक्षमार्ग का पलिमन्थु है।

भगवान् ने अनिदानता को सर्वत्र प्रशस्त कहा है (१०२)।

कल्पस्थिति-सूत्र

१०३—छव्विहा कप्पट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—सामाइयकप्पट्ठिती, छेओवट्ठावणियकप्पट्ठिती, णिव्विसमाणकप्पट्ठिती, णिव्विट्ठकप्पट्ठिती, जिणकप्पट्ठिती, थेरकप्पट्ठिती।

कल्प की स्थिति छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. सामायिककल्पस्थिति—सर्व सावद्ययोग की निवृत्तिरूप सामायिक संयम-सम्बन्धी मर्यादा।

२. छेदोपस्थानीयकल्पस्थिति—नवदीक्षित साधु का शैक्षकाल पूर्ण होने पर पंच महाव्रत धारण कराने रूप मर्यादा।

३. निर्विशमानकल्पस्थिति—परिहारविशुद्धिसंयम को स्वीकार करने वाले की मर्यादा।

४. निर्विष्टकल्पस्थिति—परिहारविशुद्धिसंयम-साधना को पूर्ण करने वाले की मर्यादा।

५. जिनकल्पस्थिति—तीर्थंकर जिन के समान सर्वथा निर्ग्रंथ निर्वस्त्र वेषधारण कर, एकाकी अखण्ड तपस्या की मर्यादा।

६. स्थविरकल्पस्थिति—साधु-संघ के भीतर रहने की मर्यादा (१०३)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में कल्पस्थिति अर्थात् संयम-साधना के प्रकारों का वर्णन किया गया है। भगवान् पार्श्वनाथ के समय में संयम के चार प्रकार थे—१. सामायिक, २. परिहारविशुद्धिक ३. सूक्ष्मसाम्पराय और ४. यथाख्यात। किन्तु काल की विषमता से प्रेरित होकर भगवान् महावीर ने छेदोपस्थापनीय संयम को व्यवस्था कर चार के स्थान पर पाँच प्रकार के संयम की व्यवस्था की।

'परिहारविशुद्धिक' यह संयम की आराधना का एक विशेष प्रकार है। इसके दो विभाग हैं—निर्विशमानकल्प और निर्विष्टकल्प। परिहारविशुद्धि संयम की साधना में चार साधुओं की साधनावस्था को निर्विशमान कल्प कहा जाता है। ये साधु ग्रीष्म, शीत और वर्षा ऋतु में जघन्य रूप से क्रमशः एक उपवास, दो उपवास और तीन उपवास लगातार करते हैं, मध्यम रूप से क्रमशः दो, तीन और चार उपवास करते हैं और उत्कृष्ट रूप से क्रमशः तीन, चार और पाँच उपवास करते हैं। पारणा में भी अभिग्रह के साथ आयंबिल की तपस्या करते हैं। ये सभी जघन्यतः नौ पूर्वों के और उत्कृष्टतः दश पूर्वों के ज्ञाता होते हैं। जो उक्त निर्विशमान कल्पस्थिति की साधना पूरी कर लेते हैं तब शेष चार साधु, जो अब तक उनकी परिचर्या करते थे—वे उक्त प्रकार से संयम की साधना में संलग्न होकर तपस्या करते हैं और ये चारों साधु उनकी परिचर्या करते हैं। इन चारों साधुओं को निर्विष्टमानकल्प वाला कहा जाता है।

परिहारविशुद्धि संयम की साधना में नौ साधु एक साथ अवस्थित होते हैं। उनमें से चार साधुओं का पहला वर्ग तपस्या करता है और दूसरे वर्ग के चार साधु उनकी परिचर्या करते हैं। एक साधु आचार्य होता है। जब दोनों वर्ग के साधु उक्त तपस्या कर चुकते हैं, तब आचार्य तपस्या में अवस्थित होते हैं और उक्त दोनों ही वर्ग के आठों साधु उनकी परिचर्या करते हैं।

जिनकल्पस्थिति—विशेष साधना के लिए जो संघ से अनुज्ञा लेकर एकाकी विहार करते हुए संयम की साधना करते हैं, उनकी आचार-मर्यादा को जिनकल्पस्थिति कहा जाता है। वे अकेले मौनपूर्वक विहार करते हैं। अपने ऊपर आने वाले बड़े से बड़े उपसर्गों को शान्तिपूर्वक दृढता के साथ सहन करते हैं। वज्रर्षभनाराच संहनन के धारक होते हैं। उनके पैरों में यदि काँटा लग जाय, तो वे अपने हाथ से उसे नहीं निकालते हैं, इसी प्रकार आँखों में धूलि आदि चली जाय, तो उसे भी वे नहीं निकालते हैं। यदि कोई दूसरा व्यक्ति निकाले, तो वे मौन एवं मध्यस्थ रहते हैं।

स्थविरकल्पस्थिति—जो हीन संहनन के धारक और घोरपरीषह उपसर्गादि के सहन करने में असमर्थ होते हैं, वे संघ में रहते हुए ही संयम की साधना करते हैं, उन्हें स्थविरकल्पी कहा जाता है।

महावीर-षष्ठभक्त-सूत्र

१०४—समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं मुंडे (भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइए।

श्रमण भगवान् महावीर अपानक (जलादिपान-रहित) षष्ठभक्त अनशन (दो-उपवास) के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए (१०४)।

१०५—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरे (णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे) समुप्पण्णे।

श्रमण भगवान् महावीर को अपानक षष्ठभक्त के द्वारा अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, परिपूर्ण केवलवर ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ (१०५)।

१०६—समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे) सव्वदुक्खप्पहीणे।

श्रमण भगवान् महावीर अपानक षष्ठभक्त से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत परिनिर्वृत, और सर्व दुःखों से रहित हुए (१०६)।

विमान-सूत्र

१०७—सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु विमाणा छ जोयणसयाइं उड्ढंउच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के विमान छह सौ योजन उत्कृष्ट ऊँचाई वाले कहे गए हैं (१०७)।

देव-सूत्र

१०८—सणंकुमार-माहिंदेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जगा सरीरगा उक्कोसेणं छ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के देवों के भवधारणीय शरीर छह रत्निप्रमाण उत्कृष्ट ऊंचाई वाले कहे गये हैं (१०८)।

भोजन-परिणाम-सूत्र

१०९—छव्विहे भोयणपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—मणुण्णे, रसिए, पीणणिज्जे, बिंहणिज्जे, मयणिज्जे, दप्पणिज्जे।

भोजन का परिणाम या विपाक छह प्रकार का कहा गया है जैसे—

१. मनोज्ञ—मन में आनन्द उत्पन्न करने वाला।
२. रसिक—विविधरस-युक्त व्यंजन वाला।
३. प्रीणनीय—रस-रक्तादि धातुओं में समता लाने वाला।

४. बृंहणीय—रस, मांसादि, धातुओं को बढ़ाने वाला।
५. मदनीय—कामशक्ति को बढ़ाने वाला।
६. दर्पणीय—शरीर का पोषण करने वाला, उत्साहवर्धक (१०९)।

विषपरिणाम-सूत्र

११०—छव्विहे विसपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—डक्के, भुत्ते, णिवतिते, मंसाणुसारी, सोणिताणुसारी, अट्ठिमिंजाणुसारी।

विष का परिणाम या विपाक छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. दष्ट—किसी विषयुक्त जीव के द्वारा काटने पर प्रभाव डालने वाला।
२. भुक्त—खाये जाने पर प्रभाव डालने वाला।
३. निपतित—शरीर के बाहिरी भाग से स्पर्श होने पर प्रभाव डालने वाला।
४. मांसानुसारी—मांस तक की धातुओं पर प्रभाव डालने वाला।
५. शोणितानुसारी—रक्त तक की धातुओं पर प्रभाव डालने वाला।
६. अस्थि-मज्जानुसारी—अस्थि और मज्जा तक प्रभाव डालने वाला (११०)।

पृष्ठ-सूत्र

१११—छव्विहे पट्ठे पण्णत्ते, तं जहा—संसयपट्ठे, वुग्गहपट्ठे, अणुजोगी, अणुलोमे, तहणाणे, अतहणाणे।

प्रश्न छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. संशय-प्रश्न—संशय दूर करने के लिए पूछा गया।
२. व्युद्-ग्रह-प्रश्न—मिथ्याभिनिवेश से दूसरे को पराजित करने के लिए पूछा गया।
३. अनुयोगी-प्रश्न—अर्थ-व्याख्या के लिए पूछा गया।
४. अनुलोम-प्रश्न—कुशल-कामना के लिए पूछा गया।
५. तथाज्ञान-प्रश्न—स्वयं जानते हुए भी दूसरों की ज्ञानवृद्धि के लिए पूछा गया।
६. अतथाज्ञान-प्रश्न—स्वयं नहीं जानने पर जानने के लिए पूछा गया (१११)।

विरहित-सूत्र

११२—चमरचंचा णं रायहाणी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिया उववातेणं।

चमरचंचा राजधानी अधिक से अधिक छह मास तक उपपात से (अन्य देव की उत्पत्ति से) रहित रहती है (११२)।

११३—एगमेगे णं इंदट्ठाणे उक्कोसेणं छम्मासे विरहिते उववातेणं।

एक-एक इन्द्र-स्थान उत्कर्ष से छह मास तक इन्द्र के उपपात से रहित रहता है (११३)।

११४—अधेसत्तमा णं पुढवी उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेणं।

अधःसप्तम महातमः पृथिवी उत्कर्ष से छह मास तक नारकीजीव के उपपात से रहित रहती है (११४)।

११५—सिद्धिगती णं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेणं।

सिद्धगति उत्कर्ष से छह मास तक सिद्ध जीव के उपपात से रहित रहती है (११५)।

आयुर्बन्ध-सूत्र

११६—छव्विधे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा—जातिणामणिधत्ताउए, गतिणामणिधत्ताउए, ठितिणामणिधत्ताउए, ओगाहणाणामणिधत्ताउए, पएसणामणिधत्ताउए, अणुभागणामणिधत्ताउए।

आयुष्य का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. जातिनाम निधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ जातिनाम कर्म का नियम से बंधना।
२. गतिनामनिधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ गतिनाम कर्म का नियम से बंधना।
३. स्थिति नाम निधत्तायु—आयु कर्म के बन्ध के साथ स्थिति का नियम से बंधना।
४. अवगाहनानाम निधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ शरीर नामकर्म का नियम से बंधना।
५. प्रदेशनाम निधत्तायु—आयु कर्म के बन्ध के साथ प्रदेशों का नियम से बंधना।
६. अनुभागनाम निधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ अनुभाग का नियम से बंधना (११६)।

विवेचन—कर्मसिद्धान्त का यह नियम है कि जब किसी भी प्रकृति का बन्ध होगा, उसी समय उसकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का भी बन्ध होगा। सूत्रोक्त छह प्रकार में से तीसरा, पाँचवाँ और छठा प्रकार इसी बात का सूचक है। तथा अयुकर्म के बन्ध के साथ ही तज्जातीय जाति नाम कर्म का, गतिनाम कर्म का और शरीरनाम कर्म का नियम से बन्ध होता है। इसी नियम की सूचना प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ प्रकार से मिलती है। इसको सरल शब्दों में इस प्रकार का जानना चाहिए—

कोई जीव किसी समय देवायु कर्म का बन्ध कर रहा है, तो उसी समय आयु के साथ ही पंचेन्द्रिय जातिनाम कर्म का, देवगतिनाम कर्म का और वैक्रियशरीर नामकर्म का भी नियम से बन्ध होता है। तथा देवायु के बन्ध के साथ ही बंधने वाले पंचेन्द्रिय जातिनाम कर्म देवगति नामकर्म और वैक्रियशरीर नामकर्म का स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध भी करता है।

आगे कहे जाने वाले दो सूत्र उक्त नियम के ही समर्थक हैं।

११७—णेरइयाणं छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा—जातिणामणिहत्ताउए, (गतिणामणिहत्ताउए, ठितिणामणिहत्ताउए, ओगाहणाणामणिहत्ताउए, पएसणामणिहत्ताउए), अणुभागणामणिहत्ताउए।

नारकी जीवों का आयुष्क बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. जातिनामनिधत्तायु—नारकायुष्क के बन्ध के साथ पंचेन्द्रियजातिनामकर्म का नियम से बंधना।
२. गतिनामनिधत्तायु—नारकायुष्क के बन्ध के साथ नरकगति का नियम से बंधना।
३. स्थितिनामनिधत्तायु—नारकायुष्क के बन्ध के साथ स्थिति का नियम से बंधना।

४. अवगाहनानामनिधत्तायु—नारकायुष्क के बन्ध के साथ वैक्रियशरीर नामकर्म का नियम से बंधना।
५. प्रदेशनाम निधत्तायु—नारकायुष्क के बंध के साथ प्रदेशों का नियम से बंधना।
६. अनुभागनामनिधत्तायु—नारकयुष्क के बंध के साथ अनुभाग का नियम से बंधना (११७)।

११८—एवं जाव[२] वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों के जीवों में आयुष्य कर्म का बन्ध छह प्रकार का जानना चाहिए ११८।

परभविक-आयुर्बन्ध सूत्र

११९—णेरइया णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

भुज्यमान आयु के छह मास के अवशिष्ट रहने पर नारकी जीव नियम से परभव की आयु का बन्ध करते हैं (११९)।

१२०—एवं असुरकुमारावि जाव थणियकुमारा।

इसी प्रकार असुर कुमार भी, तथा स्तनितकुमार तक के सभी भवन-पति देव भी छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर नियम से परभव की आयु का वन्ध करते हैं (१२०)।

१२१—असंखेज्जवासाउया सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिया णियमं छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञि-पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव नियम से परभव की आयु का वन्ध करते हैं (१२१)।

१२२—असंखेज्जवासाउया सण्णिमणुस्सा णियमं छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञि-मनुष्य नियम से परभव की आयु का वन्ध करते हैं[१] (१२२)।

१२३—वाणमंतरा जोतिसवासिया वेमाणिया जहा णेरइया।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव नारक जीवों के समान छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर परभव की आयु का नियम से वन्व करते हैं (१२३)।

भाव-सूत्र

१२४—छव्विधे भावे पण्णत्ते, तं जहा—ओदइए, उवसमिए, खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, सण्णिवातिए।

---

१ दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य और तिर्यंच वर्त्तमान भव की आयु के नौ मास शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं। (देखो—गो० जीवकाण्ड गाथा ५१७ टीका)

११५—सिद्धिगती णं उक्कोसेणं छम्मासा विरहिता उववातेणं।

सिद्धगति उत्कर्ष से छह मास तक सिद्ध जीव के उपपात से रहित रहती है (११५)।

आयुर्बन्ध-सूत्र

११६—छव्विधे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा—जातिणामणिधत्ताउए, गतिणामणिधत्ताउए, ठितिणामणिधत्ताउए, ओगाहणाणामणिधत्ताउए, पएसणामणिधत्ताउए, अणुभागणामणिधत्ताउए।

आयुष्य का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. जातिनाम निधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ जातिनाम कर्म का नियम से बंधना।
२. गतिनामनिधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ गतिनाम कर्म का नियम से बंधना।
३. स्थिति नाम निधत्तायु—आयु कर्म के बन्ध के साथ स्थिति का नियम से बंधना।
४. अवगाहनानाम निधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ शरीर नामकर्म का नियम से बंधना।
५. प्रदेशनाम निधत्तायु—आयु कर्म के बन्ध के साथ प्रदेशों का नियम से बंधना।
६. अनुभागनाम निधत्तायु—आयुकर्म के बन्ध के साथ अनुभाग का नियम से बंधना (११६)।

विवेचन—कर्मसिद्धान्त का यह नियम है कि जब किसी भी प्रकृति का बन्ध होगा, उसी समय उसकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों का भी बन्ध होगा। सूत्रोक्त छह प्रकार में से तीसरा, पाँचवाँ और छठा प्रकार इसी बात का सूचक है। तथा अयुकर्म के बन्ध के साथ ही तज्जातीय जाति नाम कर्म का, गतिनाम कर्म का और शरीरनाम कर्म का नियम से बन्ध होता है। इसी नियम की सूचना प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ प्रकार से मिलती है। इसको सरल शब्दों में इस प्रकार का जानना चाहिए—

कोई जीव किसी समय देवायु कर्म का बन्ध कर रहा है, तो उसी समय आयु के साथ ही पंचेन्द्रिय जातिनाम कर्म का, देवगतिनाम कर्म का और वैक्रियशरीर नामकर्म का भी नियम से बन्ध होता है। तथा देवायु के बन्ध के साथ ही बंधने वाले पंचेन्द्रिय जातिनाम कर्म देवगति नामकर्म और वैक्रियशरीर नामकर्म का स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध भी करता है।

आगे कहे जाने वाले दो सूत्र उक्त नियम के ही समर्थक हैं।

११७—णेरइयाणं छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते, तं जहा—जातिणामणिहत्ताउए, (गतिणामणिहत्ताउए, ठितिणामणिहत्ताउए, ओगाहणाणामणिहत्ताउए, पएसणामणिहत्ताउए), अणुभागणामणिहत्ताउए।

नारकी जीवों का आयुष्क बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. जातिनामनिधत्तायु—नारकायुष्क के बन्ध के साथ पंचेन्द्रियजातिनामकर्म का नियम से बंधना।
२. गतिनामनिधत्तायु—नारकायुष्क के बन्ध के साथ नरकगति का नियम से बंधना।
३. स्थितिनामनिधत्तायु—नारकायुष्क के बन्ध के साथ स्थिति का नियम से बंधना।

४. अवगाहनानामनिधत्तायु—नारकायुष्क के वन्ध के साथ वैक्रियशरीर नामकर्म का नियम से वंधना।
५. प्रदेशनाम निधत्तायु—नारकायुष्क के वंध के साथ प्रदेशों का नियम से वंधना।
६. अनुभागनामनिधत्तायु—नारकयुष्क के बंध के साथ अनुभाग का नियम से वंधना (११७)।

११८—एवं जाव[२] वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों के जीवों में आयुष्य कर्म का वन्ध छह प्रकार का जानना चाहिए ११८।

परभविक-आयुर्बन्ध सूत्र

११९—णेरइया णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

भुज्यमान आयु के छह मास के अवशिष्ट रहने पर नारकी जीव नियम से परभव की आयु का बन्ध करते हैं (११९)।

१२०—एवं असुरकुमाराबि जाव थणियकुमारा।

इसी प्रकार असुर कुमार भी, तथा स्तनितकुमार तक के सभी भवन-पति देव भी छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर नियम से परभव की आयु का बन्ध करते हैं (१२०)।

१२१—असंखेज्जवासाउया सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिया णियमं छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञि-पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीव नियम से परभव की आयु का बन्ध करते हैं (१२१)।

१२२—असंखेज्जवासाउया सण्णिमणुस्सा णियमं छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पगरेंति।

छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर असंख्येय वर्षायुष्क संज्ञि-मनुष्य नियम से परभव की आयु का बन्ध करते हैं[1] (१२२)।

१२३—वाणमंतरा जोतिसवासिया वेमाणिया जहा णेरइया।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव नारक जीवों के समान छह मास आयु के अवशिष्ट रहने पर परभव की आयु का नियम से बन्ध करते हैं (१२३)।

भाव-सूत्र

१२४—छव्विधे भावे पण्णत्ते, तं जहा—ओदइए, उवसमिए, खइए, खओवसमिए, पारिणामिए, सण्णिवातिए।

---

१ दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य और तिर्यंच वर्त्तमान भव की आयु के नौ मास शेष रहने पर परभव की आयु का वन्ध करते हैं। (देखो—गो० जीवकाण्ड गाथा ५१७ टीका)

भाव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. औदयिक भाव—कर्म के उदय से होने वाले क्रोध, मानादि २१ भाव।
२. औपशमिक भाव—मोह कर्म के उपशम से होने वाले सम्यक्त्वादि २ भाव।
३. क्षायिक भाव—घाति कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले अनन्त ज्ञान-दर्शनादि ९ भाव।
४. क्षायोपशमिक भाव—घातिकर्मों के क्षयोपशम से होने वाले मति-श्रुतज्ञानादि १८ भाव।
५. पारिणामिक भाव—किसी कर्म के उदयादि के विना अनादि से चले आ रहे जीवत्व आदि ३ भाव।
६. सान्निपातिक भाव—उपर्युक्त भावों के संयोग से होने वाले भाव।

जैसे—यह मनुष्य औपशमिक सम्यक्त्वी, अवधिज्ञानी और भव्य है। यह औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक इन चार भावों का संयोगी सान्निपातिक भाव है।

ये द्विसंयोगी १०, त्रिसंयोगी २०, चतुःसंयोगी ५ और पंचसंयोगी १ इस प्रकार सर्व २६ सान्निपाति भाव होते हैं (१२४)।

प्रतिक्रमण-सूत्र

१२५—छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—उच्चारपडिक्कमणे, पासवणपडिक्कमणे, इत्तरिए, आवकहिए, जंकिंचिमिच्छा, सोमणंतिए।

प्रतिक्रमण छह प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उच्चार-प्रतिक्रमण—मल-विसर्जन से पश्चात् वापस आने पर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।
२. प्रस्रवण-प्रतिक्रमण—मूत्र-विसर्जन के पश्चात् वापस आने पर ईर्यापथिकी सूत्र के द्वारा प्रतिक्रमण करना।
३. इत्वरिक-प्रतिक्रमण-दैवसिक—रात्रिक आदि प्रतिक्रमण करना।
४. यावत्कथिक प्रतिक्रमण—मारणान्तिकी संल्लेखना के समय किया जाने वाला प्रतिक्रमण।
५. यत्किञ्चित् मिथ्यादुष्कृत प्रतिक्रमण—साधारण दोष लगने पर उसकी शुद्धि के लिए 'मिच्छा मि दुक्कडं' कहकर पश्चात्ताप प्रकट करना।
६. स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण—दुःस्वप्नादि देखने पर किया जाने वाला प्रतिक्रमण (१२५)।

नक्षत्र-सूत्र

१२६—कत्तियाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।

कृत्तिका नक्षत्र छह तारावाला कहा गया है (१२६)।

१२७—असिलेसाणक्खत्ते छत्तारे पण्णत्ते।

अश्लेषा नक्षत्र छह तारावाला कहा गया है (१२७)।

पापकर्म-सूत्र

१२८—जीवा णं छट्ठाणणिव्वत्तिए पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—पुढविकाइयणिव्वत्तिए, (आउकाइयणिव्वत्तिए, तेउकाइयणिव्वत्तिए, वाउकाइयणिव्वत्तिए, वणस्सइकाइयणिव्वत्तिए) तसकायणिव्वत्तिए।

एवं—चिण-उवचिण-बंध-उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

जीवों ने छह स्थान निर्वर्तित कर्मपुद्गलों को पाप कर्म के रूप से भूतकाल में ग्रहण किया था, वर्तमान में ग्रहण करते हैं और भविष्य में ग्रहण करेंगे। यथा—

१. पृथ्वीकायनिर्वर्तित, २. अप्कायनिर्वर्तित, ३. तेजस्कायनिर्वर्तित, ४. वायुकायनिर्वर्तित, ५. वनस्पतिकायनिर्वर्तित, ३. त्रसकायनिर्वर्तित (१२८)।

इसी प्रकार सभी जीवों ने षट्काय-निर्वतित कर्मपुद्गलों का पापकर्म के रूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन, और निर्जरण भूतकाल में किया है, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे।

पुद्गल-सूत्र

१२९—छप्पएसिया तं खंधा अणंता पण्णत्ता।

छह प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (१२९)।

१३०—छप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

छह प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१३०)।

१३१—छसमयट्ठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

छह समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१३१)।

१३२—छगुणकालगा पोग्गला जाव छगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

छह गुण काले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१३२)।

इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के छह गुण वाले पुद्गल अनन्त-अनन्त कहे गये हैं।

॥ छठा स्थान समाप्त ॥

सप्तम स्थान

सार : संक्षेप

प्रस्तुत सप्तम स्थान में सात की संख्या से संबद्ध विषयों का संकलन किया गया है। जैन आगम यद्यपि आचार-धर्म का मुख्यता से प्रतिपादन करते हैं, तथापि स्थानाङ्ग में सात संख्या वाले अनेक दार्शनिक, भौगोलिक, ज्योतिष्क, ऐतिहासिक और पौराणिक आदि विषयों का भी वर्णन किया गया है।

संसार में जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाने के लिए सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की साधना करना आवश्यक है। साधारण व्यक्ति आधार या आश्रय के विना उनकी आराधना नहीं कर सकता है, इसके लिए तीर्थंकरों ने संघ की व्यवस्था की और उसके सम्यक संचालन का भार अनुभवी लोक-व्यवहार-कुशल आचार्य को सौंपा। वह अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जब यह अनुभव करे कि संघ या गण में रहते हुए मेरा आत्म-विकास संभव नहीं, तब वह गण को छोड़ कर या तो किसी महान् आचार्य के पास जाता है, या एकल विहारी होकर आत्म-साधना में संलग्न होता है। गण या संघ को छोड़ने से पूर्व उसकी अनुमति लेना आवश्यक है। इस स्थान में सर्वप्रथम गणापक्रमण-पद द्वारा इसी तथ्य का निरूपण किया गया है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण वर्णन सप्त भयों का है। जब तक मनुष्य किसी भी प्रकार के भय से ग्रस्त रहेगा, तब तक वह संयम की साधना यथाविधि नहीं कर सकता। अतः सात भयों का त्याग आवश्यक है।

तीसरा महत्त्वपूर्ण वर्णन वचन के प्रकारों का है। इससे ज्ञात होगा कि साधक को किस प्रकार के वचन बोलना चाहिए और किस प्रकार के नहीं। इसी के साथ प्रशस्त और अप्रशस्त विनय के सात-सात प्रकार भी ज्ञातव्य हैं। अविनयी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाता है। अतः विनय के प्रकारों को जानकर प्रशस्त विनयों का परिपालन करना आवश्यक है।

राजनीति की दृष्टि से दण्डनीति के सात प्रकार मननीय हैं। मनुष्यों में जैसे-जैसे कुटिलता बढ़ती गई, वैसे-वैसे ही दण्डनीति भी कठोर होती गई। इसका क्रमिक-विकास दण्डनीति के सात प्रकारों में निहित है।

राजाओं में सर्वशिरोमणि चक्रवर्ती होता है। उसके रत्नों का भी वर्णन प्रस्तुत स्थान में पठनीय है।

संघ के भीतर आचार्य और उपाध्याय का प्रमुख स्थान होता है, अतः उनके लिए कुछ विशेष अधिकार प्राप्त हैं, इसका वर्णन भी आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष-पद में किया गया है।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त इस स्थान में जीव-विज्ञान, लोक-स्थिति-संस्थान, गोत्र, नय, आसन, पर्वत, धान्य-स्थिति, सात प्रवचननिह्नव, सात समुद्घात, आदि विविध विषय संकलित हैं। सप्त स्वरों का बहुत विस्तृत वर्णन प्रस्तुत स्थान में किया गया है, जिससे ज्ञात होगा कि प्राचीनकाल में संगीत-विज्ञान कितना बढ़ा-चढ़ा था।



सप्तम स्थान

गणापक्रमण-सूत्र

१—सत्तविहे गणावक्कमणे पण्णत्ते, तं जहा—सव्वधम्मा रोएमि। एगइया रोएमि एगइया णो रोएमि। सव्वधम्मा वितिगिच्छामि। एगइया वितिगिच्छामि एगइया णो वितिगिच्छामि। सव्वधम्मा जुहुणामि। एगइया जुहुणामि एगइया णो जुहुणामि। इच्छामि णं भंते! एगल्लविहारपडिमं उवसंपिज्जत्ता णं विहरित्तए।

गण से अपक्रमण (निर्गमन-परित्याग-परिवर्तन) सात कारणों से किया जाता है। जैसे—

१. सर्व धर्मों में (श्रुत और चारित्र के भेदों में) मेरी रुचि है। इस गण में उनकी पूर्ति के साधन नहीं है। इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

२. कितनेक धर्मों में मेरी रुचि है और कितनेक धर्मों में मेरी रुचि नहीं है। जिनमें मेरी रुचि है, उनकी पूर्ति के साधन इस गण में नहीं हैं। इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

३. सर्व धर्मों में मेरा संशय है। संशय को दूर करने के लिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

४. कितनेक धर्मों में मेरा संशय है और कितनेक धर्मों में मेरा संशय नहीं है। संशय को दूर करने के लिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूं और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

५. मैं सभी धर्म दूसरों को देना चाहता हूँ। इस गण में कोई योग्य पात्र नहीं है, जिसे कि मैं सभी धर्म दे सकूँ! इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूं।

६. मैं कितनेक धर्म दूसरों को देना चाहता हूं और कितनेक धर्म नहीं देना चाहता। इस गण में कोई योग्य पात्र नहीं है जिसे कि मैं जो देना चाहता हूँ, वह दे सकूं। इसलिए हे भदन्त! मैं इस गण से अपक्रमण करता हूँ और दूसरे गण की उपसम्पदा को स्वीकार करता हूँ।

७. हे भदन्त! मैं एकलविहारप्रतिमा को स्वीकार कर विहार करना चाहता हूँ। इसलिए इस गण से अपक्रमण करता हूँ (१)।

विभंगज्ञान-सूत्र

२—सत्तविहे विभंगणाणे पण्णत्ते, तं जहा—एगदिसिं लोगाभिगमे, पंचदिसिं लोगाभिगमे, किरियावरणे जीवे, मुदग्गे जीवे, अमुदग्गे जीवे, रूवी जीवे, सव्वमिणं जीवा।

तत्थ खलु इमे पढमे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति, से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाईणं वा पडिणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—

एगदिसिं लोगाभिगमे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—पंचदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—पढमे विभंगणाणे।

अहावरे दोच्चे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाईणं वा पडिणं वा दाहिणं वा उदीणं वा उड्ढं वा जाव सोहम्मे कप्पे। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—पंचदिसिं लोगाभिगमे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—एगदिसिं लोगाभिगमे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—दोच्चे विभंगणाणे।

अहावरे तच्चे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासति पाणे अतिवातेमाणे, मुसं वयमाणे, अदिण्ण-मादियमाणे, मेहुणं पडिसेवमाणे, परिग्गहं परिगिण्हमाणे, राइभोयणं भुंजमाणे, पावं च णं कम्मं कीरमाणं णो पासति। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—किरिया-वरणे जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—णो किरियावरणे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—तच्चे विभंगणाणे। अहावरे चउत्थे विभंगणाणे—जया णं तधारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा (विभंगणाणे) समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता विकुव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—मुदग्गे जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—अमुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—चउत्थे विभंगणाणे।

अहावरे पंचमे विभंगणाणे—जया णं तधारूवस्स समणस्स (वा माहणस्स वा विभंगणाणे) समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भंतरए पोग्गलए अपरिया-इत्ता पुढेगत्तं णाणत्तं (फुसित्ता फुरित्ता फुट्टित्ता) विउव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि (णं मम अतिसेसे णाणदंसणे) समुप्पण्णे—अमुदग्गे जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—मुदग्गे जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—पंचमे विभंगणाणे।

अहावरे छट्ठे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा (विभंगणाणे) समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं देवामेव पासति बाहिरब्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता वा अपरियाइत्ता वा पुढेगत्तं णाणत्तं फुसित्ता (फुरित्ता फुट्टित्ता) विकुव्वित्ता णं चिट्ठित्तए। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—रूवी जीवे। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमहंसु—अरूवी जीवे। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु—छट्ठे विभंगणाणे।

अहावरे सत्तमे विभंगणाणे—जया णं तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा विभंगणाणे समुप्पज्जति। से णं तेणं विभंगणाणेणं समुप्पण्णेणं पासइ सुहुमेणं वायुकाएणं फुडं पोग्गलकायं एयंतं वेयंतं चलंतं खुब्भंतं फंदंतं घट्टंतं उदीरेंतं तं तं भावं परिणमंतं। तस्स णं एवं भवति—अत्थि णं मम अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पण्णे—सव्वमिणं जीवा। संतेगइया समणा वा माहणा वा एवमाहंसु—जीवा चेव, अजीवा चेव। जे ते एवमाहंसु, मिच्छं ते एवमाहंसु। तस्स णं इमे चत्तारि जीवणिकाया णो सम्ममुवगता भवंति, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया। इच्चेतेहिं चउहिं जीवणिकाएहिं मिच्छादंडं पवत्तेइ—सत्तमे विभंगणाणे।

विभङ्गज्ञान (कुअवधिज्ञान) सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. एकदिग्लोकाभिगम—एक दिशा में ही सम्पूर्ण लोक को जानने वाला।

२. पंचदिग्लोकाभिगम—पांचों दिशाओं में ही सर्वलोक को जानने वाला।
३. जीव को कर्मावृत नहीं, किन्तु क्रियावरण मानने वाला।
४. मुदग्गजीव—जीव के शरीर को मुदग्ग-(पुद्‌गल-) निर्मित ही मानने वाला।
५. अमुदग्गजीव—जीव के शरीर को पुद्‌गल-निर्मित नहीं ही मानने वाला।
६. रूपी जीव—जीव को रूपी ही मानने वाला।
७. यह सर्वजीव—इस सर्व दृश्यमान जगत् को जीव ही मानने वाला।

उनमें यह पहला विभंगज्ञान है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान से पूर्वदिशा को या पश्चिम दिशा को या दक्षिण दिशा को या उत्तर दिशा को या ऊर्ध्वदिशा को सौधर्मकल्प तक, इन पाँचों दिशाओं में से किसी एक दिशा को देखता है। उस समय उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं इस एक दिशा में ही लोक को देख रहा हूँ। कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि लोक पांचों दिशाओं में है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह पहला विभंगज्ञान है।

दूसरा विभंगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान से पूर्व दिशा को, पश्चिम दिशा को, दक्षिण दिशा को, उत्तर दिशा को और ऊर्ध्वदिशा को सौधर्मकल्प तक देखता है। उस समय उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय (सम्पूर्ण) ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं पांचों दिशाओं में ही लोक को देख रहा हूँ। कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि लोक एक ही दिशा में है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह दूसरा विभंगज्ञान है।

तीसरा विभंगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान से जीवों को हिंसा करते हुए, झूठ बोलते हुए, अदत्त-ग्रहण करते हुए, मैथुन-सेवन करते हुए, परिग्रह करते हुए और रात्रि-भोजन करते हुए देखता है, किन्तु उन कार्यों के द्वारा किये जाते हुए कर्मबन्ध को नहीं देखता, तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव क्रिया से ही आवृत है, कर्म से नहीं। जो श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव क्रिया से आवृत नहीं है, वे मिथ्या कहते हैं। यह तीसरा विभंगज्ञान है।

चौथा विभंगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंग ज्ञान से देवों को बाह्य (शरीर के अवगाढ क्षेत्र से बाहर) और आभ्यन्तर (शरीर के अवगाढ क्षेत्र के भीतर) पुद्‌गलों को ग्रहण कर विक्रिया करते हुए देखता है कि ये देव पुद्‌गलों का स्पर्श कर, इनमें हल-चल पैदा कर, उनका स्फोट कर, भिन्न-भिन्न काल और विभिन्न देश में विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देख कर उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव पुद्‌गलों से ही बना हुआ है। कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव शरीर-पुद्‌गलों से बना हुआ नहीं है, जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह चौथा विभंगज्ञान है।

पांचवां विभंगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न विभंग ज्ञान से देवों को बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण किए विना उत्तर विक्रिया करते हुए देखता है कि ये देव पुद्गलों का स्पर्श कर, उनमें हल-चल उत्पन्न कर, उनका स्फोट कर, भिन्न-भिन्न काल और देश में विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देखकर उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—'मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव पुद्गलों से वना हुआ नहीं है। कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव-शरीर पुद्गलों से बना हुआ है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह पाँचवाँ विभंगज्ञान है।

छठा विभंगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंगज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंग-ज्ञान से देवों को बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलों को ग्रहण करके और ग्रहण किये विना विक्रिया करते हुए देखता है। वे देव पुद्गलों का स्पर्श कर, उनमें हल-चल पैदा कर, उनका स्फोट कर भिन्न-भिन्न काल और देश में विविध प्रकार की विक्रिया करते हैं। यह देख कर उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रहा हूँ कि जीव रूपी ही है। कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव अरूपी है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। यह छठा विभंगज्ञान है।

सातवाँ विभंगज्ञान इस प्रकार है—

जब तथारूप श्रमण-माहन को विभंग ज्ञान उत्पन्न होता है, तब वह उस उत्पन्न हुए विभंग ज्ञान से सूक्ष्म (मन्द) वायु के स्पर्श से पुद्गल काय को कम्पित होते हुए, विशेष रूप से कम्पित होते हुए, चलित होते हुए, क्षुब्ध होते हुए, स्पन्दित होते हुए, दूसरे पदार्थों का स्पर्श करते हुए, दूसरे पदार्थों को प्रेरित करते हुए, और नाना प्रकार के पर्यायों में परिणत होते हुए देखता है। तब उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है—'मुझे सातिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त हुआ है। मैं देख रखा हूँ कि ये सभी जीव ही जोव हैं, कितनेक श्रमण-माहन ऐसा कहते हैं कि जीव भी हैं और अजीव भी हैं। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। उस विभंगज्ञानी को पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक, इन चार जीव-निकायों का सम्यक् ज्ञान नहीं होता। वह इन चार जीव-निकायों पर मिथ्यादण्ड का प्रयोग करता है। यह सातवाँ विभंगज्ञान है।

विवेचन—मति श्रुत और अवधिज्ञान मिथ्यादर्शन के संसर्ग के कारण विपर्यय रूप भी होते हैं। अभिप्राय यह कि मिथ्यादृष्टि के उक्त तीनों ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाते हैं। जिनमें से आदि के दो ज्ञानों को कुमति और कुश्रुत कहा जाता है और अवधिज्ञान को कुअवधि या विभंगज्ञान कहते हैं। मति और श्रुत ये दो ज्ञान एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी संसारी जीवों में हीनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं। किन्तु अवधिज्ञान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को ही होता है।

अवधिज्ञान के दो भेद होते हैं—भवप्रत्यय और क्षयोपशमनिमित्तक। भवप्रत्यय अवधि देव और नारकी जीवों को जन्मजात होता है। किन्तु क्षयोपशमनिमित्तक अवधि मनुष्य और तिर्यंचों को तपस्या, परिणाम-विशुद्धि आदि विशेष कारण मिलने पर अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। यद्यपि देव और नारकी जीवों का अवधिज्ञान भी तदावरण कर्म के क्षयोपशम से ही जनित है, किन्तु वहाँ अन्य वाह्य कारण के अभाव में भी मात्र भव के निमित्त से क्षयोपशम होता है।

अतः सभी को होता है। उसे भवप्रत्यय कहते हैं। किन्तु संज्ञी मनुष्य और तिर्यंचों के तपस्या आदि बाह्य कारण विशेष के मिलने पर ही वह होता है, अन्यथा नहीं। अतः उसे क्षयोपशमनिमित्तक या गुणप्रत्यय कहते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में तीन गति के जीवों को होने वाले अवधिज्ञान की चर्चा नहीं की गई है। किन्तु कोई श्रमण-माहन बाल-तप आदि साधना-विशेष करता है, उनमें से किसी-किसी को उत्पन्न होने वाले अवधिज्ञान का वर्णन किया गया है। जो व्यक्ति सम्यग्दृष्टि होता है, उसे जितनी मात्रा में भी यह उत्पन्न होता है, वह उसके उत्पन्न होने पर प्रारम्भिक क्षणों में विस्मित तो अवश्य होता है, किन्तु भ्रमित नहीं होता। एवं उसके पूर्व उसे जितना श्रुतज्ञान से छह द्रव्य, सप्त तत्त्व और नव पदार्थों का परिज्ञान था, उस अर्हत्प्रज्ञप्त तत्त्व पर श्रद्धा रखता हुआ यह जानता है कि मेरे क्षयोपशम के अनुसार इतनी सीमा या मर्यादा वाला यह अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, अतः मैं उस सीमित क्षेत्रवर्ती पदार्थों को जानता देखता हूँ। किन्तु यह लोक और उसमें रहने वाले पदार्थ असीम हैं, अतः उन्हें जिन-प्ररूपित आगम के अनुसार ही जानता है।

किन्तु जो श्रमण-माहन मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनके बालतप, संयम-साधना आदि के द्वारा जब जितने क्षेत्रवाला अवधिज्ञान उत्पन्न होता है तब वे पूर्व श्रद्धान से या श्रुतज्ञान से विचलित हो जाते हैं और यह मानने लगते हैं कि जिस द्रव्य, क्षेत्र, काल और भव की सीमा में मुझे यह अतिशायी ज्ञान प्राप्त हुआ है, बस इतना ही संसार है और मुझे जो भी जीव या अजीव दिख रहे हैं, या पदार्थ दिखाई दे रहे हैं, वे इतने ही हैं। इसके विपरीत जो श्रमण-माहन कहते हैं, वह सब मिथ्या है। उनके इस 'लोकाभिगम' या लोक-सम्बन्धी ज्ञान को विभंगज्ञान कहा गया है।

टीकाकार ने सातों प्रकार के विभंगज्ञानों की विभंगता या मिथ्यापन का खुलासा करते हुए लिखा है कि पहले प्रकार में विभंगता शेष दिशाओं में लोक निषेध करने के कारण है। दूसरे प्रकार में विभंगता एक दिशा में लोक का निषेध करने से है, तीसरे प्रकार में विभंगता कर्मों के अस्तित्व को अस्वीकार करने से है। चौथे प्रकार में विभंगता जीव को पुद्गल-जनित मानने से है। पाँचवें प्रकार में विभंगता देवों की विक्रिया को देख कर उनके शरीर के पुद्गल-जनित होने पर भी उसे पुद्गल-निर्मित नहीं मानने से है। छठे प्रकार में विभंगता जीव को रूपी ही मानने से है। तथा सातवें प्रकार में विभंगता पृथिवी आदि चार निकायों के जीवों को नहीं मानने से बताई गई है।

योनिसंग्रह-सूत्र

३—सत्तविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—अंडजा, पोतजा, जराउजा, रसजा, संसेयगा, संमुच्छिमा, उब्भिगा।

योनि-संग्रह सात प्रकार का कहा गया है—

१. अण्डज—अण्डों से उत्पन्न होने वाले पक्षी-सर्प आदि।
२. पोतज—चर्म-आवरण विना उत्पन्न होने वाले हाथी शेर आदि।
३. जरायुज—चर्म-आवरण रूप जरायु (जेर) से उत्पन्न होने वाले मनुष्य, गाय आदि।
४. रसज—कालिक मर्यादा से अतिक्रांत दूध-दही, तेल आदि रसों में उत्पन्न होने वाले जीव।
५. संस्वेदज—संस्वेद (पसीना) से उत्पन्न होने वाले जूं, लीख आदि।

६. सम्मूर्च्छिम—तदनुकूल परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न होने वाले लट आदि।

७. उद्भिज्ज—भूमि-भेद से उत्पन्न होने वाले खंजनक आदि जीव (३)।

विवरण—जीवों के उत्पन्न होने के स्थान-विशेषों को योनि कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में जिन सात प्रकार की योनियों का संग्रह किया है, उनमें से आदि की तीन योनियाँ गर्भ जन्म की आधार हैं। शेष रसज आदि चार योनियाँ सम्मूर्च्छिम जन्म की आधारभूत हैं। देव-नारकों के उपपात जन्म की आधारभूत योनियों का यहाँ संग्रह नहीं किया गया है।

गति-आगति-सूत्र

४—अंडगा सत्तगतिया सत्तागतिया पण्णत्ता, तं जहा—अंडगे अंडगेसु उववज्जमाणे अंडगेहिंतो वा, पोतजेहिंतो वा, (जराउजेहिंतो वा, रसजेहिंतो वा, संसेयगेहिंतो वा, संमुच्छिमेहिंतो वा,) उब्भिगेहिंतो वा, उववज्जेज्जा।

सच्चेव णं से अंडए अंडगत्तं विप्पजहमाणे अंडगत्ताए वा, पोतगत्ताए वा, (जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा, संसेयगत्ताए वा, संमुच्छिमत्ताए वा), उब्भिगत्ताए वा गच्छेज्जा।

अण्डज जीव सप्तगतिक और सप्त आगतिक कहे गये हैं। जैसे—

अण्डज जीव अण्डजों में उत्पन्न होता हुआ अण्डजों से या पोतजों से या जरायुजों से, या रसजों से या संस्वेदजों से या सम्मूर्च्छिमों से या उद्भिज्जों से आकर उत्पन्न होता है।

वही अण्डज जीव अण्डज योनि को छोड़ता हुआ अण्डज रूप से या पोतज रूप से या जरायुज रूप से या रसज रूप से या संस्वेदज रूप से या सम्मूर्च्छिम रूप से या उद्भिज्ज रूप से जाता है। अर्थात् सातों योनियों में उत्पन्न हो सकता है।

५—पोतगा सत्तगतिया सत्तागतिया एवं चेव। सत्तण्हवि गतिरागती भाणियव्वा जाव उब्भियत्ति।

पोतज जीव सप्तगतिक और सप्त आगतिक कहे गये हैं। इसी प्रकार उद्भिज्ज तक सातों ही योनिवाले जीवों की सातों ही गति और सातों ही आगति जाननी चाहिए (५)।

संग्रहस्थान-सूत्र

६—आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त संगहठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा सम्मं पउंजित्ता भवति।

२. (आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए कितिकम्मं सम्मं पउंजित्ता भवति।

३. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले सम्मंमणुप्पवाइत्ता भवति।

४. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति)।

५. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आपुच्छियचारी यावि भवति, णो अणापुच्छियचारी।

६. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अणुप्पण्णाइं उवगरणाइं सम्मं उप्पाइत्ता भवति।

७. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि पुव्वुप्पण्णाइं उवकरणाइं सम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवति, णो असम्मं सारक्खेत्ता संगोवित्ता भवति।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण में सात संग्रहस्थान (ज्ञाता या शिष्यादि के संग्रह के कारण) कहे गये हैं। जैसे—

१. आचार्य और उपाध्याय गण में आज्ञा एवं धारणा का सम्यक् प्रयोग करें।
२. आचार्य और उपाध्याय गण में यथारात्निक (दीक्षा-पर्याय में छोटे-बड़े के क्रम से) कृतिकर्म (वन्दनादि) का सम्यक् प्रयोग करें।
३. आचार्य और उपाध्याय जिन-जिन सूत्र-पर्यवजातों को धारण करते हैं, उनकी यथाकाल गण को सम्यक् वाचना देवें।
४. आचार्य और उपाध्याय गण के ग्लान (रुग्ण) और शैक्ष (नवदीक्षित) साधुओं की सम्यक् वैयावृत्य के लिए सदा सावधान रहें।
५. आचार्य और उपाध्याय गण को पूछ कर अन्यत्र विहार करें, उसे पूछे विना विहार न करें।
६. आचार्य और उपाध्याय गण के लिए अनुपलब्ध उपकरणों को सम्यक् प्रकार से उपलब्ध करें।
७. आचार्य और उपाध्याय गण में पूर्व-उपलब्ध उपकरणों का सम्यक् प्रकार से संरक्षण एवं संगोपन करें, असम्यक् प्रकार से—विधि का अतिक्रमण कर संरक्षण और संगोपन न करें (६)।

असंग्रहस्थान-सूत्र

७—आयरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त असंगहठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आणं वा धारणं वा णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
२. (आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि आधारातिणियाए कितिकम्मं णो सम्मं पउंजित्ता भवति।
३. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि जे सुत्तपज्जवजाते धारेति ते काले-काले णो सम्ममणुप्पवाइत्ता भवति।
४. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि गिलाणसेहवेयावच्चं णो सम्ममब्भुट्ठित्ता भवति।
५. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अणापुच्छियचारी यावि हवइ, णो आपुच्छियचारी।
६. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि अणुप्पण्णाइं उवगरणाइं णो सम्मं उप्पाइत्ता भवति।
७. आयरिय-उवज्झाए णं गणंसि) पच्चुप्पण्णाणं उवगरणाणं णो सम्मं सारक्खेत्ता संगोवेत्ता भवति।

आचार्य और उपाध्याय के लिए गण में सात असंग्रहस्थान कहे गये हैं। जैसे—

१. आचार्य और उपाध्याय गण में आज्ञा एवं धारणा का सम्यक् प्रयोग न करें।
२. आचार्य और उपाध्याय गण में यथारात्निक कृतिकर्म का सम्यक् प्रयोग न करें।
३. आचार्य और उपाध्याय जिन-जिन-सूत्र-पर्यवजातों को धारण करते हैं, उनकी यथाकाल गण को सम्यक् वाचना न देवें।
४. आचार्य और उपाध्याय ग्लान एवं शैक्ष साधुओं की यथोचित वैयावृत्य के लिए सदा सावधान न रहें।
५. आचार्य और उपाध्याय गण को पूछे विना अन्यत्र विहार करें, उसे पूछ कर विहार न करें।

६. आचार्य और उपाध्याय गण के लिए अनुपलब्ध उपकरणों को सम्यक् प्रकार से उपलब्ध न करें।
७. आचार्य और उपाध्याय गण में पूर्व-उपलब्ध उपकरणों का सम्यक् प्रकार से संरक्षण एवं संगोपन न करें (७)।

प्रतिमा-सूत्र

८—सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ।

पिण्ड-एषणाएँ सात कही गई हैं।

विवेचन—आहार के अन्वेषण को पिण्ड-एषणा कहते हैं। वे सात प्रकार की होती हैं। उनका विवरण संस्कृतटीका के अनुसार इस प्रकार है—

१. संसृष्ट-पिण्ड-एषणा—देय वस्तु से लिप्त हाथ से, या कड़छी आदि से आहार लेना।
२. असंसृष्ट-पिण्ड-एषणा—देय वस्तु से अलिप्त हाथ से, या कड़छी आदि से आहार लेना।
३. उद्धृत-पिण्ड-एषणा—पकाने के पात्र से निकाल कर परोसने के लिए रखे पात्र से आहार लेना।
४. अल्पलेपिक-पिण्ड-एषणा—रूक्ष आहार लेना।
५. अवगृहीत-पिण्ड-एषणा—खाने के लिए थाली में परोसा हुआ आहार लेना।
६. प्रगृहीत-पिण्ड-एषणा—परोसने के लिए कड़छी आदि से निकाला हुआ आहार लेना।
७. उज्झितधर्मा-पिण्ड-एषणा—घरवालों के भोजन करने के बाद बचा हुआ एवं परित्याग करने के योग्य आहार लेना (८)।

९—सत्त पाणेसणाओ पण्णत्ताओ।

पान-एषणाएं सात कही गई हैं।

विवेचन—पीने के योग्य जल आदि की गवेषणा को पान-एषणा कहते हैं। उसके भी पिण्ड-एषणा के समान सात भेद इस प्रकार से जानना चाहिए—

१. संसृष्ट-पान-एषणा, २. असंसृष्ट-पान-एषणा, ३. उद्धृत-पान-एषणा, ४. अल्पलेपिक पान-एषणा, ५. अवगृहीत-पान-एषणा, ६. प्रगृहीत-पान-एषणा, और उज्झितधर्मा-पान-एषणा।

यहां इतना विशेष जानना चाहिए कि अल्पलेपिक-पान-एषणा का अर्थ कांजी, ओसामण, उष्णजल, चावल-धोवन आदि से है और इक्षुरस, द्राक्षारस, आदि लेपकृत-पान-एषणा है (९)।

१०—सत्त उग्गहपडिमाओ पण्णत्ताओ।

अवग्रह-प्रतिमाएं सात कही गई हैं।

विवेचन—वसतिका, उपाश्रय या स्थान-प्राप्ति संबंधी प्रतिज्ञा या संकल्प करने को अवग्रह-प्रतिमा कहते हैं। उसके सातों प्रकारों का विवरण इस प्रकार है—

१. मैं अमुक प्रकार के स्थान में रहूंगा, दूसरे स्थान में नहीं।

२. मैं अन्य साधुओं के लिए स्थान की याचना करूंगा, तथा दूसरों के द्वारा याचित स्थान में रहूंगा। यह अवग्रहप्रतिमा गच्छान्तर्गत साधुओं के लिए होती है।

३. मैं दूसरों के लिए स्थान की याचना करूंगा, किन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान में नहीं रहूंगा। यह अवग्रहप्रतिमा यथालन्दिक साधुओं के होती है। उनका सूत्र-अध्ययन जो शेष रह जाता है, उसे पूर्ण करने के लिए वे आचार्य से सम्बन्ध रखते हैं। अतएव वे आचार्य के लिए स्थान की याचना करते हैं, किन्तु स्वयं दूसरे साधुओं के द्वारा याचित स्थान में नहीं रहते।

४. मैं दूसरों के लिए स्थान की याचना नहीं करूंगा, किन्तु दूसरों के द्वारा याचित स्थान में रहूंगा। यह अवग्रहप्रतिमा जिनकल्पदशा का अभ्यास करने वाले साधुओं के होती है।

५. मैं अपने लिए स्थान की याचना करूंगा, दूसरों के लिए नहीं। यह अवग्रह-प्रतिमा जिनकल्पी साधुओं के होती है।

६. जिस शय्यातर का मैं स्थान ग्रहण करूंगा, उसी के यहाँ धान-पलाल आदि सहज ही प्राप्त होगा, तो लूंगा, अन्यथा उकडू या अन्य नैषधिक आसन से बैठकर ही रात बिताऊंगा। यह अभिग्रह प्रतिमा जिनकल्पी या अभिग्रहविशेष के धारी साधुओं के होती है।

७. जिस शय्यातर का मैं स्थान ग्रहण करूंगा, उसी के यहां सहज ही बिछे हुए काष्ठपट्ट (तख्ता, चौकी) आदि प्राप्त होगा तो लूंगा, अन्यथा उकडू आदि आसन से बैठा-बैठा ही रात बिताऊंगा। यह अवग्रह-प्रतिमा भी जिनकल्पी या अभिग्रहविशेष के धारी साधुओं के होती है (१०)।

आचारचूला-सूत्र

११—सत्तसत्तिक्कया पण्णत्ता।

सात सप्तैकक कहे गये हैं (११)।

विवेचन—आचारचूला की दूसरी चूलिका के उद्देशक-रहित अध्ययन, सात हैं। संस्कृत-टीका के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. स्थान सप्तैकक, २. नैषेधिकी सप्तैकक, ३. उच्चार-प्रस्रवणविधि-सप्तैकक, ४. शब्द सप्तैकक, ५. रूपसप्तैकक, ६. परक्रिया सप्तैकक, ७ अन्योन्य-क्रिया सप्तैकक। यतः अध्ययन सात हैं और उद्देशकों से रहित हैं, अतः 'सप्तैकक' नाम से वे व्यवहृत किये जाते हैं। इनका विशेष विवरण आचारचूला से जानना चाहिए।

१२—सत्त महज्झयणा पण्णत्ता।

सात महान् अध्ययन कहे गये हैं (१२)।

विवेचन—सूत्रकृताङ्ग के दूसरे श्रुतस्कन्ध के अध्ययन पहले श्रुतस्कन्ध के अध्ययनों की अपेक्षा बड़े हैं, अतः उन्हें महान् अध्ययन कहा गया है। संस्कृतटीका के अनुसार उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. पुण्डरीक-अध्ययन, २. क्रियास्थान-अध्ययन, ३. अहार-परिज्ञा-अध्ययन, ४. प्रत्याख्यानक्रिया-अध्ययन, ५. अनाचार श्रुत-अध्ययन, ६. आर्द्रककुमारीय-अध्ययन, ७. नालन्दीय-अध्ययन। इनका विशेष विवरण सूत्रकृताङ्ग सूत्र से जानना चाहिए।

प्रतिमा-सूत्र

१३ - सत्तसत्तमिया णं भिक्खुपडिमाए कूणपण्णताए राइंदिएहिं एगेण य छण्णउएणं भिक्खा-सतेणं अहासुत्तं (अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) आराहिया यावि भवति।

सप्तसप्तमिका (७ × ७ =) भिक्षुप्रतिमा ४९ दिन-रात, तथा १९६ भिक्षादत्तियों के द्वारा यथासूत्र, यथा-अर्थ, यथा तत्त्व, यथा मार्ग, यथा कल्प, तथा सम्यक् प्रकार काय से आचीर्ण, पालित, शोधित, पूरित, कीर्त्तित और आराधित की जाती है (१३)।

विवेचन—साधुजन विशेष प्रकार का अभिग्रह या प्रतिज्ञारूप जो नियम अंगीकार करते हैं, उसे भिक्षुप्रतिमा कहते हैं। भिक्षुप्रतिमाएं १२ कही गई हैं, उनमें से सप्तसप्तमिका प्रतिमा सात सप्ताहों में क्रमशः एक-एक भक्त-पानकी दत्ति-द्वारा सम्पन्न की जाती है, उस का क्रम इस प्रकार है—

प्रथम सप्तक या सप्ताह में प्रतिदिन १-१ भक्त-पान दत्ति का योग ७ भिक्षादत्तियां।
द्वितीय सप्तक में प्रतिदिन २-२ भक्त-पान दत्तियों का योग १४ भिक्षादत्तियां।
तृतीय सप्तक में प्रतिदिन ३-३ भक्त-पान दत्तियों का योग २१ भिक्षादत्तियां।
चतुर्थ सप्तक में प्रतिदिन ४-४ भक्त-पान दत्तियों का योग २८ भिक्षादत्तियां।
पंचम सप्तक में प्रतिदिन ५-५ भक्त-पान दत्तियों का योग ३५ भिक्षादत्तियां।
षष्ठ सप्तक में प्रतिदिन ६-६ भक्त-पान दत्तियों का योग ४२ भिक्षादत्तियां।
सप्तम सप्तक में प्रतिदिन ७-७ भक्त-पान दत्तियों का योग ४९ भिक्षादत्तियां।

इस प्रकार सातों सप्ताहों के ४९ दिनों की भिक्षादत्तियां १९६ होती हैं। इसलिए सूत्र में कहा गया है कि यह सप्तसप्तामिका भिक्षुप्रतिमा ४९ दिन और १९६ भिक्षादत्तियों के द्वारा यथा-विधि आराधित की जाती है।

अधोलोकस्थिति-सूत्र

१४—अहेलोगे णं सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ।

अधोलोक में सात पृथिवियाँ कही गई हैं (१४)।

१५—सत्त घणोदधीओ पण्णत्ताओ।

अधोलोक में सात घनोदधि वात कहे गये हैं (१५)।

१६—सत्त घणवाता पण्णत्ता।

अधोलोक में सात घनवात कहे गये हैं (१६)।

१७—सत्त तणुवाता पण्णत्ता।

अधोलोक में सात तनुवात कहे गये हैं (१७)।

१८—सत्त ओवासंतरा पण्णत्ता।

अधोलोक में सात अवकाशान्तर (तनुवात, घनवात आदि के मध्यवर्ती अन्तराल क्षेत्र) कहे गये हैं। (१८)

१९—एतेसु णं सत्तसु ओवासंतरेसु सत्त तणुवाया पइट्ठिया।

इन सातों अवकाशान्तरों में सात तनुवात प्रतिष्ठित हैं (१९)।

२०—एतेसु णं सत्तसु तणुवातेसु सत्त घणवाता पइट्ठिया।

इन सातों तनुवातों पर सात घनवात प्रतिष्ठित हैं (२०)।

२१—एतेसु णं सत्तसु घणवातेसु सत्त घणोदधी पतिट्ठिया।

इन सातों घनवातों पर सात घनोदधि प्रतिष्ठित हैं (२१)।

२२—एतेसु ण सत्तसु घणोदधीसु पिंडलग-पिहुल-संठाण-संठियाओ सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा जाव सत्तमा।

इन सातों घनोदधियों पर फूल की टोकरी के समान चौड़े संस्थान-वाली सात पृथिवियां कही गई हैं। प्रथमा यावत् सप्तमी (२२)।

२३—एतासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—घम्मा, वंसा, सेला, अंजणा, रिट्ठा, मघा, माघवती।

इन सातों पृथिवियों के सात नाम कहे गये हैं। जैसे—

१. घर्मा, २. वंशा, ३. शैला, ४. अंजना, ५. रिष्टा, ६. मघा, ७. माघवती (२३)।

२४—एतासि णं सत्तण्हं पुढवीणं सत्त गोत्ता पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमा, तमतमा।

इन सातों पृथिवियों के सात गोत्र (अर्थ के अनुकूल नाम) कहे गये हैं। जैसे—

१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. वालुकाप्रभा, ४. पंकप्रभा, ५. धूमप्रभा, ६. तमःप्रभा, ७. तमस्तमःप्रभा (२४)।

बायरवायुकायिक-सूत्र

२५—सत्तविहा बायरवाउकाइया पण्णत्ता, तं जहा—पाईणवाते, पडीणवाते, दाहिणवाते, उदीणवाते, उड्ढवाते, अहेवाते, विदिसिवाते।

बादर वायुकायिक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूर्व दिशा सम्बन्धी वायु, २. पश्चिम दिशा सम्बन्धी वायु ३. दक्षिण दिशा सम्बन्धी वायु, ५. उत्तर दिशा सम्बन्धी वायु, ५. ऊर्ध्व दिशा सम्बन्धी वायु, ६. अधोदिशा सम्बन्धी वायु और ७. विदिशा सम्बन्धी वायु जीव (२५)।

संस्थान-सूत्र

२६—सत्त संठाणा पण्णत्ता, तं जहा—दीहे, रहस्से, वट्टे, तंसे, चउरंसे, पिहुले, परिमंडले।

संस्थान (आकार) सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. दीर्घसंस्थान, २. ह्रस्वसंस्थान, ३. वृत्तसंस्थान (गोलाकार) ४. त्र्यस्र- (त्रिकोण-) संस्थान, ५. चतुरस्र-(चौकोण-) संस्थान, ६. पृथुल-(स्थूल-) संस्थान ७. परिमण्डल (अण्डे या नारंगी के समान) संस्थान (२६)।

विवेचन—कहीं कहीं वृत्त का अर्थ नारंगी के समान गोल और परिमण्डल का अर्थ वलय या चूड़ी के समान गोल आकार कहा गया है।

भयस्थान-सूत्र

२७—सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए।

भय के स्थान सात कहे गये हैं। जैसे—

१. इहलोक-भय—इस लोक में मनुष्य, तिर्यंच आदि से होने वाला भय।
२. परलोक-भय—परभव कैसा मिलेगा, इत्यादि परलोक सम्बन्धी भय।
३. आदान-भय—सम्पत्ति आदि के अपहरण का भय।
४. अकस्माद्-भय—अचानक या अकारण होने वाला भय।
५. वेदना-भय—रोग-पीड़ा आदि का भय।
६. मरण-भय—मरने का भय।
७. अश्लोक-भय—अपकीर्त्ति का भय (२७)।

विवेचन—संस्कृतटीकाकार ने सजातीय व मनुष्यादि से होने वाले भय को इहलोक भय और विजातीय तिर्यंच आदि से होने वाले भय को परलोक भय कहा है। दिगम्वर परम्परा में अश्लोक भय के स्थान पर अगुप्ति या अत्राणभय कहा है इसका अर्थ है—अरक्षा का भय।

छद्मस्थ-सूत्र

२८—सत्तहिं ठाणेहिं छउमत्थं जाणेज्जा, तं जहा—पाणे अइवाएत्ता भवति। मुसं वइत्ता भवति। अदिण्णं आदित्ता भवति। सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति। पूयासक्कारं अणुवूहेत्ता भवति। इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता पडिसेवेत्ता भवति। णो जहावादी तहाकारी यावि भवति।

सात स्थानों से छद्मस्थ जाना जाता है। जैसे—

१. जो प्राणियों का घात करता है।
२. जो मृषा (असत्य) बोलता है।
३. जो अदत्त (विना दी) वस्तु को ग्रहण करता है।
४. जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का आस्वाद लेता है।
५. जो अपने पूजा और सत्कार का अनुमोदन करता है।
६. जो 'यह सावद्य (सदोष) है', ऐसा कहकर भी उसका प्रतिसेवन करता है।
७. जो जैसा कहता है, वैसा नहीं करता (२८)।

केवलि-सूत्र

२९—सत्तहिं ठाणेहिं केवलीं जाणेज्जा, तं जहा—णो पाणे अइवाइत्ता भवति। (णो मुसं वइत्ता भवति। णो अदिण्णं आदित्ता भवति। णो सद्दफरिसरसरूवगंधे आसादेत्ता भवति। णो पूयासक्करं अणुवूहेत्ता भवति। इमं सावज्जंति पण्णवेत्ता णो पडिसेवेत्ता भवति।) जहावादी तहाकारी यावि भवति।

सात स्थानों (कारणों) से केवली जाना जाता है। जैसे—
१. जो प्राणियों का घात नहीं करता है।
२. जो मृषा नहीं बोलता है।
३. जो अदत्त वस्तु को ग्रहण नहीं करता है।
४. जो शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का आस्वादन नहीं लेता है।
५. जो पूजा और सत्कार का अनुमोदन नहीं करता है।
६. जो 'यह सावद्य है' ऐसा कह कर उसका प्रतिसेवन नहीं करता है।
७. जो जैसा कहता है, वैसा करता है (२९)।

गोत्र-सूत्र

३०—सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता, तं जहा—कासवा, गोतमा, वच्छा, कोच्छा, कोसिआ, मंडवा, वासिट्ठा।

मूल गोत्र (एक पुरुष से उत्पन्न हुई वंश-परम्परा) सात कहे गये हैं। जैसे—
१. काश्यप, २. गौतम, ३. वत्स, ४. कुत्स, ५. कौशिक, ६. माण्डव, ७. वाशिष्ठ (३०)।

विवरण—किसी एक महापुरुष से उत्पन्न हुई वंश-परम्परा को गोत्र कहते हैं। प्रारम्भ में ये सूत्रोक्त सात मूल गोत्र थे। कालान्तर में उन्हीं से अनेक उत्तर गोत्र भी उत्पन्न हो गये। संस्कृतटीका के अनुसार सातों मूल गोत्रों का परिचय इस प्रकार है—

१. काश्यपगोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि जिन को छोड़कर शेष बाईस तीर्थंकर, सभी चक्रवर्ती (क्षत्रिय), सातवें से ग्यारहवें गणधर (ब्राह्मण) और जम्बूस्वामी (वैश्य) आदि, ये सभी काश्यप गोत्रीय थे।

२. गौतम गोत्र—मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि जिन, नारायण और पद्म को छोड़कर सभी बलदेव-वासुदेव, तथा इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति, ये तीन गणधर गौतम गोत्रीय थे।

३. वत्सगोत्र—दशवैकालिक के रचयिता शय्यम्भव आदि वत्सगोत्रीय थे।
४. कौत्स—शिवभूति आदि कौत्स गोत्रीय थे।
५. कौशिक गोत्र—षडुलुक (रोहगुप्त) आदि कौशिक गोत्रीय थे।
६, माण्डव्य गोत्र—मण्डुऋषिके वंशज माण्डव्य गोत्रीय कहलाये।
७. वाशिष्ठ गोत्र—वशिष्ठ ऋषि के वंशज वाशिष्ठ गोत्रीय कहे जाते हैं। तथा छठे गणधर और आर्य सुहस्ती आदि को भी वाशिष्ठ गोत्रीय कहा गया है।

३१—जे कासवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते कासवा, ते संडिल्ला, ते गोला, ते वाला, ते मुंजइणो, ते पव्वतिणो, ते वरिसकण्हा।

जो काश्यप गोत्रीय हैं, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. काश्यप, २. शाण्डिल्य, ३. गोल, ४. बाल, ५. मौञ्जकी, ६. पर्वती, ७. वर्षकृष्ण (३१)।

३२—जे गोतमा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते गोतमा, ते गग्गा, ते भारद्दा, ते अंगिरसा, ते सक्कराभा, ते भक्खराभा, ते उदत्ताभा।

गौतम गोत्रीय सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. गौतम, २. गार्ग्य, ३. भारद्वाज, ४. आङ्गिरस, ५. शर्कराभ, ६. भास्कराभ ७. उदत्ताभ (३२)।

३३—जे वच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते वच्छा, ते अग्गेया, ते मित्तेया, ते सामलिणो, ते सेलयया, ते अट्ठिसेणा, ते वीयकण्हा।

जो वत्स हैं, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. वत्स, २. आग्नेय, ३. मैत्रेय, ४. शाल्मली, ५. शैलक, ६. अस्थिषेण, ७. वीतकृष्ण (३३)।

३४—जे कोच्छा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते कोच्छा, ते मोग्गलायणा, ते पिंगलायणा, ते कोडीणो, [ण्णा ?], ते मंडलिणो, ते हारिता, ते सोमया।

जो कौत्स, हैं, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. कौत्स, २. मौद्गलायन, ३. पिङ्गलायन, ४. कौडिन्य, ५. मण्डली, ६. हारित, ७. सौम्य (३४)।

३५—जे कोसिआ ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते कोसिआ, ते कच्चायणा, ते सालंकायणा, ते गोलिकायणा, ते पक्खिकायणा, ते अग्गिच्चा, ते लोहिच्चा।

जो कौशिक हैं, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. कौशिक, २. कात्यायन, ३. सालंकायन, ४. गोलिकायन, ४. पाक्षिकायन, ६. आग्नेय ७. लौहित्य (३५)।

३६—जे मंडवा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते मंडवा, ते आरिट्ठा, ते संमुता, ते तेला, ते एलावच्चा, ते कंडिल्ला, ते खारायणा।

जो माण्डव हैं, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. माण्डव, २. अरिष्ट, ३. सम्मुत, ४. तैल, ५. ऐलापत्य, ६. काण्डिल्य, ७. क्षारायण(३६)।

३७—जे वासिट्ठा ते सत्तविधा पण्णत्ता, तं जहा—ते वासिट्ठा, ते उंजायणा, ते जारुकण्हा, ते वग्घावच्चा, ते कोंडिण्णा, ते सण्णी, ते पारासरा।

जो वाशिष्ठ हैं, वे सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. वाशिष्ठ, २. उञ्जायण, ३. जरत्कृष्ण, ४. व्याघ्रापत्य, ५. कौण्डिन्य, ६. संज्ञी, ७. पाराशर (३७)।

नय-सूत्र

३८—सत्त मूलणया पण्णत्ता, तं जहा—णेगमे, संगहे, ववहारे, उज्जुसुते, सद्दे, समभिरूढे, एवंभूते।

मूल नय सात कहे गये हैं। जैसे—
१. नैगम—भेद और अभेद को ग्रहण करने वाला नय।

२. संग्रह—केवल अभेद को ग्रहण करने वाला नय।
३. व्यवहार—केवल भेद को ग्रहण करने वाला नय।
४. ऋजुसूत्र—वर्तमान क्षणवर्ती पर्याय को वस्तु रूप में स्वीकार करने वाला नय।
५. शब्द—भिन्न-भिन्न लिंग, वचन, कारक आदि के भेद से वस्तु में भेद मानने वाला नय।
६. समभिरूढ—लिंगादि का भेद न होने पर भी पर्यायवाची शब्दों के भेद से वस्तु को भिन्न मानने वाला नय।
७. एवम्भूत—वर्तमान क्रिया-परिणत वस्तु को ही वस्तु मानने वाला नय (३८)।

स्वरमंडल-सूत्र

३९—सत्त सरा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सज्जे रिसभे गंधारे, मज्झिमे पंचमे सरे।
धेवते चेव णेसादे, सरा सत्त वियाहिता ॥१॥

स्वर सात कहे गये हैं। जैसे—

१. षड्ज, २. ऋषभ, ३. गान्धार, ४. मध्यम, ५. पंचम, ६. धैवत, ७. निषाद।

विवेचन—१. षड्ज—नासिका, कण्ठ, उरस्, तालु, जिह्वा, और दन्त इन छह स्थानों से उत्पन्न होने वाला स्वर—'स'।
२. ऋषभ—नाभि से उठकर कण्ठ और शिर से समाहत होकर ऋषम (बैल) के समान गर्जना करने वाला स्वर —'रे'।
३. गान्धार—नाभि से समुत्थित एवं कण्ठ-शीर्ष से समाहत तथा नाना प्रकार की गन्धों को धारण करने वाला स्वर—'ग'।
४. मध्यम—नाभि से उठकर वक्ष और हृदय से समाहत होकर पुनः नाभि को प्राप्त महानाद 'म'। शरीर के मध्य भाग से उत्पन्न होने के कारण यह मध्यम स्वर कहा जाता है।
५. पंचम—नाभि, वक्ष, हृदय, कण्ठ और शिर इन पाँच स्थानों से उत्पन्न होने वाला स्वर—'प'।
६. धैवत—पूर्वोक्ति सभी स्वरों का अनुसन्धान करने वाला स्वर—'ध'।
७. निषाद—सभी स्वरों को समाहित करने वाला स्वर—'नी'।

४०—एएसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरट्ठाणा पण्णत्ता तं जहा—

सज्जं तु अग्गजिब्भाए, उरेण रिसभं सरं।
कंठुग्गतेण गंधारं मज्झजिब्भाए मज्झिमं ॥१॥

णासाए पंचमं बूया, दंतोट्ठेण य धेवतं।
मुद्धाणेण य णेसादं, सरट्ठाणा वियाहिता ॥२॥

इन सातों स्वरों के सात स्वर-स्थान कहे गये हैं। जैसे—

१. षड्ज का स्थान—जिह्वा का अग्रभाग।
२. ऋषभ का स्थान—उरस्थल।
३. गान्धार का स्थान—कण्ठ।
४. मध्यम का स्थान—जिह्वा का मध्य भाग।
५. पंचम का स्थान—नासा।
६. धैवत का स्थान—दन्त-ओष्ठ-संयोग।
७. निषाद का स्थान—शिर (४१)।

४१—सत्त सरा जीवणिस्सिता पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जं रवति मयूरो, कुक्कुडो रिसभं सरं।
हंसो णदति गंधारं, मज्झिमं तु गवेलगा॥१॥
अह कुसुमसंभवे काले, कोइला पंचमं सरं।
छट्ठं च सारसा कोंचा, णेसायं सत्तमं गजो॥२॥

जीव-निःसृत सात स्वर कहे गये हैं। जैसे—

१. मयूर षड्ज स्वर में बोलता है।
२. कुक्कुट ऋषभ स्वर में बोलता है।
३. हंस गान्धार स्वर में बोलता है।
४. गवेलक (भेड़) मध्यम स्वर में बोलता है।
५. कोयल वसन्त ऋतु में पंचम स्वर में बोलता है।
६. क्रौञ्च और सारस धैवत स्वर में बोलते हैं।
७. हाथी निषाद स्वर में बोलता है (४१)।

४२—सत्त सरा अजीवणिस्सिता पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जं रवति मुइंगो, गोमुही रिसभं सरं।
संखो णदति गंधारं, मज्झिमं पुण झल्लरी॥१॥
चउचलणपतिट्ठाणा, गोहिया पंचमं सरं।
आडंबरो धेवतियं, महाभेरी य सत्तमं॥२॥

अजीव-निःसृत सात स्वर कहे गये हैं। जैसे—

१. मृदंग से षड्ज स्वर निकलता है।
२. गोमुखी से ऋषभ स्वर निकलता है।
३. शंख से गान्धार स्वर निकलता है।
४. झल्लरी से मध्यम स्वर निकलता है।
५. चार चरणों पर प्रतिष्ठित गोधिका से पंचम स्वर निकलता है।
६. ढोल से धैवत स्वर निकलता है।
महाभेरी से निषाद स्वर निकलता है (४२)।

४३—एतेसि णं सत्तण्हं सराणं सत्त सरलक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—

सज्जेण लभति वित्तिं, कतं च ण विणस्सति।
गावो मित्ता य पुत्ता य, णारीणं चेव वल्लभो ॥१॥
रिसभेण उ एसज्जं, सेणावच्चं धणाणि य।
वत्थगंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य ॥२॥
गंधारे गीतजुत्तिण्णा, वज्जवित्ती कलाहिया।
भवंति कइणो पण्णा, जे अण्णे सत्थपारगा ॥३॥
मज्झिमसरसंपण्णा, भवंति सुहजीविणो।
खायती पियती देती, मज्झिमसरमस्सितो ॥४॥
पंचमसरसंपण्णा, भवंति पुढवीपती।
सूरा संगहकत्तारो अणेगगणणायगा ॥५॥
धेवतसरसंपण्णा, भवंति कलहप्पिया।
'साउणिया वग्गुरिया, सोयरिया मच्छबंधा य' ॥६॥
'चंडाला मुट्ठिया मेया, जे अण्णे पावकम्मिणो।
गोघातगा य जे चोरा, णेसायं सरमस्सिता' ॥७॥

इन सातों स्वरों के सात स्वर-लक्षण कहे गये हैं। जैसे—

१. षड्ज स्वर वाला मनुष्य आजीविका प्राप्त करता है, उसका प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता। उसके गाएं, मित्र और पुत्र होते हैं। वह स्त्रियों को प्रिय होता है।
२. ऋषभ स्वर वाला मनुष्य ऐश्वर्य, सेनापतित्व, धन, वस्त्र, गन्ध, आभूषण, स्त्री, शयन और आसन को प्राप्त करता है।
३. गान्धार स्वर वाला मनुष्य गाने में कुशल, वादित्र वृत्तिवाला, कलानिपुण, कवि, प्राज्ञ और अनेक शास्त्रों का पारगामी होता।
४. मध्यम स्वर से सम्पन्न पुरुष सुख से खाता, पीता, जीता और दान देता है।
५. पंचमस्वर वाला पुरुष भूमिपाल, शूर-वीर, संग्राहक और अनेक गणों का नायक होता है।
६. धैवत स्वर वाला पुरुष कलह-प्रिय, पक्षियों को मारने वाला (चिड़ीमार) हिरण, सूकर और मच्छी मारने वाला होता है।
७. निषाद स्वर वाला पुरुष चाण्डाल, वधिक, मुक्केबाज, गो-घातक, चोर और अनेक प्रकार के पाप करने वाला होता है (४३)।

४४—एतेसि णं सत्तण्हं सराणं तओ गामा पण्णत्ता, तं जहा—सज्जगामे, मज्झिमगामे गंधारगामे।

इन सातों स्वरों के तीन ग्राम कहे गये हैं। जैसे—

१. षड्जग्राम, २. मध्यमग्राम, ३. गान्धारग्राम (४४)।

४५—सज्जगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

मंगी कोरव्वीया, हरी य रयणी य सारकंता य।
छट्ठी य सारसी णाम, सुद्धसज्जा य सत्तमा ॥१॥

षड्जग्राम की आरोह-अवरोह, या उतार-चढ़ाव रूप सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं। जैसे—
१. मंगी, २. कौरवीया, ३. हरित्, ४. रजनी, ५. सारकान्ता, ६. सारसी,
७. शुद्ध षड्जा (४५)।

४६—**मज्झिमगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ तं जहा—**

उत्तरमंदा रयणी, उत्तरा उत्तरायता।
अस्सोकंता य सोवीरा, अभिरू हवति सत्तमा ॥१॥

मध्यम ग्राम की सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं। जैसे—
१. उत्तरमन्द्रा, २. रजनी, ३. उत्तरा, ४. उत्तरायता ५. अश्वक्रान्ता, ६. सौवीरा,
७. अभिरुद्-गता (४६)।

४७—**गंधारगामस्स णं सत्त मुच्छणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—**

णंदी य खुद्दिमा पूरिमा, य चउत्थी य सुद्धगंधारा।
उत्तरगंधारावि य, पंचमिया हवति मुच्छा उ ॥१॥
सुट्ठुत्तरमायामा, सा छट्ठी णियमसो उ णायव्वा।
अह उत्तरायता, कोडिमा य सा सत्तमी मुच्छा ॥२॥

गान्धार ग्राम की सात मूर्च्छनाएं कही गई हैं। जैसे—
१. नन्दी. २. क्षुद्रिका, ३. पूरका, ४. शुद्धगान्धारा, ५. उत्तरगान्धारा, ६. सुष्ठुतर आयामा
७. उत्तरायता कोटिमा (४७)।

४८— **सत्त सरा कतो संभवंति? गीतस्स का भवति जोणी?**
कतिसमया उस्सासा? कति वा गीतस्स आगारा? ॥१॥
सत्त सरा णाभीतो, भवंति गीतं च रुण्णजोणीयं।
पदसमया ऊसासा, तिण्णि य गीयस्स आगारा ॥२॥
आइमिउ आरभंता, समुव्वहंता य मज्झगारंमि।
अवसाणे य झवेंता, तिण्णि य गेयस्स आगारा ॥३॥
छद्दोसे अट्ठगुणे, तिण्णि य वित्ताइं दो य भणितीओ।
जो णाहिति सो गाहिइ, सुसिक्खिओ रंगमज्झम्मि ॥४॥
भीतं दुतं रहस्सं, गायंतो मा य गाहि उत्तालं।
काकस्सरमणुणासं, च होंति गेयस्स छद्दोसा ॥५॥
पुण्णं रत्तं च अलंकियं च वत्तं तहा अविघुट्ठं।
मधुरं समं सुललियं, अट्ठ गुणा होंति गेयस्स ॥६॥
उर-कंठ-सिर-विसुद्धं, च गिज्जते मउय-रिभिअ-पदबद्धं।
समतालपदुक्खेवं, सत्तसरसीहरं गेयं ॥७॥
णिद्दोसं सारवंतं च, हेउजुत्तमलंकियं।
उवणीतं सोवयारं च, मितं मधुरमेव य ॥८॥

समसद्धसमं चेव, सव्वत्थ विसमं च जं।
तिण्णि वित्तप्पयाराइं, चउत्थं णोपलब्भती ॥९॥

सक्कता पागता चेव, दोण्णि य भणिति आहिया।
सरमंडलंमि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिता ॥१०॥

केसी गायति मधुरं ? केसी गायति खरं च रुक्खं च ?
केसी गायति चउरं ? केसि विलंबं ? दुतं केसी ?
विस्सरं पुण केरिसी ? ॥११॥

सामा गायइ मधुरं, काली गायइ खरं च रुक्खं च।
गोरी गायति चउरं, काण विलंबं दुतं अंधा॥
विस्सरं पुण पिंगला ॥१२॥

तंतिसमं तालसमं, पादसमं लयसमं गहसमं च।
णीससिऊससियसमं संचारसमा सरा सत्त ॥१३॥

सत्त सरा तओ गामा, मुच्छणा एकविंसती।
ताणा एगूणपण्णासा, समत्तं सरमंडलं ॥१४॥

(१) प्रश्न—सातों स्वर किससे उत्पन्न होते हैं ? गीत की योनि क्या है ? उसका उच्छ्वास-काल कितने समय का है ? और गति के आकार कितने होते हैं।

(२-३) उत्तर—सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं। रुदन गेय की योनि है। जितने समय में किसी छन्द का एक चरण गाया जाता है, उतना उसका उच्छ्वासकाल होता है। गीत के तीन आकार होते हैं—आदि में मृदु, मध्य में तीव्र और *अन्त में मन्द।*

(४) गीत के छह दोष, आठ गुण, तीन वृत्त, और दो भणितियां होती हैं। जो इन्हें जानता है, वही सुशिक्षित व्यक्ति रंगमंच पर गा सकता है।

(५) गीत के छह दोष इस प्रकार हैं—

१. भीत दोष—डरते हुए गाना।
२. द्रुत दोष—शीघ्रता से गाना।
३. ह्रस्व दोष—शब्दों को लघु बना कर गाना।
४. उत्ताल दोष—ताल के अनुसार न गाना।
५. काकस्वर दोष—काक के समान कर्ण-कटु स्वर से गाना।
६. अनुनास दोष—नाक के स्वरों से गाना।

(६) गीत के आठ गुण इस प्रकार हैं—

१. पूर्ण गुण—स्वर के आरोह-अवरोह आदि से परिपूर्ण गाना।
२. रक्त गुण—गाये जाने वाले राग से परिष्कृत गाना।
३. अलंकृत कुण—विभिन्न स्वरों से सुशोभित गाना।
४. व्यक्त गुण—स्पष्ट स्वर से गाना।
५. अविघुष्ट गुण—नियत या नियमित स्वर से गाना।
६. मधुर गुण—मधुर स्वर से गाना।

७. समगुण—ताल, वीणा आदि का अनुसरण करते हुए गाना।

८. सुकुमार गुण—ललित, कोमल लय से गाना।

(७) गीत के ये आठ गुण और भी होते हैं—

१. उरोविशुद्ध—जो स्वर उर:स्थल में विशाल होता है।

२. कण्ठविशुद्ध—जो स्वर कण्ठ में नहीं फटता।

३. शिरोविशुद्ध—जो स्वर शिर से उत्पन्न होकर भी नासिका से मिश्रित नहीं होता।

४. मृदु—जो राग कोमल स्वर से गाया जाता है।

५. रिभित—घोलना-बहुल आलाप के कारण खेल सा करता हुआ स्वर।

६. पद-बद्ध—गेय पदों से निबद्ध रचना।

७. समताल पदोत्क्षेप—जिसमें ताल, झांझ आदि का शब्द और नर्त्तक का पाद-निक्षेप, ये सब सम हों, अर्थात् एक दूसरे से मिलते हों।

८. सप्तस्वरसीभर—जिसमें सातों स्वर तंत्री आदि के सम हों।

(८) गेय पदों के आठ गुण इस प्रकार हैं—

१. निर्दोष—बत्तीस दोष-रहित होना।

२. सारवन्त—सारभूत अर्थ से युक्त होना।

३. हेतुयुक्त—अर्थ-साधक हेतु से संयुक्त होना।

४. अलंकृत—काव्य-गत अलंकारों से युक्त होना।

५. उपनीत—उपसंहार से युक्त होना।

६. सोपचार—कोमल, अविरुद्ध और अलज्जनीय अर्थ का प्रतिपादन करना, अथवा व्यंग्य या हंसी से संयुक्त होना।

७. मित—अल्प पद और अल्प अक्षर वाला होना।

८. मधुर—शब्द, अर्थ और प्रतिपादन की अपेक्षा प्रिय होना।

(९) वृत्त—छन्द तीन प्रकार के होते हैं—

१. सम—जिसमें चरण और अक्षर सम हों, अर्थात् चार चरण हों और उनमें गुरु-लघु अक्षर भी समान हों अथवा जिसके चारों चरण सरीखे हों।

२. अर्धसम—जिसमें चरण या अक्षरों में से कोई एक सम हो, या विषम चरण होने पर भी उनमें गुरु-लघु अक्षर समान हों। अथवा जिसके प्रथम और तृतीय चरण तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण समान हों।

३. सर्वविषम—जिसमें चरण और अक्षर सब विषम हों। अथवा जिसके चारों चरण विषम हों।

इनके अतिरिक्त चौथा प्रकार नहीं पाया जाता।

(१०) भणिति—गीत की भाषा दो प्रकार की कही गई है—संस्कृत और प्राकृत। ये दोनों प्रशस्त और ऋषि-भाषित हैं और स्वर-मण्डल में गाई जाती हैं।

(११) प्रश्न—मधुर गीत कौन गाती है? परुष और रूक्ष कौन गाती है? चतुर गीत कौन गाती है? विलम्ब गीत कौन गाती है? द्रुत (शीघ्र) गीत कौन गाती है? तथा विस्वर गीत कौन गाती है?

(१२) उत्तर—श्यामा स्त्री मधुर गीत गाती है। काली स्त्री खर (परुष) और रूक्ष गाती है। केशी स्त्री चतुर गीत गाती है। काणी स्त्री विलम्ब गीत गाती है। अन्धी स्त्री द्रुत गीत गाती है और पिंगला स्त्री विस्वर गीत गाती है।

(१३) सप्तस्वर सीभर की व्याख्या इस प्रकार है—

१. तंत्रीसम—तंत्री-स्वरों के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।

२. तालसम—ताल-वादन के साथ-साथ गाया जाने वाला गीत।

३. पादसम—स्वर के अनुकूल निर्मित गेयपद के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

४. लयसम—वीणा आदि को आहत करने पर जो लय उत्पन्न होती है, उसके अनुसार गाया जाने वाला गीत।

५. ग्रहसम—वीणा आदि के द्वारा जो स्वर पकड़े जाते हैं, उसी के अनुसार गाया जाने वाला गीत।

६. निःश्वसितोच्छ्वसित सम—सांस लेने और छोड़ने के क्रमानुसार गाया जाने वाला गीत।

७. संचारसम—सितार आदि के साथ गाया जाने वाला गीत।

इस प्रकार गीत स्वर तंत्री आदि के साथ सम्बन्धित होकर सात प्रकार का हो जाता है।

(१४) उपसंहार—इस प्रकार सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनाएं होती हैं। प्रत्येक स्वर सात तानों से गाया जाता है, इसलिए उनके (७ × ७ =) ४९ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार स्वर-मण्डल का वर्णन समाप्त हुआ। (४८)

कायक्लेश-सूत्र

४९—सत्तविधे कायकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—ठाणातिए, उक्कुडुयासणिए, पडिमठाई, वीरासणिए, णेसज्जिए, दंडायतिए, लगंडसाई।

कायक्लेश तप सात प्रकार का कहा गया है। जैसे

१. स्थानायतिक—खड़े होकर कायोत्सर्ग में स्थिर होना।

२. उत्कुटुकासन—दोनों पैरों को भूमि पर टिकाकर उकड़ूं बैठना।

३. प्रतिमास्थायी—भिक्षु प्रतिमा की विभिन्न मुद्राओं में स्थित रहना।

४. वीरासनिक—सिंहासन पर बैठने के समान दोनों घुटनों पर हाथ रख कर अवस्थित होना अथवा सिंहासन पर बैठकर उसे हटा देने पर जो आसन रहता है वह वीरासन है। इस आसन वाला वीरासनिक है।

५. नैषद्यिक—पालथी मार कर स्थिर हो स्वाध्याय करने की मुद्रा में बैठना।

६. दण्डायतिक—डण्डे के समान सीधे चित्त लेट कर दोनों हाथों और पैरों को सटा कर अवस्थित रहना।

७. लगंडशायी—भूमि पर सीधे लेट कर लकुट के समान एड़ियों और शिर को भूमि से लगा कर पीठ आदि मध्यवर्त्ती भाग को ऊपर उठाये रखना।

विवेचन—परीषह और उपसर्गादि को सहने की सामर्थ्य-वृद्धि के लिए जो शारीरिक कष्ट सहन किये जाते हैं, वे सब कायक्लेशतप के अन्तर्गत हैं । ग्रीष्म में सूर्य-आतापना लेना, शीतकाल में वस्त्रविहीन रहना और डाँस-मच्छरों के काटने पर भी शरीर को न खुजाना आदि भी इसी तप के अन्तर्गत जानना चाहिए ।

क्षेत्र-पर्वत-नदी-सूत्र

५०—जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे, महाविदेहे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं । जैसे—

१. भरत २. ऐरवत, ३. हैमवत, ४. हैरण्यवत, ५. हरिवर्ष, ६. रम्यक वर्ष, ७. महाविदेह (५०)।

५१—जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते, महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी, मंदरे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं । जैसे—

१. क्षुद्रहिमवान्, २. महाहिमवान्, ३. निषध, ४, नीलवान्, ५., रुक्मी ६. शिखरी, ७. मन्दर (सुमेरु पर्वत) (५१) ।

५२—जंबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा, रोहिता, हरी, सीता, णरकंता, सुवण्णकूला, रत्ता ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात महानदियां पूर्वाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र में मिलती हैं । जैसे—

१. गंगा, २. रोहिता, ३. हरित, ४. सीता, ५. नरकान्ता, ६. सुवर्णकूला, ७. रक्ता (५२) ।

५३—जंबुद्दीवे दीवे सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—सिंधू, रोहितंसा, हरिकंता, सीतोदा, णारिकंता, रुप्पकूला, रत्तावती ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सात महानदियां पश्चिमाभिमुख होती हुई लवण-समुद्र में मिलती हैं । जैसे—

१. सिन्धु, २, रोहितांशा, ३. हरिकान्ता, ४. सीतोदा, ५. नारीकान्ता, ६. रूप्यकूला, ७. रक्तवती (५३) ।

५४—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, (एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवासे, रम्मगवासे), महाविदेहे ।

धातकीषण्डद्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्ष (क्षेत्र) कहे गये हैं । जैसे—

१. भरत, २. ऐरवत, ३. हैमवत, ४. हैरण्यवत, ५. हरिवर्ष, ६. रम्यक वर्ष, ७. महाविदेह (५४) ।

५५—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासहरपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते, (महाहिमवंते, णिसढे, णीलवंते, रुप्पी, सिहरी), मंदरे ।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्षधर पर्वत कहे गये हैं। जैसे—

१. क्षुद्रहिमवान्, २. महाहिमवान्, ३. निषध, ४. नीलवान्, ५. रुक्मी ६. शिखरी, ७. मन्दर। (५५)

५६—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महाणदीओ पुरत्थाभिमुहीओ कालोयसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा, (रोहिता, हरी, सीता, णरकंता, सुवण्णकूला), रत्ता।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात महानदियां पूर्वाभिमुख होती हुई कालोदसमुद्र में मिलती हैं। जैसे—

१. गंगा, २. रोहिता, ३. हरित्, ४. सीता, ५. नरकान्ता, ६. सुवर्णकूला ७. रक्ता। (५६)

५७—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं सत्त महाणदीओ पच्चत्थाभिमुहीओ लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—सिंधू, (रोहितंसा, हरिकंता, सीतोदा, णारिकंता, रुप्पकूला), रत्तावती।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में सात महानदियां पश्चिमाभिमुख होती हुई लवणसमुद्र में मिलती हैं। जैसे—

१. सिन्धु, २. रोहितांशा, ३. हरिकान्ता, ४. सीतोदा, ५. नारीकान्ता, ६. रूप्यकूला ७. रक्तवती। (५७)

५८—धायइसंडदीवे पच्चत्थिमद्धे णं सत्त वासा एवं चेव, णवरं—पुरत्थाभिमुहीओ लवण-समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं। सेसं तं चेव।

धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध में सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात महानदियां इसी प्रकार-धातकीखण्ड के पूर्वार्ध के समान ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि पूर्वाभिमुखी नदियां लवण समुद्र में और पश्चिमाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में मिलती हैं। शेष सर्व वर्णन वही है (५८)।

५९—पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे णं सत्त वासा तहेव, नवरं—पुरत्थाभिमुहीओ पुक्खरोदं समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति। सेसं तं चेव।

पुष्करवर-द्वीप के पूर्वार्ध में सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत, और सात महानदियां तथैव हैं, अर्थात् धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध के समान ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि पूर्वाभिमुखी नदियां पुष्करोदसमुद्र में और पश्चिमाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में मिलती हैं (५९)।

६०—एवं पच्चत्थिमद्धे वि नवरं—पुरत्थाभिमुहीओ कालोदं समुद्दं समप्पेंति, पच्चत्थाभि-मुहीओ पुक्खरोदं समप्पेंति। सवत्थ वासा वासहरपव्वता णदीओ य भाणितव्वाणि।

इसी प्रकार अर्धपुष्करवर द्वीप के पश्चिमार्ध में सात वर्ष, सात वर्षधर पर्वत और सात महानदियां धातकीषण्ड द्वीप के पश्चिमार्ध के समान ही हैं। अन्तर केवल इतना है कि पूर्वाभिमुखी नदियां कालोद समुद्र में और पश्चिमाभिमुखी नदियां पुष्करोद समुद्र में जा कर मिलती हैं। (६०)

कुलकर-सूत्र

६१—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे ।
विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारत वर्ष में अतीत उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर हुए । जैसे—
१. मित्रदामा, २. सुदामा, ३. सुपार्श्व, ४. स्वयंप्रभ, ५. विमलघोष, ६. सुघोष, ७. महाघोष (६१) ।

६२—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा हुत्था—

पढमित्थ विमलवाहण, चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे ।
तत्तो य पसेणइए, मरुदेवे चेव णाभी य ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में इस अवसर्पिणी में सात कुलकर हुए हैं । जैसे—
१. विमलवाहन, २. चक्षुष्मान्, ३. यशस्वी, ४. अभिचन्द्र, ५. प्रसेनजित्, ६. मरुदेव, ७. नाभि (६२) ।

६३—एएसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारियाओ हुत्था, तं जहा—

चंदजस चंदकंता, सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य ।
सिरिकंता मरुदेवी, कुलकरइत्थीण णामाइं ॥१॥

इन सातों कुलकरों की सात भार्याएं थीं । जैसे—
१. चन्द्रयशा, २. चन्द्रकान्ता, ३. सुरूपा, ४. प्रतिरूपा, ५. चक्षुष्कान्ता, ६. श्रीकान्ता, ७. मरुदेवी (६३) ।

६४—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलकरा भविस्संति—

मित्तवाहण सुभोमे य, सुप्पभे य सयंपभे ।
दत्ते सुहुमे सुबंधू य, आगमिस्सेण होक्खती ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी काल में सात कुलकर होंगे । जैसे—
१. मित्रवाहन, २. सुभौम, ३. सुप्रभ. ४. स्वयम्प्रभ, ५. दत्त, ६. सूक्ष्म, ७. सुबन्धु (६४) ।

६५—विमलवाहणे णं कुलकरे सत्तविधा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छिसु, तं जहा—

मतंगया य भिंगा, चित्तंगा चेव होंति चित्तरसा ।
मणियंगा य अणियणा, सत्तमगा कप्परुक्खा य ॥१॥

विमलवाहन कुलकर में समय के सात प्रकार के (कल्प-) वृक्ष निरन्तर उपभोग में आते थे । जैसे—

१. मदांगक, २. भृंग, ३. चित्रांग, ४. चित्ररस, ५. मण्यंग, ६. अनग्नक, ७. कल्पवृक्ष । (६५)

६६—सत्तविधा दंडनीती पण्णत्ता, तं जहा—हक्कारे, मक्कारे, धिक्कारे, परिभासे, मंडलबंधे, चारए, छविच्छेदे ।

दण्ड नीति सात प्रकार की कही गई है । जैसे—
१. हाकार—हा ! तूने यह क्या किया ?

२. माकार—आगे ऐसा मत करना।
३. धिक्कार—धिक्कार है तुझे ! तूने ऐसा किया ?
४. परिभाष—अल्प काल के लिए नजर-कैद रखने का आदेश देना।
५. मण्डलबन्ध—नियत क्षेत्र से बाहर न जाने का आदेश देना।
६. चारक—जेलखाने में बन्द रखने का आदेश देना।
७. छविच्छेद—हाथ-पैर आदि शरीर के अंग काटने का आदेश देना।

विवेचन—उक्त सात दण्डनीतियों में से पहली दण्डनीति का प्रयोग पहले और दूसरे कुलकर ने किया। इसके पूर्व सभी मनुष्य अकर्मभूमि या भोगभूमि में जीवन-यापन करते थे। उस समय युगल-धर्म चल रहा था। पुत्र-पुत्री एक साथ उत्पन्न होते, युवावस्था में वे दाम्पत्य जीवन बिताते और मरते समय युगल-सन्तान को उत्पन्न करके कालगत हो जाते थे। प्रथम कुलकर के समय में उक्त व्यवस्था में कुछ अन्तर पड़ा और सन्तान-प्रसव करने के बाद भी वे जीवित रहने लगे और भोगोप-के साधन घटने लगे। उस समय पारस्परिक संघर्ष दूर करने के लिए लोगों की भूमि-सीमा बांधी गई और उसमें वृक्षों से उत्पन्न फलादि खाने की व्यवस्था की गई। किन्तु काल के प्रभाव से जब वृक्षों में भी फल-प्रदान-शक्ति घटने लगी और एक युगल दूसरे युगल की भूमि-सीमा में प्रवेश कर फलादि तोड़ने और खाने लगे, तब अपराधी व्यक्तियों को कुलकरों के सम्मुख लाया जाने लगा। उस समय लोग इतने सरल और सीधे थे कि कुलकर द्वारा 'हा' (हाय, तुमने क्या किया ?) इतना मात्र कह देने पर आगे अपराध नहीं करते थे। इस प्रकार प्रथम दण्डनीति दूसरे कुलकर के समय तक चली।

किन्तु काल के प्रभाव से जब अपराध पर अपराध करने की प्रवृत्ति बढ़ी तो तीसरे-चौथे कुलकर ने 'हा' के साथ 'मा' दण्डनीति जारी की। पीछे जब और भी अपराधप्रवृत्ति बढ़ी तब पांचवें कुलकर ने 'हा, मा' के साथ 'धिक्' दण्डनीति जारी की। इस प्रकार स्वल्प अपराध के लिए 'हा', उससे बड़े अपराध के लिए 'मा' और उससे बड़े अपराध के लिए 'धिक्' दण्डनीति का प्रचार अन्तिम कुलकर के समय तक रहा।

जब कुलकर-युग समाप्त हो गया और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ—तब इन्द्र ने भ० ऋषभदेव का राज्याभिषेक किया और लोगों को उनकी आज्ञा में चलने का आदेश दिया। भ० ऋषभदेव के समय में जब अपराधप्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ने लगी, तब उन्होंने चौथी परिभाष और पांचवीं मण्डल-बन्ध दण्डनीति का उपयोग किया।

तदनन्तर अपराध-प्रवृत्तियों की उग्रता बढ़ने पर भरत चक्रवर्ती ने अन्तिम चारक और छविच्छेद इन दो दण्डनीतियों का प्रयोग करने का विधान किया।

कुछ आचार्यों का मत है कि भ० ऋषभदेव ने तो कर्मभूमि की ही व्यवस्था की। अन्तिम चारों दण्डनीतियों का विधान भरत चक्रवर्ती ने किया है। इस विषय में विभिन्न आचार्यों के विभिन्न अभिमत हैं।

चक्रवर्ति-रत्न-सूत्र

६७—एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त एगिंदियरतणा पण्णत्ता, तं जहा—चक्क-रयणे, छत्तरयणे, चम्मरयणे, दंडरयणे, असिरयणे, मणिरयणे, काकणिरयणे।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात एकेन्द्रिय रत्न कहे गये हैं। जैसे—
१. चक्ररत्न, २. छत्ररत्न, ३. चर्मरत्न, ४. दण्डरत्न, ५. असिरत्न, ६. मणिरत्न
७. काकणीरत्न (६७)।

६८—एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त पंचिंदियरतणा पण्णत्ता, तं जहा— सेणावतिरयणे, गाहावतिरयणे, वड्ढइरयणे, पुरोहितरयणे, इत्थिरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात पंचेन्द्रिय रत्न कहे गये हैं। जैसे—
१. सेनापतिरत्न, २. गृहपतिरत्न, ३. वर्धकीरत्न, ४. पुरोहितरत्न, ५. स्त्रीरत्न
६. अश्वरत्न ७. हस्तिरत्न (६८)।

विवेचन—उपर्युक्त दो सूत्रों में चक्रवर्ती के १४ रत्नों का नाम-निर्देश किया गया है। उनमें से प्रथम सूत्र में सात एकेन्द्रिय रत्नों के नाम हैं। चक्र, छत्र आदि एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक जीवों के द्वारा छोड़े गये काय से निर्मित हैं, अतः उन्हें एकेन्द्रिय कहा गया है। तिलोय-पण्णत्ति में चक्रादि सात रत्नों को अचेतन और सेनापति आदि को सचेतन रत्न कहा गया है।[1] किसी उत्कृष्ट या सर्वश्रेष्ठ वस्तु को रत्न कहा जाता है। चक्रवर्ती के ये सभी वस्तुएं अपनी-अपनी जाति में सर्वश्रेष्ठ होती हैं।

प्रवचनसारोद्धार में एकेन्द्रिय रत्नों का प्रमाण भी बताया गया है—चक्र, छत्र और दण्ड व्याम-प्रमाण हैं। अर्थात् तिरछे फैलाये हुए दोनों हाथों की अंगुलियों के अन्तराल जितने बड़े होते हैं। चर्मरत्न दो हाथ लम्बा होता है। असि (खड्ग) बत्तीस अंगुल का, मणि चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है। काकणीरत्न की लम्बाई चार अंगुल होती है। रत्नों का यह माप प्रत्येक चक्रवर्ती के अपने-अपने अंगुल से जानना चाहिये।

६. वर्धकीरत्न—यह सभी बढ़ई, मिस्त्री या कारीगरों का प्रधान, गृहनिर्माण में कुशल, नदियों को पार करने के लिए पुल-निर्माणादि करने वाला श्रेष्ठ अभियन्ता (इंजिनीयर) होता है।

७. स्त्रीरत्न—यह चक्रवर्ती के विशाल अन्तःपुर में सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य वाली चक्रवर्ती की सर्वाधिक प्राणवल्लभा पट्टरानी होती है।

८. चक्ररत्न—यह सभी आयुधों में श्रेष्ठ और अदम्य शत्रुओं को भी दमन करने वाला आयुधरत्न है।

९. छत्ररत्न—यह सामान्य या साधारण काल में यथोचित प्रमाणवाला चक्रवर्ती के ऊपर छाया करने वाला होता है। किन्तु अकस्मात् वर्षाकाल होने पर युद्धार्थ गमन करने वाले बारह योजन लम्बे चौड़े सारे स्कन्धावार के ऊपर फैलकर धूप और हवा-पानी से सब की रक्षा करता है।

१०. चर्मरत्न—प्रवास काल में बारह योजन लम्बे-चौड़े छत्र के नीचे प्रातःकाल बोये गये शालि-धान्य के बीजों को मध्याह्न में उपभोग योग्य बना देने में यह समर्थ होता है।

११. मणिरत्न—यह तीन कोण और छह अंश वाला मणि प्रवास या युद्ध काल में रात्रि के समय चक्रवर्ती के सारे कटक में प्रकाश करता है। तथा वैताढ्यगिरि की तमिस्र और खंडप्रपात गुफाओं से निकलते समय हाथी के शिर के दाहिनी ओर बांध देने पर सारी गुफाओं में प्रकाश करता है।

११. काकिणीरत्न—यह आठ सौवर्णिक-प्रमाण, चारों ओर से सम होता है। तथा सर्व प्रकार के विषों का प्रभाव दूर करता है।

१३. खड्गरत्न—यह अप्रतिहत शक्ति और अमोघ प्रहार वाला होता है।

१४. दण्डरत्न—यह वज्रमय दण्ड शत्रु-सैन्य का मर्दन करने वाला, विषम भूमि को सम करने वाला और सर्वत्र शान्ति स्थापित करने वाला रत्न है। तिलोयपण्णत्ति में चेतन रत्नों के नाम इस प्रकार से उपलब्ध हैं—

१. अश्वरत्न—पवनंजय। २. गजरत्न—विजयगिरि। ३. गृहपतिरत्न—भद्रमुख। ४. स्थपति (वर्धकि) रत्न—कामवृष्टि। ५. सेनापतिरत्न—अयोध्य। ६. स्त्रीरत्न—सुभद्रा। ७. पुरोहित रत्न—बुद्धिरत्न।

दुःषमा-लक्षण-सूत्र

६९—सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा—अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाधू पुज्जंति, साधू ण पुज्जंति, गुरूहिं जणो मिच्छं पडिवण्णो, मणोदुहता, वइदुहता।

सात लक्षणों से दुःषमा काल का आना या प्रकर्ष को प्राप्त होना जाना जाता है। जैसे—

१. अकाल में वर्षा होने से।
२. समय पर वर्षा न होने से।
३. असाधुओं की पूजा होने से।
४. साधुओं की पूजा न होने से।
५. गुरुजनों के प्रति लोगों का असद् व्यवहार होने से।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात एकेन्द्रिय रत्न कहे गये हैं। जैसे—
१. चक्ररत्न, २. छत्ररत्न, ३. चर्मरत्न, ४. दण्डरत्न, ५. असिरत्न, ६. मणिरत्न
७. काकणीरत्न (६७)।

६८—एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स सत्त पंचिंदियरतणा पण्णत्ता, तं जहा— सेणावतिरयणे, गाहावतिरयणे, वड्ढइरयणे, पुरोहितरयणे, इत्थिरयणे, आसरयणे, हत्थिरयणे।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के सात पंचेन्द्रिय रत्न कहे गये हैं। जैसे—
१. सेनापतिरत्न, २. गृहपतिरत्न, ३. वर्धकीरत्न, ४. पुरोहितरत्न, ५. स्त्रीरत्न
६. अश्वरत्न ७. हस्तिरत्न (६८)।

विवेचन—उपर्युक्त दो सूत्रों में चक्रवर्ती के १४ रत्नों का नाम-निर्देश किया गया है। उनमें से प्रथम सूत्र में सात एकेन्द्रिय रत्नों के नाम हैं। चक्र, छत्र आदि एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक जीवों के द्वारा छोड़ गये काय से निर्मित हैं, अतः उन्हें एकेन्द्रिय कहा गया है। तिलोय-पण्णत्ति में चक्रादि सात रत्नों को अचेतन और सेनापति आदि को सचेतन रत्न कहा गया है।[1] किसी उत्कृष्ट या सर्वश्रेष्ठ वस्तु को रत्न कहा जाता है। चक्रवर्ती के ये सभी वस्तुएं अपनी-अपनी जाति में सर्वश्रेष्ठ होती हैं।

प्रवचनसारोद्धार में एकेन्द्रिय रत्नों का प्रमाण भी बताया गया है—चक्र, छत्र और दण्ड व्याम-प्रमाण हैं। अर्थात् तिरछे फैलाये हुए दोनों हाथों की अंगुलियों के अन्तराल जितने बड़े होते हैं। चर्मरत्न दो हाथ लम्बा होता है। असि (खड्ग) बत्तीस अंगुल का, मणि चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है। काकणीरत्न की लम्बाई चार अंगुल होती है। रत्नों का यह माप प्रत्येक चक्रवर्ती के अपने-अपने अंगुल से जानना चाहिये।

चक्र, छत्र, दण्ड और असि, इन चार रत्नों की उत्पत्ति चक्रवर्ती की आयुध-शाला में, तथा चर्म, मणि, और काकणी रत्न की उत्पत्ति चक्रवर्ती के श्रीगृह में होती है। सेनापति, गृहपति, वर्धकी और पुरोहित इन पुरुषरत्नों की उत्पत्ति चक्रवर्ती की राजधानी में होती है। अश्व और हस्ती इन दो पंचेन्द्रिय तिर्यंच रत्नों की उत्पत्ति वैताढ्य (विजयार्ध) गिरि की उपत्यकाभूमि (तलहटी) में होती है। स्त्रीरत्न की उत्पत्ति वैताढ्य पर्वत की उत्तर दिशा में अवस्थित विद्याधर श्रेणी में होती है।

१. सेनापतिरत्न—यह चक्रवर्ती का प्रधान सेनापति है जो सभी मनुष्यों को जीतने वाला और अपराजेय होता है।
२. गृहपतिरत्न—यह चक्रवर्ती के गृह की सदा सर्वप्रकार से व्यवस्था करता है और उनके घर के भण्डार को सदा धन-धान्य से भरा-पूरा रखता है।
३. पुरोहितरत्न—यह राज-पुरोहित चक्रवर्ती के शान्ति-कर्म आदि कार्यों को करता है, तथा युद्ध के लिए प्रयाण-काल आदि को बतलाता है।
४. हस्तिरत्न—यह चक्रवर्ती की गजशाला का सर्वश्रेष्ठ हाथी होता है और सभी मांगलिक अवसरों पर चक्रवर्ती इसी पर सवार होकर निकलता है।
५. अश्वरत्न—यह चक्रवर्ती की अश्वशाला का सर्वश्रेष्ठ अश्व होता है और युद्ध या अन्यत्र लम्बे दूर जाने में चक्रवर्ती इसका उपयोग करता है।

---

१. चोद्दस वररयणाइं जीवाजीवप्पभेददुविहाइं। (तिलोयपण्णत्ती. अ० ४. गा. १३६७)

६. वर्धकीरत्न—यह सभी बढ़ई, मिस्त्री या कारीगरों का प्रधान, गृहनिर्माण में कुशल, नदियों को पार करने के लिए पुल-निर्माणादि करने वाला श्रेष्ठ अभियन्ता (इंजिनीयर) होता है।
७. स्त्रीरत्न—यह चक्रवर्ती के विशाल अन्तःपुर में सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य वाली चक्रवर्ती की सर्वाधिक प्राणवल्लभा पट्टरानी होती है।
८. चक्ररत्न—यह सभी आयुधों में श्रेष्ठ और अदम्य शत्रुओं को भी दमन करने वाला आयुधरत्न है।
९. छत्ररत्न—यह सामान्य या साधारण काल में यथोचित प्रमाणवाला चक्रवर्ती के ऊपर छाया करने वाला होता है। किन्तु अकस्मात् वर्षाकाल होने पर युद्धार्थ गमन करने वाले बारह योजन लम्बे चौड़े सारे स्कन्धावार के ऊपर फैलकर धूप और हवा-पानी से सब की रक्षा करता है।
१०. चर्मरत्न—प्रवास काल में बारह योजन लम्बे-चौड़े छत्र के नीचे प्रातःकाल बोये गये शालि-धान्य के बीजों को मध्याह्न में उपभोग योग्य बना देने में यह समर्थ होता है।
११. मणिरत्न—यह तीन कोण और छह अंश वाला मणि प्रवास या युद्ध काल में रात्रि के समय चक्रवर्ती के सारे कटक में प्रकाश करता है। तथा वैताढ्यगिरि की तमिस्र और खंडप्रपात गुफाओं से निकलते समय हाथी के शिर के दाहिनी ओर बांध देने पर सारी गुफाओं में प्रकाश करता है।
११. काकिणीरत्न—यह आठ सौवर्णिक-प्रमाण, चारों ओर से सम होता है। तथा सर्व प्रकार के विषों का प्रभाव दूर करता है।
१३. खड्गरत्न—यह अप्रतिहत शक्ति और अमोघ प्रहार वाला होता है।
१४. दण्डरत्न—यह वज्रमय दण्ड शत्रु-सैन्य का मर्दन करने वाला, विषम भूमि को सम करने वाला और सर्वत्र शान्ति स्थापित करने वाला रत्न है। तिलोयपण्णत्ति में चेतन रत्नों के नाम इस प्रकार से उपलब्ध हैं—

१. अश्वरत्न—पवनंजय। २. गजरत्न—विजयगिरि। ३. गृहपतिरत्न—भद्रमुख।
४. स्थपति (वर्धकि) रत्न—कामवृष्टि। ५. सेनापतिरत्न—अयोध्य। ६. स्त्रीरत्न—सुभद्रा।
७. पुरोहित रत्न—बुद्धिरत्न।

दुःषमा-लक्षण-सूत्र

६९—सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा—अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाधू पुज्जंति, साधू ण पुज्जंति, गुरूहिं जणो मिच्छं पडिवण्णो, मणोदुहता, वइदुहता।

सात लक्षणों से दुःषमा काल का आना या प्रकर्ष को प्राप्त होना जाना जाता है। जैसे—

१. अकाल में वर्षा होने से।
२. समय पर वर्षा न होने से।
३. असाधुओं की पूजा होने से।
४. साधुओं की पूजा न होने से।
५. गुरुजनों के प्रति लोगों का असद् व्यवहार होने से।

६. मन में दुःख या उद्वेग होने से।
७. वचन-व्यवहार संबंधी दुःख से (६९)।

सुषमा-लक्षण-सूत्र

७०—सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा—अकाले ण वरिसइ, काले वरिसइ, असाधू ण पुज्जंति, साधू पुज्जंति, गुरूहिं जणो सम्मं पडिवण्णो, मणोसुहता, वइसुहता।

सात लक्षणों से सुषमा काल का आना या प्रकर्षता को प्राप्त हो जाना जाता है। जैसे—
१. अकाल में वर्षा नहीं होने से।
२. समय पर वर्षा होने से।
३. असाधुओं की पूजा नहीं होने से।
४. साधुओं की पूजा होने से।
५. गुरुजनों के प्रति लोगों का सद्व्यवहार होने से।
६. मन में सुख का संचार होने से।
७. वचन-व्यवहार में सद्-भाव प्रकट होने से (७०)।

जीव-सूत्र

७१—सत्तविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, देवा, देवीओ।

संसार-समापन्नक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. नैरयिक, २. तिर्यग्योनिक, ३. तिर्यंचनी, ४. मनुष्य, ५. मनुष्यनी, ६. देव, ७. देवी (७१)।

आयुर्भेद-सूत्र

७२—सत्तविधे आउभेदे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

अज्झवसाण-णिमित्ते, आहारे वेयणा पराघाते।
फासे आणापाणू सत्तविधं भिज्जए आउं ॥१॥

आयुर्भेद (अकाल मरण) के सात कारण कहे गये हैं। जैसे—
१. राग, द्वेष, भय आदि भावों की तीव्रता से।
२. शस्त्राघात आदि के निमित्त से।
३. आहार की हीनाधिकता या निरोध से।
४. ज्वर, आतंक, रोग आदि की तीव्र वेदना से।
५. पर के आघात से, गड्ढे आदि में गिर जाने से।
६. सांप आदि के स्पर्श से—काटने से।
७. आन-पान—श्वासोच्छ्वास के निरोध से।

विवेचन—सप्तम स्थान के अनुरोध से यहां अकाल मरण के सात कारण वताये गये हैं। इनके अतिरिक्त, रक्त-क्षय से, संक्लेश की वृद्धि से, हिम-पात से, वज्र-पात से, अग्नि से, उल्कापात से, जल-प्रवाह से, गिरि और वृक्षादि से नीचे गिर पड़ने से भी अकाल में आयु का भेदन या विनाश हो जाता है।

जीव-सूत्र

७३—सत्तविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सतिकाइया, तसकाइया, अकाइया।

अहवा—सत्तविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—कण्हलेसा, (णीललेसा, काउलेसा, तेउलेसा, पम्हलेसा), सुक्कलेसा, अलेसा।

सर्व जीव सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथिवीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक ५. वनस्पतिकायिक, ६. त्रसकायिक ७. अकायिक (७३)।

अथवा—सर्व जीव सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कृष्णलेश्या वाले, २. नील लेश्या वाले, ३. कापोत लेश्या वाले, ४. तेजो लेश्या वाले, ५. पद्म लेश्या वाले, ६. शुक्ल लेश्या वाले, ७. अलेश्य।

ब्रह्मदत्त-सूत्र

७४—बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्त धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सत्त य वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा अधेसत्तमाए पुढवीए अप्पतिट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णे।

चातुरन्त चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्त सात धनुष ऊंचे थे। वे सात सौ वर्ष की उत्कृष्ट आयु का पालन कर काल-मास में काल कर नीचे सातवीं पृथिवी के अप्रतिष्ठान नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुए (७४)।

मल्ली-प्रव्रज्या-सूत्र

७५—मल्ली णं अरहा अप्पसत्तमे मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, तं जहा—मल्ली विदेहरायवरकण्णगा, पडिबुद्धी इक्खागराया, चंदच्छाये अंगराया, रुप्पी कुणालाधिपती, संखे कासीराया, अदीणसत्तू कुरुराया, जितसत्तू पंचालराया।

मल्ली अर्हन् अपने सहित सात राजाओं के साथ मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए। जैसे—

१. विदेहराज की वरकन्या मल्ली।
२. साकेत-निवासी इक्ष्वाकुराज प्रतिबुद्धि।
३. अंग जनपद का राजा चम्पानिवासी चन्द्रच्छाय।
४. कुणाल जनपद का राजा श्रावस्ती-निवासी रुक्मी।
५. काशी जनपद का राजा वाराणसी-निवासी शंख।
६. कुरु देश का राजा हस्तिनापुर-निवासी अदीनशत्रु।
७. पञ्चाल जनपद का राजा कम्पिल्लपुर-निवासी जितशत्रु (७५)।

दर्शन-सूत्र

७६—सत्तविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मद्दंसणे, मिच्छद्दंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे।

दर्शन सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. सम्यग्दर्शन—वस्तु के स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान।
२. मिथ्यादर्शन—वस्तु के स्वरूप का अयथार्थ श्रद्धान।
३. सम्यग्मिथ्यादर्शन—यथार्थ और अयथार्थ रूप मिश्र श्रद्धान।
४. चक्षुदर्शन—आंख से सामान्य प्रतिभास रूप अवलोकन।
५. अचक्षुदर्शन—आंख के सिवाय शेष इन्द्रियों एवं मन से होने वाला सामान्य प्रतिभास रूप अवलोकन।
६. अवधिदर्शन—अवधिज्ञान होने के पूर्व अवधिज्ञान के विषयभूत पदार्थ का सामान्य प्रतिभासरूप अवलोकन।
७. केवल दर्शन—समस्त पदार्थों के सामान्य धर्मों का अवलोकन (७६)।

छद्मस्थ-केवलि-सूत्र

७७—छउमत्थ-वीयरागे णं मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेदेति, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं, आउयं, णामं, गोतं, अंतराइयं।

छद्मस्थ वीतरागी (ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती) साधु मोहनीय कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मप्रकृतियों का वेदन करता है जैसे—

१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. आयुष्य, ५. नाम, ६. गोत्र, ७. अन्तराय (७७)।

७८—सत्त ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण याणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं।

एयाणि चेव उप्पण्णणाण (दंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं) जाणति पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, (अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं), गंधं।

छद्मस्थ जीव सात पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीररहित जीव, ५. परमाणु पुद्गल, ६. शब्द, ७. गन्ध।

जिनको केवलज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है वे अर्हन्, जिन, केवली इन पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते देखते हैं। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्त जीव, ५. परमाणुपुद्गल, ६. शब्द, ७. गन्ध (७८)।

महावीर-सूत्र

७६—समणे भगवं महावीरे वइरोसभणारायसंघयणे समचउरंस-संठाण-संठिते सत्त रयणीश्रो उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

वज्र-ऋषभ-नाराचसंहनन और समचतुरस्र-संस्थान से संस्थित श्रमण भगवान् महावीर के शरीर की ऊंचाई सात रत्नि-प्रमाण थी (७६)।

विकथा-सूत्र

८०—सत्त विकहाश्रो पण्णत्ताश्रो, तं जहा—इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा, मिउकालुणिया, दंसणभेयणी, चरित्तभेयणी।

विकथाएं सात कही गई हैं। जैसे—

१. स्त्रीकथा—विभिन्न देश की स्त्रियों की कथा-वार्त्तालाप।
२. भक्तकथा—विभिन्न देशों के भोजन-पान संबंधी वार्त्तालाप।
३. देशकथा—विभिन्न देशों के रहन-सहन संबंधी वार्त्तालाप।
४. राज्यकथा—विभिन्न राज्यों के विधि-विधान आदि की कथा-वार्त्तालाप।
५. मृदु-कारुणिकी—इष्ट-वियोग-प्रदर्शक करुणरस-प्रधान कथा।
६. दर्शन-भेदिनी—सम्यग्दर्शन का विनाश करने वाली कथा-वार्त्तालाप।
७. चारित्र-भेदिनी—सम्यक्चारित्र का विनाश करने वाली बातें करना (८०)।

आचार्य-उपाध्याय-अतिशेष-सूत्र

८१—श्रायरिय-उवज्झायस्स णं गणंसि सत्त श्रइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—

१. श्रायरिय-उवज्झाए श्रंतो उवस्सयस्स पाए णिगिज्झिय-णिगिज्झिय पप्फोडेमाणे वा पमज्जमाणे वा णातिक्कमति।
२. (श्रायरिय-उवज्झाए श्रंतो उवस्सयस्स उच्चारपासवणं विगिंचमाणे वा विसोधेमाणे वा णातिक्कमति।
३. श्रायरिय-उवज्झाए पभू इच्छा वेयावडियं करेज्जा, इच्छा णो करेज्जा।
४. श्रायरिय-उवज्झाए अंतो उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा एगगो वसमाणे णातिक्कमति।
५. श्रायरिय-उवज्झाए) बाहिं उवस्सयस्स एगरातं वा दुरातं वा [एगश्रो ?] वसमाणे णातिक्कमति।
६. उवकरणातिसेसे।
७. भत्तपाणातिसेसे।

आचार्य और उपाध्याय के गण में सात अतिशय कहे गये हैं। जैसे—

१. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर दोनों पैरों की धूलि को झाड़ते हुए, प्रमार्जित करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
२. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर उच्चार-प्रस्रवण का व्युत्सर्ग और विशोधन करते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

३. आचार्य और उपाध्याय स्वतन्त्र हैं, यदि इच्छा हो तो दूसरे साधु की वैयावृत्त्य करें, यदि इच्छा न हो तो न करें।
४. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के भीतर एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
५. आचार्य और उपाध्याय उपाश्रय के बाहर एक रात या दो रात अकेले रहते हुए आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।
६. उपकरण की विशेषता—आचार्य और उपाध्याय अन्य साधुओं की अपेक्षा उज्ज्वल वस्त्र-पात्रादि रख सकते हैं।
७. भक्त-पान-विशेषता—स्वास्थ्य और संयम की रक्षा के अनुकूल आगमानुकूल विशिष्ट खान-पान कर सकते है (८१)।

संयम-असंयम-सूत्र

८२—सत्तविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा - पुढविकाइयसंजमे, (आउकाइयसंजमे, तेउकाइयसंजमे, वाउकाइयसंजमे, वणस्सइकाइयसंजमे), तसकाइयसंजमे, अजीवकाइयसंजमे।

संयम सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. पृथिवीकायिक-संयम, २. अप्कायिक-संयम, ३. तेजस्कायिक-संयम, ४. वायुकायिक-संयम,
५. वनस्पतिकायिक-संयम, ६. त्रसकायिक-संयम, ७. अजीवकायिक-संयम—अजीव वस्तुओं के ग्रहण और उपयोग का त्यागना (८२)।

८३—सत्तविधे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे, (आउकाइयअसंजमे, तेउकाइयअसंजमे, वाउकाइयअसंजमे, वणस्सइकाइयअसंजमे), तसकाइयअसंजमे, अजीवकाइय-असंजमे।

असंयम सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. पृथिवीकायिक-असंयम, २. अप्कायिक-असंयम, ३. तेजस्कायिक-असंयम, ४. वायुकायिक-असंयम ५. वनस्पतिकायिक-असंयम, ६. त्रसकायिक-असंयम, ७. अजीवकायिक-असंयम—अजीव वस्तुओं के ग्रहण और परिभोग का त्याग न करना (८३)।

आरंभ-सूत्र

८४—सत्तविहे आरंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयआरंभे, आउकाइयआरंभे, तेउकाइय-आरंभे, वाउकाइयआरंभे, वणस्सइकाइयआरंभे, तसकाइयआरंभे), अजीवकाइयआरंभे।

आरम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. पृथ्वीकायिक-आरम्भ, २. अप्कायिक-आरम्भ, ३. तेजस्कायिक-आरम्भ ४. वायुकायिक-आरम्भ, ५. वनस्पतिकायिक-आरम्भ, ६. त्रसकायिक-आरम्भ, ७. अजीवकायिक-आरम्भ (८४)।

८५—(सत्तविहे अणारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअणारंभे।

अनारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे— पृथ्वी कायिक अनारंभ आदि।

१. पृथ्वीकायिक-अनारम्भ, २. अप्कायिक-अनारम्भ, ३. तेजस्कायिक-अनारम्भ, ४. वायु-कायिक-अनारम्भ, ५. वनस्पतिकायिक-अनारम्भ, ६. त्रसकायिक-अनारम्भ, ७. अजीव-कायिक-अनारम्भ (८५)।

८६—सत्तविहे सारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसारंभे।

संरम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक-संरम्भ, २.अप्कायिक-संरम्भ, ३. तेजस्कायिक-संरम्भ, ४. वायुकायिक-संरम्भ, ५. वनस्पतिकायिक-संरम्भ, ६. त्रसकायिक-संरम्भ, ७. अजीवकायिक-संरम्भ (८६)।

८७—सत्तविहे असारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसारंभे।

असंरम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक-असंरम्भ, २. अप्कायिक-असंरम्भ, ३. तेजस्कायिक-असंरम्भ, ४. वायु-कायिक-असंरम्भ, ५. वनस्पतिकायिक-असंरम्भ, ६. त्रसकायिक-असंरम्भ ७. अजीव-कायिक-असंरम्भ (८७)।

८८—सत्तविहे समारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसमारंभे।

समारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक-समारम्भ, २. अप्कायिक-समारम्भ, ३. तेजस्कायिक-समारम्भ, ४. वायु-कायिक-समारम्भ, ५. वनस्पतिकायिक-समारम्भ, ६. त्रसकायिक-समारम्भ, ७. अजीव-कायिक-समारम्भ (८८)।

८९—सत्तविहे असमारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसमारंभे)।

असमारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक-असमारम्भ, २. अप्कायिक-असमारम्भ, ३. तेजस्कायिक-असमारम्भ, ४. वायुकायिक-असमारम्भ, ५. वनस्पतिकायिक-असमारम्भ, ६. त्रसकायिक-असमारम्भ, ७. अजीवकायिक-असमारम्भ (८९)।

योनिस्थिति-सूत्र

९०—अध भंते! अदसि-कुसुम्भ-कोद्दव-कंगु-रालग-वरट्ट-कोद्दूसग-सण-सरिसव-मूलग-बीयाणं—एतेसि णं धण्णाणं कोट्ठाउत्ताणं पल्लाउत्ताणं (मंचाउत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं लंछियाणं मुद्दियाणं) पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठति ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त संवच्छराइं। तेण परं जोणी पमिलायति (तेण परं जोणी पविद्धंसति, तेण परं जोणी विद्धंसति, तेण परं बीए अबीए भवति, तेण परं) जोणीवोच्छेदे पण्णत्ते।

प्रश्न—हे भगवन्! अलसी, कुसुम्भ, कोद्रव, कंगु, राल, वरट (गोल चना), कोदूषक (कोद्रव-विशेष), सन, सरसों, मूलक बीज, ये धान्य जो कोष्ठागार-गुप्त, पल्यगुप्त, मंचगुप्त, मालागुप्त, अवलिप्त, लिप्त, लांछित, मुद्रित, पिहित हैं, उनकी योनि (उत्पादक शक्ति) कितने काल तक रहती है?

उत्तर—हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात वर्ष तक उनकी योनि रहती है। उसके पश्चात् योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस्त हो जाती है, विध्वस्त हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है और योनि का व्युच्छेद हो जाता है (९०)।

स्थिति-सूत्र

९१—बायरआउकाइयाणं उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

बादर अप्कायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की कही गई है (९१)।

९२—तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं णेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नारक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की कही गई है (९२)।

९३—चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के नारक जीवों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है (९३)।

अग्रमहिषी-सूत्र

९४—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं (९४)।

९५—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं (९५)।

९६—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो जमस्स महारण्णो सत्त अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज यम की सात अग्रमहिषियां कही गई हैं (९६)।

देव-सूत्र

९७—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अब्भितरपरिसाए देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज ईशान के आभ्यन्तर परिषद् के देवों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है (९७)।

९८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं देवीणं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता।

देवेन्द्र देवराज शक्र की अग्रमहिषी देवियों की स्थिति सात पल्योपम कही गई है (९८)।

९९—सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

सौधर्म कल्प में परिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट स्थिति सात पल्योपम कही गई है (९९) ।

१००—सारस्सयमाइच्चाणं [देवाणं ?] सत्त देवा सत्तदेवसता पण्णत्ता ।

सारस्वत और आदित्य लौकान्तिक देव स्वामीरूप में सात हैं और उनके सात सौ देवों का परिवार कहा गया है (१००) ।

१०१—गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्त देवा सत्त देवसहस्सा पण्णत्ता ।

गर्दतोय और तुषित लौकान्तिक देव स्वामीरूप में सात हैं और उनके सात हजार देवों का परिवार कहा गया है (१०१) ।

१०२—सणंकुमारे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

सनत्कुमार कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम कही गई है (१०२) ।

१०३—माहिंदे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं सातिरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

माहेन्द्र कल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम कही गई है (१०३) ।

१०४—बंभलोगे कप्पे जहण्णेणं देवाणं सत्त सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

ब्रह्मलोक कल्प में देवों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम कही गई है (१०४) ।

१०५—बंभलोय-लंतएसु णं कप्पेसु विमाणा सत्त जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प में विमानों की ऊंचाई सात सौ योजन कही गई है (१०५) ।

१०६—भवणवासीणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

भवनवासी देवों के भवधारणीय शरीरों की उत्कृष्ट ऊंचाई सात हाथ कही गई है (१०६) ।

१०७—(वाणमंतराणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

वाण-व्यन्तर देवों के भवधारणीय शरीरों की उत्कृष्ट ऊंचाई सात हाथ कही गई है (१०७) ।

१०८—जोइसियाणं देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

ज्योतिष्क देवों के भवधारणीय शरीरों की उत्कृष्ट ऊंचाई सात रत्नि—हाथ कही गई है (१०८) ।

१०९—सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु देवाणं भवधारणिज्जा सरीरगा उक्कोसेणं सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

सौधर्म और ईशान कल्प के देवों के भवधारणीय शरीरों की उत्कृष्ट ऊंचाई सात रत्नि कही गई है (१०९)।

नन्दीश्वरवर द्वीप-सूत्र

११०—णंदिस्सरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त दीवा पण्णत्ता, तं जहा—जंबुद्दीवे, धायइसंडे, पोक्खरवरे, वरुणवरे, खीरवरे, घयवरे, खोयवरे।

नन्दीश्वरवर द्वीप के अन्तराल में सात द्वीप कहे गये हैं। जैसे—

१. जम्बूद्वीप, २. धातकीषण्ड, ३. पुष्करवर, ४. वरुणवर, ५. क्षीरवर, ६. घृतवर और ७. क्षोदवर द्वीप (११०)।

१११—णंदीसरवरस्स णं दीवस्स अंतो सत्त समुद्दा पण्णत्ता, तं जहा—लवणे, कालोदे, पुक्खरोदे, वरुणोदे, खीरोदे, घओदे, खोओदे।

नन्दीश्वरवर द्वीप के अन्तराल में सात समुद्र कहे गये हैं। जैसे—

१. लवण समुद्र, २. कालोद, ३. पुष्करोद, ४. वरुणोद, ५. क्षीरोद, ६. घृतोद और ७. क्षोदोदसमुद्र (१११)।

श्रेणि-सूत्र

११२—सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उज्जुआयता, एगतोवंका, दुहतोवंका, एगतोखहा, दुहतोखहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला।

श्रेणियां (आकाश की प्रदेश-पंक्तियां) सात कही गई हैं। जैसे—

१. ऋजु-आयता—सीधी और लम्बी श्रेणी।
२. एकतो वक्रा—एक दिशा में वक्र श्रेणी।
३. द्वितो वक्रा—दो दिशाओं में वक्र श्रेणी।
४. एकतः खहा—एक दिशा में अंकुश के समान मुड़ी श्रेणी। जिसके एक ओर त्रसनाड़ी का आकाश है।
५. द्वितः खहा—दोनों दिशाओं में अंकुश के समान मुड़ी हुई श्रेणी। जिसके दोनों ओर त्रसनाड़ी के बाहर का आकाश है।
६. चक्रवाला—चाक के समान वलयाकार श्रेणी।
७. अर्धचक्रवाला—आधे चाक के समान अर्धवलयाकार श्रेणी (११२)।

विवेचन—आकाश के प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणी कहते हैं। जीव और पुद्गल अपने स्वाभाविक रूप से श्रेणी के अनुसार गमन करते हैं। किन्तु पर से प्रेरित होकर वे विश्रेणी-गमन भी करते हैं। प्रस्तुत सूत्र में सात प्रकार की श्रेणियों का निर्देश किया गया है। उनका खुलासा इस प्रकार है—

१. ऋतु-आयता श्रेणी—जब जीव और पुद्गल ऊर्ध्वलोक से अधोलोक में, या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में सीधी श्रेणी से गमन करते हैं, कोई मोड़ नहीं लेते हैं। तब उसे ऋजु-आयता श्रेणी कहते हैं। इसका आकार (।) ऐसी सीधी रेखा के समान है।

२. एकतो वक्रा श्रेणी—यद्यपि आकाश की प्रदेश-श्रेणियां ऋजु (सीधी) ही होती हैं तथापि जीव या पुद्गल के मोड़दार गमन के कारण उसे वक्र कहा जाता है। जब जीव और पुद्गल ऋजु गति से गमन करते हुए दूसरी श्रेणी में पहुंचते हैं, तब उन्हें एक मोड़ लेना पड़ता है, इसलिए उसे एकतो-वक्रा श्रेणी कहा जाता है। जैसे कोई जीव या पुद्गल ऊर्ध्वदिशा से अधोदिशा की पश्चिम श्रेणी पर जाना चाहता है, तो पहले समय में वह ऊपर से नीचे की ओर समश्रेणी से गमन करेगा। पुनः दूसरे समय में वहां से पश्चिम दिशा वाली श्रेणी पर गमन कर अभीष्ट स्थान पर पहुँचेगा। इस गति में दो समय और एक मोड़ लगने से इसका आकार L इस प्रकार का होगा।

३. द्वितो वक्रा श्रेणी—जिस गति में जीव या पुद्गल को दोनों ओर मोड़ लेना पड़े उसे द्वितोवक्रा श्रेणी कहते हैं। जैसे कोई जीव या पुद्गल आकाश-प्रदेशों की ऊपरी सतह के ईशान कोण से चलकर नीचे जाकर नैर्ऋत कोण में जाकर उत्पन्न होता है, तो उसे पहले समय में ईशान कोण से चलकर पूर्वदिशा-वाली श्रेणी पर जाना होगा। पुनः वहां से सीधी श्रेणी द्वारा नीचे की ओर जाना होगा। पुनः समरेखा पर पहुँच कर नैर्ऋत कोण की ओर जाना होगा। इस प्रकार इस गति में दो मोड़ और तीन समय लगेंगे। इसका आकार ऐसा ‾|_ होगा।

४. एकतः खहा श्रेणी—जब कोई स्थावर जीव त्रसनाड़ी के वाम पार्श्व से उसमें प्रवेश कर उसके वाम या दक्षिण किसी पार्श्व में दो या तीन मोड़ लेकर नियत स्थान में उत्पन्न होता है, तब उसके त्रसनाड़ी के बाहर का आकाश एक ओर से स्पृष्ट होता है, इसलिए उसे 'एकतःखहा' श्रेणी कहा जाता है। इस का आकार ∟ ऐसा होता है।

५. द्वितःखहा श्रेणी—जब कोई जीव मध्यलोक के पश्चिम लोकान्तवर्ती प्रदेश से चलकर मध्यलोक के पूर्वदिशावर्ती लोकान्तप्रदेश पर जाकर उत्पन्न होता है, तब उसके दोनों ही स्थलों पर लोकान्त का स्पर्श होने से द्वितःखहा श्रेणी कहा जाता है। इसका आकार ⌐—०—¬ ऐसा होगा।

६. चक्रवाला श्रेणी—चक्र के समान गोलाकार गति को चक्रवाला श्रेणी कहते हैं। जैसे— O

७. अर्धचक्रवाला श्रेणी—आधे चक्र के समान आकार वाली श्रेणी को अर्धचक्रवाला कहते हैं। जैसे— C

इन दोनों श्रेणियों से केवल पुद्गल का ही गमन होता है, जीव का नहीं।

अनीक-अनीकाधिपति-सूत्र

११३—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए, पीढाणिए, कुंजराणिए, महिसाणिए, रहाणिए, णट्टाणिए, गंधव्वाणिए।

(दुमे पायत्ताणियाधिवती, सोदामे आसराया पीढाणियाधिवती, कुंथू हत्थिराया कुंजराणियाधिवती, लोहितक्खे महिसाणियाधिवती), किण्णरे रधाणियाधिवती, रिट्ठे णट्टाणियाधिवती, गीतरती गंधव्वाणियाधिवती।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की सात सेनाएँ और सात सेनाधिपति कहे गये हैं। जैसे—
सेनाएँ—१. पदातिसेना, २. अश्वसेना, ३. हस्तिसेना, ४ महिषसेना, ५. रथसेना, ६. नर्तकसेना, ७. गन्धर्व-(गायक-) सेना।
सेनापति—१. द्रुम—पदातिसेना का अधिपति।

२. अश्वराज सुदामा—अश्वसेना का अधिपति ।
३. हस्तिराज कुन्थु—हस्तिसेना का अधिपति ।
४. लोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति ।
५. किन्नर—रथसेना का अधिपति ।
६. रिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति ।
७. गीतरति—गन्धर्वसेना का अधिपति (११३) ।

११४—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सत्ताणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

महद्दुमे पायत्ताणियाधिपती जाव किंपुरिसे रधाणियाधिपती, महारिट्ठे णट्टाणियाधिपती, गीतजसे गंधव्वाणियाधिपती ।

वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बली की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—
सेनाएँ—१. पदातिसेना, २. अश्वसेना, ३. हस्तिसेना ४. महिषसेना, ५. रथसेना
६. नर्तकसेना, ७. गन्धर्वसेना ।
सेनापति—१. महाद्रुम—पदातिसेना का अधिपति ।
२. अश्वराज महासुदामा—अश्वसेना का अधिपति ।
३. हस्तिराज मालंकार—हस्तिसेना का अधिपति ।
४. महालोहिताक्ष—महिषसेना का अधिपति ।
५. किम्पुरुष—रथसेना का अधिपति ।
६. महारिष्ट—नर्तकसेना का अधिपति ।
७. गीतयश—गायकसेना का अधिपति (११४) ।

११५—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाधिपती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

भद्दसेणे पायत्ताणियाधिपती जाव आणंदे रधाणियाधिपती, णंदणे णट्टाणियाधिपती, तेतली गंधव्वाणियाधिपती ।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—
१. पदातिसेना, २. अश्वसेना, ३. हस्तिसेना, ४. महिषसेना, ५. रथसेना, ६. नर्तकसेना
७. गन्धर्वसेना ।
सेनापति—१. भद्रसेन—पदातिसेना का अधिपति ।
२. अश्वराज यशोधर—अश्वसेना का अधिपति ।
३. हस्तिराज सुदर्शन—हस्तिसेना का अधिपति ।
४. नीलकण्ठ—महिषसेना का अधिपति ।
५. आनन्द—रथसेना का अधिपति ।
६. नन्दन—नर्तकसेना का अधिपति ।
७. तेतली—गन्धर्वसेना का अधिपति (११५) ।

११६—भूताणंदस्स णं णागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए।

दक्खे पायत्ताणियाहिवती जाव णंदुत्तरे रहाणियाहिवई, रती णट्टाणियाहिवई, माणसे गंधव्वाणियाहिवई।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं। जैसे—
सेनाएं—१. पदातिसेना २. अश्वसेना ३. हस्तिसेना ४. महिषसेना, ५. रथसेना,
६. नर्तकसेना ७. गन्धर्वसेना।
सेनापति—१. दक्ष—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज सुग्रीव—अश्वसेना का अधिपति।
३. हस्तिराज सुविक्रम—हस्तिसेना का अधिपति।
४. श्वेतकण्ठ—महिषसेना का अधिपति।
५. नन्दोत्तर—रथसेना का अधिपति।
६. रति—नर्तकसेना का अधिपति।
७. मानस—गन्धर्वसेना का अधिपति (११६)।

११७—(जधा धरणस्स तथा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव घोसस्स।

जिस प्रकार धरण की सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार दक्षिण दिशा के भवनवासी देवों के इन्द्र वेणुदेव, हरिकान्त, अग्निशिख, पूर्ण, जलकान्त. अमितगति, वेलम्ब और घोष की भी सात-सात सेनाएँ और सात-सात सेनापति जानना चाहिए (११७)।

११८—जधा भूताणंदस्स तधा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव महाघोसस्स)।

जिस प्रकार भूतानन्द के सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार उत्तर दिशा के भवनवासी देवों के इन्द्र वेणुदालि, हरिस्सह, अग्निमानव, विशिष्ट, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष की भी सात-सात सेनाएं और सात-सात सेनापति जानना चाहिए (११८)।

११९—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवती पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव रहाणिए, णट्टाणिए, गंधव्वाणिए।

हरिणेगमेसी पायत्ताणियाधिपती जाव माढरे रधाणियाधिपती, सेते णट्टाणियाहिवती, तुंबुरू गंधव्वाणियाधिपती।

देवेन्द्र देवराज शक्र की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं। जैसे—
सेनाएँ—१. पदातिसेना, २. अश्वसेना, ३. हस्तिसेना ४. महिषसेना ५. रथसेना
६. नर्तकसेना ७. गन्धर्वसेना।
सेनापति—१. हरिनैगमेषी—पदातिसेना का अधिपति।
२. अश्वराज वायु—अश्वसेना का अधिपति।
३. हस्तिराज ऐरावण—हस्तिसेना का अधिपति।
४. दामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति।

५. माठर—रथसेना का अधिपति ।
६. श्वेत—नर्तकसेना का अधिपति ।
७. तुम्बुरु—गन्धर्वसेना का अधिपति (११९) ।

१२०—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्त अणिया, सत्त अणियाहिवई पण्णत्ता, तं जहा—पायत्ताणिए जाव गंधव्वाणिए ।

लहुपरक्कमे पायत्ताणियाहिवती जाव महासेते णट्टाणियाहिवती, रते गंधव्वाणिताधिपती ।

देवेन्द्र देवराज ईशान की सात सेनाएँ और सात सेनापति कहे गये हैं । जैसे—
सेनाएँ—१. पदातिसेना २. अश्वसेना ३. हस्तिसेना ४. महिषसेना ५. रथसेना
६. नर्तकसेना, ७. गन्धर्वसेना ।
सेनापति—१. लघुपराक्रम—पदातिसेना का अधिपति ।
२. अश्वराज महावायु—अश्वसेना का अधिपति ।
३. हस्तिराज पुष्पदन्त—हस्तिसेना का अधिपति ।
४. महादामर्द्धि—महिषसेना का अधिपति ।
५. महामाठर—रथसेना का अधिपति ।
६. महाश्वेत—नर्तकसेना का अधिपति ।
७. रत—गन्धर्वसेना का अधिपति (१२०) ।

१२१—(जधा सक्कस्स तहा सव्वेसिं दाहिणिल्लाणं जाव आरणस्स ।

जिस प्रकार शक्र के सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार देवेन्द्र, देवराज सनत्कुमार, ब्रह्म, शुक्र, आनत और आरण इन सभी दक्षिणेन्द्रों की सात-सात सेनाएँ और सात-सात सेनापति जानना चाहिए । (१२१)

१२२—जधा ईसाणस्स तहा सव्वेसिं उत्तरिल्लाणं जाव अच्चुतस्स) ।

जिस प्रकार ईशान की सेना और सेनापति कहे गये हैं, उसी प्रकार देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार, प्राणत और अच्युत. इन सभी उत्तरेन्द्रों के भी सात-सात सेनाएँ और सात-सात सेनापति जानना चाहिए । (१२२)

१२३—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाधिपतिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा कच्छा जाव सत्तमा कच्छा ।

असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर के पदातिसेना के अधिपति द्रुम के सात कक्षाएँ कही गईं हैं । जैसे—पहली कक्षा, यावत् सातवीं कक्षा । (१२३)

१२४—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो दुमस्स पायत्ताणियाधिपतिस्स पढमाए कच्छाए चउसट्ठि देवसहस्सा पण्णत्ता । जावतिया पढमा कच्छा तव्विगुणा दोच्चा कच्छा । जावतिया दोच्चा कच्छा तव्विगुणा तच्चा कच्छा । एवं जाव जावतिया छट्ठा कच्छा तव्विगुणा सत्तमा कच्छा ।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के पदातिसेना के अधिपति द्रुम की पहली कक्षा में ६४ हजार देव हैं। दूसरी कक्षा में उससे दुगुने १२८००० देव हैं। तीसरी कक्षा में उससे दुगुने २५६००० देव हैं। इसी प्रकार सातवीं कक्षा तक दुगुने-दुगुने देव जानना चाहिए (१२४)।

१२५—एवं बलिस्सवि, णवरं—महद्दुमे सट्ठिदेवसाहस्सिओ। सेसं तं चेव।

इसी प्रकार वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के पदातिसेना के अधिपति महाद्रुम की पहली कक्षा में ६० हजार देव हैं। आगे की कक्षाओं में क्रमशः दुगुने-दुगुने देव जानना चाहिए (१२५)।

१२६—धरणस्स एवं चेव, णवरं—अट्ठावीसं देवसहस्सा। सेसं तं चेव।

इसी प्रकार नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण के पदातिसेना के अधिपति भद्रसेन की पहली कक्षा में २८ हजार देव हैं। आगे की कक्षाओं में क्रमशः दुगुने-दुगुने देव जानना चाहिए (१२६)।

१२७—जधा धरणस्स एवं जाव महाघोसस्स, णवरं—पायत्ताणियाधिपती अण्णे, ते पुव्वभणिता।

धरण के समान ही भूतानन्द से महाघोष तक के सभी इन्द्रों के पदाति सेनापतियों की कक्षाओं की देव-संख्या जाननी चाहिए। विशेष—उनके पदातिसेनापति दक्षिण और उत्तर दिशा के भेद से भिन्न-भिन्न हैं, जो कि पहले कहे जा चुके हैं (१२७)।

१२८—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो हरिणेगमेसिस्स सत्त कच्छाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पढमा कच्छा एवं जहा चमरस्स तहा जाव अच्चुतस्स। णाणत्तं पायत्ताणियाधिपतीणं। ते पुव्वभणिता। देवपरिमाणं इमं—सक्कस्स चउरासीतिं देवसहस्सा, ईसाणस्स असीतिं देवसहस्साइं जाव अच्चुतस्स लहुपरक्कमस्स दस देवसहस्सा जाव जावतिया छट्ठा कच्छा तव्विगुणा सत्तमा कच्छा। देवा इमाए गाथाए अणुगंतव्वा—

चउरासीति असीति, बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य।
पण्णा चत्तालीसा, तीसा वीसा य दससहस्सा॥१॥

देवेन्द्र, देवराज शक्र के पदातिसेना के अधिपति हरिनैगमेषी की सात कक्षाएँ कही गई हैं। जैसे—पहली कक्षा यावत् सातवीं कक्षा। जैसे चमर की कही, उसी प्रकार यावत् अच्युत कल्प तक के सभी देवेन्द्रों के पदातिसेना के अधिपतियों की सात-सात कक्षाएं जाननी चाहिए।

उनके पदातिसेना के अधिपतियों के नामों की जो विभिन्नता है, वह पहले कही जा चुकी है। उनकी कक्षाओं के देवों का परिमाण इस प्रकार है—

शक्र के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ८४ हजार देव हैं।
ईशान के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ८० हजार देव हैं।
सनत्कुमार के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ७२ हजार देव हैं।
माहेन्द्र के पदातिसेना के अधिपत्ति की पहली कक्षा में ७० हजार देव हैं।
ब्रह्म के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ६० हजार देव हैं।
लान्तक के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ५० हजार देव हैं।

शुक्र के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ४० हजार देव हैं।
सहस्रार के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ३० हजार देव हैं।
प्राणत के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में २० हजार देव हैं।
अच्युत के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में १० हजार देव हैं।
देवों का उक्त परिमाण इस गाथा के अनुसार जानना चाहिए—

चौरासी हजार, अस्सी हजार, बहत्तर हजार, सत्तर हजार, साठ हजार, पचास हजार, चालीस हजार, तीस हजार, बीस हजार, और दश हजार है।

उक्त सर्व देवेन्द्रों की शेष कक्षाओं के देवों का प्रमाण पहली कक्षा के देवों के परिमाण से सातवीं कक्षा तक दुगुना-दुगुना जानना चाहिए (१२८)।

वचन-विकल्प-सूत्र

१२९—सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—आलावे, अणालावे, उल्लावे, अणुल्लावे, संलावे, पलावे, विप्पलावे।

वचन-विकल्प (बोलने के भेद) सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. आलाप—कम बोलना।
२. अनालाप—खोटा बोलना।
३. उल्लाप—काकु ध्वनि-विकार के साथ बोलना।
४. अनुल्लाप—कुत्सित ध्वनि-विकार के साथ बोलना।
५. संलाप—परस्पर बोलना।
६. प्रलाप—निरर्थक बकवाद करना।
७. विप्रलाप—विरुद्ध वचन बोलना (१२९)।

विनय-सूत्र

१३०—सत्तविहे विणए पण्णत्ते, तं जहा—णाणविणए, दंसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए।

विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. ज्ञान-विनय—ज्ञान और ज्ञानवान् की विनय करना, गुरु का नाम न छिपाना आदि।
२. दर्शन-विनय—सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि का विनय करना, उसके आचारों का पालन करना।
३. चारित्र-विनय—चारित्र और चारित्रवान् का विनय करना, चारित्र धारण करना।
४. मनोविनय—मन की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति में लगाना।
५. वाग्-विनय—वचन की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति में लगाना।
६. काय-विनय—काय की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति में लगाना।
७. लोकोपचार-विनय—लोक-व्यवहार के अनुकूल सब का यथायोग्य विनय करना (१३०)।

१३१—पसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—अपावए, असावज्जे, अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे, अभूताभिसंकणे।

प्रशस्त मनोविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अपापक-मनोविनय—पाप-रहित निर्मल मनोवृत्ति रखना।
२. असावद्य मनोविनय—सावद्य, गर्हित कार्य करने का विचार न करना।
३. अक्रिय मनोविनय—मन को कायिकी, आधिकरणिकी आदि क्रियाओं में नहीं लगाना।
४. निरुपक्लेश मनोविनय—मन को क्लेश, शोक आदि में प्रवृत्त न करना।
५. अनास्रवकर मनोविनय—मन को कर्मों का आस्रव कराने वाले हिंसादि पापों में नहीं लगाना।
६. अक्षयिकर मनोविनय—मन को प्राणियों के पीड़ा करने वाले कार्यों में नहीं लगाना।
७. अभूताभिशंकन मनोविनय—मन को दूसरे जीवों को भय या शंका आदि उत्पन्न करने वाले कार्यों में नहीं लगाना (१३१)।

१३२—अपसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते तं जहा—पावए, सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे, भूताभिसंकणे।

अप्रशस्त मनोविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पापक-अप्रशस्त मनोविनय—पाप कार्यों को करने का चिन्तन करना।
२. सावद्य अप्रशस्त मनोविनय—गर्हित, लोक-निन्दित कार्यों को करने का चिन्तन करना।
३. सक्रिय अप्रशस्त मनोविनय—कायिकी आदि पापक्रियाओं के करने का चिन्तन करना।
४. सोपक्लेश अप्रशस्त मनोविनय—क्लेश, शोक आदि में मन को लगाना।
५. आस्रवकर अप्रशस्त मनोविनय—कर्मों का आस्रव कराने वाले कार्यों में मन को लगाना।
६. क्षयिकर अप्रशस्त मनोविनय—प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने वाले कार्यों में मन को लगाना।
७. भूताभिशंकन अप्रशस्त मनोविनय—दूसरे जीवों को भय, शंका आदि उत्पन्न करने वाले कार्यों में मन को लगाना (१३२)।

१३३—पसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—अपावए, असावज्जे, (अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे), अभूताभिसंकणे।

प्रशस्त वाग्-विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अपापक-वाग्-विनय—निष्पाप वचन बोलना।
२. असावद्य-वाग्-विनय—निर्दोष वचन बोलना।
३. अक्रिय-वाग्-विनय—पाप-क्रिया-रहित वचन बोलना।
४. निरुपक्लेश वाग्-विनय—क्लेश-रहित वचन बोलना।
५. अनास्रवकर वाग्-विनय—कर्मों का आस्रव रोकने वाले वचन बोलना।
६. अक्षयिकर वाग्-विनय—प्राणियों का विघात-कारक वचन न बोलना।
७. अभूताभिशंकन वाग्-विनय—प्राणियों को भय-शंकादि उत्पन्न करने वाले वचन न बोलना (१३३)।

१३४—अपसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—पावए, (सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, ण्हयकरे, छविकरे), भूताभिसंकणे।

शुक्र के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ४० हजार देव हैं।
सहस्रार के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में ३० हजार देव हैं।
प्राणत के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में २० हजार देव हैं।
अच्युत के पदातिसेना के अधिपति की पहली कक्षा में १० हजार देव हैं।
देवों का उक्त परिमाण इस गाथा के अनुसार जानना चाहिए—

चौरासी हजार, अस्सी हजार, बहत्तर हजार, सत्तर हजार, साठ हजार, पचास हजार, चालीस हजार, तीस हजार, बीस हजार, और दश हजार है।

उक्त सर्व देवेन्द्रों की शेष कक्षाओं के देवों का प्रमाण पहली कक्षा के देवों के परिमाण से सातवीं कक्षा तक दुगुना-दुगुना जानना चाहिए (१२८)।

वचन-विकल्प-सूत्र

१२९—सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—आलावे, अणालावे, उल्लावे, अणुल्लावे, संलावे, पलावे, विप्पलावे।

वचन-विकल्प (बोलने के भेद) सात प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. आलाप—कम बोलना।
२. अनालाप—खोटा बोलना।
३. उल्लाप—काकु ध्वनि-विकार के साथ बोलना।
४. अनुल्लाप—कुत्सित ध्वनि-विकार के साथ बोलना।
५. संलाप—परस्पर बोलना।
६. प्रलाप—निरर्थक बकवाद करना।
७. विप्रलाप—विरुद्ध वचन बोलना (१२९)।

विनय-सूत्र

१३०—सत्तविहे विणए पण्णत्ते, तं जहा—णाणविणए, दंसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए।

विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. ज्ञान-विनय—ज्ञान और ज्ञानवान् की विनय करना, गुरु का नाम न छिपाना आदि।
२. दर्शन-विनय—सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि का विनय करना, उसके आचारों का पालन करना।
३. चारित्र-विनय—चारित्र और चारित्रवान् का विनय करना, चारित्र धारण करना।
४. मनोविनय—मन की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति में लगाना।
५. वाग्-विनय—वचन की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति में लगाना।
६. काय-विनय—काय की अशुभ प्रवृत्ति रोकना, शुभ प्रवृत्ति में लगाना।
७. लोकोपचार-विनय—लोक-व्यवहार के अनुकूल सब का यथायोग्य विनय करना (१३०)।

१३१—पसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—अपावए, असावज्जे, अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे, अभूताभिसंकणे।

प्रशस्त मनोविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अपापक-मनोविनय—पाप-रहित निर्मल मनोवृत्ति रखना।
२. असावद्य मनोविनय—सावद्य, गर्हित कार्य करने का विचार न करना।
३. अक्रिय मनोविनय—मन को कायिकी, आधिकरणिकी आदि क्रियाओं में नहीं लगाना।
४. निरुपक्लेश मनोविनय—मन को क्लेश, शोक आदि में प्रवृत्त न करना।
५. अनास्रवकर मनोविनय—मन को कर्मों का आस्रव कराने वाले हिंसादि पापों में नहीं लगाना।
६. अक्षयिकर मनोविनय—मन को प्राणियों के पीड़ा करने वाले कार्यों में नहीं लगाना।
७. अभूताभिशंकन मनोविनय—मन को दूसरे जीवों को भय या शंका आदि उत्पन्न करने वाले कार्यों में नहीं लगाना (१३१)।

१३२—अपसत्थमणविणए सत्तविधे पण्णत्ते तं जहा—पावए, सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे, भूताभिसंकणे।

अप्रशस्त मनोविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पापक-अप्रशस्त मनोविनय—पाप कार्यों को करने का चिन्तन करना।
२. सावद्य अप्रशस्त मनोविनय—गर्हित, लोक-निन्दित कार्यों को करने का चिन्तन करना।
३. सक्रिय अप्रशस्त मनोविनय—कायिकी आदि पापक्रियाओं के करने का चिन्तन करना।
४. सोपक्लेश अप्रशस्त मनोविनय—क्लेश, शोक आदि में मन को लगाना।
५. आस्रवकर अप्रशस्त मनोविनय—कर्मों का आस्रव कराने वाले कार्यों में मन को लगाना।
६. क्षयिकर अप्रशस्त मनोविनय—प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने वाले कार्यों में मन को लगाना।
७. भूताभिशंकन अप्रशस्त मनोविनय—दूसरे जीवों को भय, शंका आदि उत्पन्न करने वाले कार्यों में मन को लगाना (१३२)।

१३३—पसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—अपावए, असावज्जे, (अकिरिए, णिरुवक्केसे, अणण्हयकरे, अच्छविकरे), अभूताभिसंकणे।

प्रशस्त वाग्-विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अपापक-वाग्-विनय—निष्पाप वचन बोलना।
२. असावद्य-वाग्-विनय—निर्दोष वचन बोलना।
३. अक्रिय-वाग्-विनय—पाप-क्रिया-रहित वचन बोलना।
४. निरुपक्लेश वाग्-विनय—क्लेश-रहित वचन बोलना।
५. अनास्रवकर वाग्-विनय—कर्मों का आस्रव रोकने वाले वचन बोलना।
६. अक्षयिकर वाग्-विनय—प्राणियों का विघात-कारक वचन न बोलना।
७. अभूताभिशंकन वाग्-विनय—प्राणियों को भय-शंकादि उत्पन्न करने वाले वचन न बोलना (१३३)।

१३४—अपसत्थवइविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—पावए, (सावज्जे, सकिरिए, सउवक्केसे, अण्हयकरे, छविकरे), भूताभिसंकणे।

अप्रशस्त वाग्-विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. पापक वाग्-विनय—पाप-युक्त वचन बोलना।
२. सावद्य वाग्-विनय—सदोष वचन बोलना।
३. सक्रिय वाग्-विनय—पाप क्रिया करने वाले वचन बोलना।
४. सोपक्लेश वाग्-विनय—क्लेश-कारक वचन बोलना।
५. आस्रवकर वाग्-विनय—कर्मों का आस्रव करने वाले वचन बोलना।
६. क्षयिकर वाग्-विनय—प्राणियों का विघात-कारक वचन बोलना।
७. भूताभिशंकन वाग्-विनय—प्राणियों को भय-शंकादि उत्पन्न करने वाले वचन बोलना (१३४)।

१३५—पसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—आउत्तं गमणं, आउत्तं ठाणं, आउत्तं णिसीयणं, आउत्तं तुअट्टणं, आउत्तं उल्लंघणं, आउत्तं पल्लंघणं, आउत्तं सव्विदियजोगजुंजणता।

प्रशस्त काय-विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. आयुक्त गमन—यतनापूर्वक चलना।
२. आयुक्त स्थान—यतनापूर्वक खड़े होना, कायोत्सर्ग करना।
३. आयुक्त निषीदन—यतनापूर्वक बैठना।
४. आयुक्त त्वग्-वर्त्तन—यतनापूर्वक करवट बदलना, सोना।
५. आयुक्त उल्लंघन—यतनापूर्वक देहली आदि को लांघना।
६. आयुक्त प्रलंघन—यतनापूर्वक नाली आदि को पार करना।
७. आयुक्त सर्वेन्द्रिय योगयोजना—यतनापूर्वक सब इन्द्रियों का व्यापार करना (१३५)।

१३६—अपसत्थकायविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—अणाउत्तं गमणं, (अणाउत्तं ठाणं, अणाउत्तं णिसीयणं, अणाउत्तं तुअट्टणं, अणाउत्तं उल्लंघणं, अणाउत्तं पल्लंघणं), अणाउत्तं सव्विदियजोगजुंजणता।

अप्रशस्त कायविनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. अनायुक्त गमन—अयतनापूर्वक चलना।
२. अनायुक्त स्थान—अयतनापूर्वक खड़े होना।
३. अनायुक्त निषीदन—अयतनापूर्वक बैठना।
४. अनायुक्त त्वग्वर्तन—अयतनापूर्वक सोना, करवट बदलना।
५. अनायुक्त उल्लंघन—अयतनापूर्वक देहली आदि को लांघना।
६. अनायुक्त प्रलंघन—अयतनापूर्वक नाली आदि को लांघना।
७. अनायुक्त सर्वेन्द्रिय योगयोजना—अयतनापूर्वक सब इन्द्रियों का व्यापार करना (१३६)।

१३७—लोगोवयारविणए सत्तविधे पण्णत्ते, तं जहा—अब्भासवत्तित्तं, परच्छंदाणुवत्तितं, कज्जहेउं, कतपडिकतिता, अत्तगवेसणता, देसकालण्णता, सव्वत्थेसु अपडिलोमता।

लोकोपचार विनय सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. अभ्यासवर्त्तित्व—श्रुतग्रहण करने के लिए गुरु के समीप बैठना।

२. परछंदानुवर्त्तित्व—आचार्यादि के अभिप्राय के अनुसार चलना।
३. कार्य हेतु—'इसने मुझे ज्ञान दिया' ऐसे भाव से उसका विनय करना।
४. कृतप्रतिकृतिता—प्रत्युपकार की भावना से विनय करना।
५. आर्तगवेषणता—रोग-पीड़ित के लिए औषध आदि का अन्वेषण करना।
६. देश-कालज्ञता—देश-काल के अनुसार अवसरोचित विनय करना।
७. सर्वार्थ-अप्रतिलोमता—सब विषयों में अनुकूल आचरण करना (१३७)।

समुद्घात-सूत्र

१३८—सत्त समुग्घाता पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए, तेजससमुग्घाए, आहारगसमुग्घाए, केवलिसमुग्घाए।

समुद्-घात सात कहे गये हैं। जैसे—
१. वेदनासमुद्घात—वेदना से पीड़ित होने पर कुछ आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना।
२. कषायसमुद्घात—तीव्र क्रोधादि की दशा में कुछ आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना।
३. मारणान्तिक समुद्घात—मरण से पूर्व कुछ आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना।
४. वैक्रियसमुद्घात—विक्रिया करते समय मूल शरीर को नहीं छोड़ते हुए उत्तर शरीर में जीवप्रदेशों का प्रवेश करना।
५. तैजससमुद्घात—तेजोलेश्या प्रकट करते समय कुछ आत्म-प्रदेशों का बाहर निकलना।
६. आहारकसमुद्घात—समीप में केवली के न होने पर चतुर्दशपूर्वी साधु की शंका के समाधानार्थ मस्तक से एक श्वेत पुतले के रूप में कुछ आत्म-प्रदेशों का केवली के निकट जाना और वापिस आना।
७. केवलि-समुद्घात—आयुष्य के अन्तर्मुहूर्त रहने पर तथा शेष तीन कर्मों की स्थिति बहुत अधिक होने पर उसके समीकरण करने के लिए दण्ड, कपाट आदि के रूप में जीव-प्रदेशों का शरीर से बाहर फैलना (१३८)।

१३९—मणुस्साणं सत्त समुग्घाता पण्णत्ता एवं चेव।

मनुष्यों के इसी प्रकार ये ही सातों समुद्घात कहे गये हैं (१३९)।

विवेचन—आत्मा जब वेदनादि परिणाम के साथ एक रूप हो जाता है तब वेदनीय आदि के कर्मपुद्गलों का विशेष रूप से घात-निर्जरण होता है। इसी को समुद्घात कहते हैं। समुद्घात के समय जीव के प्रदेश शरीर से बाहर भी निकलते हैं। वेदना आदि के भेद से समुद्घात के भी सात भेद कहे गये हैं। इनमें से आहारक और केवलि-समुद्घात केवल मनुष्यगति में ही संभव हैं, शेष तीन गतियों में नहीं। यह इस सूत्र से सूचित किया गया है।

प्रवचन-निह्नव-सूत्र

१४०—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयणणिण्हगा पण्णत्ता, तं जहा—बहुरता, जीवपएसिया, अवत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अबद्धिया।

श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में सात प्रवचननिह्नव (आगम के अन्यथा-प्ररूपक) कहे गये हैं। जैसे—

१. बहुरत-निह्नव, २. जीव प्रादेशिक-निह्नव, ३. अव्यक्तिक-निह्नव, ४. सामुच्छेदिक-निह्नव, ५. द्वैक्रिय-निह्नव, ६. त्रैराशिक-निह्नव, ७. अबद्धिक-निह्नव (१४०)।

१४१—एएसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया हुत्था, तं जहा—जमाली, तीसगुत्ते, आसाढे, आसमित्ते, गंगे, छलुए, गोट्ठामाहिले।

इन सात प्रवचन-निह्नवों के सात धर्माचार्य हुए। जैसे—

१. जमाली, २. तिष्यगुप्त, ३. आषाढ़भूति, ४. अश्वमित्र, ५. गंग, ६. षडुलूक ७. गोष्ठामाहिल (१४१)।

१४२—एतेसि णं सत्तण्हं पवयणणिण्हगाणं सत्तउप्पत्तिणगरा हुत्था, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सावत्थी उसभपुरं, सेयविया मिहिलउल्लगातीरं।
पुरिमंतरंजि दसपुरं, णिण्हगउप्पत्तिणगराइं॥१॥

इन सात प्रवचन-निह्नवों की उत्पत्ति सात नगरों में हुई। जैसे—

१. श्रावस्ती, २ ऋषभपुर ३. श्वेतविका, ४. मिथिला, ५. उल्लुकातीर, ६. अन्तरंजिका, ७. दशपुर (१४२)।

विवेचन—भगवान् महावीर के समय में और उनके निर्वाण के पश्चात् भगवान् महावीर की परम्परा में कुछ सैद्धान्तिक विषयों को लेकर मत-भेद उत्पन्न हुआ। इस कारण कुछ साधु भगवान् के शासन से पृथक् हो गये, उनका आगम में 'निह्नव' नाम से उल्लेख किया गया है। इनमें से कुछ वापिस शासन में आ गए, कुछ आजीवन अलग रहे। इन निह्नवों के उत्पन्न होने का समय भ. महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के १६ वर्ष के बाद से लेकर उनके निर्वाण के ५८४ वर्ष बाद तक का है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. **प्रथम निह्नव बहुरत-वाद**—भ. महावीर के कैवल्य-प्राप्ति के १४ वर्ष बाद श्रावस्ती नगरी में बहुरतवाद की उत्पत्ति जमालि ने की। वे कुण्डपुर नगर के निवासी थे। उनकी मां का नाम सुदर्शना और पत्नी का नाम प्रियदर्शना था। वे पांच सौ पुरुषों के साथ भ. महावीर के पास प्रव्रजित हुए। उनके साथ उनकी पत्नी भी एक हजार स्त्रियों के साथ प्रव्रजित हुई। जमालि ने ग्यारह अंग पढ़े और नाना प्रकार की तपस्याएं करते हुए अपने पाँच सौ साथियों के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे श्रावस्ती नगरी पहुंचे। घोर तपश्चरण करने एवं पारणा में रूखा-सूखा आहार करने से वे रोगाक्रान्त हो गये। पित्तज्वर से उनका शरीर जलने लगा। तब बैठने में असमर्थ होकर अपने साथी साधुओं से कहा—'श्रमणो! बिछौना करो'। वे बिछौना करने लगे। इधर वेदना बढ़ने लगी और उन्हें एक-एक क्षण बिताना कठिन हो गया। उन्होंने पूछा—'बिछौना कर लिया?' उत्तर मिला—'बिछौना हो गया।' जब वे बिछौने के पास गये तो देखा कि बिछौना किया नहीं गया, किया जा रहा है। यह देख कर वे सोचने लगे—भगवान् 'क्रियमाण' को 'कृत' कहते हैं, यह सिद्धान्त मिथ्या है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं कि बिछौना किया जा रहा है, उसे 'कृत' कैसे माना जा सकता है? उन्होंने इस घटना के आधार पर यह निर्णय किया—'क्रियमाण को कृत नहीं

कहा जा सकता ! जो सम्मन्न हो चुका है, उसे ही कृत कहा जा सकता है। कार्य की निष्पत्ति अन्तिम क्षण में ही होती है, उसके पूर्व नहीं।' उन्होंने अपने साधुओं को बुलाकर कहा—भ. महावीर कहते हैं—

'जो चलमान है, वह चलित है, जो उदीर्यमाण है, वह उदीरित है और जो निर्जीर्यमाण है, वह निर्जीर्ण है। किन्तु मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि उनका सिद्धान्त मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष देखो कि बिछौना क्रियमाण है, किन्तु कृत नहीं है। वह संस्तीर्यमाण है, किन्तु संस्तृत नहीं है।'

जमालि का उक्त कथन सुनकर अनेक साधु उनकी बात से सहमत हुए और अनेक सहमत नहीं हुए। कुछ स्थविरों ने उन्हें समझाने का प्रयत्न भी किया, परन्तु उन्होंने अपना मत नहीं बदला। जो उनके मत से सहमत नहीं हुए, वे उन्हें छोड़कर भ. महावीर के पास चले गये। जो उनके मत से सहमत हुए, वे उनके पास रह गये।

जमालि जीवन के अन्त तक अपने मत का प्रचार करते रहे। यह पहला निह्नव बहुरतवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। क्योंकि वह बहुत समयों में कार्य की निष्पत्ति मानते थे।

२. **जीवप्रादेशिक निह्नव**—भ. महावीर के कैवल्यप्राप्ति के सोलह वर्ष बाद ऋषभपुर में जीवप्रादेशिकवाद नाम के निह्नव की उत्पत्ति हुई। चौदह पूर्वों के ज्ञाता आ. वसु से उनका एक शिष्य तिष्यगुप्त आत्मप्रवाद पूर्व पढ़ रहा था। उसमें भ. महावीर और गौतम का संवाद आया।

गौतम ने पूछा—भगवन् ! क्या जीव के एक प्रदेश को जीव कह सकते हैं ?

भगवान् ने कहा—नहीं।

गौतम—भगवन् ! क्या दो तीन आदि संख्यात या असंख्यात प्रदेश को जीव कह सकते हैं ?

भगवान् ने कहा—नहीं। अखण्ड चेतन द्रव्य में एक प्रदेश से कम को भी जीव नहीं कहा जा सकता।

भगवान् का यह उत्तर सुन तिष्यगुप्त का मन शंकित हो गया। उसने कहा—'अन्तिम प्रदेश के विना शेष प्रदेश जीव नहीं हैं, इसलिए अन्तिम प्रदेश ही जीव है।' आ० वसु ने उसे बहुत समझाया, किन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तब उन्होंने उसे संघ से अलग कर दिया।

तिष्यगुप्त अपनी मान्यता का प्रचार करते आमलकल्पा नगरी पहुँचे। वहाँ मित्रश्री श्रमणोपासक रहता था। अन्य लोगों के साथ वह भी उनका धर्मोपदेश सुनने गया। तिष्यगुप्त ने अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया। मित्रश्री ने जान लिया कि ये मिथ्या प्ररूपण कर रहे हैं। फिर भी वह प्रतिदिन उनके प्रवचन सुनने को आता रहा। एक दिन तिष्यगुप्त भिक्षा के लिए मित्रश्री के घर गये। तब मित्रश्री ने अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ उनके सामने रखे और उनका एक एक अन्तिम अंश तोड़ कर उन्हें देने लगा। इसी प्रकार चावल का एक, घास का एक तिनका और वस्त्र के अन्तिम छोर का एक तार निकाल कर उन्हें दिया। तिष्यगुप्त सोच रहा था कि यह भोज्य सामग्री मुझे बाद में देगा। किन्तु मित्रश्री उनके चरण-वन्दन करके बोला—अहो, मैं पुण्यशाली हूं कि आप जैसे गुरुजन मेरे घर पधारे। यह सुनते ही तिष्यगुप्त क्रोधित होकर बोले—'तूने मेरा अपमान किया है।' मित्रश्री ने कहा—'मैंने आपका अपमान नहीं किया, किन्तु आपकी मान्यता के अनुसार ही आपको भिक्षा दी है। आप वस्तु के अन्तिम प्रदेश को ही वस्तु मानते हैं, दूसरे प्रदेशों को नहीं। इसलिए मैंने प्रत्येक पदार्थ का अन्तिम अंश आपको दिया है।'

तिष्यगुप्त समझ गये। उन्होंने कहा—'आर्य ! इस विषय में तुम्हारा अनुशासन चाहता हूं।' मित्रश्री ने उन्हें समझा कर पुनः यथाविधि भिक्षा दी। इस घटना से तिष्यगुप्त अपनी भूल समझ गये और फिर भगवान् के शासन् में सम्मिलित हो गये।

३. **अव्यक्तिक-निह्नव**—भ. महावीर के निर्वाण के २१४ वर्ष बाद श्वेतविका नगरी में अव्यक्तवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्तक आचार्य आषाढ़भूति के शिष्य थे।

श्वेतविका नगरी में रहते समय वे अपने शिष्यों को योगाभ्यास कराते थे। एक बार वे हृदय-शूल से पीड़ित हुए और उसी रोग से मर कर सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए। उन्होंने अवधि-ज्ञान से अपने मृत शरीर को देखा और देखा कि उनके शिष्य आगाढ योग में लीन हैं, तथा उन्हें आचार्य की मृत्यु का पता नहीं है। तब देवरूप में आ. आषाढ का जीव नीचे आया और अपने मृत शरीर में प्रवेश कर उसने शिष्यों को कहा—'वैरात्रिक करो।' शिष्यों ने उनकी वन्दना कर वैसा ही किया। जब उनकी योग-साधना समाप्त हुई, तब आ. आषाढ़ का जीव देवरूप में प्रकट होकर बोला—'श्रमणो ! मुझे क्षमा करें। मैंने असंयती होते हुए भी आप संयतों से वन्दना कराई है।' यह कह के अपनी मृत्यु की सारी बात बता कर वे अपने स्थान को चले गये।

उनके जाते हीं श्रमणों को सन्देह हो गया—'कौन जाने कि कौन साधु है और कौन देव है ? निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते ! सभी वस्तुएं अव्यक्त हैं।' उनका मन सन्देह के हिंडोले में झूलने लगा। स्थविरों ने उन्हें समझाया, पर वे नहीं समझे। तब उन्हें संघ से बाहर कर दिया गया।

अव्यक्तवाद को मानने वालों का कहना है कि किसी भी वस्तु के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सब कुछ अव्यक्त है।

अव्यक्तवाद का प्रवर्तन आ. आषाढ़ ने नहीं किया था। इसके प्रवर्तक उनके शिष्य थे। किन्तु इस मत के प्रवर्तन में आ. आषाढ़ का देवरूप निमित्त बना, इसलिए उन्हें इस मत का प्रवर्तक मान लिया गया।

४. **सामुच्छेदिक-निह्नव**—भ. महावीर के निर्वाण के २२० वर्ष बाद मिथिलापुरी में समुच्छेदवाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्तक आ. अश्वमित्र थे।

एक बार मिथिलानगरी में आ. महागिरि ठहरे हुए थे। उनके शिष्य का नाम कोण्डिन्य और प्रशिष्य का नाम अश्वमित्र था। वह विद्यानुवाद पूर्व के नैपुणिक वस्तु का अध्ययन कर रहा था। उसमें छिन्नच्छेदनय के अनुसार एक आलापक यह था कि पहले समय में उत्पन्न सभी नारक जीव विच्छिन्न हो जावेंगे, इसी प्रकार दूसरे-तीसरे आदि समयों में उत्पन्न नारक विच्छिन्न हो जावेंगे। इस पर्यायवाद के प्रकरण को सुनकर अश्वमित्र का मन शंकित हो गया। उसने सोचा—यदि वर्तमान समय में उत्पन्न सभी जीव किसी समय विच्छिन्न हो जावेंगे, तो सुकृत-दुष्कृत कर्मों का वेदन कौन करेगा ? क्योंकि उत्पन्न होने के अनन्तर ही सब की मृत्यु हो जाती है।

गुरु ने कहा—वत्स ! ऋजुसूत्र नय के अभिप्राय से ऐसा कहा गया है, सभी नयों की अपेक्षा से नहीं। निर्ग्रन्थप्रवचन सर्वनय-सापेक्ष होता है। अतः शंका मत कर। एक पर्याय के विनाश से वस्तु का सर्वथा विनाश नहीं होता। इत्यादि अनेक प्रकार से आचार्य-द्वारा समझाने पर भी वह नहीं समझा। तब आचार्य ने उसे संघ से निकाल दिया।

संघ से अलग होकर वह समुच्छेदवाद का प्रचार करने लगा। उसके अनुयायी एकान्त समुच्छेद का निरूपण करते हैं।

५. द्वैक्रिय-निह्नव—भ. महावीर के निर्वाण के २२८ वर्ष बाद उल्लुकातीर नगर में द्विक्रियावाद की उत्पत्ति हुई। इसके प्रवर्तक गंग थे।

प्राचीन काल में उल्लुका नदी के एक किनारे एक खेड़ा था और दूसरे किनारे उल्लुकातीर नाम का नगर था। वहाँ आ. महागिरि के शिष्य आ. धनगुप्त रहते थे। उनके शिष्य का नाम गंग था। वे भी आचार्य थे। एक वार वे शरद् ऋतु में अपने आचार्य की वन्दना के लिए निकले। मार्ग में उल्लुका नदी थी। वे नदी में उतरे। उनका शिर गंजा था। ऊपर सूरज तप रहा था और नीचे पानी की ठंडक थी। नदी पार करते समय उन्हें शिर पर सूर्य की गर्मी और पैरों में नदी की ठंडक का अनुभव हो रहा था। वे सोचने लगे—'आगम में ऐसा कहा है कि एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नहीं। किन्तु मुझे स्पष्ट रूप से एक साथ दो क्रियाओं का वेदन हो रहा है।' वे अपने आचार्य के पास पहुंचे और अपना अनुभव उन्हें सुनाया। गुरु ने कहा—'वत्स! वस्तुत: एक समय में एक ही क्रिया का वेदन होता है, दो का नहीं। समय और मन का क्रम बहुत सूक्ष्म है, अत: हमें उनके क्रम का पता नहीं लगता।' गुरु के समझाने पर भी वे नहीं समझे, तव उन्होंने गंग को संघ से बाहर कर दिया।

संघ से अलग होकर वे द्विक्रियावाद का प्रचार करने लगे। उनके अनुयायी एक ही क्षण में एक ही साथ दो क्रियाओं का वेदन मानते हैं।

६. त्रैराशिक-निह्नव—भ० महावीर के निर्वाण के ५४४ वर्ष बाद अन्तरंजिका नगरी में त्रैराशिक मत का प्रवर्तन हुआ। इसके प्रवर्तक रोहगुप्त (षडुलूक) थे।

अतिरंजिका नगरी में एक वार आ. श्रीगुप्त ठहरे हुए थे। उनके संसार-पक्ष का भानेज उनका शिष्य था। एक वार वह दूसरे गांव से आचार्य की वन्दना को आरहा था। मार्ग में उसे एक पोट्टशाल नाम का परिव्राजक मिला, जो हर एक को अपने साथ शास्त्रार्थ करने की चुनौती दे रहा था। रोहगुप्त ने उसकी चुनौती स्वीकार कर ली और आकर आचार्य को सारी बात कही। आचार्य ने कहा—'वत्स! तूने ठीक नहीं किया। वह परिव्राजक सात विद्याओं में पारंगत है, अत: तुझसे बलवान् है।' रोहगुप्त आचार्य की बात सुन कर अवाक् रह गया। कुछ देर बाद बोला—गुरुदेव! अव क्या किया जाय! आचार्य ने कहा—वत्स! अब डर मत! मैं तुझे उसकी प्रतिपक्षी सात विद्याएं सिखा देता हूं। तू यथासमय उनका प्रयोग करना। आचार्य ने उसे प्रतिपक्षी सात विद्याएं इस प्रकार सिखाई—

पोट्टशाल की विद्याएं	प्रतिपक्षी विद्याएं
१. वृश्चिकविद्या	=मायूरीविद्या
२. सर्पविद्या	=नाकुलीविद्या।
३. मूषकविद्या	=विडालीविद्या
४. मृगीविद्या	=व्याघ्रीविद्या
५. वराहीविद्या	=सिंहीविद्या

६. काकविद्या =उलूकीविद्या
७. पोताकीविद्या =उलावकीविद्या

आचार्य ने रजोहरण को मंत्रित कर उसे देते हुए कहा—वत्स ! इन सातों विद्याओं से तू उस परिव्राजक को पराजित कर देगा। फिर भी यदि आवश्यकता पड़े तो तू इस रजोहरण को घुमाना, फिर तुझे वह पराजित नहीं कर सकेगा।

रोहगुप्त सातों विद्याएं सीख कर और गुरु का आशीर्वाद लेकर राज-सभा में गया। राजा बलश्री से सारी बात कह कर उसने परिव्राजक को बुलवाया। दोनों शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए। परिव्राजक ने अपना पक्ष स्थापित करते हुए कहा—राशि दो हैं—एक जीवराशि और दूसरी अजीव राशि। रोहगुप्त ने जीव, अजीव और नोजीव, इन तीन राशियों की स्थापना करते हुए कहा-परिव्राजक का कथन मिथ्या है। विश्व में स्पष्ट रूप से तीन राशियां पाई जाती हैं—मनुष्य तिर्यंच आदि जीव हैं, घट-पट आदि अजीव हैं और छछुन्दर की कटी हुई पूंछ नोजीव है। इत्यादि अनेक युक्तियों से अपने कथन को प्रमाणित कर रोहगुप्त ने परिव्राजक को निरुत्तर कर दिया।

अपनी हार देख परिव्राजक ने क्रुद्ध हो एक-एक कर अपनी विद्याओं का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। रोहगुप्त ने उसकी प्रतिपक्षी विद्याओं से उन सबको विफल कर दिया। तब उसने अन्तिम अस्त्र के रूप में गर्दभीविद्या का प्रयोग किया। रोहगुप्त ने उस मंत्रित रजोहरण को घुमा कर उसे भी विफल कर दिया। सभी उपस्थित सभासदों ने परिव्राजक को पराजित घोषित कर रोहगुप्त की विजय की घोषणा की।

रोहगुप्त विजय प्राप्त कर आचार्य के पास आया और सारी घटना उन्हें ज्यों की त्यों सुनाई। आचार्य ने कहा—वत्स ! तूने असत् प्ररूपणा कैसे की ? तूने अन्त में यह क्यों नहीं स्पष्ट कर दिया कि राशि तीन नहीं हैं, केवल परिव्राजक को परास्त करने के लिए ही मैंने तीन राशियों का समर्थन किया है।

आचार्य ने फिर कहा—अभी समय है। जा और स्पष्टीकरण कर आ।

रोहगुप्त अपना पक्ष त्यागने के लिए तैयार नहीं हुआ। तब आचार्य ने राजा के पास जाकर कहा—राजन् ! मेरे शिष्य रोहगुप्त ने जैन सिद्धान्त के विपरीत तत्त्व की स्थापना की है। जिनमत के अनुसार दो ही राशि हैं। किन्तु समझाने पर भी रोहगुप्त अपनी भूल स्वीकार नहीं कर रहा है। आप राज-सभा में उसे बुलायें और मैं उसके साथ चर्चा करूंगा। राजा ने रोहगुप्त को बुलवाया। चर्चा प्रारम्भ हुई। अन्त में आचार्य ने कहा—यदि वास्तव में तीन राशि हैं तो 'कुत्रिकापण'[1] में चलें और तीसरी राशि नोजीव मांगें।

राजा को साथ लेकर सभी लोग 'कुत्रिकापण' गये और वहाँ के अधिकारी से कहा—हमें जीव अजीव और नोजीव, ये तीन वस्तुएं दो। उसने जीव और अजीव दो वस्तुएं ला दी और बोला-'नोजीव' नाम की कोई वस्तु संसार में नहीं है। राजा को आचार्य का कथन सत्य प्रतीत हुआ और उसने रोहगुप्त को अपने राज्य से निकाल दिया। आचार्य ने भी उसे संघ से बाह्य घोषित कर दिया।

१. जिसे आज 'जनरल स्टोर्स' कहते हैं, पूर्वकाल में उसे 'कुत्रिकपाण' कहते थे। वहाँ अखिल विश्व की सभी वस्तुएं बिका करती थीं। वह देवाधिष्ठित माना जाता है।

तब वह अपने अभिमत का प्ररूपण करते हुए विचरने लगा। अन्त में उसने वैशेषिक मत की स्थापना की।

७. **अबद्धकनिह्नव**—भ० महावीर के निर्वाण के ५८४ वर्ष बाद दशपुर नगर में अवद्धिकमत प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक गोष्ठामाहिल थे।

उस समय दशपुर नगर में राजकुल से सम्मानित ब्राह्मणपुत्र आर्यरक्षित रहता था। उसने अपने पिता से पढ़ना प्रारम्भ किया। जब वह पिता से पढ़ चुका तब विशेष अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र नगर गया। वहां से वेद-वेदाङ्गों को पढ़ कर घर लौटा। माता के कहने से उसने जैनाचार्य तोसलिपुत्र के पास जाकर प्रव्रजित हो दृष्टिवाद पढ़ना प्रारम्भ किया। आर्यवज्र के पास नौ पूर्वों को पढ़ कर दशवें पूर्व के चौवीस यविक ग्रहण किये।

आ० आर्यरक्षित के तीन प्रमुख शिष्य थे—दुर्बलिकापुष्यमित्र, फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल। उन्होंने अन्तिम समय में दुर्बलिकापुष्यमित्र को गण का भार सौंपा।

एक वार दुर्बलिकापुष्यमित्र अर्थ की वाचना दे रहे थे। उनके जाने बाद बिन्ध्य उस वाचना का अनुभाषण कर रहा था। गोष्ठामाहिल उसे सुन रहा था। उस समय आठवें कर्मप्रवाद पूर्व के अन्तर्गत कर्म का विवेचन चल रहा था। उसमें एक प्रश्न यह था कि जीव के साथ कर्मों का बन्ध किस प्रकार होता है! उसके समाधान में कहा गया था कि कर्म का बन्ध तीन प्रकार से होता है—

१. स्पृष्ट—कुछ कर्म जीव-प्रदेशों के साथ स्पर्श मात्र करते हैं और तत्काल सूखी दीवाल पर लगी धूलि के समान झड़ जाते हैं।

२. स्पृष्ट बद्ध—कुछ कर्म जीव-प्रदेशों का स्पर्श कर बंधते हैं, किन्तु वे भी कालान्तर में झड़ जाते हैं, जैसे कि गीली दीवाल पर उड़कर लगी धूलि कुछ तो चिपक जाती है और कुछ नीचे गिर जाती है।

३. स्पृष्ट, बद्ध निकाचित—कुछ कर्म जीव-प्रदेशों के साथ गाढ रूप से बंधते हैं, और दीर्घ काल तक बंधे रहने के बाद स्थिति का क्षय होने पर वे भी अलग हो जाते हैं।

उक्त व्याख्यान सुनकर गोष्ठामाहिल का मन शंकित हो गया। उसने कहा—कर्म को जीव के साथ बद्ध मानने से मोक्ष का अभाव हो जायगा। फिर कोई भी जीव मोक्ष नहीं जा सकेगा। अतः सही सिद्धान्त यही है कि कर्म जीव के साथ स्पृष्ट मात्र होते हैं, बंधते नहीं हैं, क्योंकि कालान्तर में वे जीव से वियुक्त होते हैं। जो वियुक्त होता है, वह एकात्मरूप से बद्ध नहीं हो सकता। उसने अपनी शंका विन्ध्य के सामने रखी। विन्ध्य ने कहा कि आचार्य ने इसी प्रकार का अर्थ बताया था।

गोष्ठामाहिल के गले यह बात नहीं उतरी। वह अपने ही आग्रह पर दृढ रहा। इसी प्रकार नौवें पूर्व की वाचना के समय प्रत्याख्यान के यथाशक्ति और यथाकाल करने की चर्चा पर विवाद खड़ा होने पर उसने तीर्थंकर-भाषित अर्थ को भी स्वीकार नहीं किया, तब संघ ने उसे बाहर कर दिया। वह अपनी मान्यता का प्रचार करने लगा कि कर्म आत्मा का स्पर्शमात्र करते हैं, किन्तु उसके साथ लोलीभाव से बद्ध नहीं होते।

उक्त सात निह्नवों में से जमालि, रोहगुप्त तथा गोष्ठामाहिल ये तीन अन्त तक अपने आग्रह पर दृढ रहे और अपने मत का प्रचार करते रहे। शेष चार ने अपना आग्रह छोड़कर अन्त में भगवान् के शासन को स्वीकार कर लिया (१४२)।

अनुभाव-सूत्र

१४३—सातावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा—मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा, (मणुण्णा गंधा, मणुण्णा रसा), मणुण्णा फासा, मणोसुहता, वइसुहता।

साता-वेदनीय कर्म का अनुभाव सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. मनोज्ञ शब्द, २. मनोज्ञ रूप, ३. मनोज्ञ गन्ध, ४. मनोज्ञ रस, ५. मनोज्ञ स्पर्श, ६. मन:सुख, ७. वच:सुख (१४३)।

१४४—असातावेयणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तविधे अणुभावे पण्णत्ते, तं जहा—अमणुण्णा सद्दा, (अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गंधा, अमणुण्णा रसा, अमणुण्णा फासा, मणोदुहता), वइदुहता।

असातावेदनीय कर्म का अनुभाव सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. अमनोज्ञ शब्द, २. अमनोज्ञ रूप, ३. अमनोज्ञ गन्ध, ४. अमनोज्ञ रस, ५. अमनोज्ञ स्पर्श, ६. मनोदु:ख, ७. वचोदु:ख (१४४)।

नक्षत्र-सूत्र

१४५—महाणक्खत्ते सत्ततारे पण्णत्ते।

मघा नक्षत्र सात ताराओं वाला कहा गया है (१४५)।

१४६—अभिईयादिया णं सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तं जहा—अभिई, सवणो, धणिट्ठा, सतभिसया, पुव्वभद्दवया, उत्तरभद्दवया, रेवती।

अभिजित् आदि सात नक्षत्र पूर्वद्वार वाले कहे गये हैं। जैसे—
१. अभिजित्, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वभाद्रपद, ६. उत्तरभाद्रपद, ७. रेवती (१४६)।

१४७—अस्सिणियादिया णं सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा—अस्सिणी, भरणी, कित्तिया, रोहिणी, मिगसिरे, अद्दा, पुणव्वसू।

अश्विनी आदि सात नक्षत्र दक्षिणद्वार वाले कहे गये हैं। जैसे—
१. अश्विनी, २. भरणी, ३. कृत्तिका, ४. रोहिणी, ५. मृगशिर, ६. आर्द्रा, ७. पुनर्वसु (१४७)।

१४८—पुस्सादिया णं सत्त णक्खत्ता अवरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—पुस्सो, असिलेसा, मघा, पुव्वाफग्गुणी, उत्तराफग्गुणी, हत्थो, चित्ता।

पुष्य आदि सात नक्षत्र पश्चिमद्वार वाले कहे गये हैं। जैसे—
१. पुष्य, २. अश्लेषा, ३. मघा, ४. पूर्वफाल्गुनी, ५. उत्तरफाल्गुनी, ६. हस्त, ७. चित्रा (१४८)।

१४९—सातियाइया णं सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा—साती, विसाहा, अणुराहा, जेट्ठा, मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा।

स्वाति आदि सात नक्षत्र उत्तरद्वार वाले कहे गये हैं। जैसे—

१. स्वाति, २. विशाखा, ३. अनुराधा, ४. ज्येष्ठा, ५. मूल, ६. पूर्वाषाढा, ७. उत्तराषाढा (१४९)।

कूट-सूत्र

१५०—जंबुद्दीवे दीवे सोमणसे वक्खारपव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सिद्धे सोमणसे या, बोद्धव्वे मंगलावतीकूडे।
देवकुरु विमल कंचण, विसिट्ठकूडे य बोद्धव्वे ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सौमनस वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धकूट, २. सौमनसकूट, ३. मंगलावतीकूट, ४. देवकुरुकूट, ५. विमलकूट, ६. कांचनकूट ७. विशिष्टकूट (१५०)।

१५१—जंबुद्दीवे दीवे गंधमायणे वक्खारपव्वते सत्त कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे य गंधमायण, बोद्धव्वे गंधिलावतीकूडे।
उत्तरकुरु फलिहे, लोहितक्खे आणंदणे चेव ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत पर सात कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धकूट, २. गन्धमादनकूट, ३. गन्धिलावतीकूट, ४. उत्तरकुरुकूट, ५. स्फटिककूट. ३. लोहिताक्षकूट, ७. आनन्दनकूट (१५१)।

कुलकोटी-सूत्र

१५२—बिइंदियाणं सत्त जाति-कुलकोडि-जोणीपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

द्वीन्द्रिय जाति की सात लाख योनिप्रमुख कुलकोटि कही गई हैं (१५२)।

पापकर्म-सूत्र

१५३—जीवा णं सत्तट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—णेरइयनिव्वत्तिते, (तिरिक्खजोणियणिव्वत्तिते, तिरिक्खजोणिणीणिव्वत्तिते, मणुस्सणिव्वत्तिते, मणुस्सीणिव्वत्तिते), देवणिव्वत्तिते, देवीणिव्वत्तिते।

एवं—चिण-(उवचिण-बंध-उदीर-वेद तह) णिज्जरा चेव।

जीवों ने सात स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्मरूप से संचय किया है, करते हैं और करेंगे। जैसे—

१. नैरयिक निर्वर्तित पुद्गलों का,
२. तिर्यग्योनिक (तिर्यंच) निर्वर्तित पुद्गलों का,
३. तिर्यग्योनिकी (तिर्यंचनी) निर्वर्तित पुद्गलों का,
४. मनुष्य निर्वर्तित पुद्गलों का,
५. मानुषी निर्वर्तित पुद्गलों का,

६. देव निर्वर्तित पुद्गलों का,
७. देवी निर्वर्तित पुद्गलों का (१५३)।

इसी प्रकार जीवों ने सात स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्मरूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पुद्गल-सूत्र

१५४—सत्तपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

सात प्रदेश वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं (१५४)।

१५५—सत्तपएसोगाढा पोग्गला जाव सत्तगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

सात प्रदेशावगाह वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं। सात समय की स्थिति वाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं। सात गुणवाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण, तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के सात गुणवाले पुद्गलस्कन्ध अनन्त-अनन्त हैं (१५५)।

॥ सप्तम स्थान समाप्त ॥

अष्टम स्थान

सार : संक्षेप

आठवें स्थान में आठ की संख्या से सम्बन्धित विषयों का संकलन किया गया है। उनमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विवेचन आलोचना-पद में किया गया है। यहाँ बताया गया है कि मायाचारी व्यक्ति दोषों का सेवन करके भी उनको छिपाने का प्रयत्न करता है। उसे यह भय रहता है कि यदि मैं अपने दोषों को गुरु के सम्मुख प्रकट करूंगा तो मेरी अकीर्ति होगी, अवर्णवाद होगा, मेरा अविनय होगा, मेरा यश कम हो जायगा। इस प्रकार के मायावी व्यक्ति को सचेत करने के लिए बताया गया है कि वह इस लोक में निन्दित होता है, परलोक में भी निन्दित होता है और यदि अपनी आलोचना, निन्दा, गर्हा आदि न करके वह देवलोक में उत्पन्न होता है, तो वहाँ भी अन्य देवों के द्वारा तिरस्कार ही पाता है। वहां से चयकर मनुष्य होता है तो दीन-दरिद्र कुल में उत्पन्न होता है और वहाँ भी तिरस्कार-अपमानपूर्ण जीवन-यापन करके अन्त में दुर्गतियों में परिभ्रमण करता है।

इसके विपरीत अपने दोषों की आलोचना करने वाला देवों में उत्तम देव होता है, देवों के द्वारा उसका अभिनन्दन किया जाता है। वहाँ से चयकर उत्तम जाति-कुल और वंश में उत्पन्न होता है, सभी के द्वारा आदर, सत्कार पाता है और अन्त में संयम धारण कर सिद्ध-बुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

मायाचारी की मन:स्थिति का चित्रण करते हुए बताया गया है कि वह अपने मायाचार को छिपाने के लिए भीतर ही भीतर लोहे, ताँबे, सीसे, सोने, चाँदी आदि को गलाने की भट्टियों के समान, कुंभार के आपाक (अवे) के समान और ईंटों के भट्टे के समान निरन्तर संतप्त रहता है। किसी को बात करते हुए देखकर मायावी समझता है कि वह मेरे विषय में ही बात कर रहा है।

इस प्रकार मायाचार के महान् दोषों को बतलाने का उद्देश्य यही है कि साधक पुरुष मायाचार न करे। यदि प्रमाद या अज्ञानवश कोई दोष हो गया हो तो निश्छलभाव से, सरलतापूर्वक उसकी आलोचना-गर्हा करके आत्म-विकास के मार्ग में उत्तरोत्तर आगे बढ़ता जावे।

गणि-सम्पत्-पद में बताया गया है कि गण-नायक में आचार सम्पदा, श्रुत-सम्पदा आदि आठ सम्पदाओं का होना आवश्यक है। आलोचना करने वाले को प्रायश्चित्त देने वाले में भी अपरिश्रावी आदि आठ गुणों का होना आवश्यक है।

केवलि-समुद्घात-पद में केवली जिन के होने वाले समुद्घात के आठ समयों का वर्णन, ब्रह्म-लोक के अन्त में कृष्णराजियों का वर्णन, अक्रियावादि-पद में आठ प्रकार के अक्रियावादियों का, आठ प्रकार की आयुर्वेदचिकित्सा का, आठ पृथिवियों का वर्णन द्रष्टव्य है। जम्बूद्वीप-पद में जम्बूद्वीप सम्बन्धी अन्य वर्णनों के साथ विदेहक्षेत्र स्थित ३२ विजयों और ३२ राजधानियों का वर्णन भी ज्ञातव्य है।

भौगोलिक वर्णन अनेक प्राचीन संग्रहणी गाथाओं के आधार पर किया गया है। इस स्थान के प्रारम्भ में बताया गया है कि एकल-विहार करने वाले साधु को श्रद्धा, सत्य, मेधा, बहुश्रुतता आदि आठ गुणों का धारक होना आवश्यक है। तभी वह अकेला विहार करने के योग्य है। □□

६. देव निर्वर्तित पुद्‌गलों का,

७. देवी निर्वर्तित पुद्‌गलों का (१५३)।

इसी प्रकार जीवों ने सात स्थानों से निर्वर्तित पुद्‌गलों का पापकर्मरूप से उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे।

पुद्‌गल-सूत्र

१५४—सत्तपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

सात प्रदेश वाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त हैं (१५४)।

१५५—सत्तपएसोगाढा पोग्गला जाव सत्तगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

सात प्रदेशावगाह वाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त हैं। सात समय की स्थिति वाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त हैं। सात गुणवाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण, तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के सात गुणवाले पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त-अनन्त हैं (१५५)।

॥ सप्तम स्थान समाप्त ॥

जो साधक जिनकल्प-प्रतिमा स्वीकार करता है, उसके लिए उक्त पाँचों तुलाओं में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

६. अल्पाधिकरण—एकलविहार प्रतिमा स्वीकार करने वाले को उपशान्त कलह की उदीरणा तथा नये कलहों का उद्भावक नहीं होना चाहिए।

७. धृतिमान्—उसमें रति-अरति समभावी एवं अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्गों को सहन करने में धैर्यवान् होना चाहिए।

८. वीर्यसम्पन्न—स्वीकृत साधना में निरन्तर उत्साह बढ़ाते रहना चाहिए।

उक्त आठ गुणों से सम्पन्न अनगार ही एकल-विहार-प्रतिमा को स्वीकार करने के योग्य माना गया है।

योनि-संग्रह-सूत्र

२—अट्ठविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—अंडगा, पोतगा, (जराउजा, रसजा, संसेयगा, संमुच्छिमा), उब्भिगा, उववातिया।

योनि-संग्रह आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अण्डज, २. पोतज, ३. जरायुज ४. रसज, ५. संस्वेदज, ६. सम्मूर्च्छिम
७. उद्भिज्ज, ८. औपपातिक (२)।

गति-आगति-सूत्र

३—अंडगा अट्ठगतिया अट्ठागतिया पण्णत्ता, तं जहा—अंडए अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहिंतो वा, पोतएहिंतो वा, (जराउजेहिंतो वा, रसजेहिंतो वा, संसेयगेहिंतो वा, समुच्छिमेहिंतो वा, उब्भिए-हिंतो वा), उववातिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव णं से अंडए अंडगत्तं विप्पजहमाणे अंडगत्ताए वा, पोतगत्ताए वा, (जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा, संसेयगत्ताए वा, संमुच्छिमत्ताए वा, उब्भियत्ताए वा), उववातियत्ताए वा गच्छेज्जा।

अण्डज जीव आठ गतिक और आठ आगतिक कहे गये हैं। जैसे—

अण्डज जीव अण्डजों में उत्पन्न होता हुआ अण्डजों से, या पोतजों से, या जरायुजों से, या रसजों से, या संस्वेदजों से, या सम्मूर्च्छिमों से, या उद्भिज्जों से, या औपपातिकों से आकर उत्पन्न होता है।

वही अण्डज जीव वर्त्तमान पर्याय अण्डज को छोड़ता हुआ अण्डजरूप से, या पोतजरूप से, या जरायुज रूप से, या रसज रूप से, या संस्वेदज रूप से, या सम्मूर्च्छिम रूप से, या उद्भिज्जरूप से, या औपपातिक रूप से उत्पन्न होता है। (३)

४—एवं पोतगावि जराउजावि सेसाणं गतिरागती णत्थि।

इसी प्रकार पोतज भी और जरायुज भी आठ गतिक और आठ आगतिक जानना चाहिए। शेष रसज आदि जीवों की गति और आगति आठ प्रकार की नहीं होती है (४)।

कर्म-बन्ध-सूत्र

५—जीवा णं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—णाणावर-णिज्जं, दरिसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं, मोहणिज्जं, आउयं, णामं गोत्तं, अंतराइयं।

अष्टम स्थान

एकलविहार-प्रतिमा-सूत्र

१—अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति एगल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, तं जहा—सड्ढी पुरिसजाते, सच्चे पुरिसजाते, मेहावी पुरिसजाते, बहुस्सुते पुरिसजाते, सत्तिमं, अप्पाधिगरणे, धितिमं, वीरियसंपण्णे।

१. आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार एकल विहार प्रतिमा को स्वीकार कर विहार करने के योग्य होता है। जैसे—

१. श्रद्धावान् पुरुष, २. सत्यवादी पुरुष, ३. मेधावी पुरुष, ४. बहुश्रुत पुरुष ५. शक्तिमान्-पुरुष, ६. अल्पाधिकरण पुरुष, ७. धृतिमान् पुरुष, ८. वीर्यसम्पन्न पुरुष (१)।

विवेचन—संघ की आज्ञा लेकर अकेला विहार करते हुए आत्म-साधना करने को 'एकल विहार प्रतिमा' कहते हैं। जैनपरम्परा के अनुसार साधु तीन अवस्थाओं में अकेला विचर सकता है—

१. एकल विहार प्रतिमा स्वीकार करने पर।
२. जिनकल्प स्वीकार करने पर।
३. मासिकी आदि भिक्षुप्रतिमाएं स्वीकार करने पर।

इनमें से प्रस्तुत सूत्र में एकल-विहार-प्रतिमा स्वीकार करने की योग्यता के आठ अंग बताये गये हैं।

१. श्रद्धावान्—साधक को अपने कर्त्तव्यों के प्रति श्रद्धा या आस्था वाला होना आवश्यक है। ऐसे व्यक्ति को मेरु के समान अचल सम्यक्त्वी और दृढ चारित्रवान् होना चाहिए।
२. सत्यवादी—उसे सत्यवादी एवं अर्हत्प्ररूपित तत्त्वभाषी होना चाहिए।
३. मेधावी—श्रुतग्रहण की प्रखर बुद्धि से युक्त होना आवश्यक है।
४. बहु-श्रुत—नौ-दश पूर्व का ज्ञाता होना चाहिए।

५. शक्तिमान्—तपस्या, सत्त्व, सूत्र, एकत्व और बल इन पांच तुलाओं से अपने को तोल लेता है, उसे शक्तिमान् कहते हैं। छह मास तक भोजन न मिलने पर भी जो भूख से पराजित न हो, ऐसा अभ्यास तपस्यातुला है। भय और निद्रा को जीतने का अभ्यास सत्त्वतुला है। इसके लिए उसे सब साधुओं के सो जाने पर क्रमशः उपाश्रय के भीतर, दूसरी बार उपाश्रय के बाहर, तीसरी बार किसी चौराहे पर, चौथी बार सूने घर में, और पाँचवीं बार श्मशान में रातभर कायोत्सर्ग करना पड़ता है। तीसरी तुला सूत्र-भावना है। वह सूत्र के परावर्तन से उच्छ्वास, घड़ी, मुहूर्त आदि काल के परिमाण का बिना सूर्य-गति आदि के जानने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। एकत्वतुला के द्वारा वह आत्मा को शरीर से भिन्न अखण्ड चैतन्यपिण्ड का ज्ञाता हो जाता है। बलतुला के द्वारा वह मानसिक बल को इतना विकसित कर लेता है कि भयंकर उपसर्ग आने पर भी वह उनसे चलायमान नहीं होता है।

जो साधक जिनकल्प-प्रतिमा स्वीकार करता है, उसके लिए उक्त पाँचों तुलाओं में उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

६. अल्पाधिकरण—एकलविहार प्रतिमा स्वीकार करने वाले को उपशान्त कलह की उदीरणा तथा नये कलहों का उद्भावक नहीं होना चाहिए।

७. धृतिमान्—उसमें रति-अरति समभावी एवं अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्गों को सहन करने में धैर्यवान् होना चाहिए।

८. वीर्यसम्पन्न—स्वीकृत साधना में निरन्तर उत्साह बढ़ाते रहना चाहिए।

उक्त आठ गुणों से सम्पन्न अनगार ही एकल-विहार-प्रतिमा को स्वीकार करने के योग्य माना गया है।

योनि-संग्रह-सूत्र

२—अट्ठविधे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तं जहा—अंडगा, पोतगा, (जराउजा, रसजा, संसेयगा, संमुच्छिमा), उब्भिगा, उववातिया।

योनि-संग्रह आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अण्डज, २. पोतज, ३. जरायुज ४. रसज, ५. संस्वेदज, ६. सम्मूर्च्छिम
७. उद्भिज्ज, ८. औपपातिक (२)।

गति-आगति-सूत्र

३—अंडगा अट्ठगतिया अट्ठागतिया पण्णत्ता, तं जहा—अंडए अंडएसु उववज्जमाणे अंडएहिंतो वा, पोतएहिंतो वा, (जराउजेहिंतो वा, रसजेहिंतो वा, संसेयगेहिंतो वा, समुच्छिमेहिंतो वा, उब्भिएहिंतो वा), उववातिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव णं से अंडए अंडगत्तं विप्पजहमाणे अंडगत्ताए वा, पोतगत्ताए वा, (जराउजत्ताए वा, रसजत्ताए वा, संसेयगत्ताए वा, संमुच्छिमत्ताए वा, उब्भियत्ताए वा), उववातियत्ताए वा गच्छेज्जा।

अण्डज जीव आठ गतिक और आठ आगतिक कहे गये हैं। जैसे—

अण्डज जीव अण्डजों में उत्पन्न होता हुआ अण्डजों से, या पोतजों से, या जरायुजों से, या रसजों से, या संस्वेदजों से, या सम्मूर्च्छिमों से, या उद्भिज्जों से, या औपपातिकों से आकर उत्पन्न होता है।

वही अण्डज जीव वर्त्तमान पर्याय अण्डज को छोड़ता हुआ अण्डजरूप से, या पोतजरूप से, या जरायुज रूप से, या रसज रूप से, या संस्वेदज रूप से, या सम्मूर्च्छिम रूप से, या उद्भिज्जरूप से, या औपपातिक रूप से उत्पन्न होता है। (३)

४—एवं पोतगावि जराउजावि सेसाणं गतिरागती णत्थि।

इसी प्रकार पोतज भी और जरायुज भी आठ गतिक और आठ आगतिक जानना चाहिए। शेष रसज आदि जीवों की गति और आगति आठ प्रकार की नहीं होती है (४)।

कर्म-बन्ध-सूत्र

५—जीवा णं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—णाणावरणिज्जं, दरिसणावरणिज्जं, वेयणिज्जं, मोहणिज्जं, आउयं, णामं गोत्तं, अंतराइयं।

जीवों ने आठ कर्मप्रकृतियों का अतीत काल में संचय किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे। जैसे—

१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र, ८. अन्तराय (५)।

६—णेरइया णं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा एवं चेव।

नारक जीवों ने उक्त आठ कर्मप्रकृतियों का संचय किया है, कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे (६)।

७—एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डक वाले जीवों ने आठ कर्मप्रकृतियों का संचय किया है, कर रहे हैं और करेंगे (७)।

८—जीवा णं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु वा उवचिणंति वा उवचिणिस्संति वा एवं चेव।

एवं—चिण-उवचिण-बंध-उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

एते छ चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

जीवों ने आठ कर्मप्रकृतियों का संचय, उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, कर रहे हैं और करेंगे (८)।

इसी प्रकार नारकों से लेकर वैमानिकों तक सभी दण्डकों के जीवों ने आठ कर्म-प्रकृतियों का संचय, उपचय, बन्ध, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, कर रहे हैं और करेंगे।

इस प्रकार संचय आदि छह पदों की अपेक्षा चौवीस दण्डक जानना चाहिए।

आलोचना-सूत्र

९—अट्ठहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, णो पडिक्कमेज्जा (णो णिंदेज्जा णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, तं जहा—करिंसु वाहं, करेमि वाहं, करिस्सामि वाहं, अकित्ती वा मे सिया, अवण्णे वा मे सिया, अविणए वा मे सिया, कित्ती वा मे परिहाइस्सइ, जसे वा मे परिहाइस्सइ।

आठ कारणों से मायावी पुरुष माया करके न उसकी आलोचना करता है, न प्रतिक्रमण करता है, न निन्दा करता है, न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है, न विशुद्धि करता है, न पुनः वैसा नहीं करूंगा' ऐसा कहने को उद्यत होता है, न यथायोग्य प्रायश्चित्त, और तपःकर्म को स्वीकार करता है। वे आठ कारण इस प्रकार हैं—

१. मैंने (स्वयं) अकरणीय कार्य किया है,
२. मैं अकरणीय कार्य कर रहा हूँ,
३. मैं अकरणीय कार्य करूंगा।
४. मेरी अकीर्ति होगी,
५. मेरा अवर्णवाद होगा,
६. मेरा अविनय होगा,

७. मेरी कीर्त्ति कम हो जायगी,
८. मेरा यश कम हो जायगा ।
इन आठ कारणों से मायावी माया करके भी उसकी आलोचनादि नहीं करता है ।

१०—अट्ठहिं ठाणेहिं मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, (पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, तं जहा—

१. मायिस्स णं अस्सिं लोए गरहिते भवति ।
२. उववाए गरहिते भवति ।
३. आयाती गरहिता भवति ।
४. एगमवि मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, (णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, णत्थि तस्स आराहणा ।
५. एगमवि मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, (पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, अत्थि तस्स आराहणा ।
६. बहुओवि मायी मायं कट्टु णो आलोएज्जा, (णो पडिक्कमेज्जा, णो णिंदेज्जा, णो गरिहेज्जा, णो विउट्टेज्जा, णो विसोहेज्जा, णो अकरणाए अब्भुट्ठेज्जा, णो अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं) पडिवज्जेज्जा, णत्थि तस्स आराहणा ।
७. बहुओवि मायी मायं कट्टु आलोएज्जा, (पडिक्कमेज्जा, णिंदेज्जा, गरिहेज्जा, विउट्टेज्जा, विसोहेज्जा, अकरणयाए अब्भुट्ठेज्जा, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेज्जा), अत्थि तस्स आराहणा ।
८. आयरिय-उवज्झायस्स वा मे अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जेज्जा, सेयं, ममभालोएज्जा मायी णं एसे ।

मायी णं मायं कट्टु से जहाणामए अयागरेति वा तंवागरेति वा तउआगरेति वा सीसागरेति वा रुप्पागरेति वा सुवण्णागरेति वा तिलागणीति वा तुसागणीति वा बुसागणीति वा णलागणीति वा दलागणीति वा सोंडियालिछाणि वा भंडियालिछाणि वा गोलियालिछाणि वा कुंभारावाएति वा कवेल्लुआवाएति वा इट्टावाएति वा जंतवाडचुल्लीति वा लोहारंबरिसाणि वा ।

तत्ताणि समजोतिभूताणि किंसुकफुल्लसमाणाणि उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं-विणिम्मुयमाणाइं, जालासहस्साइं पमुंचमाणाइं-पमुंचमाणाइं, इंगालसहस्साइं पविक्खिरमाणाइं-पविक्खिरमाणाइं, अंतो-अंतो झियायंति, एवामेव मायी मायं कट्टु अंतो-अंतो झियाइ ।

जंवि य णं अण्णे केइ वदंति तंपि य णं मायी जाणति अहमेसे अभिसंकिज्जामि अभिसंकिज्जामि ।

मायी णं मायं कट्टु अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—णो महिड्डिएसु (णो महज्जुइएसु णो महाणुभागेसु णो महायसेसु णो महाबलेसु णो महासोक्खेसु) णो दूरंगतिएसु णो चिरट्ठितिएसु । से णं तत्थ देवे भवति णो महिड्डिए

(णो महज्जुइए णो महाणुभागे णो महायसे णो महाबले णो महासोक्खे णो दूरंगतिए) णो चिरट्ठितिए।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—मा बहुं देवे ! भासउ-भासउ।

से णं ततो देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठितिक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति, तं जहा—अंतकुलाणि वा पंतकुलाणि वा तुच्छकुलाणि वा दरिद्दकुलाणि वा भिक्खागकुलाणि वा किवणकुलाणि वा, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति। से णं तत्थ पुमे भवति दुरूवे दुवण्णे दुग्गंधे दुरसे दुफासे अणिट्ठे अकंते अप्पिए अमणुण्णे अमणामे हीणस्सरे दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे अकंतस्सरे अप्पियस्सरे अमणुण्णस्सरे अमणामस्सरे अणाएज्जवयणे पच्चायाते।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—मा बहुं अज्जउत्तो ! भासउ-भासउ।

मायी णं मायं कट्टु आलोचित-पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—महिड्ढिएसु (महज्जुइएसु महाणुभागेसु महायसेसु महाबलेसु महासोक्खेसु दूरगंतिएसु) चिरट्ठितिएसु। से णं तत्थ देवे भवति महिड्ढिए (महज्जुइए महाणुभागे महायसे महाबले महासोक्खे दूरंगतिए) चिरट्ठितिए हार-विराइय-वच्छे कडक-तुडित-थंभित-भुए अंगद-कुंडल-मट्ठ-गंडतल-कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणे विचित्तवत्थाभरणे विचित्तमालामउली कल्लाणग-पवर-वत्थ-परिहिते कल्लाणग-'पवर-गंध-मल्लाणुलेवणधरे' भासुरबोंदी पलंब-वणमालधरे दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं रसेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघातेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे महयाहत-णट्ट-गीत-वादित-तंती-तल-ताल-तुडित-घण-मुइंग-पडुप्पवादित-रवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं आढाइ परिजाणाति महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—बहुं देवे ! भासउ-भासउ।

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं (भवक्खएणं ठितिक्खएणं अणंतरं चयं) चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति—अड्ढाइं (दित्ताइं वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइं 'बहुधण-बहुजायरूव-रययाइं' आओगपओग-संपउत्ताइं विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणाइं बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलय-प्पभूयाइं) बहुजणस्स अपरिभूताइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति। से णं तत्थ पुमे भवति सुरूवे सुवण्णे सुगंधे सुरसे सुफासे इट्ठे कंते (पिए मणुण्णे) मणामे अहीणस्सरे (अदीणस्सरे इट्ठस्सरे कंतस्सरे पियस्सरे मणुण्णस्सरे) मणामस्सरे आदेज्जवयणे पच्चायाते।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं आढाति (परिजाणाति महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति)—बहुं अज्जउत्ते ! भासउ-भासउ।

आठ कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है, 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा' ऐसा कहने को उद्यत होता है, और यथायोग्य प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है। वे आठ कारण इस प्रकार हैं—

१. मायावी का यह लोक गर्हित होता है,

२. उपपात गर्हित होता है,

३. आजाति—जन्म गर्हित होता है।

४. जो मायावी एक भी मायाचार करके न आलोचना करता है, न प्रतिक्रमण करता है, न निन्दा करता है, न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है, न विशुद्धि करता है, न 'पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, न यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःकर्म को स्वीकार करता है, उसके आराधना नहीं होती है।

५. जो मायावी एक भी बार मायाचार करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है, 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

६. जो मायावी बहुत मायाचार करके न उसकी आलोचना करता है, न प्रतिक्रमण करता, है न निन्दा करता है,न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है, न विशुद्धि करता है, न 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, न यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना नहीं होती है।

७. जो मायावी बहुत मायाचार करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है. 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, यथायोग्य-प्रायश्चित्त और तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

८. मेरे आचार्य या उपाध्याय को अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो तो वे मुझे देख कर ऐसा न जान लेवें कि यह मायावी है?

अकरणीय कार्य करने के बाद मायावी उसी प्रकार भीतर ही भीतर जलता है, जैसे—लोहे को गलाने की भट्टी, ताम्बे को गलाने की भट्टी, त्रपु (जस्ता) को गलाने की भट्टी, शीशे को गलाने की भट्टी, चांदी को गलाने की भट्टी, सोने को गलाने की भट्टी, तिल की अग्नि, तुष की अग्नि, भूसे की अग्नि, नलाग्नि (नरकट की अग्नि), पत्तों की अग्नि, मुण्डिका का चूल्हा, भण्डिका का चूल्हा, गोलिका का चूल्हा[1], घड़ों का पंजावा, खप्परों का पंजावा, ईंटों का पंजावा, गुड़ बनाने की भट्टी, लोहकार की भट्टी तपती हुई, अग्निमय होती हुई, किंशुक फूल के समान लाल होती हुई, सहस्रों उल्काओं और सहस्रों ज्वालाओं को छोड़ती हुई, सहस्रों अग्निकणों को फेंकती हुई, भीतर ही भीतर जलती है, उसी प्रकार मायावी माया करके भीतर ही भीतर जलता है।

यदि कोई अन्य पुरुष आपस में बात करते हैं तो मायावी समझता है कि 'ये मेरे विषय में ही शंका कर रहे हैं!'

१. ये विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं को पकाने, रांधने आदि कार्य के लिए काम में आने वाले छोटे-बड़े चूल्हों के नाम हैं।

(णो महज्जुइए णो महाणुभागे णो महायसे णो महाबले णो महासोक्खे णो दूरंगतिए) णो चिरट्ठितिए।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—मा बहुं देवे! भासउ-भासउ।

से णं ततो देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठितिक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति, तं जहा—अंतकुलाणि वा पंतकुलाणि वा तुच्छकुलाणि वा दरिद्दकुलाणि वा भिक्खागकुलाणि वा किवणकुलाणि वा, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति। से णं तत्थ पुमे भवति दुरूवे दुवण्णे दुग्गंधे दुरसे दुफासे अणिट्ठे अकंते अप्पिए अमणुण्णे अमणामे हीणस्सरे दीणस्सरे अणिट्ठस्सरे अकंतस्सरे अप्पियस्सरे अमणुण्णस्सरे अमणामस्सरे अणाएज्जवयणे पच्चायाते।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं णो आढाति णो परिजाणाति णो महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—मा बहुं अज्जउत्तो! भासउ-भासउ।

मायी णं मायं कट्टु आलोचित-पडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा अण्णतरेसु देवलोगेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—महिड्ढिएसु (महज्जुइएसु महाणुभागेसु महायसेसु महाबलेसु महासोक्खेसु दूरंगतिएसु) चिरट्ठितिएसु। से णं तत्थ देवे भवति महिड्ढिए (महज्जुइए महाणुभागे महायसे महाबले महासोक्खे दूरंगतिए) चिरट्ठितिए हार-विराइय-वच्छे कडक-तुडित-थंभित-भुए अंगद-कुंडल-मट्ठ-गंडतल-कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणे विचित्तवत्थाभरणे विचित्तमालामउली कल्लाणग-पवर-वत्थ-परिहिते कल्लाणग-'पवर-गंध-मल्लाणुलेवणधरे' भासुरबोंदी पलंब-वणमालधरे दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं रसेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघातेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणे पभासेमाणे महयाहत-णट्ट-गीत-वादित-तंती-तल-ताल-तुडित-घण-मुइंग-पडुप्पवादित-रवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं आढाइ परिजाणाति महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच देवा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति—बहुं देवे! भासउ-भासउ।

से णं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं (भवक्खएणं ठितिक्खएणं अणंतरं चयं) चइत्ता इहेव माणुस्सए भवे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति—अड्ढाइं (दित्ताइं वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइं 'बहुधण-बहुजायरूव-रय याइं' आओगपओग-संपउत्ताइं विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणाइं बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलय-प्पसूयाइं) बहुजणस्स अपरिभूताइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाति। से णं तत्थ पुमे भवति सुरूवे सुवण्णे सुगंधे सुरसे सुफासे इट्ठे कंते (पिए मणुण्णे) मणामे अहीणस्सरे (अदीणस्सरे इट्ठस्सरे कंतस्सरे पियस्सरे मणुण्णस्सरे) मणामस्सरे आदेज्जवयणे पच्चायाते।

जावि य से तत्थ बाहिरब्भंतरिया परिसा भवति, सावि य णं आढाति (परिजाणाति महरिहेणं आसणेणं उवणिमंतेति, भासंपि य से भासमाणस्स जाव चत्तारि पंच जणा अणुत्ता चेव अब्भुट्ठेंति)—बहुं अज्जउत्ते! भासउ-भासउ।

आठ कारणों से मायावी माया करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है, 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा' ऐसा कहने को उद्यत होता है, और यथायोग्य प्रायश्चित्त तथा तपःकर्म स्वीकार करता है। वे आठ कारण इस प्रकार हैं—

१. मायावी का यह लोक गर्हित होता है,
२. उपपात गर्हित होता है,
३. आजाति—जन्म गर्हित होता है।

४. जो मायावी एक भी मायाचार करके न आलोचना करता है, न प्रतिक्रमण करता है, न निन्दा करता है, न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है, न विशुद्धि करता है, न 'पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, न यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःकर्म को स्वीकार करता है, उसके आराधना नहीं होती है।

५. जो मायावी एक भी बार मायाचार करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है, 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

६. जो मायावी बहुत मायाचार करके न उसकी आलोचना करता है. न प्रतिक्रमण करता, है न निन्दा करता है,न गर्हा करता है, न व्यावृत्ति करता है, न विशुद्धि करता है, न 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, न यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना नहीं होती है।

७. जो मायावी बहुत मायाचार करके उसकी आलोचना करता है, प्रतिक्रमण करता है, निन्दा करता है, गर्हा करता है, व्यावृत्ति करता है, विशुद्धि करता है. 'मैं पुनः वैसा नहीं करूंगा', ऐसा कहने को उद्यत होता है, यथायोग्य-प्रायश्चित्त और तपःकर्म स्वीकार करता है, उसके आराधना होती है।

८. मेरे आचार्य या उपाध्याय को अतिशायी ज्ञान और दर्शन उत्पन्न हो तो वे मुझे देख कर ऐसा न जान लेवें कि यह मायावी है?

अकरणीय कार्य करने के बाद मायावी उसी प्रकार भीतर ही भीतर जलता है. जैसे—लोहे को गलाने की भट्टी, ताम्बे को गलाने की भट्टी, त्रपु (जस्ता) को गलाने की भट्टी, शीशे को गलाने की भट्टी, चांदी को गलाने की भट्टी, सोने को गलाने की भट्टी, तिल की अग्नि, तुष की अग्नि, भूसे की अग्नि, नलाग्नि (नरकट की अग्नि), पत्तों की अग्नि, मुण्डिका का चूल्हा, भण्डिका का चूल्हा, गोलिका का चूल्हा[1], घड़ों का पंजावा, खप्परों का पंजावा, ईटों का पंजावा, गुड़ बनाने की भट्टी, लोहकार की भट्टी तपती हुई, अग्निमय होती हुई, किंशुक फूल के समान लाल होती हुई, सहस्रों उल्काओं और सहस्रों ज्वालाओं को छोड़ती हुई, सहस्रों अग्निकणों को फेंकती हुई, भीतर ही भीतर जलती है, उसी प्रकार मायावी माया करके भीतर ही भीतर जलता है।

यदि कोई अन्य पुरुष आपस में बात करते हैं तो मायावी समझता है कि 'ये मेरे विषय में ही शंका कर रहे हैं!'

१. ये विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं को पकाने, राँधने आदि कार्य के लिए काम में आने वाले छोटे-बड़े चूल्हों के नाम हैं।

कोई मायावी माया करके उसकी आलोचना या प्रतिक्रमण किये विना ही काल-मास में काल करके किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है, किन्तु वह महाऋद्धि वाले, महाद्युति वाले विक्रियादि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्य वाले, ऊंची गति वाले और दीर्घस्थिति वाले देवों में उत्पन्न नहीं होता। वह देव होता है, किन्तु महाऋद्धि वाला, महाद्युति वाला, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाला, ऊंची गतिवाला और दीर्घ स्थितिवाला देव नहीं होता।

वहां देवलोक में उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी न उसको आदर देती है, न उसे स्वामी के रूप में मानती है और न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाँच देव बिना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं 'देव ! बहुत मत बोलो, बहुत मत बोलो।'

पुनः वह देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर देवलोक से च्युत होकर यहाँ मनुष्यलोक में मनुष्य भव में जो ये अन्तकुल हैं, या प्रान्तकुल हैं, या तुच्छकुल हैं, या दरिद्रकुल हैं, या भिक्षुककुल हैं, या कृपणकुल हैं या इसी प्रकार के अन्य हीन कुल हैं, उनमें मनुष्य के रूप में उत्पन्न होता है।

वहां वह कुरूप, कुवर्ण, दुर्गन्ध, अनिष्ट रस और कठोर स्पर्शवाला पुरुष होता है। वह अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और मन को न गमने योग्य होता है। वह हीनस्वर, दीनस्वर, अनिष्ट स्वर, अकान्तस्वर, अप्रियस्वर, अमनोज्ञस्वर, अरुचिकर स्वर और अनादेय वचनवाला होता है।

वहाँ उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका न आदर करती है, न उसे स्वामी के रूप में समझती है, न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। जब वह बोलने के लिए खड़ा होता है, तब चार-पाँच मनुष्य विना कहे ही खड़े जाते हैं और कहते हैं—'आर्यपुत्र ! बहुत मत बोलो, बहुत मत बोलो।'

मायावी माया करके उसकी आलोचना कर, प्रतिक्रमण कर, कालमास में काल कर किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है। वह महाऋद्धि वाले, महाद्युति वाले, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाले, ऊंची गतिवाले, और दीर्घ स्थितिवाले देवों में उत्पन्न होता है।

वह महाऋद्धिवाला, महाद्युतिवाला, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाला, ऊंची गतिवाला और दीर्घ स्थितिवाला देव होता है। उसका वक्षःस्थल हार से शोभित होता है, वह भुजाओं में कड़े, तोड़े और अंगद (बाजूबन्द) पहने हुए रहता है। उसके कानों में चंचल तथा कपोल तक कानों को घिसने वाले कुण्डल होते हैं। वह विचित्र वस्त्राभरणों, विचित्र मालाओं और सेहरों वाला मांगलिक एवं उत्तम वस्त्रों को पहने हुए होता है, वह मांगलिक, प्रवर, सुगन्धित पुष्प और विलेपन को धारण किये हुए होता है। उसका शरीर तेजस्वी होता है, वह लम्बी लटकती हुई मालाओं को धारण किये रहता है। वह दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य स्पर्श, दिव्य संघात (शरीर की बनावट), दिव्य संस्थान (शरीर की आकृति) और दिव्य ऋद्धि से युक्त होता है। वह दिव्यद्युति, दिव्यप्रभा, दिव्यकान्ति, दिव्य अर्चि, दिव्य तेज, और दिव्य लेश्या से दशों दिशाओं को उद्योतित करता है, प्रभासित करता है, वह नाट्यों, गीतों तथा कुशल

बादकों के द्वारा जोर से बजाये गये वादित्र, तंत्री तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदंग की महान् ध्वनि से युक्त दिव्य भोगों को भोगता हुआ रहता है।

उसकी वहाँ जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका आदर करती है, उसे स्वामी के रूप में मानती है, उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाँच देव बिना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं—'देव ! और अधिक बोलिए, और अधिक बोलिए।'

पुनः वह देव आयुक्षय के, भवक्षय के और स्थितिक्षय के अनन्तर देवलोक से च्युत होकर यहीं मनुष्यलोक में, मनुष्य भव में सम्पन्न, दीप्त, विस्तीर्ण और विपुल भवन, शयन, आसन यान और वाहनवाले, बहुधन, बहु सुवर्ण और बहुचांदी वाले, आयोग और प्रयोग (लेनदेन) में संप्रयुक्त, प्रचुर भक्त-पान का त्याग करनेवाले, अनेक दासी-दास, गाय-भैंस, भेड़ आदि रखने वाले और बहुत व्यक्तियों के द्वारा अपराजित, ऐसे उच्च कुलों में मनुष्य के रूप में उत्पन्न होता है।

वहाँ वह सुरूप, सुवर्ण सुगन्ध, सुरस, और सुस्पर्श वाला होता है। वह इष्ट, कान्त, प्रिय मनोज्ञ और मन के लिए गम्य होता है। वह उच्च स्वर, प्रखर स्वर, कान्त स्वर प्रिय स्वर, मनोज्ञ स्वर, रुचिकर स्वर, और आदेय वचन वाला होता है।

वहाँ पर उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका आदर करती है, उसे स्वामी के रूप में मानती है, उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। वह जब भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाँच मनुष्य बिना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं—आर्यपुत्र ! और अधिक बोलिए, और अधिक बोलिए। (इस प्रकार उसे और अधिक बोलने के लिए ससम्मान प्रेरणा की जाती है।)

संवर-असंवर-सूत्र

११—अट्ठविहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियसंवरे, (चक्खिदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिदियसंवरे), फासिंदियसंवरे, मणसंवरे, वइसंवरे, कायसंवरे।

संवर आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-संवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-संवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-संवर, ४. रसनेन्द्रिय-संवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-संवर, ६. मनःसंवर, ७. वचन-संवर, ८. काय-संवर (११)।

१२—अट्ठविहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसंवरे, (चक्खिदियअसंवरे, घाणिंदिय-असंवरे, जिब्भिदियअसंवरे, फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे, वइअसंवरे, कायअसंवरे।

असंवर आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-असंवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-असंवर, २. घ्राणेन्द्रिय-असंवर, ४. रसनेन्द्रिय-असंवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर, ६. मनः-असंवर, ७. वचन-असंवर, ८. काय-असंवर (१२)।

स्पर्श-सूत्र

१३—अट्ठ फासा पण्णत्ता, तं जहा—कक्खडे, मउए, गरुए, लहुए, सीते, उसिणे, णिद्धे, लुक्खे।

कोई मायावी माया करके उसकी आलोचना या प्रतिक्रमण किये विना ही काल-मास में काल करके किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है, किन्तु वह महाऋद्धि वाले, महाद्यु ति वाले विक्रियादि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महावलशाली, महान् सौख्य वाले, ऊंची गति वाले और दीर्घस्थिति वाले देवों में उत्पन्न नहीं होता। वह देव होता है, किन्तु महाऋद्धि वाला, महाद्यु ति वाला, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महावलशाली, महान् सौख्यवाला, ऊंची गतिवाला और दीर्घ स्थितिवाला देव नहीं होता।

वहां देवलोक में उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी न उसको आदर देती है, न उसे स्वामी के रूप में मानती है और न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। जव वह भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाँच देव विना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं 'देव! वहुत मत बोलो, बहुत मत बोलो।'

पुनः वह देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय के अनन्तर देवलोक से च्युत होकर यहाँ मनुष्यलोक में मनुष्य भव में जो ये अन्तकुल हैं, या प्रान्तकुल हैं, या तुच्छकुल हैं, या दरिद्रकुल हैं, या भिक्षुककुल हैं, या कृपणकुल हैं या इसी प्रकार के अन्य हीन कुल हैं, उनमें मनुष्य के रूप में उत्पन्न होता है।

वहां वह कुरूप, कुवर्ण, दुर्गन्ध, अनिष्ट रस और कठोर स्पर्शवाला पुरुष होता है। वह अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और मन को न गमने योग्य होता है। वह हीनस्वर, दीनस्वर, अनिष्ट स्वर, अकान्तस्वर, अप्रियस्वर, अमनोज्ञस्वर, अरुचिकर स्वर और अनादेय वचनवाला होता है।

वहाँ उसकी जो वाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका न आदर करती है, न उसे स्वामी के रूप में समझती है, न महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। जब वह बोलने के लिए खड़ा होता है, तव चार-पाँच मनुष्य विना कहे ही खड़े जाते हैं और कहते हैं—'आर्यपुत्र! बहुत मत बोलो, बहुत मत बोलो।'

मायावी माया करके उसकी आलोचना कर, प्रतिक्रमण कर, कालमास में काल कर किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होता है। वह महाऋद्धि वाले, महाद्यु ति वाले, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाले, ऊंची गतिवाले, और दीर्घ स्थितिवाले देवों में उत्पन्न होता है।

वह महाऋद्धिवाला, महाद्यु तिवाला, विक्रिया आदि शक्ति से युक्त, महायशस्वी, महाबलशाली, महान् सौख्यवाला, ऊंची गतिवाला और दीर्घ स्थितिवाला देव होता है। उसका वक्षःस्थल हार से शोभित होता है, वह भुजाओं में कड़े, तोड़े और अंगद (बाजूबन्द) पहने हुए रहता है। उसके कानों में चंचल तथा कपोल तक कानों को घिसने वाले कुण्डल होते हैं। वह विचित्र वस्त्राभरणों, विचित्र मालाओं और सेहरों वाला मांगलिक एवं उत्तम वस्त्रों को पहने हुए होता है, वह मांगलिक, प्रवर, सुगन्धित पुष्प और विलेपन को धारण किये हुए होता है। उसका शरीर तेजस्वी होता है, वह लम्बी लटकती हुई मालाओं को धारण किये रहता है। वह दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य स्पर्श, दिव्य संघात (शरीर की बनावट), दिव्य संस्थान (शरीर की आकृति) और दिव्य ऋद्धि से युक्त होता है। वह दिव्यद्यु ति, दिव्यप्रभा, दिव्यकान्ति, दिव्य अचि, दिव्य तेज, और दिव्य लेश्या से दशों दिशाओं को उद्योतित करता है, प्रभासित करता है, वह नाट्यों, गीतों तथा कुशल

वादकों के द्वारा जोर से बजाये गये वादित्र, तंत्री तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदंग की महान् ध्वनि से युक्त दिव्य भोगों को भोगता हुआ रहता है।

उसकी वहाँ जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका आदर करती है, उसे स्वामी के रूप में मानती है, उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। जब वह भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाँच देव बिना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं—'देव ! और अधिक बोलिए, और अधिक बोलिए।'

पुन: वह देव आयुक्षय के, भवक्षय के और स्थितिक्षय के अनन्तर देवलोक मे च्युत होकर यहीं मनुष्यलोक में, मनुष्य भव में सम्पन्न, दीप्त, विस्तीर्ण और विपुल भवन, शयन, आसन यान और वाहनवाले, बहुधन, बहु सुवर्ण और बहुचांदी वाले, आयोग और प्रयोग (लेनदेन) में संप्रयुक्त, प्रचुर भक्त-पान का त्याग करनेवाले, अनेक दासी-दास, गाय-भैंस, भेड़ आदि रखने वाले और बहुत व्यक्तियों के द्वारा अपराजित, ऐसे उच्च कुलों में मनुष्य के रूप में उत्पन्न होता है।

वहाँ वह सुरूप, सुवर्ण सुगन्ध, सुरस, और सुस्पर्श वाला होता है। वह इष्ट, कान्त, प्रिय मनोज्ञ और मन के लिए गम्य होता है। वह उच्च स्वर, प्रखर स्वर, कान्त स्वर प्रिय स्वर, मनोज्ञ स्वर, रुचिकर स्वर, और आदेय वचन वाला होता है।

वहाँ पर उसकी जो बाह्य और आभ्यन्तर परिषद् होती है, वह भी उसका आदर करती है, उसे स्वामी के रूप में मानती है, उसे महान् व्यक्ति के योग्य आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित करती है। वह जब भाषण देना प्रारम्भ करता है, तब चार-पाँच मनुष्य बिना कहे ही खड़े हो जाते हैं और कहते हैं—आर्यपुत्र ! और अधिक बोलिए, और अधिक बोलिए। (इस प्रकार उसे और अधिक बोलने के लिए ससम्मान प्रेरणा की जाती है।)

संवर-असंवर-सूत्र

११—अट्ठविहे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियसंवरे, (चक्खिदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिदियसंवरे), फासिंदियसंवरे, मणसंवरे, वइसंवरे, कायसंवरे।

संवर आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-संवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-संवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-संवर, ४. रसनेन्द्रिय-संवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-संवर, ६. मन:संवर, ७. वचन-संवर, ८. काय-संवर (११)।

१२—अट्ठविहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसंवरे, (चक्खिदियअसंवरे, घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिदियअसंवरे, फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे, वइअसंवरे, कायअसंवरे।

असंवर आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-असंवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-असंवर, २. घ्राणेन्द्रिय-असंवर, ४. रसनेन्द्रिय-असंवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर, ६. मन:-असंवर, ७. वचन-असंवर, ८. काय-असंवर (१२)।

स्पर्श-सूत्र

१३—अट्ठ फासा पण्णत्ता, तं जहा—कक्खडे, मउए, गरुए, लहुए, सीते, उसिणे, णिद्धे, लुक्खे।

स्पर्श आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कर्कश, २. मृदु, ३. गुरु, ४. लघु, ५. शीत, ६. उष्ण, ७. स्निग्ध, ८. रूक्ष (१३)।

लोकस्थिति-सूत्र

१४—अट्ठविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—आगासपतिट्ठिते वाते, वातपतिट्ठिते उदही, (उदधिपतिट्ठिता पुढवी. पुढविपतिट्ठिता तसा थावरा पाणा, अजीवा जीवपतिट्ठिता) जीवा कम्मपतिट्ठिता, अजीवा जीवसंगहीता, जीवा कम्मसंगहीता।

लोक स्थिति आठ प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. वायु (तनुवात) आकाश पर प्रतिष्ठित है।
२. समुद्र (घनोदधि) वायु पर प्रतिष्ठित है।
३. पृथ्वी समुद्र पर प्रतिष्ठित है।
४. त्रस-स्थावर प्राणी पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हैं।
५. अजीव जीव पर प्रतिष्ठित हैं।
६. जीव कर्म पर प्रतिष्ठित हैं।
७. अजीव जीव के द्वारा संगृहीत है।
८. जीव कर्म के द्वारा संगृहीत हैं (१४)।

गणिसंपदा-सूत्र

१५—अट्ठविहा गणिसंपया पण्णत्ता, तं जहा—आचारसंपया, सुयसंपया, सरीरसंपया, वयणसंपया, वायणासंपया, मतिसंपया, पओगसंपया, संगहपरिण्णा णाम अट्ठमा।

गणी (आचार्य) की सम्पदा आठ प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. आचार-सम्पदा—संयम की समृद्धि,
२. श्रुत-सम्पदा—श्रुतज्ञान की समृद्धि,
३. शरीर-सम्पदा—प्रभावक शरीर-सौन्दर्य,
४. वचन-सम्पदा—वचन-कुशलता,
५. वाचना-सम्पदा—अध्यापन-निपुणता,
६. मति-सम्पदा—बुद्धि की कुशलता,
७. प्रयोग-सम्पदा—वाद-प्रवीणता,
८. संग्रह-परिज्ञा—संघ-व्यवस्था की निपुणता (१५)।

महानिधि-सूत्र

१६—एगमेगे णं महाणिही अट्ठचक्कवालपतिट्ठाणे अट्ठट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

चक्रवर्ती की प्रत्येक महानिधि आठ-आठ पहियों पर आधारित है और आठ-आठ योजन ऊंची कही गई है (१६)।

समिति-सूत्र

१७—अट्ठ समितीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती,

आयाणभंड-मत्त-णिक्खेवणासमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणियासमिती, मण-समिती, वइसमिती, कायसमिती।

समितियां आठ कही गई हैं। जैसे—

१. ईर्यासमिति, २. भाषासमिति, ३. एषणासमिति, ४. आदान-भाण्ड-अमत्र-निक्षेपणा-समिति, ५. उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापनासमिति, ६. मन:समिति, ७. वचनसमिति, ८. कायसमिति (१७)।

आलोचना-सूत्र

१८—अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा—आयारवं, आधारवं, ववहारवं, ओवीलए, पकुव्वए, अपरिस्साई, णिज्जावए, अवायदंसी।

आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है। जैसे—

१. आचारवान्—जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य, इन पाँच आचारों से सम्पन्न हो।
२. आधारवान्—जो आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोचना किये जाने वाले समस्त अतिचारों को जानने वाला हो।
३. व्यवहारवान्—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत, इन पाँच व्यवहारों का ज्ञाता हो।
४. अपव्रीडक—आलोचना करने वाले व्यक्ति में वह लाज या संकोच से मुक्त होकर यथार्थ आलोचना कर सके, ऐसा साहस उत्पन्न करने वाला हो।
५. प्रकारी—आलोचना करने पर विशुद्धि कराने वाला हो।
६. अपरिश्रावी—आलोचना करने वाले के आलोचित दोषों को दूसरों के सामने प्रकट करने वाला न हो।
७. निर्यापक—बड़े प्रायश्चित्त को भी निभा सके, ऐसा सहयोग देने वाला हो।
८. अपायदर्शी—प्रायश्चित्त-भंग से तथा ययार्थ आलोचना न करने से होने वाले दोषों को दिखाने वाला हो (१८)।

१९—अट्ठहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोइत्तए, तं जहा—जातिसंपण्णे, कुलसंपण्णे, विणयसंपण्णे, णाणसंपण्णे, दंसणसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे, खंते, दंते।

आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार अपने दोषों की आलोचना करने के लिए योग्य होता है। जैसे—

१. जातिसम्पन्न, २. कुलसम्पन्न, ३. विनयसम्पन्न, ४. ज्ञानसम्पन्न, ५. दर्शनसम्पन्न, ६. चारित्रसम्पन्न, ७. क्षान्त (क्षमाशील) ८. दान्त (इन्द्रिय-जयी) (१९)।

प्रायश्चित्त-सूत्र

२०—अट्ठविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे।

प्रायश्चित्त आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे

१. आलोचना के योग्य, २. प्रतिक्रमण के योग्य,

३. आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य,
४. विवेक के योग्य, ५. व्युत्सर्ग के योग्य, ६. तप के योग्य,
७. छेद के योग्य, ८. मूल के योग्य (२०)।

मदस्थान-सूत्र

२१—अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—जातिमए, कुलमए, बलमए, रूवमए, तवमए, सुतमए, लाभमए, इस्सरियमए।

मद के स्थान आठ कहे गये हैं। जैसे—

१. जातिमद, २. कुलमद, ३. बलमद, ४. रूपमद, ५. तपोमद, ६. श्रुतमद,
७. लाभमद, ८. ऐश्वर्यमद (२१)।

अक्रियावादि-सूत्र

२२—अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता, तं जहा—एगावाई, अणेगावाई, मितवाई, णिम्मितवाई, सायवाई, समुच्छेदवाई, णितावाई, ण संतिपरलोगवाई।

अक्रियावादी आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. एकवादी—एक ही तत्त्व को स्वीकार करने वाले।
२. अनेकवादी—एकत्व को सर्वथा अस्वीकार कर अनेक तत्त्वों को ही मानने वाले।
३. मितवादी—जीवों को परिमित मानने वाले।
४. निर्मितवादी—ईश्वर को सृष्टि का निर्माता माननेवाले।
५. सातवादी—सुख से ही सुख की प्राप्ति मानने वाले।
६. समुच्छेदवादी—क्षणिक वादी, वस्तु को सर्वथा क्षण विनश्वर मानने वाले।
७. नित्यवादी, वस्तु को सर्वथा नित्य मानने वाले।
८. अ-शान्ति-परलोकवादी—मोक्ष एवं परलोक को नहीं मानने वाले (२२)।

महानिमित्त-सूत्र

२३—अट्ठविहे महाणिमित्ते पण्णत्ते, तं जहा—भोमे, उप्पाते, सुविणे, अंतलिक्खे, अंगे, सरे, लक्खणे, वंजणे।

आठ प्रकार के शुभाशुभ-सूचक महानिमित्त कहे गये हैं। जैसे—

१. भौम—भूमि की स्निग्धता—रूक्षता भूकम्प आदि से शुभाशुभ जानना।
२. उत्पात—उल्कापात रुधिर-वर्षा आदि से शुभाशुभ जानना।
३. स्वप्न—स्वप्नों के द्वारा भावी शुभाशुभ जानना।
४. आन्तरिक्ष—आकाश में विविध वर्णों के देखने से शुभाशुभ जानना।
५. आङ्ग—शरीर के अंगों को देखकर शुभाशुभ जानना।
६. स्वर—स्वर को सुनकर शुभाशुभ जानना।
७. लक्षण—स्त्री पुरुषों के शरीर-गत चक्र आदि लक्षणों को देखकर शुभाशुभ जानना।
८. व्यञ्जन—तिल, मसा आदि देखकर शुभाशुभ जानना (२३)।

वचनविभक्ति-सूत्र

२४—अट्ठविधा वयणविभत्ती पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथाएँ

णिद्देसे पढमा होती, बितिया उवएसणे।
ततिया करणम्मि कता, चउत्थी संपदावणे ॥१॥

पंचमी य अवादाणे, छट्ठी सस्सामिवादणे।
सत्तमी सण्णिहाणत्थे, अट्ठमी आमंतणी भवे ॥२॥

तत्थ पढमा विभत्ती, णिद्देसे—सो इमो अहं वत्ति।
बितिया उण उवएसे—भण 'कुण व' इमं व तं वत्ति ॥३॥

ततिया करणम्मि कया—णीतं व कतं व तेण व मए व।
हंदि णमो साहाए, हवति चउत्थी पदाणंमि ॥४॥

अवणे गिण्हसु तत्तो, इत्तोत्ति वा पंचमी अवादाणे।
छट्ठी तस्स इमस्स व, गतस्स वा सामि-संबंधे ॥५॥

हवइ पुण सत्तमी तमिमम्मि आहारकालभावे य।
आमंतणी भवे अट्ठमी उ जह हे जुवाण! त्ति ॥६॥

वचन-विभक्तियाँ आठ प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. निर्देश (नमोच्चारण) में प्रथमा विभक्ति होती है।
२. उपदेश क्रिया से व्याप्त कर्म के प्रतिपादन में द्वितीया विभक्ति होती है।
३. क्रिया के प्रति साधकतम कारण के प्रतिपादन में तृतीया विभक्ति होती है।
४. सत्कार-पूर्वक दिये जाने वाले पात्र को देने, नमस्कार आदि करने के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है।
५. पृथक्ता, पतनादि अपादान बताने के अर्थ में पंचमी विभक्ति होती है।
६. स्वामित्व-प्रतिपादन करने के अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।
७. सन्निधान या आधार बताने के अर्थ में सप्तमी विभक्ति होती है।
८. किसी को सम्बोधन करने या पुकारने के अर्थ में अष्टमी विभक्ति होती है।

१. प्रथमा विभक्ति का चिह्न—वह, यह, मैं, आप, तुम आदि।
२. द्वितीया विभक्ति का चिह्न—को, इसको कहो, उसे करो, आदि।
३. तृतीया विभक्ति का चिह्न—से, द्वारा, जैसे—गाड़ी से या गाड़ी के द्वारा आया, मेरे द्वारा किया गया, आदि
४. चतुर्थी विभक्ति का चिह्न—लिए—जैसे गुरु के लिए नमस्कार, आदि।
५. पंचमी विभक्ति का चिह्न—जैसे—घर ले जाओ, यहां से ले जा आदि।
६. षष्ठी विभक्ति का चिह्न—यह उसकी पुस्तक है, वह इसकी है, आदि।
७. सप्तमी विभक्ति का चिह्न—जैसे उस चौकी पर पुस्तक, इस पर दीपक आदि।
८. अष्टमी विभक्ति का चिह्न—हे युवक, हे भगवान्, आदि (२४)।

छद्मस्थ-केवलि-सूत्र

२५—अट्ठ ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण याणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, (अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं), गंधं, वातं।

एताणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली (सव्वभावेणं, जाणइ पासइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं), गंधं वातं।

आठ पदार्थों को छद्मस्थ पुरुष सम्पूर्ण रूप से न जानता है और न देखता है। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीर-मुक्त जीव, ५. परमाणु पुद्गल, ६. शब्द, ७. गन्ध, ८. वायु।

प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हन् जिन केवली इन आठ पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते-देखते हैं। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीर- मुक्त जीव, ५. परमाणु पुद्गल, ६. शब्द, ७. गन्ध, ८. वायु (२५)।

आयुर्वेद-सूत्र

२६—अट्ठविधे आउव्वेदे पण्णत्ते, तं जहा—कुमारभिच्चे, कायतिगिच्छा, सालाई, सल्लहत्ता, जंगोली, भूतविज्जा, खारतंते, रसायणे।

आयुर्वेद आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. कुमारभृत्य—बाल-रोगों का चिकित्साशास्त्र।
२. कायचिकित्सा—शारीरिक रोगों का चिकित्साशास्त्र।
३. शालाक्य—शलाका (सलाई) के द्वारा नाक-कान आदि के रोगों का चिकित्साशास्त्र।
४. शल्यहत्या—शस्त्र-द्वारा चीर-फाड़ करने का शास्त्र।
५. जंगोली—विष-चिकित्साशास्त्र।
६. भूतविद्या—भूत, प्रेत, यक्षादि से पीडित व्यक्ति की चिकित्सा का शास्त्र।
७. क्षारतन्त्र—वाजीकरण, वीर्य-वर्धक औषधियों का शास्त्र।
८. रसायन—पारद आदि धातु-रसों आदि के द्वारा चिकित्सा का शास्त्र (२६)।

अग्रमहिषी-सूत्र

२७—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पउमा, सिवा, सची, अंजू, अमला, अच्छरा, णवमिया, रोहिणी।

देवेन्द्र देवराज शक्र के आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. पद्मा, २. शिवा, ३. शची, ४. अंजु, ५. अमला, ६. अप्सरा, ७. नवमिका, ८. रोहिणी (२७)।

२८—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कण्हा, कण्हराई, रामा, रामरक्खिता, वसू, वसुगुत्ता वसुमित्ता, वसुंधरा।

देवेन्द्र देवराज ईशान के आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं। जैसे—

१. कृष्णा, २. कृष्णराजी, ३. रामा, ४. रामरक्षिता, ५. वसु, ६. वसुगुप्ता ७. वसुमित्रा, ८. वसुन्धरा (२८)।

२९—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं (२९)।

३०—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणस्स महारण्णो अट्ठग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ।

देवेन्द्र, देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वैश्रमण के आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं (३०)।

महाग्रह-सूत्र

३१—अट्ठ महग्गहा पण्णत्ता, तं जहा—चंदे, सूरे, सुक्के, बुहे, बहस्सती, अंगारे, सणिचरे, केऊ।

आठ महाग्रह कहे गये हैं। जैसे—

१. चन्द्र, २. सूर्य, ३. शुक्र, ४. बुध, ५. बृहस्पति, ६. अंगार, ७. शनैश्चर, ८. केतु (३१)।

तृणवनस्पति-सूत्र

३२—अट्ठविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—मूले, कंदे, खंधे, तया, साले, पवाले, पत्ते, पुप्फे।

तृण वनस्पतिकायिक आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. मूल, २. कन्द, ३. स्कन्द, ४. त्वचा, ५. शाखा, ६. प्रवाल (कोंपल) ७. पत्र, ८. पुष्प (३२)।

संयम-असंयम-सूत्र

३३—चउरिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स अट्ठविधे संजमे कज्जति, तं जहा—चक्खुमातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति। (घाणामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति। जिब्भामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवति)। फासामातो सोक्खातो अववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।

चतुरिन्द्रिय जीवों का घात नहीं करने वाले के आठ प्रकार का संयम होता है। जैसे—

१. चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी सुखका वियोग नहीं करने से,
२. चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से,
३. घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से,
४. घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से,
५. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से,
६. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से,

७. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से,
८. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से (३३)।

३४—चउरिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स अट्ठविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—चक्खुमातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। (घाणामातो सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति, जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति)। फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

चतुरिन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के आठ प्रकार का असंयम होता है। जैसे—
१. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
२. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
३. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
४. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
५. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
६. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
७ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
८. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से (३४)।

सूक्ष्म-सूत्र

३५—अट्ठ सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे, सिणेहसुहुमे।

सूक्ष्म जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. प्राणसूक्ष्म—अनुंधरी, कुन्थु आदि प्राणी,
२. पनक सूक्ष्म—उल्ली आदि,
३. बीजसूक्ष्म—धान आदि के बीज के मुख-मूल की कणी आदि जिसे तुष-मुख कहते हैं।
४. हरितसूक्ष्म—एकदम नवीन उत्पन्न हरित काय जो पृथ्वी के समान वर्ण वाला होता है।
५. पुष्पसूक्ष्म—वट-पीपल आदि के सूक्ष्म पुष्प।
६. अण्डसूक्ष्म—मक्षिका, पिपीलिकादि के सूक्ष्म अण्डे।
७. लयनसूक्ष्म—कीड़ीनगरा आदि।
८. स्नेहसूक्ष्म—ओस, हिम आदि जलकाय के सूक्ष्म जीव (३५)।

भरतचक्रवर्ति-सूत्र

३६—भरहस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ पुरिसजुगाइं अणुबद्धं सिद्धाइं (बुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुडाइं) सव्वदुक्खप्पहीणाइं, तं जहा—आदिच्चजसे, महाजसे, अतिबले, महाबले, तेयवीरिए कत्तवीरिए दंडवीरिए, जलवीरिए।

चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत के आठ उत्तराधिकारी पुरुष-युग राजा लगातार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त और समस्त दुःखों से रहित हुए। जैसे—

१. आदित्ययश, २. महायश, ३. अतिबल, ४. महाबल, ५. तेजोवीर्य, ६. कार्तवीर्य, ७. दण्डवीर्य, ८. जलवीर्य (३६)।

पार्श्वगण-सूत्र

३७—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभचारी, सोमे, सिरिधरे, वीरभद्दे, जसोभद्दे।

पुरुषादानीय (लोक-प्रिय) अर्हन् पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर हुए। जैसे—
१. शुभ, २. आर्यघोष, ३. वशिष्ठ, ४. ब्रह्मचारी, ५. सोम, ६. श्रीधर, ७. वीरभद्र, यशोभद्र (३७)।

दर्शन-सूत्र

३८—अट्ठविधे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मदंसणे, मिच्छदंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, (अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे), केवलदंसणे, सुविणदंसणे।

दर्शन आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. सम्यग्दर्शन, २. मिथ्यादर्शन, ३. सम्यग्मिथ्यादर्शन, ४. चक्षुदर्शन, ५. अचक्षुदर्शन, ६. अवधिदर्शन, ७ केवलदर्शन, ८. स्वप्नदर्शन (३८)।

औपमिक-काल-सूत्र

३९—अट्ठविधे अद्धोवमिए पण्णत्ते, तं जहा—पलिओवमे, सागरोवमे, ओसप्पिणी, उस्सप्पिणी, पोग्गलपरियट्टे, तीतद्धा, अणागतद्धा, सव्वद्धा।

औपमिक अद्धा (काल) आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. पल्योपम, २. सागरोपम, ३. अवसर्पिणी, ४. उत्सर्पिणी, ५. पुद्गल परिवर्त, ६. अतीत-अद्धा, ७. अनागत-अद्धा, ८. सर्व-अद्धा (३९)।

अरिष्टनेमि-सूत्र

४०—अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स जाव अट्ठमातो पुरिसजुगातो जुगंतकरभूमी। दुवासपरियाए अंतमकासी।

अर्हत् अरिष्टनेमि से आठवें पुरुषयुग तक युगान्तकर भूमि रही—मोक्ष जाने का क्रम चालू रहा, आगे नहीं।

अर्हत् अरिष्टनेमि के केवलज्ञान प्राप्त करने के दो वर्ष बाद ही उनके शिष्य मोक्ष जाने लगे थे (४०)।

महावीर-सूत्र

४१—समणेणं भगवता महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुंडे भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वाइया, तं जहा—

संग्रहणी-गाहा

वीरंगए वीरजसे, संजय एणिज्जए य रायरिसी।
सेये सिवे उद्दायणे, तह संखे कासिवद्धणे ॥१॥

७. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से,
८. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से (३३)।

३४—चउरिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स अट्ठविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—चक्खुमातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। (घाणामातो सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। जिब्भामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति, जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति)। फासामातो सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

चतुरिन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के आठ प्रकार का असंयम होता है। जैसे—
१. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
२. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
३. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
४. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
५. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
६. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से,
७ स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से,
८. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से (३४)।

सूक्ष्म-सूत्र

३५—अट्ठ सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे, सिणेहसुहुमे।

सूक्ष्म जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. प्राणसूक्ष्म—अनुंधरी, कुन्थु आदि प्राणी,
२. पनक सूक्ष्म—उल्ली आदि,
३. बीजसूक्ष्म—धान आदि के बीज के मुख-मूल की कणी आदि जिसे तुष-मुख कहते हैं।
४. हरितसूक्ष्म—एकदम नवीन उत्पन्न हरित काय जो पृथ्वी के समान वर्ण वाला होता है।
५. पुष्पसूक्ष्म—वट-पीपल आदि के सूक्ष्म पुष्प।
६. अण्डसूक्ष्म—मक्षिका, पिपीलिकादि के सूक्ष्म अण्डे।
७. लयनसूक्ष्म—कीड़ीनगरा आदि।
८. स्नेहसूक्ष्म—ओस, हिम आदि जलकाय के सूक्ष्म जीव (३५)।

भरतचक्रवर्ति-सूत्र

३६—भरहस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठ पुरिसजुगाइं अणुबद्धं सिद्धाइं (बुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुडाइं) सव्वदुक्खप्पहीणाइं, तं जहा—आदिच्चजसे, महाजसे, अतिबले, महाबले, तेयवीरिए कत्तवीरिए दंडवीरिए, जलवीरिए।

चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत के आठ उत्तराधिकारी पुरुष-युग राजा लगातार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त और समस्त दुःखों से रहित हुए। जैसे—

१. आदित्ययश, २. महायश, ३. अतिबल, ४. महाबल, ५. तेजोवीर्य, ६. कार्तवीर्य, ७. दण्डवीर्य, ८. जलवीर्य (३६)।

पार्श्वगण-सूत्र

३७—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणियस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—सुभे, अज्जघोसे, वसिट्ठे, बंभचारी, सोमे, सिरिधरे, वीरभद्दे, जसोभद्दे।

पुरुषादानीय (लोक-प्रिय) अर्हन् पार्श्वनाथ के आठ गण और आठ गणधर हुए। जैसे—
१. शुभ, २. आर्यघोष, ३. वशिष्ठ, ४. ब्रह्मचारी, ५. सोम, ६. श्रीधर, ७. वीरभद्र, यशोभद्र (३७)।

दर्शन-सूत्र

३८—अट्ठविधे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मदंसणे, मिच्छदंसणे, सम्मामिच्छदंसणे, चक्खुदंसणे, (अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे), केवलदंसणे, सुविणदंसणे।

दर्शन आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. सम्यग्दर्शन, २. मिथ्यादर्शन, ३. सम्यग्मिथ्यादर्शन, ४. चक्षुदर्शन, ५. अचक्षुदर्शन, ६. अवधिदर्शन, ७ केवलदर्शन, ८. स्वप्नदर्शन (३८)।

औपमिक-काल-सूत्र

३९—अट्ठविधे अद्धोवमिए पण्णत्ते, तं जहा—पलिओवमे, सागरोवमे, ओसप्पिणी, उस्सप्पिणी, पोग्गलपरियट्टे, तीतद्धा, अणागतद्धा, सव्वद्धा।

औपमिक अद्धा (काल) आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. पल्योपम, २. सागरोपम, ३. अवसर्पिणी, ४. उत्सर्पिणी, ५. पुद्गल परिवर्त, ६. अतीत-अद्धा, ७. अनागत-अद्धा, ८. सर्व-अद्धा (३९)।

अरिष्टनेमि-सूत्र

४०—अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स जाव अट्ठमातो पुरिसजुगातो जुगंतकरभूमी। दुवासपरियाए अंतमकासी।

अर्हत् अरिष्टनेमि से आठवें पुरुषयुग तक युगान्तकर भूमि रही—मोक्ष जाने का क्रम चालू रहा, आगे नहीं।

अर्हत् अरिष्टनेमि के केवलज्ञान प्राप्त करने के दो वर्ष बाद ही उनके शिष्य मोक्ष जाने लगे थे (४०)।

महावीर-सूत्र

४१—समणेणं भगवता महावीरेणं अट्ठ रायाणो मुंडे भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वाइया, तं जहा—

संग्रहणी-गाहा

वीरंगए वीरजसे, संजय एणिज्जए य रायरिसी।
सेये सिवे उद्दायणे, तह संखे कासिवद्धणे ॥१॥

श्रमण भगवान् महावीर ने आठ राजाओं को मुण्डित कर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित किया। जैसे—

१. वीराङ्गक, २. वीर्ययश, ३. संजय, ४. एणेयक, ५ सेय, ६. शिव, ७. उद्दायन, ८. शंख-काशीवर्धन (४१)।

आहार-सूत्र

४२—अट्ठविहे आहारे पण्णत्ते, तं जहा—मणुण्णे असणे, पाणे, खाइमे, साइमे। अमणुण्णे (असणे, पाणे, खाइमे), साइमे।

आहार आठ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. मनोज्ञ अशन, २. मनोज्ञ पान, ३. मनोज्ञ खाद्य, ४. मनोज्ञ स्वाद्य, ५. अमनोज्ञ अशन, ६. अमनोज्ञ पान, ७, अमनोज्ञ स्वाद्य, ८. अमनोज्ञ खाद्य (४२)।

कृष्णराजि-सूत्र

४३—उप्पिं सणंकुमार-माहिंदाणं कप्पाणं हेट्ठिं बंभलोगे कप्पे रिट्ठविमाणं-पत्थडे, एत्थ णं अक्खाडग-समचउरंस-संठाण-संठिताओ अट्ठ कण्हराईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमे णं दो कण्हराईओ, दाहिणे णं दो कण्हराईओ, पच्चत्थिमे णं दो कण्हराईओ, उत्तरे णं दो कण्हराईओ। पुरत्थिमा अब्भंतरा कण्हराई दाहिणं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा। दाहिणा अब्भंतरा कण्हराई पच्चत्थिमं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा। पच्चत्थिमा अब्भंतरा कण्हराई उत्तरं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा। उत्तरा अब्भंतरा कण्हराई पुरत्थिमं बाहिरं कण्हराइं पुट्ठा। पुरत्थिमपच्चत्थिमिल्लाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ छलंसाओ। उत्तरदाहिणाओ बाहिराओ दो कण्हराईओ तंसाओ। सव्वाओ वि णं अब्भंतरकण्हराईओ चउरंसाओ।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के ऊपर और ब्रह्मलोक कल्प के नीचे रिष्ट विमान का प्रस्तट है, वहाँ अखाड़े के समान समचतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान वाली आठ कृष्णराजियां (काले पुद्गलों की पंक्तियां) कही गई हैं। जैसे—

१. पूर्व दिशा में दो कृष्णराजियाँ, २. दक्षिण दिशा में दो कृष्णराजियां,
३. पश्चिम दिशा में दो कृष्णराजियां, ४. उत्तर दिशा में दो कृष्णराजियाँ।

पूर्व की आभ्यन्तर कृष्णराजि दक्षिण की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
दक्षिण की आभ्यन्तर कृष्णराजि पश्चिम की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
पश्चिम की आभ्यन्तर कृष्णराजि उत्तर की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
उत्तर की आभ्यन्तर कृष्णराजि पूर्व की बाह्य कृष्णराजि से स्पृष्ट है।
पूर्व और पश्चिम की बाह्य दो कृष्णराजियां षट्कोण हैं।
उत्तर और दक्षिण की बाह्य दो कृष्णराजियां त्रिकोण हैं।
समस्त आभ्यन्तर कृष्णराजियां चतुष्कोण वाली हैं।

४४—एतासि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—कण्हराईति वा, मेहराईति वा, मघाति वा, माघवतीति वा, वातफलिहेति वा, वातपलिक्खोभेति वा, देवफलिहेति वा, देवपलिक्खोभेति वा।

इन आठों कृष्णराजियां के आठ नाम कहे गये हैं। जैसे—

१. कृष्णराजि, २. मेघराजि, ३. मघा, ४. माघवती. ५. वातपरिघ ६. वातपरिक्षोभ, ७. देवपरिघ ८. देव परिक्षोभ (४४)।

विवेचन—इन आठों कृष्णराजियों के चित्रों को अन्यत्र देखिये।

४५—एतासि णं अट्ठण्हं कण्हराईणं अट्ठसु ओवासंतरेसु अट्ठ लोगंतियविमाणा पण्णत्ता, तं जहा—अच्ची, अच्चीमाली, वइरोअणे, पभंकरे, चंदाभे, सूराभे, सुपइट्ठाभे अग्गिच्चाभे'।

इन आठों कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरों में आठ लोकान्तिक देवों के विमान कहे गये हैं। जैसे—

१. अर्चि, २. अर्चिमाली, ३. वैरोचन, ४. प्रभंकर ५. चन्द्राभ ६. सूर्याभ. ७. सुप्रतिष्ठाभ. ८. अग्न्यर्चाभ (४५)।

४६—एतेसु णं अट्ठसु लोगंतियविमाणेसु अट्ठविधा लोगंतिया देवा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सारस्सतमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिता अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव बोद्धव्वा ॥१॥

इन आठों लोकान्तिक विमानों में आठ प्रकार के लोकान्तिक देव कहे गये हैं। जैसे—

१. सारस्वत, २. आदित्य, ३. वह्नि. ४. वरुण, ५. गर्दतोय, ३. तुषित ७. अव्याबाध. ८. अग्न्यर्च (४६)।

४७—एतेसि णं अट्ठण्हं लोगंतियदेवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

इन आठों लोकान्तिक देवों की जघन्य और उत्कृष्ट भेद से रहित—एक-सी स्थिति आठ-आठ सागरोपम की कही गई है।

मध्यप्रदेश-सूत्र

४८—अट्ठ धम्मत्थिकाय-मज्झपएसा पण्णत्ता।

धर्मास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश (रुचक प्रदेश) कहे गये हैं (४८)।

४९—अट्ठ अधम्मत्थिकाय-(मज्झपएसा पण्णत्ता)।

अधर्मास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं (४९)।

५०—अट्ठ आगासत्थिकाय-(मज्झपएसा पण्णत्ता)।

आकाशास्तिकाय के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं (५०)।

५१—अट्ठ जीव-मज्झपएसा पण्णत्ता।

जीव के आठ मध्य प्रदेश कहे गये हैं (५१)।

महापद्म-सूत्र

५२—अरहा णं महापउमे अट्ठ रायाणो मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारितं पव्वावेस्सति, तं जहा—पउमं, पउमगुम्मं, णलिणं, णलिणगुम्मं, पउमद्धयं, धणुद्धयं, कणगरहं, भरहं।

(भावी प्रथम तीर्थंकर) अर्हत् महापद्म आठ राजाओं को मुण्डित कर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित करेंगे। जैसे—

१. पद्म २. पद्मगुल्म, ३. नलिन, ४. नलिन गुल्म, ५. पद्मध्वज ६. धनुर्ध्वज, ७. कनकरथ, ८. भरत (५२)।

कृष्ण-अग्रमहिषी-सूत्र

५३—कण्हस्स णं वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइया सिद्धाओ (बुद्धाओ मुत्ताओ अंतगडाओ परिणिव्वुडाओ) सव्वदुक्खप्पहीणाओ, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

पउमावती य गोरी, गंधारी लक्खणा सुसीमा य।
जंबवती सच्चभामा, रुप्पिणी अग्गमहिसीओ॥१॥

वासुदेव कृष्ण की आठ अग्रमहिषियाँ अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत्त और समस्त दुःखों से रहित हुईं। जैसे—

१. पद्मावती २. गोरी ३. गान्धारी, ४. लक्ष्मणा, ५. सुषीमा, ६. जाम्बवती ७. सत्यभामा, ८. रुक्मिणी (५३)।

पूर्ववस्तु-सूत्र

५४—वीरियपुव्वस्स णं अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलवत्थू पण्णत्ता।

वीर्यप्रवाद पूर्व के आठ वस्तु (मूल अध्ययन) और आठ चूलिका-वस्तु कहे गये हैं (५४)।

गति-सूत्र

५५—अट्ठ गतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णिरयगती, तिरियगती, (मणुयगती, देवगती), सिद्धिगती, गुरुगती, पणोल्लणगती, पब्भारगती।

गतियाँ आठ कही गई हैं। जैसे—

१. नरकगति, २. तिर्यग्गति ३. मनुष्यगति, ४. देवगति, ५. सिद्धगति, ६. गुरुगति ७. प्रणोदनगति, ८. प्राग्-भारगति (५५)।

विवेचन—परमाणु आदि की स्वाभाविक गति को गुरुगति कहा जाता है। दूसरे की प्रेरणा से जो गति होती है वह प्रणोदन गति कहलाती है। जो दूसरे द्रव्यों से आक्रान्त होने पर गति होती है, उसे प्राग्भारगति कहते हैं। जैसे—नाव में भरे भार से उसकी नीचे की ओर होने वाली गति। शेष गतियाँ प्रसिद्ध हैं।

द्वीप-समुद्र-सूत्र

५६—गंगा-सिंधु-रत्त-रत्तवतिदेवीणं दीवा अट्ठ-अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता ।

गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती नदियों की अधिष्ठात्री देवियों के द्वीप आठ-आठ योजन लम्बे-चौड़े कहे गये हैं (५६)।

५७—उक्कामुह-मेहमुह-विज्जुमुह-विज्जुदंतदीवा णं दीवा अट्ठ-अट्ठ जोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ता ।

उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दन्त द्वीप आठ-आठ सौ योजन लम्बे-चौड़े कहे गये हैं (५७)।

५८—कालोदे णं समुद्दे अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते ।

कालोद समुद्र चक्रवाल विष्कम्भ (गोलाई की अपेक्षा) से आठ लाख योजन विस्तृत कहा गया है (५८)।

५९—अब्भंतरपुक्खरद्धे णं अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते ।

आभ्यन्तर पुष्करार्ध चक्रवाल विष्कम्भ से आठ लाख योजन विस्तृत कहा गया है (५९)।

६०—एवं बाहिरपुक्खरद्धे वि ।

इसी प्रकार बाह्य पुष्करार्ध भी चक्रवाल विष्कम्भ से आठ लाख योजन विस्तृत कहा गया है (६०)।

काकणिरत्न-सूत्र

६१—एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवण्णिए काकणिरयणे छत्तले दुवाल-संसिए अट्ठकण्णिए अधिकरणिसंठिते ।

प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के आठ सुवर्ण जितना भारी काकिणी रत्न होता है। वह छह तल, बारह कोण, आठ कर्णिका वाला और अहरन के संस्थान वाला होता है (६१)।

विवरण—'सुवर्ण' प्राचीन काल का सोने का सिक्का है, जो उस समय ८० गुंजा-प्रमाण होता था। काकिणी रत्न का प्रमाण चक्रवर्ती के अंगुल से चार अंगुल होता है।

मागध-योजन-सूत्र

६२—मागधस्स णं जोयणस्स अट्ठ धणुसहस्साइं णिधत्ते पण्णत्ते ।

मगध देश के योजन का प्रमाण आठ हजार धनुष कहा गया है (६२)।

जम्बूद्वीप-सूत्र

६३—जंबू णं सुदंसणा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, सातिरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता ।

सुदर्शन जम्बू वृक्ष आठ योजन ऊंचा, बहुमध्यदेश भाग में आठ योजन चौड़ा और सर्व परिमाण में कुछ अधिक आठ योजन कहा गया है (६३)।

६४—कूडसामली णं अट्ठ जोयणाइं एवं चेव।

कूट शाल्मली वृक्ष भी पूर्वोक्त प्रमाण वाला जानना चाहिए (६४)।

६५—तिमिसगुहा णं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।

तमिस्र गुफा आठ योजन ऊंची है (६५)।

६६—खंडप्पवातगुहा णं अट्ठ (जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं)।

खण्डप्रपात गुफा आठ योजन ऊंची है (६६)।

६७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दोनों कूलों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं। जैसे—

१. चित्रकूट, २. पक्ष्मकूट, ३. नलिनकूट, ४. एकशैल, ५. त्रिकूट, ६. वैश्रमणकूट
७. अंजनकूट, ८. मातांजनकूट (६७)।

६८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीतोयाए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों कूलों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं। जैसे—

१. अंकापाती, २. पक्ष्मावती, ३. आशीविष, ४. सुखावह, ५. चन्द्रपर्वत, ६. सूरपर्वत
७. नाग पर्वत, ८. देव पर्वत (६८)।

६९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टि-विजया पण्णत्ता, तं जहा—कच्छे, सुकच्छे, महाकच्छे, कच्छगावती, आवत्ते, (मंगलावत्ते, पुक्खले), पुक्खलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में चक्रवर्ती के आठ विजय-क्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—

१. कच्छ, २, सुकच्छ, ३. महाकच्छ, ४. कच्छकावती, ५, आवर्त, ६. मंगलावर्त, ७. पुष्कल,
८. पुष्कलावती (६९)।

७०—जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—वच्छे, सुवच्छे, (महावच्छे, वच्छगावती, रम्मे, रम्मगे, रमणिज्जे), मंगलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में चक्रवर्ती के आठ विजय-क्षेत्र कहे गये हैं जैसे—

१. वत्स, २. सुवत्स, ३. महावत्स, ४. वत्सकावती, ५. रम्य, ६. रम्यक, ७. रमणीय, ८. मंगलावती (७०)।

७१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—पम्हे, (सुपम्हे, महापम्हे, पम्हगावती, संखे, णलिणे, कुमुए), सलिलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में चक्रवर्ती के आठ विजयक्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—

१. पक्ष्म, २. सुपक्ष्म, ३. महापक्ष्म, ४. पक्ष्मकावती, ५. शंख, ६. नलिन, ७. कुमुद, ८. सलिलावती (७१)।

७२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—वप्पे, सुवप्पे, (महावप्पे, वप्पगावती, वग्गू, सुवग्गू, गंधिल्ले), गंधिलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में चक्रवर्ती के आठ विजय कहे गये हैं। जैसे—

१. वप्र, २. सुवप्र, ३. महावप्र, ४. वप्रकावती, ५. वल्गु, ६. सुवल्गु, ७. गन्धिल, ८. गन्धिलावती (७२)।

७३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खेमा, खेमपुरी, (रिट्ठा, रिट्ठपुरी, खग्गी, मंजूसा, ओसधी), पुंडरीगिणी।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में आठ राजधानियां कही गई हैं। जैसे।

१. क्षेमा, २. क्षेमपुरी, ३. रिष्टा, ४. रिष्टपुरी, ५. खड्गी, ६. मंजूषा, ७. औषधि, ८. पौण्डरीकिणी (७३)।

७४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सुसीमा, कुंडला, (अपराजिया, पभंकरा, अंकावई, पम्हावई, सुभा), रयणसंचया।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में आठ राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. सुसीमा, २. कुण्डला, ३. अपराजिता, ४. प्रभंकरा, ५. अंकावती, ६. पक्ष्मावती, ७. शुभा, ८. रत्नसंचया (७४)।

सुदर्शन जम्बू वृक्ष आठ योजन ऊंचा, बहुमध्यदेश भाग में आठ योजन चौड़ा और सर्व परिमाण में कुछ अधिक आठ योजन कहा गया है (६३)।

६४—कूडसामली णं अट्ठ जोयणाइं एवं चेव।

कूट शाल्मली वृक्ष भी पूर्वोक्त प्रमाण वाला जानना चाहिए (६४)।

६५—तिमिसगुहा णं अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं।

तमिस्र गुफा आठ योजन ऊंची है (६५)।

६६—खंडप्पवातगुहा णं अट्ठ (जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं)।

खण्डप्रपात गुफा आठ योजन ऊंची है (६६)।

६७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चित्तकूडे, पम्हकूडे, णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में सीता महानदी के दोनों कूलों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं। जैसे—

१. चित्रकूट, २. पक्ष्मकूट, ३. नलिनकूट, ४. एकशैल, ५. त्रिकूट, ६. वैश्रमणकूट
७. अंजनकूट, ८. मातांजनकूट (६७)।

६८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं सीतोयाए महाणदीए उभतो कूले अट्ठ वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों कूलों पर आठ वक्षस्कार पर्वत हैं। जैसे—

१. अंकापाती, २. पक्ष्मावती, ३. आशीविष, ४. सुखावह, ५. चन्द्रपर्वत, ६. सूरपर्वत
७. नाग पर्वत, ८. देव पर्वत (६८)।

६९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टि-विजया पण्णत्ता, तं जहा—कच्छे, सुकच्छे, महाकच्छे, कच्छगावती, आवत्ते, (मंगलावत्ते, पुक्खले), पुक्खलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में चक्रवर्ती के आठ विजय-क्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—

१. कच्छ, २, सुकच्छ, ३. महाकच्छ, ४. कच्छकावती, ५, आवर्त, ६. मंगलावर्त, ७. पुष्कल,
८. पुष्कलावती (६९)।

७०—जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—वच्छे, सुवच्छे, (महावच्छे, वच्छगावती, रम्मे, रम्मगे, रमणिज्जे), मंगलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में चक्रवर्ती के आठ विजय-क्षेत्र कहे गये हैं जैसे—

१. वत्स, २. सुवत्स, ३. महावत्स, ४. वत्सकावती, ५. रम्य, ६. रम्यक, ७. रमणीय, ८. मंगलावती (७०)।

७१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—पम्हे, (सुपम्हे, महापम्हे, पम्हगावती, संखे, णलिणे, कुमुए), सलिलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में चक्रवर्ती के आठ विजयक्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—

१. पक्ष्म, २. सुपक्ष्म, ३. महापक्ष्म, ४. पक्ष्मकावती, ५. शंख, ६. नलिन, ७. कुमुद, ८. सलिलावती (७१)।

७२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—वप्पे, सुवप्पे, (महावप्पे, वप्पगावती, वग्गू, सुवग्गू, गंधिल्ले), गंधिलावती।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में चक्रवर्ती के आठ विजय कहे गये हैं। जैसे—

१. वप्र, २. सुवप्र, ३. महावप्र, ४. वप्रकावती, ५. वल्गु, ६. सुवल्गु, ७. गन्धिल, ८. गन्धिलावती (७२)।

७३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खेमा, खेमपुरी, (रिट्ठा, रिट्ठपुरी, खग्गी, मंजूसा, ओसधी), पुंडरीगिणी।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में आठ राजधानियां कही गई हैं। जैसे।

१. क्षेमा, २. क्षेमपुरी, ३. रिष्टा, ४. रिष्टपुरी, ५. खड्गी, ६. मंजूषा, ७. औषधि, ८. पौण्डरीकिणी (७३)।

७४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सुसीमा, कुंडला, (अपराजिया, पभंकरा, अंकावई, पम्हावई, सुभा), रयणसंचया।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में आठ राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. सुसीमा, २. कुण्डला, ३. अपराजिता, ४. प्रभंकरा, ५. अंकावती, ६. पक्ष्मावती, ७. शुभा, ८. रत्नसंचया (७४)।

७५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आसपुरा, (सीहपुरा, महापुरा, विजयपुरा, अवराजिता, अवरा, असोया), वीतसोगा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. अश्वपुरी, २. सिंहपुरी, ३. महापुरी, ५. विजयपुरी, ५. अपराजिता, ६. अपरा, ७. अशोका ८. वीतशोका (७५)।

७६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणईए उत्तरे णं अट्ठ रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—विजया, वेजयंती, (जयंती, अपराजिया, चक्कपुरा, खग्गपुरा, अवज्झा), अउज्झा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में आठ राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. विजया, २. वैजयन्ती, ३. जयन्ती, ४. अपराजिता, ५. चक्रपुरी, ६. खड्गपुरी, ७. अवध्या ८. अयोध्या (७६)।

७७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए उत्तरे णं उक्कोसपए अट्ठ अरहंता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में उत्कृष्टतः आठ अर्हत् (तीर्थंकर), आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (७७)।

७८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए [महाणदीए ?] दाहिणे णं उक्कोसपए एवं चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में उत्कृष्टतः इसी प्रकार आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (७८)।

७९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए दाहिणे णं उक्कोसपए एवं चेव।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में उत्कृष्टतः इसी प्रकार आठ अर्हत्, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (७९)।

८०—एवं उत्तरेणवि।

[illegible] शीतोदा महानदी के उत्तर में उत्कृष्टतः

इसी प्रकार आठ अर्हत् आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे (८०)।

८१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए उत्तरे णं अट्ठ दीहवेयड्ढा, अट्ठ तिमिसगुहाओ, अट्ठ खंडगप्पवातगुहाओ, अट्ठ कयमालगा देवा, अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गंगा-कुंडा, अट्ठ सिंधुकुंडा, अट्ठ गंगाओ, अट्ठ सिंधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में, शीता महानदी के उत्तर में आठ दीर्घ वैताढ्य, आठ तमिस्र गुफाएं, आठ खण्डप्रपात गुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ गंगाकुण्ड, आठ सिन्धुकुण्ड, आठ गंगा, आठ सिन्धु, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट-देव हैं।

८२—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ दीहवेअड्ढा एवं चेव जाव अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता, णवरमेत्थ रत्त-रत्तावती, तासिं चेव कुंडा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घ वैताढ्य, आठ तमिस्र गुफाएं, आठ खण्डकप्रपात गुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवती कुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट-देव हैं (८२)।

८३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीतोयाए महाणदीए दाहिणे णं अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा, अट्ठ गंगाकुंडा, अट्ठ सिंधुकुंडा, अट्ठ गंगाओ, अट्ठ सिंधूओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता, अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में आठ दीर्घ वैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाएं, आठ खण्डकप्रपात गुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ गंगाकुण्ड, आठ सिन्धुकुण्ड, आठ गंगा, आठ सिन्धु, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभ-कूट-देव हैं (८३)।

८४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणदीए उत्तरे णं अट्ठ दीहवेयड्ढा जाव अट्ठ णट्टमालगा देवा पण्णत्ता। अट्ठ रत्ताकुंडा, अट्ठ रत्तावतिकुंडा, अट्ठ रत्ताओ, (अट्ठ रत्तावतीओ, अट्ठ उसभकूडा पव्वता), अट्ठ उसभकूडा देवा पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दरपर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के उत्तर में आठ दीर्घ वैताढ्य, आठ तमिस्रगुफाएं, आठ खण्डकप्रपात गुफाएं, आठ कृतमालक देव, आठ नृत्यमालक देव, आठ रक्ताकुण्ड, आठ रक्तवतीकुण्ड, आठ रक्ता, आठ रक्तवती, आठ ऋषभकूट पर्वत और आठ ऋषभकूट देव हैं (८३)।

८५—मंदरचूलिया णं बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोइणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

मन्दर पर्वत की चूलिका बहुमध्यदेश भाग में आठ योजन चौड़ी है (८५)।

धातकीषण्डद्वीप-सूत्र

८६—धायइसंडदीवपुरत्थिमद्धे णं धायइरुक्खे अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं, साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

धातकीषण्ड द्वीप के पूर्वार्ध में धातकीवृक्ष आठ योजन ऊंचा, बहुमध्यदेश भाग में आठ योजन चौड़ा और सर्व परिमाण में कुछ अधिक आठ योजन विस्तृत कहा गया है (८६)।

८७—एवं धायइरुक्खाओ आढवेत्ता सच्चेव जंबूदीववत्तव्वता भाणियव्वा जाव मंदर-चूलियत्ति।

इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध में धातकी वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सर्व वर्णन जम्बूद्वीप की वक्तव्यता के समान जानना चाहिए (८७)।

८८—एवं पच्चत्थिमद्धे वि महाधातइरुक्खातो आढवेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति।

इसी प्रकार धातकीषण्ड के पश्चिमार्ध में महाधातकी वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सर्व वर्णन जम्बू द्वीप की वक्तव्यता के समान है (८८)।

पुष्करवर-द्वीप-सूत्र

८९—एवं पुक्खरवरदीवड्ढपुरत्थिमद्धे वि पउमरुक्खाओ आढवेत्ता जाव मंदरचूलियत्ति।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में पद्मवृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सर्व वर्णन जम्बूद्वीप की वक्तव्यता के समान है (८९)।

९०—एवं पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे वि महापउमरुक्खातो जाव मंदरचूलियत्ति।

इसी प्रकार पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में महापद्म वृक्ष से लेकर मन्दरचूलिका तक का सर्व वर्णन जम्बूद्वीप की वक्तव्यता के समान है (९०)।

कूट-सूत्र

९१—जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वते भद्दसालवणे अट्ठ दिसाहत्थिकूडा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

पउमुत्तर णीलवंते, सुहत्थि अंजणागिरी।
कुमुदे य पलासे य, वडेंसे रोयणागिरी ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दरपर्वत के भद्रशाल वन में आठ दिशाहस्तिकूट (पूर्व आदि दिशाओं में हाथी के समान आकार वाले शिखर) कहे गये हैं। जैसे—

१. पद्मोत्तर, २. नीलवान्, ३. सुहस्ती, ४. अंजनगिरि, ५. कुमुद, ६. पलाश, ७. अवतंसक, ८. रोचनगिरि (९१)।

जगती-सूत्र

९२—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स जगती अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की जगती आठ योजन ऊंची और बहुमध्यदेश भाग में आठ योजन विस्तृत कही गई है (९२)।

कूट-सूत्र

९३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं महाहिमवंते वासहरपव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सिद्धे महाहिमवंते, हिमवंते रोहिता हिरीकूडे।
हरिकंता हरिवासे, वेरुलिए चेव कूडा उ ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं जैसे—

१. सिद्ध कूट, २. महाहिमवान् कूट, ३. हिमवान् कूट, ४. रोहित कूट, ५. ह्री कूट, ६. हरिकान्त कूट, ७. हरिवर्ष कूट, ८. वैडूर्य कूट (९३)।

९४—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रुप्पिमि वासहरपव्वते अट्ठ कूटा पण्णत्ता तं जहा—

सिद्धे य रुप्पि रम्मग, णरकंता बुद्धि रुप्पकूडे य।
हिरण्णवते मणिकंचणे, य रुप्पिम्मि कूडा उ ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में रुक्मी वर्षधर पर्वत पर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्ध कूट, २. रुक्मी कूट, ३. रम्यक कूट, ४. नरकान्त कूट, ५. बुद्धि कूट, ६. रूप्य कूट, ७. हैरण्यवत कूट, ८. मणिकांचन कूट (९४)।

९५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

रिट्ठे तवणिज्ज कंचण, रयत दिसासोत्थिते पलंबे य।
अंजणे अंजणपुलए, रुयगस्स पुरत्थिमे कूडा ॥१॥

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

णंदुत्तरा य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया ॥२॥

जम्बू द्वीप नामक द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में रुचकवर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. रिष्ट कूट, २. तपनीय कूट, ३. कांचन कूट, ४. रजत कूट, ५, दिशास्वस्तिक कूट, ६. प्रलम्ब कूट, ७. अंजन कूट, ८. अंजन पुलक कूट (९५)।

वहाँ महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थितिवाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं। जैसे—

१. नन्दोत्तरा, २. नन्दा, ३. आनन्दा, ४. नन्दिवर्धना, ५. विजया, ६. वैजयन्ती, ७. जयन्ती, ८. अपराजिता (९५)

९६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

कणए कंचणे पउमे, णलिणे ससि दिवायरे चेव ।
वेसमणे वेरुलिए, रुयगस्स उ दाहिणे कूडा ।।१।।

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

समाहारा सुप्पतिण्णा, सुप्पबुद्धा जसोहरा ।
लच्छिवती सेसवती, चित्तगुत्ता वसुंधरा ।।२।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में रुचकवर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. कनक कूट, २. कांचन कूट, ३. पद्म कूट, ४. नलिन कूट, ५. शशी कूट, ५. दिवाकर कूट, ७. वैश्रमण कूट, ८. वैडूर्य कूट (९६)।

वहां महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थितिवाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं। जैसे—

१. समाहारा, २. सुप्रतिज्ञा, ३. सुप्रबुद्धा, ४. यशोधरा, ५. लक्ष्मीवती, ६. शेषवती, ७. चित्रगुप्ता, ८. वसुन्धरा।

९७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं रुयगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सोत्थिते य अमोहे य, हिमवं मंदरे तहा ।
रुअगे रुयगुत्तमे चंदे, अट्ठमे य सुदंसणे ।।१।।

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्ढियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

इलादेवी सुरादेवी, पुढवी पउमावती ।
एगणासा णवमिया, सीता भद्दा य अट्ठमा ।।२।।

जम्बू द्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पश्चिम में रुचकवर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. स्वस्तिक कूट, २. अमोह कूट, ३. हिमवान् कूट, ४. मन्दर कूट, ५. रुचक कूट, ६. रुचकोत्तम कूट, ७. चन्द्र कूट, ८. सुदर्शन कूट (९७)।

वहां ऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थितिवाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं। जैसे—

१. इलादेवी, २. सुरादेवी, ३. पृथ्वी, ४. पद्मावती, ५. एकनासा, ६. नवमिका, ७. सीता, ८. भद्रा।

९८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रुअगवरे पव्वते अट्ठ कूडा पण्णत्ता तं जहा—

रयण-रयणुच्चए या, सव्वरयण रयणसंचए चेव ।
विजये य वेजयंते, जयंते अपराजिते ।।१।।

तत्थ णं अट्ठ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ महिड्डियाओ जाव पलिओवमट्ठितीयाओ परिवसंति, तं जहा—

अलंबुसा मिस्सकेसी, पोंडरिगी य वारुणी ।
आसा सव्वगा चेव, सिरी हिरी चेव उत्तरतो ।।२।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में रुचकवर पर्वत के ऊपर आठ कूट कहे गये हैं । जैसे —

१. रत्न कूट, २. रत्नोच्चय कूट, ३. सर्वरत्न कूट, ४. रत्नसंचय कूट, ५. विजय कूट, ६. वैजयन्त कूट ७, जयन्त कूट, ८. अपराजित कूट (९८) ।

वहां महाऋद्धिवाली यावत् एक पल्योपम की स्थिति वाली आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाएं रहती हैं । जैसे—

१. अलंवुषा, २. मिश्रकेशी, ३. पौण्डरिकी, ४. वारुणी ५. आशा, ६. सर्वगा, ७. श्री, ८. ह्री ।

महत्तरिका-सूत्र

९९—अट्ठ अहेलोगवत्यव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

भोगंकरा भोगवती, सुभोगा भोगमालिणी ।
सुवच्छा वच्छमित्ता य, वारिसेणा बलाहगा ।।१।।

अधोलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियों की महत्तरिकाएं कही गई हैं । जैसे—

१. भोगंकरा, २. भोगवती, ३. सुभोगा, ४. भोगमालिनी, ५. सुवत्सा, ६. वत्समित्रा, ७. वारिषेणा, ८. बलाहका (९९) ।

१००—अट्ठ उड्ढलोगवत्थव्वाओ दिसाकुमारिमहत्तरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

मेघंकरा मेघवती, सुमेघा मेघमालिणी ।
तोयधारा विचित्ता य, पुप्फमाला अणिंदिता ।।१।।

ऊर्ध्वलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारी-महत्तरिकाएं कही गई हैं । जैसे—

१. मेघंकरा, २. मेघवती, ३. सुमेधा, ४. मेघमालिनी, ५. तोयधारा, ६. विचित्रा, ७. पुष्पमाला, ८. अनिन्दिता (१००) ।

कल्प-सूत्र

१०१—अट्ठ कप्पा तिरिय-मिस्सोववण्णगा पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे, (ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभलोगे, लंतए, महासुक्के), सहस्सारे ।

तिर्यग्-मिश्रोपन्नक (तिर्यंच और मनुष्य दोनों के उत्पन्न होने के योग्य) कल्प आठ कहे गये हैं। जैसे—

१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोक, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार (१०१)।

१०२—एतेसु णं अट्ठसु कप्पेसु अट्ठ इंदा पण्णत्ता, तं जहा—सक्के, (ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतए, महासुक्के), सहस्सारे।

इन आठों कल्पों में आठ इन्द्र कहे गये हैं। जैसे—

१. शक्र, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्म, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र. ८. सहस्रार (१०२)।

१०३—एतेसि णं अट्ठण्हं इंदाणं अट्ठ परियाणिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—पालए, पुप्फए, सोमणसे, सिरिवच्छे, णंदियावत्ते, कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे।

इन आठों इन्द्रों के आठ पारियानिक (यात्रा में काम आने वाले) विमान कहे गये हैं। जैसे—

१. पालक, २. पुष्पक, ३. सौमनस, ४. श्रीवत्स, ५. नंद्यावर्त, ६. कामक्रम, ७. प्रीतिमन, ८. मनोरम (१०३)।

प्रतिमा-सूत्र

१०४—अट्ठट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीतेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं (अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) अणुपालितावि भवति।

अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा ६४ दिन-रात, तथा २८८ भिक्षादत्तियों के द्वारा यथासूत्र, यथा-अर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प, तथा सम्यक् प्रकार काया से स्पृष्ट, पालित, शोधित, तीरित और अनुपालित की जाती है।

जीव-सूत्र

१०५—अट्ठविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमयणेरइया, अपढमसमयणेरइया, (पढमसमयतिरिया, अपढमसमयतिरिया, पढमसमयमणुया, अपढमसमयमणुया, पढमसमयदेवा), अपढमसमयदेवा।

संसार-समापन्नक जीव आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्रथम समय नारक—नरकायु के उदय के प्रथम समय वाले नारक।
२. अप्रथम समय नारक—प्रथम समय के सिवाय शेष समय वाले नारक।
३. प्रथम समय तिर्यंच—तिर्यगायु के उदय के प्रथम समय वाले तिर्यंच।
४. अप्रथम समय तिर्यंच—प्रथम समय के सिवाय शेष समय वाले तिर्यंच।
५. प्रथम समय मनुष्य—मनुष्यायु के उदय के प्रथम समय वाले मनुष्य।
६. अप्रथम समय मनुष्य—प्रथम समय के सिवाय शेष समय वाले मनुष्य।
७. प्रथम समय देव—देवायु के उदय के प्रथम समय वाले देव।
८. अप्रथम समय देव—प्रथम समय के सिवाय शेष समय वाले देव (१०५)।

१०६—अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणिणीओ, मणुस्सा, मणुस्सीओ, देवा, देवीओ, सिद्धा ।

अहवा—अट्ठविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—आभिणिबोहियणाणी, (सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी), केवलणाणी, मतिअण्णाणी, सुतअण्णाणी, विभंगणाणी ।

सर्वजीव आठ प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. नारक, २. तिर्यग्योनिक, ३. तिर्यग्योनिकी, ४. मनुष्य, ५. मानुषी, ६. देव, ७. देवी, ८. सिद्ध ।

अथवा सर्वजीव आठ प्रकार के कहे गये हैं । जैसे—

१. आभिनिबोधिकज्ञानी, २. श्रुतज्ञानी, ३. अवधिज्ञानी, ४. मन:पर्यवज्ञानी, ५. केवलज्ञानी ६. मत्यज्ञानी, ७. श्रुताज्ञानी, ८. विभंगज्ञानी (१०६) ।

संयम-सूत्र

१०७—अट्ठविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—पढमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे, अपढमसमयसुहुमसंपरायसरागसंजमे, पढमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे, अपढमसमयबादरसंपरायसरागसंजमे, पढमसमयउवसंतकसायवीतरागसंजमे, अपढमसमयउवसंतकसायवीतरागसंजमे, पढमसमयखीणकसायवीतरागसंजमे, अपढमसमयखीणकसायवीतरागसंजमे ।

संयम आठ प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. प्रथमसमय सूक्ष्मसाम्परायसराग संयम,
२. अप्रथमसमय सूक्ष्मसाम्परायसराग संयम,
३. प्रथमसमय बादरसम्परायसराग संयम,
४. अप्रथमसमय बादरसाम्परायसराग संयम,
५. प्रथम समय उपशान्तकषाय वीतराग संयम,
६. अप्रथम समय उपशान्तकषाय वीतराग संयम,
७. प्रथम समय क्षीणकषाय वीतराग संयम,
८. अप्रथम समय क्षीणकषाय वीतराग संयम (१०७) ।

पृथिवी-सूत्र

१०८—अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा, (सक्करप्पभा, वालुअप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमा), अहेसत्तमा, ईसिपब्भारा ।

पृथिवियां आठ कही गई हैं । जैसे—

१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. वालुकाप्रभा, ४. पंक प्रभा ५. धूम प्रभा, ६. तम:प्रभा, ७. अध: सप्तमी (तमस्तम: प्रभा), ८. ईषत्प्राग्भारा (१०८) ।

१०९—ईसिपब्माराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागे अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी के बहुमध्य देशभाग में आठ योजन लम्बे-चौड़े क्षेत्र का बाहल्य (मोटाई) आठ योजन है (१०९) ।

११०—ईसिपब्भाराए णं पुढवीए अट्ठ णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ईसिति वा, ईसिपब्भाराति वा, तणूति वा, तणुतणूइ वा, सिद्धीति वा, सिद्धालएति वा, मुत्तीति वा, मुत्तालएति वा।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के आठ नाम हैं। जैसे—

१. ईषत्, २. ईषत्प्राग्भारा ३. तनु, ४. तनुतनु, ५. सिद्धि, ६. सिद्धालय, ७. मुक्ति, ८. मुक्तालय (११०)।

अभ्युत्थातव्य-सूत्र

१११—अट्ठहिं ठाणेहिं सम्मं घडितव्वं जतितव्वं परक्कमितव्वं अस्सि च णं अट्ठे णो पमाएतव्वं भवति—

१. असुयाणं धम्माणं सम्मं सुणणताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
२. सुताणं धम्माणं ओगिण्हणयाए उवधारणयाए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
३. णवाणं कम्माणं संजमेणमकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
४. पोराणाणं कम्माणं तवसा विगिंचणताए विसोहणताए अब्भुट्ठेतव्वं भवति।
५. असंगिहीतपरिजणस्स संगिण्हणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
६. सेहं आयारगोयरं गाहणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
७. गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।
८. साहम्मियाणमधिकरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सितोवस्सितो अपक्खग्गाही मज्झत्थभावभूते कह णु साहम्मिया अप्पसद्दा अप्पझंझा अप्पतुमंतुमा? उवसामणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवति।

आठ वस्तुओं की प्राप्ति के लिए साधक सम्यक् चेष्टा करे, सम्यक् प्रयत्न करे, सम्यक् पराक्रम करे, इन आठों के विषय में कुछ भी प्रमाद नहीं करना चाहिए—

१. अश्रुत धर्मों को सम्यक् प्रकार से सुनने के लिए जागरूक रहे।
२. सुने हुए धर्मों को मन से ग्रहण करे और उनकी स्थिर-स्मृति के लिए जागरूक रहे।
३. संयम के द्वारा नवीन कर्मों का निरोध करने के लिए जागरूक रहे।
४. तपश्चरण के द्वारा पुराने कर्मों को पृथक् करने और विशोधन करने के लिए जागरूक रहे।
५. असंगृहीत परिजनों (शिष्यों) का संग्रह करने के लिए जागरूक रहे।
६. शैक्ष (नवदीक्षित) मुनि को आचार-गोचर का सम्यक् बोध कराने के लिए जागरूक रहे।
७. ग्लान साधु की ग्लानि-भाव से रहित होकर वैयावृत्त्य करने के लिए जागरूक रहे।
८. साधर्मिकों में परस्पर कलह उत्पन्न होने पर—'ये मेरे साधर्मिक किस प्रकार अपशब्द, कलह और तू-तू, मैं-मैं से मुक्त हों' ऐसा विचार करते हुए लिप्सा और अपेक्षा से रहित होकर, किसी का पक्ष न लेकर मध्यस्थ भाव को स्वीकार कर उसे उपशान्त करने के लिए जागरूक रहें।

विमान-सूत्र

११२—महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु विमाणा अट्ठ जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में विमान आठ सौ योजन ऊंचे कहे गये हैं (११२)।

वादि-सम्पदा-सूत्र

११३—अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स अट्ठसया वादीणं सदेवमणुयासुराए परिसाए वादे अपराजिताणं उक्कोसिया वादिसंपया हुत्था।

अर्हत् अरिष्टनेमि के वादी मुनियों की उत्कृष्ट सम्पदा आठ सौ थी; जो देव; मनुष्य और असुरों की परिषद् में वाद-विवाद के समय किसी से भी पराजित नहीं होते थे (११३)।

केवलिसमुद्घात-सूत्र

११४—अट्ठसमइए केवलिसमुग्घाते पण्णत्ते, तं जहा—पढमे समए दंडं करेति, बीए समए कवाडं करेति, ततिए समए मंथं करेति, चउत्थे समए लोगं पूरेति, पंचमे समए लोगं पडिसाहरति, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरति, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरति, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरति।

केवलिसमुद्घात आठ समय का कहा गया है। जैसे—

१. केवली पहले समय में दण्ड समुद्घात करते हैं।
२. दूसरे समय में कपाट समुद्घात करते हैं।
३. तीसरे समय में मन्थान समुद्घात करते हैं।
४. चौथे सयय में लोकपूरण समुद्घात करते हैं।
५. पांचवें समय में लोक-व्याप्त आत्मप्रदेशों का उपसंहार करते (सिकोड़ते) हैं।
६. छठे समय में मन्थान का उपसंहार करते हैं।
७. सातवें समय में कपाट का उपसंहार करते हैं।
८. आठवें समय में दण्ड का उपसंहार करते हैं (११४)।

विवेचन—सभी केवली भगवान् समुद्-घात करते हैं, या नहीं करते हैं ? इस विषय में श्वे० और दि० शास्त्रों में दो-दो मान्यताएं स्पष्ट रूप से लिखित मिलती हैं। पहली मान्यता यही है कि सभी केवली भगवान् समुद्-घात करते हुए ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। किन्तु दूसरी मान्यता यह है कि जिनको छह मास से अधिक आयुष्य के शेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वे समुद्घात नहीं करते हैं। किन्तु छह मास या इससे कम आयुष्य शेष रहने पर जिनको केवलज्ञान उत्पन्न होता है वे नियम से समुद्घात करते हुए ही मोक्ष प्राप्त करते हैं।

उक्त दोनों मान्यताओं में से कौन सत्य है और कौन सत्य नहीं, यह तो सर्वज्ञ देव ही जानें। प्रस्तुत सूत्र में केवलिसमुद्घात की प्रक्रिया और समय का निरूपण किया गया है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

जब केवली का आयुष्य कर्म अन्तर्मुहूर्तप्रमाण रह जाता है और शेष नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों की स्थिति अधिक शेष रहती है, तब उनकी स्थिति का आयुष्यकर्म के साथ समीकरण करने के लिए यह समुद्घात किया जाता या होता है।

समुद्घात के पहले समय में केवली के आत्म-प्रदेश ऊपर और नीचे की ओर लोकान्त तक शरीर-प्रमाण चौड़े आकार में फैलते हैं। उनका आकार दण्ड के समान होता है, अतः इसे दण्डसमुद्घात कहा जाता है। दूसरे समय में वे ही आत्म-प्रदेश पूर्व-पश्चिम दिशा में चौड़े होकर लोकान्त तक

फैल कर कपाट के आकार के हो जाते हैं, अतः उसे कपाटसमुद्घात कहते हैं। तीसरे समय में वे ही आत्म-प्रदेश दक्षिण-उत्तर दिशा में लोक के अन्त तक फैल जाते हैं, इसे मन्थान समुद्घात कहते हैं। दि० शास्त्रों में इसे प्रतर समुद्घात कहते हैं। चौथे समय में वे आत्म-प्रदेश बीच के भागों सहित सारे लोक में फैल जाते हैं, इसे लोक-पूरण समुद्घात कहते हैं। इस अवस्था में केवली के आत्म-प्रदेश और लोकाकाश के प्रदेश सम-प्रदेश रूप से अवस्थित होते हैं। इस प्रकार इन चार समयों में केवली के प्रदेश उत्तरोत्तर फैलते जाते हैं।

पुनः पाँचवें समय में उनका संकोच प्रारम्भ होकर मंथान-आकार हो जाता है, छठे समय में कपाट-आकार हो जाता है, सातवें समय में दण्ड-आकार हो जाता है और आठवें समय में वे शरीर में प्रवेश कर पूर्ववत् शरीराकार से अवस्थित हो जाते हैं।

इन आठ समयों के भीतर नाम, गोत्र और वेदनीय-कर्म की स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों की उत्तरोत्तर असंख्यात गुणित क्रम से निर्जरा होकर उनकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण रह जाती है। तब वे सयोगी जिन योग-निरोध की क्रिया करते हुए अयोगी बनकर चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश करते हैं और 'अ, इ, उ, ऋ, ऌ' इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के प्रमाणकाल में शेष रहे चारों अघाति-कर्मों की एक साथ सम्पूर्ण निर्जरा करके मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

अनुत्तरौपपातिक-सूत्र

११५—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स अट्ठ सया अणुत्तरोववाइयाणं गतिकल्लाणाणं (ठितिकल्लाणाणं) आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया हुत्था।

श्रमण भगवान् महावीर के अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होने वाले साधुओं की उत्कृष्ट सम्पदा आठ सौ थी। वे कल्याणगति वाले, कल्याण स्थितिवाले और आगामी काल में निर्वाण प्राप्त करने वाले हैं।

वानव्यन्तर-सूत्र

११६—अट्ठविधा वाणमंतरा देवा पण्णत्ता, तं जहा—पिसाया, भूता, जक्खा, रक्खसा, किण्णरा, किंपुरिसा, महोरगा, गंधव्वा।

वाण-व्यन्तर देव आठ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पिशाच, २. भूत, ३. यक्ष, ४. राक्षस ५. किन्नर, ६. किम्पुरुष ७. महोरग ८. गन्धर्व (११६)।

११७—एतेसि णं अट्ठविहाणं वाणमंतरदेवाणं अट्ठ चेइयरुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

कलंबो उ पिसायाणं, वडो जक्खाण चेइयं।
तुलसी भूयाण भवे, रक्खसाणं च कंडओ॥१॥
असोओ किण्णराणं च, किंपुरिसाणं तु चंपओ।
णागरुक्खो भुयंगाणं, गंधव्वाण य तेंदुओ॥२॥

आठ प्रकार के वाण-व्यन्तर देवों के आठ चैत्य वृक्ष कहे गये हैं। जैसे—

१. कदम्ब पिशाचों का चैत्यवृक्ष है।
२. वट यक्षों का चैत्यवृक्ष है।
३. तुलसी भूतों का चैत्यवृक्ष है।
४. काण्डक राक्षसों का चैत्यवृक्ष है।
५. अशोक किन्नरों का चैत्यवृक्ष है।
६. चम्पक किम्पुरुषों का चैत्यवृक्ष है।
७. नागवृक्ष महोरगों का चैत्यवृक्ष है।
८. तिन्दुक गन्धर्वों का चैत्यवृक्ष है (११७)।

ज्योतिष्क-सूत्र

११८—इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठजोयणसते उड्ढमबाहाए सूरविमाणे चारं चरति।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से आठ सौ योजन की ऊंचाई पर सूर्य-विमान भ्रमण करता है (११८)।

११९—अट्ठ णक्खत्ता चंदेणं सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति, तं जहा—कत्तिया, रोहिणी, पुणव्वसू, महा, चित्ता, विसाहा, अणुराधा, जेट्ठा।

आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्दयोग करते हैं। जैसे—

१. कृत्तिका, २. रोहिणी, ३. पुनर्वसु, ४. मघा, ५. चित्रा, ६. विशाखा, ७. अनुराधा, ८. ज्येष्ठा (११९)।

विवेचन—चन्द्रमा के साथ स्पर्श करने को प्रमर्दयोग कहते हैं। उक्त आठ नक्षत्र उत्तर और दक्षिण दोनों ओर से स्पर्श करते हैं। चन्द्रमा उनके बीच में से गमन करता हुआ निकल जाता है।

द्वार-सूत्र

१२०—जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स दारा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के चारों द्वार आठ-आठ योजन ऊंचे कहे गये हैं (१२०)।

१२१—सव्वेसिंपि णं दीवसमुद्दाणं दारा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सभी द्वीप और समुद्रों के द्वार आठ-आठ योजन ऊंचे कहे गये हैं (१२१)।

बन्धस्थिति-सूत्र

१२२—पुरिसवेयणिज्जस्स णं कम्मस्स जहण्णेणं अट्ठसंवच्छराइं बंधठिती पण्णत्ता।

पुरुषवेदनीयकर्म का जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्ष कहा गया है (१२२)।

१२३—जसोकित्तीणामस्स णं कम्मस्स जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ताइं बंधठिती पण्णत्ता।

यशःकीर्तिनाम कर्म का जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त कहा गया है (१२३)।

१२४—उच्चागोतस्स णं कम्मस्स (जहण्णेणं अट्ठ मुहुत्ताइं बंधठिती पण्णत्ता)।

उच्चगोत्र कर्म का जघन्य स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त कहा गया है (१२४)।

कुलकोटी-सूत्र

१२५—तेइंदियाणं अट्ठ जाति-कुलकोडी-जोणीपमुह-सतसहस्सा पण्णत्ता।

त्रीन्द्रिय जीवों की जाति-कुलकोटियोनियां आठ लाख कही गई हैं (१२५)।

विवेचन—जीवों की उत्पत्ति के स्थान या आधार को योनि कहते हैं। उस योनिस्थान में उत्पन्न होने वाली अनेक प्रकार की जातियों को कुलकोटि कहते हैं। गोबर रूप एक ही योनि में कृमि, कीट, और विच्छू आदि अनेक जाति के जीव उत्पन्न होते हैं, उन्हें कुल कहा जाता है। जैसे—कृमिकुल, कीटकुल, वृश्चिककुल आदि। त्रीन्द्रिय जीवों की योनियां दो लाख हैं और उनकी कुल-कोटियां आठ लाख होती हैं।

पापकर्म-सूत्र

१२६—जीवा णं अट्ठठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—पढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते, (अपढमसमयणेरइयणिव्वत्तिते, पढमसमयतिरियणिव्वत्तिते, अपढमसमयतिरियणिव्वत्तिते, पढमसमयमणुयणिव्वत्तिते, अपढमसमयमणुयणिव्वत्तिते, पढमसमयदेवणिव्वत्तिते), अपढमसमयदेवणिव्वत्तिते।

एवं—चिण-उवचिण-(बंध-उदीर-वेद तह) णिज्जरा चेव।

जीवों ने आठ स्थानों से निर्वर्तित पुद्‌गलों का पापकर्मरूप से अतीत काल में संचय किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और आगे करेंगे। जैसे—

१. प्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित पुद्‌गलों का।
२. अप्रथम समय नैरयिक निर्वर्तित पुद्‌गलों का।
३. प्रथम समय तिर्यंचनिर्वर्तित पुद्‌गलों का।
४. अप्रथम समय तिर्यचनिर्वर्तित पुद्‌गलों का।
५. प्रथम समय मनुष्यनिर्वर्तित पुद्‌गलों का।
६. अप्रथम समय मनुष्यनिर्वर्तित पुद्‌गलों का।
७. प्रथम समय देवनिर्वर्तित पुद्‌गलों का।
८. अप्रथम समय देवनिर्वर्तित पुद्‌गलों का (१२६)।

इसी प्रकार सभी जीवों ने उनका उपचय, बन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण अतीत काल में किया है, वर्तमान में करते हैं और आगे करेंगे।

पुद्‌गल-सूत्र

१२७—अट्ठपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

आठ प्रदेशी पुद्‌गलस्कन्ध अनन्त हैं (१२७)।

१२८—अट्ठपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव अट्ठगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

आकाश के आठ प्रदेशों में अवगाढ़ पुद्‌गल अनन्त कहे गये हैं।

आठ गुणवाले पुद्‌गल अनन्त कहे गये हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के आठ गुणवाले पुद्‌गल अनन्त कहे गये हैं (१२८)।

॥ आठवां स्थान समाप्त ॥

नवम स्थान

सार संक्षेप

नवें स्थान में नौ-नौ संख्याओं से सम्बन्धित विषयों का संकलन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम विसंभोग का वर्णन है। संभोग का यहाँ अर्थ है—एक समान धर्म का आचरण करने वाले साधुओं का एक मण्डली में खान-पान आदि व्यवहार करना। ऐसे एक साथ खान-पानादि करने वाले साधु को सांभोगिक कहा जाता है। जब कोई साधु आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, गण, संघ आदि के प्रतिकूल आचरण करता है, तब उसे पृथक् कर दिया जाता है, अर्थात् उसके साथ खान-पानादि बन्द कर दिया जाता है, इसे ही सांभोगिक से असांभोगिक करना कहा जाता है। यदि ऐसा न किया जाय, तो संघमर्यादा कायम नहीं रह सकती।

संयम की साधना में अग्रसर होने के लिए ब्रह्मचर्य का संरक्षण बहुत आवश्यक है, अतः उसके पश्चात् ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों या बाड़ों का वर्णन किया गया है। ब्रह्मचारी को एकान्त में शयन-आसन करना, स्त्री-पशु-नपुंसकादि से संसक्त स्थान से दूर रहना, स्त्रियों की कथा न करना, उनके मनोहर अंगों को न देखना, मधुर और गरिष्ठ भोजन-पान न करना, और पूर्व में भोगे हुए भोगों की याद न करना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा उसका ब्रह्मचर्य स्थिर नहीं रह सकता।

साधक के लिए नौ विकृतियों (विगयों) का, पाप के नौ स्थानों का और पाप-वर्धक नौ प्रकार के श्रुत का परिहार भी आवश्यक है, इसलिए इनका वर्णन प्रस्तुत स्थानक में किया गया है।

भिक्षा-पद में साधु को नौ कोटि-विशुद्ध भिक्षा लेने का विधान किया गया है। देव-पद में देव-सम्बन्धी अन्य वर्णनों के साथ नौ ग्रैवेयकों का, कूट-पद में जम्बूद्वीप के विभिन्न स्थानों पर स्थित कूटों का संग्रहणी गाथाओं के द्वारा नाम-निर्देश किया गया है।

इस स्थान में सबसे बड़ा 'महापद्म' पद है। महाराज बिम्बराज श्रेणिक आगामी उत्सर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर होंगे। उनके नारकावास से निकलकर महापद्म के रूप में जन्म लेने, उनके अनेक नाम रखे जाने, शिक्षा-दीक्षा लेने, केवली होने और वर्धमान स्वामी के समान ही विहार करते हुए धर्म-देशना देने एवं उन्हीं के समान ७२ वर्ष की आयु पालन कर अन्त में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त और सर्व दुखों के अन्त करने का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस स्थान में रोग की उत्पत्ति के नौ कारणों का भी निर्देश किया गया है। उनमें आठ कारण तो शारीरिक रोगों के हैं और नवां 'इन्द्रियार्थ-विकोपन' मानसिक रोग का कारण है। रोगोपत्ति-पद के ये नवों ही कारण मननीय हैं और रोगों से बचने के लिए उनका त्याग आवश्यक है।

अवगाहना, दर्शनावरण कर्म, नौ महानिधियाँ, आयुःपरिणाम, भावी तीर्थंकर, कुलकोटि, पापकर्म आदि पदों के द्वारा अनेक ज्ञातव्य विषयों का संकलन किया गया है। संक्षेप में यह स्थानक अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।



नवम स्थान

विसंभोग-सूत्र

१—णवहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—आयरियपडिणीयं, उवज्झायपडिणीयं, थेरपडिणीयं, कुलपडिणीयं, गणपडिणीयं, संघपडिणीयं, णाणपडिणीयं, दंसणपडिणीयं, चरित्तपडिणीयं।

नौ कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ साम्भोगिक साधु को विसाम्भोगिक करता हुआ तीर्थंकर की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है। जैसे—

१. आचार्य-प्रत्यनीक—आचार्य के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
२. उपाध्याय-प्रत्यनीक—उपाध्याय के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
३. स्थविर-प्रत्यनीक—स्थविर के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
४. कुल-प्रत्यनीक—साधु-कुल के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
५. गण-प्रत्यनीक—साधु-गण के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
६. संघ-प्रत्यनीक—संघ के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
७. ज्ञान-प्रत्यनीक—सम्यग्ज्ञान के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
८. दर्शन-प्रत्यनीक—सम्यग्दर्शन के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को।
९. चारित्र-प्रत्यनीक—सम्यक्चारित्र के प्रतिकूल आचरण करनेवाले को (१)।

विवेचन—एक मण्डली में बैठकर खान-पान करनेवालों को साम्भोगिक कहते हैं। जब कोई साधु सूत्रोक्त नौ पदों में से किसी के भी साथ उसकी प्रतिष्ठा या मर्यादा के प्रतिकूल आचरण करता है, तब श्रमण-निर्ग्रन्थ उसे अपनी मण्डली से पृथक् कर सकते हैं। इस पृथक्करण को ही विसम्भोग कहा जाता है।

ब्रह्मचर्य-अध्ययन-सूत्र

२—णव बंभचेरा पण्णत्ता, तं जहा—सत्थपरिण्णा, लोगविजओ, (सीओसणिज्जं, सम्मत्तं, आवंती, धूतं, विमोहो), उवहाणसुयं, महापरिण्णा।

आचाराङ्ग सूत्र में ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी नौ अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. शस्त्रपरिज्ञा, २. लोकविजय ३. शीतोष्णीय ४. सम्यक्त्व, ५. आवन्ती-लोकसार, ६. धूत, ७. विमोह, ८. उपधानश्रुत, ९. महापरिज्ञा।

विवेचन—अहिंसकभाव रूप उत्तम आचरण करने को ब्रह्मचर्य या संयम कहते हैं। आचाराङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध में ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी नौ अध्ययन हैं। उनका यहाँ उल्लेख किया गया है। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. शस्त्र-परिज्ञा—जीव-घात के कारणभूत द्रव्य-भावरूप शस्त्रों के ज्ञानपूर्वक प्रत्याख्यान का वर्णन करनेवाला अध्ययन।
२. लोक-विजय—राग-द्वेष रूप भावलोक का विजय या निराकरण प्रतिपादक अध्ययन।

३. शीतोष्णीय—शीत अर्थात् अनुकूल और उष्ण अर्थात् प्रतिकूल परीषहों के सहने का वर्णन करनेवाला अध्ययन।
४. सम्यक्त्व—दृष्टि-व्यामोह को छुड़ाकर सम्यक्त्व की दृढता का प्रतिपादक अध्ययन।
५. आवन्ती-लोकसार—अज्ञानादि असार तत्त्वों को छुड़ाकर लोक में सारभूत रत्नत्रय की श्रेष्ठता का प्रतिपादक अध्ययन।
६. धूत—परिग्रहों के धोने अर्थात् त्यागने का वर्णन करने वाला अध्ययन।
७. विमोह—परीषह और उपसर्गों के आने पर होनेवाले मोह के त्यागने और परीषहादि को सहने का वर्णन करनेवाला अध्ययन।
८. उपधानश्रुत—भ० महावीर-द्वारा आचरित उपधान अर्थात् तप का प्रतिपादक श्रुत अर्थात् अध्ययन।
९. महापरिज्ञा—जीवन के अन्त में समाधिमरणरूप अन्तक्रिया सम्यक् प्रकार करनी चाहिए, इसका प्रतिपादक अध्ययन।

उक्त नौ स्थान ब्रह्मचर्य के कहे गये हैं (२)।

ब्रह्मचर्य-गुप्ति-सूत्र

३—णव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—णो इत्थिसंसत्ताइं णो पसुसंसत्ताइं णो पंडगसंसत्ताइं। २. णो इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति। ३. णो इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवति। ४. णो इत्थीणमिंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवति। ५. णो पणीतरसभोई [भवति ?]। ६. णो पाणभोयणस्स अतिमातमाहारए सया भवति। ७. णो पुव्वरतं पुव्वकीलियं सरेत्ता भवति। ८. णो सद्दाणुवाती णो रूवाणुवाती णो सिलोगाणुवाती [भवति ?]। ९. णो सातसोक्खपडिबद्धे यावि भवति।

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ (बाड़ें) कही गई हैं। जैसे—
१. ब्रह्मचारी एकान्त में शयन और आसन करता है, किन्तु स्त्रीसंसक्त, पशुसंसक्त और नपुंसक के संसर्गवाले स्थानों का सेवन नहीं करता है।
२. ब्रह्मचारी स्त्रियों की कथा नहीं करता है।
३. ब्रह्मचारी स्त्रियों के बैठने-उठने के स्थानों का सेवन नहीं करता है।
४. ब्रह्मचारी स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को नहीं देखता है।
५. ब्रह्मचारी प्रणीतरस-घृत-तेलबहुल-भोजन नहीं करता है।
६. ब्रह्मचारी सदा अधिक मात्रा में आहार-पान नहीं करता है।
७. ब्रह्मचारी पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों और स्त्रीक्रीड़ाओं का स्मरण नहीं करता है।
८. ब्रह्मचारी मनोज्ञ शब्दों को सुनने का, सुन्दर रूपों को देखने का और कीर्त्ति-प्रशंसा का अभिलाषी नहीं होता है।
९. ब्रह्मचारी सातावेदनीय-जनित सुख में प्रतिबद्ध—आसक्त नहीं होता है (३)।

ब्रह्मचर्य-अगुप्ति-सूत्र

४—णव बंभचेरअगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—१. णो विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—इत्थीसंसत्ताइं पसुसंसत्ताइं पंडगसंसत्ताइं। २. इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति। ३. इत्थिठाणाइं

सेवित्ता भवति। ४. इत्थीणं इंदियाइं (मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता) णिज्झाइत्ता भवति। ५. पणीयरसभोई [भवति ?]। ६. पाणभोयणस्स अइमायमाहारए सया भवति। ७. पुव्वरयं पुव्वकीलियं सरित्ता भवति। ८. सद्दाणुवाई रूवाणुवाई सिलोगाणुवाई [भवति ?]। ९. सायासोक्ख-पडिबद्धे यावि भवति।

ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ या विराधिकाएं कही गई हैं। जैसे—

१. जो ब्रह्मचारी एकान्त में शयन-आसन का सेवन नहीं करता, किन्तु स्त्रीसंसक्त, पशुसंसक्त और नपुंसकसंसक्त स्थानों का सेवन करता है।
२. जो ब्रह्मचारी स्त्रियों की कथा करता है।
३. जो ब्रह्मचारी स्त्रियों के बैठने-उठने के स्थानों का सेवन करता है।
४. जो ब्रह्मचारी स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को देखता है और उनका चिन्तन करता है।
५. जो ब्रह्मचारी प्रणीत रसवाला भोजन करता है।
६. जो ब्रह्मचारी सदा अधिक मात्रा में आहार-पान करता है।
७. जो ब्रह्मचारी पूर्वभुक्त भोगों और क्रीड़ाओं का स्मरण करता है।
८. जो ब्रह्मचारी मनोज्ञ शब्दों को सुनने का, सुन्दर रूपों को देखने का और कीर्त्ति-प्रशंसा का अभिलाषी होता है।
९. जो ब्रह्मचारी सातावेदनीय-जनित सुखमें प्रतिबद्ध होता है (४)।

तीर्थंकर-सूत्र

५—अभिणंदणाओ णं अरहओ सुमती अरहा णवहिं सागरोवमकोडीसयसहस्सेहिं वीइक्कंतेहिं समुप्पण्णे।

अर्हत् अभिनन्दन के अनन्तर नौ लाख करोड़ सागरोपमकाल व्यतीत हो जाने पर अर्हत् सुमति देव उत्पन्न हुए (५)।

सद्भावपदार्थ-सूत्र

६—णव सब्भावपयत्था पण्णत्ता, तं जहा—जीवा, अजीवा, पुण्णं, पावं, आसवो, संवरो, णिज्जरा, बंधो, मोक्खो।

सद्भाव रूप पारमार्थिक पदार्थ नौ कहे गये हैं। जैसे—

१. जीव, २. अजीव, ३. पुण्य, ४. पाप, ५. आस्रव, ६. संवर, ७. निर्जरा, ८. बन्ध, ९. मोक्ष (६)।

जीव-सूत्र

७—णवविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया), वणस्सइकाइया, बेइंदिया, (तेइंदिया, चउरिंदिया), पंचिंदिया।

संसार-समापन्नक जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४. वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय, ७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय, ९. पंचेन्द्रिय (७)।

गति-आगति-सूत्र

८—पुढविकाइया णवगतिया णवआगतिया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइए पुढविकाइएसु उववज्जमाणे पुढविकाइएहिंतो वा, (आउकाइएहिंतो वा, तेउकाइएहिंतो वा, वाउकाइएहिंतो वा, वणस्सइकाइएहिंतो वा, बेइंदिएहिंतो वा, तेइंदिएहिंतो वा, चउरिंदिएहिंतो वा), पंचिंदिएहिंतो वा उववज्जेज्जा।

से चेव णं से पुढविकाइए पुढविकायत्तं विप्पजहमाणे पुढविकाइयत्ताए वा, (आउकाइयत्ताए वा, तेउकाइयत्ताए वा, वाउकाइयत्ताए वा, वणस्सइकाइयत्ताए वा, बेइंदियत्ताए वा, तेइंदियत्ताए वा, चउरिंदियत्ताए वा), पंचिंदियत्ताए वा गच्छेज्जा।

पृथ्वीकायिक जीव नौ गतिक और नौ आगतिक कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाला पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकों से, या अप्कायिकों से, या तेजस्कायिकों से, या वायुकायिकों से, या वनस्पतिकायिकों से, या द्वीन्द्रियों से, या त्रीन्द्रियों से, या चतुरिन्द्रियों से, या पंचेन्द्रियों से आकर उत्पन्न होता है।

वही पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकपने को छोड़ता हुआ पृथ्वीकायिक रूप से, या अप्कायिक रूप से, या तेजस्कायिक रूप से, या वायुकायिक रूप से, या वनस्पतिकायिक रूप से, या द्वीन्द्रिय-रूप से, या त्रीन्द्रियरूप से, या चतुरिन्द्रिय रूप से, या पंचेन्द्रिय रूप से जाता है, अर्थात् उनमें उत्पन्न होता है (८)।

९—एवमाउकाइयावि जाव पंचिंदियत्ति।

इसी प्रकार अप्कायिक से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव नौ गतिक और नौ आगतिक जानना चाहिए (९)।

जीव-सूत्र

१०—णवविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, णेरइया, पंचेंदियतिरिक्खजोणिया, मणुया, देवा, सिद्धा।

अहवा—णवविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमयणेरइया, अपढमसमयणेरइया, (पढमसमयतिरिया, अपढमसमयतिरिया, पढमसमयमणुया, अपढमसमयमणुया, पढमसमयदेवा), अपढमसमयदेवा, सिद्धा।

सब जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. एकेन्द्रिय, २. द्वीन्द्रिय, ३. त्रीन्द्रिय, ४. चतुरिन्द्रिय, ५. नारक, ६. पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक, ७. मनुष्य, ८. देव, ९, सिद्ध।

अथवा सब जीव नौ प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्रथम समयवर्ती नारक,   २. अप्रथम समयवर्ती नारक।
३. प्रथम समयवर्ती तिर्यंच,   ४. अप्रथम समयवर्ती तिर्यंच।
५. प्रथम समयवर्ती मनुष्य,   ६. अप्रथम समयवर्ती मनुष्य।
७. प्रथम समयवर्ती देव,   ८. अप्रथम समयवर्ती देव।
९. सिद्ध (१०)।

अवगाहना-सूत्र

११—णवविहा सव्वजीवोगाहणा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइओगाहणा, आउकाइओगाहणा, (तेउकाइओगाहणा, वाउकाइओगाहणा), वणस्सइकाइओगाहणा, बेइंदियओगाहणा, तेइंदियओगाहणा, चउरिंदियओगाहणा, पंचिंदियओगाहणा।

सब जीवों की अवगाहना नौ प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना, २. अप्कायिक जीवों की अवगाहना,
३. तेजस्कायिक जीवों की अवगाहना, ४. वायुकायिक जीवों की अवगाहना,
५. वनस्पतिकायिक जीवों की अवगाहना, ६. द्वीन्द्रिय जीवों की अवगाहना,
७. त्रीन्द्रिय जीवों की अवगाहना, ८ चतुरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना,
९. पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना (११)।

संसार-सूत्र

१२—जीवा णं णवहिं ठाणेहिं संसारं वत्तिसु वा वत्तंति वा वत्तिस्संति वा, तं जहा—पुढविकाइयत्ताए, (आउकाइयत्ताए, तेउकाइयत्ताए, वाउकाइयत्ताए, वणस्सइकाइयत्ताए, बेइंदियत्ताए, तेइंदियत्ताए, चउरिंदियत्ताए), पंचिंदियत्ताए।

जीवों ने नौ स्थानों से (नौ पर्यायों में) संसार-परिभ्रमण किया है, कर रहे हैं और आगे करेंगे। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक रूप से, २. अप्कायिक रूप से, ३. तेजस्कायिक रूप से, ४. वायुकायिक रूप से, ५. वनस्पतिकायिक रूप से, ६. द्वीन्द्रिय रूप से, ७. त्रीन्द्रिय रूप से, ८. चतुरिन्द्रिय रूप से, ९. पंचेन्द्रिय रूप से (१२)।

रोगोत्पत्ति-सूत्र

१३—णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया, तं जहा—अच्चासणयाए, अहितासणयाए, अतिणिद्दाए, अतिजागरितेणं, उच्चारणिरोहेणं, पासवणणिरोहेणं, अद्धाणगमणेणं, भोयणपडिकूलताए, इंदियत्थ-विकोवणयाए।

नौ स्थानों—कारणों से रोग की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१. अधिक बैठे रहने से, या अधिक भोजन करने से।
२. अहितकर आसन से बैठने से, या अहितकर भोजन करने से।
३. अधिक नींद लेने से, ४. अधिक जागने से,
५. उच्चार (मल) का निरोध करने से. ६. प्रस्रवण (मूत्र) का वेग रोकने से,
७. अधिक मार्ग-गमन से, ८. भोजन की प्रतिकूलता से,
९. इन्द्रियार्थ-विकोपन अर्थात् काम-विकार से (१३)।

दर्शनावरणीयकर्म-सूत्र

१४—णवविधे दरिसणावरणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—णिद्दा, णिद्दाणिद्दा, पयला, पयला-पयला, थीणगिद्धी, चक्खुदंसणावरणे, अचक्खुदंसणावरणे, ओहिदंसणावरणे, केवलदंसणावरणे।

दर्शनावरणीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. निद्रा—हलकी नींद सोना, जिससे सुखपूर्वक जगाया जा सके।
२. निद्रानिद्रा—गहरी नींद सोना, जिससे कठिनता से जगाया जा सके।
३. प्रचला—खड़े या बैठे हुए ऊंघना।
४. प्रचला-प्रचला—चलते-चलते सोना।
५. स्त्यानर्द्धि—दिन में सोचे काम को निद्रावस्था में कराने वाली घोर निद्रा।
६. चक्षुदर्शनावरण—चक्षु के द्वारा होने वाले वस्तु के सामान्य रूप के अवलोकन का आवरण करने वाला कर्म।
७. अचक्षुदर्शनावरण—चक्षु के सिवाय शेष इन्द्रियों और मन से होने वाले सामान्य अवलोकन या प्रतिभास का आवरक कर्म।
८. अवधिदर्शनावरण—इन्द्रिय और मन की सहायता विना मूर्त्त पदार्थों के सामान्य दर्शन का प्रतिबन्धक कर्म।
९. केवलदर्शनावरण—सर्व द्रव्य और पर्यायों के साक्षात् दर्शन का आवरक कर्म (१४)।

ज्योतिष-सूत्र

१५—अभिई णं णक्खत्ते सातिरेगे णवमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोएति।

अभिजित् नक्षत्र कुछ अधिक नौ मुहूर्त तक चन्द्रमा के साथ योग करता है (१५)।

१६—अभिइआइया णं णव णक्खत्ता णं चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति, तं जहा—अभिई, सवणो धणिट्ठा, (सयभिसया, पुव्वाभद्दवया, उत्तरापोट्ठवया, रेवई, अस्सिणी), भरणी।

अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ उत्तर दिशा से योग करते हैं। जैसे—

१. अभिजित्, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. शतभिषक्, ५. पूर्वभाद्रपद, ६. उत्तरभाद्रपद, ७. रेवती, ८. अश्विनी, ९. भरणी (१६)।

१७—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ णव जोअणसताइं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरति।

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन ऊपर सब से ऊपर वाला तारा (शनैश्चर) भ्रमण करता है (१७)।

मत्स्य-सूत्र

१८—जंबुद्दीवे णं दीवे णवजोयणिआ मच्छा पविसिंसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में नौ योजन के मत्स्यों ने अतीत काल में प्रवेश किया है, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे। (लवणसमुद्र से जम्बूद्वीप की नदियों में आ जाते हैं) (१८)।

बलदेव-वासुदेव-सूत्र

१९—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव-वासुदेवपियरो हुत्था, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

पयावती य बंभे रोद्दे सोमे सिवेति य।
महसीहे अग्गिसीहे, दसरहे णवमे य वसुदेवे ॥१॥
इत्तो आढत्तं जधा समवाये णिरवसेसं जाव—
एगा से गब्भवसही, सिज्झिहिति आगमेसेणं ॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में इसी अवसर्पिणी में बलदेवों के नौ और वासुदेवों के नौ पिता हुए हैं। जैसे—

१. प्रजापति, २. ब्रह्म, ३. रौद्र, ४. सोम, ५. शिव, ६. महासिंह, ७. अग्निसिंह, ८. दशरथ, ९. वसुदेव।

यहाँ से आगे शेष सब वक्तव्य समवायांग के समान है यावत् वह आगामी काल में एक गर्भ-वास करके सिद्ध होगा (१९)।

२०—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमेसाए उस्सप्पिणीए णव बलदेव-वासुदेवपितरो भविस्संति, णव बलदेव-वासुदेवमायरो भविस्संति। एवं जधा समवाए णिरवसेसं जाव महाभीमसेणे, सुग्गीवे य अपच्छिमे।

एए खलु पडिसत्तू, कित्तिपुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही, हम्मेहिंती सचक्केहिं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में आगामी उत्सर्पिणी में बलदेव और वासुदेव के नौ माता-पिता होंगे।

इस प्रकार जैसे समवायांग में वर्णन किया गया है, वैसा सर्व वर्णन महाभीमसेन और सुग्रीव तक जानना चाहिए।

वे कीर्त्तिपुरुष वासुदेवों के प्रतिशत्रु होंगे। वे सब चक्रयोधी होंगे और वे सब अपने ही चक्रों से वासुदेवों के द्वारा मारे जावेंगे (२०)।

महानिधि-सूत्र

२१—एगमेगे णं महाणिधी णव-णव जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

एक-एक महानिधि नौ-नौ योजन विस्तार वाली कही गई है (२१)।

२२—एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स णव महाणिहिओ [णो ?] पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथाएं

णेसप्पे पंडुयए, पिंगलए सव्वरयण महापउमे।
काले य महाकाले, माणवग, महाणिही संखे ॥१॥
णेसप्पंमि णिवेसा, गामागर-णगर-पट्टणाणं च।
दोणमुह-मडंबाणं, खंधाराणं गिहाणं च ॥२॥
गणियस्स य बीयाणं, माणुम्माणस्स जं पमाणं च।
धण्णस्स य बीयाणं, उप्पत्ती पंडुए भणिया ॥३॥

सव्वा आभरणविही, पुरिसाणं जा य होइ महिलाणं।
आसाण य हत्थीण य, पिंगलगणिहिम्मि सा भणिया ॥४॥
रयणाइं सव्वरयणे, चोद्दस पवराइं चक्कवट्टिस्स।
उप्पज्जंति एगिंदियाइं पंचिंदियाइं च ॥५॥
वत्थाण य उप्पत्ती, णिप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं।
रंगाण य धोयाण य, सव्वा एसा महापउमे ॥६॥
काले कालण्णाणं, भव्व पुराणं च तीसु वासेसु।
सिप्पसतं कम्माणि य, तिण्णि पयाए हियकराइं ॥७॥
लोहस्स य उप्पत्ती, होइ महाकाले आगराणं च।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य, मणि-मोत्ति-सिल-प्पवालाणं ॥८॥
जोधाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च।
सव्वा य जुद्धनीती, माणवए दंडणीती य ॥९॥
णट्टविही णाडगविही, कव्वस्स चउव्विहस्स उप्पत्ती।
संखे महाणिहिम्मी, तुडियंगाणं च सव्वेसिं ॥१०॥
चक्कट्ठपइट्ठाणा, अट्ठुस्सेहा य णव य विक्खंभे।
बारसदीहा मंजूस-संठिया जह्णवीए मुहे ॥११॥
वेरुलियमणि-कवाडा, कणगमया विविध-रयण-पडिपुण्णा।
ससि-सूर-चक्क-लक्खण-अणुसम-जुग-बाहु-वयणा य ॥१२॥
पलिओवमट्ठितीया, णिहिसरिणामा य तेसु खलु देवा।
जेसिं ते आवासा, अक्किज्जा आहिवच्चा वा ॥१३॥
एए ते णवणिहिणो, पभूतधणरयणसंचयसमिद्धा।
जे वसमुवगच्छंती, सव्वेसिं चक्कवट्टीणं ॥१४॥

एक-एक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा की नौ-नौ निधियाँ कही गई हैं। जैसे—

संग्रहणी-गाथा—१. नैसर्पनिधि, २. पाण्डुकनिधि, ३. पिंगलनिधि, ४. सर्वरत्ननिधि, ५. महापद्मनिधि, ६. कालनिधि, ७. महाकालनिधि, ८. माणवकनिधि, ९. शंखनिधि ॥१॥

१. ग्राम, आकर, नगर, पट्टन, द्रोणमुख, मडंब, स्कन्धावार और गृहों की नैसर्पनिधि से प्राप्ति होती है ॥२॥

२. गणित तथा बीजों के मान-उन्मान का प्रमाण तथा धान्य और बीजों की उत्पत्ति पाण्डुक महानिधि से होती है ॥३॥

३. स्त्री, पुरुष, घोड़े और हाथियों के समस्त वस्त्र-आभूषण की विधि पिंगलकनिधि में कही गई है ॥४॥

४. चक्रवर्ती के सात एकेन्द्रिय रत्न और सात पंचेन्द्रिय रत्न, ये सब चौदह श्रेष्ठरत्न सर्वरत्न-निधि से उत्पन्न होते हैं ॥५॥

५. रंगे हुए या श्वेत सभी प्रकार के वस्त्रों की उत्पत्ति और निष्पत्ति महापद्म निधि से होती है ॥६॥

६. अतीत और अनागत के तीन-तीन वर्षों के शुभाशुभ का ज्ञान, सौ प्रकार के शिल्प, प्रजा के लिए हितकारक सुरक्षा, कृषि और वाणिज्य कर्म काल महानिधि से प्राप्त होते हैं ।।७।।

७. लोहे, चाँदी तथा सोने के आकर, मणि, मुक्ता, स्फटिक और प्रवाल की उत्पत्ति महाकाल निधि से होती है ।।८।।

८. योद्धाओं, आवरणों (कवचों) और आयुधों की उत्पत्ति, सर्व प्रकार की युद्धनीति और दण्डनीति की प्राप्ति माणवक महानिधि से होती है ।।९।।

९. नृत्यविधि, नाटकविधि, चार प्रकार के काव्यों, तथा सभी प्रकार के वाद्यों की प्राप्ति शंख महानिधि से होती है ।।१०।।

विवेचन—चक्रवर्त्ती के नौ निधानों के नायक नौ देव हैं। यहाँ पर निधान और निधान-नायक देव के अभेद की विवक्षा है। अतएव जिस निधान (निधि) से जिन वस्तुओं की प्राप्ति कही गई है, वह निधान-नायक उस-उस देव से समझना चाहिए। नौ निधियों में चक्रवर्त्ती के उपयोग की सभी वस्तुओं का समावेश हो जाता है।

प्रत्येक महानिधि आठ-आठ चक्रों पर अवस्थित है। वे आठ योजन ऊंची, नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी और मंजूषा के आकार वाली होती हैं। ये सभी महानिधियाँ गंगा के मुहाने पर अवस्थित रहती है ।।११।।

उन निधियों के कपाट वैडूर्यरत्नमय और सुवर्णमय होते हैं। उनमें अनेक प्रकार के रत्न जड़े होते हैं। उन पर चन्द्र, सूर्य और चक्र के आकार के चिह्न होते हैं। वे सभी कपाट समान होते हैं, उनके द्वार के मुखभाग खम्भे के समान गोल और लम्बी द्वार-शाखाएं होती हैं ।।१२।।

ये सभी निधियाँ एक-एक पल्योपम की स्थिति वाले देवों से अधिष्ठित रहती हैं। उन पर निधियों के नाम वाले देव निवास करते हैं। ये निधियाँ खरीदी या बेची नहीं जा सकती हैं और उन पर सदा देवों का आधिपत्य रहता है ।।१३।।

ये नवों निधियाँ विपुल धन और रत्नों के संचय से समृद्ध रहती हैं और ये चक्रवर्त्तियों के वश में रहती हैं[1] ।।१४।।

विकृति-सूत्र

२३—णव विगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खीरं, दधिं, णवणीतं, सप्पि, तेलं, गुलो, महुं, मज्जं, मंसं ।

---

१. दि० शास्त्रों में भी चक्रवर्त्ती की उक्त नौ निधियों का वर्णन है, केवल नामों के क्रमों में अन्तर है। कार्यों के साथ उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. कालनिधि—द्रव्य-प्रदात्री । २. महाकालनिधि—भाजन, पात्र-प्रदात्री ।
३. पाण्डुनिधि—धान्य-प्रदात्री । ४. माणवनिधि—आयुध-प्रदात्री ।
५. शंखनिधि—वादित्र-प्रदात्री । ६. पद्मनिधि—वस्त्र-प्रदात्री ।
७. नैसर्पनिधि—भवन-प्रदात्री । ८. पिंगलनिधि—आभरण-प्रदात्री ।
९. नानारत्ननिधि—नाना प्रकार के रत्नों की प्रदात्री ।

—तिलोयपण्णत्ती. ४, गा. १३८४, १३८६.

नौ विकृतियाँ कही गई हैं। जैसे—

१. दूध; २. दही, ३. नवनीत (मक्खन), ४. घी, ५. तेल, ६. गुड़, ७. मधु, ८. मद्य, ९. मांस (२३)।

बोन्दी-(शरीर)-सूत्र

२४—णव-सोत-परिस्सवा बोंदी पण्णत्ता, तं जहा—दो सोत्ता, दो णेत्ता, दो घाणा, मुहं, पोसए, पाऊ।

शरीर नौ स्रोतों से झरने वाला कहा गया है। जैसे—

दो कर्णस्रोत, दो नेत्रस्रोत, दो नाकस्रोत, एक मुखस्रोत, एक उपस्थस्रोत (मूत्रेन्द्रिय) और एक अपानस्रोत (मलद्वार) (२४)।

पुण्य-सूत्र

२५—णवविधे पुण्णे, पण्णत्ते, तं जहा—अण्णपुण्णे, पाणपुण्णे, वत्थपुण्णे, लेणपुण्णे, सयणपुण्णे, मणपुण्णे, वइपुण्णे, कायपुण्णे, णमोक्कारपुण्णे।

नौ प्रकार का पुण्य कहा गया है। जैसे—

१. अन्न पुण्य, २. पान पुण्य, ३. वस्त्र पुण्य, ४. लयन-(भवन)-पुण्य, ५. शयन पुण्य, ६. मन पुण्य ७. वचन पुण्य, ८. काय पुण्य, ९. नमस्कार पुण्य (२५)।

पापायतन-सूत्र

२६—णव पावस्सायतणा पण्णत्ता, तं जहा—पाणातिवाते, मुसावाए, (अदिण्णादाणे, मेहुणे), परिग्गहे, कोहे, माणे, माया, लोभे।

पाप के आयतन (स्थान) नौ कहे गये हैं। जैसे—

१. प्राणातिपात, २. मृषावाद, ३. अदत्तादान, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८ माया, ९. लोभ (२६)।

पापश्रुतप्रसंग-सूत्र

२७—णवविधे पावसुयपसंगे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

उप्पाते णिमित्ते मंते, आइक्खिए तिगिच्छिए।
कला आवरणे: अण्णाणे मिच्छापवयणे ति य ॥१॥

पाप श्रुत प्रसंग (पाप के कारणभूत शास्त्र का विस्तार) नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उत्पातश्रुत—प्रकृति-विप्लव और राष्ट्र-विप्लव का सूचक शास्त्र।
२. निमित्तश्रुत—भूत, वर्तमान और भविष्य के फल का प्रतिपादक शास्त्र।
३. मन्त्रश्रुत—मन्त्र-विद्या का प्रतिपादक शास्त्र।
४. आख्यायिकाश्रुत—परोक्ष बातों की प्रतिपादक मातंगविद्या का शास्त्र।
५. चिकित्साश्रुत—रोग-निवारक औषधियों का प्रतिपादक आयुर्वेद शास्त्र।

६. कलाश्रुत—स्त्री-पुरुषों की कलाओं का प्रतिपादक शास्त्र ।
७. आवरणश्रुत—भवन-निर्माण की वास्तुविद्या का शास्त्र ।
८. अज्ञानश्रुत—नृत्य, नाटक, संगीत आदि का शास्त्र ।
९. मिथ्या प्रवचन—कुतीर्थिक मिथ्यात्वियों के शास्त्र (२७) ।

नैपुणिक-सूत्र

२८—णव णेउणिया वत्थू पण्णत्ता, तं जहा—

संखाणे णिमित्ते काइए पोराणे पारिहत्थिए ।
परपंडिते वाई य, भूतिकम्मे तिगिच्छिए ।।१।।

नैपुणिक वस्तु नौ कही गई हैं। अर्थात् किसी वस्तु में निपुणता प्राप्त करने वाले पुरुष नौ प्रकार के होते हैं। जैसे—

१. संख्यान नैपुणिक—गणित शास्त्र का विशेषज्ञ ।
२. निमित्त नैपुणिक—निमित्त शास्त्र का विशेषज्ञ ।
३. काय नैपुणिक—शरीर की इडा, पिंगला आदि नाड़ियों का विशेषज्ञ ।
४. पुराण नैपुणिक—प्राचीन इतिहास का विशेषज्ञ ।
५. पारिहस्तिक नैपुणिक—प्रकृति से ही समस्त कार्यों में कुशल ।
६. परपंडित—अनेक शास्त्रों को जानने वाला ।
७. वादी—शास्त्रार्थ या वाद-विवाद करने में कुशल ।
८. भूतिकर्म नैपुणिक—भस्म लेप करके और डोरा आदि बाँध कर चिकित्सा आदि करने में कुशल ।
९. चिकित्सा नैपुणिक—शारीरिक चिकित्सा करने में कुशल (२८) ।

विवेचन—आ० अभयदेव सूरि ने उक्त नौ प्रकार के नैपुणिक पुरुषों की व्याख्या करने के पश्चात् सूत्र-पठित 'वत्थु' (वस्तु) पद के आधार पर अथवा कहकर अनुप्रवाद पूर्व के वस्तु नामक नौ अधिकारों को सूचित किया है, जिनके नाम भी ये ही हैं ।

गण-सूत्र

२९—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स णव गणा हुत्था, तं जहा—गोदासगणे, उत्तर-बलिस्सहगणे, उद्देहगणे, चारणगणे, उद्दवाइयगणे, विस्सवाइयगणे, कामड्ढियगणे, माणवगणे, कोडियगणे ।

श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण (एक-सी सामाचारी) का पालन करने वाले और एक-सी वाचना वाले साधुओं के समुदाय) थे। जैसे—

१. गोदासगण, २. उत्तरबलिस्सहगण,
३. उद्देहगण, ४. चारणगण,
५. उद्दकाइयगण, ६. विस्सवाइयगण,
७. कामर्धिकगण ८. मानवगण, ९. कोटिकगण (२९) ।

भिक्षाशुद्धि-सूत्र

३०—समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णवकोडिपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, तं जहा—ण हणइ, ण हणावइ, हणंतं णाणुजाणइ, ण पयइ, ण पयावेति, पयंतं णाणुजाणति, ण किणति, ण किणावेति, किणंतं णाणुजाणति ।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए नौ कोटि परिशुद्ध भिक्षा का निरूपण किया है । जैसे—

१. आहार निष्पादनार्थ गेहूँ आदि सचित्त वस्तु का घात नहीं करता है ।
२. आहार निष्पादनार्थ गेहूँ आदि सचित्त वस्तु का घात नहीं कराता है ।
३. आहार निष्पादनार्थ गेहूं आदि सचित्त वस्तु के घात की अनुमोदना नहीं करता है ।
४. आहार स्वयं नहीं पकाता है ।
५. आहार दूसरों से नहीं पकवाता है ।
६. आहार पकाने वालों की अनुमोदना नहीं करता है ।
७. आहार को स्वयं नहीं खरीदता है ।
८. आहार को दूसरों से नहीं खरीदवाता है ।
९. आहार मोल लेने वाले की अनुमोदना नहीं करता है (३०) ।

देव-सूत्र

३१—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वरुणस्स महारण्णो णव अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ।

देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज वरुण की नौ अग्रमहिषियाँ कही गई हैं (३१) ।

३२—ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो अग्गमहिसीणं णव पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

देवेन्द्र देवराज ईशान की अग्रमहिषियों की स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है (३२) ।

३३—ईसाणे कप्पे उक्कोसेणं देवीणं णव पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

ईशानकल्प में देवियों की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की कही गई है (३३) ।

३४—णव देवणिकाया पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सारस्सयमाइच्चा, वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा, अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥१॥

देव (लोकान्तिकदेव) निकाय नौ कहे गये हैं । जैसे—

१. सारस्वत, २. आदित्य, ३. वह्नि, ४. वरुण, ५. गर्दतोय, ६. तुषित, ७. अव्याबाध, ८. अग्न्यर्च, ९. रिष्ट (३४) ।

३५—अव्वाबाहाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता ।

अव्याबाध देव स्वामी रूप में नौ हैं और उनका नौ सौ देवों का परिवार कहा गया है (३५) ।

३६—(अग्गिच्चाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता ।

अग्न्यर्च देव स्वामी रूप में नौ हैं और उनके नौ सौ देवों का परिवार कहा गया है (३६)।

३७—रिट्ठाणं देवाणं णव देवा णव देवसया पण्णत्ता) ।

रिष्ट देव स्वामी के रूप में नौ हैं और उनके नौ सौ देवों का परिवार कहा गया है (३७)।

३८—णव गेवेज्ज-विमाण-पत्थडा पण्णत्ता, तं जहा—हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, हेट्ठिम-मज्झिम--गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, हेट्ठिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, मज्झिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, मज्झिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, मज्झिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, उवरिम-हेट्ठिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, उवरिम-मज्झिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे, उवरिम-उवरिम-गेविज्ज-विमाण-पत्थडे ।

ग्रैवेयक विमान के प्रस्तट (पटल) नौ कहे गये हैं। जैसे—

१. अधस्तन-त्रिक का अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
२. अधस्तन त्रिक का मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
३. अधस्तन त्रिक का उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
४. मध्यम त्रिक का अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
५. मध्यम त्रिक का मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
६. मध्यम त्रिक का उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
७. उपरितन त्रिक का अधस्तन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
८. उपरितन त्रिक का मध्यम ग्रैवेयक विमान प्रस्तट।
९. उपरितन त्रिक का उपरितन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट (३८)।

३९—एतेसि णं णवण्हं गेविज्ज-विमाण-पत्थडाणं णव णामधिज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

भद्दे सुभद्दे सुजाते, सोमणसे पियदरिसणे ।
सुदंसणे अमोहे य, सुप्पबुद्धे जसोधरे ।।१।।

इन ग्रैवेयक विमानों के नवों प्रस्तटों के नौ नाम कहे गये हैं। जैसे—

१. भद्र, २. सुभद्र, ३. सुजात, ४. सौमनस, ५. प्रियदर्शन, ६. सुदर्शन, ७. अमोह, ८. सुप्रबुद्ध, ९. यशोधर (३९)।

आयुपरिणाम-सूत्र

४०—णवविहे आउपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—गतिपरिणामे, गतिबंधणपरिणामे, ठितीपरिणामे, ठितीबंधणपरिणामे, उड्ढंगारवपरिणामे, अहेगारवपरिणामे, तिरियंगारवपरिणामे, दीहंगारवपरिणामे, रहस्संगारवपरिणामे ।

आयुःपरिणाम नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. गति परिणाम—जीव को देवादि नियत गति प्राप्त कराने वाला आयु का स्वभाव।

२. गतिबन्धन परिणाम—प्रतिनियत गति नामकर्म का वन्ध कराने वाला आयु का स्वभाव । जैसे—नारकायु के स्वभाव से जीव मनुष्य या तिर्यंच गतिनाम कर्म का वन्ध करता है, देव या नरक गतिनाम कर्म का नहीं ।
३. स्थिति परिणाम—भव सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्त से लेकर तेतीस सागरोपम तक की स्थिति का यथायोग्य बन्ध कराने वाला परिणाम ।
४. स्थितिबन्धन परिणाम—पूर्व भव की आयु के परिणाम से अगले भव की नियत आयु स्थिति का बन्ध कराने वाला परिणाम जैसे—तिर्यगायु के स्वभाव से देवायु का उत्कृष्ट भी बन्ध अठारह सागरोपम होगा, इससे अधिक नहीं ।
५. ऊर्ध्वगौरव परिणाम—जीव का ऊर्ध्व दिशा में गमन कराने वाला परिणाम ।
६. अधोगौरव परिणाम—जीव का अधो दिशा में गमन कराने वाला परिणाम ।
७. तिर्यग्गौरव परिणाम—जीव का तिर्यग् दिशा में गमन कराने वाला परिणाम ।
८. दीर्घगौरव परिणाम—जीव का लोक के अन्त तक गमन कराने वाला परिणाम ।
९. ह्रस्वगौरव परिणाम—जीव का अल्प गमन कराने वाला परिणाम (४०) ।

प्रतिमा-सूत्र

४१—णवणवमिया णं भिक्खुपडिमा एगासीतीए रातिंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं (अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) आराहिया यावि भवति ।

नव-नवमिका भिक्षुप्रतिमा ८१ दिन-रात तथा ४०५ भिक्षादत्तियों के द्वारा यथासूत्र, यथा-अर्थ, यथातत्त्व, यथामार्ग, यथाकल्प, तथा सम्यक् प्रकार काय से आचरित, पालित, शोधित, पूरित, कीर्त्तित और आराधित की जाती है (४१) ।

प्रायश्चित्त-सूत्र

४२—णवविधे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—आलोयणारिहे (पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउस्सग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे), मूलारिहे, अणवट्ठप्पारिहे ।

प्रायश्चित्त नौ प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. आलोचना के योग्य, २. प्रतिक्रमण के योग्य,
३. तदुभय—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य,
४. विवेक के योग्य, ५. व्युत्सर्ग के योग्य,
६ तप के योग्य, ७. छेद के योग्य,
८. मूल के योग्य, ९. अनवस्थाप्य के योग्य (४२) ।

कूट-सूत्र

४३—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं भरहे दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सिद्धे भरहे खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
भरहे वेसमणे या, भरहे कूडाण णामाइं ।।१।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में, भरत क्षेत्र में दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर नौ कूट कहे गये हैं ।

१. सिद्धायतन कूट, २. भरत कूट, ३. खण्डकप्रपात गुफा कूट, ४. माणिभद्र कूट, ५. वैताढ्य कूट, ६. पूर्णभद्र कूट, ७. तमिस्रगुफा कूट, ८. भरत कूट, ९. वैश्रमण कूट (४३) ।

४४—**जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं णिसहे वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—**

सिद्धे णिसहे हरिवस, विदेह हरि धिति अ सीतोया ।
अवरविदेहे रुयगे, णिसहे कूडाण णामाणि ।।१।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के दक्षिण में निषध वर्षधर पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं । जैसे—

१. सिद्धायतन कूट, २. निषध कूट, ३, हरिवर्ष कूट, ४. पूर्वविदेह कूट, ५. हरि कूट, ६. धृति कूट, ७. सीतोदा कूट, ८. अपरविदेह कूट, ९. रुचक कूट (४४) ।

४५—**जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वते णंदणवणे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—**

णंदणे मंदरे चेव, णिसहे हेमवते रयय रुयए य ।
सागरचित्ते वइरे, बलकूडे चेव बोद्धव्वे ।।१।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के नन्दन वन में नौ कूट कहे गये हैं । जैसे—

१. नन्दन कूट, २. मन्दर कूट, ३. निषध कूट, ४. हैमवत कूट, ५. रजत कूट, ६. रुचक कूट, ७. सागरचित्र कूट, ८. वज्र कूट, ९. बल कूट (४५) ।

४६—**जंबुद्दीवे दीवे मालवंतवक्खारपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—**

सिद्धे य मालवंते, उत्तरकुरु कच्छ सागरे रयते ।
सीता य पुण्णणामे, हरिस्सहकूडे य बोद्धव्वे ।।१।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के [उत्तर में उत्तरकुरु के पश्चिम पार्श्व में] माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं । जैसे—

१. सिद्धायतन कूट, २. माल्यवान् कूट, ३. उत्तर-कुरु कूट, ४. कच्छ कूट, ५. सागर कूट, ६. रजत कूट, ७. सीता कूट, ८. पूर्णभद्र कूट, ९. हरिस्सह कूट (४६) ।

४७—**जंबुद्दीवे दीवे कच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—**

सिद्धे कच्छे खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
कच्छे वेसमणे या, कच्छे कूडाण णामाइं ।।१।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में कच्छवर्ती दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं । जैसे—

१. सिद्धायतन कूट, २. कच्छ कूट, ३. खण्डकप्रपातगुहा कूट, ४. माणिभद्र कूट, ५. वैताढ्य कूट, ६. पूर्णभद्र कूट, ७. तमिस्रगुफा कूट, ८. कच्छ कूट, ९. वैश्रमण कूट (४७)।

४८—जंबुद्दीवे दीवे सुकच्छे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे सुकच्छे खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा।
सुकच्छे वेसमणे या, सुकच्छे कूडाण णामाइं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में सुकच्छवर्ती दीर्घ वैताढ्य पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धायतन कूट, २. सुकच्छ कूट, ३. खण्डकप्रपातगुफा कूट, ४. माणिभद्र कूट, ५. वैताढ्य कूट, ६. पूर्णभद्र कूट, ७. तमिस्रगुफाकूट, ८. सुकच्छ कूट, ९. वैश्रमण कूट (४८)।

४९—एवं जाव पोक्खलावइम्मि दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार महाकच्छ, कच्छकावती, आवर्त, मंगलावर्त, पुष्कल और पुष्कलावती विजय में विद्यमान दीर्घ वैताढ्यों के ऊपर नौ नौ कूट जानना चाहिए (४९)।

५०—एवं वच्छे दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार वत्स विजय में विद्यमान दीर्घ वैताढ्य पर नौ कूट कहे गये हैं (५०)।

५१—एवं जाव मंगलावतिम्मि दीहवेयड्ढे।

इसी प्रकार सुवत्स, महावत्स, वत्सकावती, रम्य, रम्यक, रमणीय और मंगलावती विजयों में विद्यमान दीर्घ वैताढ्यों के ऊपर नौ नौ कूट जानना चाहिए (५१)।

५२—जंबुद्दीवे दीवे विज्जुप्पभे वक्खारपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे अ विज्जुणामे, देवकुरा पम्ह कणग सोवत्थी।
सीओदा य सयजले, हरिकूडे चेव बोद्धव्वे ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धायतनकूट, २. विद्युत्प्रभकूट, ३. देवकुराकूट, ४. पक्ष्मकूट, ५. कनककूट, ६. स्वस्तिककूट, ७. सीतोदाकूट, ८. शतज्वलकूट, ९. हरिकूट (५२)।

५३—जंबुद्दीवे दीवे पम्हे दीहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे पम्हे खंडग, माणी वेयड्ढ (पुण्ण तिमिसगुहा।
पम्हे वेसमणे या, पम्हे कूडाण णामाइं) ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पक्ष्मवर्ती दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धायतनकूट, २. पक्ष्मकूट, ३. खण्डकप्रतापगुफाकूट, ४. माणिभद्रकूट, ५. वैताढ्यकूट, ६. पूर्णभद्रकूट, ७. तमिस्रगुफाकूट, ८. पक्ष्मकूट, ९. वैश्रमणकूट (५३)।

५४—एवं चेव जाव सलिलावतिम्मि दीहवेयड्ढे ।

इसी प्रकार सुपक्ष्म, महापक्ष्म, पक्ष्मकावती, शंख, नलिन, कुमुद और सलिलावती में विद्यमान दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ-नौ कूट जानना चाहिए (५४)।

५५—एवं वप्पे दीहवेयड्ढे ।

इसी प्रकार वप्र विजय में विद्यमान दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं (५५)।

५६—एवं जाव गंधिलावतिम्मि दोहवेयड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे गंधिल खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
गंधिलावति वेसमणे, कूडाणं होंति णामाइं ॥१॥

एवं—सव्वेसु दीहवेयड्ढेसु दो कूडा सरिसणामगा, सेसा ते चेव ।

इसी प्रकार सुवप्र, महावप्र, वप्रकावती, वल्गु, सुवल्गु, गन्धिल और गन्धिलावती में विद्यमान दीर्घ वैताढ्य के ऊपर नौ-नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धायतन कूट २. गन्धिलावती कूट, ३. खण्डप्रपातगुफा कूट, ४. माणिभद्र कूट, ५. वैताढ्य कूट, ६. पूर्णभद्र कूट, ७. तमिस्रगुफा कूट, ८. गन्धिलावती कूट ९. वैश्रमण कूट (५६)।

इसी प्रकार सभी दीर्घवैताढ्यों के ऊपर दो दो (दूसरा और आठवां) कूट एक ही नाम के (उसी विजय के नाम के) हैं और शेष सात कूट वे ही हैं।

५७—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं णेलवंते वासहरपव्वते णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धे णेलवंते विदेहे, सीता कित्ती य णारिकंता य ।
अवरविदेहे रम्मगकूटे, उवदंसणे चेव ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के ऊपर उत्तर में नीलवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धायतन कूट, २. नीलवान् कूट, ३. पूर्वविदेह कूट, ४. सीता कूट, ५. कीर्त्ति कूट ६. नारिकान्ता कूट, ७. अपर विदेह कूट, ८. रम्यक कूट, ९. उपदर्शनकूट (५७)।

५८—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं एरवते दीहवेतड्ढे णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—

सिद्धेरवए खंडग, माणी वेयड्ढ पुण्ण तिमिसगुहा ।
एरवते वेसमणे, एरवते कूडणामाइं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में ऐरवत क्षेत्र के दीर्घवैताढ्य के ऊपर नौ कूट कहे गये हैं। जैसे—

१. सिद्धायतन कूट, २. ऐरवत कूट, ३. खण्डकप्रपातगुफा कूट, ४. माणिभद्र कूट, ५. वैताढ्य कूट ६. पूर्णभद्र कूट, ७. तमिस्रगुफा कूट ८. ऐरवत कूट ९. वैश्रमण कूट (५८)।

पार्श्व-उच्चत्व-सूत्र

५९—पासे णं अरहा पुरिसादाणिए वज्जरिसहणारायसंघयणे समचउरंस-संठाण-संठिते णव रयणीश्रो उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

पुरुषादानीय (पुरुष-प्रिय) वज्रर्षभनाराचसंहनन और समचतुरस्रसंस्थान वाले पार्श्व अर्हत् नौ हाथ ऊंचे थे (५९)।

तीर्थंकर नामनिर्वतन-सूत्र

६०—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तित्थंसि णवहिं जीवेहिं तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिते, तं जहा—सेणिएणं, सुपासेणं, उदाइणा, पोट्टिलेणं अणगारेणं, दढाउणा, संखेणं, सतएणं, सुलसाए सावियाए, रेवतीए।

श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में नौ जीवों ने तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म अर्जित किया था जैसे—

१. श्रेणिक, २. सुपार्श्व, ३. उदायी ४. पोट्टिल अनगार, ५. दृढायु, ६. श्रावक शंख, ७. श्रावक शतक, ८. श्राविका सुलसा, ९. श्राविका रेवती (६०)।

भावितीर्थंकर-सूत्र

६१—एस णं अज्जो! कण्हे वासुदेवे, रामे बलदेवे, उदए पेढालपुत्ते, पुट्टिले, सतए गाहावती, दारुए णियंठे, सच्चई णियंठीपुत्ते, सावियबुद्धे अंब [म्म ?] डे परिव्वायए, अज्जावि णं सुपासा पासावच्चिज्जा। आगमेस्साए उस्सप्पिणीए चाउज्जामं धम्मं पण्णवइत्ता सिज्झिहिंति (बुज्झिहिंति मुच्चिहिंति परिणिव्वाईहिंति सव्वदुक्खाणं) अंतं काहिंति।

हे आर्यो!

१. वासुदेव कृष्ण, २. बलदेव राम, ३. उदक पेडाल पुत्र, ४. पोट्टिल, ५. गृहपति शतक, ६. निर्ग्रन्थ दारुक, ७. निर्ग्रन्थीपुत्र सत्यकी, ८. श्राविका के द्वारा प्रतिबुद्ध अम्मड परिव्राजक, ९. पार्श्वनाथ की परम्परा में दीक्षित आर्या सुपार्श्वा, ये नौ आगामी उत्सर्पिणी में चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त और सर्व दुःखों से रहित होंगे (६१)।

महापद्म-तीर्थंकर-सूत्र

६२—एस णं अज्जो! सेणिए राया भिंभिसारे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए सीमंतए णरए चउरासीतिवाससहस्सट्ठितीयंसि णिरयंसि णेरइयत्ताए उववज्जिहिति। से णं तत्थ णेरइए भविस्सति—काले कालोभासे (गंभीरलोमहरिसे भीमे उत्तासणए) परमकिण्हे वण्णेणं। से णं तत्थ वेयणं वेदिहिती उज्जलं (तिउलं पगाढं कडुयं कक्कसं चंडं दुक्खं दुग्गं दिव्वं) दुरहियासं।

से णं ततो णरयाओ उव्वट्टेत्ता आगमेसाए उस्सप्पिणीए इहेव जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे वेयड्ढ-गिरिपायमूले पुंडेसु जणवएसु सतदुवारे णगरे संमुइस्स कुलकरस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुमत्ताए पच्चायाहिति।

तए णं सा भद्दा भारिया णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीतिक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरं लक्खण-वंजण-(गुणोववेयं माणुम्माण-प्पमाण-

पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं णियदंसणं) सुरूवं दारगं पयाहिती। जं रयणिं च णं से दारए पयाहिती, तं रयणिं च णं सतदुवारे णगरे सब्भंतरबाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति।

तए णं तस्स दारयस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते (णिवत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते) बारसाहे अयमेयारूवं गोण्णं गुणणिप्फण्णं णामधिज्जं काहिंति, जम्हा णं अम्हमिमंसि दारगंसि जातंसि समाणंसि सयदुवारे णगरे सब्भितरबाहिरए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वुट्ठे, तं होउ णमम्हमिमस्स दारगस्स णामधिज्जं महापउमे-महापउमे। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधिज्जं काहिंति महापउमेत्ति।

तए णं महापउमं दारगं अम्मापितरो सातिरेगं अट्ठवासजातगं जाणित्ता महता-महता रायाभिसेएणं अभिसिंचिहिंति। से णं तत्थ राया भविस्सति महता-हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे रायवण्णओ जाव रज्जं पसासेमाणे विहरिस्सति।

तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णदा कयाइ दो देवा महिड्ढिया (महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला) महासोक्खा सेणाकम्मं काहिंति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य।

तए णं सतदुवारे णगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावति-सत्थवाह-प्पभितयो अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं महापउमस्स रण्णो दो देवा महड्ढिया (महज्जुइया महाणुभागा महायसा महाबला) महासोक्खा सेणाकम्मं करेन्ति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य। तं होउ णमम्हं देवाणुप्पिया! महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे देवसेणे-देवसेणे। तते णं तस्स महापउमस्स रण्णो दोच्चेवि णामधेज्जे भविस्सइ देवसेणेति।

तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाई सेय-संखतल-विमल-सण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पज्जिहिति। तए णं से देवसेणे राया तं सेयं संखतल-विमल-सण्णिकासं चउदंतं हत्थिरयणं दुरूढे समाणे सतदुवारं णगरं मज्झंमज्झेणं अभिक्खणं-अभिक्खणं अतिज्जाहिति य णिज्जाहिति य।

तए णं सतदुवारे णगरे बहवे राईसर-तलवर-(माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावति-सत्थवाह-प्पभितयो) अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, एवं वइस्संति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेते संखतल-विमल-सण्णिकासे चउदंते हत्थिरयणे समुप्पण्णे, तं होउ णमम्हं देवाणुप्पिया! देवसेणस्स तच्चेवि णामधेज्जे विमलवाहणे [विमलवाहणे ?]। तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चेवि णामधेज्जे भविस्सति विमलवाहणेति।

तए णं से विमलवाहणे राया तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अम्मापितीहिं देवत्तं गतेहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुण्णाते समाणे, उदुंमि सरए, संबुद्धे अणुत्तरे मोक्खमग्गे पुणरवि लोगंतिएहिं जीयकप्पिएहिं देवेहिं, ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगलाहिं सस्सिरिआहिं वग्गूहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिथुव्वमाणे य बहिया सुभूमिभागे उज्जाणे एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयाहिति। से णं भगवं जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता (अगाराओ अणगारियं) पव्वयाहिति तं चेव दिवसं सयमेयमेतारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिहिति—जे केइ उवसग्गा उप्पज्जिहिंति, तं जहा—दिव्वा वा माणुसा वा तिरिक्खजोणिया वा ते सव्वे सम्मं सहिस्सइ खमिस्सइ तितिक्खिस्सइ अहियासिस्सइ।

तए णं से भगवं अणगारे भविस्सति—इरियासमिते भासासमिते एवं जहा वद्धमाणसामी तं चेव णिरवसेसं जाव अव्वावारविउसजोगजुत्ते ।

तस्स णं भगवंतस्स एतेणं विहारेणं विहरमाणस्स दुवालसहिं संवच्छरेहिं वीतिक्कंतेहिं तेरसहि य पक्खेहिं तेरसमस्स णं संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अणुत्तरेणं णाणेणं जहा भावणाते केवलवरणाण-दंसणे समुप्पज्जिहिति । जिणे भविस्सति केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी सणेरइय जाव पंच महव्वयाइं सभावणाइं छच्च जीवणिकाए धम्मं देसेमाणे विहरिस्सति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं एगे आरंभठाणे पण्णत्ते । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं एगं आरंभठाणं पण्णवेहिति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं दुविहे बंधणे पण्णत्ते, तं जहा—पेज्जबंधणे य, दोसबंधणे य । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं दुविहं बंधणं पण्णवेहिति, तं जहा—पेज्जबंधणं च, दोसबंधणं च ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे, वयदंडे, कायदंडे । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं तओ दंडे पण्णवेहिति, तं जहा—मणोदंडं, वयदंडं, कायदंडं ।

से जहाणामए (अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोभकसाए । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं चत्तारि कसाए पण्णवेहिति, तं जहा—कोहकसायं, माणकसायं, मायाकसायं, लोभकसायं ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं पंच कामगुणा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दे, रूवे, गंधे, रसे, फासे । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं पंच कामगुणे पण्णवेहिति, तं जहा—सद्दं, रूवं, गंधं, रसं, फासं ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं छज्जीवणिकाया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं छज्जीवणिकाए पण्णवेहिति, तं जहा—पुढविकाइए, आउकाइए, तेउकाइए, वाउकाइए, वणस्सइकाइ), तसकाइए ।

से जहाणामए (अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं) सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—(इहलोगभए, परलोगभए, आदाणभए, अकम्हाभए, वेयणभए, मरणभए, असिलोगभए) । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सत्त भयट्ठाणे पण्णवेहिति, (तं जहा—इहलोगभयं परलोगभयं आदाणभयं अकम्हाभयं वेयणभयं मरणभयं असिलोगभयं) ।

एवं अट्ठ मयट्ठाणे, णव बंभचेरगुत्तीओ, दसविधे समणधम्मे, एवं जाव तेत्तीसमासातणाउत्ति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावे मुंडभावे अण्हाणए अदंतवणए अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कट्ठसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे परघरपवेसे लद्धावलद्ध-वित्तीओ पण्णत्ताओ । एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं णग्गभावं (मुंडभावं अण्हाणयं अदंतवणयं अच्छत्तयं अणुवाहणयं भूमिसेज्जं फलगसेज्जं कट्ठसेज्जं केसलोयं बंभचेरवासं परघरपवेसं) लद्धावलद्धवित्ती पण्णवेहिति ।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं आधाकम्मिएति वा उद्देसिएति वा मीसज्जाएति वा अज्झोयरएति वा पूतिए कीते पामिच्चे अच्छेज्जे अणिसट्ठे अभिहडेति वा कंतारभत्तेति वा दुब्भिक्खभत्तेति वा गिलाणभत्तेति वा वद्दलियाभत्तेति वा पाहुणभत्तेति वा मूलभोयणेति वा कंदभोयणेति वा फलभोयणेति वा बीयभोयणेति वा हरियभोयणेति वा पडिसिद्धे। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं आधाकम्मियं वा (उद्देसियं वा मीसज्जायं वा अज्झोयरयं वा पूतियं कीतं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं वा कंतारभत्तं वा दुब्भिक्खभत्तं वा गिलाणभत्तं वा वद्दलियाभत्तं वा पाहुणभत्तं वा मूलभोयणं वा कंदभोयणं वा फलभोयणं वा बीयभोयणं वा) हरितभोयणं वा पडिसेहिस्सति।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वतिए सपडिक्कमणे अचेलए धम्मे पण्णत्ते। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं पंचमहव्वतियं (सपडिक्कमणं) अचेलगं धम्मं पण्णवेहिति।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणोवासगाणं पंचाणुव्वतिए सत्तसिक्खावतिए—दुवालसविधे सावगधम्मे पण्णत्ते। एवामेव महापउमेवि अरहा समणोवासगाणं पंचाणुव्वतियं (सत्तसिक्खावतियं—दुवालसविधं) सावगधम्मं पण्णवेस्सति।

से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंडेति वा रायपिंडेति वा पडिसिद्धे। एवामेव महापउमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं सेज्जातरपिंडं वा रायपिंडं वा पडिसेहिस्सति।

से जहाणामए अज्जो ! मम णव गणा एगारस गणधरा। एवामेव महापउमस्सवि अरहतो णव गणा एगारस गणधरा भविस्संति।

से जहाणामए अज्जो ! अहं तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता (अगाराओ अणगारियं) पव्वइए, दुवालस संवच्छराइं तेरस पक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता तेरसहिं पक्खेहिं ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिस्सं (बुज्झिस्सं मुच्चिस्सं परिणिव्वाइस्सं) सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सं। एवामेव महापउमेवि अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता (मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वाहिती, दुवालस संवच्छराइं (तेरसपक्खा छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, तेरसहिं पक्खेहि ऊणगाइं तीसं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता), बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिज्झिहिती (बुज्झिहिती मुच्चिहिती परिणिव्वाइहिती), सव्वदुक्खाणमंतं काहिती—

संग्रहणी-गाथा

जस्सील-समायारो, अरहा तित्थंकरो महावीरो।
तस्सील-समायारो, होति उ अरहा महापउमो ॥१॥

आर्यो ! श्रेणिक राजा भिम्भसार (बिम्बसार) काल मास में काल कर इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के सीमन्तक नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले नारकीय भाग में नारक रूप से उत्पन्न होगा (६२)।

उसका वर्ण काला, काली आभावाला, गम्भीर लोमहर्षक, भयंकर, त्रासजनक, और परम कृष्ण होगा। वह वहां ज्वलन्त मन, वचन और काय—तीनों को तोलने वाली-जिसमें तीनों योग तन्मय हो जाएंगे ऐसी प्रगाढ, कटुक, कर्कश, प्रचण्ड, दुःखकर दुर्ग के समान अलंघ्य, ज्वलन्त, असह्य वेदना को वेदन करेगा।

वह उस नरक से निकल कर आगामी उत्सर्पिणी में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, वैताढ्यगिरि के पादमूल में 'पुण्ड्र' जनपद के शतद्वार नगर में सन्मति कुलकर की भद्रा नामक भार्या की कुक्षि में पुरुष रूप से उत्पन्न होगा।

वह भद्रा भार्या परिपूर्ण नौ मास तथा साढ़े सात दिन-रात बीत जाने पर सुकुमार हाथ-पैर वाले, अहीन-परिपूर्ण, पंचेन्द्रिय शरीर वाले लक्षण, व्यंजन और गुणों से युक्त अवयव वाले, मान, उन्मान, प्रमाण आदि से सर्वांग सुन्दर शरीर के धारक, चन्द्र के समान सौम्य आकार, कान्त, प्रिय-दर्शन और सुरूप पुत्र को उत्पन्न करेगी।

जिस रात में वह बालक जनेगी, उस रात में सारे शतद्वार नगर में भीतर और बाहर भार और कुम्भ प्रमाण वाले पद्म और रत्नों की वर्षा होगी।

उस बालक के माता-पिता ग्यारह दिन व्यतीत हो जाने पर अशुचिकर्म के निवृत्त हो जाने पर, बारहवें दिन उसका यथार्थ गुणनिष्पन्न नाम संस्कार करेंगे। यतः हमारे इस बालक के उत्पन्न होने पर समस्त शतद्वार नगर के भीतर-बाहिर भार और कुम्भ प्रमाण वाले पद्म और रत्नों की वर्षा हुई है, अतः हमारे बालक का नाम महापद्म होना चाहिए। इस प्रकार विचार-विमर्श कर उस बालक के माता-पिता उसका नाम 'महापद्म' निर्धारित करेंगे।

तब महापद्म को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर उसके माता-पिता उसे महान् राज्याभिषेक के द्वारा अभिषिक्त करेंगे। वह वहां महान् हिमवान्, महान् मलय, मन्दर, और महेन्द्र पर्वत के समान सर्वोच्च राज्यधर्म का पालन करता हुआ, यावत् राज्य-शासन करता हुआ विचरेगा।

तब उस महापद्म राजा को अन्य किसी समय महर्धिक, महाद्युति-सम्पन्न, महानुभाग, महायशस्वी, महाबली, महान् सौख्य वाले पूर्णभद्र और माणिभद्र नाम के धारक दो देव सैनिक कर्म-सेना संबंधी कार्य करेंगे।

तब उस शतद्वार नगर में अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि एक दूसरे को इस प्रकार सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार से कहेंगे—देवानु-प्रियो! महर्धिक, महाद्युतिसम्पन्न, महानुभाग, महायशस्वी, महाबली, और महान् सौख्य वाले पूर्णभद्र और माणिभद्र नामक दो देव यतः राजा महापद्म का सैनिककर्म कर रहे हैं, अतः हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' होना चाहिए। तब से उस महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' होगा।

तब उस देवसेन राजा के अन्य किसी समय निर्मल शंखतल के समान श्वेत, चार दांत वाला हस्तिरत्न उत्पन्न होगा। तब वह देवसेन राजा निर्मल शंखतल के समान श्वेत चार दांत वाले हस्ति-रत्न पर आरूढ होकर शतद्वार नगर के बीचोंबीच होते हुए बार-बार जायगा और आयगा।

तब उस शतद्वार नगर के अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि परस्पर एक दूसरे को सम्बोधित करेंगे और इस प्रकार से कहेंगे—देवानु-

प्रियो ! हमारे राजा देवसेन के निर्मल शंखतल के समान श्वेत, चार दांत वाला हस्तिरत्न है, अतः देवानुप्रियो ! हमारे राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होना चाहिए । तब से उस देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होगा ।

तब वह विमलवाहन राजा तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर, माता-पिता के देवगति को प्राप्त होने पर, गुरुजनों और महत्तर पुरुषों के द्वारा अनुज्ञा लेकर शरद् ऋतु में जीतकल्पिक, लोकान्तिक देवों के द्वारा अनुत्तर मोक्षमार्ग के लिए संबुद्ध होंगे । तब वे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनःप्रिय, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मांगलिक श्रीकार-सहित वाणी से अभिनन्दित और संस्तुत होते हुए नगर के बाहर 'सुभूमिभाग' नाम के उद्यान में एक देवदूष्य लेकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होंगे ।

वे भगवान् जिस दिन मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होंगे, उसी दिन वे स्वयं ही इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण करेंगे—

देवकृत, मनुष्यकृत या तिर्यग्योनिक जिस किसी प्रकार के भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सब को मैं भली भांति से सहन करूंगा, अहीन भाव से दृढता के साथ सहन करूंगा, तितिक्षा करूंगा और अविचल भाव से सहूंगा ।

तब वे भगवान् (महापद्म) अनगार ईर्यासमिति से, भाषासमिति से संयुक्त होकर जैसे वर्धमान स्वामी (तपश्चरण में संलग्न हुए थे, उन्हीं के समान) सर्व अनगार धर्म का पालन करते हुए व्यापार-रहित व्युत्सृष्ट योग से युक्त होंगे ।

उन भगवान् महापद्म के इस प्रकार को विहार से विचरण करते हुए बारह वर्ष और तेरह पक्ष बीत जाने पर, तेरहवें वर्ष के अन्तराल में वर्तमान होने पर अनुत्तरज्ञान के द्वारा भावना अध्ययन के कथनानुसार केवल वर ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होंगे । तब वे जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होकर नारक आदि सर्व लोकों के पर्यायों को जानेंगे-देखेंगे । वे भावना-सहित पांच महाव्रतों की, छह जीव निकायों की और धर्म की देशना करते हुए विहार करेंगे ।

आर्यो ! जैसे मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरम्भ-स्थान का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए एक आरम्भस्थान का निरूपण करेंगे ।

आर्यो ! मैंने जैसे श्रमण-निर्ग्रथों के लिए दो प्रकार के बन्धनों का निरूपण किया है, जैसे प्रेयोबन्ध और द्वेषबन्धन । इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के बन्धन कहेंगे । जैसे—प्रेयोबन्धन और द्वेषबन्धन ।

आर्यो ! जैसे मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए तीन प्रकार के दण्डों का निरूपण किया है, जैसे—मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड । इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए तीन प्रकार के दण्डों का निरूपण करेंगे । जैसे - मनोदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे चार कषायों का निरूपण किया है, यथा क्रोध-कषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय । इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए चार प्रकार के कषायों का निरूपण करेंगे । जैसे—क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय ।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे पांच कामगुणों का निरूपण किया है, जैसे—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए पांच कामगुणों का निरूपण करेंगे। जैसे—शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे छह जीवनिकायों का निरूपण किया है, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए छह जीवनिकायों का निरूपण करेंगे। जैसे—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे सात भयस्थानों का निरूपण किया है, जैसे—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्माद् भय, वेदनाभय, मरणभय और अश्लोकभय। इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए सात भयस्थानों का निरूपण करेंगे। जैसे—इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्माद्भय, वेदनाभय, मरणभय और अश्लोकभय।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे आठ मदस्थानों का, नौ ब्रह्मचर्य गुप्तियों का, दशप्रकार के श्रमण-धर्मों का यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण किया है इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए आठ मदस्थानों का, नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियों का, दश प्रकार के श्रमण-धर्मों का यावत् तेतीस आशातनाओं का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान-त्याग, दन्त-धावन-त्याग, छत्र-धारण-त्याग, उपानह (जूता) त्याग, भूमिशय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या, केशलोंच, ब्रह्मचर्यवास, और परगृहप्रवेश कर लब्ध-अपलब्ध वृत्ति (आदर-अनादरपूर्वक प्राप्त भिक्षा) का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान-त्याग, भूमिशय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या, केशलोंच, ब्रह्मचर्यवास और परगृहप्रवेश कर लब्ध-अलब्ध वृत्ति का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे आधार्कर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूरक, पूतिक, क्रीत, प्रामित्य, आछेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, वार्दलिकाभक्त, प्राघूर्णिकभक्त, मूलभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन का निषेध किया है, उसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए आधार्कर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूरक, पूतिक, क्रीत, प्रामित्य, आछेद्य, अनिसृष्टिक, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, वार्दलिकाभक्त, प्राघूर्णिकभक्त, मूलभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन, कन्दभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन का निषेध करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे—प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पांच महाव्रतरूप धर्म का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए प्रतिक्रमण और अचेलतायुक्त पांच महाव्रतरूप धर्म का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमणोपासकों के लिए जैसे पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावकधर्म का निरूपण किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रतरूप बारह प्रकार के श्रावकधर्म का निरूपण करेंगे।

आर्यो ! मैंने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए जैसे शय्यातरपिण्ड और राजपिण्ड का प्रतिषेध किया है, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए शय्यातरपिण्ड और राजपिण्ड का प्रतिषेध करेंगे ।

आर्यो ! मेरे जैसे नौ गण और ग्यारह गणधर हैं, इसी प्रकार अर्हत् महापद्म के भी नौ गण और ग्यारह गणधर होंगे ।

आर्यो ! जैसे मैं तीस वर्ष तक अगारवास में रहकर मुण्डित हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुआ, बारह वर्ष और तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय को प्राप्त कर, तेरह पक्षों से कम तीस वर्षों तक केवलि-पर्याय पाकर, बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय पालन कर सर्व आयु बहत्तर वर्ष पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत्त होकर सर्व दुःखों का अन्त करूंगा । इसी प्रकार अर्हत् महापद्म भी तीस वर्ष तक अगारवास में रह कर मुण्डित हो अगार से अनगरिता में प्रव्रजित होंगे, बारह वर्ष तेरह पक्ष तक छद्मस्थ-पर्याय को प्राप्त कर, तेरह पक्षों से कम तीस वर्षों तक केवलि-पर्याय पाकर बयालीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय पालन कर, बहत्तर वर्ष की सम्पूर्ण आयु भोग कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत्त होकर सर्वदुःखों का अन्त करेंगे ।

जिस प्रकार के शील-समाचार वाले अर्हत् तीर्थंकर महावीर हुए हैं, उसी प्रकार के शील-समाचार वाले अर्हत् महापद्म होंगे ।

नक्षत्र--सूत्र

६३—णव णक्खत्ता चंदस्स पच्छंभागा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

अभिई समणो धणिट्ठा, रेवति अस्सिणि मग्गसिर पूसो ।
हत्थो चित्ता य तहा, पच्छंभागा णव हवंति ।।१।।

नौ नक्षत्र चन्द्रमा के पृष्ठ भाग के होते हैं, अर्थात् चन्द्रमा उनका पृष्ठ भाग से भोग करता है । जैसे—

१. अभिजित, २. श्रवण, ३. धनिष्ठा, ४. रेवती, ५. अश्विनी, ६. मृगशिर, ७. पुष्य, ८. हस्त, ९. चित्रा ।

विमान-सूत्र

६४—आणत-पाणत-आरणच्चुतेसु कप्पेसु विमाणा णव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में विमान नौ योजन ऊंचे कहे गये हैं (६४) ।

कुलकर-सूत्र

६५—विमलवाहणे णं कुलकरे णव धणुसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था ।

विमलवाहन कुलकर नौ सौ धनुष ऊंचे थे (६५) ।

तीर्थंकर-सूत्र

६६—उसभेणं अरहा कोसलिएणं इमीसे ओसप्पिणीए णवहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं वीइक्कंताहिं तित्थे पवत्तिते ।

कौशलिक (कोशला नगरी में उत्पन्न) अर्हन् ऋषभ ने इस अवसर्पिणी का नौ कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल व्यतीत होने पर तीर्थ का प्रवर्तन किया (६६)।

[अन्त]-द्वीप-सूत्र

६७—घणदंत-लट्ठदंत-गूढदंत-सुद्धदंतदीवा णं दीवा णव-णव जोयणसताइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त और शुद्धदन्त, ये द्वीप (अन्तर्द्वीप) नौ-नौ सौ योजन लम्बे-चौड़े कहे गये हैं। (६७)

शुक्रग्रह-वीथी-सूत्र

६८—सुक्कस्स णं महागहस्स णव वीहीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—हयवीही, गयवीही, णागवीही, वसहवीही, गोवीही, उरगवीही, अयवीही, मियवीही, वेसाणरवीही।

शुक्र महाग्रह की नौ वीथियां (परिभ्रमण की गलियाँ) कही गई हैं। जैसे—

१. हयवीथि, २. गजवीथि, ३. नागवीथि, ४. वृषभवीथि, ५. गोवीथि, ६. उरगवीथि, ७. अजवीथि, ८. मृगवीथि, ९. वैश्वानर वीथि (६८)।

कर्म-सूत्र

६९—णवविधे णोकसायवेयणिज्जे कम्मे पण्णत्ते, तं जहा—इत्थिवेए, पुरिसवेए, णपुंसकवेए, हासे, रती, अरती, भये, सोगे, दुगुंछा।

नोकषाय वेदनीय कर्म नौ प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. स्त्रीवेद, २. पुरुष वेद, ३. नपुंसक वेद, ४. हास्य वेदनीय, ५. रति वेदनीय, ६. अरति वेदनीय, ७. भय वेदनीय, ८. शोक वेदनीय ९. जुगुप्सा वेदनीय (६९)।

कुलकोटि-सूत्र

७०—चउरिंदियाणं णव जाइ-कुलकोडि-जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

चतुरिन्द्रिय जीवों की नौ लाख जाति-कुलकोटियां कही गई हैं (७०)।

७१—भुयगपरिसप्प-थलयर-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं णव जाइ-कुलकोडि-जोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक स्थलचर-भुजग-परिसर्पों की नौ लाख जाति-कुलकोटियां कही गई हैं (७१)।

पापकर्म-सूत्र

७२—जीवा णं णवट्ठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—पुढविकाइयणिव्वत्तिते, (आउकाइयणिव्वत्तिते, तेउकाइयणिव्वत्तिते, वाउकाइयणिव्वत्तिते, वणस्सइकाइयणिव्वत्तिते, बेइंदियणिव्वत्तिते, तेइंदियणिव्वत्तिते, चउरिंदियणिव्वत्तिते) पंचिंदियणिव्वत्तिते।

एवं—चिण-उवचिण (बंध-उदीर-वेद तह) णिज्जरा चेव।

जीवों ने नौ स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्मरूप से अतीतकाल में संचय किया है, वर्तमान में कर रहे हैं और भविष्य में करेंगे। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक निर्वर्तित पुद्गलों का, २. अप्कायिक निर्वर्तित पुद्गलों का, ३. तेजस्कायिक निर्वर्तित पुद्गलों का, ४. वायुकायिकनिर्वर्तित पुद्गलों का, ५. वनस्पतिकायिकनिर्वर्तित पुद्गलों का, ६. द्वीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का, ७. त्रीन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का, ८. चतुरिन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का, ९. पंचेन्द्रियनिर्वर्तित पुद्गलों का।

इसी प्रकार उनका उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं, और करेंगे।

पुद्गल-सूत्र

७३—णवपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता जाव णवगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

नौ प्रदेशी पुद्गल स्कन्ध अनन्त हैं।

आकाश के नौ प्रदेशों में अवगाढ़ पुद्गल अनन्त हैं।

नौ समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त हैं।

नौ गुण काले पुद्गल अनन्त हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के नौ गुण वाले पुद्गल अनन्त जानना चाहिए (७३)।

॥ नवम स्थान समाप्त ॥

दशम स्थान

सार : संक्षेप

प्रस्तुत स्थान में दश की संख्या से सम्बद्ध विविध विषयों का वर्णन किया गया है। सवप्रथम लोकस्थिति के १० प्रकार बताये गये हैं। तदनन्तर इन्द्रिय-विषयों के और पुद्‌गल-संचलन के १० प्रकार बताकर क्रोध की उत्पत्ति के १० कारणों का विस्तार से विवेचन किया गया है। अन्तरंग में क्रोधकषाय का उदय होने पर और वाह्य में सूत्र-निर्दिष्ट कारणों के मिलने पर क्रोध उत्पन्न होता है। अत: साधक को क्रोध उत्पन्न करने वाले कारणों से बचना चाहिए। इसी प्रकार अहंकार के कारणभूत १० कारणों का और चित्त-समाधि-असमाधि के १०-१० कारणों का निर्देश मननीय है। प्रव्रज्या के १० कारणों से ज्ञात होता है कि मनुष्य किस-किस निमित्त के मिलने पर घर त्याग कर साधु बनता है। वैयावृत्य के १० प्रकारों से सिद्ध है कि साधक को आचार्य, उपाध्याय, स्थविर आदि गुरुजनों के सिवाय रुग्ण साधु की, नवीन दीक्षित की और साधर्मिक साधु की भी वैयावृत्य करना आवश्यक है।

प्रतिसेवना, आलोचना और प्रायश्चित्त के १०-१० दोषों का वर्णन साधक को उनसे बचने की प्रेरणा देता है। उपघात-विशोधि, और संक्लेश-असंक्लेश के १०-१० भेद मननीय हैं। वे उपघात और संक्लेश के कारणों से बचने तथा विशोधि और असंक्लेश या चित्त-निर्मलता रखने की सूचना देते हैं।

स्वाध्याय-काल में ही स्वाध्याय करना चाहिए, अस्वाध्याय काल में नहीं, क्योंकि उल्कापात, आदि के समय पठन-पाठन करने से दृष्टिमन्दता आदि की सम्भावना रहती है। नगर के राजादि प्रधान पुरुष के मरण होने पर स्वाध्याय करना लोक विरुद्ध है, इसी प्रकार अन्य अस्वाध्याय कालों में स्वाध्याय करने पर शास्त्रों में अनेक दोषों का वर्णन किया है।

सूक्ष्म-पद में १० प्रकार के सूक्ष्म जीवों का जानना अहिंसाव्रती के लिए परम आवश्यक है। मिथ्यात्व के १० भेद मिथ्यात्व को छुड़ाने और रुचि (सम्यक्त्व) के १० भेद सम्यक्त्व को ग्रहण कराने की प्रेरणा देते हैं। भाविभद्रत्व के १० स्थान मनुष्य के भावी कल्याण के कारण होने से समाचरणीय है। आशंसा के १० स्थान साधक के पतन के कारण हैं।

धर्म-पद के अन्तर्गत ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म और कुलधर्म लौकिक कर्तव्यों के पालन की और श्रुतधर्म, चारित्रधर्म आदि आत्मधर्म पारलौकिक कर्तव्यों के पालन की प्रेरणा देते हैं।

स्थविरों के १० भेद सब की विनय और वैयावृत्य करने के सूचक हैं। पुत्र के दश भेद तात्कालिक परिस्थिति के परिचायक हैं। तेजोलेश्या-प्रयोग के १० प्रकार तेजोलब्धि की उग्रता के द्योतक हैं। दान के १० भेद भारतीय दान की प्राचीनता और विविधता को प्रकट करते हैं। वाद के १० दोषों का वर्णन प्राचीनकाल में वाद होने की अधिकता बताते हैं।

भ० महावीर के छद्मस्थकालीन १० स्वप्न, १० आश्चर्यक (अच्छेरे) एवं अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण वर्णनों के साथ दश दशाओं के भेद-प्रभेदों का वर्णन मननीय है। इसी प्रकार दृष्टिवाद के १० भेद आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का संकलन इस दशवें स्थान में किया गया है। □□

दशम स्थान

लोकस्थिति-सूत्र

१—दसविधा लोगट्ठिती पण्णत्ता, तं जहा—

१. जण्णं जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायंति—एवं एगा (एवं एगा) लोगट्ठिती पण्णत्ता।

२. जण्णं जीवाणं सया समितं पावे कम्मे कज्जति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

३. जण्णं जीवाणं सया समितं मोहणिज्जे पावे कम्मे कज्जति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

४. ण एवं भू वा भव्वं वा, भविस्सति वा जं जीवा अजीवा भविस्संति, अजीवा वा जीवा भविस्संति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

५. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा जं तसा पाणा वोच्छिज्जिस्संति थावरा पाणा भविस्संति, थावरा पाणा वोच्छिज्जिस्संति तसा पाणा भविस्संति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

६. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा जं लोगे अलोगे भविस्सति, अलोगे वा लोगे भविस्सति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

७. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा जं लोए अलोए पविस्सति, अलोए वा लोए पविस्सति—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

८. जाव ताव लोगे ताव ताव जीवा, जाव ताव जीवा ताव ताव लोए—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

९. जाव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए ताव ताव लोए, जाव ताव लोगे ताव ताव जीवाण य पोग्गलाण य गतिपरियाए एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

१०. सव्वेसुवि णं लोगंतेसु अबद्धपासपुट्ठा पोग्गला लुक्खत्ताए कज्जंति, जेणं जीवा य पोग्गला य णो संचायंति बहिया लोगंता गमणयाए—एवंप्पेगा लोगट्ठिती पण्णत्ता।

लोक-स्थिति अर्थात् लोक का स्वभाव दश प्रकार का है। जैसे—

१. जीव वार-वार मरते हैं और वहीं (लोक में) वार-वार उत्पन्न होते हैं, यह एक लोक-स्थिति कही गई है।

२. जीव सदा निरन्तर पाप कर्म करते हैं, यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

३. जीव सदा हर समय मोहनीय पापकर्म का वन्ध करते हैं, यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

४. न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न ऐसा कभी होगा कि जीव, अजीव हो जायें और अजीव, जीव हो जायें। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

५. न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है, और न कभी ऐसा होगा कि त्रसजीवों का विच्छेद हो जाय और सव जीव स्थावर हो जायें। अथवा स्थावर जीवों का विच्छेद हो जाय और सव जीव त्रस हो जावें। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

६. न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न कभी ऐसा होगा कि जब लोक, अलोक हो जाय और अलोक, लोक हो जाय। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

७. न कभी ऐसा हुआ है, न ऐसा हो रहा है और न कभी ऐसा होगा कि जब लोक अलोक में प्रविष्ट हो जाय और अलोक लोक में प्रविष्ट हो जाय। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

८. जहां तक लोक है, वहां तक जीव हैं और जहां तक जीव हैं वहां तक लोक है। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

९. जहां तक जीव और पुद्गलों का गतिपर्याय (गमन) है, वहां तक लोक है और जहां तक लोक है, वहां तक जीवों और पुद्गलों का गतिपर्याय है। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है।

१०. लोक के सभी अन्तिम भागों में अबद्ध पार्श्वस्पृष्ट (अबद्ध और अस्पृष्ट) पुद्गल दूसरे रूक्ष पुद्गलों के द्वारा रूक्ष कर दिये जाते हैं, जिससे जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर गमन करने के लिए समर्थ नहीं होते हैं। यह भी एक लोकस्थिति कही गई है (१)।

इन्द्रियार्थ-सूत्र

२—दसविहे सद्दे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रह-श्लोक

णीहारि पिंडिमे लुक्खे, भिण्णे जज्जरिते इ य।
दीहे रहस्से पुहत्ते य, काकणी खिखिणिस्सरे ॥१॥

शब्द दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. निर्हारी—घण्टे से निकलने वाला घोषवान् शब्द।
२. पिण्डिम—घोष-रहित नगाड़े का शब्द।
३. रूक्ष—काक के समान कर्कश शब्द।
४. भिन्न—वस्तु के टूटने से होने वाला शब्द।
५. जर्जरित—तार वाले बाजे का शब्द।
६. दीर्घ—दूर तक सुनाई देने वाला मेघ जैसा शब्द।
७. ह्रस्व—सूक्ष्म या थोड़ी दूर तक सुनाई देने वाला वीणादि का शब्द।
८. पृथक्त्व—अनेक बाजों का संयुक्त शब्द।
९. काकणी—सूक्ष्म कण्ठों से निकला शब्द।
१०. किंकिणीस्वर—घूंघरुओं की ध्वनि रूप शब्द (२)।

३—दस इंदियत्था तीता पण्णत्ता, तं जहा—देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु। सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिंसु। देसेणवि एगे रूवाइं पासिंसु। सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिंसु। (देसेणवि एगे गंधाइं जिंघिंसु। सव्वेणवि एगे गंधाइं जिंघिंसु। देसेणवि एगे रसाइं आसादेंसु। सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंसु। देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंसु)। सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंसु।

इन्द्रियों के अतीतकालीन विषय दश कहे गये हैं। जैसे—

१. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी शब्द सुने थे।
२. अनेक जीवों ने शरीर के सर्वदेश से भी शब्द सुने थे।
३. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी रूप देखे थे।
४. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी रूप देखे थे।
५. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी गन्ध सूंघे थे।
६. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी गन्ध सूंघे थे।
७. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी रस चखे थे।
८. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी रस चखे थे।
९. अनेक जीवों ने शरीर के एक देश से भी स्पर्शों का वेदन किया था।
१०. अनेक जीवों ने शरीर के सर्व देश से भी स्पर्शों का वेदन किया था (३)।

विवेचन—टीकाकार ने 'देशत:' और 'सर्वत:' के अनेक अर्थ किए हैं। यथा—बहुत-से शब्दों के समूह में किसी को सुनना और किसी को न सुनना देशत: सुनना है। सबको सुनना सर्वत: सुनना है। अथवा देशत: सुनने का अर्थ इन्द्रियों के एक देश से अर्थात् श्रोत्र से सुनना है। संभिन्नश्रोतोलब्धि वाला सभी इन्द्रियों से शब्द सुनता है। अथवा एक कान से सुनना देशत: और दोनों कानों से सुनना सर्वत: सुनना कहलाता है।

४—दस इंदियत्था पडुप्पण्णा पण्णत्ता, तं जहा—देसेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति। सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणेंति। (देसेणवि एगे रूवाइं पासंति। सव्वेणवि एगे रूवाइं पासंति। देसेणवि एगे गंधाइं जिघंति। सव्वेणवि एगे गंधाइं जिघंति। देसेणवि एगे रसाइं आसादेंति। सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेंति। देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति। सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेंति)।

इन्द्रियों के वर्तमानकालीन विषय दश कहे गये हैं। जैसे—
१. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी शब्द सुनते हैं।
२. अनेक जीव शरीर के सर्वदेश से भी शब्द सुनते हैं।
३. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी रूप देखते हैं।
४. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी रूप देखते हैं।
५. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी गन्ध सूंघते हैं।
६. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी गन्ध सूंघते हैं।
७. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी रस चखते हैं।
८. अनेक जीव शरीर के सर्व भाग से भी रस चखते हैं।
९. अनेक जीव शरीर के एक देश से भी स्पर्शों का वेदन करते हैं।
१०. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से भी स्पर्शों का वेदन करते हैं।

५—दस इंदियत्था अणागता पण्णत्ता, तं जहा—देसेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति। सव्वेणवि एगे सद्दाइं सुणिस्संति (देसेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति। सव्वेणवि एगे रूवाइं पासिस्संति। देसेणवि एगे गंधाइं जिघिस्संति। सव्वेणवि एगे गंधाइं जिघिस्संति। देसेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति। सव्वेणवि एगे रसाइं आसादेस्संति। देसेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति)। सव्वेणवि एगे फासाइं पडिसंवेदेस्संति।

इन्द्रियों के भविष्यकालीन विषय दश कहे गये हैं। जैसे—
१. अनेक जीव शरीर के एक देश से शब्द सुनेंगे।
२. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से शब्द सुनेंगे।
३. अनेक जीव शरीर के एक देश से रूप देखेंगे।
४. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से रूप देखेंगे।
५. अनेक जीव शरीर के एक देश से गन्ध सूंघेंगे।
६. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से गन्ध सूंघेंगे।
७. अनेक जीव शरीर के एक देश से रस चखेंगे।
८. अनेक जीव शरीर के सर्व देश से रस चखेंगे।
९. अनेक जीव शरीर के एक देश से स्पर्शों का वेदन करेंगे।
१०. अनेक जीव शरीर के सर्व देशों से स्पर्शों का वेदन करेंगे (५)।

अच्छिन्न-पुद्गल-चलन-सूत्र

६—दसहिं ठाणेहिं अच्छिण्णे पोग्गले चलेज्जा, तं जहा—आहारिज्जमाणे वा चलेज्जा। परिणामेज्जमाणे वा चलेज्जा। उस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा। णिस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा। वेदेज्जमाणे वा चलेज्जा। णिज्जरिज्जमाणे वा चलेज्जा। विउव्विज्जमाणे वा चलेज्जा। परियारिज्जमाणे वा चलेज्जा। जक्खाइट्ठे वा चलेज्जा। वातपरिगए वा चलेज्जा।

६ दश स्थानों से अच्छिन्न (स्कन्ध से संबद्ध) पुद्गल चलित होता है। जैसे—
१. आहार के रूप में ग्रहण किया जाता हुआ पुद्गल चलता है।
२. आहार के रूप में परिणत किया जाता हुआ पुद्गल चलता है।
३. उच्छ्वास के रूप में ग्रहण किया जाता हुआ पुद्गल चलता है।
४. निःश्वास के रूप में परिणत किया जाता हुआ पुद्गल चलता है।
५. वेद्यमान पुद्गल चलता है।
६. निर्जीर्यमाण पुद्गल चलता है।
७. विक्रियमाण पुद्गल चलता है।
८. परिचारणा (मैथुन) के समय पुद्गल चलता है।
९. यक्षाविष्ट पुद्गल चलता है।
१०. वायु से प्रेरित होकर पुद्गल चलता है (६)।

क्रोधोत्पत्ति-स्थान-सूत्र

७—दसहिं ठाणेहिं कोधुप्पत्ती सिया, तं जहा—मणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं अवहरिंसु। अमणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं उवहरिंसु। मणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं अवहरइ। अमणुण्णाइं मे सद्द-फरिस-(रस-रूव)-गंधाइं उवहरति। मणुण्णाइं मे सद्द-(फरिस-रस-रूव-गंधाइं) अवहरिस्सति। अमणुण्णाइं मे सद्द-(फरिस-रस-रूव-गंधाइं) उवहरिस्सति। मणुण्णाइं मे सद्द-(फरिस-रस-रूव)-गंधाइं अवहरिंसु वा अवहरइ वा अवहरिस्सति वा। अमणुण्णाइं मे सद्द-(फरिस-रस-रूव-गंधाइं) उवहरिंसु वा उवहरति वा उवहरिस्सति वा। मणुण्णामणुण्णाइं मे सद्द-(फरिस-रस-रूव-गंधाइं) अवहरिंसु वा अवहरति वा अवहरिस्सति वा, उवहरिंसु वा उवहरति वा

उवहरिस्सति वा। अहं च णं आयरिय-उवज्झायाणं सम्मं वट्टामि, ममं च णं आयरिय-उवज्झाया मिच्छं विप्पडिवण्णा।

दश कारणों से क्रोध की उत्पत्ति होती है। जैसे—

१. उस-अमुक पुरुष ने मेरे मनोज्ञ शब्द स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण किया।
२ उस पुरुष ने मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध प्राप्त कराए हैं।
३. वह पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण करता है।
४. वह पुरुष मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध को प्राप्त कराता है।
५. वह पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण करेगा।
६. वह पुरुष मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध प्राप्त कराएगा।
७. वह पुरुष मेरे मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण करता था, अपहरण करता है और अपहरण करेगा।
८. उस पुरुष ने मुझे अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप, और गन्ध प्राप्त कराए हैं कराता है और कराएगा।
९. उस पुरुष ने मेरे मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपहरण किया है, करता है और करेगा। तथा प्राप्त कराए हैं, कराता है और कराएगा।
१०. मैं आचार्य और उपाध्याय के प्रति सम्यक् व्यवहार करता हूं, परन्तु आचार्य और उपाध्याय मेरे साथ प्रतिकूल व्यवहार करते हैं (७)।

संयम-असंयम-सूत्र

८—दसविधे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसंजमे, (आउकाइयसंजमे, तेउकाइयसंजमे, वाउकाइयसंजमे), वणस्सतिकाइयसंजमे, बेइंदियसंजमे, तेइंदियसंजमे, चउरिंदियसंजमे, पंचिंदिय-संजमे, अजीवकायसंजमे।

संयम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक-संयम, २. अप्कायिक-संयम, ३. तेजस्कायिक-संयम, ४. वायुकायिक-संयम, ५. वनस्पति-कायिक-संयम, ६. द्वीन्द्रिय-संयम, ७. त्रीन्द्रिय-संयम, ८. चतुरिन्द्रिय-संयम, ९. पंचेन्द्रिय-संयम, १०. अजीवकाय-संयम (८)।

९—दसविधे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसंजमे, आउकाइयअसंजमे, तेउकाइय-असंजमे, वाउकाइयअसंजमे, वणस्सतिकाइयअसंजमे, (बेइंदियअसंजमे. तेइंदियअसंजमे, चउरिंदिय-असंजमे, पंचिंदियअसंजमे), अजीवकायअसंजमे।

असंयम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक-असंयम, २. अप्कायिक-असंयम, ३. तेजस्कायिक-असंयम, ४. वायुकायिक-असंयम, ५. वनस्पतिकायिक-असंयम, ६. द्वीन्द्रिय-असंयम, ७. त्रीन्द्रिय-असंयम, ८. चतुरिन्द्रिय-असंयम, ९. पंचेन्द्रिय-असंयम, १०. अजीवकाय-असंयम (९)।

संवर-असंवर-सूत्र

१०—दसविधे संवरे पण्णत्ते, तं जहा--सोतिंदियसंवरे, (चक्खिदियसंवरे, घाणिंदियसंवरे, जिब्भिंदियसंवरे), फासिंदियसंवरे, मणसंवरे, वयसंवरे, कायसंवरे, उवकरणसंवरे, सूचीकुसग्गसंवरे।

संवर दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-संवर, २. चक्षुरिन्द्रिय-संवर, ३. घ्राणेन्द्रिय-संवर, ४. रसनेन्द्रिय-संवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-संवर, ६. मन-संवर, ७. वचन-संवर, ८. काय-संवर, ९ उपकरण-संवर, १०. सूचीकुशाग्र-संवर (१०)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में आदि के आठ भाव-संवर और अन्त के दो द्रव्य-संवर कहे गये हैं। उपकरणों के संवर को उपकरण-संवर कहते हैं। उपधि (उपकरण) दो प्रकार की होती है—ओघ-उपधि और उपग्रह-उपधि। जो उपकरण प्रतिदिन काम में आते हैं उन्हें ओघ-उपधि कहते हैं और जो किसी कारण-विशेष से संयम की रक्षा के लिए ग्रहण किये जाते हैं उन्हें उपग्रह-उपधि कहते हैं। इन दोनों प्रकार की उपधि का यतनापूर्वक संरक्षण करना उपकरण-संवर है।

सूई और कुशाग्र का संवरण कर रखना सूची-कुशाग्र संवर कहलाता है। कांटा आदि निकालने या वस्त्र आदि सीने के लिए सूई रखी जाती है। इसी प्रकार कारण-विशेष से कुशाग्र भी ग्रहण किये जाते हैं। इनकी संभाल रखना—कि जिससे अंगच्छेद आदि न हो सके। इन दोनों पदों को उपलक्षण मानकर इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं की भी सार-संभाल रखना सूचीकुशाग्र-संवर है।

११—दसविधे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियअसंवरे, (चक्खिदियअसंवरे, घाणिंदियअसंवरे, जिब्भिंदियअसंवरे, फासिंदियअसंवरे, मणअसंवरे, वयअसंवरे, कायअसंवरे, उवकरणअसंवरे), सूचीकुसग्गअसंवरे।

असंवर दश प्रकार का है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-असंवर, २. चक्षुइन्द्रिय-असंवर, ३. घ्राणेन्द्रिय असंवर, ४. रसना-इन्द्रिय-असंवर, ५. स्पर्शनेन्द्रिय-असंवर, ६. मन-असंवर, ७. वचन-असंवर, ८. काय-असंवर, ९. उपकरण-असंवर, १०. सूचीकुशाग्र-असंवर (११)।

अहंकार-सूत्र

१२—दसहिं ठाणेहिं अहमंतीति थंभिज्जा, तं जहा—जातिमएण वा, कुलमएण वा, (बलमएण वा, रूवमएण वा, तवमएण वा, सुतमएण वा, लाभमएण वा), इस्सरियमएण वा, णागसुवण्णा वा मे अंतियं हव्वमागच्छंति, पुरिसधम्मातो वा मे उत्तरिए आहोधिए णाणदंसणे समुप्पण्णे।

दश कारणों से पुरुष अपने आपको 'मैं ही सबसे श्रेष्ठ हूं' ऐसा मानकर अभिमान करता है। जैसे—

१. मेरी जाति सबसे श्रेष्ठ है, इस प्रकार जाति के मद से।
२. मेरा कुल सब से श्रेष्ठ है, इस प्रकार कुल के मद से।
३. मैं सबसे अधिक बलवान् हूं, इस प्रकार बल के मद से।
४. मैं सबसे अधिक रूपवान् हूं, इस प्रकार रूप के मद से।
५. मेरा तप सब से उत्कृष्ट है, इस प्रकार तप के मद से।

६. मैं श्रुत-पारंगत हूं, इस प्रकार शास्त्रज्ञान के मद से।
७. मेरे पास सबसे अधिक लाभ के साधन हैं, इस प्रकार लाभ के मद से।
८. मेरा ऐश्वर्य सबसे बढ़ा-चढ़ा है, इस प्रकार ऐश्वर्य के मद से।
९. मेरे पास नागकुमार या सुपर्णकुमार देव दौड़कर आते हैं, इस प्रकार के भाव से।
१०. मुझे सामान्य जनों की अपेक्षा विशिष्ट अवधिज्ञान और अवधिदर्शन उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार के भाव से (१२)।

समाधि-असमाधि-सूत्र

१३—दसविधा समाधी पण्णत्ता, तं जहा—पाणातिवायवेरमणे, मुसावायवेरमणे, अदिण्णादाणवेरमणे, मेहुणवेरमणे, परिग्गहवेरमणे, इरियासमिती, भासासमिती, एसणासमिती, आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिती, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणिया समिती।

समाधि दश प्रकार की कही गई है। जैसे—
१. प्राणातिपात-विरमण, २. मृषावाद-विरमण, ३. अदत्तादान-विरमण, ४. मैथुन-विरमण,
५. परिग्रह-विरमण, ६. ईर्यासमिति, ७. भाषासमिति, ८. एषणासमिति,
९. अमत्र निक्षेपण (पात्र निक्षेपण) समिति,
१०. उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापना समिति (१३)।

१४—दसविधा असमाधी पण्णत्ता, तं जहा—पाणातिवाते, (मुसावाए, अदिण्णादाणे, मेहुणे), परिग्गहे, इरियाऽसमिती, (भासऽसमिती, एसणाऽसमिती, आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणाऽसमिती), उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-पारिट्ठावणियाऽसमिती।

असमाधि दश प्रकार की कही गई है। जैसे—
१. प्राणातिपात-अविरमण, २. मृषावाद-अविरमण, ३. अदत्तादान-अविरमण,
४. मैथुन-अविरमण, ५. परिग्रह-अविरमण, ६. ईर्या-असमिति (गमन की असावधानी),
७. भाषा-असमिति (बोलने की असावधानी) ८. एषणा-असमिति (गोचरी की असावधानी)
९. आदान-भाण्ड-अमत्र-निक्षेप की असमिति,
१०. उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापना को असमिति, (१४)।

प्रव्रज्या-सूत्र

१५—दसविधा पव्वज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

छंदा रोसा परिजुण्णा, सुविणा पडिस्सुता चेव।
सारणिया रोगिणिया, अणाढिता देवसण्णत्ती॥१॥
वच्छाणुबंधिया।

प्रव्रज्या दश प्रकार की कही गई है, जैसे—
१. छन्दाप्रव्रज्या—अपनी या दूसरों की इच्छा से ली जाने वाली दीक्षा।
२. रोषाप्रव्रज्या—रोष से ली जानेवाली दीक्षा।

३. परिद्यूनाप्रव्रज्या—दरिद्रता से ली जाने वाली दीक्षा ।
४. स्वप्नाप्रव्रज्या—स्वप्न देखने से ली जाने वाली, या स्वप्न में ली जाने वाली दीक्षा ।
५ प्रतिश्रुता प्रव्रज्या—पहले की हुई प्रतिज्ञा के कारण ली जाने वाली दीक्षा ।
६. स्मारणिका प्रव्रज्या—पूर्व जन्मों का स्मरण होने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
७. रोगिणिका प्रव्रज्या—रोग के हो जाने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
८. अनादृता प्रव्रज्या—अनादर होने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
९. देवसंज्ञप्ति प्रव्रज्या—देव के द्वारा प्रतिबुद्ध करने पर ली जाने वाली दीक्षा ।
१०. वत्सानुबन्धिका प्रव्रज्या—दीक्षित होते हुए पुत्र के निमित्त से ली जाने वाली दीक्षा (१५) ।

श्रमणधर्म-सूत्र

१६—दसविधे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे तवे, चियाए, बंभचेरवासे ।

श्रमण-धर्म दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. क्षान्ति (क्षमा धारण करना),
२. मुक्ति (लोभ नहीं करना),
३. आर्जव (मायाचार नहीं करना),
४. मार्दव (अहंकार नहीं करना),
५. लाघव (गौरव नहीं रखना),
६. सत्य (सत्य वचन बोलना),
७. संयम धारण करना,
८. तपश्चरण करना,
९. त्याग (साम्भोगिक साधुओं को भोजनादि देना),
१०. ब्रह्मचर्यवास (ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुजनों के पास रहना) (१६) ।

वैयावृत्त्य-सूत्र

१७—दसविधे वेयावच्चे पण्णत्ते, तं जहा—आयरियवेयावच्चे, उवज्झायवेयावच्चे, थेरवेयावच्चे, तवस्सिवेयावच्चे, गिलाणवेयावच्चे, सेहवेयावच्चे, कुलवेयावच्चे, गणवेयावच्चे, संघवेयावच्चे, साहम्मियवेयावच्चे ।

वैयावृत्त्य दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. आचार्य का वैयावृत्त्य,
२. उपाध्याय का वैयावृत्त्य,
३. स्थविर का वैयावृत्त्य,
४. तपस्वी का वैयावृत्त्य,
५. ग्लान का वैयावृत्त्य,
६. शैक्ष का वैयावृत्त्य,
७. कुल का वैयावृत्त्य,
८. गण का वैयावृत्त्य,
९. संघ का वैयावृत्त्य,
१०. साधर्मिक का वैयावृत्त्य (१७) ।

परिणाम-सूत्र

१८—दसविधे जीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—गतिपरिणामे, इंदियपरिणामे, कसायपरिणामे, लेसापरिणामे, जोगपरिणामे, उवओगपरिणामे, णाणपरिणामे, दंसणपरिणामे, चरित्तपरिणामे, वेयपरिणामे ।

जीव का परिणाम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. गति-परिणाम, २. इन्द्रिय-परिणाम, ३. कषाय-परिणाम, ४. लेश्या-परिणाम, ५. योग-परिणाम, ६. उपयोग-परिणाम, ७. ज्ञान-परिणाम, ८. दर्शन-परिणाम ९. चारित्र-परिणाम, १०. वेद-परिणाम (१८)।

१९—दसविधे अजीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—बंधणपरिणामे, गतिपरिणामे, संठाणपरिणामे, भेदपरिणामे, वण्णपरिणामे, रसपरिणामे, गंधपरिणामे, फासपरिणामे, अगुरुलहुपरिणामे, सद्दपरिणामे।

अजीव का परिणाम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. बन्धन-परिणाम, २. गति-परिणाम, ३. संस्थान-परिणाम, ४. भेद-परिणाम, ५. वर्ण-परिणाम, ६. रस-परिणाम, ७. गन्ध-परिणाम, ८. स्पर्श-परिणाम, ९. अगुरु-लघु-परिणाम, १०. शब्द-परिणाम (१९)।

अस्वाध्याय-सूत्र

२०—दसविधे अंतलिक्खए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, णिग्घाते, जुवए, जक्खालित्ते, धूमिया, महिया, रयुग्घाते।

अन्तरिक्ष (आकाश)-सम्बन्धी अस्वाध्यायकाल दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उल्कापात-अस्वाध्याय—बिजली गिरने या तारा टूटने पर स्वाध्याय नहीं करना।
२. दिग्दाह—दिशाओं को जलती हुई देखने पर स्वाध्याय नहीं करना।
३. गर्जन—आकाश में मेघों की घोर गर्जना के समय स्वाध्याय नहीं करना।
४. विद्युत्—तड़तड़ाती हुई बिजली के चमकने पर स्वाध्याय नहीं करना।
५. निर्घात—मेघों के होने या न होने पर आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन या वज्रपात के होने पर स्वाध्याय नहीं करना।
६. यूपक—सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रमा की प्रभा एक साथ मिलने पर स्वाध्याय नहीं करना।
७. यक्षादीप्त—यक्षादि के द्वारा किसी एक दिशा में बिजली जैसा प्रकाश दिखने पर स्वाध्याय नहीं करना।
८. धूमिका—कोहरा होने पर स्वाध्याय नहीं करना।
९. महिका—तुषार या बर्फ गिरने पर स्वाध्याय नहीं करना।
१०. रज-उद्घात—तेज आँधी से धूलि उड़ने पर स्वाध्याय नहीं करना (२०)।

२१—दसविधे ओरालिए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—अट्ठि, मंसे, सोणिते, असुइसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराए, सूरोवराए, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अस्थि, २. मांस, ३. रक्त, ४ अशुचि ५. श्मशान के समीप होने पर, ६. चन्द्र-ग्रहण, ७. सूर्य-ग्रहण के होने पर, ८. पतन-प्रमुख व्यक्ति के मरने पर, ९. राजविप्लव होने पर, १०. उपाश्रय के भीतर सौ हाथ औदारिक कलेवर के होने पर स्वाध्याय करने का निषेध किया गया है (२१)।

संयम-असंयम-सूत्र

२२—पंचिदिया णं जीवा असमारभमाणस्स दसविधे संजमे कज्जति, तं जहा—सोतामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। सोतामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। (चक्खुमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। घाणामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। फासामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।) फासामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।

पंचेन्द्रिय जीवों का घात नहीं करने वाले के दश प्रकार का संयम होता है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्दिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
२. श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
३. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
४. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
५. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
६. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
७. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
८. रसनेन्द्रिय-सम्वन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
९. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
१०. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से (२२)।

२३—पंचिदिया णं जीवा समारभमाणस्स दसविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—सोतामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। सोतामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। चक्खुमयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। जिब्भामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। फासामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

पंचेन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के दश प्रकार का असंयम होता है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
२. श्रोत्रेन्द्रिय-सम्वन्धी दुःख का संयोग करने से।
३. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
४. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
५. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
६ घ्राणेन्द्रिय-सम्वन्धी दुःख का संयोग करने से।
७. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
८. रसनेन्द्रिय-सम्वन्धी दुःख का संयोग करने से।
९. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्वन्धी सुख का वियोग करने से।
१०. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्वन्धी दुःख का संयोग करने से (२३)।

जीव का परिणाम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. गति-परिणाम, २. इन्द्रिय-परिणाम, ३. कषाय-परिणाम, ४. लेश्या-परिणाम, ५. योग-परिणाम, ६. उपयोग-परिणाम, ७. ज्ञान-परिणाम, ८. दर्शन-परिणाम ९. चारित्र-परिणाम, १०. वेद-परिणाम (१८)।

१९—दसविधे अजीवपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—बंधणपरिणामे, गतिपरिणामे, संठाणपरिणामे, भेदपरिणामे, वण्णपरिणामे, रसपरिणामे, गंधपरिणामे, फासपरिणामे, अगुरुलहुपरिणामे, सद्दपरिणामे।

अजीव का परिणाम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. बन्धन-परिणाम, २. गति-परिणाम, ३. संस्थान-परिणाम, ४. भेद-परिणाम, ५. वर्ण-परिणाम, ६. रस-परिणाम, ७. गन्ध-परिणाम, ८. स्पर्श-परिणाम, ९. अगुरु-लघु-परिणाम, १०. शब्द-परिणाम (१९)।

अस्वाध्याय-सूत्र

२०—दसविधे अंतलिक्खए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, णिग्घाते, जुवए, जक्खालित्ते, धूमिया, महिया, रयुग्घाते।

अन्तरिक्ष (आकाश)-सम्बन्धी अस्वाध्यायकाल दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उल्कापात-अस्वाध्याय—बिजली गिरने या तारा टूटने पर स्वाध्याय नहीं करना।
२. दिग्दाह—दिशाओं को जलती हुई देखने पर स्वाध्याय नहीं करना।
३. गर्जन—आकाश में मेघों की घोर गर्जना के समय स्वाध्याय नहीं करना।
४. विद्युत्—तड़तड़ाती हुई बिजली के चमकने पर स्वाध्याय नहीं करना।
५. निर्घात—मेघों के होने या न होने पर आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन या वज्रपात के होने पर स्वाध्याय नहीं करना।
६. यूपक—सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रमा की प्रभा एक साथ मिलने पर स्वाध्याय नहीं करना।
७. यक्षादीप्त—यक्षादि के द्वारा किसी एक दिशा में बिजली जैसा प्रकाश दिखने पर स्वाध्याय नहीं करना।
८. धूमिका—कोहरा होने पर स्वाध्याय नहीं करना।
९. महिका—तुषार या वर्फ गिरने पर स्वाध्याय नहीं करना।
१०. रज-उद्‌घात—तेज आँधी से धूलि उड़ने पर स्वाध्याय नहीं करना (२०)।

२१—दसविधे ओरालिए असज्झाइए पण्णत्ते, तं जहा—अट्ठि, मंसे, सोणिते, असुइसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराए, सूरोवराए, पडणे, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अस्थि, २. मांस, ३. रक्त, ४ अशुचि ५. श्मशान के समीप होने पर, ६. चन्द्र-ग्रहण, ७. सूर्य-ग्रहण के होने पर, ८. पतन-प्रमुख व्यक्ति के मरने पर, ९. राजविप्लव होने पर, १०. उपाश्रय के भीतर सौ हाथ औदारिक कलेवर के होने पर स्वाध्याय करने का निषेध किया गया है (२१)।

संयम-असंयम-सूत्र

२२—पंचिदिया णं जीवा असमारभमाणस्स दसविधे संजमे कज्जति, तं जहा—सोतामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। सोतामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। (चक्खुमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। घाणामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति। फासामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।) फासामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।

पंचेन्द्रिय जीवों का घात नहीं करने वाले के दश प्रकार का संयम होता है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
२. श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
३. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
४. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
५. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
६. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
७. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
८. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
९. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
१०. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से (२२)।

२३—पंचिदिया णं जीवा समारभमाणस्स दसविधे असंजमे कज्जति, तं जहा—सोतामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। सोतामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। चक्खुमयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। घाणामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। घाणामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। जिब्भामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति। फासामयाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवति। फासामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।

पंचेन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के दश प्रकार का असंयम होता है। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
२. श्रोत्रेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
३. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
४. चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
५. घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
६ घ्राणेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
७. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
८. रसनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
९. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
१०. स्पर्शनेन्द्रिय-सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से (२३)।

सूक्ष्मजीव-सूत्र

२४—दस सुहुमा पण्णत्ता, तं जहा—पाणसुहुमे, पणगसुहुमे, (बीयसुहुमे, हरितसुहुमे, पुप्फसुहुमे, अंडसुहुमे, लेणसुहुमे) सिणेहसुहुमे, गणियसुहुमे, भंगसुहुमे।

सूक्ष्म दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्राण-सूक्ष्म—सूक्ष्मजीव,
२. पनक सूक्ष्म—काई आदि।
३. बीज-सूक्ष्म—धान्य आदि का अग्रभाग,
४. हरितसूक्ष्म—सूक्ष्मतृण आदि,
५. पुष्प-सूक्ष्म—वट आदि के पुष्प
६. अण्डसूक्ष्म—चींटी आदि के अण्डे
७. लयनसूक्ष्म—कीड़ीनगरा,
८. स्नेहसूक्ष्य—ओस आदि,
९. गणितसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य गणित,
१०. भंगसूक्ष्म—सूक्ष्म बुद्धिगम्य विकल्प (२४)।

महानदी-सूत्र

२५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं गंगा-सिंधु-महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—जउणा, सरऊ, आवी, कोसी, मही, सतद्दू, वितत्था, विभासा, एरावती, चंदभागा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दरपर्वत के दक्षिण में गंगा-सिन्धु महानदी में दश महानदियां मिलती हैं। जैसे—

१. यमुना, २. सरयू, ३. आवी, ४. कोशी, ५. मही, ६. शतद्रु ७. वितस्ता, ८. विपाशा, ९. ऐरावती, १०. चन्द्रभागा (२५)।

२६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं रत्ता-रत्तवतीओ महाणदीओ दस महाणदीओ समप्पेंति, तं जहा—किण्हा, महाकिण्हा, णीला, महाणीला, महातीरा, इंदा, (इंदसेणा, सुसेणा, वारिसेणा), महाभोगा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में रक्ता और रक्तावती महानदी में दश महानदियां मिलती हैं। जैसे—

१. कृष्णा, २. महाकृष्णा, ३. नीला, ४. महानीला, ५. महातीरा, ६. इन्द्रा, ७. इन्द्रसेना, ८. सुषेणा, ९. वारिषेणा, १०. महाभोगा (२६)।

राजधानी सूत्र

२७—जंबुद्दीवे दीवे भरहे वासे दस रायहाणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

चंपा महुरा वाणारसी य सावत्थि तह य साकेतं।
हत्थिणउर कंपिल्लं, मिहिला कोसंबि रायगिहं ॥१॥

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में दश राजधानियां कही गई हैं। जैसे—

१. चम्पा—अंगदेश की राजधानी,
२. मथुरा—सूरसेन देश की राजधानी,
३. वाराणसी—काशी देश की राजधानी,
४. श्रावस्ती—कुणाल देश की राजधानी,

५. साकेत—कोशल देश की राजधानी, ६. हस्तिनापुर—कुरु देश की राजधानी,
७. काम्पिल्य—पाँचाल देश की राजधानी, ८. मिथिला—विदेह देश की राजधानी,
९. कौशाम्बी—वत्स देश की राजधानी, १०. राजगृह—मगध देश की राजधानी (२७)।

राज-सूत्र—

२८—एयासु णं दससु रायहाणीसु दस रायाणो मुंडा भवेत्ता (अगाराम्रो अणगारियं) पव्वइया, तं जहा—भरहे, सगरे, मघवं, सणंकुमारे, संती, कुंथू, अरे, महापउमे, हरिसेणे, जयणामे।

इन दश राजधानियों में दश राजा मुण्डित होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हुए। जैसे—

१. भरत, २. सगर, ३. मघवा, ४. सनत्कुमार, ५. शान्ति, ६. कुन्थु, ७. अर, ८. महापद्म, ९. हरिषेण, १०. जय (२८)।

मन्दर-सूत्र

२९—जंबुद्दीवे दीवे मंदरे पव्वए दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दसजोयणसयाइं विक्खंभेणं, दसदसाइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते ।।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत एक हजार योजन भूमि में गहरा है, भूमितल पर दश हजार योजन विस्तृत है, ऊपर पण्डकवन में एक हजार योजन विस्तृत और सर्व परिमाण से एक लाख योजन ऊंचा कहा गया है (२९)।

दिशा-सूत्र

३०—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-हेट्ठिल्लेसु खुड्डगपतरेसु, एत्थ णं अट्ठपएसिए रुयगे पण्णत्ते, जम्रो णं इमाम्रो दस दिसाम्रो पवहंति, तं जहा—पुरत्थिमा, पुरत्थिमदाहिणा, दाहिणा, दाहिणपच्चत्थिमा, पच्चत्थिमा, पच्चत्थिमुत्तरा, उत्तरा, उत्तरपुरत्थिमा, उड्ढा, अहा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के बहुमध्य देश भाग में इसी रत्नप्रभा पृथिवी के ऊपर क्षुल्लक प्रतर में गोस्तनाकार चार तथा उसके नीचे के क्षुल्लक प्रतर में भी गोस्तनाकार चार, इस प्रकार आठ प्रदेशवाला रुचक कहा गया है। इससे दशों दिशाओं का उद्गम होता है। जैसे—

१. पूर्व दिशा, २. पूर्व-दक्षिण—आग्नेय दिशा, ३. दक्षिण दिशा, ४. दक्षिण-पश्चिम—नैर्ऋत्य दिशा, ५. पश्चिम दिशा, ६. पश्चिम-उत्तर—वायव्य दिशा, ७. उत्तर दिशा, ८. उत्तर-पूर्व—ईशान दिशा, ९. ऊर्ध्वदिशा, १०. अधोदिशा (३०)।

३१—एतासि णं दसण्हं दिसाणं दस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

इंदा अग्गेइ जम्मा य, णेरती वारुणी य वायव्वा।
सोमा ईसाणी य, विमला य तमा य बोद्धव्वा ।।१।।

इन दश दिशाओं के दश नाम कहे गये हैं। जैसे—

१. ऐन्द्री, २. आग्नेयी, ३. याम्या, ४. नैर्ऋती, ५. वारुणी, ६. वायव्या, ७. सोमा, ८. ईशानी, ९. विमला, १०. तमा (३१)।

लवणसमुद्र-सूत्र

३२—लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं गोतित्थविरहिते खेत्ते पण्णत्ते ।

लवणसमुद्र का दश हजार योजन क्षेत्र गोतीर्थ-रहित (समतल) कहा गया है (३२) ।

३३—लवणस्स णं समुद्दस्स दस जोयणसहस्साइं उदगमाले पण्णत्ते ।

लवणसमुद्र की उदकमाला (वेला) दश हजार योजन चौड़ी कही गई है (३३) ।

विवेचन—जिस जलस्थान पर गाएं जल पीने को उतरती हैं, वह क्रम से ढलानवाला आगे-आगे अधिक नीचा होता है, उसे गोतीर्थ कहते हैं। लवणसमुद्र के दोनों पार्श्वों में ९५-९५ हजार योजन तक पानी गोतीर्थ के आकार है । बीच में दश हजार योजन तक पानी समतल है, उसमें ढलान नहीं है, उसे 'गोतीर्थ-रहित' कहा गया है ।

जल की शिखर या चोटी को उदकमाला कहते हैं। यह समुद्र के मध्यभाग में होती है। लवण समुद्र की उदकमाला दश हजार योजन चौड़ी और सोलह हजार योजन ऊंची होती है (३३) ।

पाताल-सूत्र

३४—सव्वेवि णं महापाताला दसदसाइं जोयणसहस्साइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभागे एगपसियाए सेढीए दसदसाइं जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। तेसि णं महापातालाणं कुड्डा सव्ववइरामया सव्वत्थ समा दस जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता ।

सभी महापाताल (पातालकलश) एक लाख योजन गहरे कहे गये हैं। मूल भाग में वे दश हजार योजन विस्तृत कहे गये हैं। मूल भाग के विस्तार से दोनों ओर एक-एक प्रदेश की वृद्धि से बहुमध्यदेश भाग में एक लाख योजन विस्तार कहा गया है। ऊपर मुखमूल में उनका विस्तार दश हजार योजन कहा गया है ।

उन पातालों की भित्तियां सर्ववज्रमयी, सर्वत्र समान और सर्वत्र दश हजार योजन विस्तार वाली कही गई हैं (३४) ।

३५—सव्वेवि णं खुड्डा पाताला दस जोयणसताइं उव्वेहेणं पण्णत्ता, मूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, बहुमज्झदेसभागे एगपएसियाए सेढीए दस जोयणसताइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, उवरिं मुहमूले दसदसाइं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता। तेसि णं खुड्डापातालाणं कुड्डा सव्ववइरामया सव्वत्थ समा दस जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता ।

सभी छोटे पातालकलश एक हजार योजन गहरे कहे गये हैं। मूल भाग में उनका विस्तार सौ योजन कहा गया है। मूलभाग के विस्तार से दोनों ओर एक-एक प्रदेश की वृद्धि से बहुमध्य देशभाग में उनका विस्तार एक हजार योजन कहा गया है। ऊपर मुखमूल में उनका विस्तार सौ योजन कहा गया है ।

उन छोटे पातालों की भित्तियाँ सर्ववज्रमयी, सर्वत्र समान और सर्वत्र दश योजन विस्तार वाली कही गई हैं (३५) ।

पर्वत-सूत्र

३६—धायइसंडगा णं मंदरा दसजोयणसयाइं उव्वेहेणं, धरणीतले देसूणाइं दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

धातकीषण्ड के मन्दर पर्वत भूमि में एक हजार योजन गहरे, भूमितल पर कुछ कम दश हजार योजन विस्तृत और ऊपर एक हजार योजन विस्तृत कहे गये हैं (३६)।

३७—पुक्खरवरदीवड्ढगा णं मंदरा दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, एवं चेव।

पुष्करवरद्वीपार्ध के मन्दर पर्वत इसी प्रकार भूमि में एक हजार योजन गहरे, भूमितल पर कुछ कम दश हजार योजन विस्तृत और ऊपर एक हजार योजन कहे गये हैं (३७)।

३८—सव्वेवि णं वट्टवेयड्ढपव्वता दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लागसंठिता, दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सभी वृत्तवैताढ्य पर्वत एक हजार योजन ऊंचे, एक हजार गव्यूति (कोश) गहरे, सर्वत्र समान विस्तार वाले, पल्य के आकार से संस्थित और दश सौ (एक हजार) योजन विस्तृत कहे गये हैं (३८)।

क्षेत्र-सूत्र

३९—जंबुद्दीवे दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, तं जहा—भरहे, एरवते, हेमवते, हेरण्णवते, हरिवस्से, रम्मगवस्से, पुव्वविदेहे, अवरविदेहे, देवकुरा, उत्तरकुरा।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दश क्षेत्र कहे गये हैं। जैसे—

१. भरत क्षेत्र, २. ऐरवत क्षेत्र, ३. हैमवत क्षेत्र, ४. हैरण्यवत क्षेत्र, ५. हरिवर्ष क्षेत्र, ६. रम्यकवर्ष क्षेत्र, ७. पूर्वविदेह क्षेत्र, ८. अपरविदेह क्षेत्र, ९. देवकुरु क्षेत्र, १०. उत्तरकुरु क्षेत्र (३९)।

पर्वत-सूत्र

४०—माणुसुत्तरे णं पव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं पण्णत्ते।

मानुषोत्तर पर्वत मूल में दश सौ बाईस (१०२२) योजन विस्तारवाला कहा गया है (४०)।

४१—सव्वेवि णं अंजण-पव्वता दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसताइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सभी अंजन पर्वत दश सौ (१०००) योजन गहरे, मूल में दश हजार योजन विस्तृत, और ऊपर दश सौ (१०००) योजन विस्तार वाले कहे गये हैं (४१)।

४२—सव्वेवि णं दहिमुहपव्वता दस जोयणसताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सभी दधिमुखपर्वत भूमि में दश सौ योजन गहरे, सर्वत्र समान विस्तारवाले, पल्य के आकार से संस्थित और दश हजार योजन चौड़े कहे गये हैं (४२)।

४३—सव्वेवि णं रतिकरपव्वता दस जोयणसताइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दसगाउयसताइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा झल्लरिसंठिता, दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सभी रतिकर पर्वत दश सौ (१०००) योजन ऊंचे, दश सौ गव्यूति गहरे, सर्वत्र समान, झल्लरी के आकार के और दश हजार योजन विस्तार वाले कहे गये हैं (४३)।

४४—रुयगवरे णं पव्वते दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उवरिं दस जोयणसताइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

रुचकवर पर्वत दश सौ (१०००) योजन गहरे, मूल में दश हजार योजन विस्तृत और ऊपर दश सौ (१०००) योजन विस्तार वाले कहे गये हैं (४४)।

४५—एवं कुंडलवरेवि।

इसी प्रकार कुण्डलवर पर्वत भी रुचकवर पर्वत के समान जानना चाहिए (४५)।

द्रव्यानुयोग-सूत्र

४६—दसविहे दवियाणुओगे पण्णत्ते, तं जहा—दवियाणुओगे, माउयाणुओगे, एगट्ठियाणुओगे, करणाणुओगे, अप्पितणप्पिते, भाविताभाविते, बाहिराबाहिरे, सासतासासते, तहणाणे, अतहणाणे।

द्रव्यानुयोग दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. द्रव्यानुयोग, २. मातृकानुयोग, ३. एकार्थिकानुयोग, ४. करणानुयोग, ५. अर्पितानर्पितानुयोग, ७. भाविताभावितानुयोग, ७. बाह्याबाह्यानुयोग, ८. शाश्वताशाश्वतानुयोग, ९. तथाज्ञानानुयोग, १०. अतथाज्ञानानुयोग।

विवेचन—जीवादि द्रव्यों की व्याख्या करने वाले अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते हैं। गुण और पर्याय जिसमें पाये जावें, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य के सहभावी ज्ञान-दर्शनादि धर्मों को गुण और मनुष्य, तिर्यंचादि क्रमभावी धर्मों को पर्याय कहते हैं। द्रव्यानुयोग में इन गुणों और पर्यायों वाले द्रव्य का विवेचन किया गया है।

२. मातृकानुयोग—इस अनुयोग में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूप मातृका पद के द्वारा द्रव्यों का विवेचन किया गया है।

३. एकार्थिकानुयोय—इसमें एक अर्थ के वाचक अनेक शब्दों की व्याख्या के द्वारा द्रव्यों का विवेचन किया गया है। जैसे—सत्त्व, भूत, प्राणी और जीव, ये शब्द एक अर्थ के वाचक हैं, आदि।

४. करणानुयोग—द्रव्य की निष्पत्ति में साधकतम कारण को करण कहते हैं। जैसे घट की निष्पत्ति में मिट्टी, कुम्भकार, चक्र आदि। जीव की क्रियाओं में काल, स्वभाव, नियति, आदि साधक हैं। इस प्रकार द्रव्यों के साधकतम कारणों का विवेचन इस करणानुयोग में किया गया है।

५. अर्पितानर्पितानुयोग—मुख्य या प्रधान विवक्षा को अर्पित और गौण या अप्रधान विवक्षा को अनर्पित कहते हैं। इस अनुयोग में सभी द्रव्यों के गुण-पर्यायों का विवेचन मुख्य और गौण की विवक्षा से किया गया है।

६. भाविताभावितानुयोग—इस अनुयोग में द्रव्यान्तर से प्रभावित या अप्रभावित होने का विचार किया गया है। जैसे—सकषाय जीव अच्छे या बुरे वातावरण से प्रभावित होता है, किन्तु कषाय जीव नहीं होता, आदि।

७. बाह्याबाह्यानुयोग—इस अनुयोग में एक द्रव्य की दूसरे द्रव्य के साथ बाह्यता (भिन्नता) और अबाह्यता (अभिन्नता) का विचार किया गया है।

८. शाश्वताशाश्वतानुयोग—इस अनुयोग में द्रव्यों के शाश्वत (नित्य) और अशाश्वत (अनित्य) धर्मों का विचार किया गया है।

९. तथाज्ञानानुयोग—इसमें द्रव्यों के यथार्थ स्वरूप का विचार किया गया है।

१०. अतथाज्ञानानुयोग—इस अनुयोग में मिथ्यादृष्टियों के द्वारा प्ररूपित द्रव्यों के स्वरूप का (अयथार्थ स्वरूप का) निरूपण किया गया है (४६)।

उत्पातपर्वत-सूत्र

४७—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तिगिंछिकूडे उप्पातव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं पण्णत्ते।

असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर का तिगिंछकूट नामक उत्पात पर्वत मूल में दश सौ बाईस (१०२२) योजन विस्तृत कहा गया है (४७)।

४८—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो सोमस्स महारण्णो सोमप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल महाराज सोम का सोमप्रभ नामक उत्पातपर्वत दश सौ (१०००) योजन ऊंचा, दश सौ गव्यूति भूमि में गहरा और मूल में दश सौ (१०००) योजन विस्तृत कहा गया है (४८)।

४९—चमरस्स णं असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो जमस्स महारण्णो जमप्पभे उप्पातपव्वते एवं चेव।

असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर के लोकपाल यम महाराज का यमप्रभनामक उत्पातपर्वत सोम के उत्पातपर्वत के समान ही ऊंचा, गहरा और विस्तार वाला कहा गया है (४९)।

५०—एवं वरुणस्सवि।

इसी प्रकार वरुण लोकपाल का उत्पातपर्वत भी जानना चाहिए (५०)।

५१—एवं वेसमणस्सवि।

इसी प्रकार वैश्रमण लोकपाल का उत्पातपर्वत भी जानना चाहिए (५१)।

५२—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे उप्पातपव्वते मूले दस बावीसे जोयणसते विक्खंभेणं पण्णत्ते।

वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि का रुचकेन्द्र नामक उत्पातपर्वत मूल में दश सौ बाईस (१०२२) योजन विस्तृत कहा गया है (५२)।

५३—बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सोमस्स एवं चेव, जधा चमरस्स लोगपालाणं तं चेव बलिस्सवि।

वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के लोकपाल महाराज सोम, यम, वैश्रमण और वरुण के स्व-स्व नामवाले उत्पातपर्वतों की ऊंचाई एक-एक हजार योजन, गहराई एक-एक हजार गव्यूति और मूलभाग का विस्तार एक-एक हजार योजन कहा गया है (५३)।

५४—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो धरणप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसताइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसताइं विक्खंभेणं।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण का धरणप्रभ नामक उत्पातपर्वत दश सौ (१०००) योजन ऊंचा, दश सौ गव्यूति गहरा और मूल में दश सौ (१०००) योजन विस्तार वाला कहा गया है (५४)।

५५—धरणस्स णं णागकुमारिंदस्स णागकुमाररण्णो कालवालस्स महारण्णो कालवालप्पभे उप्पातपव्वते जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं एवं चेव।

नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज के लोकपाल कालपाल महाराज का कालपालप्रभ नामक उत्पातपर्वत दश सौ योजन ऊंचा, दश सौ गव्यूति गहरा और मूलमें दश सौ योजन विस्तार वाला कहा गया है (५५)।

५६—एवं जाव संखवालस्स।

इसी प्रकार कोलपाल, शैलपाल और शंखपाल नामक लोकपालों के स्व-स्व नामवाले उत्पात-पर्वतों की ऊंचाई, गहराई और मूल में विस्तार जानना चाहिए (५६)।

५७—एवं भूताणंदस्सवि।

इसी प्रकार भूतेन्द्र भूतराज भूतानन्द के भूतानन्दप्रभ नामक उत्पातपर्वत की ऊंचाई एक हजार योजन, गहराई एक हजार गव्यूति, और मूल का विस्तार एक हजार योजन जानना चाहिए (५७)।

५८—एवं लोगपालाणवि से, जहा धरणस्स।

इसी प्रकार भूतानन्द के लोकपाल महाराज कालपाल, कोलपाल, शंखपाल और शैलपाल के स्व-स्व नामवाले उत्पातपर्वतों की ऊंचाई एक-एक हजार योजन, गहराई एक-एक हजार गव्यूति, और मूल में विस्तार एक-एक हजार योजन धरण के समान जानना चाहिए (५८)।

५९—एवं जाव थणितकुमाराणं सलोगपालाणं भाणियव्वं, सव्वेसिं उप्पायपव्वया भाणियव्वा सरिसणामगा।

इसी प्रकार सुपर्णकुमार यावत् स्तनितकुमार देवों के इन्द्रों के और उनके लोकपालों के स्व-स्वनामवाले उत्पातपर्वतों की ऊंचाई, गहराई और मूलमें विस्तार धरण तथा उनके लोकपालों के समान जानना चाहिए (५९)।

६०—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सक्कप्पभे उप्पातपव्वते दस जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस गाउयसहस्साइं उव्वेहेणं, मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

देवेन्द्र देवराज शक्र के शक्रप्रभ नामक उत्पात पर्वत की ऊंचाई दश हजार योजन, गहराई दश हजार गव्यूति और मूलमें विस्तार दश हजार योजन कहा गया है (६०)।

६१—सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सोमस्स महारण्णो। जधा सक्कस्स तधा सव्वेसिं लोगपालाणं, सव्वेसिं च इंदाणं जाव अच्चुयत्ति। सव्वेसिं पमाणमेगं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के सोमप्रभ नामक उत्पातपर्वत का वर्णन शक्र के उत्पातपर्वत के समान जानना चाहिए।

शेष सभी लोकपालों के उत्पातपर्वतों का, तथा अच्युतकल्पपर्यन्त सभी इन्द्रों के उत्पातपर्वतों की ऊंचाई आदि का प्रमाण एक ही समान जानना चाहिए (६१)।

अवगाहना-सूत्र

६२—बायरवणस्सइकाइयाणं उक्कोसेणं दस जोयणसयाइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता।

बादर वनस्पतिकायिक जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना दश सौ (१०००) योजन (उत्सेध योजन) कही गई है। (यह अवगाहना कमल की नाल की अपेक्षा से है) (६२)।

६३—जलचर-पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं दस जोयणसताइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता।

जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना दश सौ (१०००) योजन कही गई है (६३)।

६४—उरपरिसप्प-थलचर-पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं (दस जोयणसताइं सरीरोगाहणा पण्णत्ता)।

उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना दश सौ (१०००) योजन कही गई है (६४)।

तीर्थंकर-सूत्र

६५—संभवाओ णं अरहातो अभिणंदणे अरहा दसहिं सागरोवमकोडिसतसहस्सेहिं वीतिक्कंतेहिं समुप्पण्णे।

अर्हन् संभव के पश्चात् अभिनन्दन अर्हन् दश लाख करोड़ सागरोपम बीत जाने पर उत्पन्न हुए थे (६५)।

अनन्त-भेद-सूत्र

६६—दसविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा—णामाणंतए ठवणाणंतए, दव्वाणंतए, गणणाणंतए, पएसाणंतए, एगतोणंतए, दुहतोणंतए, देसवित्थाराणंतए, सव्ववित्थाराणंतए सासताणंतए।

अनन्त दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. नाम-अनन्त—किसी वस्तु का 'अनन्त' ऐसा नाम रखना।
१. स्थापना-अनन्त—किसी वस्तु में 'अनन्त' की स्थापना करना।
३. द्रव्य-अनन्त—परिमाण की दृष्टि से 'अनन्त' का व्यवहार करना।
४. गणना-अनन्त—गिनने योग्य वस्तु के विना ही एक, दो, तीन, संख्यात, असंख्यात, अनन्त, इस प्रकार गिनना।

५. प्रदेश-अनन्त—प्रदेशों की अपेक्षा 'अनन्त' की गणना।
६. एकत:अनन्त—एक ओर से अनन्त, जैसे अतीतकाल की अपेक्षा अनन्त समयों की गणना।
७. द्विधा-अनन्त—दोनों ओर से अनन्त, जैसे—अतीत और अनागत काल की अपेक्षा अनन्त समयों की गणना।
८. देश-विस्तार-अनन्त—दिशा या प्रतर की दृष्टि से अनन्त गणना।
९. सर्वविस्तार-अनन्त—क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से अनन्त।
१०. शाश्वत-अनन्त—शाश्वतता या नित्यता की दृष्टि से अनन्त (९६)।

पूर्ववस्तुसूत्र

९७—उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू पण्णत्ता।

उत्पादपूर्व के वस्तु नामक दश अध्याय कहे गये हैं (९७)।

९८—अत्थिणत्थिप्पवायपुव्वस्स णं दस चूलवत्थू पण्णत्ता।

अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व के चूलावस्तु नामक दश लघु अध्याय कहे गये हैं (९८)।

प्रतिषेवना-सूत्र

९९—दसविहा पडिसेवणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

दप्प पमायऽणाभोगे, आउरे आवतीसु य।
संकिते सहसक्कारे, भयप्पओसा य वीमंसा ॥१॥

प्रतिषेवना दश प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. दर्पप्रतिषेवना, २. प्रमोदप्रतिषेवना, ३. अनाभोगप्रतिषेवना, ४. आतुरप्रतिषेवना ५. आपत्प्रतिषेवना, ६. शंकितप्रतिषेवना, ७. सहसाकरणप्रतिषेवना, ८. भयप्रतिषेवना, ९. प्रदोषप्रतिषेवना, १०. विमर्शप्रतिषेवना।

विवेचन—गृहीत व्रत की मर्यादा के प्रतिकूल आचरण और खान-पान आदि करने को प्रतिषेवणा या प्रतिसेवना कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में कही गई प्रतिसेवनाओं का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

१. दर्पप्रतिसेवना—दर्प या उद्धत भाव से जीव-घात आदि करना।
२. प्रमादप्रतिसेवना—विकथा आदि प्रमाद के वश जीव-घात आदि करना।
३. अनाभोगप्रतिसेवना—विस्मृतिवश या उपयोगशून्यता से अयोग्य वस्तु का सेवन करना।
४. आतुरप्रतिसेवना—भूख-प्यास आदि से पीड़ित होकर अयोग्य वस्तु का सेवन करना।
५. आपत्प्रतिसेवना—आपत्ति आने पर अयोग्य कार्य करना।
६. शंकितप्रतिसेवना—एषणीय वस्तु में भी शंका होने पर उसका सेवन करना।
७. सहसाकरणप्रतिसेवना—अकस्मात् किसी अयोग्य वस्तु का सेवन हो जाना।
८. भयप्रतिसेवना—भय-वश किसी अयोग्य वस्तु का सेवन करना।

९. प्रदोषप्रतिसेवना—द्वेष-वश जीव-घात आदि करना।

१०. विमर्शप्रतिसेवना—शिष्यों की परीक्षा के लिए किसी अयोग्य कार्य को करना।

इन प्रतिसेवनाओं के अन्य उपभेदों का विस्तृत विवेचन निशीथभाष्य आदि से जानना चाहिए (६९)।

आलोचना-सूत्र

७०—दस आलोयणादोसा पण्णत्ता, तं जहा—

आकंपइत्ता अणुमाणइत्ता, जं दिट्ठं बायरं च सुहुमं वा।
छण्णं - सद्दाउलगं, बहुजण अव्वत्त तस्सेवी ॥१॥

आलोचना के दश दोष कहे गये हैं। जैसे—

१. आकम्प्य या आकम्पित दोष, २. अनुमन्य या अनुमानित दोष, ३. दृष्टदोष, ४. वादरदोष, ५. सूक्ष्म दोष, ६. छन्न दोष, ७. शब्दाकुलित दोष, ८. बहुजन दोष, ९. अव्यक्त दोष, १०. तत्सेवी दोष।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में आलोचना के दश दोषों की प्रतिपादक जो गाथा दी गई है, वह निशीयभाष्य चूर्णि में मिलती है और कुछ पाठ-भेद के साथ दि० ग्रन्थ मूलाचार के शीलगुणाधिकार में तथा भगवती आराधना में मूल गाथा के रूप में निबद्ध एवं अन्य ग्रन्थों में उद्धृत पाई जाती है। दोषों के अर्थ में कहीं-कहीं कुछ अन्तर है, उस सब का स्पष्टीकरण श्वे० व्याख्या० नं० १ में और दि० व्याख्या नं० २ में इस प्रकार है—

(१) १. आकम्प्य या आकम्पित दोष—सेवा आदि के द्वारा प्रायश्चित्त देने वाले की आराधना कर आलोचना करना, गुरु को उपकरण देने से वे मुझे लघु प्रायश्चित्त देंगे, ऐसा विचार कर उपकरण देकर आलोचना करना।
२. कंपते हुए आलोचना करना, जिससे कि गुरु अल्प प्रायश्चित्त दें।

(२) १. अनुमान्य या अनुमानितदोष—'मैं दुर्बल हूं, मुझे अल्प प्रायश्चित्त देवें', इस भाव से अनुनय कर आलोचना करना।
२. शारीरिक शक्ति का अनुमान लगाकर तदनुसार दोष-निवेदन करना, जिससे कि गुरु उससे अधिक प्रायश्चित्त न दें।

(३) १. यद्दृष्ट-गुरु आदि के द्वारा जो दोष देख लिया गया है, उसी की आलोचना करना, अन्य अदृष्ट दोषों की नहीं करना।
२. दूसरों के द्वारा अदृष्ट दोष छिपाकर दृष्ट दोष की आलोचना करना।

(४) १. वादर दोष—केवल स्थूल या बड़े दोष की आलोचना करना।
२. सूक्ष्म दोष न कहकर केवल स्थूल दोष की आलोचना करना।

(५) १. सूक्ष्म दोष—केवल छोटे दोषों की आलोचना करना।
२. स्थूल दोष कहने से गुरुप्रायश्चित्त मिलेगा, यह सोचकर छोटे-छोटे दोषों की आलोचना करना।

(६) १. छन्न दोष—इस प्रकार से आलोचना करना कि गुरु सुनने न पावें।
२. किसी बहाने से दोष कह कर स्वयं प्रायश्चित्त ले लेना, अथवा गुप्त रूप से एकान्त में जाकर गुरु से दोष कहना, जिससे कि दूसरे सुन न पावें।

(७) १. शब्दाकुल या शब्दाकुलित दोष—जोर-जोर से बोलकर आलोचना करना, जिससे कि दूसरे अगीतार्थ साधु सुन लें।
२. पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण के समय कोलाहलपूर्ण वातावरण में अपने दोष की आलोचना करना।

(८) १. बहुजन दोष—एक के पास आलोचना कर शंकाशील होकर फिर उसी दोष की दूसरे के पास जाकर आलोचना करना।
२. बहुत जनों के एकत्रित होने पर उनके सामने आलोचना करना।

(९) १. अव्यक्त दोष—अगीतार्थ साधु के पास दोषों की आलोचना करना।
२. दोषों की अव्यक्त रूप से आलोचना करना।

(१०) १. तत्सेवी दोष—आलोचना देने वाले जिन दोषों का स्वयं सेवन करते हैं, उनके पास जाकर उन दोषों की आलोचना करना। अथवा—मेरा दोष इसके समान है, इसे जो प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ है, वही मेरे लिए भी उपयुक्त है, ऐसा सोचकर अपने दोषों का संवरण करना।
२. जो व्यक्ति अपने समान ही दोषों से युक्त है, उसको अपने दोष का निवेदन करना, जिससे कि वह बड़ा प्रायश्चित्त न दे। अथवा—जिस दोष का प्रकाशन किया है, उसका पुन: सेवन करना।

७१—दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसमालोएत्तए, तं जहा—जाइसंपण्णे, कुलसंपण्णे, (विणयसंपण्णे. णाणसंपण्णे, दंसणसंपण्णे, चरित्तसंपण्णे), खंते, दंते, अमायी, अपच्छाणुतावी।

दश स्थानों से सम्पन्न अनगार अपने दोषों की आलोचना करने के योग्य होता है। जैसे—
१. जातिसम्पन्न, २. कुलसम्पन्न, ३. विनयसम्पन्न, ४. ज्ञानसम्पन्न, ५. दर्शनसम्पन्न, ६. चारित्रसम्पन्न, ७. क्षान्त (क्षमासम्पन्न) ८. दान्त (इन्द्रिय-जयी) ९. अमायावी (मायाचार-रहित) १०. अपश्चात्तापी (पीछे पश्चात्ताप नहीं करने वाला) (७१)।

७२—दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा—आयारवं, आहारवं, ववहारवं, ओवीलए, पकुव्वए, अपरिस्साई, णिज्जावए), अवायदंसी, पियधम्मे, दढधम्मे।

दश स्थानों से सम्पन्न अनगार आलोचना देने के योग्य होता है। जैसे—
१. आचारवान्—जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य इन पंच आचारों से युक्त हो।
२. आधारवान्—आलोचना लेने वाले के द्वारा आलोचना किये जाने वाले दोषों का जानने वाला हो।
३. व्यवहारवान्—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत इन पांच व्यवहारों का जानने वाला हो।
४. अपव्रीडक—आलोचना करने वाले की लज्जा या संकोच छुड़ाकर उसमें आलोचना करने का साहस उत्पन्न करने वाला हो।
५. प्रकारी—अपराधी के आलोचना करने पर उसकी शुद्धि करने वाला हो।

६. अपरिश्रावी—आलोचना करने वाले के दोष दूसरों के सामने प्रकट करने वाला न हो।
७. निर्यापक—बड़े प्रायश्चित्त को भी निर्वाह कर सके, ऐसा सहयोग देने वाला हो।
८. अपायदर्शी—सम्यक् आलोचना न करने के अपायों-दुष्फलों को बताने वाला हो।
९. प्रियधर्मा—धर्म से प्रेम रखने वाला हो।
१०. दृढधर्मा—आपत्तिकाल में भी धर्म में दृढ़ रहने वाला हो (७२)।

प्रायश्चित्त-सूत्र

७३—दसविधे पायच्छित्ते, तं जहा—आलोयणारिहे, (पडिक्कमणारिहे, तदुभयारिहे, विवेगारिहे, विउसग्गारिहे, तवारिहे, छेयारिहे, मूलारिहे), अणवट्ठप्पारिहे, पारंचियारिहे।

प्रायश्चित्त दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. आलोचना के योग्य—गुरु के सामने निवेदन करने से ही जिसकी शुद्धि हो।
२. प्रतिक्रमण के योग्य—'मेरा दुष्कृत मिथ्या हो' इस प्रकार के उच्चारण से जिस दोष की शुद्धि हो।
३. तदुभय के योग्य—जिसकी शुद्धि आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों से हो।
४. विवेक के योग्य—जिसकी शुद्धि ग्रहण किये गये अशुद्ध भक्त-पानादि के त्याग से हो।
५. व्युत्सर्ग के योग्य—जिस दोष की शुद्धि कायोत्सर्ग से हो।
६. तप के योग्य—जिस दोष की शुद्धि अनशनादि तप के द्वारा हो।
७. छेद के योग्य—जिस दोष की शुद्धि दीक्षा-पर्याय के छेद से हो।
८. मूल के योग्य—जिस दोष की शुद्धि पुनः दीक्षा देने से हो।
९. अनवस्थाप्य के योग्य—जिस दोष की शुद्धि तपस्या पूर्वक पुनः दीक्षा देने से हो।
१०. पारांचिक के योग्य—भर्त्सना एवं अवहेलनापूर्वक एक बार संघ से पृथक् कर पुनः दीक्षा देने से जिस दोष की शुद्धि हो (७३)।

मिथ्यात्व-सूत्र

७४—दसविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—अधम्मे धम्मसण्णा, धम्मे अधम्मसण्णा, उम्मग्गे मग्गसण्णा, मग्गे उम्मग्गसण्णा, अजीवेसु जीवसण्णा, जीवेसु अजीवसण्णा, असाहुसु साहुसण्णा, साहुसु असाहुसण्णा, अमुत्तेसु मुत्तसण्णा, मुत्तेसु अमुत्तसण्णा।

मिथ्यात्व दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. अधर्म को धर्म मानना, २. धर्म को अधर्म मानना,
३. उन्मार्ग को सुमार्ग मानना, ४. सुमार्ग को उन्मार्ग मानना,
५. अजीवों को जीव मानना, ६. जीवों को अजीव मानना,
७. असाधुओं को साधु मानना, ८. साधुओं को असाधु मानना,
९. अमुक्तों को मुक्त मानना, १०. मुक्तों को अमुक्त मानना (७४)।

तीर्थंकर-सूत्र

७५—चंदप्पभे णं अरहा दस पुव्वसतसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हन् चन्द्रप्रभ दश लाख पूर्व वर्ष की पूर्ण आयु पालकर सिद्ध, बुद्ध मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७५)।

७६—धम्मे णं अरहा दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हन् धर्मनाथ दश लाख वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७६)।

७७—णमी णं अरहा दस वाससहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हन् नमि दश हजार वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७७)।

वासुदेव-सूत्र

७८—पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता छट्ठीए तमाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

पुरुषसिंह नाम के पांचवें वासुदेव दश लाख वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर 'तमा' नाम की छठी पृथिवी में नारक रूप से उत्पन्न हुए (७८)।

तीर्थकर-सूत्र

७९—णेमी णं अरहा दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे (बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख) प्पहीणे।

अर्हत् नेमि के शरीर की ऊंचाई दश धनुष की थी। वे एक हजार वर्ष की आयु पालकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत और समस्त दुःखों से रहित हुए (७९)।

वासुदेव-सूत्र

८०—कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस य वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

वासुदेव कृष्ण के शरीर की ऊंचाई दश धनुष की थी। वे दश सौ (१०००) वर्ष की पूर्णायु पालकर 'वालुकाप्रभा' नाम की तीसरी पृथिवी में नारक रूप से उत्पन्न हुए (८०)।

भवनवासि-सूत्र

८१—दसविहा भवणवासी देवा पण्णत्ता, तं जहा—असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

भवनवासी देव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. असुरकुमार, २. नागकुमार, ३. सुपर्णकुमार, ४. विद्युत्कुमार
५. अग्निकुमार, ६. द्वीपकुमार, ७. उदधि कुमार, ८. दिशाकुमार
९. वायुकुमार, १०. स्तनितकुमार (८१)।

८२—एएसि णं दसविधाणं भवणवासीणं देवाणं दस चेइयरुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

अस्सत्थ सत्तिवण्णे, सामलि उंबर सिरीस दहिवण्णे ।
वंजुल-पलास-वग्घा, तते य कणियाररुक्खे ।।१।।

इन दशों प्रकार के भवनवासी देवों के दश चैत्यवृक्ष कहे गये हैं । जैसे—

१. असुरकुमार का चैत्यवृक्ष—अश्वत्थ (पीपल) ।
२. नागकुमार का चैत्यवृक्ष—सप्तपर्ण (सात पत्ते वाला) वृक्ष विशेष ।
३. सुपर्णकुमार का चैत्यवृक्ष—शाल्मली (सेमल) वृक्ष ।
४. विद्युत्कुमार का चैत्यवृक्ष—उदुम्बर (गूलर) वृक्ष ।
५. अग्निकुमार का चैत्यवृक्ष—शिरीष (सिरीस) वृक्ष ।
६. द्वीपकुमार का चैत्यवृक्ष—दधिपर्ण वृक्ष ।
७. उदधिकुमार का चैत्यवृक्ष—वंजुल (अशोक वृक्ष) ।
८. दिशाकुमार का चैत्यवृक्ष—पलाश वृक्ष ।
९. वायुकुमार का चैत्यवृक्ष—व्याघ्र (लाल एरण्ड) वृक्ष ।
१०. स्तनितकुमार का चैत्यवृक्ष—कर्णिकार (कनेर) वृक्ष (८२) ।

सौख्य-सूत्र

८३—दसविधे सोक्खे पण्णत्ते, तं जहा—

आरोग्ग दीहमाउं, अड्ढेज्जं काम भोग संतोसे ।
अत्थि सुहभोग णिक्खम्ममेव तत्तो अणावाहे ।।१।।

सुख दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. आरोग्य (नीरोगता) । २. दीर्घ आयुष्य ।
३. आढ्यता (धन की सम्पन्नता) । ४. काम (शब्द और रूप का सुख) ।
५. भोग (गन्ध, रस और स्पर्श का सुख), ६. सन्तोष-निर्लोभता ।
७. अस्ति—जब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, तब उसकी पूर्ति हो जाना ।
८. शुभभोग—सुन्दर, रम्य भोगों की प्राप्ति होना ।
९. निष्क्रमण—प्रव्रजित होने का सुयोग मिलना ।
१०. अनाबाध—जन्म-मृत्यु आदि की बाधाओं से रहित मुक्ति-सुख ।

उपघात-विशोधि-सूत्र

८४—दसविधे उवघाते पण्णत्ते, तं जहा—उग्गमोवघाते, उप्पायणोवघाते, (एसणोवघाते, परिकम्मोवघाते), परिहरणोवघाते, णाणोवघाते, दंसणोवघाते, चरित्तोवघाते, अचियत्तोवघाते, सारक्खणोवघाते ।

उपघात दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. उद्गमदोष—भिक्षासम्बन्धी दोष से होने वाला चारित्र का घात ।

५. मनःसंक्लेश—मन के उद्वेग से होने वाला संक्लेश ।
६. वाक्-संक्लेश—वचन के निमित्त से होने वाला संक्लेश ।
७. काय-संक्लेश—शरीर के निमित्त से होने वाला संक्लेश ।
८. ज्ञान-संक्लेश—ज्ञान की अशुद्धि से होने वाला संक्लेश ।
९. दर्शन-संक्लेश—दर्शन की अशुद्धि से होने वाला संक्लेश ।
१०. चारित्र-संक्लेश—चारित्र की अशुद्धि से होने वाला संक्लेश (८६) ।

८७—दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—उवहिअसंकिलेसे, (उवस्सयअसंकिलेसे, कसाय-असंकिलेसे, भत्तपाणअसंकिलेसे, मणअसंकिलेसे, वइअसंकिलेसे, कायअसंकिलेसे, णाणअसंकिलेसे, दंसणअसंकिलेसे), चरित्तअसंकिलेसे ।

असंक्लेश (विमल भाव) दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—
१. उपधि-असंक्लेश—उपधि के निमित्त से संक्लेश न होना ।
२. उपाश्रय-असंक्लेश—निवासस्थान के निमित्त से संक्लेश न होना ।
३. कषाय-असंक्लेश—कषाय के निमित्त से संक्लेश न होना ।
४. भक्त-पान-असंक्लेश—आहारादि के निमित्त से संक्लेश न होना ।
५. मनः-असंक्लेश—मन के निमित्त से संक्लेश न होना, मन की विशुद्धि ।
६. वाक्-असंक्लेश—वचन के निमित्त से संक्लेश न होना ।
७. काय-असंक्लेश—शरीर के निमित्त से संक्लेश न होना ।
८. ज्ञान-असंक्लेश—ज्ञान की विशुद्धता ।
९. दर्शन-असंक्लेश—सम्यग्दर्शन की निर्मलता ।
१०. चारित्र-असंक्लेश—चारित्र की निर्मलता (८७) ।

बल-सूत्र

८८—दसविधे बले पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियबले, (चक्खिंदियबले, घाणिंदियबले, जिब्भिंदियबले), फासिंदियबले, णाणबले, दंसणबले, चरित्तबले, तवबले, वीरियबले ।

बल दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रिय-बल । २. चक्षुरिन्द्रिय-बल ।
३. घ्राणेन्द्रिय-बल । ४. रसनेन्द्रिय बल ।
५. स्पर्शनेन्द्रिय-बल । ६. ज्ञानबल ।
७. दर्शन-बल । ८. चारित्रबल ।
९. तपोबल । १०. वीर्यबल (८८) ।

भाषा-सूत्र

८९—दसविहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाहा

जणवय सम्मय ठवणा, णामे रूवे पडुच्चसच्चे य ।
ववहार भाव जोगे, दसमे ओवम्मसच्चे य ॥१॥

२. उत्पादनादोष—भिक्षासम्बन्धी उत्पाद से होने वाला चारित्र का उपघात।
३. एषणादोष—गोचरी के दोष से होने वाला चारित्र का उपघात।
४. परिकर्मदोष—वस्त्र-पात्र आदि के संवारने से होने वाला चारित्र का उपघात।
५. परिहरणदोष—अकल्प्य उपकरणों के उपभोग से होने वाला चारित्र का उपघात।
६. प्रमाद आदि से होने वाला ज्ञान का उपघात।
७. शंका आदि से होने वाला दर्शन का उपघात।
८. समितियों के यथाविधि पालन न करने से होने वाला चारित्र का उपघात।
९. अप्रीति या अविनय से होने वाला विनय आदि गुणों का उपघात।
१०. संरक्षण-उपघात—शरीर, उपधि आदि में मूर्च्छा रखने से होने वाला परिग्रह-विरमण का उपघात (८४)।

८५—दसविधा विसोही पण्णत्ता, तं जहा—उग्गमविसोही, उप्पायणविसोही, (एसणविसोही, परिकम्मविसोही, परिहरणविसोही, णाणविसोही, दंसणविसोही, चरित्तविसोही, अचियत्तविसोही), सारक्खणविसोही।

विशोधि दश प्रकार की कही गई है। जैसे—
१. उद्गम-विशोधि—उद्गम-सम्बन्धी दोषों की विशुद्धि।
२. उत्पादना-विशोधि—उत्पादन-सम्बन्धी दोषों की विशुद्धि।
३. एषणा-विशोधि—एषणा-सम्बन्धी दोषों की विशुद्धि।
४. परिकर्म-विशोधि—वस्त्र-पात्रादि संवारने से उत्पन्न दोषों की विशुद्धि।
५. परिहरण-विशोधि—अकल्प्य उपकरणों के उपभोग से उत्पन्न दोषों की विशुद्धि।
६. ज्ञान-विशोधि—ज्ञान के अंगों का यथाविधि अभ्यास न करने से लगे हुए दोषों की विशुद्धि।
७. दर्शन-विशोधि—सम्यग्दर्शन में लगे हुए दोषों की विशुद्धि।
८. चारित्र-विशोधि—चारित्र में लगे हुए दोषों की विशुद्धि।
९. अप्रीति-विशोधि—अप्रीति की विशुद्धि।
१०. संरक्षण-विशोधि—संयम के साधनभूत उपकरणों में मूर्च्छादि रखने से लगे हुए दोषों की विशुद्धि (८५)।

संक्लेश-असंक्लेश-सूत्र

८६—दसविधे संकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—उवहिसंकिलेसे, उवस्सयसंकिलेसे, कसायसंकिलेसे, भत्तपाणसंकिलेसे, मणसंकिलेसे, वइसंकिलेसे, कायसंकिलेसे, णाणसंकिलेसे, दंसणसंकिलेसे, चरित्तसंकिलेसे।

संक्लेश दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. उपधि-संक्लेश—वस्त्र-पात्रादि उपधि के निमित्त से होने वाला संक्लेश।
२. उपाश्रय-संक्लेश—उपाश्रय या निवास-स्थान के निमित्त से होने वाला संक्लेश।
३. कषाय-संक्लेश—क्रोधादि के निमित्त से होने वाला संक्लेश।
४. भक्त-पान-संक्लेश—आहारादि के निमित्त से होने वाला संक्लेश।

५. मन:संक्लेश—मन के उद्वेग से होने वाला संक्लेश ।
६. वाक्-संक्लेश—वचन के निमित्त से होने वाला संक्लेश ।
७. काय-संक्लेश—शरीर के निमित्त से होने वाला संक्लेश ।
८. ज्ञान-संक्लेश—ज्ञान की अशुद्धि से होने वाला संक्लेश ।
९. दर्शन-संक्लेश—दर्शन की अशुद्धि से होने वाला संक्लेश ।
१०. चारित्र-संक्लेश—चारित्र की अशुद्धि से होने वाला संक्लेश (८६) ।

८७—दसविहे असंकिलेसे पण्णत्ते, तं जहा—उवहिअसंकिलेसे, (उवस्सयअसंकिलेसे, कसाय-असंकिलेसे, भत्तपाणअसंकिलेसे, मणअसंकिलेसे, वइअसंकिलेसे, कायअसंकिलेसे, णाणअसंकिलेसे, दंसणअसंकिलेसे), चरित्तअसंकिलेसे ।

असंक्लेश (विमल भाव) दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—
१. उपधि-असंक्लेश—उपधि के निमित्त से संक्लेश न होना ।
२. उपाश्रय-असंक्लेश—निवासस्थान के निमित्त से संक्लेश न होना ।
३. कषाय-असंक्लेश—कषाय के निमित्त से संक्लेश न होना ।
४. भक्त-पान-असंक्लेश—आहारादि के निमित्त से संक्लेश न होना ।
५. मन:-असंक्लेश—मन के निमित्त से संक्लेश न होना, मन की विशुद्धि ।
६. वाक्-असंक्लेश—वचन के निमित्त से संक्लेश न होना ।
७. काय-असंक्लेश—शरीर के निमित्त से संक्लेश न होना ।
८. ज्ञान-असंक्लेश—ज्ञान की विशुद्धता ।
९. दर्शन-असंक्लेश—सम्यग्दर्शन की निर्मलता ।
१०. चारित्र-असंक्लेश—चारित्र की निर्मलता (८७) ।

बल-सूत्र

८८—दसविधे बले पण्णत्ते, तं जहा—सोतिंदियबले, (चक्खिदियबले, घाणिंदियबले, जिब्भिदियबले), फासिंदियबले, णाणबले, दंसणबले, चरित्तबले, तवबले, वीरियबले ।

बल दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रिय-बल ।	२. चक्षुरिन्द्रिय-बल ।
३. घ्राणेन्द्रिय-बल ।	४. रसनेन्द्रिय बल ।
५. स्पर्शनेन्द्रिय-बल ।	६. ज्ञानबल ।
७. दर्शन-बल ।	८. चारित्रबल ।
९. तपोबल ।	१०. वीर्यबल (८८) ।

भाषा-सूत्र

८९—दसविहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाहा

जणवय सम्मय ठवणा, णामे रूवे पडुच्चसच्चे य ।
ववहार भाव जोगे, दसमे ओवम्मसच्चे य ।।१।।

सत्य दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. जनपद-सत्य—जिस जनपद के निवासी जिस वस्तु के लिए जो शब्द बोलते हैं, उसे वहां पर बोलना। जैसे कन्नड़ देश में जल के लिए 'नीरु' बोलना।
२. सम्मत-सत्य—जिस वस्तु के लिए जो शब्द रूढ है, उसे ही बोलना। जैसे कमल को पंकज बोलना।
३. स्थापना-सत्य—निराकार वस्तु में साकार वस्तु की स्थापना कर बोलना। जैसे शतरंज की गोटों को हाथी, आदि कहना।
४. नाम-सत्य—गुण-रहित होने पर भी जिसका जो नाम है, उसे उस नाम से पुकारना। जैसे निर्धन को लक्ष्मीनाथ कहना।
५. रूप-सत्य—किसी रूप या वेष के धारण करने से उसे वैसा बोलना। जैसे स्त्री वेषधारी पुरुष को स्त्री कहना।
६. प्रतीत्य-सत्य—अपेक्षा से बोला गया वचन प्रतीत्य सत्य कहलाता है। जैसे अनामिका *अंगुली को कनिष्ठा की अपेक्षा बड़ी कहना और मध्यमा की अपेक्षा छोटी कहना।*
७. व्यवहार-सत्य—लोक-व्यवहार में बोले जाने वाले शब्द व्यवहार-सत्य कहलाते हैं। जैसे—पर्वत जलता है। वास्तव में पर्वत नहीं जलता, किन्तु उसके ऊपर स्थित वृक्ष आदि जलते हैं।
८. भाव-सत्य—व्यक्त पर्याय के आधार से बोला जाने वाला सत्य। जैसे—काक के भीतर रक्त-मांस आदि अनेक वर्ण की वस्तुएं होने पर भी उसे काला कहना।
९. योग-सत्य—किसी वस्तु के संयोग से उसे उसी नाम से बोलना। जैसे—दण्ड के संयोग से पुरुष को दण्डी कहना।
१०. औपम्यसत्य—किसी वस्तु की उपमा से उसे वैसा कहना। जैसे—चन्द्र के समान सौम्य मुख होने से चन्द्रमुखी कहना (८९)।

९०—दसविधे मोसे पण्णत्ते, तं जहा—

कोधे माणे माया, लोभे पिज्जे तहेव दोसे य।
हास भए अक्खाइय, उवघात णिस्सिते दसमे ॥१

मृषा (असत्य) वचन दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्रोध-निश्रित-मृषा—क्रोध के निमित्त से असत्य बोलना।
२. मान-निश्रित-मृषा—मान के निमित्त से असत्य बोलना।
३. माया-निश्रित-मृषा—माया के निमित्त से असत्य बोलना।
४. लोभ-निश्रित-मृषा—लोभ के निमित्त से असत्य बोलना।
५. प्रेयोनिश्रित-मृषा—राग के निमित्त से असत्य बोलना।
६. द्वेष-निश्रित-मृषा—द्वेष के निमित्त से असत्य बोलना।
७. हास्य-निश्रित-मृषा—हास्य के निमित्त से असत्य बोलना।
८. भय-निश्रित-मृषा—भय के निमित्त से असत्य बोलना।
९. आख्यायिका-निश्रित-मृषा—आख्यायिका अर्थात् कथा-कहानी को सरस या रोचक बनाने के निमित्त से असत्य मिश्रण कर बोलना।

१०. उपघात-निश्रित-मृषा—दूसरों को पीड़ा-कारक सत्य भी असत्य है। जैसे—काने को काना कह कर पुकारना। इस प्रकार उपघात के निमित्त से मृषा या असत् वचन बोलना (९०)।

९१—दसविधे सच्चामोसे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पण्णमीसए, विगतमीसए, उप्पण्णविगतमीसए, जीवमीसए, अजीवमीसए, जीवाजीवमीसए, अणंतमीसए, परित्तमीसए, अद्धामीसए, अद्धद्धामीसए।

सत्यमृषा (मिश्र) वचन दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्पन्न-मिश्रक-वचन—उत्पत्ति से संबद्ध सत्य-मिश्रित असत्य वचन बोलना। जैसे—'आज इस गाँव में दश बच्चे उत्पन्न हुए हैं।' ऐसा बोलने पर एक अधिक या हीन भी हो सकता है।

२. विगत-मिश्रक-वचन—विगत अर्थात् मरण से संबद्ध सत्य-मिश्रित असत्य वचन बोलना। जैसे—'आज इस नगर में दश व्यक्ति मर गये हैं।' ऐसा बोलने पर एक अधिक या हीन भी हो सकता है।

३. उत्पन्न-विगत-मिश्रक—उत्पत्ति और मरण से सम्बद्ध सत्य मिश्रित असत्य वचन बोलना। जैसे—आज इस नगर में दश बच्चे उत्पन्न हुए और दश ही बूढ़े मर गये हैं। ऐसा बोलने पर इससे एक-दो हीन या अधिक का जन्म या मरण भी संभव है।

४. जीव-मिश्रक-वचन—अधिक जीते हुए कृमि-कीटों के समूह में कुछ मृत जीवों के होने पर भी उसे जीवराशि कहना।

५. अजीव-मिश्रक-वचन—अधिक मरे हुए कृमि-कीटों के समूह में कुछ जीवितों के होने पर भी उसे मृत या अजीवराशि कहना।

६. जीव-अजीव-मिश्रक-वचन—जीवित और मृत राशि में संख्या को कहते हुए कहना कि इतने जीवित हैं और इतने मृत हैं। ऐसा कहने पर एक-दो के हीन या अधिक जीवित या मृत की भी संभावना है।

७. अनन्त-मिश्रक-वचन—पत्रादि संयुक्त मूल कन्दादि वनस्पति में 'यह अनन्तकाय है' ऐसा वचन बोलना अनन्त-मिश्रक मृषा वचन है। क्योंकि पत्रादि में अनन्त नहीं, किन्तु परीत (सीमित संख्यात या असंख्यात) ही जीव होते हैं।

८. परीत-मिश्रक-वचन—अनन्तकाय की अल्पता होने पर भी परीत वनस्पति में परीत का व्यवहार करना।

९. अद्धा-मिश्रक-वचन—अद्धा अर्थात् काल-विषयक सत्यासत्य वचन बोलना। जैसे—प्रयोजन विशेष के होने पर साथियों से सूर्य के अस्तंगत होते समय 'रात हो गई' ऐसा कहना।

१०. अद्धा-अद्धा-मिश्रक-वचन—अद्धा दिन या रातरूप काल के विभाग में भी पहर आदि सम्बन्धी सत्यासत्य वचन बोलना। जैसे—एक पहर दिन बीतने पर भी प्रयोजन-वश कार्य की शीघ्रता से 'मध्याह्न हो गया' कहना (९१)।

सत्य दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. जनपद-सत्य—जिस जनपद के निवासी जिस वस्तु के लिए जो शब्द बोलते हैं, उसे वहां पर बोलना। जैसे कन्नड़ देश में जल के लिए 'नीरु' बोलना।
२. सम्मत-सत्य—जिस वस्तु के लिए जो शब्द रूढ है, उसे ही बोलना। जैसे कमल को पंकज बोलना।
३. स्थापना-सत्य—निराकार वस्तु में साकार वस्तु की स्थापना कर बोलना। जैसे शतरंज की गोटों को हाथी, आदि कहना।
४. नाम-सत्य—गुण-रहित होने पर भी जिसका जो नाम है, उसे उस नाम से पुकारना। जैसे निर्धन को लक्ष्मीनाथ कहना।
५. रूप-सत्य—किसी रूप या वेष के धारण करने से उसे वैसा बोलना। जैसे स्त्री वेषधारी पुरुष को स्त्री कहना।
६. प्रतीत्य-सत्य—अपेक्षा से बोला गया वचन प्रतीत्य सत्य कहलाता है। जैसे अनामिका अंगुली को कनिष्ठा की अपेक्षा बड़ी कहना और मध्यमा की अपेक्षा छोटी कहना।
७. व्यवहार-सत्य—लोक-व्यवहार में बोले जाने वाले शब्द व्यवहार-सत्य कहलाते हैं। जैसे—पर्वत जलता है। वास्तव में पर्वत नहीं जलता, किन्तु उसके ऊपर स्थित वृक्ष आदि जलते हैं।
८. भाव-सत्य—व्यक्त पर्याय के आधार से बोला जाने वाला सत्य। जैसे—काक के भीतर रक्त-मांस आदि अनेक वर्ण की वस्तुएं होने पर भी उसे काला कहना।
९. योग-सत्य—किसी वस्तु के संयोग से उसे उसी नाम से बोलना। जैसे—दण्ड के संयोग से पुरुष को दण्डी कहना।
१०. औपम्यसत्य—किसी वस्तु की उपमा से उसे वैसा कहना। जैसे—चन्द्र के समान सौम्य मुख होने से चन्द्रमुखी कहना (८९)।

९०—दसविधे मोसे पण्णत्ते, तं जहा—

कोधे माणे माया, लोभे पिज्जे तहेव दोसे य।
हास भए अक्खाइय, उवघात णिस्सिते दसमे ॥१॥

मृषा (असत्य) वचन दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. क्रोध-निश्रित-मृषा—क्रोध के निमित्त से असत्य बोलना।
२. मान-निश्रित-मृषा—मान के निमित्त से असत्य बोलना।
३. माया-निश्रित-मृषा—माया के निमित्त से असत्य बोलना।
४. लोभ-निश्रित-मृषा—लोभ के निमित्त से असत्य बोलना।
५. प्रेयोनिश्रित-मृषा—राग के निमित्त से असत्य बोलना।
६. द्वेष-निश्रित-मृषा—द्वेष के निमित्त से असत्य बोलना।
७. हास्य-निश्रित-मृषा—हास्य के निमित्त से असत्य बोलना।
८. भय-निश्रित-मृषा—भय के निमित्त से असत्य बोलना।
९. आख्यायिका-निश्रित-मृषा—आख्यायिका अर्थात् कथा-कहानी को सरस या रोचक बनाने के निमित्त से असत्य मिश्रण कर बोलना।

१०. उपघात-निश्रित-मृषा—दूसरों को पीड़ा-कारक सत्य भी असत्य है। जैसे—काने को काना कह कर पुकारना। इस प्रकार उपघात के निमित्त से मृषा या असत् वचन बोलना (९०)।

९१—दसविधे सच्चामोसे पण्णत्ते, तं जहा—उप्पण्णमीसए, विगतमीसए, उप्पण्णविगतमीसए, जीवमीसए, अजीवमीसए, जीवाजीवमीसए, अणंतमीसए, परित्तमीसए, अद्धामीसए, अद्धद्धामीसए।

सत्यमृषा (मिश्र) वचन दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. उत्पन्न-मिश्रक-वचन—उत्पत्ति से संबद्ध सत्य-मिश्रित असत्य वचन बोलना। जैसे—'आज इस गाँव में दश बच्चे उत्पन्न हुए हैं।' ऐसा बोलने पर एक अधिक या हीन भी हो सकता है।

२. विगत-मिश्रक-वचन—विगत अर्थात् मरण से संबद्ध सत्य-मिश्रित असत्य वचन बोलना। जैसे—'आज इस नगर में दश व्यक्ति मर गये हैं।' ऐसा बोलने पर एक अधिक या हीन भी हो सकता है।

३. उत्पन्न-विगत-मिश्रक—उत्पत्ति और मरण से सम्बद्ध सत्य मिश्रित असत्य वचन बोलना। जैसे—आज इस नगर में दश बच्चे उत्पन्न हुए और दश ही बूढ़े मर गये हैं। ऐसा बोलने पर इससे एक-दो हीन या अधिक का जन्म या मरण भी संभव है।

४. जीव-मिश्रक-वचन—अधिक जीते हुए कृमि-कीटों के समूह में कुछ मृत जीवों के होने पर भी उसे जीवराशि कहना।

५. अजीव-मिश्रक-वचन—अधिक मरे हुए कृमि-कीटों के समूह में कुछ जीवितों के होने पर भी उसे मृत या अजीवराशि कहना।

६. जीव-अजीव-मिश्रक-वचन—जीवित और मृत राशि में संख्या को कहते हुए कहना कि इतने जीवित हैं और इतने मृत हैं। ऐसा कहने पर एक-दो के हीन या अधिक जीवित या मृत की भी संभावना है।

७. अनन्त-मिश्रक-वचन—पत्रादि संयुक्त मूल कन्दादि वनस्पति में 'यह अनन्तकाय है' ऐसा वचन बोलना अनन्त-मिश्रक मृषा वचन है। क्योंकि पत्रादि में अनन्त नहीं, किन्तु परीत (सीमित संख्यात या असंख्यात) ही जीव होते हैं।

८. परीत-मिश्रक-वचन—अनन्तकाय की अल्पता होने पर भी परीत वनस्पति में परीत का व्यवहार करना।

९. अद्धा-मिश्रक-वचन—अद्धा अर्थात् काल-विषयक सत्यासत्य वचन बोलना। जैसे—प्रयोजन विशेष के होने पर साथियों से सूर्य के अस्तंगत होते समय 'रात हो गई' ऐसा कहना।

१०. अद्धा-अद्धा-मिश्रक-वचन—अद्धा दिन या रातरूप काल के विभाग में भी पहर आदि सम्बन्धी सत्यासत्य वचन बोलना। जैसे—एक पहर दिन बीतने पर भी प्रयोजन-वश कार्य की शीघ्रता से 'मध्याह्न हो गया' कहना (९१)।

दृष्टिवाद-सूत्र

९२—दिट्ठिवायस्स णं दस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—दिट्ठिवाएति वा, हेउवाएति वा, भूयवाएति वा, तच्चावाएति वा, सम्मावाएति वा, धम्मावाएति वा, भासाविजएति वा, पुव्वगतेति वा, अणुजोगगतेति वा, सव्वपाणभूतजीवसत्तसुहावहेति वा।

दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग के दश नाम कहे गये हैं। जैसे—

१. दृष्टिवाद—अनेक दृष्टियों से या अनेक नयों की अपेक्षा वस्तु-तत्त्व का प्रतिपादन करने वाला।
२. हेतुवाद—हेतु-प्रयोग से या अनुमान के द्वारा वस्तु की सिद्धि करने वाला।
३. भूतवाद—भूत अर्थात् सद्-भूत पदार्थों का निरूपण करने वाला।
४. तत्त्ववाद या तथ्यवाद—सारभूत तत्त्व का, या यथार्थ तथ्य का प्रतिपादन करने वाला।
५. सम्यग्-वाद—पदार्थों के सत्य अर्थ का प्रतिपादन करने वाला।
६. धर्मवाद—वस्तु के पर्यायरूप धर्मों का, अथवा चारित्ररूप धर्मका प्रतिपादन करने वाला।
७. भाषाविचय, या भाषाविजय—सत्य आदि अनेक प्रकार की भाषाओं का विचय अर्थात् निर्णय करने वाला, अथवा भाषाओं की विजय अर्थात् समृद्धि का वर्णन करने वाला।
८. पूर्वगत—सर्वप्रथम गणधरों के द्वारा ग्रथित या रचित उत्पादपूर्व आदि का वर्णन करने वाला।
९. अनुयोगगत—प्रथमानुयोग, गण्डिकानुयोग आदि अनुयोगों का वर्णन करने वाला।
१०. सर्वप्राण-भूत-जीव-सत्त्व-सुखावह—सभी द्वीन्द्रियादि प्राणी, वनस्पतिरूप भूत, पंचेन्द्रिय जीव और पृथिवी आदि सत्त्वों के सुखों का प्रतिपादन करने वाला (९२)।

शस्त्र-सूत्र

९३—दसविधे सत्थे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रह-श्लोक

सत्थमग्गी विसं लोणं, सिणेहो खारमंबिलं।
दुप्पउत्तो मणो वाया, काओ भावो य अविरती ॥१॥

शस्त्र दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अग्निशस्त्र, २. विषशस्त्र, ३. लवणशस्त्र, ४. स्नेहशस्त्र, ५. क्षारशस्त्र, ६. अम्लशस्त्र, ७. दुष्प्रयुक्त मन, ८. दुष्प्रयुक्त वचन, ९. दुष्प्रयुक्त काय, १०. अविरति भाव (९३)।

विवेचन—जीव-घात या हिंसा के साधन को शस्त्र कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है—द्रव्य-शस्त्र और भाव-शस्त्र। सूत्रोक्त १० प्रकार के शस्त्रों में से आदि के छह द्रव्य-शस्त्र हैं और अन्तिम चार भाव-शस्त्र हैं। अग्नि आदि से द्रव्य-हिंसा होती है और दुष्प्रयुक्त मन आदि से भावहिंसा होती है। लवण, क्षार, अम्ल आदि वस्तुओं के सम्बन्ध से सचित्त वनस्पति, आदि अचित्त हो जाती हैं। इसी प्रकार स्नेह-तेल-घृतादि से भी सचित्त वस्तु अचित्त हो जाती है, इसलिए लवण आदि को भी शस्त्र कहा गया है।

दोष-सूत्र

९४—दसविहे दोसे पण्णत्ते, तं जहा—

तज्जातदोसे मतिभंगदोसे, पसत्थारदोसे परिहरणदोसे ।
सलक्खण-क्कारण-हेउदोसे, संकामणं णिग्गह-वत्थुदोसे ।।१।।

दोष दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. तज्जात-दोष—वादकाल में प्रतिवादी से क्षुब्ध होकर चुप रह जाना।
२. मतिभंग-दोष—तत्त्व को भूल जाना।
३. प्रशास्तृ-दोष—सभ्य या सभाध्यक्ष की ओर से होने वाला दोष, पक्षपात आदि।
४. परिहरण दोष—वादी के द्वारा दिये गये दोष का छल या जाति से परिहार करना।
५. स्वलक्षण-दोष—वस्तु के निर्दिष्ट लक्षण में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति या असंभव दोष का होना।
६. कारण-दोष—कारण-सामग्री के एक अंश को कारण मान लेना, या पूर्ववर्ती होने मात्र से कारण मानना।
७. हेतु-दोष—हेतु का असिद्धता, विरुद्धता आदि दोष से दोषयुक्त होना।
८. संक्रमण-दोष—प्रस्तुत प्रमेय को छोड़कर अप्रस्तुत प्रमेय की चर्चा करना।
९. निग्रह-दोष—छल, जाति, वितण्डा आदि के द्वारा प्रतिवादी को निगृहीत करना।
१०. वस्तुदोष—पक्ष सम्बन्धी प्रत्यक्षनिराकृत, अनुमाननिराकृत आदि दोषों में से कोई दोष होना (९४)।

विशेष-सूत्र

९५—दसविधे विसेसे पण्णत्ते, तं जहा—

वत्थु तज्जातदोसे य, दोसे एगट्ठिएति य।
कारणे य पडुप्पण्णे, दोसे णिच्चेहिय अट्ठमे ।।
अत्तणा उवणीते य, विसेसेति य ते दस ।।१।।

विशेष दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. वस्तुदोष-विशेष—पक्ष-सम्बन्धी दोष के विशेष प्रकार।
२. तज्जात-दोष-विशेष—वादकाल में प्रतिवादी के जन्म आदि सम्बन्धी विशेष दोष।
३. दोष-विशेष—अतिभंग आदि दोषों के विशेष प्रकार।
४. एकार्थिक-विशेष—एक अर्थ के वाचक शब्दों की निरुक्ति-जनित विशेष प्रकार।
५. कारण-विशेष—कारण के विशेष प्रकार।
६. प्रत्युत्पन्न दोष-विशेष—वस्तु को क्षणिक मानने पर कृतनाश और अकृत-अभ्यागम आदि दोषों की प्राप्ति।
७. नित्यदोष-विशेष—वस्तु को सर्वथा नित्य मानने पर प्राप्त होने वाले दोष के विशेष प्रकार।
८. अधिकदोष-विशेष—वादकाल में दृष्टान्त, उपनय आदि का अधिक प्रयोग।

९. आत्मोपनीत-विशेष—उदाहरण दोष का एक प्रकार।
१०. विशेष—वस्तु का भेदात्मक धर्म (९५)।

शुद्धवाग्-अनुयोग-सूत्र

९६—दसविधे सुद्धवायाणुओगे पण्णत्ते, तं जहा—चंकारे, मंकारे, पिंकारे, सेयंकारे, सायंकारे, एगत्ते, पुधत्ते, संजूहे, संकामिते, भिण्णे।

वाक्य-निरपेक्ष शुद्ध पद का अनुयोग दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. चकार-अनुयोग—'च' शब्द के अनेक अर्थों का विस्तार। जैसे—कहीं 'च' शब्द समुच्चय, कहीं अन्वादेश, कहीं अवधारण आदि अर्थ का बोधक होता है।
२. मकार-अनुयोग—'म' शब्द के अनेक अर्थों का विस्तार। जैसे—'जेणामेव, तेणामेव' आदि पदों में उसका प्रयोग आगमिक है, लाक्षणिक या प्राकृतव्याकरण से सिद्ध नहीं, आदि।
३. पिकार-अनुयोग—'अपि' शब्द के सम्भावना, निवृत्ति, अपेक्षा, समुच्चय, आदि अनेक अर्थों का विचार।
४. सेयंकार-अनुयोग—'से' शब्द के अनेक अर्थों का विचार। जैसे—कहीं 'से' शब्द 'अथ' का वाचक होता है, कहीं 'वह' का वाचक होता है, आदि।
५. सायंकार अनुयोग—'सायं' आदि निपात शब्दों के अर्थ का विचार। जैसे—वह कहीं सत्य अर्थ का और कहीं प्रश्न का बोधक होता है।
६. एकत्व-अनुयोग—एकवचन के अर्थ का विचार। जैसे—'नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं य तवो तहा। एस मग्गुत्ति पन्नत्तो' यहां पर ज्ञान, दर्शनादि समुदितरूप को ही मोक्षमार्ग कहा है। यहां बहुतों के लिए भी 'मग्गो' यह एकवचन का प्रयोग किया गया है।
७. पृथक्त्व-अनुयोग—बहुवचन के अर्थ का विचार। जैसे—'धम्मत्थिकायप्पदेसा' इस पद में बहुवचन का प्रयोग उसके असंख्यात प्रदेश बतलाने के लिए है।
८. संयूथ-अनुयोग—समासान्त पद के अर्थ का विचार। जैसे—'सम्मदंसणसुद्ध' इस समासान्त पद का विग्रह अनेक प्रकार से किया जा सकता है—
   १. 'सम्यग्दर्शन के द्वारा शुद्ध'—तृतीया विरक्ति के रूप में,
   २. 'सम्यग्दर्शन के लिए शुद्ध'—चतुर्थी विभक्ति के रूप में,
   ३. 'सम्यग्दर्शन से शुद्ध'—पंचमी विभक्ति के रूप में।
९. संक्रामित-अनुयोग—विभक्ति और वचन के संक्रमण का विचार। जैसे—'साहूणं वंदणेणं नासति पावं असंकिया भावा' अर्थात्—साधुओं को वन्दना करने से पाप नष्ट होता है और साधु के पास रहने से भाव अशंकित होते हैं। यहां वन्दना के प्रसंग में 'साहूणं' षष्ठी भक्ति है। उसका भाव अशंकित होने के सम्बन्ध में पंचमी विभक्ति के रूप से संक्रमित किया गया। यह विभक्ति-संक्रमण है। तथा 'अच्छंदा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति वुच्चई' यहां 'से चाई' यह बहुवचन के स्थान में एकवचन का संक्रामित प्रयोग है।
१०. भिन्न-अनुयोग—क्रमभेद और कालभेद आदि का विचार। जैसे—'तिविहं तिविहेणं' यह संग्रहवाक्य है। इसमें १—मणेणं वायाए काएणं, २—न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि

न समणुजानामि' इन दो खंडों का संग्रह किया गया है। द्वितीय खंड 'न करेमि' आदि तीन वाक्यों में 'तिविहेणं' का स्पष्टीकरण है और प्रथम खंड 'मणेणं' आदि तीन वाक्यांशों में 'तिविहेणं' स्पष्टीकरण है। यहां 'न करेमि' आदि बाद में हैं और 'मणेणं' आदि पहले। यह क्रम-भेद है। काल-भेद—जैसे—सक्के देविंदे देवराया वंदति नमंसति' यहाँ अतीत के अर्थ में वर्तमान की क्रिया का प्रयोग है (९६)।

दान-सूत्र

९७—दसविहे दाणे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रह-श्लोक

अणुकंपा संगहे चेव, भये कालुणिएति य।
लज्जाए गारवेणं च, अहम्मे उण सत्तमे॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काहीति य कतंति य॥१॥

दान दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अनुकम्पा-दान—करुणाभाव से दान देना।
२. संग्रह-दान—सहायता के लिए दान देना।
३. भय-दान—भय से दान देना।
४. कारुण्य-दान—मृत व्यक्ति के पीछे दान देना।
५. लज्जा-दान—लोक-लाज से दान देना।
६. गौरव-दान—यश के लिए, या अपना बड़प्पन बताने के लिए दान देना।
७. अधर्म-दान—अधार्मिक व्यक्ति को दान देना या जिससे हिंसा आदि का पोषण हो।
८. धर्म-दान—धार्मिक व्यक्ति को दान देना।
९. कृतमिति-दान—कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए दान देना।
१०. करिष्यति-दान—भविष्य में किसी का सहयोग प्राप्त करने की आशा से देना (९७)।

गति-सूत्र

९८—दसविधा गती पण्णत्ता, तं जहा—णिरयगती, णिरयविग्गहगती, तिरियगती, तिरियविग्गहगती, (मणुयगती मणुयविग्गहगती, देवगती, देवविग्गहगती), सिद्धगती, सिद्धिविग्गहगती।

गति दश प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. नरकगति, २. नरकविग्रहगति, ३. तिर्यग्गति ४. तिर्यग्विग्रहगति, ५. मनुष्यगति, ६. मनुष्यविग्रहगति, ७. देवगति, ८. देवविग्रहगति, ९. सिद्धिगति, १०. सिद्धि-विग्रहगति (९८)।

विवेचन—'विग्रह' शब्द के दो अर्थ होते हैं—वक्र या मोड़ और शरीर। प्रारम्भ के आठ पदों में से चार गतियों में उत्पन्न होने वाले जीव ऋजु और वक्र दोनों प्रकार से गमन करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक गति का प्रथम पद ऋजुगति का बोधक है और द्वितीयपद वक्रगति का बोधक है, यह स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु सिद्धिगति तो सभी जीवों की 'अविग्रहा जीवस्य' इस तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार विग्रहरहित ही होती है अर्थात् सिद्धजीव सीधी ऋजुगति से मुक्ति प्राप्त करते हैं। इस व्यवस्था के अनुसार दशवें पद 'सिद्धिविग्रहगति' नहीं घटित होती है। इसी बात को ध्यान में रखकर संस्कृत टीकाकार ने 'सिद्धिविग्गहगइ' त्ति सिद्धावविग्रहेण—अवक्रेण गमनं 'सिद्धयविग्रहगतिः, अर्थात्

सिद्धि-मुक्ति में अविग्रह से-विना मुड़े जाना, ऐसी निरुक्ति करके दशवें पद की संगति विठलाई है। नवें पद को सामान्य अपेक्षा से और दशवें पद को विशेष की विवक्षा से कहकर भेद बताया है।

मुण्ड-सूत्र

९९—दस मुंडा पण्णत्ता, तं जहा—सोतिंदियमुंडे, (चक्खिंदियमुंडे, घाणिंदियमुंडे, जिब्भिंदियमुंडे), फासिंदियमुंडे, कोहमुंडे, (माणमुंडे मायामुंडे) लोभमुंडे, सिरमुंडे।

मुण्ड दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड—श्रोत्रेन्द्रिय के विषय का मुण्डन (त्याग) करने वाला।
२. चक्षुरिन्द्रियमुण्ड—चक्षुरिन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
३. घ्राणेन्द्रियमुण्ड—घ्राणेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
४. रसनेन्द्रियमुण्ड—रसनेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
५. स्पर्शनेन्द्रियमुण्ड—स्पर्शनेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
६. क्रोधमुण्ड—क्रोध कषाय का मुण्डन करने वाला।
७. मानमुण्ड—मानकषाय का मुण्डन करने वाला।
८. मायामुण्ड—मायाकषाय का मुण्डन करने वाला।
९. लोभमुण्ड—लोभकषाय का मुण्डन करने वाला।
१०. शिरोमुण्ड—शिर के केशों का मुण्डन करने-कराने वाला (९९)।

संख्यान-सूत्र

१००—दसविधे संखाणे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

परिकम्मं ववहारो रज्जू रासी कला-सवण्णे य।
जावंतावति वग्गो, घणो य तह वग्गवग्गोवि ॥१॥
कप्पो य० ॥

संख्यान (गणित) दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. परिकर्म—जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि गणित।
२. व्यवहार—पाटी गणित-प्रसिद्ध श्रेणी व्यवहार, मिश्रक व्यवहार आदि।
३. रज्जु—क्षेत्रगणित, रज्जु से कूप आदि की लंबाई-गहराई आदि की माप विधि।
४. राशि—धान्य आदि के ढेर को नापने का गणित।
५. कलासवर्ण—अंशों वाली संख्या समान करना।
६. यावत्-तावत्—गुणकार या गुणा करनेवाला गणित।
७. वर्ग—दो समान संख्या का गुणन-फल।
८. घन—तीन समान संख्याओं का गुणन-फल।
९. वर्ग-वर्ग—वर्ग का वर्ग।
१०. कल्प—लकड़ी आदि की चिराई आदि का माप करनेवाला गणित (१००)।

प्रत्याख्यान-सूत्र

१०१—दसविधे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—

अणागयमतिक्कंतं, कोडीसहियं णियंटितं चेव ।
सागारमणागारं परिमाणकडं णिरवसेसं ।।
संकेयगं चेव अद्धाए, पच्चक्खाणं दसविहं तु ।।१।।

प्रत्याख्यान दश प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. अनागत-प्रत्याख्यान—आगे किये जाने वाले तप को पहले करना ।
२. अतिक्रान्त-प्रत्याख्यान—जो तप कारणवश वर्तमान में न किया जा सके, उसे भविष्य में करना ।
३. कोटिसहित-प्रत्याख्यान—जो एक प्रत्याख्यान का अन्तिम दिन और दूसरे प्रत्याख्यान का आदि दिन हो, वह कोटिसहित प्रत्याख्यान है ।
४. नियंत्रित-प्रत्याख्यान—नीरोग या सरोग अवस्था में नियंत्रण या नियमपूर्वक अवश्य ही किया जानेवाला तप ।
५. सागार-प्रत्याख्यान—आगार या अपवाद के साथ किया जाने वाला तप ।
६. अनागार-प्रत्याख्यान—अपवाद या छूट के विना किया जाने वाला तप ।
७. परिमाणकृत-प्रत्याख्यान—दत्ति, कवल, गृह, द्रव्य, भिक्षा आदि के परिमाणवाला प्रत्याख्यान ।
८. निरवशेष-प्रत्याख्यान—चारों प्रकार के आहार का सर्वथा परित्याग ।
९. संकेत-प्रत्याख्यान—संकेत या चिह्न के साथ किया जाने वाला प्रत्याख्यान ।
१०. अद्धा-प्रत्याख्यान—मुहूर्त, प्रहर आदि काल की मर्यादा के साथ किया जाने वाला प्रत्याख्यान (१०१) ।

सामाचारी-सूत्र

१०२—दसविहा सामायारी पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रह-श्लोक

इच्छा मिच्छा तहक्कारो, आवस्सिया य णिसीहिया ।
आपुच्छणा य पडिपुच्छा, छंदणा य णिमंतणा ।।
उवसंपया य काले, सामायारी दसविहा उ ।।१।।

सामाचारी दश प्रकार की कही गई है । जैसे—

१. इच्छा-समाचारी—कार्य करने या कराने में इच्छाकार का प्रयोग ।
२. मिच्छा-समाचारी—भूल हो जाने पर मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ऐसा बोलना ।
३. तथाकार-समाचारी—आचार्य के वचन को 'तह' त्ति कहकर स्वीकार करना ।
४. आवश्यकी-समाचारी—उपाश्रय से बाहर जाते समय 'आवश्यक कार्य के लिए जाता हूं,' ऐसा बोलकर जाना ।
५. नैषेधिकी-समाचारी—कार्य से निवृत्त होकर के आने पर 'मैं निवृत्त होकर आया हूं' ऐसा बोलकर उपाश्रय में प्रवेश करना ।

६. आपृच्छा-समाचारी—किसी कार्य के लिए आचार्य से पूछकर जाना।
७. प्रतिपृच्छा-समाचारी—दूसरों का काम करने के लिए आचार्य आदि से पूछना।
८. छन्दना-समाचारी—आहार करने के लिए सार्धमिक साधुओं को बुलाना।
९. निमंत्रणा-समाचारी—'मैं आपके लिए आहारादि लाऊं' इस प्रकार गुरुजनादि को निमंत्रित करना।
१०. उपसंपदा-समाचारी—ज्ञान, दर्शन और चारित्र को विशेष प्राप्ति के लिए कुछ समय तक दूसरे आचार्य के पास जाकर उनके समीप रहना (१०२)।

स्वप्न-फल-सूत्र

१०३—समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि इमे दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तं जहा—

१. एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजितं पासित्ता णं पडिबुद्धे।
२. एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
३. एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
४. एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
५. एगं च णं महं सेतं गोवग्गं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
६. एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमितं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
७. एगं च णं महं सागरं उम्मी-वीची-सहस्सकलितं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
८. एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
९. एगं च णं महं हरि-वेरुलिय-वण्णाभेणं णियएणमंतेणं माणुसुत्तरं पव्वतं सव्वतो समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।
१०. एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयमत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

१. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुमिणे पराजितं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवता महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलओ उग्घाइते।
२. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं (पुंसकोइलगं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।
३. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं (पुंसकोइलं सुविणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे ससमय-परसमयियं चित्तविचित्तं दुवालसंगं गणिपिडगं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति णिदंसेति उवदंसेति, तं जहा—आयारं, (सूयगडं, ठाणं, समवायं, विवा [आ ?] हपण्णत्ति, णायधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्हावागरणाइं, विवागसुयं) दिट्ठिवायं।
४. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणा (मयं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्णवेति, तं जहा—अगारधम्मं च, अणगारधम्मं च।

५. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सेतं गोवग्गं सुमिणे (पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे संघे, तं जहा—समणा, समणीओ, सावगा, सावियाओ।

६. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं पउमसरं (सव्वओ समंता कुसुमितं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, तं जहा—भवणवासी, वाणमंतरे, जोइसिए, वेमाणिए।

७. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सागरं उम्मी-वीची-(सहस्स-कलितं भुयाहिं तिण्णं सुमिणे पासित्ता ण) पडिबुद्धे, तं णं समणेणं भगवता महावीरेणं अणादिए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंते संसारकंतारे तिण्णे।

८. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं दिणयरं (तेयसा जलंतं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे (णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे) समुप्पण्णे।

९. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं हरि-वेरुलिय (वण्णाभेणं णियएणमंतेणं माणुसुत्तरं पव्वतं सव्वतो समंता आवेढियं परिवेढियं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे तण्णं समणस्स भगवतो महावीरस्स सदेवमणुयासुरलोगे उराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगा परिगुव्वंति—इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे।

१०. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदरचूलियाए उवरिं (सीहासण-वरगयमत्ताणं सुमिणे पासित्ता णं) पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुया-सुराए परिसाए मज्झगते केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेति पण्णवेत्ति (परूवेति दंसेति णिदंसेति) उवदंसेति।

श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थ काल की अन्तिम रात्रि में इन दस महास्वप्नों को देखकर प्रतिबुद्ध हुए। जैसे—

१. एक महान् घोर रूप वाले, दीप्तिमान् ताड़ वृक्ष जैसे लम्बे पिशाच को स्वप्न में पराजित हुआ देखकर प्रतिबद्ध हुए।
२. एक महान् श्वेत पंख वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
३. एक महान् चित्र-विचित्र पंखों वाले पुंस्कोकिल को स्पप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
४. सर्वरत्नमयी दो बड़ी मालाओं को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
५. एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
६. एक महान्, सर्व ओर से प्रफुल्लित कमल वाले सरोवर को देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
७. एक महान्, छोटी-बड़ी लहरों से व्याप्त महासागर को स्वप्न में भुजाओं से पार किया हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
८. एक महान्, तेज से जाज्वल्यमान सूर्य को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
९. एक महान्, हरित और वैडूर्य वर्ण वाले अपने आंत-समूह के द्वारा मानुषोत्तर पर्वत को सर्व ओर से आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।
१०. मन्दर-पर्वत पर मन्दर-चूलिका के ऊपर एक महान् सिंहासन पर अपने को स्वप्न में वैठा हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

उपर्युक्त स्वप्नों का फल श्रमण भगवान् महावीर ने इस प्रकार प्राप्त किया—

१. श्रमण भगवान् महावीर महान् घोर रूप वाले दीप्तिमान् एक ताल पिशाच को स्वप्न में पराजित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने मोहनीय कर्म को मूल से उखाड़ फेंका।

२. श्रमण भगवान् महावीर श्वेत पंखों वाले एक महान् पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर शुक्लध्यान को प्राप्त होकर विचरने लगे।

३. श्रमण भगवान् महावीर चित्र-विचित्र पंखों वाले एक महान् पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने स्व-समय और पर-समय का निरूपण करने वाले द्वादशाङ्ग गणिपिटक का व्याख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, दर्शन, निदर्शन, और उपदर्शन कराया।

वह द्वादशाङ्ग गणिपिटक इस प्रकार है—

१. आचाराङ्ग, २. सूत्रकृताङ्ग, ३. स्थानाङ्ग, ४. समवायाङ्ग, ५. व्याख्या-प्रज्ञप्ति-अंग, ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, ७. उपासकदशाङ्ग, ८. अन्तकृद्दशाङ्ग, ९. अनुत्तरोपपातिकदशाङ्ग, १०. प्रश्नव्याकरणाङ्ग, ११. विपाकसूत्राङ्ग, और १२. दृष्टिवाद।

४. श्रमण भगवान् महावीर सर्वरत्नमय दो बड़ी मालाओं को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा की। जैसे—

अगारधर्म (श्रावकधर्म) और अनगारधर्म (साधुधर्म)।

५. श्रमण भगवान् महावीर एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर का चार वर्ण से व्याप्त संघ हुआ। जैसे—

१. श्रमण, २. श्रमणी, ३. श्रावक, ४. श्राविका।

६. श्रमण भगवान् महावीर सर्व ओर से प्रफुल्लित कमलों वाले एक महान् सरोवर को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने चार प्रकार के देवों की प्ररूपणा की। जैसे—

१. भवनवासी, २. वानव्यन्तर, ३. ज्योतिष्क और ४. वैमानिक।

७. श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में एक महान् छोटी-बड़ी लहरों से व्याप्त महासागर को स्वप्न में भुजाओं से पार किया हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने अनादि, अनन्त, प्रलम्ब और चार अन्त (गति) वाले संसार रूपी कान्तार (महावन) या भवसागर को पार किया।

८. श्रमण भगवान् महावीर तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर को अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ।

९. श्रमण भगवान् महावीर हरित और वैडूर्य वर्ण वाले अपने आंत-समूह के द्वारा मानुषोत्तर पर्वत को सर्व ओर से आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर की देव, मनुष्य और असुरों के लोक में उदार, कीर्त्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा व्याप्त हुई—कि श्रमण भगवान् महावीर ऐसे महान् हैं, श्रमण भगवान् महावीर ऐसे महान् हैं, इस प्रकार से उनका यश तीनों लोकों में फैल गया।

१०. श्रमण भगवान् महावीर मन्दर-पर्वत पर मन्दर-चूलिका के ऊपर एक महान् सिंहासन पर अपने को स्वप्न में बैठा हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए। उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने देव, मनुष्य और असुरों की परिषद् के मध्य में विराजमान होकर केवलि-प्रज्ञप्त धर्म का आख्यान किया, प्रज्ञापन किया, प्ररूपण किया, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन कराया (१०३)।

सम्यक्त्व-सूत्र

१०४—दसविधे सरागसम्मद्दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

णिसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्तबीयरुइमेव।
अभिगम वित्थाररुई, किरिया-संखेव-धम्मरुई ॥१॥

सरागसम्यग्दर्शन दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. निसर्गरुचि—विना किसी बाह्य निमित्त से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
२. उपदेशरुचि—गुरु आदि के उपदेश से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
३. आज्ञारुचि—अर्हत्-प्रज्ञप्त सिद्धान्त से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
४. सूत्ररुचि—सूत्र-ग्रन्थों के अध्ययन से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
५. बीजरुचि—बीज की तरह अनेक अर्थों के बोधक एक ही वचन के मनन से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
६. अभिगमरुचि—सूत्रों के विस्तृत अर्थ से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
७. विस्ताररुचि—प्रमाण-नय के विस्तारपूर्वक अध्ययन से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
८. क्रियारुचि—धार्मिक क्रियाओं के अनुष्ठान से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
९. संक्षेपरुचि—संक्षेप से-कुछ धर्म-पदों के सुनने मात्र से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन।
१०. धर्मरुचि—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म के श्रद्धान से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन (१०४)।

संज्ञा-सूत्र

१०५—दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—आहारसण्णा, (भयसण्णा, मेहुणसण्णा), परिग्गहसण्णा, कोहसण्णा, (माणसण्णा, मायासण्णा) लोभसण्णा, लोगसण्णा, ओहसण्णा।

संज्ञाएं दश प्रकार की कही गई हैं। जैसे—

१. आहारसंज्ञा, २. भयसंज्ञा, ३. मैथुनसंज्ञा, ४. परिग्रहसंज्ञा, ५. क्रोधसंज्ञा, ६. मानसंज्ञा, ७. मायासंज्ञा, ८. लोभसंज्ञा, ९. लोकसंज्ञा, १०. ओघसंज्ञा (१०५)।

विवेचन—आहार आदि चार संज्ञाओं का अर्थ चतुर्थ स्थान में किया गया तथा क्रोधादि चार कषायसंज्ञाएं भी स्पष्ट ही हैं। संस्कृत टीकाकार ने लोकसंज्ञा का अर्थ सामान्य अवबोधरूप क्रिया या दर्शनोपयोग और ओघसंज्ञा का अर्थ विशेष अवबोधरूप क्रिया या ज्ञानोपयोग करके लिखा है कि कुछ आचार्य सामान्य प्रवृत्ति को ओघसंज्ञा और लोकदृष्टि को लोकसंज्ञा कहते हैं।

कुछ विद्वानों का अभिमत है कि मन के निमित्त से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह दो प्रकार का होता है—विभागात्मक ज्ञान और निर्विभागात्मक ज्ञान। स्पर्श-रसादि के विभाग वाला विशेष ज्ञान विभागात्मक ज्ञान है और स्पर्श-रसादि के विभाग विना जो साधारण ज्ञान होता है, उसे ओघसंज्ञा

कहते हैं। भूकम्प आदि आने के पूर्व ही ओघसंज्ञा से उसका आभास पाकर अनेक पशु-पक्षी सुरक्षित स्थानों को चले जाते हैं।

१०६—णेरइयाणं दस सण्णाओ एवं चेव।

इसी प्रकार नारकों से दश संज्ञाएं कही कई हैं (१०६)।

१०७—एवं णिरंतरं जाव वेमाणियाणं।

इसी प्रकार वैमानिकों तक सभी दण्डक वाले जीवों को दश-दश संज्ञाएं जाननी चाहिए (१०७)।

वेदना-सूत्र

१०८—णेरइया णं दसविधं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा—सीतं, उसिणं, खुधं, पिवासं, कंडुं, परज्झं, भयं, सोगं, जरं, वाहिं।

नारक जीव दश प्रकार की वेदनाओं का अनुभव करते रहते हैं। जैसे—

१. शीत वेदना, २. उष्ण वेदना, ३. क्षुधा वेदना, ४. पिपासा वेदना, ५. कण्डू वेदना, (खुजली का कष्ट) ६. परजन्य वेदना (परतंत्रता का या परजनित कष्ट) ७. भय वेदना, ८. शोक वेदना, ९. जरा वेदना, १०. व्याधि वेदना (१०८)।

छद्मस्थ-सूत्र

१०९—दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणति ण पासति, तं जहा—धम्मत्थिकायं, (अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं), वातं, अयं जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति, अयं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सति वा ण वा करेस्सति।

एताणि चेव उप्पण्णणाणदंसणधरे अरहा (जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ पासइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकायं आगासत्थिकायं, जीवं असरीरपडिबद्धं, परमाणुपोग्गलं, सद्दं, गंधं, वातं, अयं जिणे भविस्सति वा ण वा भविस्सति), अयं सव्वदुक्खाणमंतं करेस्सति वा ण वा करेस्सति।

छद्मस्थ जीव दश पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से न जानता है, न देखता है। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीरमुक्त जीव, ५. परमाणु-पुद्‌गल, ६. शब्द, ७. गन्ध, ८. वायु, ९. यह जिन होगा, या नहीं, १०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा, या नहीं (१०९)।

किन्तु विशिष्ट ज्ञान और दर्शन के धारक अर्हत्, जिन, केवली उन्हीं दश पदार्थों को सम्पूर्ण रूप से जानते-देखते हैं। जैसे—

१. धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय, ४. शरीर-मुक्त जीव, ५. परमाणु-पुद्‌गल, ६. शब्द, ७. गन्ध, ८. वायु, ९. यह जिन होगा, या नहीं, १०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा, या नहीं।

दशा-सूत्र

११०—दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—कम्मविवागदसाओ, उवासगदसाओ, अंतगड-

दसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, आयारदसाओ, पण्हावागरणदसाओ, बंधदसाओ, दोगिद्धिदसाओ, दीहदसाओ, संखेवियदसाओ।

दश दशा (अध्ययन) वाले दश आगम कहे गये हैं। जैसे—

१. कर्मविपाकदशा, २. उपासकदशा, ३. अन्तकृत्दशा, ४. अनुत्तरोपपातिकदशा, ५. आचारदशा, (दशाश्रुतस्कन्ध) ६. प्रश्नव्याकरणदशा, ७. बन्धदशा ८. द्विगृद्धिदशा, ९. दीर्घदशा, १०. संक्षेपकदशा (११०)।

१११—कम्मविवागदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रह-श्लोक

मियापुत्ते य गोत्तासे, अंडे सगडेति यावरे।
माहणे णंदिसेणे, सोरिए य उदुंबरे॥
सहसुद्दाहे आमलए, कुमारे लेच्छई इति॥१॥

कर्मविपाकदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. मृगापुत्र, २. गोत्रास, ३. अण्ड, ४. शकट, ५. ब्राह्मण, ६. नन्दिषेण, ७. शौरिक, ८. उदुम्बर, ९. सहस्रोद्दाह आमरक १०. कुमारलिच्छवी (१११)।

विवेचन—उल्लिखित सूत्र में गिनाए गए अध्ययन दुःखविपाक के हैं, किन्तु इन नामों में और वर्त्तमान में उपलब्ध नामों में कुछ को छोड़कर भिन्नता पाई जाती है।

११२—उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

आणंदे कामदेवे आ, गाहावतिचूलणीपिता।
सुरादेवे चुल्लसतए, गाहावतिकुंडकोलिए॥
सद्दालपुत्ते महासतए, णंदिणीपिया लेइयापिता॥१॥

उपासकदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. आनन्द, २. कामदेव, ३. गृहपति चूलिनीपिता, ४. सुरादेव, ५. चुल्लशतक, ६. गृहपति कुण्डकोलिक, ७. सद्दालपुत्र, ८. महाशतक, ९. नन्दिनीपिता, १०. लेयिका (सालिही) पिता (११२)।

११३—अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

णमि मातंगे सोमिले, रामगुत्ते सुदंसणे चेव।
जमाली य भगाली य, किंकसे चिल्लए ति य॥
फाले अंबडपुत्ते य एमेते दस आहिता॥१॥

अन्तकृत्दशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. नमि, २. मातंग, ३. सोमिल, ४. रामगुप्त, ५. सुदर्शन, ६. जमाली ७. भगाली, ८. किंकष, ९. चिल्वक, १०. पाल अम्बडपुत्र (११३)।

११४—अणुत्तरोववातियदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

इसिदासे य धण्णे य, सुणक्खत्ते कातिए ति य।
संठाणे सालिभद्दे य, आणंदे तेतली ति य॥
दसण्णभद्दे अतिमुत्ते, एमेते दस आहिया॥१॥

अनुत्तरोपपातिकदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. ऋषिदास, २. धन्य ३. सुनक्षत्र, ४. कार्त्तिक, ५. संस्थान, ६. शालिभद्र, ७. आनन्द, ८. तेतली, ९. दशार्णभद्र, १०. अतिमुक्त (११४)।

११५—आयारदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—वीसं असमाहिट्ठाणा, एगवीसं सबला, तेत्तीसं आसायणाओ, अट्ठविहा गणिसंपया, दस चित्तसमाहिट्ठाणा, एगारस उवासगपडिमाओ, बारस भिक्खुपडिमाओ, पज्जोसवणाकप्पो, तीसं मोहणिज्जट्ठाणा, आजाइट्ठाणं।

आचारदशा (दशाश्रुतस्कन्ध) के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. बीस असमाधिस्थान, २. इक्कीस शवलदोष, ३. तेतीस आशातना, ४. अष्टविध गणि-सम्पदा, ५. दश चित्तसमाधिस्थान, ६. ग्यारह उपासकप्रतिमा ७. बारह भिक्षुप्रतिमा, ८. पर्युषणाकल्प, ९ तीस मोहनीयस्थान, १०. आजातिस्थान (११५)।

११६—पण्हावागरणदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—उवमा, संखा, इसिभासियाइं, आयरियभासियाइं, महावीरभासिआइं, खोमगपसिणाइं, कोमलपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं, अंगुट्ठप-सिणाइं, बाहुपसिणाइं।

प्रश्नव्याकरणदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. उपमा, २. संख्या, ३. ऋषिभाषित, ४. आचार्यभाषित, ५. महावीरभाषित ६. क्षौमक-प्रश्न, ७. कोमलप्रश्न. ८. आदर्शप्रश्न, ९. अंगुष्ठप्रश्न, १०. बाहुप्रश्न (११६)।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में प्रश्नव्याकरण के जो दश अध्ययन कहे गए हैं उनका वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। प्रतीत होता है कि मूल प्रश्नव्याकरण में नाना विद्याओं और मंत्रों का निरूपण था, अतएव उसका किसी समय विच्छेद हो गया और उसकी स्थान-पूर्ति के लिए नवीन प्रश्नव्याकरण की रचना की गई, जिसमें पांच आस्रवों और पांच संवरों का विस्तृत वर्णन है।

११७—बंधदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

बंधे य मोक्खे य देवड्ढि, दसारमंडलेवि य।
आयरियविप्पडिवत्ती, उवज्झायविप्पडिवत्ती, भावणा, विमुत्ती, सातो, कम्मे।

बन्धदशा के दश अध्ययन कहे गये गये हैं। जैसे—

१. बन्ध, २. मोक्ष, ३. देवर्धि, ४. दशारमण्डल, ५. आचार्य-विप्रतिपत्ति. ६. उपाध्याय-विप्रतिपत्ति, ७. भावना. ८. विमुक्ति, ९. सात १०. कर्म (११७)।

११८—दोगेद्धिदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—वाए, विवाए, उववाते, सुखेत्ते, कसिणे, बायालीसं सुमिणा, तीसं महासुमिणा, बावत्तरिं सव्वसुमिणा।

हारे रामगुत्ते य, एमेते दस आहिता।

द्विगृद्धिदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. वाद, २. विवाद, ३. उपपात, ४. सुक्षेत्र, ५. कृत्स्न, ६. बयालीस स्वप्न, ७. तीस महास्वप्न. ८. बहत्तर सर्वस्वप्न, ९. हार, १०. रामगुप्त (११८)।

११९—दीहदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—

चंदे सूरे य सुक्के य, सिरिदेवी पभावती।
दीवसमुद्दोववत्ती बहूपुत्ती मंदरेति य ॥
थेरे संभूतिविजए य, थेरे पम्ह ऊसासणीसासे ॥१॥

दीर्घदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१. चन्द्र, २. सूर्य, ३ शुक्र, ४. श्रीदेवी, ५. प्रभावती, ६. द्वीप-समुद्रोपपत्ति, ७. बहुपुत्री मन्दरा, ८. स्थविर सम्भूतविजय, ९. स्थविर पक्ष्म, १०. उच्छ्वास-निःश्वास (११९)।

१२०—संखेवियदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—खुड्डिया विमाणपविभत्ती, महल्लिया विमाणपविभत्ती, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, विवाहचूलिया, अरुणोववाते, वरुणोववाते, गरुलोववाते, वेलंधरोववाते, वेसमणोववाते।

संक्षेपिकदशा के दश अध्ययन कहे गये हैं। जैसे—

१ क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति, २. महतीविमानप्रविभक्ति

३. अंगचूलिका (आचार आदि अंगों की चूलिका)

४. वर्गचूलिका (अन्तकृत्दशा की चूलिका),

५. विवाहचूलिका (व्याख्याप्रज्ञप्ति की चूलिका)

६. अरुणोपपात, ७. वरुणोपपात, ८. गरुडोपपात,

९. वेलंधरोपपात, १०. वैश्रमणोपपात (१२०)।

कालचक्र-सूत्र

१२१—दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणीए।

अवसर्पिणी का काल दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम है (१२१)।

१२२—दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणीए।

उत्सर्पिणी का काल दश कोड़ाकोड़ी सागरोपम है (१२२)।

अनन्तर-परम्पर-उपपन्नादि-सूत्र

१२३—दसविधा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरोववण्णा, परंपरोववण्णा, अणंतरावगाढा, परंपरावगाढा, अणंतराहारगा, परंपराहारगा, अणंतरपज्जत्ता, परंपरपज्जत्ता, चरिमा, अचरिमा।

एवं—णिरंतरं जाव वेमाणिया।

नारक दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. अनन्तर-उपपन्न नारक—जिन्हें उत्पन्न हुए एक समय हुआ है।

२. परम्पर-उपपन्न नारक—जिन्हें उत्पन्न हुए दो आदि अनेक समय हो चुके हैं।

३. अनन्तर-अवगाढ नारक—विवक्षित क्षेत्र से संलग्न आकाश-प्रदेश में अवस्थित।

४. परम्पर-अवगाढ नारक—विवक्षित क्षेत्र से व्यवधान वाले आकाश-प्रदेश में अवस्थित।

५. अनन्तर-आहारक नारक—प्रथम समय के आहारक।

६. परम्पर-आहारक नारक—दो आदि समयों के आहारक।

७. अनन्तर-पर्याप्त नारक—प्रथम समय के पर्याप्त।
८. परम्पर-पर्याप्त नारक—दो आदि समयों के पर्याप्त।
९. चरम-नारक—नरकगति में अन्तिम वार उत्पन्न होने वाले।
१०. अचरम-नारक—जो आगे भी नरकगति में उत्पन्न होंगे।

इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों में जीवों के दश-दश प्रकार जानना चाहिए (१२३)।

नरक-सूत्र

१२४—चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए दस णिरयावाससतसहस्सा पण्णत्ता।

चौथी पंकप्रभा पृथिवी में दश लाख नारकावास कहे गये हैं (१२४)।

स्थिति-सूत्र

१२५—रयणप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

रत्नप्रभा पृथिवी में नारकों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१२५)।

१२६—चउत्थीए णं पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

चौथी पंकप्रभा पृथिवी में नारकों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१२६)।

१२७—पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए जहण्णेणं णेरइयाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

पांचवीं धूमप्रभा पृथिवी में नारकों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१२७)।

१२८—असुरकुमाराणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता। एवं जाव थणियकुमाराणं।

असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है।
इसी प्रकार स्तनितकुमार तक के सभी भवनवासी देवों की जघन्य आयु दश हजार वर्ष की कही गई है (१२८)।

१२९—बायरवणस्सतिकाइयाणं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

बादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१२९)।

१३०—वाणमंतराणं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता।

वानव्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष की कही गई है (१३०)।

१३१—बंभलोगे कप्पे उक्कोसेणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

ब्रह्मलोककल्प में देवों की उत्कृष्ट स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१३१)।

१३२—लंतए कप्पे देवाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

लान्तक कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दश सागरोपम की कही गई है (१३२)।

भाविभद्रत्व-सूत्र

१३३—दसहिं ठाणेहिं जोवा आगमेसिभद्दत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—अणिदाणताए, दिट्ठिसंपण्णताए, जोगवाहिताए, खंतिखमणताए, जितिंदियताए, अमाइल्लताए, अपासत्थताए, सुसामण्णताए, पवयणवच्छल्लताए, पवयणउब्भावणताए।

दश कारणों से जीव आगामी भद्रता (आगामीभव में देवत्व की प्राप्ति और तदनन्तर मनुष्य-भव पाकर मुक्ति-प्राप्ति) के योग्य शुभ कार्य का उपार्जन करते हैं। जैसे—

१. निदान नहीं करने से—तप के फल से सांसारिक सुखों की कामना न करने से।
२. दृष्टिसम्पन्नता से—सम्यग्दर्शन की सांगोपांग आराधना से।
३. योगवाहिता से—मन, वचन, काय की समाधि रखने से।
४. क्षान्तिक्षमणता से—समर्थ होकर के भी अपराधी को क्षमा करने एवं क्षमा धारण करने से।
५. जितेन्द्रियता से—पाँचों इन्द्रियों के विषयों को जीतने से।
६. ऋजुता से—मन, वचन, काय की सरलता से।
७. अपार्श्वस्थता से—चारित्र पालने में शिथिलता न रखने से।
८. सुश्रामण्य से—श्रमण धर्म का यथाविधि पालन करने से।
९. प्रवचनवत्सलता से—जिन-आगम और शासन के प्रति गाढ़ अनुराग से।
१०. प्रवचन-उद्भावनता से—आगम और शासन की प्रभावना करने से (१३३)।

आशंसा-प्रयोग-सूत्र

१३४—दसविहे आसंसप्पओगे पण्णत्ते, तं जहा—इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, दुहओलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामासंसप्पओगे, भोगासंसप्पओगे, लाभासंसप्पओगे, पूयासंसप्पओगे, सक्कारासंसप्पओगे।

आशंसा प्रयोग (इच्छा-व्यापार) दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. इहलोकाशंसा प्रयोग—इस लोक-सम्बन्धी इच्छा करना।
२. परलोकाशंसा प्रयोग—परलोक-सम्बन्धी इच्छा करना।
३. द्वयलोकशंसा प्रयोग—दोनों लोक-सम्बन्धी इच्छा करना।
४. जीविताशंसा प्रयोग—जीवित रहने की इच्छा करना।
५. मरणाशंसा प्रयोग—मरने की इच्छा करना।
६. कामाशंसा प्रयोग—काम (शब्द और रूप) की इच्छा करना।
७ भोगाशंसा प्रयोग—भोग (गन्ध, रस और स्पर्श) की इच्छा करना।
८. लाभाशंसा प्रयोग—लौकिक लाभों की इच्छा करना।
९. पूजाशंसा प्रयोग—पूजा, ख्याति और प्रशंसा प्राप्त करने की इच्छा करना।
१०. सत्काराशंसा प्रयोग—दूसरों से सत्कार पाने की इच्छा करना (१३४)।

धर्म-सूत्र

१३५—दसविधे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—गामधम्मे, णगरधम्मे, रट्ठधम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, संघधम्मे, सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे।

धर्म दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—
१. ग्रामधर्म—गाँव की परम्परा या व्यवस्था का पालन करना।
२. नगरधर्म—नगर की परम्परा या व्यवस्था का पालन करना।
३. राष्ट्रधर्म—राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य का पालन करना।
४. पाषण्डधर्म—पापों का खंडन करने वाले आचार का पालन करना।
५. कुलधर्म—कुल के परम्परागत आचार का पालन करना।
६. गणधर्म—गणतंत्र राज्यों की परम्परा या व्यवस्था का पालन करना।
७ संघधर्म—संघ की मर्यादा और व्यवस्था का पालन करना।
८. श्रुतधर्म—द्वादशांग श्रुत की आराधना या अभ्यास करना।
९. चारित्रधर्म—संयम की आराधना करना, चारित्र का पालना।
१०. अस्तिकायधर्म—अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्यों का धर्म (स्वभाव) (१३५)।

स्थविर-सूत्र

१३६—दस थेरा पण्णत्ता, तं जहा—गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, संघथेरा, जातिथेरा, सुअथेरा, परियायथेरा।

स्थविर (ज्येष्ठ या वृद्ध ज्ञानी पुरुष) दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. ग्राम-स्थविर—गाम का व्यवस्थापक, ज्येष्ठ, वृद्ध और ज्ञानी पुरुष।
२. नगर-स्थविर—नगर का व्यवस्थापक, ज्येष्ठ, वृद्ध और ज्ञानी पुरुष।
३. राष्ट्र-स्थविर—राष्ट्र का व्यवस्थापक, ज्येष्ठ, वृद्ध और ज्ञानी पुरुष।
४. प्रशास्तृ-स्थविर—प्रशासन करने वाला प्रधान अधिकारी।
५. कुल-स्थविर—लौकिक पक्ष में कुल का ज्येष्ठ या वृद्ध पुरुष।
लोकोत्तर पक्ष में एक आचार्य की शिष्य परम्परा में ज्येष्ठ साधु।
६. गण-स्थविर—लौकिक पक्ष में गणराज्य का प्रधान पुरुष।
लोकोत्तर पक्ष में साधुओं के गण में ज्येष्ठ साधु।
७. संघ-स्थविर—लौकिक पक्ष में राज्य संघ का प्रधान पुरुष।
लोकोत्तर पक्ष में साधुसंघ का ज्येष्ठ साधु।
८. जाति-स्थविर—साठ वर्ष या इससे अधिक आयुवाला वृद्ध।
९. श्रुत-स्थविर—स्थानांग और समवायांग श्रुत का धारक साधु।
१०. पर्याय-स्थविर—बीस वर्ष की या इससे अधिक की दीक्षा पर्यायवाला साधु (१३६)।

पुत्र-सूत्र

१३७—दस पुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—अत्तए, खेत्तए, दिण्णए, विण्णए, उरसे, मोहरे, सोंडीरे संवुड्ढे, उवयाइते, धम्मंतेवासी।

पुत्र दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. आत्मज—अपने पिता से उत्पन्न पुत्र।
२. क्षेत्रज—नियोग-विधि से उत्पन्न पुत्र।
३. दत्तक—गोद लिया हुआ पुत्र।

४. विज्ञक—विद्यागुरु का शिष्य ।
५. औरस—स्नेहवश स्वीकार किया पुत्र ।
६. मौखर—वचन-कुशलता के कारण पुत्र रूप से स्वीकृत ।
७. शौण्डीर—शूरवीरता के कारण पुत्र रूप से स्वीकृत ।
८. संवर्धित—पालन-पोषण किया गया अनाथ पुत्र ।
९. औपयाचितक—देवता की आराधना से उत्पन्न पुत्र, या प्रिय सेवक ।
१०. धर्मान्तेवासी—धर्माराधन के लिए समीप रहने वाला शिष्य (१३७) ।

अनुत्तर-सूत्र

१३८—केवलिस्स णं दस अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—अणुत्तरे णाणे, अणुत्तरे दंसणे, अणुत्तरे चरित्ते, अणुत्तरे तवे, अणुत्तरे वीरिए, अणुत्तरा खंती, अणुत्तरा मुत्ती, अणुत्तरे अज्जवे, अणुत्तरे मद्दवे, अणुत्तरे लाघवे ।

केवली के दश अनुत्तर (अनुपम धर्म) कहे गये हैं । जैसे—

१. अनुत्तर ज्ञान, २. अनुत्तर दर्शन, ३. अनुत्तर चारित्र, ४. अनुत्तर तप, ५. अनुत्तर वीर्य, ६. अनुत्तर क्षान्ति, ७. अनुत्तर मुक्ति, ८. अनुत्तर आर्जव, ९. अनुत्तर मार्दव, १०. अनुत्तर लाघव (१३८) ।

कुरा-सूत्र

१३९—समयखेत्ते णं दस कुराओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पंच देवकुराओ पंच उत्तरकुराओ ।

तत्थ णं दस महतिमहालया महादुमा पण्णत्ता, तं जहा—जम्बू सुदंसणा, धायइरुक्खे, महाधायइरुक्खे, पउमरुक्खे, महापउमरुक्खे, पंच कूडसामलीओ ।

तत्थ णं दस देवा महिड्ढिया जाव परिवसंति, तं जहा—अणाढिते जंबुद्दीवाधिपती, सुदंसणे, पियदंसणे, पोंडरीए, महापोंडरीए, पंच गरुला वेणुदेवा ।

समयक्षेत्र (मनुष्यलोक) में दश कुरा कहे गये हैं । जैसे—
पाँच देवकुरा, पाँच उत्तरकुरा ।
वहां दश महातिमहान् दश महाद्रुम कहे गये हैं । जैसे—
१. जम्बू सुदर्शन वृक्ष, २. धातकीवृक्ष, ३. महाधातकी वृक्ष, ४. पद्म वृक्ष ५. महापद्म वृक्ष । तथा पाँच कूटशाल्मली वृक्ष ।
वहां महर्धिक, महाद्युति सम्पन्न, महानुभाग, महायशस्वी, महाबली और महासुखी तथा एक पल्योपम की स्थितिवाले दश देव रहते हैं । जैसे—
१. जम्बूद्वीपाधिपति अनादृत, २. सुदर्शन ३. प्रियदर्शन, ४. पौण्डरीक, ५. महापौण्डरीक । तथा पाँच गरुड़ वेणुदेव ((१३९) ।

दुःषमा-लक्षण-सूत्र

१४०—दसहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा—अकाले वरिसइ, काले ण वरिसइ, असाहू पुइज्जंति, साहू ण पुइज्जंति, गुरुसु जणो मिच्छं पडिवण्णो, अमणुण्णा सद्दा, (अमणुण्णा रूवा, अमणुण्णा गंधा, अमणुण्णा रसा, अमणुण्णा) फासा ।

दश निमित्तों से अवगाढ दुःषमा-काल का आगमन जाना जाता है। जैसे—

१. अकाल में वर्षा होने से, २. समय पर वर्षा न होने से,
३. असाधुओं की पूजा होने से, ४. साधुओं की पूजा न होने से,
५. गुरुजनों के प्रति मनुष्यों का मिथ्या या असद् व्यवहार होने से,
६. अमनोज्ञ शब्दों के हो जाने से, ७. अमनोज्ञ रूपों के हो जाने से,
८. अमनोज्ञ गन्धों के हो जाने से, ९. अमनोज्ञ रसों के हो जाने से,
१०. अमनोज्ञ स्पर्शों के हो जाने से (१४०)।

सुषमा-लक्षण-सूत्र

१४१—दसहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा—अकाले ण वरिसति, (काले वरिसति, असाहू ण पूइज्जंति, साहू पुइज्जंति, गुरुसु जणो सम्मं पडिवण्णो, मणुण्णा सद्दा, मणुण्णा रूवा, मणुण्णा गंधा, मणुण्णा रसा), मणुण्णा फासा।

दश निमित्तों से सुषमा काल की अवस्थिति जानी जाती है। जैसे—

१. अकाल में वर्षा न होने से, २. समय पर वर्षा होने से,
३. असाधुओं की पूजा नहीं होने से, ४. साधुओं की पूजा होने से,
५. गुरुजनों के प्रति मनुष्य का सद्व्यवहार होने से,
६. मनोज्ञ शब्दों के होने से, ७. मनोज्ञ रूपों के होने से, ८. मनोज्ञ गन्धों के होने से,
९. मनोज्ञ रसों के होने से, १०. मनोज्ञ स्पर्शों के होने से (१४१)।

[कल्प]-वृक्ष-सूत्र

१४२—सुसमसुसमाए णं समाए दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

मतंगया य भिंगा, तुडितंगा दीव जोति चित्तंगा।
चित्तरसा मणियंगा, गेहागारा अणियणा य ॥१॥

सुषम-सुषमा काल में दश प्रकार के वृक्ष उपभोग के लिए सुलभता से प्राप्त होते हैं। जैसे—

१. मदांग—मादक रस देने वाले।
२. भृंग—भाजन-पात्र आदि देने वाले।
३. त्रुटितांग—वादित्रध्वनि उत्पन्न करने वाले वृक्ष।
४. दीपांग——प्रकाश करने वाले वृक्ष।
५. ज्योतिरंग—उष्णता उत्पन्न करने वाले वृक्ष।
६. चित्रांग—अनेक प्रकार की माला-पुष्प उत्पन्न करने वाले वृक्ष।
७. चित्ररस—अनेक प्रकार के मनोज्ञ रस वाले वृक्ष।
८. मणि-अंग—आभरण प्रदान करने वाले वृक्ष।
९. गेहाकार—घर के आकार वाले वृक्ष।
१०. अनग्न—नग्नता को ढाकने वाले वृक्ष (१४२)।

कुलकर-सूत्र

१४३—जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे तीताए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा हुत्था, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

सयंजले सयाऊ य, अणंतसेणे य अजितसेणे य ।
कक्कसेणे भीमसेणे, महाभीमसेणे य सत्तमे ।।१।।
दढरहे दसरहे, सयरहे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, अतीत उत्सर्पिणी में दश कुलकर उत्पन्न हुए थे । जैसे—
१. स्वयंजल, २. शतायु ३. अनन्तसेन, ४. अजितसेन, ५. कर्कसेन, ६. भीमसेन, ७. महाभीमसेन, ८. दृढरथ, ९. दशरथ. १०. शतरथ (१४३) ।

१४४—जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमीसाए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमंधरे, विमलवाहणे, संमुती, पडिसुते, दढधणू, दसधणू, सतधणू ।

जम्बुद्वीप नामक द्वीप में, भारतवर्ष में, आगामी उत्सर्पिणी में दश कुलकर होंगे । जैसे—
१. सीमंकर, २. सीमन्धर, ३. क्षेमङ्कर, ४. क्षेमन्धर, ५. विमलवाहन, ६. सन्मति, ७. प्रतिश्रुत ८. दृढधनु, ९. दशधनु १०. शतधनु (१४४) ।

वक्षस्कार-सूत्र

१४५—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीताए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—मालवंते, चित्तकूडे, पम्हकूडे, (णलिणकूडे, एगसेले, तिकूडे, वेसमणकूडे, अंजणे, मायंजणे), सोमणसे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दोनों कूलों पर दश वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं । जैसे—

१. माल्यवान कूट, २. चित्रकूट, ३. पक्ष्मकूट ४. नलिनकूट ५. एकशैल ६. त्रिकूट ७. वैश्रमणकूट ८. अंजनकूट ९. मातांजनकूट, १०. सौमनसकूट (१४५) ।

१४६—जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओदाए महाणईए उभओकूले दस वक्खारपव्वता पण्णत्ता, तं जहा—विज्जुप्पभे, (अंकावती, पम्हावती, आसीविसे, सुहावहे, चंदपव्वते, सूरपव्वते, णागपव्वते, देवपव्वते), गंधमायणे ।

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में, मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दोनों कूलों पर दश वक्षस्कार पर्वत कहे गये हैं । जैसे—
१. विद्युत्प्रभकूट, २. अङ्कावतीकूट, ३. पक्ष्मावतीकूट, ४. आशीविषकूट, ५. सुखावहकूट, ६. चन्द्रपर्वतकूट ७. सूरपर्वतकूट, ८. नागपर्वतकूट, ९. देवपर्वतकूट, १०. गन्धमादनकूट (१४६) ।

१४७—एवं धायइसंडपुरत्थिमद्धे वि वक्खारा भाणियव्वा जाव पुक्खरवरदीवड्ढपच्चत्थिमद्धे ।

इसी प्रकार धातकीषण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में, तथा पुष्करवर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध में शीता और शीतोदा महानदियों के दोनों कूलों पर दश-दश वक्षस्कार पर्वत जानना चाहिए (१४७)।

कल्प-सूत्र

१४८—दस कप्पा इंदाहिट्ठिया पण्णत्ता, तं जहा—सोहम्मे, (ईसाणे, सणंकुमारे, माहिंदे, बंभलोए, लंतए, महासुक्के), सहस्सारे, पाणते, अच्चुते ।

इन्द्रों से अधिष्ठित कल्प दश कहे गये हैं। जैसे—

१. सौधर्म कल्प, २. ईशान कल्प, ३. सनत्कुमार कल्प ४. माहेन्द्र कल्प ५. ब्रह्मलोक कल्प, ६. लान्तक कल्प, ७. महाशुक्र कल्प, ८. सहस्रार कल्प, ९. प्राणत कल्प, १०. अच्युत कल्प (१४८)।

१४९—एतेसु णं दससु कप्पेसु दस इंदा पण्णत्ता, तं जहा—सक्के, ईसाणे, (सणंकुमारे, माहिंदे, बंभे, लंतए, महासुक्के, सहस्सारे, पाणते), अच्चुते ।

इन दश कल्पों में दश इन्द्र हैं। जैसे—

१. शक्र, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्म, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार, ९. प्राणत, १०. अच्युत (१४९)।

१५०—एतेसि णं दसण्हं इंदाणं दस परिजाणिया विमाणा पण्णत्ता, तं जहा—पालए, पुप्फए, (सोमणसे, सिरिवच्छे, णंदियावत्ते, कामकमे, पीतिमणे, मणोरमे), विमलवरे, सव्वतोभद्दे ।

इन दशों इन्द्रों के पारियानिक विमान दश कहे गये हैं। जैसे—

१. पालक, २. पुष्पक, ३. सौमनस, ४. श्रीवत्स, ५. नन्द्यावर्त, ६. कामक्रम ७. प्रीतिमना ८. मनोरम, ९. विमलवर, १०. सर्वतोभद्र (१५०)।

प्रतिमा-सूत्र

१५१—दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेण रातिंदियसतेणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासतेहिं अहासुत्तं (अहाअत्थं अहातच्चं अहामग्गं अहाकप्पं सम्मं काएणं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया) आराहिया यावि भवति ।

दश-दशमिका भिक्षु-प्रतिमा सौ दिन-रात, तथा ५५० भिक्षा-दत्तियों द्वारा यथासूत्र, यथा-अर्थ, यथातथ्य, यथामार्ग, यथाकल्प, तथा सम्यक् प्रकार काय से आचरित, पालित, शोधित, पूरित, कीर्त्तित और आराधित की जाती है (१५१)।

जीव-सूत्र

१५२—दसविधा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमयएगिंदिया, अपढमसमयएगिंदिया, (पढमसमयबेइंदिया, अपढमसमयबेइंदिया, पढमसमयतेइंदिया, अपढमसमयतेइंदिया, पढमसमयचउरिंदिया, अपढमसमयचउरिंदिया, पढमसमयपंचिंदिया,) अपढमसमयपंचिंदिया ।

संसारी जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. जिनको उत्पन्न हुए प्रथम समय ही है ऐसे एकेन्द्रिय जीव।
२. अप्रथम—जिनको उत्पन्न हुए एक से अधिक समय हो चुका है ऐसे एकेन्द्रिय जीव।
३. प्रथम समय में उत्पन्न द्वीन्द्रिय जीव।
४. अप्रथम समय में उत्पन्न द्वीन्द्रिय जीव।
५. प्रथम समय में उत्पन्न त्रीन्द्रिय जीव।

६. अप्रथम समय में उत्पन्न त्रीन्द्रिय जीव।
७. प्रथम समय में उत्पन्न चतुरिन्द्रिय जीव।
८. अप्रथम समय में उत्पन्न चतुरिन्द्रिय जीव।
९. प्रथम समय में उत्पन्न पंचेन्द्रिय जीव।
१०. अप्रथम समय में उत्पन्न पंचेन्द्रिय जीव (१५२)।

१५३—दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, (आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया), वणस्सइकाइया, बेंदिया, (तेइंदिया, चउरिंदिया), पंचेंदिया, अणिंदिया।

अहवा—दसविधा सव्वजीवा पण्णत्ता, तं जहा—पढमसमयणेरइया, अपढमसमयणेरइया, (पढमसमयतिरिया, अपढमसमयतिरिया, पढमसमयमणुया, अपढमसमयमणुया, पढमसमयदेवा), अपढमसमयदेवा, पढमसमयसिद्धा, अपढमसमयसिद्धा।

सर्व जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पृथ्वीकायिक, २. अप्कायिक, ३. तेजस्कायिक, ४ वायुकायिक, ५. वनस्पतिकायिक, ६. द्वीन्द्रिय, ७. त्रीन्द्रिय, ८. चतुरिन्द्रिय, ९. पंचेन्द्रिय, १०. अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव।

अथवा सर्व जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. प्रथम समय-उत्पन्न नारक।
२. अप्रथम समय-उत्पन्न नारक।
३. प्रथम समय में उत्पन्न तिर्यंच।
४. अप्रथम समय में उत्पन्न तिर्यंच।
५. प्रथम समय में उत्पन्न मनुष्य।
६. अप्रथम समय में उत्पन्न मनुष्य।
७. प्रथम समय में उत्पन्न देव।
८. अप्रथम समय में उत्पन्न देव।
९. प्रथम समय में सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध।
१०. अप्रथम समय में सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध (१५३)।

शतायुष्क-दशा-सूत्र

१५४—वाससताउयस्स णं पुरिसस्स दस दसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

संग्रह-श्लोक

बाला किड्डा य मंदा य, बला पण्णा य, हायणी।
पवंचा पब्भारा य मुम्मुही सायणी तधा॥१॥

सौ वर्ष की आयु वाले पुरुष की दश दशाएं कही गई हैं। जैसे—

१. बालदशा, २. क्रीडादशा, ३. मन्दादशा, ४. बलादशा, ५. प्रज्ञादशा, ६. हायिनीदशा ७. प्रपंचादशा, ८. प्राग्भारादशा, ९. उन्मुखीदशा, १०. शायिनीदशा (१५४)।

विवेचन—मनुष्य की पूर्ण आयु सौ वर्ष मानकर, दश-दश वर्ष की एक-एक दशा का वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। खुलासा इस प्रकार है—

१. बालदशा—इसमें सुख-दुःख या भले-बुरे का विशेष बोध नहीं होता।
२. क्रीडादशा—इसमें खेल-कूद की प्रवृत्ति प्रबल रहती है।
३. मन्दादशा—इसमें भोग-प्रवृत्ति की अधिकता से बुद्धि के कार्यों की मन्दता रहती है।
४. बलादशा—इसमें मनुष्य अपने बल का प्रदर्शन करता है।
५. प्रज्ञादशा—इसमें मनुष्य की बुद्धि धन कमाने, कुटुम्ब पालने आदि में लगी रहती है।
६. हायनीदशा—इसमें शक्ति क्षीण होने लगती है।
७. प्रपंचादशा—इसमें मुख से लार-थूक आदि गिरने लगते हैं।
८. प्राग्भारदशा—इसमें शरीर झुर्रियों से व्याप्त हो जाता है।
९. उन्मुखीदशा—इसमें मनुष्य बुढ़ापा से आक्रान्त हो मौत के सन्मुख हो जाता है।
१०. शायिनीदशा—इसमें मनुष्य दुर्बल, दीनस्वर होकर शय्या पर पड़ा रहता है।

तृणवनस्पति-सूत्र

१५५—दसविधा तणवणस्सतिकाइया पण्णत्ता, तं जहा—मूले, कंदे, (खंधे, तया, साले, पवाले, पत्ते), पुप्फे, फले, बीये।

तृणवनस्पतिकायिक जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. मूल, २. कन्द, ३. स्कन्ध, ४. त्वक्, ५. शाखा, ६. प्रवाल, ७. पत्र, ८. पुष्प ९. फल, १०. बीज (१५५)।

श्रेणि-सूत्र

१५६—सव्वाओवि णं विज्जाहरसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित सभी विद्याधर-श्रेणियां दश-दश योजन विस्तृत कही गई हैं (१५६)।

१५७—सव्वाओवि णं आभिओगसेढीओ दस-दस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

दीर्घ वैताढ्य पर्वत पर अवस्थित सभी आभियोगिक-श्रेणियां दश-दश योजन विस्तृत कही गई हैं (१५७)।

विवचन—भरत और ऐरवत क्षेत्र के ठीक मध्यभाग में पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक लम्बा और मूल में पचास योजन चौड़ा एक-एक वैताढ्य पर्वत है। इसकी ऊंचाई पच्चीस योजन है। भूमितल से दश योजन की ऊंचाई पर उसके उत्तरी और दक्षिणी भाग पर विद्याधरों की श्रेणियां मानी गई हैं। उनमें विद्याधर रहते हैं, जो कि विद्याओं के बल से आकाश में गमनादि करने में समर्थ होते हैं। वे श्रेणियां दोनों ओर दश-दश योजन चौड़ी हैं। इन विद्याधर-श्रेणियों से भी दश योजन की ऊंचाई पर आभियोगिक श्रेणियां मानी गई हैं, जिनमें अभियोग जाति के व्यन्तर देव रहते हैं। ये श्रेणियां भी दोनों ओर दश-दश योजन चौड़ी कही गई हैं।

ग्रैवेयक-सूत्र

१५८—गेविज्जगविमाणा णं दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ग्रैवेयक विमानों के ऊपर की ऊंचाई दश सौ (१०००) योजन कही गई है (१५८)।

तेजसा-भस्मकरण-सूत्र

१५९—दसहिं ठाणेहिं सह तेयसा भासं कुज्जा, तं जहा—

१. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

२. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। से तं परितावेति, से तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

३. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते समाणे परिकुविते देवेवि य परिकुविते ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। ते तं परितावेंति, ते तं परितावेत्ता तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

४. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

५. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

६. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, (ते फोडा भिज्जंति, ते फोडा भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा) भासं कुज्जा।

७. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

८. (केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] देवे परिकुविए तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा।

९. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेज्जा, से य अच्चासातिते [समाणे ?] परिकुविए देवेवि य परिकुविए ते दुहओ पडिण्णा तस्स तेयं णिसिरेज्जा। तत्थ फोडा संमुच्छंति, ते फोडा भिज्जंति, तत्थ पुला संमुच्छंति, ते पुला भिज्जंति, ते पुला भिण्णा समाणा तामेव सह तेयसा भासं कुज्जा)।

१०. केइ तहारूवं समणं वा माहणं वा अच्चासातेमाणे तेयं णिसिरेज्जा, से य तत्थ णो कम्मति, णो पकम्मति, अंचिअंचियं करेति, करेत्ता आयाहिणपयाहिणं करेति, करेत्ता उड्ढं वेहासं उप्पतति, उप्पतेत्ता से णं ततो पडिहते पडिणियत्तति, पडिणियत्तित्ता तमेव सरीरगं अणुदहमाणे-अणुदहमाणे सह तेयसा भासं कुज्जा—जहा वा गोसालस्स मंखलि-पुत्तस्स तवेतेए।

दश कारणों से श्रमण-माहन (अति-आशातना करने वाले को) तेज से भस्म कर डालता है। जैसे—

१. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धि से सम्पन्न) श्रमण-माहन की तीव्र आशातना करता है, वह उस आशातना से पीड़ित होता हुआ उस व्यक्ति पर क्रोधित होता है। तब उसके शरीर से तेज निकलता है। वह तेज उस उपसर्ग करने वाले को परितापित करता है और उसे भस्म कर देता है।

२. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है, उसकी अत्याशातना करने पर कोई देव कुपित होता है। तब उस देव के शरीर से तेज निकलता है। वह तेज उस उपसर्ग करने वाले को परितापित करता है और परितापित कर उस तेज से उसे भस्म कर देता है।

३. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना से परिकुपित वह श्रमण-माहन और परिकुपित देव दोनों ही उसे मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। तब उन दोनों के शरीर से तेज निकलता है। वे दोनों तेज उस उपसर्ग करने वाले व्यक्ति को परितापित करते हैं और परितापित करके उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

४. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। वह उस अत्याशातना से परिकुपित होता है, तब उसके शरीर से तेज निकलता है, उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट (फोड़े-फफोले) उत्पन्न होते हैं। वे फोड़े फूटते हैं और फूटते हुए उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

५. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव परिकुपित होता है, तब उसके शरीर से तेज निकलता है, उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते हैं और उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

६. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता है, उसके अत्याशातना करने पर परिकुपित वह श्रमण-माहन और परिकुपित देव ये दोनों ही उसे मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। तब उन दोनों के शरीरों से तेज निकलता है। उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते हैं और फूटते हुए उसे उस तेज से भस्म कर देते हैं।

७. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर वह उस पर परिकुपित होता है। तब उसके शरीर से तेज निकलता है। उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते हैं, तब उनमें से पुल (फुंसियां) उत्पन्न होती हैं। वे फूटती हैं और फूटती हुई उस तेज से उसे भस्म कर देती हैं।

८. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर कोई देव परिकुपित होता है, तब उसके शरीर से तेज निकलता है, उससे उस व्यक्ति के शरीर में स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते हैं, तब उनमें पुल (फुंसियां) निकलती हैं। वे फूटती हैं और फूटती हुई उस तेज से उसे भस्म कर देती हैं।

९. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण माहन की अत्याशातना करता है। उसके अत्याशातना करने पर परिकुपित वह श्रमण-माहन और परिकुपित देव दोनों ही उसे मारने की प्रतिज्ञा करते हैं। तब उन दोनों के शरीरों से तेज निकलता है। उससे उस व्यक्ति के शरीर में

स्फोट उत्पन्न होते हैं। वे स्फोट फूटते हैं, तव उनमें से पुल (फुंसियां) निकलती हैं। वे फूटती हैं और फूटती हुई उस तेज से उसे भस्म कर देती हैं।

१०. कोई व्यक्ति तथारूप (तेजोलब्धिसम्पन्न) श्रमण-माहन की अत्याशातना करता हुआ उस पर तेज फेंकता है। वह तेज उस श्रमण-माहन के शरीर पर आक्रमण नहीं कर पाता, प्रवेश नहीं कर पाता है। तब वह उसके ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आता-जाता है, दाएं-बाएं प्रदक्षिणा करता है और यह सब करके ऊपर आकाश में चला जाता है। वहाँ से लौटकर उस श्रमण-माहन के प्रवल तेज से प्रतिहत होकर वापिस उसी फेंकनेवाले के पास चला जाता है और उसके शरीर में प्रवेश कर उसे उसकी तेजोलब्धि के साथ भस्म कर देता है, जिस प्रकार मंखली पुत्र गोशालक के तपस्तेज ने उसी को भस्म कर दिया था (१५९)।

(मंखलीपुत्र गोशालक ने क्रोधित होकर भगवान् महावीर पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया था। किन्तु वीतरागता के प्रभाव से उसने वापिस लौटकर गोशालक को ही भस्म कर दिया था। चरमशरीरी श्रमणों पर तेजोलेश्या का असर नहीं होता है।)

आश्चर्यक-सूत्र

१६०—दस अच्छेरगा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

उवसग्ग गब्भहरणं, इत्थीतित्थं अभाविया परिसा।
कण्हस्स अवरकंका, उत्तरणं चंदसूराणं ॥१॥
हरिवंसकुलुप्पत्ती, चमरुप्पातो य अट्ठसयसिद्धा।
अस्संजतेसु पूआ, दसवि अणंतेण कालेण ॥२॥

दश आश्चर्यक कहे गये हैं। जैसे—

१. उपसर्ग—तीर्थंकरों के ऊपर उपसर्ग होना।
२. गर्भहरण—भगवान् महावीर का गर्भापहरण होना।
३. स्त्री का तीर्थंकर होना।
४. अभावित परिषत्—तीर्थंकर भगवान् महावीर का प्रथम धर्मोपदेश विफल हुआ अर्थात् उसे सुनकर किसी ने चारित्र अंगीकार नहीं किया।
५. कृष्ण का अमरकंका नगरी में जाना।
६. चन्द्र और सूर्य देवों का विमान-सहित पृथ्वी पर उतरना।
७. हरिवंश कुल की उत्पत्ति।
८. चमर का उत्पात—चमरेन्द्र का सौधर्मकल्प में जाना।
९. एक सौ आठ सिद्ध—एक समय में एक साथ एक सौ आठ जीवों का सिद्ध होना।
१०. असंयमी की पूजा।

ये दशों आश्चर्य अनन्तकाल के व्यवधान से हुए हैं (१६०)।

विवेचन—जो घटनाएं सामान्य रूप से सदा नहीं होतीं, किन्तु किसी विशेष कारण से चिरकाल के पश्चात् होती हैं, उन्हें आश्चर्य-कारक होने से 'आश्चर्यक' या अच्छेरा कहा जाता है। जैनशासन में भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर के समय तक ऐसी दश अद्भुत

या आश्चर्यकारक घटनाएं घटी हैं। इनमें से पहली, दूसरी, चौथी, छठी और आठवीं घटना भगवान् महावीर के शासनकाल से सम्बन्धित हैं और शेष अन्य तीर्थंकरों के शासनकालों से सम्बन्ध रखती हैं। उनका विशेष विवरण अन्य शास्त्रों से जानना चाहिए।

काण्ड-सूत्र

१६१—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणे कंडे दस जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

इस रत्नप्रभा पृथिवी का रत्नकाण्ड दश सौ (१०००) योजन मोटा कहा गया है (१६१)।

१६२—इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरे कंडे दस जोयणसताइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

इस रत्नप्रभा पृथिवी का वज्रकाण्ड दश सौ योजन मोटा कहा गया है (१६२)।

१६३—एवं वेरुलिए, लोहितक्खे, मसारगल्ले, हंसगब्भे, पुलए, सोगंधिए, जोतिरसे, अंजणे, अंजणपुलए, रययं, जातरूवे, अंके, फलिहे, रिट्ठे। जहा रयणे तहा सोलसविधा भाणितव्वा।

इसी प्रकार वैडूर्यकाण्ड, लोहिताक्षकाण्ड, मसारगल्लकाण्ड, हंसगर्भकाण्ड पुलककाण्ड, सौगन्धिककाण्ड, ज्योतिरसकाण्ड, अंजनकाण्ड, अंजनपुलककाण्ड, रजतकाण्ड, जातरूपकाण्ड, अंककाण्ड, स्फटिककाण्ड और रिष्टकाण्ड भी दश सौ—दश सौ योजन मोटे कहे गये हैं।

भावार्थ—रत्नप्रभापृथिवी के तीन भाग हैं—खरभाग, पंकभाग और अब्बहुल भाग। इनमें से खरभाग के सोलह भाग हैं, जिनके नाम उक्त सूत्रों में कहे गये हैं। प्रत्येक भाग एक-एक हजार योजन मोटा है। इन भागों को काण्ड, प्रस्तट या प्रसार कहा जाता है (१६३)।

उद्वेध-सूत्र

१६४—सव्वेवि णं दीव-समुद्दा दस जोयणसताइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी द्वीप और समुद्र दश सौ—दश सौ (एक-एक हजार) योजन गहरे कहे गये हैं (१६४)।

१६५—सव्वेवि णं महादहा दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी महाद्रह दश-दश योजन गहरे कहे गये हैं (१६५)।

१६६—सव्वेवि णं सलिलकुंडा दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सभी सलिलकुण्ड (प्रपातकुण्ड) दश-दश योजन गहरे कहे गये हैं (१६६)।

१६७—सीता-सीतोया णं महाणईओ मुहमूले दस-दस जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णत्ताओ।

शीता-शीतोदा महानदियों के मुखमूल (समुद्र में प्रवेश करने के स्थान) दश-दश योजन गहरे कहे गये हैं (१६७)।

नक्षत्र-सूत्र

१६८—कत्तियाणक्खत्ते सव्वबाहिराओ मण्डलाओ दसमे मंडले चारं चरति।

कृत्तिका नक्षत्र चन्द्रमा के सर्वबाह्य-मण्डल से दशवें मण्डल में संचार (गमन) करता है (१६८)।

१६९—अणुराधाणक्खत्ते सव्वब्भंतराओ मंडलाओ दसमे मंडले चारं चरति।

अनुराधा नक्षत्र चन्द्रमा के सर्वाभ्यन्तर-मण्डल से दशवें मण्डल में संचार करता है (१६९)।

ज्ञानवृद्धिकर-सूत्र

१७०—दस णक्खत्ता णाणस्स विद्धिकरा पण्णत्ता, तं जहा—

संग्रहणी-गाथा

मिगसिरमद्दा पुस्सो, तिण्णि य पुव्वाइं मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्ता य तहा, दस विद्धिकराइं णाणस्स ॥१॥

दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले कहे गये हैं। जैसे—
१. मृगशिरा, २. आर्द्रा, ३. पुष्य, ४. पूर्वाषाढा, ५. पूर्वभाद्रपद, ६. पूर्व फाल्गुनी, ७, मूल, ८. आश्लेषा, ९. हस्त, १०. चित्रा। ये दश नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करते हैं (१७०)।

कुलकोटि-सूत्र

१७१—चउप्पयथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दस जाति-कुलकोडि-जोणिपमुह-सतसहस्सा पण्णत्ता।

पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक, स्थलचर चतुष्पद की जाति-कुल-कोटियां दश लाख कही गई हैं (१७१)।

१७२—उरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दस जाति-कुलकोडि-जोणिपमुह-सत-सहस्सा पण्णत्ता।

पंचेन्द्रिय, तिर्यग्योनिक स्थलचर उरःपरिसर्प की जाति-कुलकोटियां दश लाख कही गई हैं (१७२)।

पापकर्म-सूत्र

१७३—जीवा णं दसठाणणिव्वत्तिते पोग्गले पावकम्मत्ताए चिणिंसु वा चिणंति वा चिणिस्संति वा, तं जहा—पढमसमयएगिंदियणिव्वत्तिए, (अपढमसमयएगिंदियणिव्वत्तिए, पढमसमयबेइंदियणिव्वत्तिए, अपढमसमयबेइंदियणिव्वत्तिए, पढमसमयतेइंदियणिव्वत्तिए, अपढमसमयतेइंदियणिव्वत्तिए, पढमसमयचउरिंदियणिव्वत्तिए, अपढमसमयचउरिंदियणिव्वत्तिए, पढमसमयपंचिंदियणिव्वत्तिए, अपढमसमय)पंचिंदियणिव्वत्तिए।

एवं—चिण-उवचिण-बंध-उदीर-वेय तह णिज्जरा चेव।

जीवों ने दश स्थानों से निर्वर्तित पुद्गलों का पापकर्म के रूप से संचय किया है, करते हैं और करेंगे। जैसे—

१. प्रथम समय—एकेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
२. अप्रथम समय—एकेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
३. प्रथम समय—द्वीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
४. अप्रथम समय—द्वीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
५. प्रथम समय—त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।

६. अप्रथम समय—त्रीन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
७. प्रथम समय—चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
८. अप्रथम समय—चतुरिन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
९. प्रथम समय—पंचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।
१०. अप्रथम समय—पंचेन्द्रिय निर्वर्तित पुद्गलों का।

इसी प्रकार उनका चय, उपचय, बन्धन, उदीरण, वेदन और निर्जरण किया है, करते हैं और करेंगे (१७३)।

पुद्गल-सूत्र

१७४—दसपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता।

दश प्रदेशी पुद्गलस्कन्ध अनन्त कहे गये हैं (१७४)।

१७५—दसपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

दश प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७५)।

१७६—दससमयठितीया पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

दश समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७६)।

१७७—दसगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

दश गुण काले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७७)।

१७८—एवं वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं दसगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता।

इसी प्रकार शेष वर्ण तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के दश-दश गुण वाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं (१७८)।

॥ दशम स्थानक समाप्त ॥

॥ स्थानांग समाप्त ॥

गाथानुक्रम

[प्रस्तुत अनुक्रम में सूत्र में आई गाथाओं के केवल प्रथम चरण का उल्लेख किया गया है। पूरी गाथा सामने अंकित पृष्ठ पर देखना चाहिए।]

व्यक्तिनाम-अनुक्रम

श्रागम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरड़िया, मद्रास
२. श्री सेठ खींवराजजी चोरड़िया, मद्रास
३. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरड़िया, बैंगलोर
४. श्री एस. किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
५. श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
६. श्री कंवरलालजी बेताला, गोहाटी
७. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
८. श्री प्रेमराजजी भंवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
९. श्री गुलाबचन्दजी मांगीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद

स्तम्भ

१. श्री जसराजजी गणेशमलजी संचेती, जोधपुर
२. श्री अगरचंदजी फतेचंदजी पारख, जोधपुर
३. श्री पूसालालजी किस्तूरचंदजी सुराणा, बालाघाट
४. श्री मूलचंदजी चोरड़िया, कटंगी
५. श्री तिलोकचंदजी सागरमलजी संचेती, मद्रास
६. श्री जे. दुलीचंदजी चोरड़िया, मद्रास
७. श्री हीराचंदजी चोरड़िया, मद्रास
८. श्री एस. रतनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
९. श्री वर्द्धमान इन्डस्ट्रीज, कानपुर
१०. श्री एस. सायरचंदजी चोरड़िया, मद्रास
११. श्री एस. बादलचंदजी चोरड़िया, मद्रास
१२. श्री एस. रिखबचंदजी चोरड़िया, मद्रास
१३. श्री आर. परसनचंदजी चोरड़िया, मद्रास
१४. श्री अन्नराजजी चोरड़िया, मद्रास
१५. श्री दीपचंदजी बोकड़िया, मद्रास
१६. श्री मिश्रीलालजी तिलोकचंदजी संचेती, दुर्ग

संरक्षक

१. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, ब्यावर
२. श्री दीपचंदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
३. श्री ज्ञानराजजी मूथा, पाली
४. श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
५. श्री रतनचंदजी उत्तमचंदजी मोदी, ब्यावर
६. श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चांगाटोला
७. श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
८. श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेड़ता
९. श्री जड़ावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
१०. श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K. G. F.) एवं जाड़न
११. श्री केशरीमलजी जंवरीलालजी तालेरा, पाली
१२. श्री नेमीचंदजी मोहनलालजी ललवाणी, चांगाटोला
१३. श्री बिरदीचंदजी प्रकाशचंदजी तलेसरा, पाली
१४. श्री सिरेकँवर बाई धर्मपत्नी स्व. श्री सुगनचंदजी झामड़, मदुरान्तकम
१५. श्री थानचंदजी मेहता, जोधपुर
१६. श्री मूलचंदजी सुजानमलजी संचेती, जोधपुर
१७. श्री लालचंदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
१८. श्री भेरुदानजी लाभचंदजी सुराणा, धोबड़ी तथा नागौर
१९. श्री रावतमलजी भीकमचंदजी पगारिया, बालाघाट
२०. श्री सागरमलजी नोरतमलजी पींचा, मद्रास
२१. श्री धर्मीचंदजी भागचंदजी बोहरा, झूठा

२२. श्री मोहनराजजी बालिया, अहमदाबाद
२३. श्री चेनमलजी सुराणा, मद्रास
२४. श्री गणेशमलजी धर्मीचंदजी कांकरिया, नागौर
२५. श्री बादलचंदजी मेहता, इन्दौर
२६. श्री हरकचंदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२७. श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
२८. श्री इन्दरचंदजी वैद, राजनांदगांव
२९. श्री मांगीलालजी धर्मीचंदजी चोरड़िया, चांगाटोला
३०. श्री रघुनाथमलजी लिखमीचंदजी लोढ़ां, चांगाटोला
३१. श्री भंवरलालजी मूलचंदजी सुराणा मद्रास
३२. श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चांगाटोला
३३. श्री जालमचंदजी रिखबचंदजी बाफना, आगरा
३४. श्री भंवरीमलजी चोरड़िया, मद्रास
३५. श्री हीरालालजी पन्नालालजी चोपड़ा, अजमेर
३६. श्री घेवरचंदजी पुखराज जी, गोहाटी
३७. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, आगरा
३८. श्री भंवरलालजी गोठी, मद्रास
३९. श्री गुणचंदजी दल्लीचंदजी कटारिया, बेल्लारी
४०. श्री अमरचंदजी बोथरा, मद्रास
४१. श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढ़ा, डोंडीलोहारा
४२. श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
४३. श्री जड़ावमलजी सुगनचंदजी, मद्रास
४४. श्री पुखराजजी विजयराज जी, मद्रास
४५. श्री जबरचंदजी गेलड़ा, मद्रास
४६. श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कुप्पल
४७. श्री लूणकरणजी रिखबचंदजी लोढ़ा, मद्रास

सहयोगी सदस्य

१. श्री पूनमचंदजी नाहटा, जोधपुर
२. श्री अमरचंदजी बालचंदजी मोदी, ब्यावर
३. श्री चम्पालालजी मीठालालजी सकलेचा, जालना
४. श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
५. श्री भंवरलालजी चोपड़ा, ब्यावर
६. श्री रतनलालजी चतर, ब्यावर
७. श्री जंवरीलालजी अमरचंदजी कोठारी, ब्यावर
८. श्री मोहनलालजी गुलाबचंदजी चतर, ब्यावर
९. श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
१०. श्री के. पुखराजजी बाफना, मद्रास
११. श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया
१२. श्री चम्पालालजी बुधराजजी बाफणा, ब्यावर
१३. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१४. श्री मांगीलालजी प्रकाशचंदजी रुणवाल, बर
१५. श्री मोहनलालजी मंगलचंदजी पगारिया, रायपुर
१६. श्री भंवरलालजी गौतमचंदजी पगारिया, कुशालपुरा
१७. श्री दुलेराजजी भंवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१८. श्री फूलचंदजी गौतमचंदजी कांठेड, पाली
१९. श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
२०. श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
२१. श्री देवकरणजी श्रीचंदजी डोसी, मेडतासिटी
२२. श्री माणकराजजी किशनराजजी, मेड़तासिटी
२३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेड़ता सिटी
२४. श्री बी. गजराजजी बोकड़िया, सलेम
२५. श्री भंवरलालजी विजयराजजी कांकरिया, विल्लीपुरम्
२६. श्री कनकराज जी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
२७. श्री हरकराजजी मेहता, जोधपुर
२८. श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
२९. श्री घेवरचंदजी पारसमलजी टांटिया, जोधपुर
३०. श्री गणेशमलजी नेमीचंदजी टांटिया, जोधपुर
३१. श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
३२. श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
३३. श्री जसराजजी जंवरीलालजी धारीवाल, जोधपु
३४. श्री मूलचंदजी पारख, जोधपुर
३५. श्री आसुमल एण्ड कं., जोधपुर

३६. श्री देवराजजी लाभचंदजी मेड़तिया, जोधपुर
३७. श्री घेवरचंदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
३८. श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट कं.) जोधपुर
३९. श्री वच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
४०. श्री ताराचंदजी केवलचंदजी कर्णावट, जोधपुर
४१. श्री मिश्रीलालजी लिखमीचंदजी साँड, जोधपुर
४२. श्री उत्तमचंदजी मांगीलालजी, जोधपुर
४३. श्री मांगीलालजी रेखचंदजी पारख, जोधपुर
४४. श्री उदयराजजी पुखराजजी संचेती, जोधपुर
४५. श्री सरदारमल एन्ड कं., जोधपुर
४६. श्री रायचंदजी मोहनलालजी, जोधपुर
४७. श्री नेमीचंदजी डाकलिया, जोधपुर
४८. श्री घेवरचंदजी रूपराजजी, जोधपुर
४९. श्री मुन्नीलालजी, मूलचंदजी, पुखराजजी गुलेच्छा, जोधपुर
५०. श्री सुन्दरबाई गोठी, महामन्दिर
५१. श्री मांगीलालजी चोरड़िया, कुचेरा
५२. श्री पुखराजजी लोढ़ा, महामंदिर
५३. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
५४. श्री भंवरलालजी बाफणा, इन्दौर
५५. श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
५६. श्री स्व. भीकमचंदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
५७. श्री सुगनचंदजी संचेती, राजनांदगाँव
५८. श्री विजयलालजी प्रेमचंदजी गोलेच्छा, राजनांदगाँव
५९. श्री घीसूलालजी लालचंदजी पारख, दुर्ग
६०. श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
६१. श्री ओखचंदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
६२. श्री भंवरलालजी मूथा, जयपुर
६३. श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
६४. श्री भंवरलालजी डूंगरमलजी कांकरिया, भिलाई नं. ३
६५. श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई नं. ३
६६. श्री रावतमलजी छाजेड़, भिलाई नं. ३
६७. श्री हीरालालजी हस्तीमलजी, भिलाई नं. ३
६८. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुलि
६९. श्री प्रेमराजजी मिट्ठालालजी कामदार, चांवडिया
७०. श्री भंवरलालजी माणकचंदजी सुराणा, मद्रास
७१. श्री भंवरलालजी नवरतनमलजी सांखला, मेट्टूपालियम
७२. श्री सूरजकरणजी सुराणा, लाम्बा
७३. श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
७४. श्री हरकचंदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
७५. श्री लालचंदजी मोतीलालजी गादिया, बैंगलोर
७६. श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७७. श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
७८. श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढ़ा, ब्यावर
७९. श्री अखेचंदजी भण्डारी, कलकत्ता
८०. श्री बालचंदजी थानमलजी भुरट (कुचेरा), कलकत्ता
८१. श्री चन्दनमलजी प्रेमचंदजी मोदी, भिलाई
८२. श्री तिलोकचंदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
८३. श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
८४. श्री जीवराजजी भंवरलालजी, चोरड़िया भैंरुदा
८५. श्री माँगीलालजी मदनलालजी, चोरड़िया भैंरुदा
८६. श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेड़ता सिटी
८७. श्री भींवराजजी बागमार, कुचेरा
८८. श्री गंगारामजी इन्दरचंदजी बोहरा, कुचेरा
८९. श्री फकीरचंदजी कमलचंदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
९०. श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
९१. श्री प्रकाशचंदजी जैन, नागौर (भरतपुर)
९२. श्री भंवरलालजी रिखबचंदजी नाहटा, नागौर
९३. श्री गूदड़मलजी चम्पालालजी, गोठन
९४. श्री पारसमलजी महावीरचंदजी बाफना, गोठन
९५. श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जंवरीलालजी कोठारी, गोठन
९६ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली

९७. श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
९८. श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन, श्रावकसंघ, दल्ली-राजहरा
९९. श्री जंवरीलालजी शांतिलालजी सुराणा, बुलारम
१००. श्री फतेराजजी नेमीचंदजी कर्णावट, कलकत्ता
१०१. श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गोहाटी
१०२. श्री जुगराजजी बरमेचा, मद्रास
१०३. श्री कुशालचंदजी रिखबचंदजी सुराणा, बुलारम
१०४. श्री माणकचंदजी रतनलालजी मुणोत, नागौर
१०५. श्री सम्पतराजजी चोरड़िया, मद्रास
१०६. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भण्डारी, बैंगलोर
१०७. श्री रामप्रसन्न ज्ञान प्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
१०८. श्री तेजराज जी कोठारी, मांगलियावास
१०९. श्री अमरचंदजी चम्पालालजी छाजेड़, पादु बड़ी
११०. श्री माँगीलालजी शांतिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
१११. श्री कमलाकंवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
११२. श्री लक्ष्मीचंदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
११३. श्री भंवरलालजी मांगीलालजी बेताला, डेह
११४. श्री कंचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
११५. श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
११६. श्री चांदमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११७. श्री माँगीलालजी उत्तमचंदजी बाफणा, बैंगलोर
११८. श्री इन्दरचंदजी जुगराजजी बाफणा, बैंगलोर
११९. श्री चम्पालालजी माणकचंदजी सिंघी, कुचेरा
१२०. श्री संचालालजी बाफना, औरंगाबाद
१२१. श्री भूरमलजी दुल्लीचंदजी बोकड़िया, मेड़ता सिटी
१२२. श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड़, सिकन्दराबाद
१२३. श्रीमती रामकुंवर धर्मपत्नी श्रीचांदमलजी लोढ़ा, बम्बई
१२४. श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२५. श्री जीतमलजी भंडारी, कलकत्ता
१२६. श्री सम्पतराजजी सुराणा-मनमाड़
१२७. श्री. टी. पारसमलजी चोरड़िया, मद्रास

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमों में जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमों में अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते, असज्झातिते, तं जहा—अट्ठि, मंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चउहि महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा—आसाढपाडिवए, इंदमहापाढिवए कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, चउहिं संझाहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा, चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्र पाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित. चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं। जिनका संक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उल्कापात-तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

२. **दिग्दाह**—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा में आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. **गर्जित**—बादलों के गर्जन पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. **विद्युत**—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

किन्तु गर्जन और विद्युत का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत प्रायः ऋतु स्वाभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा में स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्धात—विना बादल के आकाश में व्यन्तरादिकृत घोर गर्जन होने पर, या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, को सन्ध्या चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा, थोड़े थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अतः आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पड़ती रहे, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल में श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुन्ध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे..तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज उद्घात—वायु के कारण आकाश में चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है। स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी मांस और रुधिर—पंचेद्रिय तिर्यंच की हड्डी मांस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मांस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एवं बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ,मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्र पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनैः शनैः स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओं में परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नहीं करें।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पड़ा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पड़ा हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्ध कहे गये हैं।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओं के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमें स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रातः सूर्य उगने से एक घड़ी पहिले तथा एक घड़ी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घड़ी पहले तथा एक घड़ी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर में एक घड़ी आगे और एक घड़ी पीछे एवं अर्धरात्रि में भी एक घड़ी आगे तथा एक घड़ी पीछे स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
